# इंग्लैंड का इतिहास

[ प्राचीन काल से आज तक ]

लेखक

डॉक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए० डी० एस-सी०

अध्यक्ष, इतिहास विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रकाशक

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर

# प्रस्तावना

इंग्लैंड के इतिहास की प्रमुख विशेषता यह है कि उस में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं के विकास मे क्रमबद्ध शृंखला मौजूद है वह और किसी देश के इतिहास में नहीं है। कार्य-कारण का अन्योन्य सम्बन्ध और घटनाक्रम की क्रमबद्धता जितनी इस देश के इतिहास में मिलती है उतनी और किसी देश के इतिहास में दिखायी नहीं देती। यहाँ की राजनीतिक और सार्वजनिक संस्थाओं का सा क्रम-विकास और देशों के इतिहास में देखने को नहीं मिलता। इसलिए इतिहास और राजनीति के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए इसका पढ़ना आवश्यक है।

हाई स्कूल परीक्षा के लिए निर्धारित इंग्लैंड के इतिहास पाठ्यक्रम के पढ़ लेने के बाद विद्यार्थियो को इस देश के इतिहास की प्रमुख घटनाओं और वहाँ की राजनीतिक तथा अन्य संस्थाओं के विकास का साधारण ज्ञान हो जाता है, यह मान लेना स्वाभाविक ही है। इन्टरमीडियेट परीक्षा के पाठ्यक्रम में ऊपरी ढाँचा वही रखते हुए बहुत सी बातों को विस्तार से जानने की आवश्यकता है और घटनाओं तथा संस्थाओं के विकास की प्रमुख धाराओ का व्यापक ज्ञान होना भी जरूरी है।

अँगरेजी भाषा में इंग्लैंड के इतिहास पर अनेक सुन्दर, रोचक और उपयोगी पुस्तकें लिखी गयी हैं और बराबर लिखी जा रही हैं। जिस नवीन दृष्टिकोण से इनका प्रतिपादन किया गया है उसका हिन्दी में सर्वथा अभाव है। उनकी वैज्ञानिक विवेचना का तारतम्य हिन्दी इतिहासों में देखने को भी नहीं मिलता।

इस पुस्तक में जहाँ इंग्लैंड के इतिहास की प्रमुख धाराओं का विषद वर्णन है वहाँ अनावश्यक और छोटी-मोटी बातें बताना जरूरी नही समझा गया। प्रत्येक युग की प्रमुख घटनाओं को लेकर उनके बहुमुखी व्यापक कार्य-क्षेत्र और भविष्य के परिणाम की ओर इंगित कर दिया गया है। प्रत्येक

घटना की युक्तियुक्त परम्परा को समझने के लिए उसे आदि से अन्त तक क्रमबद्ध किया है। किसी मन्त्रिमंडल या संस्था की नीति विशेष अथवा कार्य प्रणाली पर प्रकाश डालने के लिए उसका विस्तृत वर्णन एक ही स्थान पर कर दिया गया है। पुस्तक के क्रम विद्यार्थियों को याद रखने के बजाय समझने और घटनाओं से परिणाम की अपेक्षा करने में कहाँ तक सहायता मिलती है, यह उसकी वर्णन-शैली, भाषा और विषय पर निर्भर है।

हिन्दी में इस प्रकार की अभी तक कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है। मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि मैं अपने प्रकाशक श्री शालिग्राम वर्मा के सहयोग और उत्साह के बल पर ही इसे लिखने का साहस कर सका हूँ।

इस पुस्तक मे लिखने में मुझे वार्नर और मार्टिन की The Groundwork of British History, ट्रेवीलियन का लिखा इंग्लैंड का इतिहास, मावेट की New History of Great Britain, टी० एफ० टाउट की History of Great Britain और कैरिंगटन और जैक्सन की History of England आदि-आदि पुस्तकों से विशेष सहायता मिली है, इसलिए मैं उनका आभारी हूँ।

रामप्रसाद त्रिपाठी

"Acknowledged with thanks the courtesy of M/S. Blackie & Son (India), Ltd, Publisher, for the kind permission to include in this edition of the book 'England ka Itihas', translation of parts of '*Ground work of British History*' by Warner and Marten".

*Publishers.*

—:-※-:—

# विषय-सूची

## पहला प्रकरण

## दूसरा प्रकरण—नवयुग का आरम्भ



## तीसरा प्रकरण—राज्य-सत्ताओं का सम्मिलन

अध्याय विषय पृष्ठ



———

# इंग्लैंड का इतिहास

## पहला प्रकरण

## पूर्व इतिहास

(५५ ई० पू०—१४८५ ई०)

### अध्याय १

### ब्रिटेन में रोम निवासी

(५५ ई० पू०—४१० ई०)

ब्रिटिश और गैलिक—इंग्लैंड के इतिहास में प्रारम्भ में जूलियस सीजर के आक्रमण ही विशेषतः उल्लेखनीय हैं। सीजर के लेख वहाँ के प्राचीनतम ऐतिहासिक आधार माने जाते हैं। यह सच है कि उससे पहले भी कुछ लोग ब्रिटेन में आये थे, परन्तु उनका आगमन अधिक महत्व नहीं रखता। ६०० वर्ष पूर्व के इंग्लैंड के इतिहास के सम्बन्ध में लिखित साधन बहुत कम प्राप्त हैं। रोम वासियों के आगमन के विषय में जो कुछ लेख मिलते भी हैं, वे ब्रिटेन के निवासियों के विषय में अधिक हाल नहीं बतलाते। मानव जातियों तथा भाषाओं के विकास और विस्तार का अध्ययन करने वाले यहाँ के आदिम-निवासियों के विषय में अवश्य कुछ कह सकते हैं। इसी प्रकार इनके वस्त्राभूषणों, शस्त्रास्त्रों और गृह सामग्री आदि के आधार पर पुरातत्व-वेत्ता उनके जीवन-क्रम और युद्ध की प्रणालियों पर भी कुछ प्रकाश डालते हैं।

ब्रिटेन में सीजर—ब्रिटेन में आने पर सीजर का जिन लोगों से सम्पर्क हुआ, वे कैल्ट जाति के थे। कैल्ट उन लोगों के सजातीय थे, जिनसे चैनल के उस पार अभी कुछ समय पहले वह युद्ध कर चुका था। सीजर के प्रथम आक्रमण का परिणाम कुछ अधिक न हुआ। उसे बस इस बात का अनुभव हो गया कि उसने जिस काम के करने का बीड़ा उठाया था, वह उसकी कल्पना से कहीं कठिन था। ब्रिटिश द्वीपों में कुछ समय बिता कर वह पुनः एक बड़ी सेना लेकर केन्ट में उतरा और उत्तर की ओर बढ़ा। कैसिवलोनस ने ब्रिटिश जातियों की सेनाओं का संगठन कर प्रतिरोध की चेष्टा की, किन्तु वह सफल न हो सका। ट्रिनोवेन्टीज नामक जन-समूह ने शत्रु का पक्ष लिया। सीजर ने सेन्ट ऐल्बन्स के समीप ब्रिटिश शिविर पर आक्रमण

किया, और कैसिवलौनस के पराजय स्वीकार कर लेने पर अपनी सेना पीछे हटा ली। सीजर के आक्रमण का उद्देश्य केवल इतना ही था कि ब्रिटेन-वासियों को रोम-साम्राज्य की सीमाओं की शान्ति भंग करने से रोका जाय।

**ब्रिटेन पर विजय**—लगभग सौ वर्ष के बाद सन् ४३ ई० मे सम्राट क्लौडियस की आज्ञा से सेनापति आलस प्लाशिस ने ब्रिटेन पर आक्रमण किया। क्लौडियस का अभिप्राय ब्रिटेन को साम्राज्य में सम्मिलित करना था। एक के बाद दूसरे रोमन सेनापति ने इस काम को जारी रक्खा और धीरे-धीरे सारे ब्रिटेन पर रोमनों का अधिकार हो गया। किन्तु विजय के साथ ही रंग में भंग हो गया। उसके अत्याचारों से तंग आकर इसैनी की सिंहासनच्युत रानी बोडीशिया की प्रजा ने विद्रोह कर दिया। रोमन सैनिक मार डाले गये और रोमन सेना नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी। ब्रिटेन में रोमन आधिपत्य इस समय लगभग नहीं के बराबर रह गया था। गॉल लोगों के गदर करने एवम् रोम राज्य में गृह युद्ध होने के कारण करीब सौ वर्ष तक रोम वाले ब्रिटेन की ओर ध्यान न दे सके। किन्तु शीघ्र ही स्यूटोनिस पौलिनस नामक रोमन सेनापति ने आकर स्थिति को सँभाल लिया, विद्रोही पराजित हुए और निराश होकर रानी बोडीशिया ने विषपान कर आत्म-हत्या कर ली।

**जूलियस ऐग्रिकोला**—( सन् ७८-८५ ई० ) सन् ७८ ई० में जूलियस एग्रिकोला गवर्नर होकर आया। उसके समय से ही स्थायी आधिपत्य का आरम्भ होता है। उसे अनेक बार युद्ध करने पड़े। किन्तु वह निरा सैनिक ही न था। प्रतिरोधियों के प्रति निर्दय होने के साथ-साथ वह शरणागतों के प्रति दयालु भी था। उसने टैक्स हलके कर दिये और इस बात का प्रयत्न किया कि सेना के ख़र्च का बोझ प्रजा के ऊपर अधिक न पड़ने पावे। बड़ी-बड़ी दीवारें और किले बना कर उसने आक्रमणकारियों को रोक दिया। खेती करने के तरीकों में उसने काफी उन्नति की। ब्रिटेन-वासियों को न्यायालयों के निर्माण का अधिकार देकर उसने उस शान्ति-प्रदायिनी नीति से काम लिया जो एक सुव्यवस्थित रोमन उपनिवेश के लिए उचित थी। ब्रिटेन के लोग अपने रहने के लिए अच्छे मकान बनवाने लगे। रोमन भाषा का प्रचार और रोमन रहन-सहन का अनुकरण होने लगा।

एग्रिकोला के उत्तराधिकारियों ने उन्नत नागरिक जीवन के विकास के लिए पूरा प्रयत्न किया। लोगों की आर्थिक दशा में उन्नति हुई। शान्ति से वैभव प्राप्त हुआ। देश मे रोम की सड़कें बन गयीं। व्यापार का उदय हुआ। चतुर्दिक बिखरी हुई रोमन सेना और रोम की ग़रीब प्रजा में बाँटने के लिए रोम को अधिक और सस्ते अन्न की सदैव आवश्यकता रहती थी। अन्न पैदा करने के लिए ब्रिटेन की भूमि बड़ी उपजाऊ थी। रोमन लोग उसे उत्तर की अनाज की खत्ती कहा करते थे। इसके अलावा ब्रिटेन से टीन, चमड़ा, गुलाम और मोती भी बाहर भेजे जाते थे।

अनाज के व्यापार के साथ ही टीन, जस्ता, ताँबा आदि खनिज पदार्थों का भी प्रचार बढा। शस्त्रास्त्र बनाने तथा बुनाई, कताई, रँगाई, आदि कलाओं में उन्नति होने लगी। बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ। रोमन तथा अन्य देशीय लोग वहाँ आकर बस गये। रोम के सम्राट् भी कभी-कभी ब्रिटेन मे आते थे। ईसाई सम्राट कौन्स्टेन्टाइन ने जो स्वयम् ब्रिटिश माँ से उत्पन्न था, सब से पहले ब्रिटेन से ही वह विजय-यात्रा आरम्भ की थी, जिसने उसे रोम के सिहासन पर पहुँचाया था। सौ वर्ष के बाद अपने ही निकटवर्ती आक्रमणकारियों से व्यस्त रहने के कारण रोम को ब्रिटेन से अपनी सेना हटानी पड़ी। ४१० ई० में सम्राट् हौनोरियस ने ब्रिटेन से रोम आधिपत्य उठा लेने की घोषणा कर दी। इस समय ब्रिटेन निवासियों में अपने बल पर खड़े होने की शक्ति न थी। उन पर रोमन सभ्यता का प्रभाव पूर्ण रूप से पड चुका था। वेश भूषा, भाषा व्यवहार आदि सभी बातों में उन्होंने रोमनों का अनुकरण किया था। किन्तु उन्होंने रोम को महान बना देने वाले गुणों को नहीं अपनाया। वे रोम की शक्ति के भरोसे सुख से शान्तिमय जीवन व्यतीत करने के आदी हो गये थे। फल यह हुआ कि वे स्वयम् निर्बल, निःशक्त और पराधीन हो गये। उनमें पहले की स्वतन्त्रता का प्रेम भी न रहा। जब रोम का सहारा हटा, तब उन्हें फिर नये आक्रमणकारियों का शिकार बनना पड़ा।

---

# अध्याय २

## सैक्सन-आक्रमण

इग्लैंड के इतिहास में रोमन आधिपत्य का कुछ अधिक ऐतिहासिक महत्व नहीं है। फ्रान्स और स्पेन पर तो रोमन सभ्यता का स्थायी प्रभाव पड़ा, किन्तु ब्रिटेन के भविष्य पर इसका अधिक प्रभाव न पड़ा। रोम वालों से तीन चीजें ब्रिटेन को मिली थीं—सड़कें, ईसाई धर्म, और लन्दन आदि नगर। जो थोड़ा-बहुत प्रभाव पडा भी था, वह उनके जाने के साथ ही नष्ट हो गया। इसलिए ब्रिटेन के क्रमबद्ध इतिहास का आरम्भ सैक्सेन आक्रमण से किया जाता है।

समुद्री डाकू सैक्सन—रोमन आधिपत्य उठ जाने के बाद ब्रिटेन पर उत्तर से पिक्ट और आयर्लैंण्ड से स्काट जातियों के आक्रमण आरम्भ हुए। इधर समुद्र तट पर जूट और सैक्सन समुद्री डाकू दिखायी देने लगे। गौल के रोमन सेनापति एटियस से सहायता न मिलने पर ब्रिटिशशासक वौर्टिगर्न को निराश होकर पिक्टो से युद्ध करने के लिए जूटों की एक सेना को रखना पडा। रोम वाले भी किराये की सेनाएँ रखते थे, किन्तु वे उनको वश में रखना जानते थे। वौर्टिगर्न इन किराये के सैनिकों को अधिकार में न रख सका। जूटों ने उसके विरुद्ध होकर थैनेट द्वीप पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार वहाँ सैक्सन आधिपत्य का प्रारम्भ

हुआ जिसके पूर्ण होने में डेढ़ सौ वर्ष से अधिक लगे। थैनेट से जूट लोग कैन्ट की ओर बढ़े और बीस वर्ष में उन्होंने उस पर भी अधिकार जमा लिया।

कुछ वर्ष बाद सैक्सन जाति के दल अपना अधिकार बढाने लगे। उनमें से एक दल का नाम ऐङ्गल्स था। धीरे-धीरे, टुकड़े-टुकड़े करके ब्रिटेन निवासियों से उनके देश का अपहरण किया गया। वे धीरे-धीरे पीछे हटते गये। अन्त में उन्होंने फिर उन्हीं पर्वतीय प्रदेशों में शरण ली, जहाँ उन्होंने रोमनों के विरुद्ध अन्तिम युद्ध किया था।

डियोरहम (५७७ ई०) और चैस्टर के युद्ध (६१३ ई०) सैक्सन विजय की पराकाष्ठा समझे जाते हैं। यद्यपि इनके बाद भी युद्ध होते रहे, तथापि इन दो युद्धों के साथ सैक्सन आधिपत्य की नींव दृढ़ हो गयी और ब्रिटेन निवासियों के उत्थान की आशा न रही। पूर्ण आधिपत्य जमाने में उनको लगभग अगले सात सौ वर्ष लगे।

**सैक्सन आधिपत्य**—ब्रिटेन निवासी सैक्सनों को, जंगली, अधर्मी और असभ्य समझते थे। फिर भी इतिहास में उनका महत्व है। उनकी भाषा आज सारे देश की भाषा है। ब्रिटिश विचार-स्वातन्त्र्य और राजनीतिक संस्थाओं का उद्गम उन्हीं की संस्कृति में है! रोमन इतिहास-लेखक टैसिटस ने उनके स्वातन्त्र्य प्रेम की प्रशंसा की है। किन्तु इंग्लैंड में बसने के समय तक उनकी इन भावनाओं का पतन हो चुका था। राजत्व के उदय के साथ-साथ स्वतन्त्रता का भाव क्षीण हो गया था।

**सैक्सन क़ानून और न्याय**—आरम्भ काल के सैक्सन समाज में बहुत कुछ स्वतन्त्रता थी। गुलाम रखते हुए भी रोमनों की भाँति वे लोग उनसे सब काम न लेते थे। गुलामों के भरोसे न रहकर वे स्वयम् अपना काम करना पसन्द करते थे। सभा समितियों के द्वारा शासन करना उनकी प्रकृति का एक प्रधान अंग था। इन सभाओं में जिन्हें वे 'फ़ोकमूट' कहते थे, नेताओं का निर्वाचन तथा शान्ति और युद्ध के प्रश्नों का विवेचन होता था। यह 'प्रजा द्वारा ही प्रजा-शासन' का प्रारम्भिक रूप था। किन्तु राजतन्त्र के उदय के साथ इन सभाओं का ह्रास हो गया। क्रमशः सारा इंग्लैंड संगठित हो गया। छोटी-छोटी सैक्सन रियासतें मिलकर बड़े प्रान्त हो गये, जिनको अँगरेजी में शायर कहते हैं। फ़ोकमूटों ने विशाल न्यायालयों का रूप ग्रहण कर लिया। राजा की एक-मात्र सम्पत्ति न होकर न्याय का काम प्रजा के अधिकार में आ गया। शायर के न्यायालयों में एल्डरमैन (प्रधान), शेरिफ़ (राजा का प्रतिनिधि), बिशप (गिरजे का बड़ा पादरी) और शायर के प्रतिनिधि मिलकर न्याय करते थे। इन बड़े न्यायालयों के नीचे हन्डे्डमूट (जिला सभा) और टाउनमूट (नगर सभा) थे फोकमूट (लोक सभाएँ)। छोटी-छोटी जातियों तक

ही सीमित रह सकती थीं। किन्तु राजा के लिए योग्य सदस्यों की आवश्यकता थी।

**वाइटेन सभा और सभासद**—इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ... सभा ( बुद्धिमानों की सभा ) का संगठन हुआ जिनके सदस्य शायरों के प्रधान, और राजा के रक्षकों के नेता थे। आगे चलकर इसमें बिशपों और आर्कबिशप को भी स्थान मिल गया। इसी सभा से क्रमशः पार्लियामेन्ट का विकास हुआ है। यह सभा हाउस ऑव लॉर्ड्स के अधिक अनुरूप थी, क्योंकि इसमे प्रजा के निर्वाचित सदस्य नहीं थे। फिर भी इसे पार्लियामेन्ट के कुछ अधिकार प्राप्त थे। नियम, विधान, शान्ति, सन्धि और विग्रह के प्रश्नों तथा धर्म आदि विषयों में उसकी सम्मति ली जाती थी। वह राजा का निर्वाचन अथवा उसे पदच्युत भी कर सकती थी। नौर्थम्ब्रिया के एडविन ने क्रिश्चियन धर्म के अपनाने के विषय में वाइटेन सभा की सम्मति ली थी। केन्यूट और हेरल्ड को इसी सभा ने सिंहासन पर बैठाया था। इसी ने ऐथिलरेड को गद्दी से उतारा था।

आगे चलकर, हैनरी अष्टम के समय में धार्मिक प्रश्नों में हस्तक्षेप करते समय, चार्ल्स प्रथम को अपनी इच्छानुसार नियम बनाने तथा शासन करने से रोकते समय, विलियम तृतीय को राज-मुकुट प्रदान करते समय, और रिचर्ड द्वितीय को सिंहासनच्युत करने में पार्लियामेन्ट ने उसी शक्ति का प्रयोग किया था जो कुछ अंशों में इस सभासद-मण्डल के अधिकार में थी।

**राजा**—टैसिटस का कथन है कि जर्मन जाति मे राजे नहीं होते थे। इंग्लैंड में बसते समय सैक्सन-जाति मे भी चाहे राजा रहे हों या न रहें हों; किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि राजाओं के उदय में विलम्ब नहीं हुआ। प्रारम्भ में राजा केवल जाति का नायक था जो सेनापति का काम करता था। राज्याधिकार किसी की पैतृक सम्पत्ति न थी। राजा के बड़े पुत्र को भी योग्य होने पर ही राजपद मिल सकता था। यदि उसमें योग्यता न हुई तो राजा के कुटुम्ब से किसी दूसरे योग्य व्यक्ति का चुनाव कर लिया जाता था। एक बार पद ग्रहण कर लेने पर राजा लोग शीघ्र ही शक्ति का सचय कर लेते थे। क्रमशः वेसेक्स के राजा के अधिकार में समस्त इंग्लैंड आगया। उसकी शक्ति के प्रधान स्तम्भ 'गैसिथ' और 'फिर्ड' थे। सिपहगरी गैसिथ लोगों का पेशा ही थी; किन्तु 'फिर्ड' केवल आवश्यकता पड़ने पर सेना में सम्मिलित होते थे। गैसिथ अपने नायक की रक्षा करने और उसके लिए युद्ध करने को वचनबद्ध थे। नायक के राजा हो जाने से उनकी भी शक्ति बढ़ गयी, और वे 'थेन' सरदार कहलाने लगे।

सैक्सन-जाति मे स्वतन्त्रता की भावना प्रबल थी और वे शासन के विरोधी थे। उनके राजाओं की शक्ति सीमित थी। राज्याधिकार पैतृक सम्पत्ति न होकर योग्यता पर निर्भर था। न्याय जनता का अधिकार था। स्थानीय शासन का क्षेत्र

अधिक विस्तृत था। वर्त्तमान इंग्लैंड के शासन का विकास मुख्यतः इन्हीं संस्थाओं से हुआ है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि वे सब संस्थाएँ सैक्सनों के आगमन के साथ ही स्थापित हो गयी थीं। उन संस्थाओं का विकास अथवा ह्रास आवश्यकतानुसार समय-समय पर होता गया है। राजनीतिक संस्थाओं का विकास और विनाश प्रायः धीरे-धीरे ही होता है। आगे की घटनाओं से इस नियम का प्रमाण पूरे तौर से मिल जायगा।

---

# अध्याय ३

## ईसाई धर्म का आगमन

**रोमन आधिपत्य में ईसाई धर्म**—यद्यपि इस विषय में अधिक ज्ञात नहीं कि रोमन शासन-काल में ब्रिटेन-वासी किस प्रकार ईसाई हो गये, फिर भी यह निश्चित है कि उनमें से कुछ ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। वस्तुतः जब रोमन सम्राट कौन्स्टेन्टाइन ने ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया तो ब्रिटेन में उसका अनुकरण स्वाभाविक हो गया। ब्रिटेन निवासियों की दृष्टि में सैक्सन लोगों का विधर्मी होना कम भयानक न था। आक्रमणों के साथ ब्रिटेन का इतिहास, धर्म, जीवन सब कुछ नष्ट होता दिखायी देता था। सैक्सन जाति के प्रति ब्रिटेन-वासियों के भय और घृणा का इससे अच्छा प्रमाण और क्या हो सकता है कि वर्षों तक उन्होंने उनमें धर्म-प्रचार का कोई भी प्रयत्न न किया, यद्यपि ब्रिटिश मिशनरी लोग धर्म का प्रचार चारों ओर कर रहे थे।

रोम का आधिपत्य हट जाने पर भी ईसाई धर्म के प्रचारक ब्रिटेन में आते रहे और प्रचार करते रहे। उनमें से सेन्ट अलबन (सन् ३१४ ई०) का नाम प्रसिद्ध है। सेक्सन लोगों के प्रबल हो जाने पर ईसाई धर्मावलम्बी ब्रिटेन, वेल्स तथा पच्छिम की ओर जाकर बस गये।

**आगस्टिन का मिशन**—सेक्सन लोगों में ईसाई धर्म प्रचार का काम रोम के चर्च ने आरम्भ किया। कैन्ट के राजा एथेलबर्ट ने फ्रान्स की ईसाई राजकुमारी बर्था से विवाह कर लिया था। रोम के पोप ग्रिगरी को यह अच्छा अवसर मिल गया। उसने चालीस सहयोगियों के साथ आगस्टिन को इंग्लैड भेजा (५९७ ई०)। आगस्टिन और उसके सहयोगी-मिशनरी पादरी थे और पाँचवीं शताब्दी में स्थापित नर्सिया के सेन्ट बैनिडिक्ट के संघ से सम्बन्ध रखते थे। बैनिडिक्ट का धार्मिक आदर्श क्रियात्मक था। उसका सिद्धान्त था कि "परिश्रम के साथ काम करना ही मनुष्य का परम धर्म है"। आगस्टिन सैक्सन लोगों को यह उपदेश देने आया था कि जीवन में युद्ध, भोजन और मद्य-पान से भी अधिक गम्भीर कार्य करने को हैं। उसके

कर्मशील सिद्धान्त के कारण वे उनकी अपेक्षा न कर सकते थे। एथेलबर्ट ने उन्हें धर्म प्रचार की आज्ञा दे दी।

कैन्ट—इस प्रकार इन मिशनरियों के सरल और सत्य धर्म के अनेकों अनुयायी हो गये, जिनमें एथेलबर्ट स्वयम् शामिल था। राजा ने आगस्टिन को केन्टरबरी मे एक उजड़ा गिरजा दे दिया जिसका नाम 'क्राइस्ट चर्च' रक्खा गया। उसी स्थान पर आज केन्टरबरी का महान गिरजाघर स्थित है, जिसका आर्कबिशप इंग्लैंड के चर्च का अधिष्ठाता है।

नार्थम्ब्रिया—जिस प्रकार फ्रान्स की राजकुमारी से विवाह हो जाने से कैन्ट में ईसाई धर्म प्रचलित हो गया, उसी प्रकार दूसरे विवाह से यह धर्म उत्तर की ओर बढ़ा। एथेलबर्ट की पुत्री एथिलबर्गा ने नौर्थम्ब्रिया के शक्तिशाली राजा एडविन से विवाह कर लिया। राजकुमारी के साथ पौलिनस नामक एक मिशनरी भी वहाँ गया। एडविन का ईसाई धर्म मे सम्मिलित हो जाना एक महत्वपूर्ण बात थी। इसके लिए पौलिनस और रानी ने भरसक प्रयत्न किये होंगे। पोप ने भी पत्र और उपहार भेजे। एडविन पर उनके विचारों का प्रभाव हुआ। उसने अपने सभासदों से सम्मति माँगी। उनकी सम्मति से उसने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और उसकी प्रजा ने भी उसका अनुकरण किया।

एडविन ने सच्चे हृदय से इसाई धर्म ग्रहण किया था। किन्तु सहसा धर्म-परिवर्तन कर लेने वालों मे प्रायः धार्मिक दृढ़ता नहीं रहती। एडविन मर्सिया के राजा पैन्डा के साथ युद्ध मे मारा गया। पैलिनस और ऐथिलबर्गा भाग गये। पैन्डा विधर्मी था। नौर्थम्ब्रिया के बहुत से ईसाइयों ने धर्म परित्याग कर दिया। इसीलिए ओसवाल्ड को, जो कुछ वर्ष बाद गद्दी पर बैठा, ईसाई धर्म के उपदेशक फिर बुलाने पड़े थे। अबकी बार उसे कैल्टिक लोगों की सहायता भी मिल गयी।

ऐडन—जब पैन्डा नौर्थम्ब्रिया में लूट कर रहा था, ओसवाल्ड ने आयोना के पादरियों की शरण ली थी। अतः आयोना से ही उपदेशक बुलाये गये थे। एक के असफल रहने पर ऐडन चुना गया। उसके प्रयत्नों से नौर्थम्ब्रिया में ईसाई धर्म पुनः प्रचलित हो गया। किन्तु जब तक पैन्डा जीवित रहा, ईसाई धर्म की स्थिति डाँवाडोल रही। उसने ईसाइयों पर अत्याचार नहीं किये; किन्तु उसे उनसे घृणा थी। उसने प्राचीन देवताओं की भेंट-पूजा को स्थापित रखा। उसकी मृत्यु (६५५ ई०) के बाद शीघ्र ही सारा द्वीप ईसाई हो गया। सैक्सन लोग पहले 'ओडिन' और 'थॉर' की पूजा किया करते थे। उनकी पूजनविधि और विश्वास रणप्रेमियों के से थे। वे घोड़ों आदि पशुओं का बलिदान करते और धर्मार्थ खूब मदिरा पीते और भोज देते थे। उनका धर्म भयमूलक न था। उनके देवता भी सुख-दुख के साथी थे। उनका धर्म उनके जीवन की कर्कशता का प्रतिबिम्ब था, किन्तु वे वीरता, उदारता, स्वामिभक्ति, वफादारी, और सत्यता का बड़ा मान करते थे।

लेकिन शीघ्र ही एक और नयी आपत्ति उपस्थित हो गयी। सैक्सन लोगों में कुछ को रोमन तथा कुछ को कैल्टिक मिशनरियों ने धर्म-परिवर्तन के लिए प्रेरित किया था। यद्यपि दोनों का उद्देश्य एक ही था, किन्तु वे आपस में सहमत न थे। एक धर्म होते हुए भी ब्रिटेन इस धर्म-परिवर्तन से दो भागों में विभाजित हो गया। यह आपत्ति कुछ नयी नहीं थी। आगस्टिन के कहने पर भी ब्रिटिश पादरियों ने रोमन प्रणाली को ग्रहण नहीं किया। ब्रिटेन-वासी तब तक अपने रीति रिवाजों का पालन करते रहे; जब तक सैक्सन लोग रोमन प्रणाली का अनुकरण करते रहे। किन्तु जब स्वयम् सैक्सनों में परस्पर विरोध हुआ तो स्थिति आशंकाजनक हो गयी। अतएव ६६४ ई० में ह्विटबी में विरोधों का प्रतिकार करने के लिए एक धर्म-सभा हुई (६६४ ई०)।

**ह्विटबी की धर्म-सभा**—कैल्टिक रीति का पक्षपाती कोलमन था, जो आयोना से आया था और नोर्थम्ब्रिया में ऐडन का उत्तराधिकारी हुआ। रोमन रीति का समर्थक विल्फ्रेड था। विल्फ्रेड की शिक्षा ऐडन के मठ में हुई थी। किन्तु उसने रोम की यात्रा की थी। दोनों दलों के प्रतिवाद का निर्णय करने के लिए नौर्थम्ब्रिया के राजा ऑस्वी ने अध्यक्षता की। मतभेद अधिक न था। राजा का निर्णय विल्फ्रेड के अनुकूल हुआ। कौलम्बन उपदेशक स्कॉटलैंड चले आये जहाँ ७१० ई० में राजा नैक्टन ने रोमन प्रणाली को अंगीकार कर लिया था। शीघ्र ही डालरियाडा के स्कौटों ने उसका नेतृत्व स्वीकार किया। स्ट्रैथक्लाइड के ब्रिटेनों ने भी उनका अनुसरण किया।

यद्यपि समस्त इंग्लैंड रोमन चर्च के प्रभुत्व में था, फिर भी वहाँ के बहुत बड़े भाग के धर्मपरिवर्तन के लिए कोलम्बस चर्च के प्रचार कार्य को न भूलना चाहिए। कैल्टिक प्रणाली का अनुसरण करने से इंग्लैंड का पच्छिमी योरप और रोम की कला और ज्ञान से सम्बन्ध छूट जाता। विल्फ्रेड के शब्दों में रोम का विरोध करना संसार का विरोध करना था रोमन रीति ग्रहण कर लेने से इंग्लैंड एक बार फिर पच्छिमी योरप के सांस्कृतिक सम्पर्क में आ गया।

**टार्सस का थियोडोर**—ऑस्वी के निर्णय के फलों को परिपक्व होने में विलम्ब न लगा। केन्टरबरी के आर्कबिशप का पद खाली होने पर एक अँगरेज रोम भेजा गया। वहाँ उसकी मृत्यु हो गयी। पोप ने टार्सस के थियोडोर नामक एक ग्रीक को उस पद के लिए चुना। थियोडोर ने चर्च को संगठित करने का प्रयत्न किया। कैल्टिक विधान के कारण चर्च की शक्ति विच्छृङ्खल होकर नायकों के हाथ में आ गयी थी। आयर्लैंड इसका प्रमाण था। थियोडोर ने धर्माधिकारियों को श्रेणी-बद्ध करके और पोप को सबका प्रधान बना कर संगठन में सफलता प्राप्त की। इसके अनुसार पैरिश में प्रीस्ट, उनके ऊपर डायोसीस में बिशप बिशपों के ऊपर प्रान्तों का आर्कबिशप और आर्कबिशपों पर पोप का आधिपत्य था।

**जातीय संगठन—चर्च की नीति और आचरण का प्रभाव**—इसका एक परिणाम तो यह हुआ कि चर्च के सगठन के कारण देश में सार्वजनिक संगठन का आदर्श प्रकट हो गया। धार्मिक एकता के साथ-साथ, राजनीतिक एकता का उदय हुआ। दूसरा परिणाम यह हुआ कि अँगरेज मिशनरी बाहर जाने लगे। चर्च ने एकता के साथ शान्ति का आदर्श भी उपस्थित किया। सैक्सन लोगों में वीरता ही प्रधान ध्येय था। पशु बल के सामने न्याय का आदर न था। व्यक्तिगत प्रतिशोध उनके न्याय का आधार था। अभियुक्त को उपस्थित करने का भार उसके सम्बन्धियों पर था। अपने को निरपराध सिद्ध करने के लिए उसे अन्य लोगों का आश्रय लेना पड़ता था, जो उसकी सत्यता की शपथ खा सके। नहीं तो उसे उबलते जल मे हाथ देकर, अथवा गरम लोहा पकड कर अपने सत्य की परीक्षा देनी पडती थी। यदि तीन दिन मे घाव भरता तो वह अपराधी मान लिया जाता था। अपराध की गम्भीरता एवम् हानि उठाने वाले की हैसियत के अनुसार दंड निश्चित किया जाता था। अस्तु, न्याय का सैक्सन-स्वरूप अच्छा न था। व्यक्तिगत-प्रतिशोध का नियम अपराधों को कम करने के बदले बढ़ाना था। इस विधान मे राज्य के प्रति अपराध की कल्पना के लिए स्थान न था।

किन्तु अपराधों के प्रति चर्च का दृष्टिकोण ऊँचा था। वे केवल अपराध को अपराध ही नहीं, वरन् पाप भी मानते थे। थियोडोर का मत था कि अपराधों के लिए जुर्माने का दंड पर्याप्त नहीं, प्रायश्चित द्वारा इनका प्रतिशोध होना चाहिए। प्रायश्चितों मे व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, प्रार्थना आदि मुख्य थे। अपराधी जब तक प्रायश्चित न कर लेता, तब तक चर्च उसका बहिष्कार किये रहता और उसकी रक्षा का भार न लेता था। इस प्रायश्चित-प्रणाली से अपराधों और पापों में कमी ही नहीं हुई, वरन् इस भावना का उदय हुआ कि अपराधी समस्त जनता का अमंगलकारी है। यह न्याय का कहीं श्रेष्ठ स्वरूप है। चर्च अपराधियों और पापियों को दंड देता था। किन्तु उपदेश अथवा दंड देना ही पर्याप्त न था। लोगों को विधान द्वारा ही नहीं, वरन् आदर्श द्वारा पथ-प्रदर्शन करना भी चर्च का कर्तव्य था। यह काम महन्तों और पादरियों ने प्रशसनीय रूप से किया। उनका सरल शान्तिमय जीवन लोगों के लिए आदर्श था।

**चर्च और शिक्षा-प्रचार**—इग्लैंड में शिक्षा के प्रारम्भ का श्रेय भी चर्च को ही है। ह्विटबी की एबी ने केडमन को जो पहला अँगरेज कवि हुआ, शरण दी। उसकी धार्मिक कविताएँ उस समय ईश्वर-प्रेरित समझी जाती थीं। बीड एक दूसरा महान् शिक्षक था। जैरो में स्थापित उसके स्कूल में ६०० भिक्षुओं ने उससे शिक्षा ग्रहण की। वह इंग्लैंड का पहला इतिहासकार है। उस युग की जानकारी उसी के लेखो से प्राप्त हुई है।

नीतिज्ञ डन्स्टन—डन्स्टन कैन्टरबरी का आर्कबिशप था। किन्तु उसकी सेवाएँ राजनीति के क्षेत्र में हुई हैं। वह दो राजाओं का सलाहकार और तीसरे का मुख्य कार्यकर्ता हुआ। दोनों क्षेत्रों में महान् पद ग्रहण करने वालों में वह प्रथम था। उसके समय से हैनरी अष्टम के राज्यकाल तक प्रधान मन्त्री प्रायः धर्माचार्यों में से ही होते रहे। अपनी निस्पृहता तथा योग्यता के कारण वे इस पद के अधिकारी थे। उन्होंने इंग्लैंड के लिए बहुत-कुछ किया। उनसे यह भय न था कि वे सिंहासन छीनने का प्रयत्न करेंगे या अपना वंश चलावेंगे। चर्च ने इंग्लैंड को राष्ट्रीय एकता प्रदान की। शान्ति धर्म, न्याय, शिक्षा और नीति की भावनाओं के विकास का श्रेय भी चर्च को ही है।

---

# अध्याय ४

## केन्ट, नौर्थम्ब्रिया, मर्सिया और वेसेक्स आदि के प्रारम्भिक राज्य

सप्त-राज्य काल—सैक्सन-शासन-काल में सात राज्य थे—नौर्थम्ब्रिया, वेसेक्स, मर्सिया, केन्ट, ससेक्स, एसेक्स और पूरबी एंग्लिया। इन राज्यों के प्रबल होते हुए भी कभी एक और कभी दूसरा सबों पर अपना आधिपत्य कायम कर लेता था। ऐसा मुख्याधिपति "ब्रेट वाल्डा" कहलाता था। इन सब राज्यों का संगठन पश्चिमी सैक्सन राजा एग्बर्ट ( ८०२ ई० ) के समय में हुआ था।

केन्ट—जिस प्रकार केन्ट प्रदेश ने ऐथेलबर्ट के शासन में सब से पहले ईसाई धर्म स्वीकार किया था, उसी प्रकार प्रभुत्व-स्थापन में भी वह प्रथम था। ऐथेलबर्ट का अधिकार उत्तर में हम्बर तक पहुँच गया था। यद्यपि उसने सब राज्यों पर विजय नहीं प्राप्त की थी, किन्तु लोग उसे इंग्लैंड का प्रधान राजा समझते थे और उसके झंडे के नीचे लडने के लिए जमा हो जाते थे। किन्तु कैन्ट का प्रभुत्व थोड़े ही समय तक रहा। ऐथेलबर्ट की मृत्यु के साथ ही सन् ६१६ ई० में उसका ह्रास होगया। इसके बाद क्रमशः नौर्थम्ब्रिया, मर्सिया और वेसेक्स के राजाओं का प्रभुत्व रहा। वेल्श प्रान्तों के संसर्ग के कारण इनको अपना सैनिक बल बढाना आवश्यक था।

नौर्थम्ब्रिया ( ६१६-८५ ई० )—जिस प्रकार ईसाई धर्म कैन्ट से नौर्थम्ब्रिया की ओर बढा, उसी प्रकार इंग्लैंड का प्रभुत्व भी। एथेलफ्रिथ ने ६१३ ई० में चैस्टर का युद्ध जीता था। महान होते हुए भी वह अपने पिता के एक शत्रु से हार गया और मारा गया। यह डीरा का पदच्युत शासक एडविन था।

ब्रेटवाल्डा एडविन एथेलफ्रिथ से भी अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुआ। केन्ट की एथिलबर्गा के साथ उसके विवाह और उसके ईसाई होने का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं। धर्म परिवर्तन से दस वर्ष पहले ही उसने महान शक्ति संगठित

कर चतुर्दिक् देश विजय करना आरम्भ किया। उसने पिक्टों को स्काटलैंड से भगाकर ऐडम्बरा का किला बनाया। वेल्शों को पहाड़ों में भगा दिया। आइरिश सागर में दो टापुओं पर अपना अधिकार कायम कर दिया। मर्सिया और ईस्ट
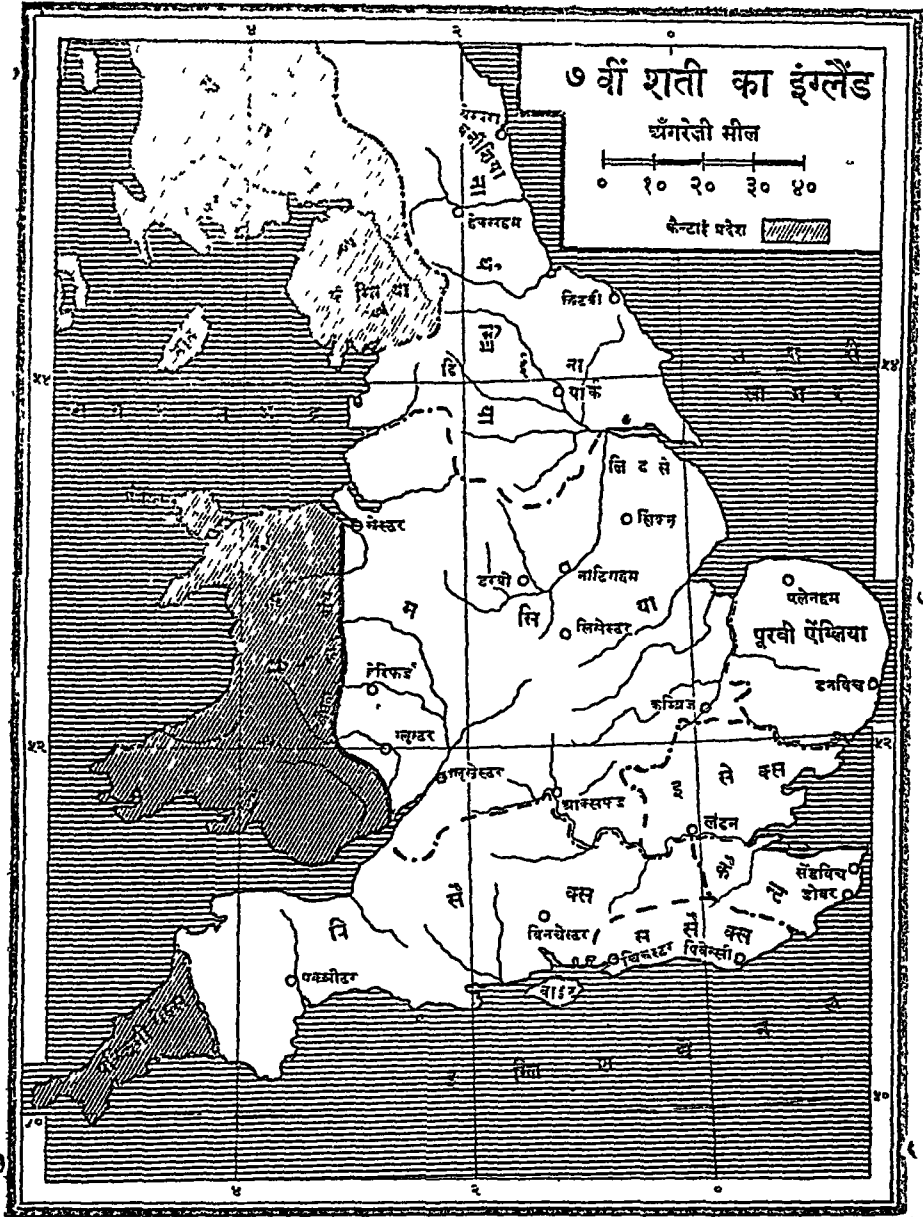
ऐंग्लिया ने उसका प्रभुत्व स्वीकार किया। विवाह के साथ कैन्ट से उसकी सन्धि हो गयी। इसके बाद वेसेक्स को पराजित कर वह सम्राट् बन बैठा। किन्तु युद्ध छोड़ कर ईसाई धर्म की शान्ति नीति स्वीकार कर लेने के कारण उसके शत्रु उसे

अशक्त समझने लगे। मर्सिया के विधर्मी राजा पैण्डा ने सन् ६३३ ई० में हीथफील्ड में एडविन की सेना को पराजित किया। एडविन युद्ध में मारा गया।

मर्सिया का उत्थान—अब नौर्थम्ब्रिया और मर्सिया का युद्ध आरम्भ हुआ, जिसमें मर्सिया की विजय हुई। हीथफील्ड के युद्ध के बाद पैण्डा का प्रभुत्व स्थापित हो गया। नौर्थम्ब्रिया के ओस्वी ने बनीसिया और डीरा के दो विरोधी घरानों को एक कर के पैण्डा को पराजित किया। किन्तु पैण्डा की मृत्यु के तीन वर्ष बाद उसके पुत्र ने एक बार फिर नौर्थम्ब्रिया के प्रभुत्व से अपने को मुक्त किया, और औस्वी उसे दबा न सका। संयोगवश नैक्टन्समियर के युद्ध में (६८५ ई०) एगफ्रिथ और उसकी सेना को पिक्टों ने काट डाला, जिससे नौर्थम्ब्रिया की शक्ति का नाश हो गया।

इसके बाद सौ वर्ष से अधिक समय तक मर्सिया का प्रभुत्व रहा। वेसेक्स से अनेक युद्ध होने पर भी उसका आधिपत्य स्थिर रहा। एक समय वेसेक्स के राजा आइनी ने भयंकर शक्ति संगठित कर ली थी। किन्तु जब वह रोम की तीर्थयात्रा करने गया तो मर्सिया के राजा एथेलबाल्ड ने वेसेक्स पर आधिपत्य कर लिया। बीस वर्ष बाद पच्छिमी सैक्सनी ने बर्फोर्ड में एथेलबाल्ड को हरा दिया। एथेलबाल्ड के उत्तराधिकारी ओफ़ा के राज्यकाल में मर्सिया की शक्ति उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी। उसने केन्ट और एसेक्स को पराजित कर मर्सिया की सीमा टेम्स नदी तक पहुँचा दी। वेल्शों को रोकने के लिए उसने एक बड़ी दीवार बनवायी जिसे "ओफा की दीवार" कहते हैं। उस समय सबसे शक्तिशाली सम्राट् शार्लमाँ के साथ उसका समानता का व्यवहार था, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद मर्सिया की शक्ति का ह्रास हो गया।

वेसेक्स का उत्थान—अब की बार वेसेक्स का उदय हुआ। यह नौर्थम्ब्रिया और मर्सिया के उदय से अधिक स्थायी था। डियोरम की विजय तथा आइनी द्वारा समर सेट, ससेक्स और कैन्ट की विजय के बाद पच्छिमी सैक्सनों में इग्लैंड के आधिपत्य की आशा हुई। किन्तु दोनों बार नौर्थम्ब्रिया और मर्सिया के उत्थान के कारण उन्हें अवसर न मिला। औफा की मृत्यु के बाद उन्हे यह सुयोग प्राप्त हुआ। एग्बर्ट ने पहले भी एक बार पच्छिमी सैक्सन सिंहासन प्राप्त करने का प्रयत्न किया था, किन्तु उसे भागकर शार्लमाँ की शरण लेनी पडी। सन् ८०२ में पच्छिम सैक्सनों ने उसे राजमुकुट भेंट किया। उसकी शक्ति का विकास वेग से हुआ। मर्सिया को पराजित कर, केन्ट, एसेक्स, ससेक्स प्रान्तों पर अधिकार करके और वैल्श, नौर्थम्ब्रिया, मर्सिया तथा पूर्वी ऐंग्लिया आदि पर अपनी धाक जमा कर वह समस्त देश का शासक बन बैठा।

एग्बर्ट की मृत्यु के बाद हम वेसेक्स के पतन की कल्पना कर सकते हैं। उसका राज्य उसके पुत्रों में विभाजित हो गया। इससे यह आशंका हो सकती थी कि वेसेक्स का भी पतन अन्य राज्यों की तरह हो जायगा। किन्तु अँगरेज़ी

राजनीति में एक नयी परिस्थिति पैदा हुई जिसने एकता की प्रबल प्रेरणा की। यह परिस्थिति इंग्लैंड पर डेन लोगों के आक्रमण ने पैदा कर दी थी।

---

## अध्याय ५

## एल्फ्रेड और डेन

राजा एल्फ्रेड और डेनों का स्मरण प्रायः साथ-साथ किया जाता है। किन्तु डेनों के आक्रमण एल्फ्रेड से कहीं पहले प्रारम्भ हो गये थे। एल्फ्रेड ने उन्हें कुछ समय के लिए रोक दिया, किन्तु वह उनके उत्पातों का अन्त न कर सका। उसके पुत्र और पौत्रों को उसका काम जारी रखना पड़ा। इंग्लैंड का दो सौ वर्ष का इतिहास डेनों की लूट, युद्ध, जय, पराजय से भरा पड़ा है। आख़िरकार जब केन्यूट इंग्लैंड का राजा हुआ, तब डेनों की सत्ता चरम सीमा पर पहुँच गयी। यद्यपि इन दो सौ वर्ष के इतिहास में एल्फ्रेड का राज्यकाल एक छोटा सा हिस्सा है, किन्तु वह बड़े ही महत्व का है। एल्फ्रेड ही वह पहला अँगरेजी शासक था जिसका अधिकाश जीवन शत्रुओं से युद्ध करने एवम् अपने देश की सेवा में बीता। उसने राजत्व को भोग विलास और ऐश्वर्य का साधन न समझ कर धर्म और कर्त्तव्य के पालन का अवसर समझा। वह केवल राजा न होकर प्रजा का पिता और सेवक था।

एल्फ्रेड को इस बात का अनुभव हो गया था कि डेनों को पराजित किये बिना शान्ति स्थापित करना सम्भव नहीं। इसलिए उसने सबसे पहले उन्हीं से निपटना चाहा।

डेनों का आक्रमण—डेन लोग केवल डेनमार्क से ही नहीं, बल्कि उत्तरी जर्मनी, स्केन्डिनेविया तथा उत्तरी सागर के तटवर्ती प्रदेशों से भी आये थे। उन्होंने उत्तरी फ्रान्स पर भी आक्रमण किया था। दक्खिन में इटली, कुस्तुनतुनियाँ और आईसलैंड तथा ग्रीनलैंड पर भी उन्होंने छापे मारे थे। वे कोलम्बस से शताब्दियों पहले अमेरिका के तट पर पहुंच गये थे। डेन आक्रमण में भी हम सैक्सन-आक्रमण के तीनों रूप देख सकते हैं। लूट-पाट करना, विजित प्रदेशों में बस जाना और अन्त में अपना राज्य स्थापित करना—यही तीनों घटनाएँ इस बार भी हुईं।

सन् ७८९ ई० मे पहला डेन आक्रमण हुआ। विधर्मी डेनों ने मठों को ध्वंस कर खूब लूट-मार की। सन् ८२८ ई० मे एग्बर्ट हार गया, परन्तु ८३७ ई० में उसने पुनः विजय प्राप्त कर ली। किन्तु एक बार की विजय से क्या हो सकता था? तीन वर्ष बाद आक्रमणकारियों के नये दल लन्दन और केन्टरबरी तक आ गये। नवीं शताब्दी के मध्य तक डेन आक्रमण के दूसरे रूप का आरम्भ हो गया।

आक्रमण के बाद लौटने के बजाय वे वहीं बसने लगे। फिर तो ऐंग्लिया, नौर्थम्ब्रिया और मर्सिया की ओर सेनाओं पर सेनाएँ बढ़ने लगीं। वेसेक्स राज्य के पतन के बाद ये इंग्लैंड पर पूरा आधिपत्य कर लेने को अग्रसर थे। राजा एल्फ्रेड को इसी कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़ा था।

अपने भाई एल्फ्रेड की सहायता से राजा एथेलरेड ने डेनों को हटाने का प्रयत्न किया, किन्तु यह कार्य सरल न था। डेन बड़े साहसी लड़ाके थे। उनके ऊपर किसी प्रकार का उत्तरदायित्व न था नदियों में होकर वे अपने जहाज़ों को देश के भीतर घुसा ले जाते थे और फिर घोड़ों पर चढ़ कर लूट-पाट आरम्भ कर देते थे। उनका सारा उद्देश्य लूट-मार करना होता था, इसीलिए वे युद्ध के अवसरों को बचाते रहते थे। आमने-सामने के युद्ध में डेन लोगों का पाँच फ़ीट लम्बा फ़रसा बड़े भयानक अस्त्र का काम देता था। हारते समय वे और भी संघातक हो जाते थे। जब ओसबर्ट और एला ने उन्हें यार्क में खदेड़ दिया (८६६ ई०) तो वे घरों में एकत्र हो गये और उन्होंने दोनों राजाओं को मार डाला। एथेलरेड और एल्फ्रेड ने केनेट और टेम्स के बीच में स्थित डेन शिविरों पर छापा मारना चाहा, परन्तु उनका प्रयत्न असफल रहा। इन विजयों से साहस पाकर खुले युद्ध में भी डेन लोग लाभ में रहे। यद्यपि ऐशडाउन में एल्फ्रेड ने उन पर विजय प्राप्त की, किन्तु उस युद्ध में बहुत अँगरेज़ सैनिक मारे गये। परिणाम यह हुआ कि बेसिंग में भी डेनों की विजय हुई और मार्डेन में एथेलरेड मारा गया। उसका पुत्र रहते हुए भी परिस्थिति सकटपूर्ण होने के कारण, एल्फ्रेड को राजा बनाया गया। एल्फ्रेड ने विल्टन मे भाग्य-परीक्षा की। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। यद्यपि वह असफल रहा; किन्तु उसके आर्थिक साहस और पराक्रम को देखकर डेन पूरब और उत्तर की ओर हट गये, जिससे एल्फ्रेड को साँस लेने का अवकाश मिला।

सन् ८७७ ई० में जाड़े के दिनो में गुथरम और हब्बा ने आक्रमण किया। एल्फ्रेड तैयार न हो सका और उसने एथेलनी द्वीप में शरण ली। यद्यपि समय बड़े संकट का था, किन्तु वह निराश न हुआ। सेना संगठन कर उसने डेनों को खदेड़ा और चारों ओर से उनके दुर्गों को ऐसा घेरा कि भूख से व्याकुल होकर उन्होंने हथियार डाल दिये। किन्तु एल्फ्रेड ने उस समय डेनो को इग्लैंड से बाहर निकाल देना कठिन समझा। इसके अलावा एल्फ्रेड को युद्ध से प्रेम न था। विजयाकांक्षा से अधिक उसे प्रजा की शान्ति का ध्यान था। उसने डेनों को शान्ति के साथ उत्तरी और पूरबी सीमाओ पर बस जाने की आज्ञा दे दी।

वेडमोर की सन्धि—गुथरम के साथ शान्ति की सन्धि का प्रस्ताव हुआ। पहली शर्त यह थी कि गुथरम और उसके साथी ईसाई धर्म स्वीकार कर लें। सजातीय होने के कारण डेनों और अँगरेज़ों में, सैक्सनो और ब्रिटनों जैसा विरोध रहने की सम्भावना न थी। उनकी भाषा में भी साम्य था। वेडमोर की सन्धि ने धार्मिक

भेद मिटा दिया जिससे झगडे की एक गहरी जड़ कट गयी। डेनों और अँगरेजों के बीच में वाट्लिंग स्ट्रीट सीमा निश्चित हुई। कुछ वर्ष बाद वह टेम्स की एस्टुअरी तक कर दी गयी जिससे लन्दन अँगरेजी हद में रह गया। उत्तर और पूरब के

प्रान्त गुथरम को मिले और दक्खिन और पच्छिम के एल्फ्रेड के हाथ मे रहे। डेनों के साथ अँगरेज इसी कारण घृणा करते थे कि वे लूट-मार करते थे। लूट-मार बन्द हो जाने से वैमनस्य के बदले मित्रता का भाव पैदा होने लगा।

गुथरम से मुक्ति पाने पर भी नये आक्रमणकारियों की आशंका रहती थी। इसलिए एल्फ्रेड ने रक्षा के लिए सेना का नया संगठन किया जिसमें थेनों की संख्या बढ़ा दी गयी।* उसने फिर्ड के भी दल बना दिये ताकि बारी-बारी से सेना में रहा करें जिससे उनका एक दल बराबर सेवा में रहे। उसने जगह-जगह पर किले बनवा दिये। वह जानता था कि इंग्लैंड की रक्षा का प्रधान साधन एक जल सेना होगी। डेनों को परास्त करने के लिए उनसे समुद्र पर युद्ध करना अनिवार्य था। उसने डेनों के जहाजों से दुगुने बड़े और तेज चलने वाले जहाज़ बनवाये। एल्फ्रेड की सतर्कता और कौशल का महत्व उसके शासन के अन्त में मालूम हुआ जब डेनों ने पुनः आक्रमण किया और वे बारम्बार परास्त हुए। आखिरकार सन् ८६१ में डेन लोग लाचार होकर नारमंडी-निवासी अपने सजातियों से जा मिले। एल्फ्रेड को फिर उन्हें छेड़ने का साहस न हुआ।

एल्फ्रेड की नीति और उसका शासन सराहनीय है। शिक्षा के विकास की ओर भी उसने ध्यान दिया। बाहर से विद्वानों को बुलवाकर उसने उन्हें आदर-पूर्वक रखा। थेनों के लड़कों की शिक्षा के लिए एक स्कूल खोला जो पहला सार्वजनिक स्कूल कहा जा सकता है। लैटिन से अनुवाद करने अथवा करवाने के कारण वह अँगरेज़ी गद्य का निर्माता उसी प्रकार कहलाता है, जिस प्रकार कैडमन पद्य का। उसने चर्चों की ओर भी ध्यान दिया। डेनों द्वारा ध्वस्त चर्चों और मठों के पुनर्निर्माण के लिए अपनी आय से रुपया दिया। एथेलनी में मंकों के रहने के लिए उसने एक एबी बनवायी। और शाफ्ट्सबरी में ननों के लिए एक मठ बनवाया। उसकी पुत्री इस संघ की अधिष्ठात्री थी। पादरियों में अज्ञान निवारण का श्रेय भी एल्फ्रेड के शिक्षा-प्रेम को है। वह योद्धा, नीतिज्ञ था, विद्वान था, सुधारक था और सभी दृष्टियों से महान था। इस पर भी उसका जीवन बड़ा सरल था।

---

# अध्याय ६

## सैक्सन स्वर्ण-युग

सन् ६०१ ई० में एल्फ्रेड की मृत्यु हो गयी। एथेलरेड द्वितीय सन् ६७६ में गद्दी पर बैठा। उसके शासन-काल में एल्फ्रेड के सत्कृत्यों का विनाश हुआ।

---

*इंग्लैण्ड में उस समय दो प्रकार के सैनिक दल थे। एक तो 'थेन' लोग थे जिनका मुख्य काम राजा की सेवा करना और उसके लिए लड़ना था। यही उनका व्यवसाय था। दूसरे दल में साधारण लोग थे जो समय समय पर विशेष काम के लिए जमा कर लिए जाते और कुछ दिनों के बाद अपने-अपने काम पर वापिस चले जाते थे। लड़ना इनका गौण काम था।

इन दोनों के बीच के युग को हम 'शक्तिशाली राजाओं की तीन पीढियों' का शासन-काल कह सकते हैं। एल्फ्रेड की तीनों पीढ़ियों के उत्तराधिकारियों ने उसके काम को जारी रक्खा। उन्होंने डेनों के नाश का प्रयत्न नहीं किया; किन्तु वे उन्हें अपने शासन में ले आये। दोनों जातियों के मिलने से एक बड़ी शक्ति पैदा हो गयी। इँग्लैंड में फिर वेसेक्स घराने का प्रभुत्व हो गया। इस युग के अन्त की ओर चर्च की राजनीतिक शक्ति बढ गयी। इन्हीं आधारों को लेकर एल्फ्रेड के उत्तराधिकारियों के विशृंखल युग का इतिहास संगठित किया जा सकता है।

एडवर्ड ज्येष्ठ—( ९०१-२५ ई० ) एडवर्ड ज्येष्ठ एक वीर योद्धा था। 'पश्चिमी सैक्सनों के राजा' के स्थान पर वह 'अँगरेजों' का राजा कहलाने लगा। उसने डेनलॉ प्रान्त को डेनों से छुड़ाने का प्रयत्न किया। उसकी वीर भगिनी एथेलफ्लेडा उसके नाम से मध्य देशों पर शासन करती थी। उसकी सहायता से पहले उसने सीमा पर फौजी थाने कायम किये, फिर एक-एक कर डेन नगरों को परास्त किया। ९१८ ई० में बहन की मृत्यु के बाद भी एडवर्ड ने अपना काम जारी रक्खा। अन्त में सन् ९२५ ई० में समस्त उत्तरी ब्रिटेन और स्काटलैंड के शासकों ने उससे सन्धि का प्रस्ताव किया और एडवर्ड 'पिता और प्रभु' घोषित किया गया।

ऐथेलस्टन—( ९२५-४० ई० ) एडवर्ड के पुत्र एथेल्स्टन के समय में यह स्पष्ट हो गया कि अन्य शासकों की सन्धि नाम मात्र की थी। उसने अपनी बहन का विवाह नार्थम्ब्रिया के डेन राजा सिगट्रिक से किया। किन्तु डेन राजा की मृत्यु के बाद उसके राज्य को हड़प लेने में एथेल्स्टन को तनिक भी संकोच न हुआ। इस घटना से उत्तरी शासकों में खलबली मच गयी। स्काटलैंड के राजा कौन्स्टेन्टाइन की सहायता पाकर डेनों ने एथेल्स्टन के विरुद्ध एक संघ योजना की। एडवर्ड के साथ सधि करने वाले सभी राजा एथेल्स्टन के विरुद्ध युद्ध को प्रस्तुत हो गये। किन्तु एथेल्स्टन ने सब को ब्रूननबर्ग के युद्ध में पराजित किया ( ९३७ ई० )।

एडमंड (९४०-४६ ई०)—एथेल्स्टन के भाई एडमंड को, जो सन् ९४० ई० में गद्दी पर बैठा पुनः उत्तरी शक्तियों का सामना करना पड़ा। उसने विद्रोहियों को और उनके सहायक राजाओं को भी दंड दिया। ६ वर्ष के शासन के बाद एक विद्रोही ने एडमंड का वध कर दिया। उसके छोटे भाई एडरेड ने ९४६ से ९५५ ई० तक राज्य किया। इस विषय में तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं। एक यह कि एडरेड को मुकुट भेंट करने वाले वाइटेन सभा में केवल अँगरेज ही नहीं वरन् डेन तथा वेल्श सभासद भी थे। यह घटना आगामी एकता को घोषित करती है। दूसरे विद्रोह दमन के बाद उसने नौर्थम्ब्रिया को, शायरों के स्थान पर, दो बड़ी-बड़ी जागीरों ( Earldoms )

में विभाजित कर दिया। इस नीति का फल आगे चलकर हानिकारक हुआ। तीसरे ऐडरेड का निकटतम मित्र डन्स्टन नामक एक पादरी था।

डन्स्टन—डन्स्टन समरसेट के एक थेन का लड़का था। उसकी शिक्षा ग्लास्टनबरी के एबी में हुई थी। यह चर्च के काम में प्रवेश न करके, राजा एथेल्स्टन के दरबार में अपना भाग्य जाँचने आया था। अन्य दरबारी उसकी शिक्षा और कौशल के कारण उससे ईर्ष्या रखते थे। एक बार उन्होंने उसे घोड़े पर से दलदल में गिरा दिया। घृणा भाव से डन्स्टन ने दरबार छोड़ दिया और पादरी हो गया। ऐथल्स्टन ने उसे पुनः बुला लिया। एडमंड ने उसे एक बार बरखास्त कर दिया, किन्तु फिर बुलाकर ग्लास्टनबरी का एबट बना दिया। एडरेड ने उसे अपना मुख्य सलाहकार बनाया। एडरेड का उत्तराधिकारी एडवी इस दल के हाथ पड़ गया था जो मंकों से घृणा करता था। उसका डन्स्टन से विरोध हो गया और उसने उसे निर्वासित कर दिया। मंक लोग राजा के विरुद्ध हो गये। वर्जित पीढ़ी में विवाह के कारण यह विरोध और भी बढ़ गया। फल यह हुआ कि ऐडवी के स्थान पर उसका भाई ऐडगर राजा बनाया गया। इंग्लैंड विभाजित होता दिखायी दिया, किन्तु एडवी की मृत्यु से वह आशंका टल गयी। ऐडगर राजा बना रहा।

ऐडगर—( ९५९-७५ ई० ) ऐडगर शान्तिप्रिय शासक कहा जाता है। उसके शासन की शान्ति पतझड़ के पूर्वकाल की शान्ति थी, जिसका बसन्त एल्फ्रेड-कालीन सैक्सन-वैभव में और ग्रीष्म एडवर्ड और ऐथेल्स्टन के युग में था। उसने डन्स्टन को बुला कर अपना प्रधान सलाहकार बनाया और फिर वह केन्टरबरी का आर्कबिशप बना दिया गया। उस समय युरोप में मठों का प्रत्युत्थान हो रहा था। बेनेडिक्टाइन मकों की कठोर जीवनचर्या और नियम आदर्श माने जाते थे। गृहस्थ पादरी अयोग्य ठहराये गये। पादरियों का अविवाहित रहना आवश्यक समझा गया। अतः मंकों को ऊँचे स्थान दिये गये। इस परिवर्तन का परिणाम यद्यपि कुछ अंशों में अच्छा रहा, तथापि इसने पारस्परिक विरोध पैदा कर दिया। डन्स्टन का मुख्य ध्येय केवल यही था कि धर्माधिकारी पादरी अधिक शिक्षित हों। वह स्वयम् उदार था, किन्तु चर्च की नीति का पालन करने के लिए मजबूर था।

इसके अतिरिक्त डन्स्टन एक महान् नीतिज्ञ भी था। डेनों के साथ ऐडगर की मित्रता की नीति उसकी ही प्रेरणा का परिणाम थी। ऐडगर से राज्यकाल के बहुत कुछ सुधारों का श्रेय डन्स्टन को ही है। फिर भी ऐडगर स्वयम् एक योग्य शासक था। उसने प्रान्तों का दौरा किया और क़ानून का सुधार किया। उसने स्थानीय निवासियों को उनके क्षेत्रों के दुष्कृत्यों का जिम्मेवार बनाया। जल-सेना का भी विस्तार उसने किया। इसमें सन्देह नहीं कि वह एक समृद्ध और शक्तिशाली सम्राट् था।

---

# अध्याय ७

## सैक्सन-पतन

( सन् ९७५-१०६६ ई० )

ऐगबर्ट से ऐडगर तक का समय सैक्सन इतिहास का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। इस समय राजा प्रजा दोनों ही बलशाली थे। शत्रु और विद्रोहियों के दमन के साथ नीति और न्याय का स्थापन तथा शिक्षा का विकास हुआ। किन्तु अगले ९० वर्षों में ऐडवर्ड शहीद के शासन से लेकर हैरल्ड की मृत्यु तक सैक्सन इँग्लैंड का भारी पतन हुआ। एक के बाद दूसरी आपत्ति उपस्थित होती गयी। डेन आक्रमणों का अन्त डेन राज्य की स्थापना में और फिर नार्मन हस्तक्षेप का अन्त नार्मन-विजय में हुआ।

इस प्रकार इस युग को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। किन्तु समस्त युग में हम अनेक प्रधान व्यक्तियों में प्राचीन सैक्सन वीरत्व तथा आत्म-विश्वास का ह्रास तथा असन्तोष और दग़ाबाजी आदि कुभावों की वृद्धि देखते हैं। इनके कारण शत्रु को देश पर आक्रमण करने और विजय पाने का अवसर मिला। ऐडमंड आयरनसाइड तथा हैरल्ड आदि इसके उज्ज्वल अपवाद हैं। किन्तु नियति की निर्दयता ने उन्हें अधिक काम करने का अवसर ही न दिया। ऐथेलरेड तथा ऐडवर्ड दि कनफैसर को अपनी अयोग्यता का फल भोगने का पूरा मौका मिल गया।

( अ ) डेन विजय ( ९७५–१०४२ ई० ) ऐथेलरेड असावधान—सैक्सन पतन का इतिहास एक अमंगलसूचक हत्या से होता है। अपने पुत्र के लिए राज्य की कामना से एडवर्ड की विमाता ने उसका धोखे से वध करा दिया। इस दुष्कृत्य का प्रायश्चित्त इंग्लैंड को ३८ वर्ष तक करना पड़ा, क्योंकि ऐथेलरेड का राज्य इग्लैंड के इतिहास में सबसे अधिक शोचनीय रहा। ऐथेलरेड स्वार्थी, आलसी और दुर्बल प्रकृति का था। उसकी 'असावधान' उपाधि यथार्थ है। उसमें बड़े जागीरदारों को अधिकार में रखने की योग्यता न थी। राजा के अयोग्य होने के कारण बड़े-बड़े जागीर-दार आपस में ईर्ष्या द्वेश और कलह में फंस गये और कर्तव्य-विमुख हो गये। अयोग्य शासक और देशभक्ति-हीन कर्मचारियों को पाकर डेन इंग्लैंड पर फिर टूट पड़े। अब की बार उनका आक्रमण एल्फ्रेड के समय से अधिक भयानक था। अब वे लुटेरे न होकर सुशिक्षित सैनिक हो गये थे। इंग्लैंड के लिए युद्ध के अतिरिक्त और कोई चारा न था। डन्स्टन के उत्तराधिकारी सिगिरिक की सम्मति से ऐथेलरेड ने उनका सामना करने के बदले उन्हें धन दिया। धन डेनों को रिशवत देने के लिए प्रजा के ऊपर ''डेनगेल्ड' नामक कर लगा दिया। इस नीति से भावी अनर्थ की आशंका और

बढ़ गयी। एक बार धन लेकर डेन लोग बार बार आने लगे। सेना और कर्मचारियों के अनियन्त्रित तथा राजा के अशक्त होने के कारण इग्लैंड के बुरे दिन आ गये।

ऐथेलरेड ने अब विश्वासघात की शरण ली। अकस्मात् एक रात में जितने डेन उसे मिल सके, उसने सब का कत्ल करा दिया। "सेन्ट ब्राइस दिवस के हत्या-कांड" के कारण डेनमार्क की सारी शक्ति उस पर टूट पड़ी, क्योंकि आहतो में डेनमार्क के राजा की बहन और बहनोई भी थे। मर्सिया का अमीर ऐडरिक ऐथेलरेड का मित्र था। उसने अपनी बहन ऐडिथ के साथ उसका विवाह कर दिया। प्रारम्भ में उसने डेनों को परास्त करने मे साहस का परिचय दिया किन्तु वह विश्वास-घातियों का सरदार, निकला। शीघ्र ही वह अपने असली रूप मे प्रकट हुआ। १०१३ ई० में डेनमार्क के राजा स्वेन ने स्वयम् इग्लैंड पर चढ़ाई की। ऐडरिक ने विश्वासघात किया और वाइटेन सभा को स्वेन को मुकुट भेंट करने के लिये फुसलाया। केवल लन्दन ऐथेलरेड के पक्ष में रहा। ऐसे आपत्तिकाल में ऐथेलरेड नारमंडी भाग गया। वह स्वेन की मृत्यु के बाद लौटा किन्तु दो वर्ष बाद उसकी भी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद इग्लैंड के अधिकांश भाग पर डेन प्रभुत्व होने के कारण स्वेन के पुत्र केन्यूट को समस्त इग्लैंड ने राजा स्वीकार कर लिया। किन्तु लन्दन फिर भी दृढ़ रहा और उसने एल्फ्रेड के वंशधर ऐथेलरेड के पुत्र ऐडमंड को राजा चुना।

ऐडमंड ( १०१६-१७ ई० )—ऐडमंड अपने पिता की तरह न था। वीरता के कारण उसे लोग आयरनसाईड कहने लगे थे। उसने केन्यूट का दो बार सामना किया। डेनों को लन्दन से निकाल कर ब्रेन्टफोर्ड में परास्त किया। किन्तु असन्डन के युद्ध में जब ऐडमड की सारी शक्ति केन्यूट के विरुद्ध लगी हुई थी, ऐडरिक ने पुनः विश्वासघात किया और वह हार गया। कुछ महीने बाद ऐडमंड की सहसा मृत्यु हो गयी—सम्भवतः ऐडरिक ने उसकी हत्या करा दी। निराश होकर देश ने केन्यूट को राजा स्वीकार कर लिया। केन्यूट ने ऐडरिक का बध करा दिया।

केन्यूट ( १०१७-३५ ई० )—विदेशी होते हुए भी केन्यूट अच्छा राजा था। वेसेक्स के घराने के राजाओं के मुकाबले वह सब से अधिक शक्तिशाली था, क्योंकि इंग्लैंड के अलावा वह डेनमार्क का भी राजा था। उसने नारवे को भी अधीन किया। उसके राज्यकाल में इंग्लैंड में शान्ति रही। चर्च की केन्यूट ने बड़ी सहायता की, जिससे ईसाई धर्म का वैभव और प्रचार बढ गया। चर्च के पदाधिकारी उसने प्रायः अँगरेज ही रखे। इनसे वह शासन-कार्य मे भी सहायता लेता था। उसके समय में कोई विद्रोह भी न हुआ। व्यापार की उन्नति हुई, क्योंकि डेन लोग स्वयम् व्यापार के प्रेमी थे। उसने ऐथेलरेड की विधवा रानी से विवाह कर के प्राचीन राजकुल से अपना सम्बन्ध कर लिया। डेन और अँगरेजो को समान दृष्टि से देखता था। दोनों को समान पद देता था। केन्यूट को अपनी न

प्रजा पर इतना विश्वास था कि उसने अपनी समस्त सेना डेनमार्क वापस कर दी। केन्यूट का ज्येष्ठ पुत्र नारवे में उसका उत्तराधिकारी हुआ। शेष दो पुत्रों ने इंग्लैंड को बाँट लिया। उत्तर हैरल्ड के और वेसेक्स तथा दक्खिन हार्डी केन्यूट के अधिकार में रहा। हार्डी केन्यूट के डेनमार्क में रहने के कारण सारी शक्ति उसकी माँ ऐमा के हाथ में थी और समस्त राज्य हैरल्ड के अधिकार में था। किन्तु उसकी मृत्यु के बाद हार्डी केन्यूट राजा हुआ (१०४० ई०)। वह भी अधिक जीवित न रह सका और उसके साथ ही इंग्लैंड में डेन राज्य का अन्त हो गया।

(व) ऐडवर्ड दि कनफैसर और नारमन (१०४२-६६ ई०)—हार्डी केन्यूट की मृत्यु के बाद वाइटेन सभा के सामने एक नया राजा चुनने का प्रश्न उपस्थित हुआ। उन्होंने ऐथेलरेड के द्वितीय पुत्र ऐडवर्ड को चुना। उसके शासन-काल में इंग्लैंड में नारमन प्रभाव बढा। नारमन लोग भी डेनों की भाँति उत्तर के रहने वाले थे। उन्होंने इग्लैंड और उत्तरी फ्रान्स पर हमले किये। फ्रान्स के राजा चार्ल्स दि सिम्पिल ने एक भाग डेन नेता को दे दिया। इस प्रकार नारमंडी के ड्यूकों की परम्परा चली। एक बार फ्रान्स में बस कर उत्तरी लोग अपने डेन सजातियों से भिन्न हो गये। असभ्य और परुष-प्रकृति के होते हुए भी वे अन्य देशीय सभ्यता को शीघ्र अपना लेते थे। अतः फ्रेञ्च भाषा, रीति रिवाज आदि को ग्रहण कर वे मूल निवासियों के साथ रहने लगे। वहाँ से वे डेनों को ब्रिटेन पर आक्रमण करने में सहायता और हारने पर शरण देते रहते थे।

नारमडी के रिचर्ड प्रथम की पुत्री ऐमा के साथ ऐथेलरेड का विवाह हुआ था। इससे इग्लैंड के साथ नारमन घराने का प्राचीन सम्बन्ध स्थापित हुआ। किन्तु ऐमा का प्रभाव डेनों के पक्ष में रहा। ऐथेलरेड की मृत्यु के बाद उसने केन्यूट से विवाह कर लिया और अपने डेन पुत्र हार्डी केन्यूट का पक्ष करती रही। किन्तु उसके पूर्व पति का द्वितीय पुत्र इग्लैंड और नारमंडी के सम्बन्ध को और भी दृढ बनाने में सफल हुआ।

ऐडवर्ड दि कनफ़ैसर के पच्चीस वर्ष नारमंडी में व्यतीत हुए थे। वह प्रकृति से ही नारमन था। इंग्लैंड उससे अपरिचित था और वह इग्लैंड की नीति और रीति से अनभिज्ञ। वह चर्च का पक्षपाती था। राजा होने पर वह अपने नारमन मित्रों को उच्च पद देने लगा। उसने राबर्ट को केन्टरबरी का आर्कबिशप बनाया। इसी प्रकार और भी अनेक पद नारमनों को दिये गये। अस्तु, देश में दो दल खड़े हो गये एक नारमन दल तथा दूसरा सैक्सन दल। ऐडवर्ड का विरोधी गौडविन सैक्सन दल का अधिनेता था। उनका द्वेश पुराना था। एल्फ्रेड की हत्या में गौडविन का हाथ था। ऐडवर्ड उसको इस नृशंस कृत्य के लिए क्षमा नहीं कर सकता था।

गौडविन वंश—ऐडवर्ड दि कनफैसर के राज्यारोहण से नारमन विजय तक का इतिहास गौडविन तथा उसके पुत्रों का राजा एडवर्ड और उसके नारमन

मित्रों के प्रति विरोध का इतिहास है। यह परिस्थिति वैसी ही थी जैसी 'गुलाबों के युद्ध' के पहले पैदा हुई थी। छठे हेनरी की भाँति एडवर्ड दि कनफैसर का स्थान भी घटना-क्रम में अधिक महत्वपूर्ण नहीं। प्रारम्भ में गौडविन बहुत शक्ति-सम्पन्न
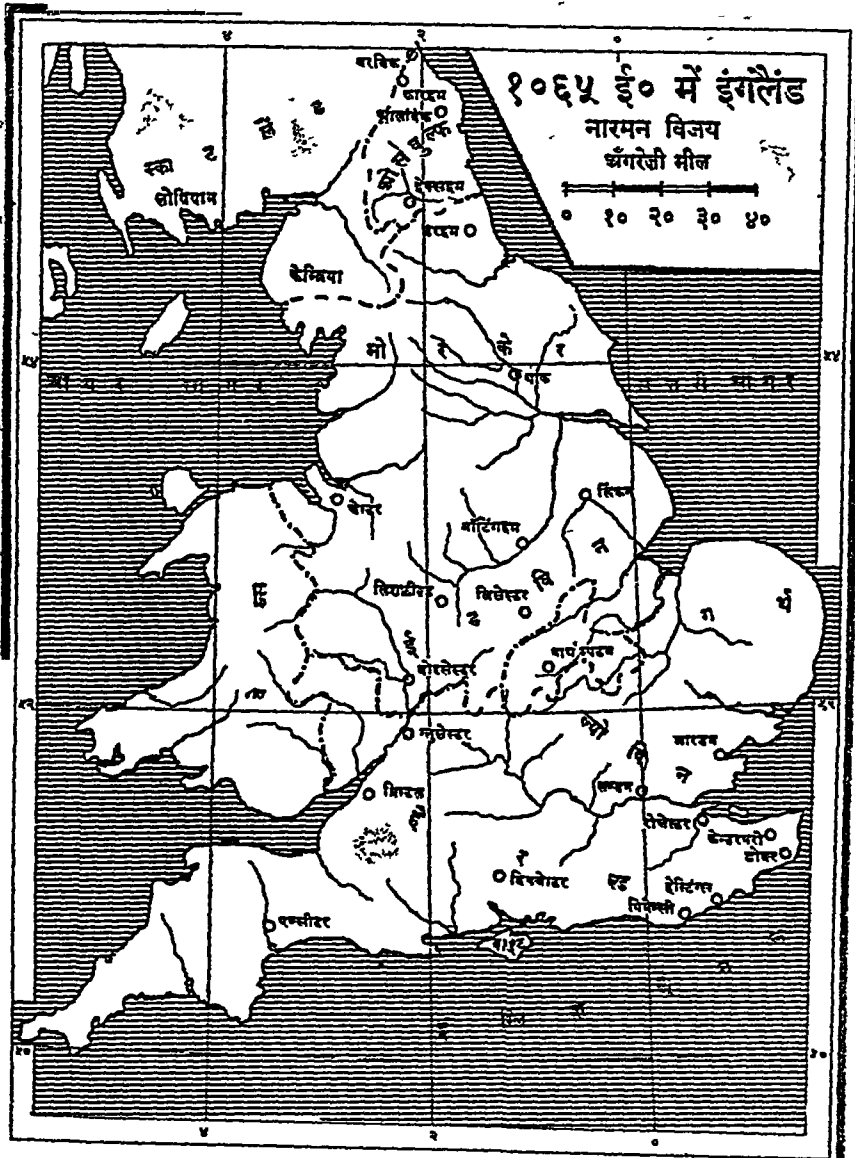
था। (वह स्वयम् वेसेक्स का एक अर्ल था; उसका ज्येष्ठ पुत्र हिक्कास का अर्ल था; द्वितीय पुत्र हेरल्ड पूरबी ऐंग्लिया और एसेक्स का अर्ल था। गौडविन की पुत्री एडिथ एडवर्ड की पत्नी थी।) किन्तु धीरे-धीरे उसकी शक्ति का ह्रास हुआ।

राजा और उसके नारमन मित्र तो उसके विरोधी थे ही। उसका ज्येष्ठ पुत्र एक नन को लेकर भाग गया। उसे अधिकार-च्युत कर दिया गया। उसकी सम्पत्ति हैरल्ड और ब्रियोर्न को बाँट दी गयी। तीन वर्ष बाद वह लौटा और उसने ब्रियोर्न को निमन्त्रित कर मरवा डाला। जन मत गौडविन के विरुद्ध हो गया। उसका विश्वास जाता रहा। उसके शत्रु अवसर खोजने लगे।

यह अवसर भी दूर न था। फ्रान्स से लौटते समय राजा के साले यूस्टेस ऑव बुलोन का डोवर निवासियों से झगड़ा हो गया जिसमें सात फ्रेंच मारे गये। राजा से शिकायत करने पर उसने गौडविन को नगर ध्वस्त कर देने की आज्ञा दी। उसने राजाज्ञा का तिरस्कार किया। राजा ने ग्लूस्टर में 'विटनेगेमोट सभा' की और गौडविन को बुलाया। गौडविन आया, किन्तु हैरल्ड, स्वेन और अपने सशस्त्र सैनिकों के साथ। इधर लियोफ्रोक और सीवार्ड मर्सियन नौर्थम्ब्रियन सेनाओं के साथ राजा के पक्ष में जमा थे। गृह युद्ध की आशंका हुई, किन्तु गौडविन और उसके पुत्र भाग गये। उनकी जागीरें उनके शत्रुओं को दे दी गयीं।

गौडविन का पतन नारमन दल की विजय थी। किन्तु साथ ही एक और अमंगलसूचक घटना हुई। वह थी नारमडी ड्यूक के विलियम का इंग्लैंड में आगमन। इसमें एक रहस्य निहित था। राजा का कोई पुत्र न था और न कोई उत्तराधिकारी दिखाई देता था। अतएव विलियम इंग्लैंड की परिस्थिति जाँचने आया था। कहा जाता है कि एडवर्ड ने उसे राज्य देने का वचन दे दिया था। किन्तु उसे इसका कोई अधिकार न था। इंग्लैंड का मुकुट उसका था अवश्य, किन्तु उसे अन्य को देने का अधिकार नहीं था। परन्तु एडवर्ड का कुटुम्बी भाई था। समय पर वह अपना अधिकार उपस्थित कर सकता था।

किन्तु अभी वह समय दूर था। गौडविन की शक्ति का नाश नहीं हुआ था। सन् १०५२ में उसके पुत्र पश्चिमी किनारे पर आ गये जहाँ वह उनसे जा मिला। इंग्लैंड में पुनः गृह युद्ध की आशका हुई, पर युद्ध न हुआ। एडवर्ड ने गौडविन को क्षमा कर दिया। गौडविन की शक्ति अधिक थी। एडवर्ड उसे क्षमा करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता था? लोग गौडविन की ओर थे। इसका कारण था विलियम का इंग्लैंड में आगमन और एडवर्ड का उसको वचन-दान। परन्तु इंग्लैंड लौट आने के बाद ही गौडविन की मृत्यु हो गयी। राज्य और शक्ति के संग्रह करने में उसका पुत्र हैरल्ड भी पिता से कम न था। नौर्थम्ब्रिया और मर्सिया की जागीरें हड़प कर उसने और भी द्वेष बढ़ा लिया। राज्यारोहण की तैयारी के साथ-साथ वह अपनी ही जड़ खोद रहा था, जब कि नारमनों का सामना करने के लिए उसे इंग्लैंड में एकत्व स्थापित करना चाहिए था। दो आपत्तियों ने उसे दुर्बल कर दिया। एक बार वह नाव में जा रहा था कि वह हवा से बह गयी और वह बन्दी हो गया। नारमंडी के विलियम ने उससे शपथ लेकर कि वह उसके राज्याधिकार को

स्वीकृत करेगा उसे छोड़ दिया। दूसरी आपत्ति नौर्थम्ब्रिया में उपस्थित हुई। वहाँ के विद्रोहियों ने टोस्टिग को निकाल दिया और मोरकार को अर्ल बना दिया, जो गौडविन-वंश का विरोधी था।

हैरल्ड—( १०६६ ई० )—एडवर्ड दि कनफैसर की मृत्यु के बाद वाइटेन सभा ने हैरल्ड को राजा चुना। एडविन मोरकार उससे द्वेष रखते थे। टोस्टिग युरोप के राजाओं से उसके ख़िलाफ़ और अपने पक्ष में सहायता माँगता फिरता था। विलियम ड्यूक ऑव् नारमन्डी अपना राज्याधिकार उपस्थित करने के लिए सेना का संगठन कर रहा था।

विलियम ऑव् नारमंडी—सात वर्ष की अवस्था में उसने ड्यूक का पद ग्रहण किया। जब उसके चार अभिभावक मारे जा चुके थे। युद्ध और हत्या के वातावरण में विलियम के कठोर चरित्र का निर्माण हुआ था। सन् १०४७ ई० में पच्छिम में विद्रोह हुआ। फ्रान्स के राजा की सहायता से उसने उसे शान्त किया। धीरे-धीरे उनकी शक्ति इतनी बढ़ गयी कि उसने फ्रान्स के राजा को परास्त कर उसे सन्धि करने को मजबूर किया। फिर उसने चारों ओर से शक्ति और सहायता एकत्र कर इंग्लैंड पर चढाई की तैयारी की। उसने एडवर्ड के वचन-बद्ध होने का प्रसंग उठाकर अपनी माँग उपस्थित की। लूट की आशा, साहस, कानून और चर्च की मङ्गल-कामना—सब उसकी ओर थे। वंशावली के हिसाब से विलियम का सम्बन्ध हैरल्ड की बनिस्बत राजघराने से अधिक नजदीक होता था, किन्तु विलियम जारज था और वाइटेन सभा ने उसको राज्याधिकारी नहीं माना। हैरल्ड ने दक्खिन तट की रक्षा के लिए अपनी सेना एकत्र की। महीनों तक आक्रमण न हुआ। लोग थक गये और विशृंखल होने लगे। अकस्मात् टोस्टिग नारवे के राजा की सहायता से यार्कशायर पर टूट पड़ा और ऐडविन और मोरकार की सेना को छिन्न भिन्न कर डाला। हैरल्ड को लाचार होकर तुरन्त उत्तर की ओर जाना पड़ा। स्टेम्फर्डब्रिज पर उसने शत्रुओं को परास्त किया। टोस्टिग और नारवे का राजा मारा गया ( १०६६ ई० )।

यह विजय महान थी, किन्तु यह हैरल्ड की अन्तिम विजय थी। विलियम दक्खिन की ओर चढ़ आया था। इसलिए हैरल्ड को दक्खिन की ओर आना पड़ा।

हेस्टिंग्ज़ का युद्ध—इस युद्ध में इंग्लैंड का भाग्य-निर्णय हो गया। हैरल्ड ने हेस्टिंग्ज से आठ मील दूर एक पहाड़ी पर सेना एकत्र की। विलियम के साथ एक विशाल पैदल सेना तथा घुडसवार थे। नार्मन तीर-वृष्टि का उत्तर हैरल्ड की सेना ने भालों, कटारों और फरसों की बौछार से दिया। यह देखकर ड्यूक ने अपनी पैदल सेना बढ़ा दी; पर सैक्सन पंक्ति तक पहुँच कर भी वह उसे भंग न कर सकी। सैक्सन पंक्ति पर उसके आक्रमण असफल रहे। किन्तु अँगरेजी सेना के एक दल ने यह समझ कर कि शत्रु हार कर पीछे हट रहा है अपना स्थान छोड़ दिया और शत्रु का पीछा किया। यह दल नष्ट हो गया। यही अन्त में विलियम की विजय

का सूत्र बन गया। विलियम ने अब बड़ी चाल चली। उसने अपनी सेना को आज्ञा दी कि वह ऐसे पीछे हटे मानो हार कर भाग रही हो। सैक्सन दल उसके चकमे में आ गया और अपनी जगह से नीचे उतर आया। फल यह हुआ कि वे सब मारे गये। केवल हैरल्ड के संरक्षक बाकी रह गये। यद्यपि अँगरेजी सेना के पास अब फेंकने वाले अस्त्र न रहे थे और उन पर शत्रु अस्त्रों की वर्षा कर रहे थे, किन्तु वे वीरता से लड़े। विलियम को स्वयम् तीन बार घोड़े बदलने पड़े। एक तीर हैरल्ड की आँख में लगा। नारमन सैनिक अँगरेजी पंक्ति पर टूट पड़े। अँगरेजी सेना के पैर उखड़ गये और उसने जंगल की शरण ली।

यद्यपि ६० वर्ष के बीच में इंग्लैंड को दो बार शत्रु के चरणों पर झुकना पड़ा, किन्तु इसका कारण वीरता का अभाव न था। एडमंड आयरनसाइड और हैरल्ड से अधिक वीर कौन होगा? हेस्टिंग्ज के वीर सैनिकों से अधिक आत्मत्याग कौन करेगा? वास्तव में शत्रु से अधिक भय, परिचित मित्र का था। ऐथेलरेड की असत्यता, एडरिक का विश्वासघात, गौडविन-कुल का स्वार्थ, टोस्टिग का विद्रोह, एडविन और मोरकार की उदासीनता, ये सब सैक्सन-पतन के मूल कारण थे।

नारमन लोगों की विजय के कारणों में एक मुख्य कारण यह था कि वे घोड़े पर चढ़ कर लड़ते और बर्छे-तलवार के अलावा तीर-कमान का भी प्रयोग करते थे। अँगरेज पैदल लड़ते थे और तीर कमान का प्रयोग भुला बैठे थे। हेस्टिंग्ज के युद्ध की कुछ घटनाएँ पानीपत के पहले और दूसरे युद्ध से मिलती-जुलती हैं।

---

# अध्याय ८

## विदेशी राजाओं के शासन में इंग्लैंड

### ( १०६६-११५४ ई० )

इंग्लैंड के प्राचीन इतिहास पर राजाओं का व्यक्तिगत प्रभाव अधिक दिखाई देता है। इसीलिए ऐतिहासिक विभाजन राज्यों पर निर्भर है। शासन में राजा का भाग अधिक होने के कारण उसका दुर्बल या शक्तिशाली, सच्चा या अविश्वसनीय, उत्साही या निरुत्साही होना बहुत कुछ अर्थ रखता था। जब मन्त्रिवर्ग उसकी इच्छानुकूल कार्य करता, तब सब कुछ राजा के व्यक्तित्व पर ही निर्भर रह जाता है। यह शासन 'व्यक्तिगत शासन' कहलाता है। किन्तु पार्लियामेन्ट के शक्ति-ग्रहण के साथ-साथ राजा से अधिक महत्व पार्लियामेन्ट का हो गया। इसलिए आगे चल कर मन्त्रिमंडल ही ऐतिहासिक विभाजन का आधार हो जाता है। इस प्रकार का शासन "प्रतिनिधि शासन" कहलाता है।

नारमन विजय से लेकर हेनरी द्वितीय के राज्यारोहण तक के युग को राजाओं के अनुसार विभाजित करना अनुचित न होगा। क्योंकि उस युग पर राजाओं के चरित्रों की छाप ही पर्याप्त रूप से पायी जाती है। उनके राज्य-काल में अन्तर के साथ-साथ साम्य भी बहुत है। प्रत्येक राजा के चरित्र में एक विजित देश पर शासन करने वाले विजयी, विदेशी राजा का दृष्टिकोण दिखायी पड़ता है। नारमन राजा थे, और सैक्सन प्रजा। सैक्सन विद्रोहों का फल अच्छा न निकला। प्रजा को ज्ञात हो गया कि यद्यपि राजा विदेशी और कठोर है, किन्तु फिर भी वह नारमन अमीरों और नवाबों से तो अच्छा ही है। अतः प्रजा अत्याचारी नारमन अमीरों को छोड़ कर राजा का पक्ष करने लगी पर इस राजभक्ति का मूल स्वार्थ था कि निश्छल स्वामिभक्ति। विदेशी होने के नाते प्रजा वस्तुतः दोनों से घृणा करती थी।

हेनरी द्वितीय के शासन काल तक द्वेष की भावना कुछ शान्त हो चली और विजित और विजेता का अन्तर भी कम हो गया था। अमीरों में भी राष्ट्रीयता आ गयी। इस नयी भावना के उदाहरण स्टीफन और हेनरी द्वितीय के राज्यकाल में खूब मिलते हैं। उस समय एक ओर नारमन राजा थे तो दूसरी ओर अँगरेजी राज।

विदेशी राजाओं के प्रसंग में हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इंग्लैंड के लिये नारमन-विजय का अर्थ क्या था और विलियम प्रथम ने किस प्रकार अधिकार स्थापित किया, तथा उसने और उसके उत्तराधिकारियों ने उसकी नीति को किस प्रकार निभाया। विलियम प्रथम; रूफस और हेनरी प्रथम की भाँति शक्तिशाली न होकर यदि राजा अशक्त होता तो क्या परिणाम होता।

**नारमन विजय और सामन्त प्रणाली—विलियम प्रथम और उसकी कठिनाइयाँ ( १०६६-११३५ ई० )**—हेस्टिंग्ज की विजय के बाद दक्खिनी-पूरबी इंग्लैंड विलियम के अधीन हो गया। किन्तु उत्तर और पश्चिम में अभी एडविन और मोरकार की शक्ति बाकी थी। अँगरेजों में परस्पर मेल न था। यद्यपि वाइटेन ने एडमंड आयरनसाइड के पौत्र एडगर एथलिंग को हैरल्ड का उत्तराधिकारी चुना, किन्तु अधिक विरोध का फल अब विशेष आशाजनक न था। विलियम लन्दन की ओर बढ़ा, किन्तु लन्दन पर घेरा डालने के बजाय वह टेम्स के पार चला गया। वहाँ एथलिंग के नेतृत्व में आकर एक प्रतिनिधि दल ने विलियम को राज-मुकुट भेंट कर दिया। इस प्रकार विलियम वाइटेन द्वारा इंग्लैंड का निर्वाचित राजा हो गया। राजा हो जाने पर भी उसके सामने दो कठिनाइयाँ थीं। एक तो अँगरेजों को पूर्णतः अधीन करना, दूसरे नारमन साथियों को सन्तुष्ट और पुरस्कृत करते हुए भी उनकी शक्ति को सीमित और खुद उनको आज्ञानुवर्ती रखना। यह इसलिए ज़रूरी था कि वे उसी के विरुद्ध विद्रोह न कर बैठें।

विलियम ने यह घोषणा कर दी कि हेस्टिंग्ज़ से उसके विरुद्ध युद्ध करने वाले विद्रोही हैं। उन सब की जागीरें ज़ब्त कर ली गयीं। इस प्रकार समस्त दक्खिनी

इंग्लैंड उसके अधिकार में आ गया; और शेष पर अधिकार होने में भी देर न लगी। १०६७ ई० में वह अपने भाई ओडो आव बेयो को शासन का अधिकार देकर युरोप गया। उस समय सर्वत्र विद्रोह होने लगे। परन्तु अँगरेज़ विद्रोहियों में एकता न थी। प्रत्येक प्रान्त में एक-एक नेता बन बैठा। विलियम ने विद्रोहियों को परास्त कर उन्हें आयरलैंड और वेल्स में शरण लेने पर बाध्य किया। परन्तु उत्तर की समस्या अधिक कठिन थी। विद्रोहियों का नेता वाल्थ्योफ, अर्ल आव हेन्टिंग्डन था और उसे एडगर एथ्लिंग की बहन मारगैरट के पति स्काटलैंड के राजा ने सहायता दी थी। डेन सेना ने भी केन्यूट के राज्य के पुनर्ग्रहण की आशा से उनकी सहायता की। पहले वे सफल हुए। डरहम और यॉर्क उनके हाथ आ गये। पर पारस्परिक वैमनस्य के कारण उन्हें विलियम से परास्त होना पड़ा। अग्निकाड और हत्या द्वारा विलियम ने विद्रोह का दमन किया।

पूर्व में दलदल भरे इलाई द्वीप में "अन्तिम अँगरेज" हेरवर्ड अभी डटा हुआ था। मोरकार और डरहम का बिशप उसके सहायक थे। किन्तु इलाई के मंकों ने विश्वासघात किया। मोरकार की आधीनता स्वीकार कर लेने पर वेरवर्ड थोड़े से साथियों के साथ शत्रु की पाँतों को चीर कर युद्ध करता हुआ निकल गया। इन निरर्थक विद्रोहों ने हेस्टिंग्ज के प्रारम्भ हुए कार्य को पूरा कर दिया। प्रत्येक विद्रोह में जागीरें जब्त कर नारमन सरदारों को पुरस्कार में दे दी गयीं और अँगरेज जागीरदारों को अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य किया गया। जिनसे ज़मीनें नहीं छीनी गयीं, उनसे गहरा जुर्माना वसूल किया गया और यह कहला लिया गया कि ज़मीन उनकी नहीं बल्कि राजा की है।

**सामन्त शासन-प्रणाली**—इस प्रकार सामन्त शासन-प्रणाली की नींव दृढ़ हो गयी। यह कहना ठीक नहीं कि सैक्सन-काल में इसका अभाव था। एडगर के समय में भी यह सिद्धान्त माना जाता था कि प्रत्येक मनुष्य को, जिसके पास जमीन नहीं हो, अपना अधिपति बना लेना चाहिए। सैक्सन-काल में यह नियम था कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी निकटवर्ती बलशाली सरदार की सरपता स्वीकार कर लेता था। किन्तु नारमन लोगों ने मनुष्य का सम्बन्ध उसकी जागीर या जमीन से और भी पुष्ट कर दिया। सारा समाजचक्र जागीर की धुरी पर घूमने लगा। राजा समस्त देश का स्वामी था। उसका राज्य अमीरों और जागीरदारों में विभाजित था। जागीरदार होने के कारण युद्ध के समय वे लोग राजा की सहायता के लिए बाध्य थे। वे लोग अपनी जागीरें छोटे-छोटे जमींदारों को बाँट देते थे जो उनके आज्ञानुवर्ती रहते थे। ये जमींदार भी यदि चाहते तो अपनी जमींदारी दूसरों को उन्हीं शर्तों पर (जिन पर उन्हें जमींदारी मिली थी) बाँट दे सकते थे। सब से छोटे जमींदार के पास तीस एकड़ या उससे भी कम जमीन रहती थी। ये लोग "सर्फ" कहलाते थे और पूरी तरह अपने जमींदार के वश में रहते और उसकी सेवा करते थे। इस प्रकार

जन समाज एक पिरामिड के अनुरूप था। इस त्रिभुज के आधार पर किसान, किसानों से ऊपर स्वतन्त्र जमींदार, जागीरदार और प्रधान जागीरदार और शिखर पर राजा था। उन श्रेणियों में पारस्परिक सम्बन्धों तथा अधिकारों और कर्तव्यों के निर्धारण का एक मात्र साधन भूमि ही थी। सिद्धान्त के रूप में तो यह व्यवस्था सरल जान पड़ती है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह बहुत ही दुर्व्यवस्थित, जटिल और उलझी हुई प्रणाली थी।

इस दुर्व्यवस्था में सम्भवतः अँगरेज सब से नीचे रहे। नारमन उच्च पदों पर जम गये और अँगरेज किसान 'सर्फ' या दासों की स्थिति तक पहुँच गये। उन्हें कोई स्वतन्त्रता न थी। वे जमीन छोड़ कर नहीं जा पाते थे। उन्हें अपने जमींदार की भूमि पर बिना वेतन एक सप्ताह में दो तीन दिन बेगार का काम करना पड़ता था। वे अपनी लड़कियों का विवाह भी बिना स्वामी की आज्ञा के नहीं कर सकते थे। वे उसके सर्वथा अधीन थे। स्वामी उनको जो दंड चाहे दे सकता था, कोई पूछने वाला न था। नारमन लोग अँगरेजों से घृणा करते थे और उनके साथ कुत्तों से भी बुरा व्यवहार करते थे। विलियम अपने को हैरल्ड का स्थानापन्न-मात्र भले ही समझता हो, किन्तु अँगरेजों की दृष्टि में वह एक विजेता था।

इस प्रकार विलियम द्वारा स्थापित सामन्त शासन अँगरेजों के लिए दुर्वह सिद्ध हुआ। विलियम के शासन में कठोरता के साथ कुछ समानता भी थी। जागीरें दे देकर उसने एक सशस्त्र संरक्षक दल एकत्र कर लिया था। नारमंडी के ड्यूक की हैसियत से वह इतना शक्तिशाली था कि फ्रान्स के राजा की उपेक्षा कर सकता था। एक बार युद्ध में उसका सामना करके उसे पराजित भी किया था किन्तु वह अपने अमीरों द्वारा अपने आदर्श का अनुकरण न चाहता था। उसने तीन कार्य बुद्धिमानी के किये, जिनका फल यह हुआ कि इंग्लैंड में सामन्तशाही का रूप फ्रान्स और जर्मनी से भिन्न हो गया।

**आत्मरक्षा के उपाय**—यद्यपि उसने अपने अमीरों को बहुत सी भूमि जागीरों के रूप में दी, किन्तु वह दूर-दूर बिखरी हुई थी। विलियम ने कुछ बड़ी रियासतों का भी अन्त कर दिया था। डरहम, केन्ट और चैस्टर की जागीरें इस नीति का अपवाद थीं। डरहम के अर्ल की रियासत डरहम के बिशप को दे दी गई थी जिसका कोई उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था। केन्ट का अर्ल उसका सौतेला भाई था, वह भी पादरी था। केवल चैस्टर एक सामान्य व्यक्ति के हाथ में था। किन्तु विलियम जानता था कि वेल्स की सीमा के पास होने के कारण वह जागीरदार उसकी रक्षा ही में फँसा रहेगा। जागीरें दूर-दूर होने के कारण अमीर (बैरन) राजा के विरुद्ध सेना संगठन नहीं कर सकते थे। फिर भी विलियम अमीरों के अन्तवर्ती विद्रोह से न बच सका। १०७४ ई० में जब विलियम नारमंडी में था, नारफ़क के अर्ल राल्फ और हरफोर्ड के अर्ल रौजर ने उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। उन्होंने हन्टिंगडन के अर्ल वाल्थ्योफ़ को भी मिला

लिया। विलियम में विद्रोहियों के शीघ्र दमन करने की पर्याप्त शक्ति थी। राल्फ समुद्र पार भाग गया, रौजर को आजन्म कारावास का दण्ड मिला और वाल्थ्योफ को कत्ल कर
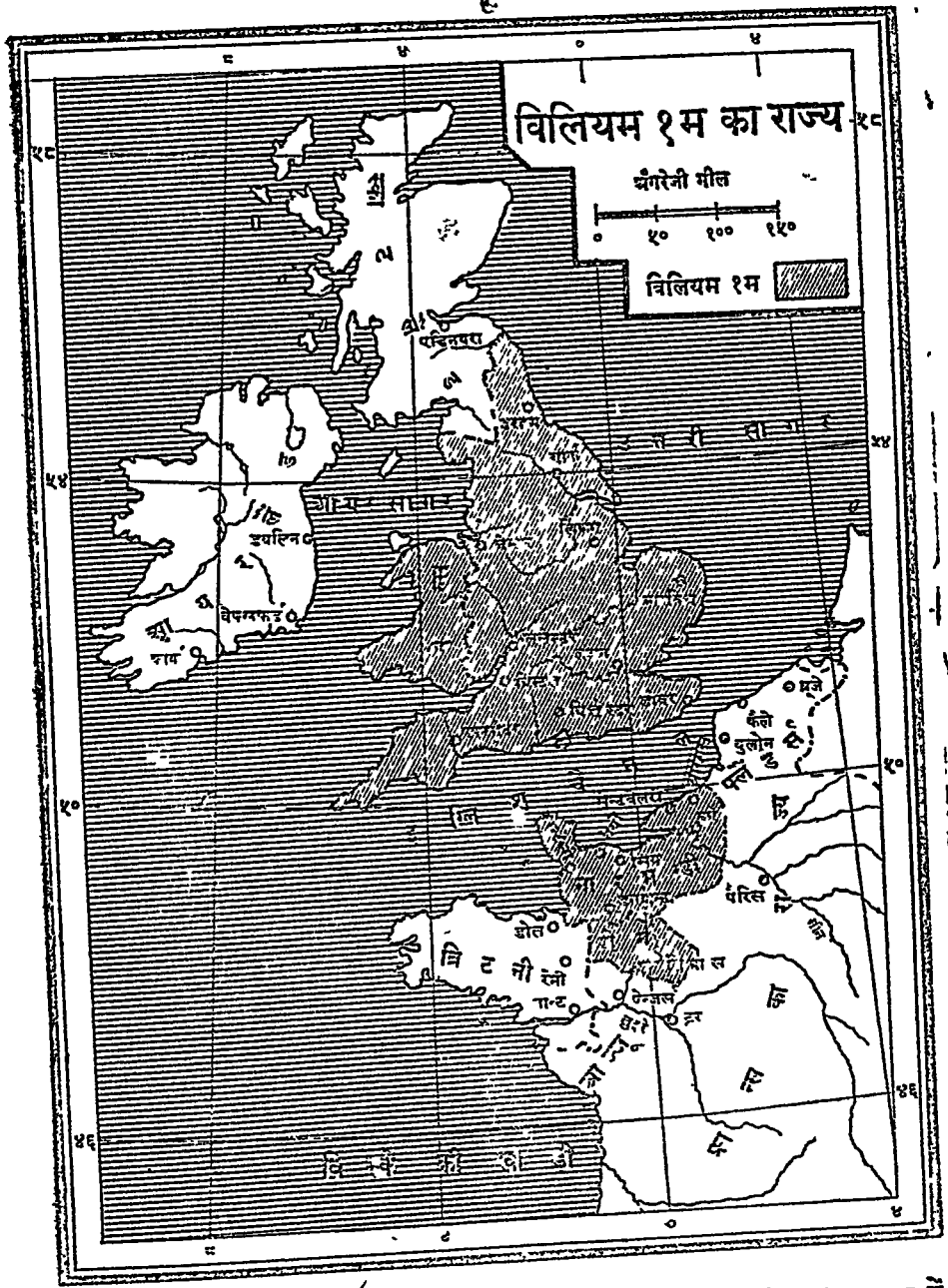
दिया गया। सन् १६७० ई० में विलियम के पुत्र राबर्ट ने विद्रोह किया। फ्रान्स में राबर्ट को फ्रान्स के राजा ने भी सहायता दी थी। जर्बरोई के युद्ध-क्षेत्र में पिता पुत्र की मुठ-भेड हुई। धोखे से राबर्ट के भाले ने विलियम को घायल कर दिया। राबर्ट ने

क्षमा माँग ली। पर विलियम कभी उसका विश्वास नहीं किया। कुछ दिनों बाद ओडो से विलियम का विरोध हो गया और उसे आजन्म कारावास का दंड मिला।

**डोम्सडे सर्वे**—इन आपत्तियों से विलियम को यह स्पष्ट हो गया कि राज्य की व्यवस्था के लिए बैरनों को दूर-दूर रखना भर काफी न था। अस्तु सन् १०८५ ई० में उसने आत्म-रक्षा के पथ पर दूसरा कदम बढाया। उसने एक सर्वे में इंग्लैंड की सारी भूमि, छोटे बड़े जमींदार, उसकी जायदाद और आय. उसके अधीन रैयत की संख्या, चक्कियों, हलों, बैलों, घोड़ों, सुअरों और मछलियों के तालाबों की संख्या आदि; एवम् उनसे प्राप्त होने वाले कर की निश्चित रूप से व्यवस्था करायी। इसमें दो बातें महत्त्व की थीं। एक तो इसमें बड़ी बारीकी से छान-बीन की गयी थी। दूसरे डूम्सडे सर्वे में प्राचीन इंग्लैंड का ग्रामीण इतिहास अमर है।

**साल्सबरी में कसम**—विलियम ने इस सर्वे के साथ-साथ एक और काम किया। उसने सन् १०८६ ई० में साल्सबरी में सब ज़मींदारों को बुलाया और उनसे सहायता और राजभक्ति की कसम खिलवायी। इसका अभिप्राय यह था कि प्रत्येक ज़मींदार का मुख्य कर्तव्य पहले राजा के प्रति था, उसके बाद जागीरदार की सेवा करना निश्चित् हुआ। यह विलियम की तीसरी युक्ति थी। इस नीति ने सामन्तों की शक्ति कमजोर कर दी। युरोप के सामन्त राजा का विरोध करने की शक्ति रखते थे। किन्तु इंग्लैंड में अब यह बात सम्भव न रही, क्योंकि राजा के खिलाफ़ अब जागीरदारों की सहायता जमींदार न कर सकते थे। युरोप और इंग्लैंड की सामन्त शासन प्रणालियों का यही भेद था। यही कारण था कि एडवर्ड १म एडवर्ड ३य और हेनरी ५म शक्तिशाली राजा हुए, और फ्रान्स के फिलिप ४र्थ चार्ल्स ५म और लुई ११वें अर्द्ध-स्वतन्त्र सामन्तों के कारण अशक्त रहे।

**विलियम की मृत्यु**—विलियम को अपनी नीति से पूरा लाभ उठाने का अवसर न मिला। सन् १०८७ ई० मे वह फ्रान्स के राजा के साथ युद्ध में गया। अकस्मात् लूट-मार में उसके घोडे के ऊपर एक शहतीर गिरा जिससे वह ऐसा उछला कि राजा गिर गया। विलियम इस चोट से कभी न उठ सका और कुछ सप्ताह बाद रूएँ ( फ्रान्स ) में उसकी मृत्यु हो गयी।

**विलियम का कार्य**—विलियम एक दृढ शासक था। अपने विचारानुकूल कार्य करने में करुणा उसके लिए बाधक नहीं होती थी। यार्कशायर, न्यू फोरेस्ट का विध्वस, ओडो का कारावास, वाल्थ्योफ की हत्या,—ये सब उसकी निर्दयता के प्रमाण हैं। किन्तु उसकी कठोरता में एक गुण भी था। उसने अपनी छत्रच्छाया में इंग्लैंड को संगठित कर दिया। अनैक्य और अनीति की प्रवृत्ति का उसने दमन कर दिया। उपर्युक्त कारणों से फ्रान्स और जर्मनी के मुकाबले में इंग्लैंड में ऐक्य और संगठन बहुत पहले हो गया। विलियम का निजी जीवन पवित्र था और उसमें धर्म का भाव भी था। उसने गुलामों के रोजगार को जो लोग अलाई में करते थे बन्द

करा दिया। उसने चर्च के अधिकारियों को भी उठाने की चेष्टा की। 'बिशप' और 'एबट' का चुनाव वह योग्यता के अनुसार ही करता था।

नारमन विजय का एक और पहलू अवलोकनीय है। यदि सैक्सन सशक्त, सबल और संगठित होते तो वे नारमन आधिपत्य को ठुकरा सकते थे। इस असफलता का कारण सैक्सन-चरित्र का पतन है। उसमें राष्ट्र-विधायक तत्वों का अभाव था। नारमन आक्रमण, विजेता के शासन और नारमन तथा सैक्सन रक्त के सम्मिश्रण से 'अँगरेजों' का निर्माण हुआ, जो अपने सैक्सन पूर्वजों से अधिक सशक्त और उत्साही साबित हुए। नारमनों और सैक्सनों के घुल मिल जाने से और भी अनेक लाभ हुए। उसने अँगरेजी भाषा की उन्नति होने लगी। इंग्लैंड की शासन-पद्धति और नैतिक सिद्धान्तों का विकास भी उसी का फल है।

**विलियम रूफस (१०८७-११००)**—विलियम विजेता ने नारमंडी की रियासत अपने ज्येष्ठ पुत्र राबर्ट को और इंग्लैंड का राज्य द्वितीय पुत्र विलियम रूफस को दिया; किन्तु राबर्ट का दाँत दोनों देशों पर था। राबर्ट आरामतलब और अच्छी प्रकृति का था। किन्तु विलियम पिता की भाँति दृढ़ था। अतः बहुत से अमीरों ने राबर्ट का पक्ष लिया। राजा के प्रतिनिधि रैनल्फ फ्लैम्बर्ड की सख्ती के कारण भी वे विलियम से असन्तुष्ट थे। अतः अपने असन्तुष्ट अमीरों से अपनी रक्षा और भाई के विरोध का सामना करने के लिए उसे अपनी अँगरेज प्रजा से मित्रता करनी पड़ी। उसी की सहायता से उसकी विजय हुई। ड्यूक ऑव नारमंडी द्वारा उकसाये गये विद्रोह का उसने दमन किया। कम्बरलैंड को उसने स्काटलैंड से छीन लिया और स्काट आक्रमणों से रक्षा करने के लिये कारलाइल किले की रक्षा का प्रबन्ध किया। स्काटलैंड के राजा ने नौर्थम्बरलैंड पर आक्रमण किया, किन्तु वह मार डाला गया। नारमंडी में एक सेना भेज कर उसने राबर्ट को भी स्तम्भित कर दिया। कुछ समय तक भाइयों का पारस्परिक वैमनस्य शान्त रहा। जब राबर्ट को क्रूसेड में सम्मिलित होने की धुन सवार हुई, तब परिणाम बिना सोचे ही, वह दस हजार मार्कों मे अपनी जागीर विलियम के हाथ बन्धक रख कर युद्ध करने चला गया। राबर्ट अभी पैलेस्टाइन मे था कि विलियम रूफस की मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु ने उसके सब से छोटे और सब से योग्य पुत्र हेनरी को इंग्लैंड और नारमंडी दोनों का राजा बनने का अवसर प्रदान किया। किन्तु राबर्ट के लौटने पर युद्ध की आशका थी। अतः हेनरी को भी अपनी अँगरेज प्रजा का विशेष भरोसा करना पड़ा। इसीलिए उसने स्कॉटलैंड की राजकुमारी मैटिल्डा से विवाह भी कर लिया। उसने रैनल्फ फ्लैम्बर्ड को बन्दी कर के और एन्सलैम को निर्वासन से बुला कर प्रतिनिधित्व का पद दे दिया। इसके अलावा उसने एक "स्वातन्त्र्य पत्र" प्रकाशित किया जिसमें उसने यह वादा किया कि वह ऐडवर्ड दि कन्फ़ेसर के समय के क़ानूनों का पालन करेगा और टैक्स न्याय के अनुसार लेगा।

ये तैयारियाँ अभी पूरी नहीं हो पायी थीं कि आँधी आ गयी। हेनरी के कुछ अमीरों का निमन्त्रण पाकर, राबर्ट इंग्लैंड में सेना सहित उतरा। हेनरी को उसने नारमंडी और पेन्शन देने का वचन देकर सन्तुष्ट कर लिया, किन्तु यह सन्धि क्षणिक थी। बैलेम के राबर्ट ने हेनरी के विरुद्ध विद्रोह किया और नारमंडी के राबर्ट की सहायता प्राप्त कर ली। ११०६ ई० में हेनरी ने राबर्ट को हरा कर सदा के लिये बन्दी कर लिया। नारमंडी हेनरी के अधिकार में आ गयी, किन्तु राबर्ट के पुत्र विलियम क्लिटो ने अपनी मृत्यु तक (११२८ ई०) हेनरी को शान्ति न लेने दी। नारमडी में असन्तोष होने के कारण हेनरी को इग्लैंड में अपनी राजकीय शक्ति बढाने का अवसर मिल गया। उसने सामन्तों की शक्ति कम करने का पूरा प्रयत्न किया; वैयक्तिक न्याय की ओर ध्यान दिया। उसने सामन्तों के न्यायालय कम करके शायर-कोर्ट और हन्ड्रेड कोर्ट को पुनः स्थापित किया। इससे प्रत्येक मनुष्य को न्याय प्राप्त करने की सुविधा हो गयी और सामन्तों और ज़मीदारों की कचहरियों की शक्ति क्षीण हो गयी। शायर कोर्ट का अध्यक्ष एक शेरिफ होता था, जिसकी नियुक्ति राजा करता था। शायर और हन्ड्रेड कोर्ट में एक व्यक्ति के बदले कई व्यक्ति मिल कर न्याय करने लगे। अस्तु न्याय व्यवस्था में बहुत कुछ सामञ्जस्य आ गया। अनेक सामन्त-न्याय व्यवस्थाओं के स्थान पर एक राजकीय न्याय की स्थापना हुई।

उसने विन्चेस्टर के राजकोष पर पहले ही अधिकार कर लिया था। साल्सबरी के बिशप रोजर को उसने कोषाध्यक्ष बनाया। न्याय और कर का कितना निकट सम्बन्ध था, यह किंग्स काउन्सिल (राजकीय सभा) की स्थापना से स्पष्ट हो जाता है। यह सैक्सन वाइटेन सभा की ही भाँति थी। इसमें भी प्रधान जमींदार, अमीर, आर्क-बिशप, मठाधीश, न्यायाधीश सभी आ जाते थे, किन्तु इनका सम्मिलन बुद्धिमान होने के कारण नहीं, वरन् राजा से भूमि प्राप्त होने के कारण था। यद्यपि इस काउन्सिल के सदस्यों की संख्या अधिक थी, किन्तु उनका एकत्रित होना कठिन था, इसलिए व्यवहार में उसकी शक्ति एक छोटी समिति के हाथ में चली गयी, जिसका नाम 'क्यूरिया रीजिस' था। इसका प्रधान राजा था और सदस्य न्यायाधीश और सेनाध्यक्ष आदि पदाधिकारी थे। किन्तु सामान्यतः उपस्थित सदस्यों की संख्या अधिक न होने पाती थी। इस समिति के कर्तव्य पेचीदा और अनेक प्रकार के थे। कभी वह राजनीतिक समिति, कभी न्याय करने वाली, तो कभी मालगुजारी जमा करने वाली संस्था हो जाती थी। उसके कर्तव्य और सेवाएँ वैसी ही बहुमुखी थीं, जैसी राजा की थीं। अनुभव से, आगे चल कर इन अधिकारों को अलहदा करके कई समितियों में बाँट दिया गया। यह काम हेनरी प्रथम के ही समय से आरम्भ हो गया था।

हेनरी ने अपने भाई को बन्दी करा दिया और उसके भतीजे की हत्या उसके सामने हुई। नारमन अमीरों को उसने अधीन कर लिया था। अँगरेज़ उसके

मित्र थे। वह 'न्याय का सिंह' कहलाता था। उसका पुत्र जहाज़ डूबने से मर गया। उसकी पुत्री मॉड एक मात्र उत्तराधिकारिणी थी। यद्यपि उसने अमीरों से उसे उत्तराधिकारिणी स्वीकार कर लेने की शपथ ले ली थी, किन्तु यह आशा न थी कि वे अपना वचन रक्खेंगे। स्त्री-शासक की कल्पना उस समय प्रायः असम्भव सी थी।

---

# अध्याय ६

## सामन्त-शासन की विकृत-अवस्था

**मॉड**—हेनरी प्रथम की मृत्यु के बाद अपनी पुत्री के उत्तराधिकार के लिए की गयी उसकी व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। मॉड न तो प्रजा-प्रिय थी और न बुद्धिमती। उसने एक विदेशी-ज्योफ़े ऑव ऑजू-से विवाह कर लिया, जिससे अमीर घृणा करते थे। इसके अलावा उस समय स्त्री शासक की कपल्ना भी असम्भव थी। अस्तु, अमीरों ने काउन्ट ऑव ब्लॉय, स्टीफन को गद्दी पर बिठाया।

**स्टीफन**—( ११३५-५४ ई० ) स्टीफन विलियम प्रथम की पुत्री एडीला पुत्र था। 'विजेता' का पौत्र होने के नाते वह राज्य का उत्तराधिकारी हो सकता था। वह सज्जन, नरम दिल यानी दूसरे शब्दों में निर्बल था। किन्तु उस समय राज्य के नियन्त्रण के लिए एक दृढ़ शासक की आवश्यकता थी। अस्तु स्टीफन का शासन विनाशकारी सिद्ध हुआ। सबसे पहले स्कॉटलैंड के डेविड ने मॉड को सहायता देने के बहाने सीमा-प्रान्त पर धावा किया। डेविड की बहन हेनरी प्रथम से ब्याही थी, इसलिए मॉड उसकी भानजी होती थी। वह स्टैन्डर्ड के युद्ध में पराजित हुआ (११३८ ई० )। किन्तु जब तक स्कॉट युद्ध चल रहा था, मॉड के अर्द्ध-भ्राता, राबर्ट ऑव ग्लौस्टर ने पच्छिम में विद्रोह खड़ा कर दिया, अतः स्टीफन ने विवश होकर डेविड को नौर्थम्बरलैंड देकर पीछा छुड़ाया।

**लिंकन का युद्ध**—अब तक स्टीफन को चर्च से सहायता मिलती रही, क्योंकि उसका भाई हेनरी बिन्चेस्टर का बिशप था। किन्तु उसने चर्च से शीघ्र ही झगड़ा मोल ले लिया। साल्सबरी और लिंकन के बिशपों से उसने उनकी गढ़ियाँ माँगी, जिससे चर्च उसके विरुद्ध हो गया। यह बिशप ऑव साल्सबरी वही रौजर था जो हेनरी प्रथम का कोषाध्यक्ष था और जिसने अच्छी सेवाएँ की थीं। उसने अपने कुटुम्बियो को ऊँचे पदों पर नियुक्त कर दिया था। लिंकन उसका भतीजा था। ऐसे लोगों से झगडा करना मूर्खता थी। स्टीफन की शक्ति उसके हाथ से निकल गयी। उसने लिंकन के गढ़ पर धावा किया। राबर्ट ने सेना संगठित कर स्टीफन की

सेना पर आक्रमण किया। घोर युद्ध हुआ। दुर्बल राजा होते हुए भी स्टीफन वीर योद्धा निकला। उसने अर्ल ऑव चेस्टर का मुकाबला किया, किन्तु उसका फरसा अर्ल के शिरस्त्राण पर टूट गया और वह अन्त में गिरफ्तार हुआ।

अब मॉड इंग्लैएड की रानी हो गयी। किन्तु वह भी अयोग्य शासक सिद्ध हुई। अपने सहायकों के प्रति वह कृतघ्न थी। मठाधीशों से भी उसका झगड़ा हो गया। राबर्ट ऑव ग्लौस्टर के छुड़ाने के लिए उसे स्टीफन को मुक्त करना पड़ा। शीघ्र ही वह ऑक्सफर्ड में घेर ली गयी, किन्तु रस्सी की सहायता से नीचे उतर कर टेम्स के उस पार भाग गयी और युद्ध के लिए सेना इकट्ठी करने लगी। युद्ध जारी रहा, क्योंकि अमीर उसे समाप्त करना न चाहते थे। प्रत्येक अमीर अपने-अपने गढ़ में जम कर अपना अधिकार बढ़ाना और स्वार्थ सिद्ध करना चाहता था। कभी-कभी वे दोनों पक्ष वालों को लूट लेते थे। प्रजा के प्रति उनका व्यवहार स्वार्थमय तथा अत्याचार-पूर्ण था। वे स्वच्छन्द और निडर होकर मनमानी करते थे। अपने सिक्के चलाते; लोगों को लूटते-खसोटते और पाशविक दंड देते थे। स्टीफन जब अपनी सहायता के लिए विदेशियों को ले आया तब तो अत्याचार और भी बढ गया। प्रजा की पूरी दुर्दशा हो गयी।

उसके राज्यकाल में कई गिरजे और एक अस्पताल की इमारतें बनीं और साहित्य और विज्ञान की भी चरचा चलती रही।

स्टीफन और मॉड का विरोध उनके उत्तराधिकारियों में भी जारी रहने की सम्भावना थी। भाग्यवंश स्टीफन के पुत्र की मृत्यु हो गयी और उसकी युद्ध की भावना जाती रही। आर्कबिशप थियोबाल्ड ने दोनों पक्षों में सन्धि करवा दी। वालिंग्फ़र्ड (११५३ ई०) की सन्धि में यह निश्चित हुआ कि स्टीफन शेष जीवन में राजा रहे, किन्तु उसका उत्तराधिकारी मॉड का पुत्र हो। हेनरी को अधिक प्रतीक्षा न करनी पड़ी। सन् ११५४ ई० में स्टीफन की मृत्यु हो गयी।

---

# अध्याय १०

## हेनरी द्वितीय

हेनरी द्वितीय को राज्य-पद मिल गया। वह अपने राज्य में सब से अधिक शक्तिशाली बनना चाहता था। उसके प्रयत्नों को महान् सफलता और असफलता दोनों मिलीं। अमीरों पर उसकी विजय हुई, किन्तु चर्च के सामने उसे हार माननी पड़ी। उसकी शक्ति का अनुमान लगाने के लिए इंग्लैएड के बाहर दृष्टि डालनी चाहिए। उसका पिता ज्योफ्रे ऑव ऑजू उस वंश में से था, जो क्रूर वीरों के लिए प्रसिद्ध था। यद्यपि इंग्लैएड में वह कुछ न कर सका, किन्तु वह मृत्यु के समय

( ११५१ ई० ) अपने पुत्र हेनरी को नारमंडी का शासक और ऑजू, मेन और तूरेन का काउन्ट बन गया। अगले वर्ष हेनरी लुई सप्तम की तलाक दी हुई स्त्री एलिनोर से विवाह करके एक्वितेन का ड्यूक और प्वाटू, टूलूज, सैन्टोञ्ज और लिमूजाँ का काउन्ट हो गया। इस प्रकार इंग्लैण्ड का राजा होने के पूर्व ही वह युरोप का सब से अधिक शक्तिशाली बेताज का बादशाह था। वह युद्ध में कुशल, नीतिज्ञ, उग्र, उद्योगी और कार्यशील था।

गढ़ों का नाश और मालगुजारी की व्यवस्था—हेनरी की नीति स्टीफन की दुर्व्यवस्थाओं को दूर करने की। राज्य-कर की प्राप्ति पहला कार्य था। बिशपों से विरोध और मित्रों को सरकारी जमीन बाँटने के कारण स्टीफन का राजकोष अस्तव्यस्त हो गया और दो तिहाई मालगुजारी घट गयी थी। उसने बिशप ऑव इलाई को जिसका नाम नाइजेल था और जो बिशप रौजर का भतीजा था, पुनः कोषाध्यक्ष बनाया। उसने सरदारों को दी हुई सरकारी जमीन वापस ले ली। अमीरों के सिक्के बन्द कर केवल अपना सिक्का जारी किया अमीरों के सैकड़ों गढ़ तुड़वा डाले और राजदुर्गों को अमीरों के हाथ से छीन लिया। उसने किराये के सैनिकों को जो दोनों पक्ष वालों को लूटा करते थे, राज्य से निकाल दिया। डेविड को दिये गये कम्बरलैंड; वेस्टमोरलैंड और नौर्थम्बरलैंड प्रान्तों को भी उसने स्काटलैंड के राजा मैलकम से छुड़ाया और उसे अपना अनुयायी बनाया। शान्ति-स्थापना की सफलता से यह स्पष्ट है कि प्रजा हेनरी के पक्ष में थी। प्रजा ने स्टीफन की मूर्खता और अमीरों की निर्दयता के कारण बहुत-कुछ अत्याचार सहे थे। वह शान्ति चाहती थी और शान्ति के लिए एक सशक्त शासक की आवश्यकता का उसे पूरा अनुभव हो गया था।

हेनरी नीतिज्ञ था, स्वेच्छाचारी नहीं। उसने दुर्व्यवस्था को दूर करना ही काफी न समझा। भविष्य में उसको रोकने का भी उसने प्रयत्न किया। अधिकार-ग्रहण के लिए शक्ति का प्रयोग आवश्यक है; किन्तु अधिकार की स्थापना नीति का विषय है। सेना की शक्ति बढ़ाने के साथ उसने न्यायालयों को भी सशक्त बनाया।

सेना, स्क्यूटेज—सामन्त सेना में अब तक दो दुर्बलताएँ थीं। एक थी विद्रोह अथवा उपेक्षा की आशंका। राजा के दुर्बल होने पर अमीर सेना या तो लेकर न आते या सेना का एक अंश ही लाते थे। फिर लोग वर्ष भर में ४० दिन के सैन्य कार्य के लिए ही बाध्य थे। इस कारण अधिक समय तक युद्ध-संचालन असम्भव था। उसने अपने बाबा की नीति के अनुसार अमीरों पर कर लगाया ( ११५६ ई० )। वह इस धन से, जिसे "स्क्यूटेज" कहते हैं, सेना नौकर रख सकता था जो हर समय राज्य के काम आ सकती थी। इस कर से अमीर अशक्त हो गये और इंग्लैंड का सामन्त शासन बहुत दुर्बल हो गया, तथा राजा का बल बढ़ गया।

हेस्टिंग्ज़ के युद्ध में घुड़सवारों के सामने असफल होने के कारण फिर्ड का महत्व ऐसा घट गया कि वह भुला दिया गया। असाइज ऑव आर्म्स के द्वारा उसने
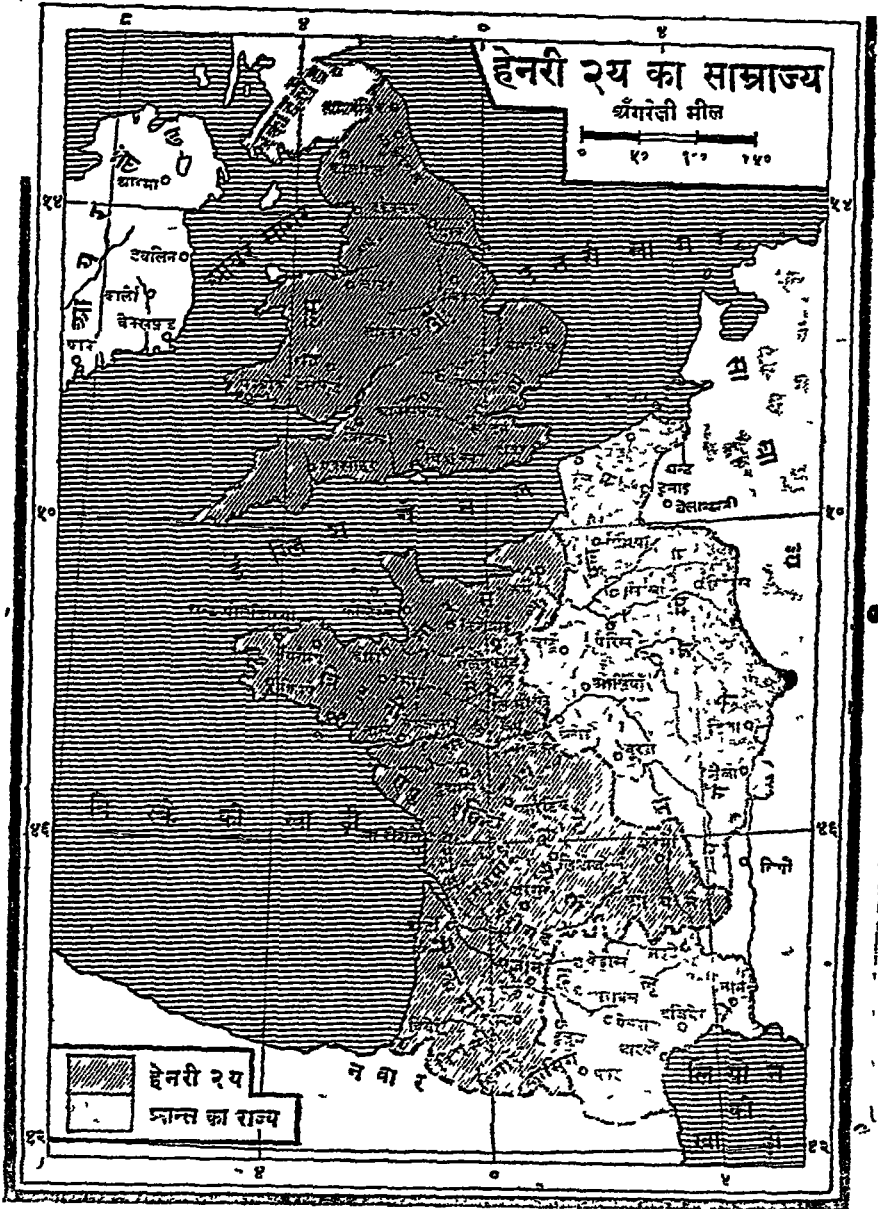
सन् ११८१ में सैक्सन-कालीन फिर्ड को पुनर्जीवित किया। इस प्रकार १६ से ६० वर्ष तक की अवस्था के मनुष्यों में से एक राष्ट्रीय सेना का निर्माण हो गया। प्रत्येक मनुष्यों को अस्त्र दिये गये। समय-समय पर उनकी परीक्षा होती थी। इस पैदल सेना

का उपयोग बाहरी आक्रमण या अन्तर्विद्रोह के लिए सफल सिद्ध हुआ। सामन्तों की सेना की शक्ति इन सुधारों के कारण क्रमशः क्षीण होती गयी और सामन्त केवल ज़मींदार-से हो गये।

न्याय व्यवस्था—स्टीफन के युग की एक अन्य दुर्व्यवस्था सामन्त न्यायालयों की अधिकता के कारण थी। अमीरों के न्यायालयों में राजकीय न्याय की उपेक्षा होती थी। आने जाने की कठिनाइयों के कारण स्थानीय न्यायालयों को केन्द्रीय-शासन में रखना सम्भव न था। हैनरी द्वितीय ने न्यायालयों को अपने अधिकार में लाने का विधान ठाना। बिना राजकीय न्याय के राजा की शक्ति छाया मात्र है। अमीरों के गढ़ भग करने वाले सशक्त हाथ के लिए उनके न्यायालयों को तोड़ना कठिन न था। विनाश का काम निर्माण के कार्य से सरल है। विनाशक व्यापारों की अपेक्षा हैनरी के विधायक कार्य उसकी नीतिज्ञता के श्रेष्ठ प्रमाण हैं। उसी ने सैक्सन-संस्था को ही नवीन रूप देने का प्रयत्न किया। सैक्सन न्याय का काम प्रान्तीय प्रतिनिधियों की समितियो द्वारा करते थे। इसी प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर हैनरी ने न्याय समिति की व्यवस्था का निर्माण किया। "असाइज ऑव क्लैरेंडन" ( ११६६ ई० ) के निश्चय के अनुसार राज दरबार से जज नियुक्त करके स्थानीय न्यायालयों में भेजे जाने लगे। दौरा करते हुए वे किसी काउन्टी में जब जाते तब वहाँ उनको बारह हन्ड्रेड के और चार टाउनशिप के प्रतिनिधि मिलते। वे जज के सामने दंड पाने के योग्य व्यक्तियों को केवल पेश करते थे; किन्तु स्वयम् मुकद्दमा नहीं करते थे। प्रतिनिधियों के इस दल ने आगे चल कर "ग्रॉड जूरी" का रूप धारण कर लिया। न्याय तो वस्तुतः खौलते पानी में हाथ डलवा कर होता था। यदि अभियुक्त के हाथ पर से सात दिन में निशान न गया तो उस पर इल्जाम साबित हो गया और अगर निशान मिट गया तो भी उसे निर्वासित होना पड़ता था। समिति का यह उपयोग केवल फ़ौजदारी के मामलों में किया जाता था। दीवानी के मामलों का निर्णय प्रायः नारमन नीति के अनुसार द्वन्द्व-युद्ध के द्वारा किया जाता था। यह नीति "जिसकी लाठी उसकी भैंस" के सिद्धान्त का समर्थन करने के कारण अनुचित समझी जाती थी। क्योंकि इनमें न्याय के लिए स्थान न था। इस असभ्य न्याय-व्यवस्था के अलावा वादी और प्रतिवादी यदि चाहते तो अपना मुकद्दमा वैस्ट मिन्स्टर ( लन्दन ) के राजकीय न्यायालय में करा सकते थे। यद्यपि इस विधान में यात्रा, समय, व्यय और झंझटें बाधक थीं; किन्तु फिर भी बड़े महत्व के सुधारों का इसे सूत्रपात माना जाता है।

यह सुधार-कार्य हेंनरी द्वितीय के बाद समाप्त हुआ, किन्तु "जूरी" संस्था का विधाता होने के नाते वह ही इसके यश का भागी है। जब यह सिद्धान्त स्थापित हो गया कि पशु-बल न्याय नहीं, तो यह मानने में कोई कठिनाई न रही कि संयोग-प्राप्ति भी न्याय नहीं। अतएव द्वन्द्व-युद्ध के सत्यासत्य निर्णय करने

की प्रथा जाती रही और खौलते जल से निर्णय होने लगा। इस विधि को सन् १२१६ में चर्च ने बन्द करवा दिया। तब से न्याय करने के लिए स्थानिक बारह व्यक्तियों की "पेटी जूरी" नाम की संस्थाएँ बना दी गयीं। वे लोग स्वयम् गवाह और फैसला करने वाले थे। प्रारम्भ में अपूर्ण होते हुए भी आगे चल कर 'जूरी' संस्था स्वतन्त्रता की सर्वोत्तम संरक्षक बन गयी। यहाँ तक हैनरी की विजय का इतिहास है। अमीरों की दुर्व्यवस्था का विकास और न्याय तथा नीति की स्थापना हम देख चुके हैं। किन्तु एक संस्था बाकी थी जिस पर राजकीय न्याय का प्रभुत्व अभी न हो सका। वह था चर्च। हैनरी ने उसे भी अपने न्याय-प्रभुत्व में लाने का प्रयत्न किया।

राजा और चर्च—क्लूनी के सुधार का आन्दोलन—हैनरी द्वितीय और बैकट के विरोध की जड़ें पुरानी थीं। इसे समझने के लिए नार्मन विजय से लेकर चर्च के प्रति राजा के व्यवहार का इतिहास उलटना होगा। क्लूनियक*भिक्षुओं के पवित्र और धार्मिक जीवन के कारण प्रजा में उनका खूब आदर था। मठ-जीवन में सांसारिकता, धन और राज्याधिकार की तृष्णा बढ़ने से आशंकित होकर उन्हें ब्रह्मचर्य का आदर्श स्थापित किया। उनकी दृष्टि में विवाह सांसारिकता की ओर घसीटने वाला विधान था। चर्च के पदों के क्रय-विक्रय के विरुद्ध भी उन्होंने आवाज उठायी। धन से पद पाकर लोगों को वैभव का मोह प्रभावित कर सकता था। सामान्य पुरुषों के हाथ चर्च में पद ग्रहण करने का भी उन्होंने विरोध किया, क्योंकि स्वार्थ से मुक्त होकर पद प्रदान करना अत्यन्त कठिन था।

ये सभी उद्देश्य प्रशंसनीय थे। प्रथम दो के विरुद्ध तो कोई बात कही ही नहीं जा सकती। ब्रह्मचर्य एक प्राचीन नियम था। पद व्यापार का विरोध चर्च बहुत दिन से कर रहा था। क्लूनी के सुधारक चर्च को एक पृथक और स्वतन्त्र संस्था बनाना चाहते थे। किन्तु बड़े मठाधीशों की बड़ी जागीरें थीं। यदि सुधारक चर्च को सांसारिकता के प्रलोभन से दूर रखना चाहते थे, तो उन्हें जागीरें रखने का भी कोई अधिकार न था। किन्तु जागीरें छोड़ने का उनका विचार न था।

क्लूनी के सुधारवादियों में हिल्डे ब्रान्ड मुख्य था। दो पोपों का विश्वस्त सलाहकार रहने के बाद १०७३ ई० में वह स्वयम् ग्रेगरी सप्तम के नाम से पोप बना। वह चर्च को राज्याधिकार से मुक्त करना चाहता था। इसीलिए हेनरी चतुर्थ से उसका विरोध रहा। किन्तु विलियम विजेता का, जो अपने बिशपों को स्वयम् नियुक्त करता था और अपनी स्वीकृति बिना पोप की आज्ञा पालन न करने की घोषणा करता था, ग्रेगरी ने कभी विरोध न किया।

---

* फ्रान्स में बरगंडी नाम के प्रान्त में क्लूनी नाम का एक नगर है। दसवीं शती में वहाँ के मठ से सुधार का एक धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उसी से प्रभावित होकर डन्सटन ने ब्रिटेन में सुधार का काम शुरू किया था।

इसका कारण यह था कि विलियम प्रथम चर्च-सुधार की ऐसी योजना कर रहा था जो ग्रेगरी की नीति के अनुकूल थी। बिशपों को अपने न्यायालयों के स्थापन का अधिकार देने की नीति ग्रेगरी की दृष्टि में सन्तोषजनक थी। इससे चर्च के मामलों में सामान्य पुरुषों का कोई हस्तक्षेप न रहा। लाफ्रॉक को आर्कबिशप ऑव केन्टरबरी बना कर और पादरियों को पत्नी-सेवा से अलग कर धर्म सेवा में लगाने के प्रयत्नों में सहायता देने की नीति ग्रेगरी को पसन्द थी। ऐसी स्थिति में विलियम का विरोध करना उसने उचित न समझा।

विलियम रूफस धन का लालची था। उसने और उसके रैनल्फ फ्लैम्बर्ड ने धन-सचय के लिए कोई उपाय बाकी न छोड़ा। सामन्त-प्रथा के अनुसार अनेक प्रकार की भेंटें प्रजा अपने जमींदारों को और जमींदार राजा को दिया करते थे। जमींदार के मरने पर उसकी रियासत से राजा को "हेरियट" कर और उसके उत्तराधिकारी से "रिलीफ" नाम के कर मिलते थे। ये कर चर्च से नहीं लिये जाते थे। उसकी आँख चर्च पर पड़ी। चर्च के किसी कर्मचारी की मृत्यु पर उसके स्थान पर वह दूसरे आदमी की नियुक्ति न करता और भूमि-कर राजा के हाथ आ जाता था। अतः इन दिनों खाली जगहों पर नियुक्ति न करने की प्रथा-सी पड़ गयी। सन् १०८६ ई० में यह कुप्रथा चोटी पर पहुँच गयी जब लाफ्रॉक की मृत्यु के बाद कोई आर्कबिशप चार वर्ष तक नियुक्त नहीं किया गया। सन् १०९३ ई० में रूफस बीमार पड़ा, तब उसने चर्च से सन्धि करनी चाही। एन्सेल्म को आर्कबिशप बनाया गया। उद्देश्य कितना ही चिन्त्य हो, किन्तु चुनाव श्रेष्ठ था। विद्या, सत्य और सरलता के कारण एन्सेल्म सब का श्रद्धा पात्र था। रूफस की मृत्यु न हुई और उसके स्वस्थ होने के साथ-साथ उसकी विकृत भावनाएँ फिर जाग्रत हो आयीं। एन्सेल्म को भावी आपत्तियों का पूर्वाभास था। नम्र होते हुए भी वह धमकी में आने वाला न था। रूफस को अपनी नियुक्ति के लिए कर देने के स्थान पर उसने दान के रूप में धन दिया। उसने राजा और कोर्ट के दुष्कृत्यों की महालोचना की, अतः उसे राजा का क्रोध भाजन बनना पड़ा उसका जीवन सुरक्षित न रहा था। अतएव उसे राज्य से निकलना पड़ा।

हेनरी प्रथम का सब से पहला और सब से प्रसिद्ध कार्य एन्सेल्म को निर्वासन से बुलाना था। किन्तु न्यायप्रिय होते हुए भी वह एन्सेल्म से सहमत न हो सका। रोम में रहने के कारण वह 'सामन्तों के पदग्रहण' के और खिलाफ हो गया था। रूफस को उसने जो अधीनता दिखायी थी, वह हेनरी के बाँट में न पड़ी। वह हेनरी के नियुक्त किये बिशपों को स्वीकार न करता। हेनरी अपने मठाधीशों को पूरी स्वतन्त्रता नहीं दे सकता था, क्योंकि अधिकाश भूमि के वे ही अधिकारी थे। पोप द्वारा नियुक्ति होने से चर्च को भूमि पर राज्याधिकार में क्षति आती, और प्रजा के दो भाग हो जाते। सामान्य जनता राजा के आश्रित रहती, मठाधीश पोप को अपना स्वामी

समझते। कोई राजा यह नहीं देख सकता था। यहाँ हम दो संस्थाओं का विरोध देखते हैं। राजा चर्च की माँगों को पूरा नहीं कर सकता। आगे चल कर इस विरोध के परिणाम पुनर्विधान हुआ।

हेनरी और एन्सेल्म ने पद-नियुक्ति के प्रश्न का सफलतापूर्वक समझौता कर लिया। बिशप और एबटों का चुनाव मंक लोग करते थे, किन्तु यह चुनाव राज दरबार में होने लगा। दंड और मुद्रिका जो उनके धर्म-चिह्न थे उन्हें चर्च देता था। किन्तु अपने भौतिक अधिकारों के लिए वे राजा के अधीन थे। आगे चल कर पोप और सम्राट् ने अपना झगडा निपटाने में इसी मार्ग का अनुकरण किया।

स्टीफन के राज्य में सालसबरी और लिंकन के आर्कबिशप के साथ उसका विरोध ही मैठिल्डा की विजय का कारण था। आगे यार्क के आर्कबिशप की नियुक्ति पर उससे और चर्च से झगड़ा हो गया। उसके राज्य-काल में चर्च की शक्ति बढ गयी। अमीरों के पारस्परिक तथा राजा के साथ युद्ध के कारण चर्च ने अपनी स्वतन्त्रता बढ़ा ली।

**हेनरी और बैकेट**—हेनरी द्वितीय के समय तक विरोध बहुत बढ़ गया था। हेनरी जितना उग्र और असन्तोषपूर्ण प्रकृति का था, बैकेट भी उतना ही उग्र और तेज था। बैकेट की कृतघ्नता राजा को असह्य थी। हेनरी ने उसे बड़ी साधारण स्थिति से चान्सलरी का उच्च पद प्रदान किया था। दोनों का साथ-साथ खान-पान, हँसी-मजाक रहता था। राज्य-व्यवस्था के प्रसंगों में हेनरी उससे सम्मति लेता और उसे हृदय से अपनी ओर समझता था। उसके द्वारा राजा अपने विचारों के अनुसार चर्च मे हेरफेर करना चाहता था। इसीलिए उसे आर्कबिशप बनाया था, बैकेट ने बड़े असमंजस के साथ यह पद स्वीकार किया ( ११६२ ई० )। अब तक उसका जीवन अन्य सांसारिक मनुष्यों की भाँति विलासप्रियता का रहा था। अकस्मात् परिवर्तित होकर वह एक सन्यासी का कठोर जीवन व्यतीत करने लगा। यह परिवर्तन आत्म-प्रवंच न था। उसने दृढ़ता के साथ नये पद को ग्रहण किया था। वह चर्च के अधिकारों को अक्षुण्ण रखना चाहता था। राजा के विरोध की सम्भावना ने उसे तनिक भी विचलित नहीं किया।

**क्लैरेन्डन के विधान ( ११६४ ई० )**—उत्तेजना का अवसर भी दूर न था। क्लैरिक अपराधियों का न्याय चर्च के न्यायालयों में होता था। एक चर्च के कर्मचारी की क्रूर हत्या करने पर भी हलका-सा दंड मिला, जिससे हेनरी क्रुद्ध हो गया। उसने आज्ञा दी कि मठाधीश भी राज्य के प्रचलित रीति-रिवाजों का पालन करें। बैकेट सहमत हो गया। किन्तु रिवाज निश्चित न थे। अतएव एक कमीशन बैठी, जिसने 'क्लैरेन्डन के विधान' उपस्थित किये। प्राचीन नियमों की पुनरावृत्ति हुई। चर्च-कर्मचारी राजाज्ञा बिना बाहर न जायँ। अपीलें रोम न जाकर राजा के सामने उपस्थित की जायें। बिना अपने जमींदार की आज्ञा के कोई चर्च की नौकरी न करने पावे विरोध का मूल कारण चर्च कर्मचारियों का प्रसंग था। प्रस्ताव यह

था कि चर्च के न्यायालय में जॉच के बाद यदि अपराध सिद्ध हो जाय तो अपराधी को चर्च से पदच्युत करके दंड के लिए राजसभा में उपस्थित किया जाय। राजा चर्च कोर्ट के विरुद्ध न था। वह उचित न्याय चाहता था। चर्च के न्यायालयों का दंड केवल व्रत और प्रायश्चितों तक सीमित था, जो हत्या के अपराध के लिए बहुत कम था। अतः न्याय मे समानता न थी। सामान्य पुरुष को हत्या का दंड फॉसी था, चर्च कर्मचारी को पदच्युति और प्रायश्चित-मात्र! चर्च अधिकारियों के अपने अपराधी सदस्यों के पक्षपात पर भी आश्चर्य होता है। इसका कारण वही पृथकत्व की भावना है। सामान्य न्याय के स्वीकार कर लेने का अर्थ यह था कि उनमें और सामान्य पुरुष में कोई अन्तर नहीं है। स्मरण रहे कि मध्य-काल में 'क्लैरिक' शब्द के अन्तर्गत मठाधीशों के अतिरिक्त चर्च के और राजा की चान्सरी के सभी कर्मचारी शामिल थे। वकीलों और सिपाहियों को छोड कर प्रायः सभी पेशे वाले "क्लैरिक" थे। कुछ लोग तो दंड से मुक्ति पाने की आशा ही से उस में शामिल हो जाते थे।

हेनरी और उसके आर्कबिशप का विरोध व्यापक था। क्लैरेन्डन विधान के अनुकूल व्यवस्था करने के लिए बैकेट के साथ छः दिन तक बहस चलती रही, किन्तु वह सहमत न हुआ और उसने प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। उसे बुलाया गया तो उसने अपने स्थान पर चार सरदारों को अपना उत्तर देने के लिये भेजा। फिर उसे राज-सभा की उपेक्षा के अभियोग में नौर्थम्पटन में बुलाया गया। वह क्रास लेकर उपस्थित हुआ। राजा ने बैकेट की चान्सलरी के समय की बातें उखाड कर उस पर कई जुर्म कायम किये और उससे उस समय के ख़र्च का पूरा पूरा हिसाब मॉगा। उसके विरुद्ध बैकेट ने राजा की अनीति का घोर विरोध किया, जिससे वह राजद्रोही घोषित किया गया। यह हालत देखकर वह एक रात फ्रान्स भाग गया।

छः वर्ष तक यह झगड़ा चलता रहा। बैकेट ने पोप अलेकजेन्डर तृतीय की शरण ली। किन्तु युरोप के सम्राट् फ्रेडरिक बारबरोसा से पोप का झगडा हो गया था। वह बैकेट की अधिक सहायता कर हेनरी को असन्तुष्ट करना नहीं चाहता था। हेनरी ने बैकेट के सम्बन्धियों को निर्वासित कर दिया और कैन्टरबरी का कर स्वयम् ग्रहण किया। बैकेट ने हेनरी के मन्त्रियों और बिशपों को चर्च से बाहर कर दिया। विरोध चलता रहा। ११७० ई० में सन्धि हो गयी। बैकेट लौट आया। उसके लौटने से पहले ही हेनरी ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया था। राज्याभिषेक करना आर्कबिशप ऑव केन्टरबरी का अधिकार था। हेनरी ने बैकेट के शत्रुओं—रौजर ऑव यार्क और बिशप ऑव लन्दन—से सब सस्कार कराये। बैकेट ने आकर दोनों को पदच्युत कर दिया। इससे हेनरी का क्रोध भभक उठा। राजा की भर्त्सना से प्रेरित होकर चार जवान चल पड़े और गिरजे में ही कहा सुनी और मार-पीट हो गयी। वहीं उन्होंने बैकेट की हत्या कर डाली (११७० ई०)।

बैकेट की गिनती शहीदों में होने लगी। मृत्यु में भी उसकी ही विजय रही। परिणाम अच्छा न हुआ। हेनरी को दबना पड़ा। उसने अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए शपथ ली। बाद को बैकेट की छत्री में केन्टरबरी के मंकों से अपने ऊपर कोड़े लगवाये। चर्च के अदालतों पर प्रभुत्व प्राप्त करने की सभी आशाएँ जाती रहीं। रिफार्म काल तक ( अर्थात् तीन सौ वर्ष बाद तक ) के न्यायालयों की व्यवस्था वही रही। पोपों ने हस्तक्षेप के और भी द्वार खोल लिए। राजा जॉन का नीचा देखना और हेनरी तृतीय के राज्य-काल के हद से बढ़े हुए कर बैकेट के बलिदान के ही फल थे। किन्तु हेनरी ने अपनी समस्त शक्ति नहीं खोयी। रोम के प्रति अपीलों पर उसका अधिकार रहा, चर्च न्यायालयों के विस्तार पर भी कुछ रौब रहा, बिशपों का निर्वाचन भी राज-मठ में होता रहा।

चर्च के हारने के कारण हेनरी का तेज क्षीण होने लगा। कुछ अमीरों ने उसके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। ह्यू ऑव चैस्टर, ह्यू बिगोड, और राबर्ट मौब्रे विद्रोह के लिए उद्यत थे। राजा के पुत्रों ने भी उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा, यहाँ तक कि उसकी रानी ने भी साथ छोड़ दिया। स्काट लोग सीमा पार कर आये। फ्रान्स के राजा ने विद्रोहियों की सहायता की। स्थिति भयानक थी किन्तु हेनरी के मित्र और प्रजा उसके साथ थी। सेना की सहायता से उसने विद्रोहियों का दमन किया। स्काट राजा बन्दी कर लिया गया। किन्तु अधीनता स्वीकार कर लेने और एडिनबरा आदि किले देने पर वह छोड दिया गया। फ्रान्स के राजा को भी सन्धि के लिए बाध्य होना पडा। इतने पर भी वृद्ध हेनरी को फिर शान्ति न मिली। उसके पुत्रों में उत्तराधिकार पर विरोध हुआ। ज्येष्ठ पुत्र हेनरी राजा के विरुद्ध फ्रान्स के राजा के साथ बराबर षड्यन्त्र रचता रहा। ज्योफ्रे ने ब्रिटेन के अमीरों को उत्तेजित किया। हेनरी की मृत्यु ११८३ ई० में और ज्योफ्रे की ११८५ ई० में हुई। रिचर्ड ने बड़े भाई का अनुकरण किया। उसने फ्रान्स की सेना लेकर पिता को सन्धि के लिए बाध्य किया। राजा का प्रिय पुत्र जॉन भी विद्रोहियों के साथ हो गया। विषम ज्वर में आत्मभर्त्सना के साथ राजा की मृत्यु हो गयी ( ११८९ ई० )।

---

# अध्याय ११

## एन्जविन शक्ति

### रिचर्ड और क्रूसेड ( धर्मयुद्ध )

एक युरोपीय शासक की हैसियत से हेनरी का महत्त्व अधिक था। पिता से आञ्जू माता से नारमंडी और पत्नी से एक्वीटे प्रदेश उसको मिले थे। इस प्रकार फ्रान्स के पच्छिमी अर्द्धभाग पर उसका अधिकार था। विलियम दि लायन को हरा

कर स्काटलैंड पर भी उसने एक प्रकार से अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। एक प्रकार से आयरलैंड को भी उसने विजय कर लिया था। ११५५ ई० में हेनरी ने पोप से आयरलैंड पर चढाई करने की अनुमति ले ली थी। पोप एड्रिक चतुर्थ अँगरेज था। उसने इस शर्त पर अनुमति दी थी कि हेनरी पोप के करद प्रदेश की भाँति आयरलैंड को रखेगा। अपनी माँ, साम्राज्ञी मेठिल्डा के विरोध के कारण उसे वह इरादा छोड़ देना पड़ा। उसने पोप की शर्तें स्वीकार करने से इनकार कर दिया। कुछ समय के बाद उसने अपने बल से आयरलैंड जीतने का निश्चय किया। उसे शुभ अवसर भी मिल गया। आयरलैंड में कभी एकता नहीं रही थी। प्रतिस्पर्द्धी राजाओं में विरोध था। लेन्स्टर के राजा डरमट को रोडरिक ओ' कोनर ने आयरलैंड से निकाल दिया। उसने इंग्लैंड आकर हेनरी द्वितीय से सहायता माँगी। स्वयम् अधिक व्यस्त होने के कारण हेनरी ने अपने अमीरों से सहायता लेने की उसे अनुमति दी। रिचर्ड दि क्लेयर की सहायता से डरमट ने जिसे 'स्ट्रॉंग बो' भी कहा जाता है, शत्रुओं पर विजय पायी। डरमट की मृत्यु के बाद उसकी उत्तराधिकारिणी से विवाह कर रिचर्ड राज्य का उत्तराधिकारी बन गया। अमीरों की स्वतन्त्रता से आशंकित होकर हेनरी आयरलैंड की ओर बढा। बहुत से आयरिश राजाओं ने उसका सम्मान किया। यद्यपि यह सब केवल दिखावट थी, किन्तु उसी के बल पर वह अपने को आयरलैंड का स्वामी कहने लगा।

**वैवाहिक सम्बन्ध**—उसकी एक पुत्री का विवाह सैक्सनी के ड्यूक हेनरी दि लाइन के साथ-साथ तथा दूसरी का कैस्टील के राजा के साथ हुआ। इस प्रकार आञ्जू के छोटे से प्रान्त के वंश का युरोप भर में विस्तार हो गया। एञ्जविनों की एक शाखा ने विवाह द्वारा जरुसलम का राज्याधिकार पा लिया था। धर्मयुद्धों के प्रसंग मे इसके भाग का विवेचन हम अभी करेंगे।

**जरूसलम का पतन और पहला क्रूसेड**—६३५ ई० में जरूसलम अरबों के हाथ चला गया था। किन्तु ईसाई यात्रियों पर उन्होंने साधारण टैक्स के अलावा कोई नियन्त्रण नही लगाया। ग्यारहवीं शताब्दी में सल्जुक टर्कों ने सीरिया पर आक्रमण किया। विजय के बाद १०७६ ई० मे उन्होंने वहाँ कुछ अत्याचार आरम्भ किये। इन अत्याचारों का समाचार पश्चिम में पहुँचा। इस विषय मे चर्च की नीति के प्रति विरोध-भावना इसलिए सम्भव है कि हम इसे राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से देखते हैं। किन्तु उस समय युरोपीय राष्ट्रीय-भावना का उदय नहीं हुआ था। इंग्लैंड तो विदेशी नियन्त्रण से अभी तक छूटा भी न था फ्रान्स, स्पेन, जर्मनी में भी एकता न थी। उस समय आजकल के अर्थ में 'राष्ट्रीयता' का अस्तित्व न था। युरोपीय राजा अपने को एक ईसाई-साम्राज्य का सदस्य समझते थे। एकत्व का एक यही आधार था। सम्राट् उनका प्रधान और पोप उनका आध्यात्मिक अधिष्ठाता था। दोनों में प्रायः विरोध होते हुए भी विधर्मी के लिए दोनों एक थे। धर्म का विषय होने के कारण पोप

का नेतृत्व आवश्यक था। वह भी कर्तव्य से विचलित नहीं होता था। गृह-युद्धों को शान्त कर लोगों को धर्म के लिए लड़ने भेजना सरल काम न था।

धर्म के प्रति उत्साह के अतिरिक्त वीरत्व प्रदर्शन का आदर्श भी था। पोप के मन में भक्ति और वीरता के काम कर दिखाने की प्रबल इच्छा थी। भयंकर मारकाट की उपेक्षा करके दलितों और दीन-दुखियों को बचाने के लिए साक्षात् मृत्यु के मुख में घुस पड़ना और लोहा बजाकर उनकी रक्षा करना "नाइट" का आदर्श और कर्तव्य समझा जाता था। यही भावना आगे चलकर 'वीर धर्म' कहलायी। सन् १०६५ में जब धर्म-युद्ध की घोषणा की गयी तब लोगों में ऐसा उत्साह और जोश पैदा हो गया कि वे जरूसलम लेने पर तुल गये। सन् १०६६ में जरूसलम पर युरोपियनों का अधिकार हो गया और गौडफ्रे दि बुइलों को वहाँ का शासक बनाया गया। दुर्भाग्यवश वीरत्व की भावना ने धर्म-वीरों की अन्य सद्भावनाओं को कुण्ठित कर दिया। गौडफ्रे जैसे वीर के हृदय में भी करुणा के लिए कोई स्थान न रहा। उनमें प्रतिहिंसा की आग भभक उठी। जरूसलम के पतन के समय यहूदी और मुसलमान स्त्रियों और बच्चों तक की निर्दयता से हत्या की गयी। इस अकरुण उन्माद का कोप यहूदियों पर हुआ और पैलेस्टाइन के बाहर प्रदेशों में भी उन पर अत्याचार किये गये। पैलेस्टाइन के ईसाई राज्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। पशुबल से उसकी स्थापना हुई थी, अतएव उसकी रक्षा भी करनी पड़ी।

गौडफ्रे की मृत्यु हो गयी। उसका स्थान उसके भाई बाल्डविन प्रथम ने लिया। उसके बाद बाल्डविन द्वितीय ने भार सँभाला। उसके बाद उसकी बहन उत्तराधिकारिणी हुई। उसका विवाह हेनरी द्वितीय के पितामह फुल्क ऑव आञ्जू से हुआ था। फुल्क ने जरुसलम का राजा होकर वहाँ एञ्जविन वंश की नींव डाली।

**सलहुद्दीन और दूसरा क्रूसेड**—इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। फ्रान्स के लुई सप्तम का दूसरा क्रूसेड पैलेस्टाइन में ईसाई शक्ति को बढ़ाने में असफल रहा। अब मुसलमान अग्रसर हो उठे। उनके प्रख्यात नेता सलहुद्दीन ने किले पर किले छीनना शुरू किया। अन्त में गाई दि लूसिनान ने गैलिली पर सलहुद्दीन का सामना किया। पर वह असफल हुआ। जरूसलम पर सलहुद्दीन का अधिकार हो गया और स्वयम् गाई सलहुद्दीन के हाथ बन्दी हो गया। जरूसलम के पतन से समस्त ईसाई साम्राज्य को आघात पहुँचा। हेनरी द्वितीय को विशेष वेदना इसलिए हुई कि एञ्जविन वंश के हाथ से ही जरूसलम छिन गया और उसका राजकुमार बन्दी हो गया। शीघ्र ही दूसरे क्रूसेड ( धर्म-युद्ध ) की तैयारी की गयी। अपने एञ्जविन कुटुम्बियों के विनाश से क्षुब्ध होकर हेनरी द्वितीय ने उत्साह के साथ धर्म-युद्ध में भाग लेना निश्चय किया; किन्तु मृत्यु ने उसके मनोरथ को पूरा न होने दिया। वह अपना कार्य अपने उत्तराधिकारी पुत्र रिचर्ड पर छोड़ गया। यद्यपि रिचर्ड में पितृभक्ति की भावना प्रबल न थी, किन्तु वीरत्व की भावना ने उसे युद्ध के लिए प्रेरित किया।

तीसरा क्रूसेड ( धर्म-युद्ध )—तीसरा क्रूसेड में रिचर्ड का प्रधान भाग रहा। उसके चरित्र ने उसे और रंग दिया। उसके वीरत्व, शक्ति और कृतियों की आश्चर्यजनक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। उसका प्रतिस्पर्द्धी सलहुद्दीन भी अपने युद्ध-कौशल और विनय के लिए विख्यात था। उसके दाक्षिण्य से उसके शत्रु भी मुग्ध और प्रभावित हो गये। इग्लैंड, फ्रान्स, आस्ट्रिया के राजाओं ने ही नहीं, वरन् सम्राट् फ्रेड्रिक ने भी इस युद्ध में भाग लिया था। किन्तु नेताओं के उद्देश्यों में साम्य न था। रिचर्ड का उग्र और तीक्ष्ण स्वभाव शत्रु से भी अधिक मित्रों को भयावह था। वह गया तो था धर्म युद्ध के लिए; किन्तु मार्ग में सिसली, साइप्रस और एकर आदि छीनता लड़ता-झगड़ता हुआ गया, जिससे उसका बल क्षीण हो गया। जरूसलम के राज्यपद पर बहुत कुछ विरोध रहा। फ्रान्स का राजा फिलिप क्षुब्ध होकर अपनी सेना सहित लौट गया, और जॉन ने रिचर्ड के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। तब रिचर्ड के नेतृत्व में आक्रमण कर उसने एक युद्ध जीता और दो बार जरूसलम के निकट पहुँचने पर भी वह उसका अवरोध न कर सका। अन्त में उसने सलहुद्दीन से सन्धि कर ली। ईसाइयों को निर्विघ्न जरूसलम की यात्रा का अधिकार मिल गया। असंख्य धन ख़र्च करने और लाखों मनुष्यों के मरने के बाद यदि यह अधिकार मिला भी तो क्या मिला।

रिचर्ड को अपनी कलह-प्रियता का भी फल भोगना पड़ा। फ्रान्स के राजा के साथ जॉन के षड्यन्त्र के कारण रिचर्ड का पैलेस्टाइन में रहना कठिन था। आस्ट्रिया के लियोपोल्ड का झंडा अपने से ऊपर देख कर रिचर्ड ने उसे गिरवा दिया। लियोपोल्ड अवसर खोज रहा था कि रिचर्ड का जहाज एड्रियाटिक समुद्र में नष्ट हो गया। वेश बदल कर आस्ट्रिया से जाता हुआ रिचर्ड गिरफ्तार हो गया। पैलेस्टाइन जाते समय सिसली पर आक्रमण करने के कारण सम्राट् हेनरी षष्ठम से भी उसका विरोध था। लियोपोल्ड ने रिचर्ड को उसके हाथों बेच दिया। चार महीने बन्दी रहने के बाद बहुत सा धन दंड रूप में देने पर उसको छुटकारा मिला। यह सारी घटना तृतीय क्रूसेड वालों की स्वार्थपरता पर एक शिक्षाप्रद टिप्पणी है।

रिचर्ड के समय से अँगरेजों की धर्म-युद्ध-भावना क्षीण हो गयी। यद्यपि १२४० ई० में हेनरी तृतीय के भाई ने पैलेस्टाइन में युद्ध करके सुल्तान से कुछ उपयोगी शर्तें करवा लीं और राजकुमार एडवर्ड प्रथम ने नेजरथ में विजय प्राप्त की, किन्तु इन प्रयासों की तुलना रिचर्ड के आक्रमण से नहीं की जा सकती। रिचर्ड की सी न तो किसी ने तैयारी ही की और न इंग्लैंड का कोई राजा ही तब से क्रूसेड पर गया।

क्रूसेडों का प्रभाव—इन धर्म-युद्धों का परिणाम क्या हुआ? इंग्लैंड से बहुत से विद्रोही और ख़तरनाक अमीर छँट गये। कुछ लौट कर नहीं आये; जो लौटे उनकी शक्ति क्षीण हो गयी थी। अपना ख़र्च पूरा करने के लिए उन्हें अपने

प्रान्त वेचने पड़े। रिचर्ड की भी कम हानि नहीं हुई। नारमडी के राबर्ट को अपना इलाका वेच डालना पड़ा। रिचर्ड ने भी जो कुछ विक सका वेच डाला। स्काट के राजाओं से कर लेने के अधिकार को भी उसने उनके हाथ वेच डाला। इस क्रय-विक्रय में नगरवालों का व्यापार अच्छा रहा। अब तक नगर अमीरों अथवा राजा के अधीन थे। बहुतों ने मुक्ति के प्रमाणपत्र ख़रीद लिये और स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकार नगरों की उन्नति में धर्म-युद्ध बहुत सहायक हुए। व्यापार को भी अच्छा प्रोत्साहन मिला। पूरब की परिष्कृत सभ्यता का सम्पर्क क्रूसेड वालों को मिला। वहाँ की वस्तुओं का प्रयोग बढ़ गया। वे नयी बातें भी सीख आये। व्यापार के नये मार्ग खुल गये। किन्तु व्यापारिक उन्नति का प्रभाव इंग्लैंड पर बहुत कम हुआ, क्योंकि इंग्लैंड संसार के राजपथ भूमध्यसागर से बहुत दूर था।

रिचर्ड को राष्ट्रीय बनाने की बात आश्चर्यजनक नहीं। वह युद्ध-कुशल और साहसी वीर होने के नाते युग का आदर्श पुरुष था। वह सरल और मुक्त प्रकृति का था। किन्तु वह 'अँगरेज़' नहीं था। उसमें अँगरेज़ रक्त बहुत कम था। अपने राज्य-काल के दस वर्षों में वह केवल दस महीने इंग्लैंड में रहा। धर्म-युद्ध से लौटने के बाद वह फ्रान्स से युद्ध मे संलग्न हो गया। शालूज के किले पर घेरा डालते समय, एक तीर से उसकी मृत्यु हो गयी। उसने मृत्युशय्या पर अपने घातक को क्षमा कर दिया। यह उसके स्वभाव के अनुकूल ही था। इंग्लैंड से इतना कम सम्बन्ध होते हुए भी उसे देश मे बहुत कुछ ख्याति मिली, जिस प्रकार स्कॉटलैंड में रानी मेरी को मिली। इंग्लैंड का रिचर्ड और स्कॉट की रानी मेरी दोनों जन्म, पालन पोषण के वातावरण और प्रकृति से फ्रेञ्च थे।

---

# अध्याय १२

## जॉन और मेगनाकार्टा

जॉन से लेकर हेनरी तृतीय तक का समय बुरे शासन का युग था। जॉन अत्याचारी था और हेनरी निर्बल। दोनों के समय में शासन में अमीरों का बहुत कुछ हस्तक्षेप रहा। इस प्रकार दोनों के शासन-काल मे अँगरेजी व्यवस्थापन विधान के प्रधान अंगों का विकास हुआ—( १ ) समस्त राष्ट्र को एक प्रतिनिधि-समिति द्वारा अपनी कार्य व्यवस्था का अधिकार और ( २ ) मन्त्रियों का राजा के प्रति नहीं वरन् पार्लियामेन्ट के प्रति उत्तरदायित्व। संक्षेप मे तेरहवीं शती को पार्लियामेन्ट के निर्माण का युग कहा जाता है। एक और बात विचारणीय है। दो राजाओं की दुर्बलता के परिणाम से उत्पन्न हुई पार्लियामेन्ट का एक तीसरे शक्तिशाली राजा की नीति ने समर्थन किया। एडवर्ड प्रथम ने, जो अपनी शक्ति से इसका नाश कर सकता था, इसका पोषण किया।

**पार्लियामेन्ट**—पार्लियामेन्ट का विकास राजा की अयोग्यता ही के कारण हुआ। अतः दोनों की शक्ति मे सानुपातिक सम्बन्ध होना अनिवार्य था। एक के सशक्त होने पर दूसरे का दुर्बल होना स्वाभाविक था। ऐसे अवसर बहुत ही कम होते हैं जब बलशाली राजा पार्लियामेन्ट को सबल बनाने का प्रयत्न करें अथवा राजा और पार्लियामेन्ट की नीति मे एकता हो, अथवा किसी तीसरी शक्ति की प्रबलता के कारण दोनों ही निर्बल हों। पहली श्रेणी में एडवर्ड प्रथम और हेनरी पचम के शासन हैं, दूसरी में हेनरी सप्तम और हेनरी अष्टम का राज्यकाल है और तीसरी में हेनरी षष्ठ का समय आता है जब अमीरों को वश में रखने मे दोनों ही असफल हुए।

रिचर्ड के राज्यारोहण काल से एडवर्ड प्रथम के काल तक राजाओं की शक्ति क्षीण रही। रिचर्ड के इंग्लैंड मे न रहने के कारण शक्ति उसके प्रतिनिधियों के हाथ में रहती थी। जॉन के दुराचारों ने विद्रोह उपस्थित कर दिया। हेनरी तृतीय नाबालिग था, अतः राज्यधिकार प्रतिनिधियों के हाथ में रहा। बड़े होने पर भी वह अशक्त सिद्ध हुआ और अपने प्रतिनिधियों पर ही विश्वास करता रहा, जिन्होंने एक दूसरा विद्रोह खड़ा कर दिया। इसलिए ये ८० वर्ष किसी भी शक्तिशाली व्यवस्थापक संस्था के विकास के अनुकूल थे।

**जॉन**—( ११८९-९९ ई० ) जॉन का अस्तित्व एक अभिशाप के रूप में था। हेनरी द्वितीय का सब से छोटा पुत्र होने के नाते उसका राज्य मे कोई भाग न था। वह 'भूमि हीन' कहलाता था। नारमंडी का अधिकार छिन जाने पर यह उपनाम भी सब प्रकार सार्थक हो गया। वह आइरिश राजाओं से मेल बढाने को भेजा गया था, किन्तु उसने उनका अपमान कर उन्हें और भी असन्तुष्ट कर दिया। फ्रान्स के राजा के साथ अपने पिता के विरुद्ध उसने षड्यन्त्र रचा। राज्य का तिहाई भाग देकर रिचर्ड ने उसे कृतज्ञता के पाश मे बाँधना चाहा; किन्तु जॉन के हृदय में कृतज्ञता के लिए तनिक भी स्थान न था। रिचर्ड को गये एक वर्ष भी न हुआ था कि जॉन इंग्लैंड आकर राजा की भाँति शासन करने लगा। भाई के बन्दी होने का समाचार पाने पर तो वह सचमुच राजा बन बैठा। धर्म-युद्ध से लौटने पर यदि रिचर्ड षड्यन्त्रकारी समझ कर जॉन का वध करा देता तो भी अनुचित न था। जॉन ने क्षमा माँग कर सन्धि कर ली। रिचर्ड ने जॉन को राज्य का कोई भाग नहीं दिया; किन्तु भाई की असामयिक मृत्यु के साथ उसको सुयोग मिला। उत्तराधिकार प्राप्त करने मे उसे कठिनाई नहीं हुई। वह इंग्लैंड का राजा स्वीकृत कर लिया गया। ब्रिटनी, नारमंडी, मेन और आञ्जू ने भी उसको अपना राजा मान लिया। उसके भतीजे आर्थर का जन्माधिकार ठुकरा दिया गया, क्योंकि वह नाबालिग था। दूसरे उसका पिता ज्योफ्रे हेनरी द्वितीय के पुत्रों में सबसे अधिक लोक-अप्रिय था। जॉन ने धीरे-धीरे प्रजा के सभी विभागों की सहायता खो दी। फ्रान्स के प्रान्त हाथ से जाते रहे, चर्च से उसका विरोध हुआ, अत्याचार के कारण अमीर और प्रजा दोनों उसके द्रोही हो गये।

**फ्रान्स के राजा से झगड़ा**—अपने भतीजे आर्थर के फ्रान्स में रहने के कारण जॉन ने फ्रान्स के राजा फिलिप आगस्टेस से मित्रता रक्खी। फिलिप को युद्ध का बहाना खोजना था। जॉन ने शान्ति असम्भव कर दी। एक्विटेन उसकी दुर्बलता की जड़ था। वहाँ उसकी माँ का अमीरों पर प्रभाव था, किन्तु जॉन की उग्रता ने उसे खो दिया। उसने अपनी पत्नी एविस ऑव ग्लौस्टर को तलाक दे दी और चर्च के विरोध करने पर भी एजावेला ऑव एनौलैम को पत्नी बनाने में उद्यत हो गया। अँगरेज अमीरों में ग्लौस्टर वंश बहुत प्रभावशाली था और इजावेला का वचन-दत्त पति ला मार्श एक्विटेन का सबसे बड़ा काउन्ट था। जॉन का यह कार्य और भी मूर्खतापूर्ण था। एक साथ सब घर बाहर उसके शत्रु हो गये। फ्रान्स के राजा फिलिप ने अवसर पाया। उसने अधीन शासक की भाँति जॉन को बुलाया। जॉन ने इनकार कर दिया। फिलिप ने युद्ध की घोषणा कर दी और आर्थर के साथ नारमंडी पर आक्रमण किया। ला मार्श और आर्थर ने मिराबो के गढ़ को घेरना चाहा, जहाँ जॉन की माँ थी। जॉन ने वीरता का परिचय दिया और छापा मार कर आर्थर को बन्दी कर लिया। पश्चात् उसने उसकी हत्या करा दी। उससे शत्रुओं को उत्तेजना मिली। फिर भी यदि जॉन मुस्तैदी दिखाता तो वह नारमंडी की रक्षा कर सकता था, क्योंकि रिचर्ड ने साईन नदी के किनारे एक दुर्ग बना रखा था, जो इंग्लैंड से सहायता आने तक शरण प्रदान करने के लिए काफ़ी मजबूत था। एक वर्ष तक किले ने काम दिया किन्तु फिर रसद के अभाव के कारण उसका विनाश हुआ। जॉन ने कोई प्रयत्न नहीं किया। उसके पतन के साथ फ्रान्स में अँगरेजी शक्ति का भी पतन हो गया।

**अँगरेजों में जातीय एकता का विकास**—बोर्डो, दक्षिणगुयें और अँगरेजी चेनेल के टापुओं को छोड़ कर फ्रान्स के सभी प्रान्त फिलिप के हाथ में चले गये। यह "भूमि-हीन" जॉन का विनाश था, उसकी अँगरेज़ी प्रजा का नहीं। फ्रेंच प्रान्तों के कारण इंग्लैंड को अधिक भार उठाना पड़ता था। उनके चले जाने से इंग्लैंड का बोझ हलका हो गया। तब से वहाँ एकत्व और संगठन का एक नवीन भाव उदय हो गया। अब वे यथार्थ में अँगरेज हो गये।

**चर्च से झगड़ा**—जॉन का कार्य-क्षेत्र इंग्लैंड तक ही परिमित रह जाने पर शीघ्र ही घृणा का केन्द्र बन गया। १२०५ ई० में ह्यूबर्ट वाल्टर की जो केन्टरबरी का आर्कबिशप था, मृत्यु हो गयी। उसे ११९३ ई० में रिचर्ड ने नियुक्त किया था और उसने कई पदों पर काम किया था। उसके उत्तराधिकारी के निर्वाचन का अधिकार केन्टरबरी के मंकों का था। यद्यपि निर्वाचन का स्थान हेनरी प्रथम की सन्धि के अनुसार राज-सभा थी, किन्तु उसी समय केन्टरबरी प्रान्त के बिशपों से मंकों का विरोध था। वे निर्वाचन में भाग लेना चाहते थे। बिशप और राजा दोनों के हस्तक्षेप से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने चुपचाप सभा कर रेजिनाल्ड को चुन लिया और

मंकों के एक दल के साथ उसे पोप के पास निर्वाचन की स्वीकृति के लिए भेज दिया। रेजिनाल्ड की जबान चुप न रह सकी। भेद खुल गया। राजा ने क्रुद्ध होकर दूसरे निर्वाचन द्वारा जॉन डिग्रे को चुनने के लिए मंकों को विवश किया और दूसरा दूत-मंडल रोम भेजा। पोप ने दोनों को अस्वीकृत कर दिया। एक का निर्वाचन छिपे-छिपे हुआ था, दूसरे का राजा की धमकी से। चतुर पोप ने अपने मन के अनुकूल आर्कबिशप नियुक्त कर अपना प्रभाव इंग्लैंड में बढ़ाने के लिए यह अवसर अच्छा समझा। उसने एक अपना व्यक्ति चुनने को मंकों से कहा। उसके व्यक्ति का निर्वाचन भी डि ग्रे के निर्वाचन की भाँति मजबूरी से था। किन्तु उसके चुनाव की बुद्धिमत्ता के विषय में सन्देह नहीं किया जा सकता। उसने सुयोग्य अँगरेज कार्डिनल स्टीफन लॉग्टन को चुना था।

**स्टीफन लॉग्टन**—इसके बाद एक भीषण झगड़ा हुआ। जॉन ने लॉग्टन को इंग्लैंड की भूमि पर पैर रखने तक की आज्ञा देने से इनकार कर दिया। पोप ने इंग्लैंड में "इन्टरडाइट" की घोषणा कर दी जिसने वहाँ पूजा स्थगित कर दी, चर्च बन्द करवा दिये और घंटा बजना बन्द कर दिया। चर्च के भीतर विवाहोत्सव न हो सकते थे और मुर्दे भी चर्च के संस्कारों के बिना क़ब्रों में गाड़े जाते थे। जॉन डि ग्रे और विञ्चेस्टर के पीटर डि रोशे को छोड़ कर सभी बिशप पोप की ओर थे। पादरियों ने भी उनका अनुसरण किया। जॉन ने पादरियों का दमन आरम्भ कर दिया। कुछ को बाहर निकाल दिया, कुछ का भूमि-कर जब्त कर लिया और सब को ग़ैर कानूनी क़रार दिया। पोप ने इसका उत्तर बहिष्कार से दिया। जॉन पर इसका अधिक प्रभाव न पड़ा। वस्तुतः वह चर्च के धन से सम्पन्न हो रहा था और उससे सेना एकत्रित कर रहा था। अन्त में पोप ने उसे पदच्युत कर देने की धमकी दी—यहाँ तक कि उसे सिंहासनच्युत करने के लिए फ्रान्स के राजा को निमन्त्रित किया।

**जॉन की पराजय**—इससे जॉन की स्थिति की निर्बलता स्पष्ट हो गयी। यदि चर्च पर उसका प्रभुत्व होता तो बहिष्कार आदि का उस पर हेनरी अष्टम से अधिक प्रभाव न पड़ता। यदि उसकी स्थिति सुरक्षित होती तो वह पोप के सहायक फ्रान्स के फिलिप का विरोध उतनी ही सरलता से कर सकता जितनी सरलता से एलिजेबेथ ने फिलिप ऑव स्पेन का किया। किन्तु उसकी स्थिति सुरक्षित न थी। उसके बहुत से शत्रु थे। पोप की धमकी से उसे दबना पड़ा। किन्तु अधीनता की शर्तें सरल न होने पर भी उसे पोप की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। एक हजार मार्क सालाना उसे पोप को नजराना देना पड़ा और इंग्लैंड को पोप-प्रदत्त जागीर की तरह स्वीकार करना पड़ा। अपनी रक्षा के लिए उसने राज्य बेच दिया और भविष्य में इंग्लैंड में पोप का अधिकार अधिक बढ़ा दिया। यह उसकी नीचता और स्वार्थ का प्रमाण है।

**फ्रान्स से पराजय**—पोप से सन्धि हो जाने पर उसे फिलिप से भी मुक्त होने की आशा हो सकती थी। पोप ने फिलिप को अपना आक्रमण रोकने की आज्ञा भी दे दी थी। किन्तु जॉन फ्रान्स पर आक्रमण करके डाम में स्थित फ्रेञ्च जहाज़ी बेड़े पर धावा करना चाहता था। अमीरों ने उसका साथ नहीं दिया। तब जॉन ने युरोप के सम्राट् ओटो और फ़्लान्डर्स के काउन्ट को मिलाकर एक संघ रचा। ऐसे उलझे हुए प्रयासों में निश्चित सफलता के लिए यथेष्ट सहकारिता की आवश्यकता होती है। किन्तु वे ठीक समय पर सहयोग न कर सके। बूवीन में सेनाओं की मुठभेड़ हुई। फ्रेञ्च वीरता से लड़े और सब राष्ट्रों की पराजय हुई ( १२१४ ई० ) जॉन को इग्लैंड भागना पड़ा।

**मेगना कार्टा ( १२१५ ई० )**—उधर इंग्लैंड में उपद्रव तैयार थे। अमीरों ने नगरों में मिलकर एक संगठन कर लिया था और एक नीति का निर्माण करके एक नेता भी बना लिया था। यह नीति प्रजा के अधिकार स्वीकृत करने के लिए राजा को बाध्य करने की थी। स्टीफ़न लॉग्टन नेता था। १२१३ ई० में सेन्ट अल्बन्स में एक सभा हुई जिसमें अमीरों के अलावा प्रान्तीय नेता और राजा के प्रत्येक इलाके से चार चार प्रतिनिधि भी शामिल हुए। सभा में प्रजा के कष्टों और कठिनाइयों पर विचार हुआ। एक सप्ताह बाद सेन्ट पॉल में लॉग्टन ने हेनरी प्रथम द्वारा दिया हुआ नागरिक स्वतन्त्रता का एक प्रमाणपत्र अमीरों को सुनाया, और यह प्रस्ताव किया कि ऐसा ही एक प्रमाण-पत्र जॉन से लेना चाहिए। बूवीन के युद्ध से लौटकर जॉन ने अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न किया। उसने किराये की सेना एकत्रित की। पोप से भी सहायता माँगी। किन्तु अमीरों की शक्ति प्रबल थी। उसके मित्र भी अलग हो गये। १५ जून १२१५ ई० में रनीमीड मे बड़ी हिचकिचाहट से जॉन ने उस प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

प्रमाण-पत्र की ६३ शर्तों में से ४ स्थायी रूप से महत्पूर्ण हुई। बारहवीं शर्त के अनुसार तीन निश्चित करों* को छोड़ कर राज्य की साधारण सभा की अनुमति के बिना राजा कोई कर नहीं लगा सकता। चौदहवीं शर्त यह है कि राज्य की साधारण सभा के सदस्य होंगे आर्कबिशप, बिशप, अर्ल. अमीर और प्रमुख किसान। यही दो शर्तें उस सिद्धान्त की मूल हो गयीं जिसके अनुसार बिना पार्लियामेन्ट की सम्मति के राजा कर नहीं लगा सकता। उन्तालीसवीं और चालीसवीं शर्तों का यह आशय है कि "कोई स्वतन्त्र मनुष्य तब तक बन्दी, बहिष्कृत अथवा निर्वासित नहीं किया जायगा और न किसी की सम्पत्ति छीनी जायगी अथवा किसी पर आक्रमण किया जायगा, जब तक कि देश के क़ानून के अनुसार अथवा उसके समकक्षी द्वारा उसका निर्णय न हो

---

* ( १ ) राजपुत्र को नाइट बनाने का ( २ ) राजपुत्री के विवाह का और ( ३ ) राजा को क़ैद से मुक्त कराने का कर।

जायगा। और किसी को भी न्याय से वञ्चित नहीं किया जायगा।" इन शर्तों से जूरी द्वारा न्याय प्राप्त करने का अधिकार, और न्याय को, राजा अमीरों आदि से भी ऊँचा स्थान मिल गया। कानून की दृष्टि में सब बराबर गिने जाने लगे। राजा के साथ विरोध में कई सौ वर्ष तक बार-बार इन्हीं शर्तों की शरण ली गयी और १७वीं शती में राजा और पार्लियामेन्ट से विरोध में यही बात हुई। इन शर्तों से ही राजा की शक्ति को सीमित करने वाले व्यापक नियम निकाले गये। एक बात और स्मरणीय है। इस चार्टर से छोटे बड़े किसानों को भी लाभ हुआ और उनको अधिकार मिले। अतएव यह कहना ठीक न होगा कि वह किसी विशेष श्रेणी के लिए बनाया गया और अन्य श्रेणियों को उससे कोई लाभ नहीं हुआ। परन्तु मुख्यतः वह सामन्त शासन के राजा और सामन्तशाही के अमीरों का समझौता था। चार शर्तों की प्रकृति निश्चित रूप से सामन्त शासन से सम्बन्ध रखती है। चौदह शर्तों का सम्बन्ध अधीनता, विवाह, नौकरी, जब्ती आदि विषयों से है। नौ शर्तें राजा की कर लेने अथवा बढाने की शक्ति को सीमित करती हैं। चौदह शर्तें राजा की कचहरियों के उचित प्रबन्ध से सम्बन्ध रखती हैं। तेरह शर्तें राजा जॉन को बाध्य करने के लिए हैं। शेष चर्च की स्वतन्त्रता, लन्दन आदि नगरों के अधिकारों की रक्षा, देश में व्यापारियों के निर्विघ्न आने जाने की सुविधाओं और जुर्माने वसूल करने में किसानों के खेती के औजार न छीनने से सम्बन्ध रखती हैं। चार्टर में नवीनता अधिक न थी। इसका उद्देश्य जॉन द्वारा तोडे गये रीति-रिवाजों का पुनरुद्धार था। वस्तुतः राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का यह प्रारम्भ था।

चार्टर के मुद्रित हो जाने पर उसके पालन कराने की समस्या पैदा हुई। जॉन ने वचन दे दिया था, क्योंकि उस समय और कोई उपाय न था। किन्तु उसके हृदय में इसके पालन की तनिक भी इच्छा न थी। उसे बाध्य करने वाले २५ अमीरों का नाम सुन कर वह क्रुद्ध हो उठा। उसने भी अमीरों का एक दल एकत्र किया; किराये के सैनिकों की सेना सगठित की और युद्ध की तैयारी की। पोप से अपनी दी हुई शपथ से मुक्त हो जाने की उसने व्यवस्था ले ली। राजा के शत्रुओं ने यह परिस्थिति देख कर फ्रान्स से सहायता माँगी। उन्होंने वहाँ के राजा फिलिप के पुत्र लुई को राज-मुकुट देने तक का वचन दिया। लुई सेना लेकर आ गया। एक वर्ष तक गृहयुद्ध होता रहा, सौभाग्यवश जॉन अकस्मात बीमार पड़ा और न्यूयार्क मे उसकी मृत्यु हो गयी ( १२१६ ई० )। देश के लिए उसका एक मात्र वरदान उसकी मृत्यु थी।

---

# अध्याय १३

## चार्टर और उसकी संरक्षक पार्लियामेन्ट

**मेगना कार्टा; चार्टरों का पुष्टीकरण ( सन् १२१५-१२६७ ई० )**—सन् १२१५ से १२९७ तक ८० वर्ष तक चार्टर का झगड़ा चलता रहा। सन् १२१५ में जॉन ने उस पर हस्ताक्षर किये और १२९७ ई० में एडवर्ड प्रथम ने उसका समर्थन और सम्वर्धन किया। इस बीच में ८० वर्ष के अन्तर्गत पार्लियामेन्ट का विकास हुआ, और उसने काफ़ी शक्ति संगठित कर ली।

हेनरी तृतीय के शासन काल में पार्लियामेन्ट के विकास के चिह्न दिखायी देने लगे। पार्लियामेन्ट पुरानी 'राज-सभा" का प्रतिरूप न थी जो केवल शासन में भाग लेती हो। सैक्सन युग तक राजाओं की राज-सभा थी। नारमनों की 'क्यूरिया रीजिस" भी सैक्सन "वाइटेन" की भाँति थी। किन्तु वे दोनों पार्लियामेन्ट से इसलिए भिन्न हैं कि यद्यपि उनको पार्लियामेन्ट की भाँति शासन का अधिकार था, किन्तु वे प्रतिनिधियों की सभाएँ न थीं जैसी कि पार्लियामेन्ट है। पहली दोनों सभाएँ विशेष श्रेणी वालों की संस्थाएँ थीं, किन्तु पार्लियामेन्ट एक राष्ट्रीय संस्था है। इसमें शासनाधिकार और प्रतिनिधित्व का समन्वय है। इस समन्वय का प्रथम अवसर सन् १२१३ ई० की सेन्ट एल्बन्स की सभा है। तेरहवीं शती की प्रधान विशेषता महान् चार्टर की रक्षा और उसका परिवर्धन है। चार्टर ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि बिना सर्व साधारण की सम्मति के प्रजा से कोई कर न लिया जाय। सर्व साधारण की सम्मति को जानने का साधन केवल पार्लियामेन्ट है। राजा जॉन का विरोध करने वाले अमीरों को इन विकसित सामान्य-सिद्धान्तों का ध्यान भी न था। जॉन की मृत्यु के बाद ही उसके पुत्र हेनरी तृतीय का पक्ष लेने वाले दल ने चार्टर के द्वितीय संस्करण में से १२ वीं और १४ वीं धाराएँ निकाल दी थीं, जो आज उसका सार समझी जाती हैं और जो राजा के विरुद्ध पार्लियामेन्ट की शक्ति का आधार हैं।

**लिंकन में फ्रेन्च पराजय**—जॉन की मृत्यु के समय देश में गृह युद्ध की आग भभक रही थी। अमीरों ने फ्रान्स के राजा लुई को सहायता के लिए निमन्त्रित किया था। जॉन की मृत्यु के बाद उन्हें लुई से छुटकारा पाने की आवश्यकता हुई। लुई ने राज्य पर अधिकार प्रकट किया। अमीरों ने संगठित होकर हेनरी का पक्ष लिया। पेम्ब्रोक ने लिंकन में फ्रान्सीसियों को परास्त किया। डोवर में ह्यूबर्ट डि बर्जने फ्रान्सीसी बेड़े को नष्ट कर दिया। इससे लुई को निराश होकर सन्धि कर लेनी पड़ी।

**हेनरी तृतीय**—नौ वर्ष की अवस्था में हेनरी तृतीय गद्दी पर बैठा। उसके शासन का एक भाग सन् १२३२ ई० में समाप्त हो जाता है। राजा की कम उमर में उसके मन्त्रियों का प्रभाव रहा। दूसरा भाग राजा के दुर्बल चरित्र और उसकी प्रमाद-पूर्ण नीति का द्योतक है। तीसरे का प्रारम्भ सन् १२५३ ई० में हुआ। इसमें साइमन डि मोन्टफर्ड के नेतृत्व में शासन सुधार के लिए सामन्तों की उथल पुथल रही।

१२१९ ई० मे अर्ल ऑव पेम्ब्रोक की मृत्यु हो गयी। उसका पद ह्यूबर्ट डि वर्ग को मिला। उसका शासन अच्छा रहा। उसका उद्देश्य जॉन के दल के शेष पक्षपातियों का दमन करना था। फॉक्स डि ब्रिओते इसका एक उदाहरण है। नारमंडी से बुला कर जॉन ने उसे बड़ी-बड़ी जागीरें दे रक्खी थीं। बेडफर्ड कासल उसका दुर्ग था। ह्यूबर्ट ने किले पर आक्रमण किया। प्रतिरोधियों में ८० को फाँसी का दंड मिला। फॉक्स को निर्वासित कर दिया गया। दुर्भाग्यवश हेनरी ने बड़े हो जाने पर भी डि बर्ग के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित न की। डि बर्ग के प्रभावशाली परम मित्र आर्कबिशप लांग्टन की मृत्यु हो गयी थी ( १२२८ ई० )। १२३२ ई० में हेनरी ने उसे पदच्युत कर दिया। ह्यूबर्ट अन्तिम महान् न्यायधीश था।

अब कुशासन का युग आया। रिचर्ड और जॉन ने राजा की भूमि का बहुत सा हिस्सा बेच या बाँट दिया था, इसलिए जॉन के पास धन न था। कर बढ़ाना भी सरल न था। फिर भी उसके प्रधान मन्त्री विदेशी पीटर डि रोश के सम्बन्धियों को बड़े-बड़े पद मिले। हेनरी की विदेशी रानी एलिआनोर के कारण उसके चचा आर्क-बिशप, बिशप और अर्ल हो गये। राज-सभा में विदेशियों का प्रभुत्व लोगों को रुचि-कर न लगा। तब हेनरी ने फ्रान्स के साथ एक युद्ध किया और तेलबुर्ग में हार गया। फिर भी उसने पोप और फ्रेडरिक प्रथम के झगड़े में हाथ डालना अनुचित न समझा। अपने पुत्र एडमंड के लिए नेपल्स और सिसली का सिंहासन भी उसने स्वीकार कर लिया। एडमंड को सिंहासन न मिला, किन्तु युद्ध के व्यय का उत्तर-दायित्व उस पर रहा। विदेशियों से क्रुद्ध होकर सामन्तों ने राज्य-सुधार की माँगें पेश कीं। हेनरी ने बहुत से वचन तो दिये, किन्तु किसी का पालन न किया। सामन्तों के पक्ष के लिए एक नेता की आवश्यकता थी। साइमन डि मोन्टफर्ड इसकी पूर्ति के लिए उपयुक्त ठहरा।

**साइमन डि मोन्टफर्ड**—साइमन डि मोन्टफर्ड लेस्टर का अर्ल था। उसके पिता डि मोन्टफर्ड ने दक्षिण फ्रान्स में अलबीजिन्स ( एक धार्मिक क्रान्तिकारी दल ) के विरुद्ध धर्म युद्ध का नेतृत्व किया था। साइमन का विवाह हेनरी की बहन एलिआनोर के साथ हुआ था सभा में लोगों के घृणा करने के कारण वह बाहर रहता था। उसने गैस्कनी के सेनेशल की हैसियत से वहाँ के अमीरों को काबू में रखने का प्रयत्न किया था। हेनरी से सहायता न मिलने पर उसने पदत्याग कर दिया। १२५७ ई० में वह इंग्लैंड लौट आया। नौ वर्ष में उसका चरम उत्थान और पतन हो गया।

राजा का बहनोई होते हुए भी राज-परिवार उससे घृणा करता था। इसी कारण उसे देश के बाहर ही काम दिया जाता था जिससे उसके जीवन का बहुत सा हिस्सा बाहर बीता। रानी के प्रोवेन्स वाले सम्बन्धों के प्रति घृणा और अपनी दृढ़ और पवित्र प्रकृति उसके उत्थान का मूल कारण था।

प्रमत्त पार्लियामेन्ट ( १२५८ ई० )—धन की आवश्यकता के कारण हेनरी को अमीरों की सहायता खोजनी पड़ी। एक सभा हुई जो 'प्रमत्त पार्लियामेन्ट' कहलाती है। अमीर सशस्त्र आये। विदेशियों को निकाल कर उन्होंने पन्द्रह सदस्यों की एक नयी समिति और नया शासन-विधान बनाया। इस समिति का कर्तव्य शासन की निगरानी करना और अन्याय का दमन करना था। इसके नेता थे साइमन डि मोन्ट-फर्ड, रिचर्ड डि ला क्लेयर और अर्ल आव ग्लोस्टर।

किन्तु नेताओं में एक मत न हो सका। ग्लोस्टर की मृत्यु से विरोध कुछ काल के लिए शान्त हो गया। परन्तु इस बीच हेनरी ने फिर अपने वादों को पूरा न किया। उसने अपने को पोप द्वारा शपथ से मुक्त करा लिया। और पोप को इस बात पर भी राज़ी कर लिया कि वह फ्रान्स के राजा लुई नवम का इस विषय में फैसला मान ले। यद्यपि लुई सज्जन था किन्तु उस प्रश्न को स्वभावतः उसने एक राजा के दृष्टिकोण से देखा। उसने चार्टरों और लोकोपयोगी रिवाजों की सीमा में स्वच्छन्द होने का फतवा दे दिया। उसकी सम्मति से हेनरी को स्वेच्छाचारिता की स्वतन्त्रता मिल गयी।

लुई का युद्ध ( १२६४ ई० )—अब शक्ति की परीक्षा के अतिरिक्त और कुछ शेष न रह गया। साइमन ने अपनी छत्रच्छाया में अमीरों का संगठन किया। लुई में सेनाओं की मुठभेड़ हुई। हेनरी के पुत्र एडवर्ड ने योग्यता के साथ सेना संचालन किया। वह चौबीस वर्ष का था। अतः उसकी प्रकृति में गम्भीरता नहीं आयी थी। लन्दन निवासियों ने उसकी माता का अपमान किया था। इस कारण से उत्तेजित होकर उसने शेष युद्ध का ध्यान छोड़कर शत्रु का पीछा किया। इधर साइमन ने राजा की सेना को परास्त कर राजा को गिरफ़्तार कर लिया। हेनरी को 'आक्सफर्ड विधान स्वीकृत करना पड़ा और जमानत के तौर पर एडवर्ड को उनको दे देना पड़ा। अब तक साइमन के चरित्र में कोई विशेषता नहीं दिखायी दी थी। उसने अमीरों के सामान्य उपाय राजविद्रोह का उपयोग किया था। योग्य होने पर भी वह विद्रोही था। उसकी नवीन नीति ने अब यह सिद्ध कर दिया कि वह चतुर नीतिज्ञ भी था।

अमीरों में उसके सहायक कम थे। विधान स्वीकृत कर लेने पर बहुत से राजा का पक्ष लेना चाहते थे। साइमन की वास्तविक शक्ति मध्यम श्रेणी के लोगों में थी। नगरों ने और चर्च ने भी उसके पक्ष का समर्थन किया। उसे एक नयी सूझ सूझी जिससे वह 'हाउस आव कामन्स' का विधाता बन गया ब्रिटेन में प्रतिनिधियों के द्वारा शासन तो पहले से ही प्रचलित था। साइमन ने सरदारों और चर्च के प्रतिनिधियों

को तो वैसा ही रहने दिया। उसने सिर्फ यह नयी बात की कि कुछ नगरों और 'बरों' के भी प्रतिनिधियों को पार्लियामेन्ट में स्थान दे दिया। पिछली बार प्रत्येक प्रान्त से ही सामन्त बुलाये गये थे, अब साइमन ने प्रत्येक नगर से दो नागरिक प्रतिनिधि और बुलाये। साइमन नगरों में प्रभाव रखता था। नागरिकों से उसे सहायता की आशा थी। पार्लियामेन्ट की जन-सभा (हाउस ऑव कामन्स) के विभाग को बढाते हुए भी उसने रईसों और धर्माधिकारियों की संस्था (हाउस ऑव लार्ड्स) को संकुचित ही रक्खा। ४० अमीरों में से सिर्फ २३ जो उसके मित्र थे बुलाये गये थे। पार्लियामेन्ट की कार्यवाही तो इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं जितनी यह बात है कि उसने हाउस ऑव कामन्स की नींव डाल दी। प्रतिनिधियों की एक राष्ट्रीय संस्था होने के कारण वह अधिक शक्तिशाली हो गयी। उसमें जमींदारों के अलावा व्यापारियों और नागरिकों आदि को भी स्थान मिल गया। यह साइमन के कार्य का प्रारम्भ था।

साइमन का पतन—ग्लौस्टर के साथ साइमन का विरोध बढ चला था। प्रिन्स एडवर्ड जिसे लुई के युद्ध के बाद राजा साइमन के बन्धन में रखा था: भाग निकला और साइमन को नीचा दिखाने में सलग्न हो गया। उसने ग्लौस्टर से मित्रता कर ली और विदेशियों को निकाल देने तथा न्यायपूर्वक शासन करने का वचन भी दिया। एडवर्ड वचन पालन करने के लिए प्रसिद्ध था। साइमन को सहायकों से वंचित होना पडा। वह वेल्स में सेना संगठन कर रहा था कि एडवर्ड ने एक बडी सेना लेकर केनिलवर्थ पर आक्रमण किया जहाँ साइमन का दूसरा लड़का सेना बटोर रहा था। साइमन ने पुत्र की सहायता करनी चाही किन्तु एडवर्ड ने नवयुवक साइमन की सेना खड खंड कर वयस्क साइमन पर धावा बोला। उसने ईवशेम मे शरण ली। तीन ओर एवन नाम की नदी थी। केवल एक ही पुल था जिस पर भी नियन्त्रण था। उत्तर में एडवर्ड की आक्रमण के लिए सेना एकत्रित हो गयी। साइमन बहादुरी से लडता हुआ युद्ध में मारा गया।

व्यक्तिगत चेष्टा और प्रयत्न होने के कारण साइमन के कार्य के लोप हो जाने की आशंका हो सकती थी। यह सत्य है कि उसके दल का विनाश हो गया। कुछ समय में उसके पुत्रों का भी दमन कर दिया गया और राजकीय सत्ता प्रबल हो गयी। किन्तु विजय एडवर्ड की हुई थी, न कि हेनरी की। साइमन एक विद्रोही की भाँति मरा, फिर भी वह राष्ट्रभक्त और नीतिज्ञ था। स्टीफन लॉग्टन की भाँति उसने अमीरों के दल को सम्प्रदायिकता से देशभक्ति की ओर बढ़ाया। स्टीफन लॉग्टन ने पहले पोप की भक्ति से जॉन के विरोध करने पर पद ग्रहण किया था, फिर जब पोप ने राजा का पक्ष लिया तो वह पोप के विरुद्ध हो गया, उसी प्रकार साइमन ने भी विदेशी होकर राजा के विरुद्ध सत्शासन के लिए शस्त्र ग्रहण किया। वह उन विदेशियों में है, जिसका इंग्लैंड बहुत कुछ ऋणी है। वह अर्द्धफ्रेञ्च जिसने इंग्लैंड के हाउस ऑव कामन्स की नींव डाली, उस डच के समान है जिसने आगे चलकर

पार्लियामेन्ट की स्वाधीनता की रक्षा की, या उस यहूदी के समान है जिसने ग्रेट ब्रिटेन को साम्राज्यवाद का अर्थ समझाया।

---

# अध्याय १४

## एडवर्ड प्रथम और शासन-विधान

**एडवर्ड प्रथम का क़ानून प्रतिपालन**—राज्यारोहण के वर्षों पूर्व एडवर्ड अपनी योग्यता और औरुष का परिचय दे चुका था। युवावस्था में ही गैस्कनी और मार्शेज जैसे उपद्रवी प्रान्तों के शासन का भार उसे दिया गया था। साइमन डि मोन्ट-फर्ड का दमन उसकी योग्यता का प्रमाण है। फिर भी उसे स्वेच्छाचारी बनने की कामना न थी। वह क़ानूनों के अनुकूल ही शासन करना चाहता था। अतः उसने साइमन डि मोन्ठफर्ड द्वारा स्थापित पार्लयामेन्ट की शक्ति को परिपुष्ट किया। साइमन का घोर शत्रु होने के कारण उससे साइमन के प्रारम्भ किये हुए कार्य की पूर्ति की आशा न थी, किन्तु स्वभाव से क़ानून का आदर करने के कारण उसने पार्लियामेन्ट की शक्ति की ऐसी संरक्षा और वृद्धि की जिससे वह समाज के सब श्रेणियों की प्रतिनिधि हो सके।

**पार्लियामेन्ट के प्रयोग**—( १२७२-९५ ई० )—उसने साइमन की व्यवस्था की आवृत्ति की। बरों, नगरों और 'शायरों' के प्रतिनिधि उसने पार्लियामेन्ट में बुलाये ( १२७५ ई० )। यद्यपि प्रतिनिधित्व के नियम अभी स्थिर रूप में न थे, तथापि क़ानून की रचना और व्यय सर्व सम्मति से किये जाने का सिद्धान्त ज़ोर पकड़ता गया। पार्लियामेन्ट के सुधार के बीच में ही एडवर्ड बाहरी झगड़ों में फँस गया। १२९५ ई० में स्काटलैण्ड में विद्रोह हो रहा था। फ्रान्स ने स्काट लोगों से सन्धि करके गैस्कनी पर आक्रमण कर दिया। वेल्स में तीन उपद्रव हो रहे थे। तीनों युद्धों के लिए धन की आवश्यकता थी जो पार्लियामेन्ट की सम्मति से ही मिल सकता था। आपत्ति के समय में एडवर्ड ने पार्लियामेन्ट का सहयोग और उसकी सहानुभूति प्राप्त करना आवश्यक समझा। अतएव उसने १२९५ ई० में एक पार्लियामेन्ट की जिसमें अर्ल, बैरन, आर्कबिशप, बिशप, एबट, प्रत्येक 'शायर' से दो सामन्त, प्रत्येक नगर और 'बरो' से दो दो प्रतिनिधि बुलाये। यही "आदर्श पार्लियामेन्ट" कहलाती है। पादरी, सरदार और साधारण 'तीनों श्रेणियों' के लोगों का इतना पूर्ण प्रतिनिधित्व किसी पार्लियामेन्ट में नहीं हुआ। इस प्रयोग से एडवर्ड को निराश नहीं होना पड़ा। सर्व सम्मति से उसे धन की स्वीकृति मिली। पार्लियामेन्ट भी एक राष्ट्रीय संस्था हो गयी। तीस वर्ष के बाद ही विद्रोही साइमन की नीति के भीतर राजा की नीति बन गयी।

किन्तु पार्लियामेन्ट से एडवर्ड की कठिनाइयों का अन्त न हुआ। स्वीकृति मिल जाने पर भी धन के संचय में समय लगा। युद्धों के कारण एडवर्ड को जल्दी थी। फ्रान्स के राजा और एडवर्ड को सन्धि करने पर मजबूर करने के लिए पोप ने राज्य के पादरियों से मिलने वाला धन रोक दिया। दोनों राजाओं को पोप के इस हस्तक्षेप से असन्तोष हुआ। इधर अमीरों ने भी राजा के साथ युद्ध में जाने से इनकार कर दिया। अर्ल ऑव नार्फोक और अर्ल ऑव हर्फर्ड इस आन्दोलन के नेता थे। बन्दरगाहों के व्यापारियों से ऊन छीन कर और दरबारियों को रसद आदि के प्रबन्ध करने की आज्ञा देकर एडवर्ड फ़्लैन्डर्स की ओर चल पड़ा।

चार्टरों की परिपुष्टि ( १२९७ ई० )—राजा के राज्य के बाहर होते ही दोनों अर्लों ने लन्दन में आकर 'राज-परिषद्' को ऊन पर अवैध रूप से लगाये गये कर को वसूल करने से रोक दिया। पार्लियामेन्ट की बैठक की गयी और अर्लों ने उसमें चार्टर के समर्थन का प्रस्ताव किया। एक अवतरण और चढ़ाया गया कि बिना सर्वसम्मति के राजा उपर्युक्त प्रकार की आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं कर सकता। यह भी प्रस्ताव हो गया कि ऊन पर से नया कर उठा लिया जाय। राजपरिषद् ने उन प्रस्तावों को स्वीकृत करने का वचन दे दिया और राजा ने भी बाद में उसकी बात को पुष्ट कर दिया।

१२१३ ई० में सामान्य सदस्यों का पार्लियामेन्ट में प्रवेश हुआ। १२९५ ई० में यह नियम पक्का बन गया। इस प्रकार मेगना कार्टा के सब से अधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की पुष्टि १२९७ ई० में हुई। चार्टर पर ८० वर्ष तक झगड़ा चलता रहा। अन्त में नेशन की विजय और प्रतिनिधियों की पार्लियामेन्ट की सृष्टि हुई जो उन अधिकारों की रक्षा कर सके। पार्लियामेन्ट में अभी अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति न थी। उसका उदय अमीरों के विद्रोह से हुआ था; एडवर्ड जॉन की भाँति वचन देकर पलट जाने वाला न था। वह कानून का पालन करने वाला था। उसने चार्टर की शर्तों को स्वीकृत कर लिया।

पार्लियामेन्ट—तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक पार्लियामेन्ट का निर्माण हो गया। प्रतिनिधि-शासन-समिति का बीज रूप होते हुए भी आज की पार्लियामेन्ट से उसमें बहुत अन्तर था। एक यह कि उस समय पार्लियामेन्ट में लार्ड्स और कामन्स दोनों साथ बैठते थे। उसका विभाजन एडवर्ड द्वितीय के काल में हुआ। दूसरा यह कि पार्लियामेन्ट के अधिवेशनों का कोई निश्चित समय न था। वे राजा की इच्छा पर निर्भर थे। तीसरा यह कि राजा और मन्त्रियों पर उसका अधिकार सीधा न था। वह नियम व्यवस्था भी नहीं करती थी। उसका अधिकार राजा से केवल प्रार्थना करने का था। राजा उसे स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकता था। वह मन्त्रियों का निर्वाचन भी नहीं करती थी। शासन में उसकी सम्मति प्रायः नहीं ही ली जाती थी। राजा की कृपा पर ही उसका अस्तित्व और सारा महत्व अवलम्बित था। सारांश यह कि उसमें

अपना व्यक्तित्व न आ पाया था। वह राजा की प्रकृति का प्रतिबिम्ब मात्र थी। पार्लियामेन्ट की सामान्य सदस्यता में कोई आकर्षण न था। समय और व्यय के डर से एक बार आकर लोग फिर आने से छुटकारा पाने की ही सोचते थे। नये और अनुभवहीन लोगों की सभा में आत्मबल की कमी स्वाभाविक है। इसलिए बहुत काल तक पार्लियामेन्ट एक ऐसे अस्त्र की भाँति रही जिसका उपयोग किया जा सकता था, किन्तु जिसमें स्वयम क्रियात्मक शक्ति न थी। फिर भी उसमें उन्नति का अंकुर मौजूद था। वह नेशन की प्रतिनिधि थी।

**एडवर्ड और अँगरेजी कानून**—एडवर्ड प्रथम और पार्लियामेन्ट का विवरण उसकी कानून रचनाओं के बिना अधूरा-सा है। वह पार्लियामेन्ट का ही नहीं, बल्कि अँगरेजी क़ानून का भी निर्माता है। उसके जमाने के वे कानून, जो बाद को रद्द नहीं किये गये, आज तक जीवित हैं। उसके समय में कानून और न्याय की अच्छी खासी व्यवस्था की गयी थी। विविध प्रकार के न्यायालयों में कार्य का विभाजन करने वाले बहुत से नियमों के अलावा उसने शान्ति स्थापन का भार कर्मचारियों की एक संस्था को दे दिया, जो 'शान्ति-रक्षक' कहलायी। एडवर्ड तृतीय के समय से ये कर्मचारी कुछ अधिक शक्ति मिल जाने से स्थानीय शान्ति के अधिष्ठाता बन गये। इनके विषय में दो बातें विचारणीय हैं। एक तो उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता था, और दूसरे उनकी कोई क़ानूनी शिक्षा नहीं होती थी। फलतः न्याय सामान्य जीवन के सम्पर्क में रहा। पदैषणा वाले अधिकारी वर्गों के दल से वह अच्छा था। वेतन के लिए सेवा की अपेक्षा कर्तव्य के लिए सेवा श्रेष्ठ है। किन्तु जिनके पास धन की कमी है, वे लोग अवैतनिक सेवा नहीं कर सकते।

**तीन महान् विधान**—एडवर्ड प्रथम के शासन के तीन महान् विधान स्मरणीय हैं। इन तीनों का सम्बन्ध भूमि ही है। प्रत्येक जमींदार अथवा सामन्त की शक्ति और सम्पत्ति उसकी रियाया पर निर्भर रहती थी। आसामी अपने जीवन भर कुछ सेवा और कर देते थे। मरने पर उनके उत्तराधिकारी अपने अधिकार पाने के लिए जुर्माना देते थे। उनके स्वामी नहीं चाहते कि उनकी ऐसी परिस्थिति रहे जिससे वे जीवन-काल में अपने कर्तव्य का ठीक समय पर पालन न कर सकें और यथासमय मरते रहें। यह अन्तिम कार्य केवल प्रकृति पर ही अवलम्बित न था। कुछ ऐसे भी आसामी थे जो अमर थे, जैसे मठाधीश आदि जिनमें आदमियों के बदलते रहने पर संस्था या व्यक्तित्व अमर रहता है। उन संस्थाओं से अधिकार-परिवर्तन पर, बालिग़ होने अथवा विवाह करने के मौक़ो पर जमींदार को कोई लाभ नहीं हो पाता था। इसके अलावा धर्मार्थ अथवा परलोक में पुण्य के लिए भी लोग अपनी ज़मीन धार्मिक संस्थाओं को दे दिया करते थे, जिससे जमींदार की हानि होती थी। यही नहीं, चालाक लोग अपनी जमीन दिखावे के लिए धार्मिक संस्थाओं को देकर फिर उससे हल्की शर्तों पर वापिस ले लिया करते थे। एडवर्ड प्रथम के

'मोर्टमेन विधान' ने भूमि के ऐसे क्रय-विक्रय और आदान-प्रदान को बन्द कर दिया जिनके कारण भूमि से जमींदारी लाभ की हानि होती हो। जमींदारों को यह नीति स्वभावतः रुचिकर रही।

दूसरा विधान भी जमींदारों को ज़ाहिर में सन्तोषप्रदायक था। इसके द्वारा जमींदारों को अपनी जमीन को दूसरे लोगों को उठाकर अपने अनुवर्तियों की सख्या बढ़ा लेने का अवसर जाता रहा। राजा और बड़े जमींदार इस प्रथा को पसन्द नहीं करते थे, क्योंकि उससे कई उलझनें पैदा हो जाती थीं। प्रायः एक आदमी कई लोगों से भिन्न-भिन्न शर्तों पर जमीन ले लेता था। इस प्रकार कई स्वामियों की सेवाएँ निश्चित होने के कारण उनका पालन दुष्कर हो जाता था। क्रिया एम्पटोरे विधान के अनुकूल यह नियम बना कि यदि कोई आसामी किसी दूसरे आसामी से जमीन ले तो भी वह बड़े जमींदार या जागीरदार की ही रियाया माना जायगा, न कि बीच में जमीन देने वाले की। इसके अनुसार आसामी के कर्तव्यों और सेवाओं का लाभ बड़े जागीरदार को मिल सकेगा, न कि बीच वालों को। इसका परिणाम यह हुआ कि जागीरदारी प्रथा कमज़ोर पड़ गयी। क्योंकि अन्त में बड़े जागीरदारों की रियाया राजा की अधीनता में आ गयी। और राजा के अनुवर्ती छोटे-छोटे अनेक स्वतन्त्र जमींदारों की सख्या बढ गयी। यह कानून स्काटलैण्ड में लागू न था।

तीसरे विधान के अनुसार कोई मनुष्य और उसके उत्तराधिकारी भूमि से पृथक नहीं हो सकते थे। इस प्रकार बड़े घरानों के हाथ बहुत सी जमीन क़ायम रही। जायदाद और पदवियों पर सबसे बड़े लड़के का अधिकार रहने लगा। छोटों को दूसरे रोजगार या नौकरियाँ ढूँढ़नी पड़ीं और वे लोग दूसरे लोगों में मिलने लगे। इसका फल यह हुआ कि यद्यपि कुछ जमींदारों के पास बहुत जमीन चली गयी, तथापि जमींदारों की संख्या घट गयी और उनकी श्रेणी संकुचित होती चली गयी। इसी कारण सरदारों और सामान्य श्रेणियों का भेद दिनों दिन क्षीण होता चला गया। बड़े जमींदारों के छोटे लड़कों को सामान्य श्रेणी वालों की भाँति सेना और चर्च आदि में स्थान खोजना पड़ा जिसमें दोनों मिल जुल गये। फ्रान्स में ऐसा नियम प्रचलित न हुआ। इसी कारण वहाँ सरदारों और सामान्यों के बीच सदा एक खाई सी बनी रही।

---

## अध्याय १५

# ग्रेट ब्रिटेन की स्थापना में प्रारम्भिक असफलता

एडवर्ड प्रथम राष्ट्रीय विचारों वाला पुरुष था। वह केवल उदारचेता नहीं था, वरन् अपने विचारों को व्यावहारिक रूप देने का विधिपूर्वक प्रयत्न किया करता

था। अच्छा नीतिज्ञ और बलशाली राजा होने के कारण उसे अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने में बाधा न होती थी और वह स्वेच्छानुसार संगठन कर लेता था।

**नीतिविधान की स्थिरता-पार्लियामेन्ट और व्यापार**—एडवर्ड की नीति को हम "सुव्यवस्थित संगठन" की नीति कह सकते हैं। उसके दो पक्षों—क़ानूनी विधान और पार्लियामेन्ट के संगठन—की चर्चा हो चुकी है। तीसरा पक्ष इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसकी व्यापारिक नीति के प्रसार के पहले नगराधिप अपने-अपने नगरवासियों के लिए विशेष अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्न करते रहते थे। बाहर वालों के मुकाबले में नगर वालों को क्रय, विक्रय आदि की अनेक व्यापारिक सुविधाएँ थीं। बाहर वालों पर बहुत से बन्धन थे। बाहर वालों से अभिप्राय विदेशियों से नहीं वरन् उस नगर से सम्बन्ध न रखने वाले अन्य नगर-वासियों से था। अतः भिन्न-भिन्न नगरवासियों में विरोध होने के कारण व्यापार को बहुत धक्का पहुँचता था। एडवर्ड की दृष्टि राष्ट्र के कल्याण पर थी, एक नगर तक सीमित नहीं थी। उसने नगरों की इस संकुचित व्यापारिक नीति को तोड़ना चाहा। उसे एक लन्दनवासी का साउथम्पटन में जाकर विदेशी कहलाना सह्य न हुआ। उसने नगरों के ऐसे सब अधिकार तो नहीं छीने, किन्तु उनका नियन्त्रण अपने हाथ में ले लिया। राष्ट्रीय व्यापारिक नीति का स्थापन करने वाला वह प्रथम अँगरेज़ राजा था। उसके उत्तराधिकारियों ने भी उसके इस आदर्श का अनुकरण किया।

**एक प्रारम्भिक ग्रेट ब्रिटेन**—राष्ट्रीय व्यवस्थापन, राष्ट्रीय व्यापार नीति और राष्ट्रीय पार्लियामेन्ट एडवर्ड की अँगरेज़ी राष्ट्र की एकता की भावना के साक्षी हैं। एडवर्ड को इससे भी सन्तोष न हुआ। उसने ब्रिटिश जाति के एकत्व की योजना सोची और अँगरेजी छत्र-छाया में स्कॉटलैण्ड और वेल्स को एक करना चाहा। एक में वह सफल हुआ, परन्तु दूसरे में असफल।

**वेल्स के मार्शेस की विजय**—विलियम विजेता ने विल्स की सेनाओं पर अपने सबसे अधिक युद्ध-प्रिय सरदार स्थापित कर दिये थे। उनकी उद्दंडता और रण-प्रियता का उपयोग वह अपने लाभ के लिए करना चाहता था। उसका पुत्र रूफ़स भी एक आक्रमणकारी सेना के साथ दक्खिन वेल्स में घुस पड़ा था, किन्तु जब उसे अपनी भूल मालूम हो गयी तो शीघ्र ही उसने अपने पिता की नीति ग्रहण की। वेल्स का मामला उसने अपने सरदारों के हाथ में छोड़ दिया, और उन्हें यह वचन दे दिया कि जो व्यक्ति जितनी भूमि जीत लेगा, उतनी पर उसी का अधिकार क़ायम कर दिया जायगा। धीरे-धीरे वे सरदार वेल्स निवासियों को पीछे हटाने और अपनी सेना के लिए नये किले बनाने लगे। वेल्स निवासी उत्तरी पहाड़ियों में हट कर चले गये।

**लेवलीन, प्रिन्स ऑव वेल्स**—यदि यही सिलसिला जारी रहता तो अवश्य यह विजय भयंकर अत्याचारपूर्ण होती; किन्तु हेनरी तृतीय के समय में वेल्स-

शक्ति का पुनरुत्थान हुआ। जब सरदार आपस में लड़ रहे थे, तब वेल्स के राजकुमार ने साईमन डि मोन्टफर्ड का पक्ष लिया। बहुत कुछ खोया हुआ देश उसके हाथ आ गया। इस पर सन्तोष न करके सन् १२७७ ई० में उसने साइमन की पुत्री एलियानोर से विवाह की कोशिश की। यह तो स्पष्ट रूप से विद्रोह की भूमिका थी। मजबूरन एडवर्ड ने अपनी सेना वेल्स की ओर बढ़ा दी। लेवलीन अपनी सेना लेकर स्नोडन की घाटी में चला गया। एडवर्ड चतुर था। पहाड़ी प्रान्त में अपनी सेना नष्ट कराने के बदले उसने दर्रे बन्द कर दिये, और समुद्र तट पर एक जहाज़ी बेड़ा स्थापित कर दिया। इस चाल से लेवलीन को भूखों मरना पड़ा; फिर भी उसने शरणागत वेल्स के राजकुमार के साथ कठोर व्यवहार नहीं किया। अधीनता स्वीकार कर लेने पर उसने उसके पास कुछ शक्ति छोड़ दी और एलियानोर से विवाह की अनुमति भी दे दी।

अँगरेजी नीति के आधार पर वेल्स में राज्य-व्यवस्था करने के कारण वहाँ काफी असन्तोष फैल गया। पाँच वर्ष बाद लेवलीन के भाई डेविड ने विद्रोह किया और लेवलीन ने उसका साथ दिया। किन्तु उनके प्रयत्न असफल रहे। लेवलीन मारा गया, डेविड बन्दी हो गया। और एक विद्रोही की भाँति मृत्यु दंड का भागी हुआ। इस प्रकार वेल्स का उत्तरी भाग एडवर्ड के हाथ आ गया। उसने अपने पुत्र को प्रिन्स ऑव वेल्स की उपाधि दी, जिससे यह स्पष्ट है कि वह उस प्रदेश को स्थायी रूप से अपने आधिपत्य में रखना चाहता था। तब से सिंहासनाधिकारी राजकुमार प्रिन्स ऑव वेल्स कहलाता है। उसने वेल्स लोगों के साथ कठोरता का व्यवहार तब तक नहीं किया, जब तक कि उसकी नीति और सन्धि के प्रयत्न व्यर्थ नहीं हो गये। उनके असफल हो जाने पर ही उसने युद्ध की कठोर नीति का आश्रय लिया था। स्कॉटलैंड के साथ भी उसने इसी नीति का अनुसरण किया। नीति के असफल होने पर उसने वहाँ भी युद्ध ठाना। वेल्स कमज़ोर था, अतः दबाया जा सका, किन्तु स्कॉटलैंड ने दृढ़ता से मुकाबला किया।

**स्कॉटलैंड का निर्माण**—इस सम्बन्ध में हमें यह देखना है कि किस प्रकार स्कॉटलैंड के भिन्न-भिन्न राज्य एक शासन में आ गये, अँगरेज़ी भाषा का विकास वहाँ कैसे हुआ और इग्लैंड के राजा उसे आश्रित राज्य क्यों समझने लगे थे।

**पिक्ट, स्कॉट, ब्रिटन, और ऐंगल लोग**—स्कॉटलैंड का प्रारम्भिक इतिहास भी कुछ-कुछ इग्लैंड ही की भाँति है। आज का स्कॉटलैंड चार प्रान्तों से बना है। पिक्टलैंड में (आर्गाइलशायर को छोड़कर) फोर्थ और क्लाइड के उत्तर का भाग आर्गाइलशायर में स्कॉट (वहाँ के पूर्व निवासी आइरिश थे) राज्य; स्ट्रैथ-क्लाइड का राज्य, जो क्लाइड से रिबल तक था और अन्तिम प्रान्त लोथियन जिसमें

ऐंगल लोग रहते थे। स्कॉट राज्य तथा ब्रिटिश राज्य का उत्तरी भाग पिक्टों के अधिकार में था। किन्तु एक बड़ी विभिन्नता यह थी कि इंग्लैंड की भाषा एक ही थी और प्रमुख राज्यों की प्रजा भी एक ही जाति (ट्यूटानिक) की थी इसके विपरीत स्कॉटलैंड में कैल्ट्स और ट्यूटन्स दो जातियों का और उनकी भाषाओं का आपस में संघर्ष रहा करता था।

केनेथ—सेन्ट कोलम्बा ने एकता का पथ प्रशस्त किया। ५६३ ई० में वह आयोना में उतरा। स्कॉट लोग ईसाई हो चुके थे। कोलम्बा ने पिक्टों को भी ईसाई बनाकर एक धर्म की स्थापना की। कुछ काल तक स्थायी एकता न हो सकी। ८४४ ई० में इसका सूत्रपात हुआ, जब केनेथ मैक-एल्पिन ने, जो स्कॉट राजा था, पिक्टों पर अपना आधिपत्य जमा लिया।

यद्यपि केनेथ का प्रभुत्व दृढ न था तो भी इस घटना से दोनों केल्टिक उपजातियों—स्कॉट और पिक्ट—की नैतिक एकता का सूत्रपात हो गया और आधुनिक स्काटलैंड की नींव पड़ गयी। इसके बाद स्काटलैंड के राजाओं ने स्ट्रैथक्लाइड के ब्रिटनों पर अधिकार कायम करने का यत्न किया। इसी समय इंग्लैंड वालों ने भी उस पर दक्षिण से आक्रमण किया। परिणाम यह हुआ कि स्काट और ब्रिटिश लोगों का युद्ध ठन गया। अँगरेज राजा एडमंड ने डेनों के आक्रमण से डर कर स्काट राजा से मित्रता कर लेना उचित समझा और स्ट्रैथ-क्लाइड उसको दे दिया। इस पर सन् १०१८ तक स्काटलैंड के राजा का प्रभुत्व वहाँ जम गया। अब रहा लोथियन। वहाँ पहले नार्थम्ब्रिया के सैक्सन लोगों का अधिकार था जिन्हें डेनों ने जीत कर अपना अधिकार कायम किया। किन्तु जब अँगरेज राजा से पोतों ने डेनों को परास्त किया, तब उसने लोथियन को स्काट राजा को दे दिया। कारण यह था कि स्काट राजा ने एडेम्बरा पहले ही ले लिया और उसके आसपास के लोथियन प्रदेश को भी लेना चाहता था। उत्तर में उतनी दूर के प्रदेश की रक्षा करना कठिन समझ कर ही एडगर ने डन्स्टन की सम्मति से लोथियन स्काट राजा के सुपुर्द कर दिया। कुछ समय बाद नार्थम्ब्रिया के अर्ल ने भी डरहम के युद्ध मे हार कर (१०१८ ई०) लोथियन पर स्काटलैंड के राजा का आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

अँगरेजी भाषा का प्रचार—लोथियन सम्पन्न, उपजाऊ और सभ्य प्रान्त था। वहाँ अँगरेजी भाषा प्रचलित थी। लोथियन से अँगरेजी भाषा स्काटलैंड में किस तरह फैली, इसी पर यहाँ विचार किया जायगा।

मैकबेथ (सन् १०४०-५७ ई०) के राज्य से इसका आरम्भ होता है। शेक्सपियर का नाटक इस विषय में भ्रामक है। उसके नाटक का मैकबेथ निर्दय और अत्याचारी है। मोरे के सरदार मेकबेथ ने निस्सन्देह डंकन की हत्या कर राज्य प्राप्त किया था, किन्तु उसने १७ वर्ष तक अच्छा राज्य किया। अपनी स्त्री के

नाते उसका राज्य पर अधिकार भी था। किन्तु अन्त में डकन के पुत्र मैलकम तृतीय ने उसे परास्त कर दिया और मार डाला।

मैलकम तृतीय ( कैनमोर ) ( १०५७-९३ ई० ) के चौदह वर्ष इग्लैंड मे बीते थे। वह अँगरेजी भाषा को मातृभाषा के बराबर जानता था। नारमन आक्रमण के सामने उसने इंग्लैंड का पतन देखा था। उत्तर की ओर नारमन शक्ति के बढ़ने से उसे अपने राज्य की रक्षा में भी सन्देह हुआ। अतएव उसने सैक्सन राज्याधिकारी एडगर एथलिंग की बहन मारगैरेट से विवाह कर सन्धि दृढ़ कर ली। शिक्षित और सदाचारिणी होने के अतिरिक्त मारगैरेट नीतिज्ञ भी थी। पति पर उसका अधिकार था। वह उसकी सलाहकार थी। उसने स्कॉट चर्च मे रोमन रीति का प्रस्ताव किया। उसने प्रत्येक ढंग से अँगरेजी रीति और भाषा के प्रचार का प्रयत्न किया। वह केल्टिक पार्टी के विरुद्ध अँगरेज दल की नेता हो गयी। अपने चारों पुत्रों के उसने एंग्लो सैक्सन नाम रखे थे।

केल्टिक दल का पुनरुत्थान—केल्टिक दल का विरोध स्वाभाविक था। मैलकम ३य की मृत्यु के बाद डोनाल्ड बेन ने अँगरेजी बोलने वाले कर्मचारियों को निकाल दिया। ऐसा प्रतीत होता था कि स्कॉटलैंड का विभाजन अनिवार्य है। किन्तु अन्त में मैलकम केनमोर के पुत्र एडगर ने नारमन सैनिकों की सहायता से डोनाल्ड बेन को परास्त किया। युद्ध के बाद नारमन सैनिक वहीं रह गये, जिससे स्काटलैंड में नयी समस्या पैदा हो गयी थी। इसके बाद भी कुछ समय तक स्काटलैंड के दो राज्यों में विभक्त हो जाने की सम्भावना रही। किन्तु जब संयुक्त स्कालैंड का राजा डेविड हुआ तब उसने दोनों दलों को सन्तुष्ट कर लिया।

इंग्लैंड में नारमन राजाओं से सन्धि—मारगैरेट के साथ मैलकम तृतीय के विवाह के और भी परिणाम थे। इंग्लैंड के प्राचीन राजाओं का सम्बन्धी होने के कारण मैलकम विजेता विलियम का शत्रु हो गया। इंग्लैंड और स्काटलैंड के युद्ध का यह एक नया कारण बन गया। इंग्लैंड पर आक्रमण करने में मैलकम मारा गया। हेनरी प्रथम ने विवाह द्वारा इस वैमनस्य का अन्त करना चाहा। उसने डेविड का बहन एडिथ से विवाह कर लिया, जो अँगरेजी इतिहास में मैटिल्डा के नाम से प्रसिद्ध है। मैटिल्डा ने स्काटलैंड मे नारमन दल की शक्ति उसी प्रकार बढ़ायी, जैसी मारगैरेट ने अँगरेज दल की।

स्कॉटलैंड मे शाही विवाह—स्काटलैंड के इतिहास में कितने ही महत्वपूर्ण अवसरों पर विवाहो द्वारा समस्याएँ हल की गयी हैं। मारगैरेट और मैटिल्डा के अतिरिक्त इंग्लैंड की मारगैरेट ( हेनरी अष्टम की बहन ), स्काटलैंड की अभागिनी मेरी, और नार्वे की कुमारी मारगैरेट का भी स्मरण हो आता है।

फालेस की सन्धि—( ११७४ ई० )—हेनरी के राजवश से जो सम्बन्ध हुआ उसका परिणाम शान्ति न होकर, युद्ध हुआ। अपनी भतीजी मॉड और स्टीफेन के

झगड़े में डेविड शामिल था। स्टैन्डर्ड के युद्ध में हार कर भी उसने नौर्थम्बरलैंड, डरहम, कैम्बरलैंड, वेस्टमोरलैंड देने पर स्टीफेन को विवश कर दिया। पर हेनरी द्वितीय ने फालेस की सन्धि से डेविड के उत्तराधिकारी को चारों प्रान्त लौटाने और अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया (११७४ ई०)। स्कॉटलैंड का विलियम कई बार इंग्लैंड आया और उसने अपना अधीनत्व प्रदर्शित किया। यदि रिचर्ड १म अपने आधिपत्य को बेच कर उसे स्वतन्त्र न कर देता तो इंग्लैंड का प्रभुत्व क़ायम रहता।

इस प्रकार दोनों देशों का सारा सम्बन्ध एक समस्या थी। अँगरेज राजाओं ने स्कॉटलैंड के राजाओं पर प्रभुत्व पाने के प्रयत्न किये थे और अपना आधिपत्य स्थापित कर दिया था। इसके उत्तर में स्कॉटलैंड वाले कह सकते थे कि, उन्होंने केवल अर्लडमों के लिए-न कि स्कॉटलैंड के लिए-आधिपत्य स्वीकार किया था। वह आधिपत्य भी रिचर्ड ने बेचकर उनको स्वतन्त्र कर दिया था। जो कुछ हो दोनों में अभी कोई राष्ट्रीय द्वेष न था। यद्यपि वे आपस में लड़ते रहे फिर भी स्टैन्डर्ड के युद्ध में स्कॉटलैंड का डेविड ड्रेगन झंडे के नीचे लड़ा था जो एल्फ्रेड का चिन्ह था स्कॉटलैंड इंग्लैंड को न तो अत्याचारी समझता था और न इंग्लैंड स्कॉटलैंड का विद्रोही। तेरहवीं शताब्दी का अधिकांश शान्तिमय था। अलेग्जेंडर द्वितीय और तृतीय ने अँगरेज राजकुमारियों से विवाह किये। दोनों ने स्कॉटलैंड में एकत्व स्थापित करने के प्रयत्न किये और इंग्लैंड से बिना लड़े झगड़े राजत्व को दृढ़ बनाया। अगली शताब्दी के दुर्भाग्य का उदय एडवर्ड प्रथम के कृत्यों से हुआ।

**एडवर्ड प्रथम और स्काट सिंहासन—स्काटिश उत्तराधिकार—अलेग्जेंडर तृतीय की मृत्यु—**अलेग्जेंडर तृतीय का शासन-काल विनाश का युद्ध था। एक एक करके राजकुमारों की मृत्यु हो गयी। स्वयम् वह अभी ४४ वर्ष का था और दूसरे विवाह से उत्तराधिकारी की आशा की जा सकती थी, पर वह आशा निष्फल हो गयी। अकस्मात् घोड़े से गिर कर राजा की मृत्यु हो गयी। उसकी पौत्री मारगैरेट, जो नार्वे के राजा की पुत्री थी, एक मात्र उत्तराधिकारिणी रह गयी। इंग्लैंड और स्काटलैंड की घनिष्टता बढ़ाने के लिए एडवर्ड ने इस अवसर पर उपयुक्त समझकर, 'अपने पुत्र प्रिन्स ऑव वेल्स का मारगैरेट के साथ विवाह करने का निश्चय किया। युक्ति अच्छी थी स्कॉटलैंड वालों से एडवर्ड ने बर्गहम सन्धि करके यह वायदा कर दिया कि विवाह हो जाने पर भी स्कॉटलैंड का राज्य स्वतन्त्र रहेगा और उसके रीति-रिवाज, स्वतन्त्रता और अधिकारों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जायगा। एडवर्ड को यह आशा थी कि दोनों को एक छत्र के नीचे आजाने से आगे चल कर धीरे-धीरे दोनों में पूर्ण एकता आपही स्थापित हो जायगी।

नाव की राजकुमारी की मृत्यु—( १२९० ई० )—दुर्भाग्यवश मारगैरेट की मृत्यु हो गयी और एडवर्ड की सब आशाओं पर पाला पड़ गया। स्कॉटलैंड का कोई उत्तराधिकारी न रहा। एडवर्ड के लिए स्कॉटलैंड से अधिक हस्तक्षेप न करना ही बुद्धिमानी थी। किन्तु उससे न रहा गया। स्कॉटलैंड पर इंग्लैंड का अधिकार स्थापित करने का उसने संकल्प कर लिया था। उसकी यह धारणा थी कि इंग्लैंड का स्कॉटलैंड पर कानूनी आधिपत्य है। उसका यह विचार और भी पुष्ट हो गया जब उसे स्कॉटलैंड के सरदारों ने राज्याधिकार के निर्णय के लिए मध्यस्थ बनाया। किन्तु स्कॉटलैंड वाले उसकी धारणा से सहमत न थे।

नौरहम—( १२९२ ई० ) जब स्काट सरदार एडवर्ड से नौरहम में मिले तो उसने यह स्पष्ट कर दिया कि वह स्काटलैंड के अधिपत की हैसियत से निर्णय करेगा। उस समय राज्य के दावादारों अथवा उनके ९ सहायकों में से किसी ने भी विरोध न किया, वरन् आधिपत्य के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। सामान्यतः स्काट जनता ने भी उसका विरोध नहीं किया। उसका विश्वास था कि एडवर्ड का निर्णय निष्पक्ष और न्यायपूर्ण होगा। ८० स्काट और २४ प्रतिनिधियों की सभा में राज्याधिकार के प्रश्न पर विचार हुआ। जान बेलियल, राबर्ट ब्रूस, और हेस्टिंग्स के अधिकार सर्व श्रेष्ठ ठहरे। नवम्बर १२९२ ई० में बेलियल गद्दी पर बैठाया गया।

बेलियल—राजा और राष्ट्र दोनों के लिए जान बेलियल का शासन लज्जा जनक था। एडवर्ड ने उससे आज्ञानुवर्ती रहने का वचन ले लिया था। किन्तु स्कॉट जाति उसे आज्ञाकारी रहने देने की तनिक भी इच्छुक न थी। शीघ्र ही झगड़ा उपस्थित हो गया। अर्ल आव फाइफ के भाई मेडकफ ने बेलियल के एक निर्णय के विरुद्ध एडवर्ड से अपील की। एडवर्ड ने स्काट राजा को अपना अधीन शासक समझ कर मुकद्दमा के लिए इग्लैंड में आने का आदेश किया। यह स्पष्ट था कि यदि वह आज्ञा उल्लंघन करता तो राज्यच्युत कर दिया जाता और यदि आज्ञा का पालन करता तो प्रजा विरोध और निरादर करती। इस प्रकार उसके सामने एक विकट पहेली पैदा हो गयी।

लाचार होकर बेलियल इंग्लैड गया। इस पर स्कॉट लोगों ने अँगरेजों की रियासतें छीन कर उन्हें स्काटलैंड से निकाल दिया। उन्होंने बेलियल को फ्रान्स के साथ सन्धि करने पर विवश किया। एडवर्ड की फ्रान्स से शत्रुता थी। अतएव स्काटलैंड भी विरोधी ठहराया गया।

एडवर्ड को ज्योंही फ्रान्स से छुटकारा मिला, वह सेना लेकर स्काटलैंड की ओर बढा। बरविक में उसने भीषण जन संहार किया और डनबर में स्कॉट सेना को परास्त कर दिया। उसने सारे देश को रौंद डाला था। बेलियर को सिंहासनच्युत करके स्कॉटलैंड पर उसने स्वयम् अपना अधिकार जमा दिया। स्कॉटलैंड की

स्वतन्त्रता का अन्त होता हुआ दिखाई देने लगा। इस प्रकार एडवर्ड ने नीति के स्थान पर शस्त्र बल का आश्रय लिया।

**स्काटलैंड की स्वतन्त्रता की कथा**—प्रारम्भ से ही बेलियल को कोई पसन्द नहीं करता था। किन्तु इंग्लैड के राजा की स्काटलैंड पर आधिपत्य स्थापित करने की चेष्टाओं का स्कॉटलैंड में विरोध होना स्वाभाविक था। अब तक एडवर्ड को स्कॉट अमीरों से ही जो प्रायः नारमन थे, पाला पड़ा था। अब उसे समस्त स्कॉटलैंड के सशस्त्र विरोध का सामना करना पड़ा था। राष्ट्रीय भावना के विकास का केन्द्र सर विलियम वालेस था। यद्यपि बहुत थोड़े अमीरों ने उसका साथ दिया, तो भी उसे काफी सहायता मिली। स्टर्लिङ्ग ब्रिज पर (जो युद्ध की दृष्टि से स्काटलैंड का महत्त्वपूर्ण स्थान था) उसने सेना एकत्र की। उसके नीचे फोर्थ को कोई सेना पार नहीं कर सकती। पच्छिम में पर्वतीय प्रदेश था।

पुल के एक ओर वालेस ने शान्ति के साथ शत्रु की प्रतीक्षा की। अँगरेजी सेना का एक भाग जैसे ही पुल के पार आया कि उसने उसे टुकड़े-टुकड़े काट डाला। क्रेसिंघम स्वयम् मारा गया और सारी सेना अस्तव्यस्त हो गयी। एक-एक करके सभी किले अँगरेजो के हाथ से निकल गये। फिर वालेस ने उत्तरी प्रदेशों में लूट मार की। बरविक मे एडवर्ड की सेना के निर्दय कृत्यों का स्काट सैनिकों ने भी अनुसरण किया। क्रेसिघम की खाल उतार कर उन्होंने एक विजय-चिन्ह के रूप में रख छोडी। निशस्त्र स्त्री-पुरुषों और असहाय बच्चों तक की हत्या कर डाली।

**फालकिर्क का युद्ध**—एडवर्ड यह सब चुपचाप सहन कर लेने वाला न था। वह फ्लैंडर्स से शीघ्र लौटा और स्वयम् स्काटलैंड की ओर बढ़ा। स्कॉटलैंड पर चढ़ाई करना तो सरल था, किन्तु स्काटों को मैदान में युद्ध करने के लिये बाधित करना कठिन काम था। अपनी सेना लेकर वालेस एडिनबरा के उत्तर में चला गया था। एडवर्ड उसको ढूँढ न पाया। किन्तु दो स्काट अमीरों ने रहस्य खोल दिया। एडवर्ड ने फालकिर्क पर वालेस को घेर लिया। सेनाओं की मुठभेड़ हुई। वालेस ने अपने सशस्त्र सैनिक तीन समूहों में रक्खे। स्काट भाला धारी सेना से एडवर्ड की अश्व सेना की पेश न चली। किन्तु एडवर्ड बुद्धिमान सेनानायक था। उसने अपनी अश्व-सेना हटा कर तीरन्दाजों को आगे बढाया। स्काट धनुर्धारी तो पहले ही हार चुके थे तीरों से भालाधारी गिरने लगे। कहा जाता है कि १५ हजार स्काट इस युद्ध में धराशायी हुए।

**वालेस की मृत्यु**—एडवर्ड ने स्कॉटलैंड की विजय में सात वर्ष लगाये। वालेस ने भी दृढ़ता पूर्वक सामना किया। अन्त में उसके अनुगामियो ने ही उसके साथ विश्वासघात कर उसे बन्दी करा दिया। इंग्लैंड में वालेस पर राजद्रोह का अभियोग चलाया गया। उसने अभियोग को अस्वीकृत किया और कहा कि यह

एडवर्ड के आज्ञापालन के लिये वचनबद्ध न था। राजा ने उसे अभियुक्त ठहराया। उसे फॉसी का दंड मिला। उसके शरीर के चार भाग करके न्युकैसिल, बरविक, स्टर्लिङ्ग और पर्थ के फाटकों पर लगा दिये गये। एडवर्ड स्काट लोगों को भावी विद्रोहों के दुष्परिणामों से सचेत कर देना चाहता था; किन्तु उसने भूल की। वालेस के साथ निर्दय व्यवहार ने स्काट वासियों मे उसके प्रति और घृणा उत्पन्न कर दी।

वालेस की मृत्यु के बाद एडवर्ड की यह धारणा थी कि उसने स्काटलैंड को दबा लिया। किन्तु एक वर्ष में ही स्कॉट लोगों को दूसरा नेता मिल गया। राबर्ट ब्रूस ने जो बेलियल के प्रतिस्पर्द्धी का पौत्र था, राज्य सिंहासन की आशा छोड़ न दी थी। अब तक उसकी देश सेवा स्काट अमीरों की सी थी। एडवर्ड का विपक्ष ग्रहण कर वह वालेस के साथ हो गया था। उसका साथ छोड कर एडवर्ड से फिर उसने सन्धि कर ली। उसने स्टर्लिङ्ग में एडवर्ड के तोपखाने का संचालन किया था और उसी समय सेन्ट एन्ड्रयूज के बिशप के साथ राजद्रोही दल में सम्मिलित हो गया था। बेलियल का भतीजा होने के कारण कोमिन उसका बलशाली प्रतिस्पर्द्धी था। वे दोनों डम्फ्रीज के चर्च में अपने अधिकारों पर विचार करने के लिए मिले। झगड़ा हो जाने पर ब्रूस ने कोमिन की हत्या कर डाली। इससे उसका सारा प्रयोजन ही नष्ट होता दिखायी दिया। उसके इस कृत्य ने शत्रु की उपस्थिति में देश में फूट पैदा कर दी। हत्या के बाद स्वतन्त्रता का झडा फहराने के अतिरिक्त उसे और कोई उपाय न सूझा।

फिर भी ब्रूस ने साहस से काम लिया। स्कोन जाकर उसने राजमुकुट धारण कर लिया और सेना-सगठन करना शुरू किया। ऐमर डि वैलेन्स ने मेथ्वन में उसके अनुयाइयो को अस्तव्यस्त कर दिया। तब उसने पहाड़ों में शरण ली। कोमिन के एक भाई जोन, लार्ड ऑव लोर्न, ने अपने बन्धु की हत्या का बदला लेने के लिए उसका पीछा किया। इन आपत्तियों से उसका शारीरिक बल और उसके साथी उसकी रक्षा करते रहे। फिर भी उसे आयरलैंड के पास रथलिन में शरण लेनी पड़ी। उसका भाई नाइगेल बन्दी हो गया और सूली पर लटका दिया गया।

१३०७ ई० मे समय पलटा। अरान जाकर समुद्र के तट पर टर्नबरी का अपना किला देख कर ब्रूस ने एक गुप्तचर भेजा और उसको यह आदेश दिया कि यदि वह आक्रमण के लिए उचित अवसर देखे तो आग जला दे। चर को कोई आशा न दिखायी दी। अतएव उसने आग नहीं जलायी। किन्तु ब्रूस और उसके साथी भ्रम में आकर उतर गये। कुछ समय तक तो उसे इधर उधर भागना पड़ा। कभी-कभी वह अपने शत्रु पर लौट पड़ता और उन्हें भगा देता। प्रत्येक विजय के साथ उसके अधिक अनुयायी होने लगे।

एडवर्ड ने एक बार फिर एक सेना लेकर स्काटलैंड पर चढाई की, किन्तु बर्ग आन; सैंड्स में उसकी मृत्यु हो गयी।

**एडवर्ड प्रथम की मृत्यु**—( १३०७ ई० ) यदि एडवर्ड जीवित भी रहता तो भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकती थी। यह सम्भव है कि वह ब्रूस को परास्त कर लेता, किन्तु वह क्रुद्ध स्कॉट जाति को शस्त्र-बल से अधीन नहीं बना सकता था। उसके प्रयत्न असफल रहे वह इंग्लैंड और स्कॉटलैंड को एक करना चाहता था, किन्तु उसने उन्हें भी अलहदा कर दिया। ब्रूस को एडवर्ड की मृत्यु से बहुत लाभ हुआ। उसका पुत्र एडवर्ड द्वितीय उतना शक्तिशाली न था। उसका शासन असन्तोष-पूर्ण रहा। इंग्लैंड मे स्वयम् उपद्रव और ईर्ष्या का समाज स्थापित हो गया। ऐसी स्थिति में स्कॉटलैंड पर अधिकार रखना सम्भव न था।

**ब्रूस का राज्यारोहण**—धीरे-धीरे ब्रूस विजय-पथ पर बढ़ता गया। एबरडीन उसके हाथ में आ गया। उसके भाई एडवर्ड ने गेलोवे जीत लिया। फ्रान्स के राजा ने गुप्त रूप से उसकी सहायता की। सन् १३१० में पादरियों ने उसे न्याय सिद्ध राजा घोषित कर दिया। एक-एक कर राक्सबर्ग, एडिंबरा आदि किले अँगरेजी अधिकार से छीन लिए गये।

**बेनोकबर्न का युद्ध**—( १३१४ ई० )—सन् १३१४ तक केवल स्टर्लिंग कासिल मुकाबिला करता रहा। एडवर्ड द्वितीय बीस हजार सेना लेकर उत्तर की ओर उसकी रक्षा करने के लिए बढ़ा। ब्रूस उसकी प्रतीक्षा में था। किले के दक्षिण में उसने अपनी सेना एकत्र कर ली थी। उसके साथ ५ हजार सेना थी और उसका भाई एडवर्ड, लार्ड जेम्स डगलस, वाल्टर, रेनडल्फ उसके सेनापति थे। किन्तु उसके साथ १० हजार सामान्य सैनिक भी थे। उसकी सेना पैदल सेना थी। अँगरेजी सेना अश्व सेना थी। २३ जून को अँगरेजी सेना दृष्टि-पथ में आ गयी। क्लिफर्ड के नेतृत्व में एक अश्व-सेना बेनोकबर्न पार कर आयी, किन्तु रेनडाल्फ ने उसे तितर-बितर कर दिया। आगे की घटना विवादग्रस्त है। कुछ इतिहासज्ञों का कथन है कि अँगरेजी सेना जहाँ की तहाँ ही रही और अगले दिन वहीं युद्ध हुआ। दूसरे कहते हैं कि एडवर्ड उत्तर की ओर चला गया और उसने बर्न पार कर कार्स में रात बितायी। विवाद का निर्णय कठिन है। युद्ध-स्थल भी अनिश्चित है। ठीक अवसर पर अपनी सामान्य सेना बुलाकर ब्रूस ने अँगरेजों को चकित कर दिया। एडवर्ड अपनी असहाय सेना छोडकर भाग गया।

**माइटन का अध्याय**—( १३१९ ई० )—बेनोकबर्न के युद्ध ने यह प्रश्न सदा को सुलझा दिया। इंग्लैड स्कॉटलैंड को परास्त न कर सका। किन्तु एडवर्ड हठी था। अँगरेजी सीमाओं पर धावे आरम्भ हो गये थे। रेनडाल्फ़ दक्षिण में योर्कशायर तक पहुँच गया। वहाँ पर घोर हत्याकांड हुआ, जो 'माइटन का भीषणकांड' कहलाता है और भी आक्रमण हुये। अन्त में १३२३ ई० में तेरह वर्ष के लिए एक सन्धि हो गयी।

**एडवर्ड तृतीय और स्कॉट**—चार ही वर्ष बाद ब्रूस ने सन्धि भंग कर

दी। एडवर्ड द्वितीय की राज्यच्युति के अवसर पर डगलस और रेनडाल्फ ने सीमाओं पर फिर धावा मारा। एडवर्ड तृतीय एक बड़ी सेना लेकर चला। जब वह आ पहुँचा तो उन्होंने इतनी दृढ़ता से सामना किया कि एडवर्ड को वियर नदी पार कर आक्रमण करने का साहस न हुआ। किन्तु स्कॉट सरदार जेम्स डगलस
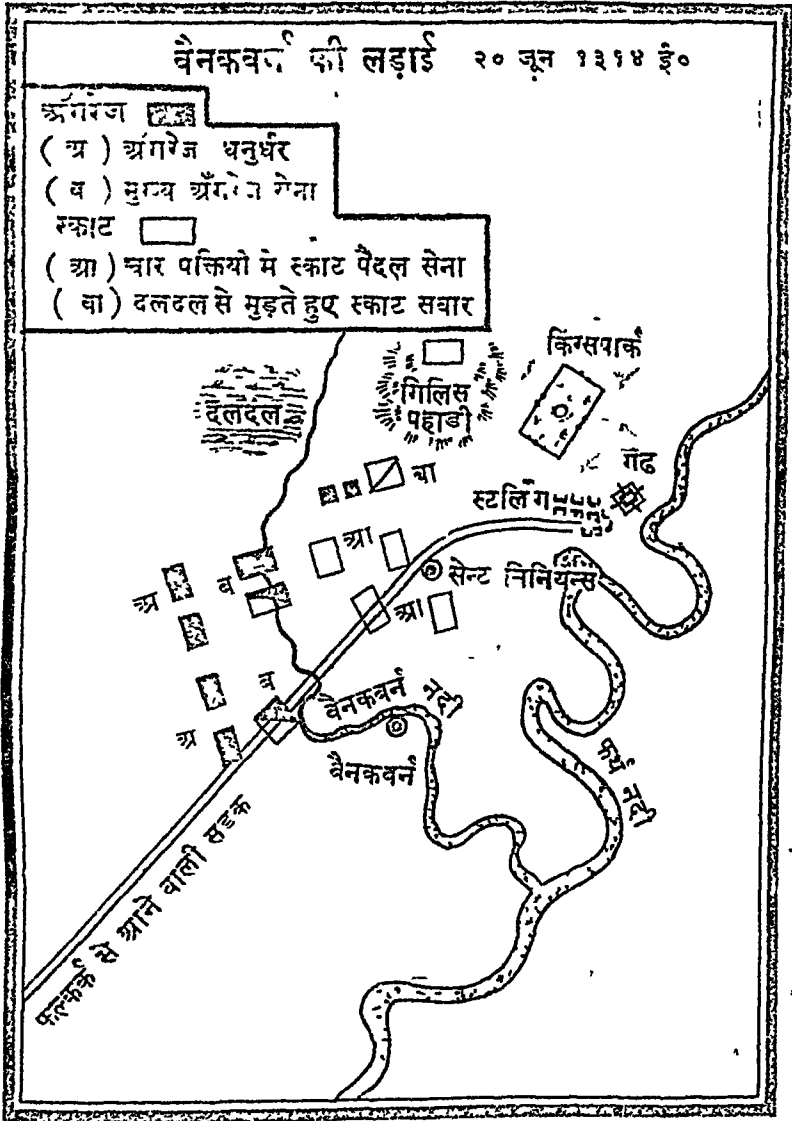
ने रात में नदी पार कर अंगरेजी शिविर पर असफल आक्रमण किया। अन्त में स्कॉट सेना रात में ही मैदान छोड़ कर चली गयी।

स्काटलैंड पर अधिकार करने का अंगरेजों का यह अन्तिम प्रयत्न था। सन् १३२८ में दोनों राष्ट्रों में सन्धि हो गयी। ब्रूस को स्कॉटलैंड का न्यायसिद्ध राजा

स्वीकृत किया गया, और इग्लैंड को अपने सारे अधिकार छोड़ देने पड़े। स्कॉटलैंड की विजय हुई। सन् १३२९ में ब्रूस का शासन-काल समाप्त हो गया। यह स्मरणीय शासन था। उसने शत्रुओं का भली भाँति दमन कर दिया था. स्कॉटलैंड और फ्रान्स के बीच मैत्री स्थापित कर दी और स्कॉटलैंड को विदेशी आक्रमण से मुक्त कर दिया था। उसने ऐसी एकता की स्थापना की कि जिससे नारमन सरदार तक राष्ट्रीय भाव से प्रेरित होकर स्कॉट लोगों की समता करने लगे। सभी ब्रूस के आज्ञानुवर्ती और राष्ट्रसेवक बन गये। परिणाम यह हुआ कि स्कॉटलैंड एक सशक्त राष्ट्र बन गया।

---

# अध्याय १६

## एडवर्ड द्वितीय

एडवर्ड द्वितीय का आचरण—विलियम प्रथम बड़ा शिकारी था। रिचर्ड प्रथम टूर्नामेन्ट के युद्ध का प्रेमी था। हेनरी अष्टम बड़ा पहलवान था। ये रुचियाँ मनुष्य की प्रकृति की द्योतक हैं। एलिजेबेथ का वस्त्रागार उसकी शान का उदाहरण है। चार्ल्स द्वितीय का विहार-प्रेम हमें उसके विषय में बहुत कुछ बतलाता है। टोप के किनारे के चारों ओर टँकी हुई सन्तों की मूर्तियाँ लुई एकादश की मूक कहानी है। भेड़ के पैर और सेब के मलीदे में जार्ज तृतीय की विशेष रुचि थी। एडवर्ड की अपनी रुचियाँ थीं। वह नाव चलाने तथा सवारी हाँकने का शौकीन था। खाई खोदने तथा छप्पर डालने के कौशल पर उसे अभिमान था। सिक्का उछाल कर हेड या टेल कहने का उसे शौक था। वह निकम्मा था, इसलिए इग्लैंड के संगठन का जो कार्य उसके पिता ने आरम्भ किया था, उसे वह जारी न रख सका। स्कॉटलैंड-विजय उसकी शक्ति के बाहर की बात थी। वह अपने सेवकों और अनुयायियों के सम्बन्ध में भी अभागा रहा। हेनरी तृतीय को भी जो उससे अधिक योग्य शासक न था, स्टीफेन लॉग्टन जैसा मन्त्री मिल गया था और साइमन डि मोन्टफर्ड जैसा विद्रोही। एडवर्ड द्वितीय के मित्र और शत्रु दोनों ही निकम्मे थे।

गेवस्टन—स्वयम् अयोग्य होने के कारण शासन एडवर्ड के कृपापात्रों के हाथ में रहता था। पियर्स गेवस्टन उसका बचपन का मित्र था। एडवर्ड प्रथम उससे बहुत रुष्ट था और उसने उसे दरबार से निकाल दिया था। एडवर्ड द्वितीय ने उसे फौरन बुला लिया और कार्नवाल का अर्ल बना कर और अपनी भतीजी से शादी कर उसे संरक्षकों का सरदार बना दिया। पद-गौरव ने गेवस्टन का दिमाग पलट दिया। यह तो स्वाभाविक था। वह उचित और चुभीले उपनाम देने में कुशल था। अमीर पार्लियामेन्ट में एकत्र हुए और यह सलाह की गयी कि उसे निकाल

देना चाहिए। उन्होंने उसे बाहर निकाल दिया। किन्तु वे उसे बाहर न रख सके। सन् १३१० में महासभा ने "लार्ड ऑर्डिनर्स" को इसलिए नियुक्त किया कि वे राजा के शासन प्रबन्ध ले लें। इन लोगों ने शासन के सुधार के लिए कई आर्डिनेन्स भी बनाये। उनमें पार्लियामेन्ट के बुलाने, गेवस्टन को देश से निकालने और जिम्मेदार दरबारी अफसरों के नियुक्त करने के लिए भी आर्डिनेन्स थे। किन्तु एडवर्ड द्वितीय ने सन् १३१२ में उसे फिर बुला लिया। यह उसका अन्त था। गिरफ्तार करके लंकास्टर और वारविक के अर्ल उसे पकड़ ले गये और ब्लैकलो हिल पर उन्होंने उसे मार डाला।

लंकास्टर का टॉमस—कुछ वर्ष तक स्कॉटलैंड के सरदारों का उपद्रव जारी रहा। बेनोकबर्न के विनाश से एक अमीर ने विशेष लाभ उठाया। वह था लंकास्टर का टॉमस जो एडवर्ड प्रथम के छोटे भाई एडवर्ड क्राउचवेक का पुत्र था। वह लंकास्टर, लीस्टर और डर्बी का अर्ल था। अपनी स्त्री से उसे लिंकन और सेल्सबरी के भी मिलने की आशा थी। कुछ दिन तक वह राज्य का शासन ठीक करता रहा। वेल्स सीमा के कुछ प्रबल सरदार उसके सहायक थे। अतः एडवर्ड ने पच्छिम में अपना नया दल बनाना चाहा। यह आगे की आपत्ति की भूमिका थी। डेस्पेन्सर्स जिन्हें एडवर्ड ने अपना कृपापात्र बनाया, सन् १३२१ में निर्वासित कर दिये गये। किन्तु राजा ने, साहसपूर्वक आक्रमण करके पच्छिमी अमीरों को दबा दिया और लंकास्टर को, उत्तर की ओर भगा दिया। राजा के मित्रों ने उसे बराब्रिज पर गिरफ्तार कर लिया। उसे अन्य साथियों के साथ फाँसी का दंड मिला। बन्दियों में रोजर मॉर्टिमर भी था।

डेस्पेन्सर्स—राजा के विरुद्ध विद्रोह के लिए केवल अवसर की आवश्यकता थी। राजा की अनुमति से सन् १३२२ में उन्होंने आर्डिनेन्सों को रद्द कर दिया और यह तय किया कि राष्ट्र के मुख्य मामलों पर पार्लियामेन्ट में विचार किया जाय जैसा कि पहले हुआ करता था। राजा की दुर्बलता और डेस्पेन्सर्स की लोलुपता ने आग भड़काने में सहायता दी। अब की बार षड्यन्त्र की रचना फ्रान्स में हुई। रोजर मॉर्टिमर रानी इजाबेला से मिला, जो फ्रान्स गयी हुई थी। रानी ने इंग्लैंड लौटने से इनकार कर दिया और अपने विवाह-प्रणों को भी त्याग दिया। सन् १३२६ में षड्यन्त्र परिपक्व हो गया। षड्यन्त्रकारी ज्योंही इंग्लैंड में उतरे, कि वे सभी लोग जो असन्तुष्ट थे, उनसे मिल गये। राजा आयरलैंड भाग जाना चाहता था, किन्तु वेल्स के दलदलों में ही डेस्पेन्सर्स के सहित गिरफ्तार कर लिया गया। राजा को सिंहासनच्युत कर बन्दी रक्खा गया और डेस्पेन्सर्स मार डाले गये। थोड़े दिनों बाद बर्कले कासल में राजा भी मार डाला गया।

इस प्रकार राज्य का आन्तरिक इतिहास सामन्त-विद्रोह का इतिहास है। स्टीफन, हेनरी द्वितीय, जॉन और हेनरी तृतीय के राज्य में यह स्पष्ट दिखायी देता

है। पहले में विद्रोह सफल रहा, दूसरे में असफल क्योंकि पहला राजा निर्बल था, दूसरा बलवान तीसरे-चौथे में उस पर एक चमकीला आवरण है। क्योंकि उनके साथ स्टीफन लागटन, साइमन डि मोन्टफर्ड के नाम और पार्लियामेन्ट की स्वाधीनता का सम्बन्ध है। एडवर्ड द्वितीय का विनाश भी इसी का परिणाम है। उस आन्दोलन की कुछ बातें विशेष उल्लेखनीय हैं।

राजा का कृपापात्र 'पिट्ठू'—सरदारों और अमीरों को नीचा दिखाने के लिए राजा कभी कभी छोटी श्रेणी के व्यक्तियों को ऊँचे पद देकर अपना पिट्ठू बना लेता था। एडवर्ड ने गेवस्टन को एक नगण्य श्रेणी से उठा कर ऊँचा पद दिया था। डेस्पेन्सर्स के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। वे राजा के मुख्य कारिन्दे थे। एक प्रकार से वे मन्त्री ही थे। उनमें और सामान्य मन्त्रियों में अन्तर इतना था कि वे राजा के कृपापात्र होने के कारण मन्त्री बनाये गये थे। बकिंघम स्वयम् राजा का कृपापात्र था, जिसे पार्लियामेन्ट हटा न सकती थी। वालपोल पार्लियामेन्ट के बहुमत का आश्रित मन्त्री था। अन्तर स्पष्ट है। कुछ लोग इन दो विभागों के बीच में भी हैं। स्टैफर्ड, डेनबी, अथवा मार्लबरो न तो पूर्णतः पार्लियामेन्ट के अधीन हैं, और न स्वतन्त्र कहे जा सकते हैं। एडवर्ड द्वितीय के शासन काल में अमीर स्वभावतः कृपापात्रों से घृणा करते थे, क्योंकि वे अपने ही को उच्च पदों का अधिकारी समझते थे। सन् १३०६ और १३२२ ई० में दो बार पार्लियामेन्ट के नाम पर राजा की शक्ति को सीमित करने के प्रयत्न किये गये। किन्तु वे सफल न हुए। कारण यह था कि पार्लियामेन्ट अभी नाम मात्र की ही थी, अपने निश्चयों को प्रचलित करने के लायक वह यथेष्ट शक्ति संगठित कर पायी थी।

लंकास्टर वंश—गेवस्टन की भाँति टामस लंकास्टर का प्रसंग भी रोचक है। वह लंकास्टर, लीस्टर और डर्बी का अर्ल था। लिंकन और सालसबरी पर उसका उत्तराधिकार था। उस युग में जब खिताब के साथ भूमि और भूमि के साथ शक्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध था, यह शक्ति-सञ्चय आपत्तिजनक था। इसकी तुलना एक दूसरे हेनरी से की जा सकती है, जो लंकास्टर का ड्यूक, लीस्टर और डर्बी का अर्ल तथा हर्फर्ड का ड्यूक था। यह समता इससे और भी गहरी हो जाती है कि वह भी राजा का चचाजात भाई था। यह हेनरी जॉन ऑव गौन्ट का पुत्र बोलिंगब्रोक है, जिसने आगे चलकर रिचर्ड द्वितीय को सिंहासन से हटा कर हेनरी चतुर्थ के नाम से राज्य किया था। यदि टॉमस भी बराब्रिज के युद्ध में जीत जाता तो वह भी एडवर्ड द्वितीय को हटा कर राजा टॉमस प्रथम बन जाता। वह लम्बे युद्ध का अग्रदूत था जिसमें लकास्टर का राजवंश बहुत दिन तक भिड़ा रहा।

जिस प्रकार लकास्टर के टॉमस की महत्वाकाक्षाएँ, लंकास्टर वंश के षड्यन्त्र तथा गुलाबों के युद्ध की पूर्वच्छाया हैं, उसी प्रकार एडवर्ड द्वितीय की नीति भी समय रीति नीति की परिचायक है। गेवेस्टन, लकास्टर, डेस्पेन्सर्स, मॉर्टिमर

तथा उनके अनुयायी मार डाले गये थे। राजनीतिक विरोधियों को चुप करने के लिए उनके क़त्ल कराने की रीति इतनी साधारण हो चली थी कि उस समय के लोगों को यह स्वाभाविक-सी जान पड़ने लगी।

---

# अध्याय १७

## शतवर्षीय युद्ध

### १—एडवर्ड तृतीय और रिचर्ड द्वितीय

### ( १३२७-१३९९ ई० )

**मॉर्टिमर का पतन**—एडवर्ड तृतीय के शासन का आरम्भ १३२७ ई० में हुआ। वह राज्यारोहण के समय केवल १५ वर्ष का था। वास्तविक शक्ति रानी इज़ाबेला, रोजर मॉर्टिमर तथा अमीरों की परिषद् के हाथ में थी। ये एडवर्ड द्वितीय के विरुद्ध एक हुए थे, किन्तु उनकी एकता चल न सकी। मॉर्टिमर और हेनरी लंकास्टर के झगड़े के कारण काउन्सिल शीघ्र भंग हो गयी। प्रत्येक दूसरे के विरुद्ध काम करने लगा। एडवर्ड द्वितीय के अर्ध-भ्राता नौर्फक और केन्ट के अर्लों ने मॉर्टिमर के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा। मॉर्टिमर ने उसे छिन्न भिन्न कर केन्ट को मृत्युदण्ड दिया। हिंसा का वह कृत्य राज्य की असफलता का प्रमाण था। इसके अलावा रानी इज़ाबेला के साथ मार्टिमर के अनुचित सम्बन्ध एवम् स्काटलैंड में काउन्सिल की नीति की असफलता के कारण मॉर्टिमर से सभी असन्तुष्ट हो गये। एडवर्ड ने शीघ्र मॉर्टिमर को गिरफ़्तार कर फाँसी दे दी। अपनी माँ इज़ाबेला को उसने बन्दी करा दिया।

**शतवर्षीय युद्ध**—एडवर्ड तृतीय के राज्य की कुंजी फ्रान्स के युद्ध में है। युद्ध शासन काल के बहुत बाद तक जारी रहा। यह शतवर्षीय युद्ध कहलाता है। किन्तु वस्तुतः यह सन् १३३८ से १४५३ ई० तक निरन्तर नहीं होता रहा। बीच-बीच में कई बार लम्बी शान्ति भी रही, किन्तु सामान्यतः सौ वर्ष तक इंग्लैंड और फ्रान्स एक दूसरे के शत्रु रहे। यह युद्ध दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—एक सफलता का और दूसरा असफलता का। विजय की दो लहरें पराजय के गर्त में लीन हो गयीं। पहली लहर एडवर्ड तृतीय के शासन के प्रारम्भिक भाग के अन्तर्गत है। इसमें क्रेसी और प्वातिये के युद्ध एवम् ब्रेताई की सन्धि, जिसमें फ्रान्स के राजा ने दक्खिनी-पच्छिमी फ्रान्स पर अँगरेज़ी अधिकार स्वीकृत कर लिया था, उल्लेखनीय हैं। इसके बाद एडवर्ड तृतीय के शासन के अन्तिम भाग में और रिचर्ड द्वितीय के शासन में पराजय की लहर उठी। इस समय फ्रांस की फौज ससेक्स में उतरी थी। दूसरी लहर

हेनरी चतुर्थ के समय मे उठ कर हेनरी पंचम के समय में पूरी ऊँचाई पर पहुँच गयी। आर्जाकूर ( एगिनकोर्ट ) में उसकी विजय क्रेसी और प्वातिये से भी अधिक गौरवपूर्ण रही। हेनरी ने फ्रान्स की राजकुमारी से विवाह भी कर लिया और फ्रान्स के राजा का उत्तराधिकारी कहलाया। उसके पुत्र हेनरी ६वें को पेरिस में फ्रान्स का राजमुकुट पहनाया गया। जिस प्रकार ब्रेताई की सन्धि एडवर्ड तृतीय के उत्कर्ष की द्योतक है, उसी प्रकार हेनरी पंचम के वैभव की पराकाष्ठा में त्र्याय की सन्धि है, किन्तु इसके बाद पराजय का युग आया। जोन ऑव आर्क के पराक्रम और बरगंडी के साथ विच्छेद से इंग्लैंड की शक्ति हिल गयी। धीरे-धीरे सब कुछ निकल गया और सन् १४५३ तक कैले के अतिरिक्त इंग्लैंड के हाथ में कुछ न रह गया।

अँगरेज धनुर्धर—इस युद्ध में एक विशेष बात यह हुई कि इस दीर्घ काल में अँगरेजों की सेना कम रहते हुए भी अनेक युद्धों में उसकी विजय रही। क्रेसी, प्वातिये और आजाकूर पर फ्रेञ्च सेना तिगुनी से कम न थी। अँगरेजों की विजय का कारण अँगरेज धनुर्धर थे। अँगरेज़ धनुर्धर एक लम्बा और कठोर अस्त्र रखते थे। वे कान तक धनुष को खींचकर बाण चलाते थे। अतः उनके तीरों मे आश्चर्यजनक तेज़ी थी। फिर भी केवल धनुर्धर युद्ध न जीत सकते थे। उन्होंने फाल्किर्क में स्कॉट सेना को विचलित कर दिया था किन्तु विजय का श्रेय अश्वसेना को मिला। एडवर्ड द्वितीय के साथ वेनकबर्न पर तीस हजार धनुर्धर थे, फिर भी युद्ध मे पराजय हुई। फिर स्कॉट सेना के सम्मुख सफलता, फ्रेञ्च सेना के सामने भी सफलता का प्रमाण न थी। स्कॉट पैदल सवार थे; किन्तु फ्रेञ्च सशस्त्र अश्वारोही। धनुर्धरों की सफलता के लिए कुशलतापूर्वक उनका उपयोग करना आवश्यक था।

शतवर्षीय युद्ध की भूमिका स्कॉटलैंड में हुई। सेन्ट माहे के वन्दरगाह में एक जलयुद्ध हुआ। एक ओर अँगरेज और गेस्कन सैनिक थे और दूसरी ओर नारमन और फ्रेञ्च। फ्रेञ्च की हार रही। किन्तु जब एडवर्ड तृतीय स्कॉटलैंड पर आक्रमण कर रहा था, फ्रान्स के फिलिप षष्ठ ने अँगरेज़ों के गेस्कनी प्रान्त पर एक सेना चढ़ा दी।

डप्लिन का युद्ध ( १३३२ ई० )—ब्रूस के वंश का स्कॉटलैंड के सिंहासन पर पूर्णाधिकार हो जाने पर वेलियल और अँगरेजी अधिकारों के पक्षपाती वहाँ से निकाल दिये गये और उनके इलाके छीन लिये गये। रॉबर्ट ब्रूस की मृत्यु के बाद जब उसका पुत्र डेविड गद्दी पर बैठा तो उन्होंने अपने इलाके प्राप्त करने का अन्तिम प्रयत्न किया। एडवर्ड ने उन्हें विशेष सहायता न दी। थोड़ी सी सेना लेकर वे फाइफ मे उतरे। एडवर्ड वेलियल और हेनरी डि बोमोन्ट उनके नेता थे। वे केवल २ हजार थे, किन्तु स्कॉट सेना २२ हजार थी। बोमोन्ट ने एक पहाड़ी पर अपनी सेना एकत्रित की। स्काट सेना ने उन्हें एक बार पीछे हटा दिया, किन्तु पहाड़ी ने उनकी सहायता की। कुछ देर युद्ध होता रहा। सेनाओं की निकट मुठभेड़ के कारण अस्त्र-संचालन का भी स्थान न रहा। बहुत से हवा की कमी से मर गये। स्कॉट सेना नाश

हो गयी और अल्पसंख्यकों के केवल ३० सशस्त्र आदमी काम आये। इस युद्ध का महत्व केवल यह है कि अधिक उपयोगी अस्त्र और सेना-संचालन की कुशलता से अल्प सेना भी भारी सेना को परास्त कर सकती है।

एडवर्ड वेलियल राजा घोषित कर दिया गया। एडवर्ड तृतीय ने उसे सहायता देने का अच्छा अवसर सोचा।

क्रेसी और प्वातिये—स्काट सहायता के लिये गैस्कनी पर आक्रमण करके फ्रान्स ने अँगरेजों को युद्ध का आह्वान दिया। एडवर्ड भी युद्ध के लिये तैयार था। फ्रान्स के अँगरेज़ राजाओं के बड़े बड़े अधिकार रहे, परन्तु जॉन के बाद वे नष्ट हो गये थे। केवल गैस्कनी अब बाकी रह गया था। उस पर आक्रमण कर युद्ध की आग भड़काना खोये हुये प्रान्तों को लौटाने की अँगरेजी राजाओं की प्राचीन रीति का अनुसरण मात्र था। एडवर्ड एक कदम और आगे बढा। उसने फ्रान्स के सिंहासन पर अपना अधिकार घोषित किया। अब तक के युद्ध गृह-युद्ध थे। किन्तु शतवर्षीय युद्ध राष्ट्रीय युद्ध था। एडवर्ड तृतीय और हेनरी पचम विदेशी विजेता थे। इसी कारण युद्ध के विकास के साथ-साथ दोनों जातियों का विद्वेष भी बढता गया।

एडवर्ड की अधिकार-घोषणा—एडवर्ड तृतीय की अधिकार-घोषणा उसकी नीति महत्वाकाक्षा के कारण हुई थी। यह बहाना यदि न किया जाता तो अँगरेजों का आक्रमण अत्याचार पूर्ण समझा जाता। इसके अलावा ऊन उत्पन्न करने वाला प्रदेश होने के कारण इग्लैंड का फ्लैन्डर्स से, जो रगाई और बुनाई का केन्द्र था, अधिक सम्बन्ध था। किन्तु यह निश्चित है कि राजा को फ्रान्स के राज मुकुट ने भी आकर्षित किया था?

एडवर्ड का दावा वास्तव मे कमजोर था। फ्रान्स के चतुर्थ फिलिप के तीन पुत्र बिना किसी पुरुष उत्तराधिकारी के मर चुके थे। एडवर्ड अपनी माँ इजावेला के नाते फिलिप का नाती था। राज्य फिलिप चतुर्थ के भतीजे फिलिप ऑव वाल्वा को मिला। फ्रेञ्च लोगों का कहना था कि 'सालिक ला' (सेलियन फ्रान्स लोगों का कानून) के अनुसार फ्रान्स के राजसिंहासन पर स्त्री का अधिकार न होने के कारण एडवर्ड का दावा व्यर्थ था। एडवर्ड ने यह तर्क स्वीकार न किया। किन्तु तीनों पुत्रो के पुत्रियॉ थीं और इन पुत्रियों मे से एक के नेवार का चार्ल्स दि बैड एक पुत्र भी था। यदि 'सालिक ला' माना जाय तो फिलिप ऑव वाल्वा उत्तराधिकारी था, यदि नहीं तो चार्ल्स दि बैड। दोनों ही तरह पर एडवर्ड का कोई अधिकार न था। इसके अलावा १३२८ ई० में गैस्कनी के फिलिप षष्ठ की अधीनता स्वीकार कर एडवर्ड उस के अधिकार को मान चुका था। किन्तु तर्क की कौन परवा करता था। यह प्रश्न तो केवल शस्त्र-बल से ही तय किया जा सकता था।

अस्तु अपने अधिकार की घोषणा करके एडवर्ड ने युद्ध छेड़ दिया। उसके दो साले, बवेरिया का सम्राट् लुई, हेनोल्ट का विलियम और फ्लेमिश नेता जेक्स

धान आर्टवेल्ड उसके सहायक थे। इंग्लैंड की सब श्रेणियों के लोगों से भी उसे खूब सहायता मिली। आक्रमण दो तरफ से हो सकता था—एक उत्तर-पूर्व से जो इंग्लैंड के निकट था और दूसरा दक्खिन पच्छिम से, जहाँ उसका आधार गैस्कनी प्रान्त था। ये दोनों ही प्रान्त व्यापारिक दृष्टि से अच्छे थे। पहले में ऊन का और दूसरे में शराब का खूब व्यापार होता था। ऐसे व्यापारिक धन से सम्पन्न प्रदेशों पर अधिकार करने वाले राजा की सहायता करने के लिये व्यापारी लोग प्रसन्नता और उत्साह से तैयार हो गये।

स्लूई (१३४० ई०)—स्लूई में युद्ध सन् १३३८ में आरम्भ हो गया। किन्तु प्रारम्भ के कुछ वर्षों में कुछ फल नहीं हुआ। स्थल पर कोई युद्ध न हुआ। एडवर्ड के सहायक मारे गये या भाग गये। स्लूई के समुद्री युद्ध में अँगरेजों की विजय हुई। अँगरेजी धनुर्धर और युद्ध कौशल की श्रेष्ठता रही।

क्रेसी का युद्ध—सन् १३४६ तक कोई निर्णायक युद्ध नहीं हुआ। एडवर्ड ने फ्रान्सीसी सेना को गैस्कनी पर आक्रमण करने से रोकने के लिये एक सेना शेर्बुर्ग पर उतारी। वह शाइन के किनारे किनारे फिरता रहा, इससे फ्रान्स के राजा को पेरिस की रक्षा की तैयारी का अवसर मिल गया। फ्रेञ्च सेना नदी के उत्तरी तट पर एकत्र हो गयी। वह रुएँ पर आक्रमण करने में असफल रहा। नारमंडी से चतुरता पूर्वक निकल, वह फ्लैमिंग्स से मिलने के लिये देश के बीच से बढ़ा। नदी पार कर वह सोम तक आ गया। टूटे पुल और सुरक्षित घाट और किले देख कर वह चकित हो गया। वह नदी के किनारे किनारे बढ़ा। किन्तु उसकी कठिनाई बढ़ती गई। एक फ्रेञ्च सेना उसका पीछा कर रही थी। सौभाग्य से किसी किसान ने एक घाट का पता बता दिया, जहाँ से एडवर्ड चाँदनी रात में चल कर नदी पार कर गया। फ्लैण्डर्स में उसे दम लेने भर का समय मिला। वहाँ उसने निश्चय कर लिया था कि यदि फ्रेञ्च लोगों से पीछा करेंगे तो वह युद्ध करेगा। क्रेसी और वाडीकूर का मैदान युद्ध के लिये उसने चुना। क्रेसी का वन दुर्गम था। फ्रेञ्च सेना के पहुँचते पहुँचते उसने अपनी सेना को सजा लिया। फिलिप अगले दिन युद्ध करना चाहता था, किन्तु फ्रेञ्च सरदारों ने उसे तुरन्त लड़ने को मजबूर किया। इसका परिणाम यह हुआ कि युद्ध अव्यवस्थित तथा निष्प्रयोजन हुआ। अँगरेज धनुर्धरों ने फ्रेञ्च सेना को छिन्न-भिन्न कर डाला। फ्रेञ्च अश्वारोहियों की अग्रिम पंक्ति अधीर होकर उन पर टूट पड़ी और एक उलझन में फँस गयी। उन पर तीरों की ऐसी वृष्टि हुई कि उनमें से एक भी अँगरेजी पंक्तियों तक न पहुँच सका। तब तक और फ्रेञ्च सेना भी चढ़ आयी। बड़ा भीषण युद्ध हुआ। फ्रेञ्च सेना अपने मृत सैनिकों के ऊपर से होती हुई ताबड़तोड़ आक्रमण करने लगी। रात तक गहरा युद्ध होता रहा। दूसरे दिन पता चला कि फ्रान्स के पन्द्रह सौ सरदार और लगभग इससे दसगुने सैनिक खेत रहे। अँगरेज सैनिक सौ के लगभग और केवल दो सरदार मरे। क्रेसी संसार के निर्णायक युद्धों में समझा जाता है, किन्तु

वस्तुतः इससे कुछ भी निर्णय न हुआ। एडवर्ड उत्तर की ओर बढ़ा और कैले में पहुँच कर उसने बहुत से फ्रेञ्च निवासियों को निकाल कर अँगरेज बसा दिये।

प्वातिये ( १३५६ ई० )—इस वर्ष बाद भी वैसी ही घटना हुई। राजा जॉन फिलिप के बाद फ्रान्स के सिंहासन पर बैठा। "ब्लैक डेथ" ( प्लेग के प्रकोप ) के कारण द्वेष कुछ हलका हो गया था। सन् १३५५ में पुनः युद्ध छिड़ा। अब की बार दक्खिन में रणक्षेत्र था। ब्लैक प्रिन्स ने बोर्दो से एक विशाल सेना पूरब की ओर बढ़ायी और लूट की। अगले वर्ष उसने उत्तर की ओर फिर धावा किया, 'लवार' तक पहुँच कर वह पश्चिम की ओर 'तूर' तक बढ़ा। वहाँ उसे ज्ञात हुआ कि फ्रान्स का राजा ब्लॉय से हट गया है। वह शीघ्र ही पीछे हट कर प्वातिये पहुँचा। दोनों सेनाएँ भिड़ते-भिड़ते बच गयी थीं। ब्लैक प्रिन्स आगे निकल गया और जॉन मौपर्तुई में उसके पास आ गया। ब्लैक प्रिन्स के साथ ७ हजार सेना थी जिसमें २ हजार पाँच सौ धनुर्धर थे। बाक़ी सब अश्वारोही थे। फ्रेञ्च २० हजार थे। अँगरेजों की परिस्थिति ऐसी ख़राब थी कि प्रिन्स ने बन्दियों को छोड़ने और सात वर्ष की सन्धि करने का प्रस्ताव किया। किन्तु फ्रान्स वालों ने स्वीकार न किया। अँगरेज पीछे हट कर निकल जाना चाहते थे किन्तु असफल होने के कारण उन्हें लड़ना ही पड़ा।

जॉन के साथ काफी सेना थी। युद्ध निश्चय था। किंतु क्रेसी की पराजय का ध्यान कर उसने अश्वारोहियों को उतर कर लड़ने की आज्ञा दी। पहले 'युद्ध' का नेतृत्व फ्रान्स के दो मार्शलों ने किया। शेष तीन 'युद्धों' का नेतृत्व दाउफाँ, ऑर्लियाँ और स्वयम् राजा ने किया। पहले मार्शलों ने आक्रमण किया, किन्तु सालिसबरी के नेतृत्व में प्रथम अँगरेजी पंक्ति ने उन्हें सरलता से रोक दिया। तब तक दाउफाँ के पैदल सैनिक आ गये। बड़े पराक्रम के बाद फ्रेञ्च पीछे हटाये जा सके। ऐसा ज्ञात पड़ता था कि अँगरेजों की पराजय निकट है। अभी ८ हजार अक्षत फ्रेञ्च सेना शेष थी। अँगरेज कुछ मृत थे, कुछ घायल। धनुर्धरों के तीरों का ऐसा अभाव हो गया कि उन्हें मृत देहों तक से तीर खींचने पड़े।

ऐसी स्थिति केवल भाग्य और कुशल नेतृत्व के कारण विजय में परिवर्तित हो गयी। ऑर्लियाँ की सेना दाउफाँ के विनष्ट दल के स्थान पर बढ़ी। इस प्रकार बाकी दल का आधा चला गया। अन्तिम खंड के साथ जान ने आक्रमण किया। प्रिन्स ने प्रतीक्षा नहीं की। अश्वारोहियों को धावा करने की आज्ञा दी। झाड़ियों का आश्रय छोड़ कर सेना शत्रुओं पर टूट पड़ी। उस मार्के के समय पर एक गैस्कन सूरमा फ्रेन्च सेना पर पीछे से टूट पड़ा। उसके पास केवल १६० आदमी थे, किन्तु वे काफ़ी थे। बड़ी हलचल मच गयी। कायर भाग गये। वीरों ने राजा का साथ दिया और गिरफ्तार हुए। राजा, उसका पुत्र फिलिप, २६ बड़े सरदार, और १६ सौ सूरमा बाकी बचे। राजा की गिरफ्तारी से ही विजय ऐसी महत्त्वपूर्ण हो गयी थी कि इससे सन्तोषजनक सन्धि होने की आशा की जा सकती थी। ब्रेताई की सन्धि ( १३६० ई० )

मे एडवर्ड को एक्विटेन, पोन्थियू और कैले पर स्वतन्त्र अधिकार मिला। जॉन को छुटकारे के लिये भारी रकम देनी पड़ी। एडवर्ड ने भी फ्रान्स के सिंहासन का अपना अधिकार और नारमंडी. मेन और आंजू के प्रान्त छोड दिये। एक शब्द में उसने छाया का परित्याग कर मूल वस्तु को ग्रहण कर लिया।
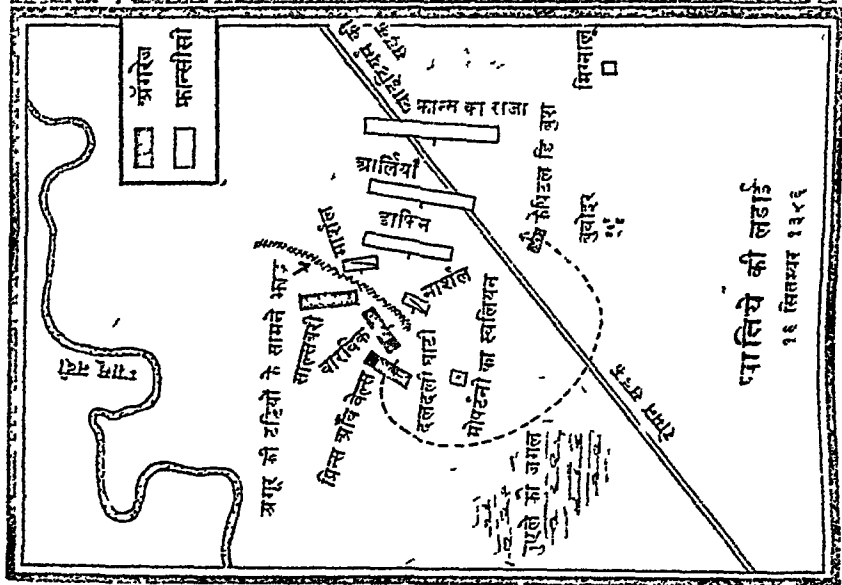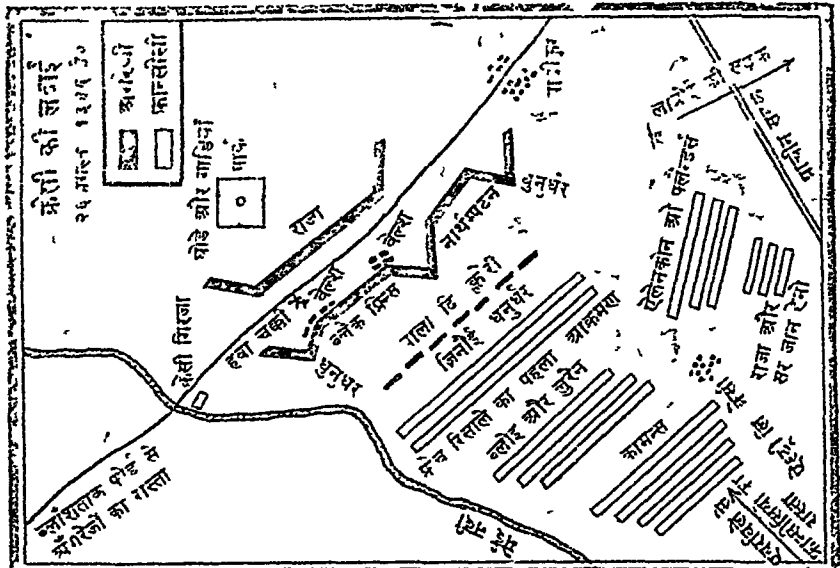
पतन का प्रारम्भ-युद्ध के परिणाम—ब्रेताई की सन्धि फ्रान्स में अँगरेजी विजय का चरम उत्कर्ष है। इस युद्ध के तीन परिणाम हुए। प्रथम,

एकितेन पर स्वतन्त्र अधिकार। दूसरे, इंग्लैंड और फ्लेमिश नगरों का घनिष्ट सम्बन्ध, जिससे इंग्लैंड प्रमुख समुद्री शक्ति, विशेष कर चैनेल में हो गया; ऊन और ऊनी माल के व्यापार की उन्नति हुई, और केले पर जो फ़्लैमिग्स को सहायता पहुँचाने तथा फ्रान्स पर आक्रमण करने का द्वार है, अधिकार हो गया। तीसरे एक ऐसी नयी युद्ध रीति

आज़ाँकूर की लड़ाई
२५ अक्टूबर १४१५ ई०
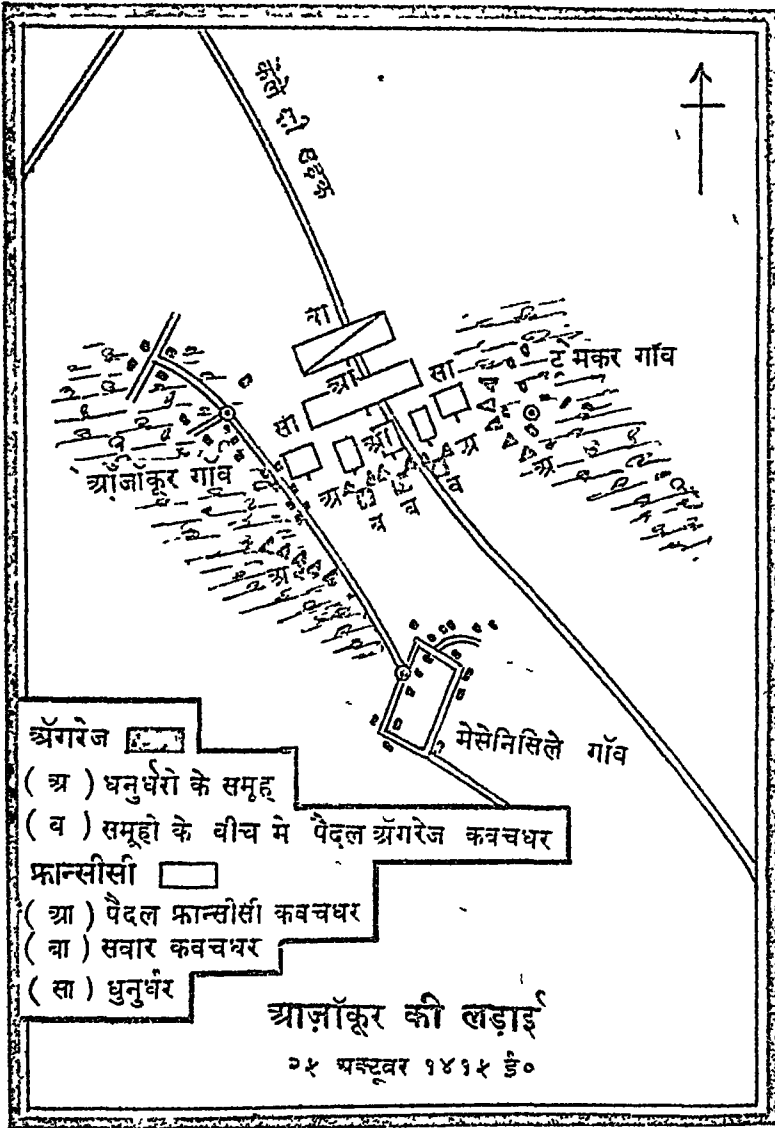
का पूर्ण विकास हुआ जिसके द्वारा प्राचीन सामन्तकालीन वीरता धनुर्धरों और पैदलों की संगठित शक्ति के सामने व्यर्थ हो गयी। यद्यपि ये लाभ बड़े महत्व के थे, किन्तु चिरस्थायी न रह सके। अतः विजय का महत्व शून्य हो गया। एडवर्ड की युद्ध-नीति

ने कुछ समय के लिये एक सीमित सफलता प्राप्त कर ली थी, किन्तु अन्त में वह असफल ही रही।

१३६० ई० से हेनरी पंचम के समय तक अँगरेज़ी इतिहास का महत्व विदेशी आक्रमणों से भिन्न बातों में है। इग्लैंड को देश के भीतर ही बहुत कुछ कार्य करना था। ब्लैक डेथ (१३४६-५० ई०) से आधी जन-संख्या नष्ट हो गयी थी। सन् १३८१ का किसान विद्रोह इसी का परिणाम था। फिर विक्लिफ और लौलार्डों ने लोगों के सम्मुख धार्मिक प्रश्न ज़ोर से उठा दिये थे। एडवर्ड तृतीय के अन्तिम वर्ष बड़े घरानों के झगड़ों में बीते। जान ऑव गान्ट और अपेलैन्ट्स के व्यवहार जो आगे चल कर गुलाबों के युद्ध में विकसित हुए, अमीरों के उस झगड़े के प्रथम परिचायक थे।

पतन का प्रथम युग—पतन के प्रथम युग में कोई विशेष घटना नहीं हुई। ब्रेताई की सन्धि का टूटना अनिवार्य था। फ्रान्स के लिये इसका पालन करना विनाशक था। एक्विटेन के सरदारों ने फ्रान्स के राजा को युद्ध छेड़ने का अवसर दे दिया। सन् १३६६ में युद्ध पुनः आरम्भ हुआ। अब की बार बड़ी सतर्कता के साथ। फ्रेंच यह सीख चुके थे कि बड़े युद्धों का परिणाम विनाशक पराजय है। उनके प्रधान सेनापति गेसलिन ने अँगरेजी सेना को आक्रमण का कभी अवसर न दिया। ब्लैक प्रिन्स और जॉन ऑव गान्ट दोनों फ्रान्स मँझाते रहे, किन्तु शत्रु से सामना न हुआ। फ्रेञ्च नगरों में क़िलाबन्द हो गये और अँगरेजों को लूटने और आग लगाने का मौक़ा उन्होंने दे दिया। उन दिनों एक सुरक्षित नगर को दमन करने का साधन अकाल पैदा करना था। कुछ विद्रोही नगर ले लिये गये। ब्लैक प्रिन्स ने लीमोज ले लिया, किन्तु उसके रक्षकों को कत्ल करवा कर स्थिति और भी भयंकर कर दी। भय उत्पन्न करने के स्थान पर इस घटना ने विद्रोहियों को हठी और दृढ़ बना दिया। बराबर घेरा डालने, छापा मारने और अव्यवस्थित ढंग से लड़ने के कारण एवम् विरोध राष्ट्रीय होने के कारण अँगरेज़ी सेना को परास्त होना पड़ा। ब्लैक डेथ के कारण आदमियों की कमी हो गयी, धन व्यय हो गया। टैक्स बढ़ने और बराबर लड़ने-भिड़ने के कारण देश युद्ध से उकता गया था। ब्लैक प्रिन्स जैसा महान नेता मर रहा था। बोरडो और बेयान को छोड़ कर धीरे धीरे फ्रान्सीसियों ने एक्विटेन और गेस्कनी ले लिये। भाग्य ने ऐसा पलटा खाया कि सन् १३७७ में इग्लैंड को केन्ट पर आक्रमण करने वाले फ्रेञ्चों से रक्षा करने की नौबत आ गयी। रिचर्ड द्वितीय के समय में तो एक फ्रेञ्च सेना ससेक्स में पहुँची थी; किन्तु अब युद्ध समाप्त हो गये थे। दोनों देश एक दूसरे पर चोट अवश्य करते रहे, परन्तु अधिकांश समय चिन्तापूर्ण शान्ति में ही बीता। दोनों एक दूसरे पर आँख गड़ाये अवसर ताकते रहे। किन्तु घरेलू झगड़ों के कारण दोनों असमर्थ रहे।

## २—हेनरी चतुर्थ, हेनरी पंचम, हेनरी षष्ठ

**बरगंडी और आरमॉग्य**—इंग्लैंड ने अपनी खोयी हुई शक्ति पहले प्राप्त की। जिस समय हेनरी चतुर्थ पर्सीज़, ग्लेन्डोवर तथा स्काट के संघ को परास्त कर और राजमुकुट ग्रहण कर स्थिति को सुदृढ कर रहा था, उस समय फ्रान्स का पतन हो रहा था। चार्ल्स षष्ठ पागल था। बरगंडी और आर्लियाँ के वंश शासन के लिये लड़ रहे थे। फ़्लान्डर्स और उत्तर-पूर्व प्रदेश में ड्यूक ऑव बरगंडी का जोर था। आर्लियाँ दल अथवा आरमॉग्य खानदानी अमीरों का दल था। उनका केन्द्र ल्वार के दक्षिन में था। सन् १४०७ में बरगंडी-दल वालों ने ड्यूक ऑव आर्लियाँ को मार डाला। तब से फ़्रान्स की अवस्था इन्हीं दोनों दलों की शक्ति के हेर-फेर पर अवलम्बित रही। हेनरी चतुर्थ ने दोनों से गुप्त मन्त्रणा की। अन्त में आरमॉग्या की सहायता कर खोये हुये अँगरेज़ी प्रान्त पाने की चेष्टा की। फ्रान्स इतना अस्तव्यस्तय था कि एक अँगरेजी सेना क्लैरेन्स की अध्यक्षता में नारमंडी में उतर कर बोर्डो तक बिना रोक-टोक चली गयी। गुलाबों के युद्ध के दुर्दिनों में भी किसी फ्रेञ्च सेना को विना रोक-टोक ब्रिस्टल योर्क तक अबाधित आ जाने की हम कल्पना नहीं कर सकते।

**हेनरी पंचम-युद्ध का पुनरारम्भ**—हेनरी चतुर्थ की मृत्यु हो गयी। वह अपनी आशाओं की पूर्ति अपने उत्साही पुत्र हेनरी पञ्चम के लिये छोड़ गया। वह एडवर्ड तृतीय से अधिक सफल रहा। सौभाग्य से वह फ्रान्स के राजा का उत्तराधिकारी मान लिया गया। यदि वह जीवित रहता तो वह फ्रान्स का राजा होता, जैसे कि उसका पुत्र हेनरी ६ ठा हुआ। हेनरी पंचम को एडवर्ड से अधिक सफलता इसलिये मिली कि उसका भी कार्य एडवर्ड के कार्य से सरल था। उसने फ्रान्स को विजय नहीं किया। आधे फ्रान्स की सहायता से उसने दूसरे आधे पर अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रसंग में बरगंडी के साथ अँगरेजों का सम्बन्ध बड़ा महत्वपूर्ण था। इसकी दृढता अथवा शिथिलता का प्रभाव घटनाओं पर बहुत रहा।

हेनरी चतुर्थ आरमॉग्या दल की ओर झुका था। उसके शासन के अन्तिम दिनों में पिता पुत्र का सम्बन्ध अच्छा न था। अतः पुत्र ने उसके विपरीत मार्ग ग्रहण किया। आरमॉयों ने उसे फ्रान्स की राजकुमारी के साथ विवाह और एक्विटेन का प्रान्त और ६ लाख स्वर्ण क्राउन दहेज में देने का प्रस्ताव किया। किन्तु हेनरी की आकांक्षा फ्रान्स का राजा बनने की थी। उसने हेनरी २य के समय की फ्रान्स की रियासत के वारिस मिलने का प्रसंग एवम् एडवर्ड ३य का फ्रान्स के राज्य के अधिकार का दावा पेश किया। अस्वीकृत होने पर युद्ध अनिवार्य हो गया। हेनरी युद्ध चाहता भी था।

**आजॉकूर का युद्ध**—१४१५ ई० में युद्ध की आग भड़क उठी। हेनरी को पार्लियामेन्ट और धर्माधिकारियों से धन की खूब सहायता मिली। १ हजार आदमियों के साथ नारमंडी में उतर कर उसने हारफ्लूर पर घेरा डाला। पाँच सप्ताह

में उसने उसे ले लिया। किन्तु उसकी तिहाई सेना काम आयी। हेनरी बिना किसी उद्देश्य के कैले के तट की ओर बढा।

यदि फ्रेञ्च अवसरों का कुशलता पूर्वक उपयोग करते तो जीत जाते। बरगंडी और आर्लियाँ दलों में कुछ सन्धि सी हो गयी थी और एक प्रबल सेना कॉन्स्टेबिल के नेतृत्व में तैयार हो गयी थी। हेनरी वेग से भाग रहा था। किन्तु अक्टूबर १४१५ ई० में वर्षा हो जाने से सोम नदी पार करने में कठिनाई हुई और वह कैले से दूर ही दूर होता गया। इसी बीच में कॉन्स्टेबिल ने नदी पार कर तीस हजार सेना के साथ आजाँकूर में हेनरी का कैले जाने का रास्ता रोक दिया।

ऐसा प्रतीत होता था कि कॉन्स्टेबिल की विजय होगी। उसकी सेना बड़ी थी, हथियार अच्छे थे। वह अपने मन के अनुकूल युद्ध-स्थल चुन सकता था। यदि वह युद्ध टालता रहता, तो भी हेनरी को अकाल के कारण हार माननी पड़ती। युद्ध अनिवार्य हो जाने पर भी उसे रक्षा करने भर की आवश्यकता थी। अँगरेजों पर अकस्मात् आक्रमण करना ही पराजय का एक मात्र कारण हो सकता था। क्रेसी और प्वातिये अँगरेजी युद्ध-कौशल के प्रमाण थे। आजाँकूर का युद्ध क्रेसी और प्वातिये के युद्धों से मिलता-जुलता है। फ्रान्सीसी सेना के लिये युद्ध-भूमि बहुत सकीर्ण थी। हेनरी के कमज़ोर सैनिक अगों को वन की रक्षा मिल गयी थी। डि एल्बर्ट लड़ना नहीं चाहता था। अँगरेज़ी सेना ने दो तीन घंटे आज़ाँकूर पर प्रतीक्षा की, किन्तु फ्रान्सीसी हिले नहीं। हेनरी ने अपनी सेना कुछ बढायी। धनुर्धरों ने तीर वर्षा आरम्भ कर दी। फ्रान्सीसी सेना को विवश होकर आक्रमण करना पड़ा। पहले अश्वारोहियों का एक छोटा-सा दल आया, फिर पदातियों की एक बड़ी सेना। कर्दम-मय भूमि में वे बड़ी कठिनाई से बढ़ सके। अँगरेज़ धनुर्धरों ने अपना अवसर न छोड़ा। हलके बख़्तर के कारण वे फुर्ती से बढ़ सकते थे। उन्होंने फ्रान्सीसियों की मुख्य पंक्ति को तहस-नहस कर डाला। अपने साथियों की दुर्दशा देख कर शेष फ्रान्सीसी सेना का साहस भग हो गया।

एक विशाल सेना के सामने संरक्षणात्मक युद्ध करने की कला-और अँगरेज़ी धनुर्धरों का युद्ध-कौशल क्रेसी और प्वातिये के युद्धों में सिद्ध हो चुका था। ८ हजार फ्रान्सीसी मारे गये उनमें कॉन्स्टेबिल, एन्थनी ऑव ब्रैबाँ (बरगंडी का भाई) बार और अलेनसोन के ड्यूक और अनेक अमीर थे। अन्य १ हज़ार ५ सौ सूरमाओं के साथ बूरबोन और आर्लियाँ के ड्यूक बन्दी कर लिये थे। इंग्लैंड ने फ्रान्स को युद्ध में जो कड़ी चोटें पहुँचायी हैं, उनमें यह सब से अधिक महत्वपूर्ण है। इस युद्ध से आर्लियाँ दल को सब से अधिक धक्का पहुँचा। मृतकों का अधिकांश उन्हीं में से था और सारा अयश भी उन्हीं के माथे मढ़ा गया। बरगंडी ने अपनी थोड़ी सी सहायता भी बन्द कर दी थी। हेनरी अपने विजय-पथ पर अग्रसर रहा। कई घेरे हुए जिनमें रूएँ का घेरा अधिक स्मरणीय है, जहाँ विपत्ति के कारण नगर से निर्वासित स्त्री और बच्चों

की भूख से दयनीय मृत्यु हुई थी। १४१६ ई० में पोन्तुआज का भी पतन हो गया और पेरिस के रास्ते में हेनरी को रोकने वाला कोई न रहा।

**ड्यूक ऑव बरगंडी की हत्या और सन्धि**—हेनरी के युद्ध-कौशल ने उसे आशातीत विजय प्रदान की। इधर बरगंडी और आर्लियाँ के विरोध के कारण फ्रान्स में पुनः भारी सेना-संगठन न हो सका। बरगंडी एक प्रकार से दोनों पक्षों से पृथक रहा था। एक दुर्घटना ने उसे शत्रु बना दिया। मोन्टरों में बरगडी और आरमाग्याँ वालों की एक सभा हुई। बरगंडी के ड्यूक जॉन ने दोनों दलों के बीच की सीमा का उल्लंघन किया। तानगुई दि शातेल नामक एक उद्धृत आरमॉग्याँ ने उसका कत्ल कर दिया। यह १४०७ ई० का उत्तर था। रक्त के लिए रक्त किया। किन्तु इस हत्या ने बरगंडी को अँगरेज़ों के पक्ष में कर दिया। त्राय की सन्धि में चार्ल्स षष्ठ की पुत्री केथेराइन का विवाह हेनरी के साथ होने का निर्णय हुआ। वह फ्रान्स के राज्य सिंहासन का उत्तराधिकारी स्वीकृत हुआ। ड्यूक ऑव बरगंडी ने उसकी सहायता की। १४२० ई० में हेनरी ने विजय गौरव के साथ अपनी पत्नी सहित पेरिस में प्रवेश किया।

**पतन का द्वितीय युग**—त्राय की सन्धि दूसरी लहर की चरम सीमा है। यह पहली सन्धि से अधिक महत्वपूर्ण है। फ्रान्स का एक भाग लेने के स्थान पर हेनरी ने फ्रान्स की राजकुमारी के साथ विवाह कर लिया और वह उत्तराधिकारी घोषित किया गया। यदि वह जीवित रहता तो उसके फ्रान्स के राजा होने में सन्देह न था! फिर भी उसका पुत्र राजा घोषित हुआ। धीरे-धीरे अँगरेजी शक्ति छिन्न भिन्न हो गयी। इसका कारण हेनरी पंचम की मृत्यु न थी। छः वर्ष तक हेनरी का भाई ड्यूक ऑव वेडफ़र्ड फ्रान्स की रिजेन्ट के पद पर रहा और आरमाग्याँ को दक्खिन की ओर दबाता रहा। एकमात्र विरोध जोन ऑव आर्क का था जिसमें ड्यूक ऑव क्लैरेन्स मारा गया। विजय का अधिकांश श्रेय स्काट सेना के हाथ आया, जो फ्रान्सीसियों के सहायक थे। बोजें एक छोटी सी घटना थी; किन्तु इससे फ्रान्स में नवीन उत्साह जाग्रत हुआ। इसके बाद फिर अँगरेज़ों की विजय प्रारम्भ हो गयी। क्रेवाँ और वर्नेइल में फ्रान्सीसी और स्कॉट बुरी तरह हारे।

**हेनरी पंचम की मृत्यु ( १४२२ ई० )**—अपने अन्तिम शब्दों में हेनरी ने फ्रान्स की स्थिति स्पष्ट कर दी। बरगंडी की मित्रता परिस्थिति की कुंजी थी। उस मित्रता का आधार और मन्त्र देने के कारण क्या थे? एक तो ड्यूक जान की हत्या की प्रतिहिंसा की भावना थी; दूसरे परराष्ट्र नीति के साथ विवाह नीति का निरन्तर संयोजन। जिस प्रकार हेनरी ने केथराइन से विवाह कर राज-सभा की सहायता प्राप्त कर ली थी, उसी प्रकार वेडफर्ड ने बरगंडी की बहन से विवाह कर बरगंडी से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इस सन्धि का सम्बन्ध प्रजा से न था; फिर भी आरमाग्यों ने किसी राजनीतिक योग्यता का परिचय न दिया था। वे प्रत्येक प्रयास में असफल रहे।

यदि समय बदलता, तो बरगंडी के समृद्ध विश्वास घातकों का और आर्लियों के राष्ट्र-भक्तों का सारा रहस्य प्रकट हो जाता।

आर्लियाँ की कुमारी( १४२६ ई० )—यह परिवर्तन ऑर्लियाँ की कुमारी जोन ऑव आर्क के साथ आया। वह एक किसान की लड़की थी। उसका यह विश्वास था कि देश को स्वतन्त्र करने के लिए उसका जन्म हुआ है। वह राज-दरबार में गयी और अपनी सहायता स्वीकार करने पर उसने राजा को राजी कर लिया। बख़्तर कसे, घोड़े पर सवार, उसने केवल विश्वास और श्रद्धा के द्वारा फ्रान्स की आशा को पुनर्जीवित कर दिया। सेल्सबरी ने आर्लियाँ का घेरा डाल रक्खा था। यह ल्वार में अन्तिम आरमाग्न्याँ दुर्ग था। जब कुमारी ने नगर में प्रवेश कर और शत्रुओं को भगाकर पाते में टाल्बो को हराया तो यह एक इन्द्रजाल का सा खेल जान पड़ा। फ्रान्स पर ईश्वर की कृपा हो गयी। ऑर्लियाँ की मुक्ति एक बड़ी रण-विजय मात्र थी, क्योंकि उससे आरमाग्न्याँ को उत्तरी प्रदेश में घुसने का अवसर मिल गया जहाँ से वे अँगरेजों को तंग कर सकते थे। इसका नैतिक प्रभाव भी फ्रान्स पर बहुत हुआ। कुमारी का जीवन अल्प ही रहा। उसने चार्ल्स सप्तम को राइन में मुकुट धारण करते देखा; किन्तु पेरिस से उसकी सेना भगा दी गयी। १४३० ई० में वह कोम्पियेंन्य में गिरफ्तार हुई और एक जादूगरनी समझ कर रुएँ में जीवित जला दी गयीं। इस निर्दयता का परिणाम बुरा हुआ। उसकी मृत्यु के बाद भी उसके द्वारा जाग्रत की हुई भावना जीवित रही। फ्रान्स की सेना की शक्ति भी बढ़ रही थी। वह कुशल और शिक्षित सेना हो गयी थी। एक और भी बात थी। बाहरी आक्रमण के कारण फ्रान्स में एकता का वही भाव प्रकट हो गया था, जैसा स्काटलैंड में पैदा हुआ था। था। जोन ऑव आर्क के जलाने से अँगरेजों को वालेस की हत्या की तरह कोई भी लाभ न हुआ।

ग्लौस्टर और बरगंडी ( १४२४ ई० )—जोन ऑव आर्क अपना बलिदान दे चुकी थी। आरमाग्न्यों का उदय हो रहा था। उसी समय इंग्लैंड और बरगंडी का सम्बन्ध भी टूटने लगा। हम्फ्रे ऑव ग्लौस्टर ने हैनोल्ट की ज़ाकेलिन से विवाह कर लिया। हेनोल्ट प्रदेश ड्यूक ऑव बरगंडी लेना चाहता था। इसलिए हम्फ्रे से वह रुष्ट हो गया। बरगंडी के विरुद्ध हम्फ्रे हैनोल्ट में एक सेना भी ले गया था। १४३२ ई० में बेडफर्ड की पत्नी एनी की मृत्यु हो गयी, जिससे सन्धि को बड़ा धक्का लगा। दूसरा कारण बेडफर्ड का सेन्ट पोल के काउन्ट की बहन के साथ विवाह था। सेन्ट पोल फ्रान्स और बरगंडी की सीमा पर था। बेडफर्ड काउन्ट को इंग्लैंड से मिलाना चाहता था। किन्तु वह यह भूल गया कि इससे बरगंडी का विरोध होगा। अब ड्यूक अँगरेजों की ओर से खिंचने लगा। १४३५ ई० में अरास में एक सभा हुई। यह निश्चय हुआ कि यदि अँगरेज फ्रान्स के सिंहासन का अधिकार छोड़ दें तो नारमंडी और ऐक्वीतेन उन्हें दे दिये जायँ। उनका प्रस्ताव मूर्खतावश अँगरेजों ने

स्वीकार न किया। इस पर बरगंडी फ्रान्स की ओर हो गया। उसी वर्ष बेडफर्ड की मृत्यु हो गयी। अब इंग्लैंड के फ्रान्स में बुरे दिन आरम्भ हो गये।

युद्ध का अन्त (१४३५-५३ ई०)—शतवर्षीय युद्ध के अन्तिम १८ वर्ष अँगरेज़ी शक्ति की क्षय के दिवस थे। १४३६ ई० में पेरिस फ्रान्सीसियों के हाथ आ गया। बरगंडी ने कैले पर आक्रमण किया। एक के बाद दूसरा सेनापति फ्रान्स गया और वीरता प्रदर्शन की, किन्तु सफलता प्राप्त न हुई। तिस पर भी किसी ने सन्धि का प्रस्ताव न किया। सफोक के अर्ल विलियम ऑव दलापोल ने मेन और तूरेन दे कर एवम् हेनरी और आँजू की मारगैरेट के विवाह का प्रस्ताव कर सन्धि की योजना की। किन्तु लोकप्रिय न होने के कारण चार वर्ष बाद ही यह सन्धि अँगरेजों ने तोड़ दी। सफोक को यह सन्धि कराने के पुरस्कार में मृत्यु की सजा मिली। पहले उस पर अभियोग चला कर देश निकालने का दण्ड दिया गया और रास्ते में वह जहाज पर मार डाला गया।

सत्य यह था कि १४५० ई० में इंग्लैंड मे वही रोग बढ़ रहा था जिससे फ्रान्स छुटकारा पा रहा था—यह था नेताओं का उन्माद और जनता की जड़ता। यार्क और लॅकास्टर के दल उद्दंड हो रहे थे। दरबार में स्वार्थी अमीर भरे हुये थे पारस्परिक विरोध के सामने देश-भक्ति क्षीण हो गयी थी।

शातीलोन का युद्ध—१४५३ ई० में ताल्बो ने ६ हजार सेना लेकर शातीलोन का घेरा डालने वाली फ्रान्सीसी सेना को हटाना चाहा। उसका नेतृत्व हेनरी पचम से कम योग्यतापूर्ण न था। किन्तु उसके शत्रु अब मित्र थे। फ्रान्सीसियों ने ताल्बो की सेना अस्तव्यस्त कर दी। ताल्बो मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ ही युद्ध समाप्त हो गया।

अँगरेजी नीति में परिवर्तन—शतवर्षीय युद्ध का अन्त इंग्लैंड के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। हम फ्रान्स के साथ अँगरेजों के युद्ध की दो स्थितियाँ देख चुके हैं। पहले का सम्बन्ध नारमन तथा ऐञ्जविन राजाओं के शासन-काल से था। उनकी रियासतें फ्रान्स में थीं और वे सामन्तों की हैसियत से वहाँ के राजा से युद्ध करते रहे। वे सामन्त युद्ध थे। दूसरी स्थिति शतवर्षीय युद्ध की है, जिसमें एडवर्ड तृतीय और हेनरी पंचम दोनों ने फ्रान्स के सिंहासन पर अपना अधिकार प्रदर्शित किया। ये राष्ट्रीय युद्ध थे। यह इंग्लैंड और फ्रान्स का युद्ध था; सामन्त और राजा का नहीं। फ्रान्स इंग्लैंड के विस्तार का स्वाभाविक क्षेत्र समझा जाता था। अनेक उतार-चढावों के बाद इस नीति का परित्याग कर दिया गया। ट्यूडर युग की नीति उससे बिलकुल भिन्न है। यद्यपि फ्रान्स से युद्ध समाप्त नहीं हुआ, किन्तु अब सब की आँखें समुद्र के पार नयी दुनिया पर लग गयीं।

---

# अध्याय १८

## महामरी और किसान-विद्रोह

शतवर्षीय युद्ध के वर्णन के कारण उसी शती के इंग्लैंड का घरेलू इतिहास रह गया है। उस युग के इंग्लैंड में तीन महान ऐतिहासिक घटनाओं का मूल एडवर्ड तृतीय के शासन में है। इनमें प्रथम महामरी (ब्लैक डेथ) है; दूसरी जॉन विक्लिफ़ और लौलार्डस का कार्य है और तीसरी पार्लियामेन्ट का विकास। अब हम युद्धों को छोड़ कर सामाजिक क्षेत्र में आते हैं, फिर धर्म के वंश परम्परा के उन उलझे प्रश्नों पर आयेंगे जो गुलाबों के युद्ध के मूल कारण हैं।

**गुलाम-किसान**—नारमन विजय के समय भूमि जोतने वालों की स्थिति दासों से अच्छी नहीं थी। वे भूमि से बँधे हुए थे। हर एक सप्ताह में कुछ दिन ज़मीन्दार की सेवा करना उनके लिए अनिवार्य था। इनके अलावा अडों और चिड़ियों की भेंट के रूप में उन्हें छोटे छोटे कर देने पड़ते थे। जब तक ये सब काम ठीक होते रहते थे, तब तक भूमि और उसकी थोड़ी सी उपज पर उसका अधिकार चलता रहता था। धीरे धीरे किसानों ने अपने स्वामियों की सेवा के बदले धन देने की व्यवस्था कर ली। यह दोनों के लिए सुविधाजनक था। किसानों को अपनी भूमि पर काम करने के लिए अधिक समय मिल जाता था और उनके स्वामियों को अधिक धन, जिससे वे मज़दूर किराये पर रख सकते थे।

**महामरी**—किन्तु १३४७-५० ई० तक जारी रहने वाली भयकर महामरी ने इस व्यवस्था में बाधा डाल दी। उसने जनसंख्या का तिहाई भाग नष्ट कर दिया। प्लेग का इतना ज़ोर था कि लोग मुर्दों को गाड़ तक नहीं पाते थे। नार्विच प्रान्त में प्रान्तीय पादरियों में से दो तिहाई मर गये सेन्ट अल्बन्स में ६० मंकों में केवल १३ बचे। इससे जनता का नाश का कुछ अंश में अनुमान लगाया जा सकता है।

**मज़दूरी में बढ़ती**—देहात में इस प्लेग का सब से अधिक प्रभाव पड़ा। यह स्पष्ट है कि मजदूर मिलना कठिन हो गया था। महामरी से भयभीत होकर लोग खड़े खेतों को छोड़ गये, जिससे वे सड़ गये और अन्न का अभाव हो गया। इससे अनाज का मूल्य बहुत बढ गया। फिर, जैसा कि कम मजदूर होने पर स्वाभाविक ही था, मज़दूरी भी बढी।

**सरदारों की कठिनाइयाँ**—इन बातों से जमीन्दारों को गहरा धक्का पहुँचा। बहुत से किसान बिना उत्तराधिकारी के मर गये जिससे उनकी आमदनी जाती रही। मज़दूरी बढ़ जाने से भी उनकी हानि हुई। उन्होंने किसानों से सेवा के बदले पुराने भाव के अनुसार कर निश्चित किया था किन्तु अब मज़दूरी दूनी से भी ज्यादा हो गयी थी। अतः सरदारों का विनाश-काल निकट आ गया।

इस परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए कुछ करना आवश्यक था। पार्लियामेन्ट में जमीन्दारों का जोर था, इसलिए पार्लियामेन्ट की कार्रवाई से उनकी नीति का पता चल सकता है। सबसे पहला विचार बढ़ती मजदूरी रोकने का हुआ। पार्लियामेन्ट की इच्छा चीजों के मूल्य ज्यों के त्यों रखने की थी इसलिए इसमें कुछ अन्याय था। न यह कहा जाता था कि अगर चीज़ों की कीमत न बढ़े तो मजदूरी भी न बढ़ेगी।

आज की पार्लियामेन्ट वस्तुओं के मूल्य में प्रायः हस्तक्षेप नहीं करती। शताब्दियों से चीजों की क़ीमत माल की तैयारी और माँग पर निर्भर रही है। किन्तु १४वीं शताब्दी में मूल्य अथवा मजदूरी का नियन्त्रण अनुचित या असम्भव न जान पड़ता था। उस समय प्रत्येक व्यापार नियमित था। व्यापार संघ द्वारा मूल्य निश्चित कर दिये जाते थे। समस्त देश के लिए अब पार्लियामेन्ट वही करना चाहती थी जो व्यापार-संघ हर नगर के लिए करते थे।

मजदूरों के कानून—मजदूरों के कानून के अनुसार मजदूरों को पुरानी मजदूरी स्वीकार करने की आज्ञा हुई। पर आज्ञा देना एक बात है, और उसका पालन कराना दूसरी बात। यह बड़ा कठिन काम था। पार्लियामेन्ट का प्रभाव उन दिनों बहुत प्रबल न था। इसके अलावा महामरी के कारण स्थानीय न्यायालय बन्द हो गये थे, जिससे नियमों का उल्लंघन सरल हो गया था। मूल्य के साथ साथ मजदूरी भी बढ़ गयी थी। फिर भी ज़मीन्दार अपनी भूमि को बेकार पड़ी रहना नहीं देख सकते थे। अतः बहुत ज़मीन्दारों ने क़ानूनों की अवज्ञा करके अधिक मजदूरी देकर काम चलाया। पार्लियामेन्ट ने साहस और शक्ति का परिचय देने में कमी न की। मजदूरी के कानूनों के उल्लंघन के दंड कारावास, गरम लोहे से चेंकाना, दासत्व और मृत्यु तक निश्चित किये गये; किन्तु भीषण दंड भी असम्भव कानून का पालन करने के लिए जनता को बाध्य न कर सके।

पार्लियामेन्ट में दल बन्दी का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनका उद्देश्य बुरा न था। किन्तु जब उनका प्रयास असफल हो गया तो जमीन्दारों ने—जमीन्दार दल का ही दूसरा नाम पार्लियामेन्ट था—लोगों को कठिन दंडों द्वारा कष्ट देना आरम्भ किया। इस प्रकार इंग्लैंड अब मज़दूरों और पूँजीवादियों के प्रथम महायुद्ध के द्वार पर पहुँच गया।

किसानों और जमीन्दारों का विद्वेष—जैसा कि निश्चित था, यह नीति असफल रही। कुछ जमींदारों ने किसानों से सेवा लेने की प्राचीन रीति को फिर से जीवित करने का प्रयत्न किया। इसमें सफलता की कोई आशा न थी। एक बार स्वतन्त्रता प्राप्त कर मनुष्य फिर आसानी से बन्धन में नहीं आता। कुछ ज़मीन्दारों ने खेती के स्थान पर भेड़ें रखना आरम्भ कर दिया। किसानों की आशाएँ नष्ट होती दिखाई दीं। इस कार्रवाई ने उन्हें और भी उत्तेजित कर दिया। मजदूर-कानून ने भी, जो उन्हें अच्छी मज़दूरी पाने से रोकता था, इस उत्तेजना में सहायता दी। असन्तुष्ट मनुष्य विद्रोही हो जाता है। कैन्ट के एक पादरी जॉन बॉल ने समानता के सन्देश का बिगुल फूँक दिया। उसकी उपदेशमाला के इस पद्य के स्वर से इंग्लैंड का वायुमंडल गूँज रहा था।

भूमि खोदता था जब आदम,
और ईव कातै थी चरखा;
तब था गौरवशील कौन जन?
और वहाँ पर सभ्य कौन था?

किसान विद्रोह—विद्रोह केवल अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। राजा के सलाहकारों ने वह अवसर भी पैदा कर दिया। धन प्राप्ति के लिये उन्होंने सभी चालें चलीं। १३७७ ई० में व्यक्तिगत कर लिया जा चुका था १३८० ई० में उसकी पुनरावृत्ति हुई। अब की बार गरीब-अमीर का भेद अधिक नहीं किया गया। धनी से धनी को भी एक पौंड देना पड़ा, गरीब से गरीब को भी एक शिलिंग। एक शिलिंग उन दिनों एक सप्ताह की मजदूरी होती थी। इससे बहुत असन्तोष फैला। १३८१ ई० में पूरबी एँग्लिया से उपद्रव उठा और लन्दन के आस-पास सभी प्रान्तों में फैल गया। केन्ट वासियों का विद्रोह सब से भयानक था। वाट टाइलर के नेतृत्व में राजधानी की ओर चल पड़े और कचहरियों तथा कोर्ट के कागजात जलाते और वकीलों को मारते काटते आगे बढ़े। वे कहते थे कि जब तक वकीलों का अन्त न हो जायगा, तब तक इंग्लैंड में स्वाधीनता न आयेगी। राजा का चाचा जॉन ऑव गॉन्ट, जो उस समय प्रमुख शासक था, उत्तर की ओर गया हुआ था। विद्रोहियों ने सेवॉय में उसका भवन जला दिया। उन्होंने 'टावर' में घुस कर आर्कबिशप ऑव केन्टरबरी, तथा कोषाध्यक्ष को, जिन्होंने व्यक्तिगत कर का प्रस्ताव किया था, मार डाला। सारे राज्य में हलचल मच गयी। किन्तु सोलह वर्षीय रिचर्ड द्वितीय अविचल और शान्त रहा। एसेक्स के विद्रोहियों की स्वाधीनता की माँग पूरी कर और क्षमा का वचन देकर उसने वहाँ शान्ति स्थापित कर दी। किन्तु वाट टाइलर, जैक स्ट्रा, जॉन बॉल विद्रोह के विष-बिन्दु थे। अगले दिन राजा स्मिथफील्ड में केन्ट-वासियों से मिलने गया। वाट टाइलर ने राजा के निकट आकर उसके शरीर-रक्षकों से वाक्युद्ध आरम्भ कर दिया। लन्दन के मेयर वालवर्थ ने उसे राजा पर आक्रमण करने वाला समझ कर उसको मार गिराया। जनता राज-दल पर बाण-वृष्टि करने ही वाली थी कि राजा अकेला उनकी ओर बढ़ आया और जोर से चिल्ला कर बोला, 'मैं तुम्हारा नेता बनूँगा!', इस प्रकार मीठे वचनों के सहारे और उन्हें स्वतन्त्रता देने के वायदे करके उसने उन्हें शान्त किया।

विद्रोह का अन्त—यह वीरत्व-प्रदर्शन ब्लैक प्रिन्स के पुत्र के योग्य ही था, किन्तु इसका अन्त श्रेयस्कर न हुआ। राजा के वचन पाले नहीं गये। यह ठीक है कि विद्रोह शान्त करने के लिये उसने उचित से अधिक स्वतन्त्रता देना स्वीकार कर दिया था। जमीन्दारों की जमीन दे देने का उसे कोई अधिकार न था। फिर राजा के वचन पालन करने का प्रयत्न शायद किया भी जाता; किन्तु पूरबी प्रदेशों में विद्रोह, हत्याकाँड, अग्निकाँड और अत्याचार जारी रहने के कारण क्षमा की नीति का पालन कठिन हो गया। राजा ने शक्ति-संगठन कर बड़ी सख्ती के साथ किसान विद्रोह का दमन

किया। इस प्रकार अन्याय ने हिंसा का रूप धारण किया। इससे लाभ किसी दल को न हुआ। विद्रोहियों को स्वतन्त्रता तो न मिली। परन्तु अनेकों को फाँसी हो गयी।

पट्टे पर भूमि—पुराने दर पर मजदूर न मिलने के कारण नये दर पर मजदूर रखना या कम आदमियों से काम चलाना आवश्यक हो गया। कुछ जमीन्दारों ने किसानों को पट्टे पर जमीन उठाना आरम्भ कर दिया। इससे किसान को स्वयम् मजदूर ढूँढ़ने पड़ते थे। इस प्रकार किसानों का प्रारम्भ हुआ और किसान मजदूर और जमीन्दार के बीच में हो गया कुछ लोगों ने कठिनाई का सामना दूसरी तरह किया। उस समय अँगरेजी ऊन की माँग बहुत थी, क्योंकि यह ऊन सब से अच्छा होता था। बहुत से जमीन्दारों ने भेड़ें पालना आरम्भ कर दिया। इस में अधिक लाभ था, क्योंकि कम मजदूरों से काम चल जाता था। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से लोगों की बेकारी बढ़ गयी। दूसरे, अब जमीन्दार अपनी भूमि वापिस लेना चाहते थे। इसमें उन्होंने वह 'बंजर' तक शामिल कर लिये, जहाँ किसान अपने ढोर चराते थे। अतः किसानों को बन्धन में रखने का प्रयत्न करने वाले जमींदार अब उलटे उनसे छुटकारा पाने की सोचने लगे। वे 'बंजर' जमीन की हाताबन्दी करने लगे, ताकि उसमें उन्हीं की भेड़ें चरा करें। इससे बड़ा अनर्थ हुआ। १५वीं और १६वीं शताब्दियों मे पार्लियामेन्ट ने इस प्रथा को रोकना भी चाहा, किन्तु कोई परिणाम न हुआ।

विद्रोह का प्रभाव—महामरी का प्रभाव बहुत व्यापक हुआ। इससे ग्रामीण इग्लैंड की स्थिति ही बदल गयी और भूमि उठाने की वर्तमान प्रथा का पथ प्रशस्त हो गया। अधिकारों की स्थिरता और भूमि के छोटे छोटे टुकड़ों को मिला देने के कारण खेती में अच्छी अच्छी रीतियों के प्रयोग का अवसर मिला। अन्त में दास-प्रथा भी नष्ट हो गयी। किसानों को विद्रोह के कारण फौरन स्वतन्त्रता न मिल सकी। कुछ के बन्धन तो और दृढ़ हो गये, किन्तु यह स्थिति थोड़े समय के लिए ही थी। अब दासों की पुराने ढंग की सेवाओं से ज़मींन्दारों का काम न चल पाता था; इसलिये वे आसानी से किसानों को स्वाधीन करने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे किसानों को अपने अधिकार मिल गये।

---

## अध्याय १६

## विक्लिफ़ और लौलार्ड

मार्टिन लूथर से सौ वर्ष से अधिक पूर्व इंग्लैंड में एक धर्माचार्य ने उसके ही ढंग पर कार्य आरम्भ किया था। जॉन विक्लिफ और उसके लौलार्ड अनुयायियों की कथा इस बात का प्रमाण है कि रोमन आधिपत्य से मुक्त होकर चर्च के राष्ट्रीय रूप-धारण करने से कहीं पहले इंग्लैंड के लोग पोप के प्रभुत्व से असन्तुष्ट थे।

पोप के साथ जॉन के झगड़े का सब से बुरा परिणाम हुआ रोम का हस्तक्षेप और कर-निर्धारित करने का अधिकार। हेनरी तृतीय की प्रशंसा कर पोपों ने उससे फ्रेडरिक द्वितीय के विरुद्ध युद्ध के लिये धन उधार लिया। पोप इंग्लैंड को धन का अक्षय आगार समझते थे। इंग्लैंड की अधिकांश भूमि चर्च वालों के हाथ में थी और पोप उन पर अपना प्रभुत्व बनाये रखना चाहता था। राज्य-शासन में चर्च की स्वतन्त्रता राज्य को कभी सहन नहीं हो सकती थी।

एडवर्ड तृतीय के समय में पोपों के विरुद्ध यह भावना बहुत दृढ़ हो गयी थी। लोग पोप के दरबार में इतना धन जाता हुआ नहीं देख सकते थे। बहुत से विदेशियों को पोप ने उच्च पदों पर नियुक्त कर रक्खा था। वे चाहते थे कि वे पद अँगरेजों को मिलें। उच्च पदाधिकारियों के वैभव को देख कर लोगों को उनकी धर्म-निष्ठा के विषय में सन्देह होने लगा। वे उसकी तुलना अपनी ग़रीबी से करने लगे।

**चॉसर और चर्च**—उस परिस्थिति की छाया चॉसर के 'केन्टरबरी टेल्स' में मिलती है। धर्माधिकारियों की तड़क भड़क, रहन-सहन और मृगयानुराग से उनकी धर्म-निष्ठा का अनुमान किया जा सकता है। बिशपों को देहात में कोई जानता न था। मंकों का मठ-जीवन आलस्यमय तथा निश्चेष्ट था। फ्रायरों से जनता का प्रायः संसर्ग होता था, इसलिए उनके प्रति उसका अधिक विरोध हुआ।

फ्रायर लोग, विशेष कर डोमिनियन तथा फ्रान्सिस्कन फ्रायर—घृणा के पात्र बन गये। इसका कारण यह था कि ये दोनों संघ धर्म के उन आन्दोलनों के नेता थे, जिनका उद्देश्य चर्च को गरीबों के साथ विशेष सम्पर्क में लाना था। दोनों संघों का आरम्भ तेरहवीं शती में हुआ। उनका आदर्श उदार और पवित्र और जीवन सरल था। कई वर्षों तक काले और खाकी दोनों दलों ने जनता का बहुत-कुछ उपकार किया। फिर दोनों दल अपने लिए नहीं,—संघ के लिए—धन एकत्रित करने लगे, अतः वे धनी लोगों में अधिक आने-जाने लगे। अब वे ईसामसीह के सरल सन्देश-वाहक न रह गये। जो इधर-उधर देश में बिखरे रह गये, उनसे लोग घृणा करते थे, क्योंकि पोप उनके संघ का अधिष्ठाता था। वे अँगरेज़ बिशपों की भी आज्ञा का पालन न करते थे और दान की सम्पत्ति अपने संघ के लिए हड़प लेते थे। प्रान्तीय धर्म व्यापारों में हस्तक्षेप करने के कारण लोगों में ईर्षा पैदा करने एवम् कुछ व्यक्तियों के अनाचार के कारण दोनों संघ बदनाम हो गये।

**अवीन्यों में पोप**—ये सब बातें विद्वेष बढ़ाने में सहायक हुईं। पोपों के भी बुरे दिन आ गये थे। एक पोप ने जो फ्रेंच था, रोम छोड़ कर अवीन्यो में रहने का निश्चय किया। उसके उत्तराधिकारियों ने उसका अनुकरण किया। इस प्रकार पोप फ्रान्स के राजा के प्रभाव में आ गये। अँगरेज फ्रान्स से घृणा करते थे, अतएव पोप के प्रति भी उनकी अश्रद्धा बढ़ गयी। इधर अवीन्यो के कुछ पोप उच्चादर्शों वाले न थे। अपने मित्रों के लिये उच्चपद-नियुक्ति तथा अन्य धर्म-पद-निर्वाचन के अधिकार का

वे गर्व रखते थे। पद-निर्वाचनों की अनेक अपीलें अवीन्यो के कोर्ट में आती थीं। उन से उन्हें बहुत कुछ धन मिलता था। इसकी उन्हें बड़ी चाह थी।

पोपों के अधिकारों के प्रतिरोध के नियम—१३५१ ई० में 'प्रोवाइजर्स' का क़ानून पास हो गया। इसने पोप द्वारा पद-नियुक्ति स्वीकार करने वाले लोगों को दंडनीय क़रार दिया। अब चर्च में कोई भी नियुक्ति राजा की स्वीकृति के बिना नहीं हो सकती थी। १३५३ ई० में एक दूसरा 'प्रेम्युनायर' ज़ब्ती का नियम पास हुआ। विदेशी कोर्ट में अपीलें भेजना बन्द कर दिया गया। १३६३ ई० में ईसकी और भी दृढ़ता से पुनरावृत्ति हुई। यह निश्चय हुआ कि यदि कोई पोप के दंड, बहिष्कार आदि की आज्ञा मान लेगा, तो उसकी जायदाद जब्त कर ली जायगी और उसे कैद की सजा मिलेगी। ये नियम कठोर थे, किन्तु ये प्रायः प्रयोग में नहीं आते थे। पोप और राजा दोनों आपस में सलाह करके पद-नियुक्ति कर लेते थे। इस मेल से उन्हें अधिक लाभ था; राजा के अप्रसन्न हो जाने पर ये नियम कभी कभी काम में आ जाते थे; परन्तु सामान्यतः उनका उपयोग न होता था।

१३७८ ई० का महा विभेद—एडवर्ड तृतीय के शासन के पिछले भाग में पोप और राजा की मित्रता बहुत कम हो गयी थी। पोपशाही के लिए ये बुरे दिन थे। १३७८ ई० में पोप "बेबीलोनियन कैद" से रोम लौट आया, किन्तु नये पोप अर्बन षष्ठ का स्वभाव इतना उग्र और उद्धत था कि कुछ कार्डिनलों ने उसे परित्याग करके क्लीमेन्ट सप्तम को पोप निर्वाचित किया। शीघ्र ही सारे युरोप में दो दल हो गये—एक रोम के पोप का सहायक था और दूसरा अवीन्यो के पोप का। प्रतिस्पर्धी पोपों के आपस के असभ्य विरोध के कारण लोगों की उन पर से श्रद्धा उठ गयी। चर्च पर कर बढ़ जाने के कारण पोपशाही में विश्वास घटने लगा। प्रत्येक पोप दूसरे को ईसा का विरोधी और धर्मद्रोही बतलाता। ऐसी दशा में पोपशाही के विरोध में आन्दोलन होना अवश्यम्भावी-सा था। विक्लिफ इस आन्दोलन का प्रतिनिधि हुआ।

विक्लिफ—विक्लिफ यार्कशायर का रहने वाला था। वह ऑक्सफर्ड में जाकर बेलियल कॉलिज में अध्यापक हो गया था। प्रत्येक विषय में उसका दृष्टिकोण ऐतिहासिक रहता था। चर्च में दोष आ जाने का कारण वह उसकी धन लालसा तथा वैभव-प्रियता ही मानता था। यदि चर्च में ये दोष न आ जाते तो उसका सुन्दर आदर्श न बिगड़ता। पोप द्वारा लगाये हुए 'एनेट्स', 'फर्स्टफ्रूट' आदि करों का बाइबिल में विक्लिफ को कोई आधार न मिला। उसने धर्माचार्यों के चिन्ताहीन सुखमय जीवन का विरोध किया। ये बातें जनता को रुचिकर मालूम हुईं। पोप की धन सम्बन्धी माँगों का उत्तर तैयार करने के लिये विक्लिफ की सहायता ली गयी। जॉन गॉन्ट ने उससे अपने राष्ट्रीय विधानों में भी सहायता ली थी। एडवर्ड तृतीय के शासन के अन्त में सब कुछ अस्त व्यस्त था। फ्रान्स में असफलता, स्वदेश में भ्रष्टाचार और क्षुद्रता, टैक्सों का भार और ग़रीबी बस इन्हीं सब का दौर-दौरा था। ब्लैक-

प्रिन्स मरणासन्न था। उसके भाई जॉन गॉन्ट ने गवर्नमेन्ट को बुरा भला कह कर और सुधारों की घोषणा कर ख्याति प्राप्त कर ली। उसने धर्मी दल को राज्य के पदों से से निकालने का प्रयत्न किया। कुछ समय तक तो उसे सफलता रही, किन्तु उसका शासन पहले से भी बुरा निकला।

गुड पार्लियामेन्ट—१३७६ ई० में धर्माचार्यों ने ब्लैक प्रिन्स के नेतृत्व में सगठन किया और पार्लियामेन्ट ने सुधार का प्रयत्न किया। जॉन गॉन्ट के दो मित्र बरख़ास्त कर दिये गये। उनको दंड मिला। किन्तु ब्लैक प्रिन्स की मृत्यु के बाद पार्लियामेन्ट का कार्य समाप्त हो गया। ब्लैक प्रिन्स जो युग का सब से बड़ा सेनापति और वीरता का आदर्श था, असहाय पड़ा था। अपनी आँखों से सब कुछ बिगड़ता हुआ देख कर भी वह उसे सँभालने में असमर्थ था। दीर्घकालीन रोग से आख़िर उसकी मृत्यु हो गयी। प्लान्टाजेनेट वंश के उत्तर काल का यह सितारा डूब गया।

विक्लिफ़ जॉन ऑव गॉन्ट का अस्त्र था, जॉन ने पोपों के अनुयायियों से उसे बराबर बचाया। जब विक्लिफ पर सेन्ट पॉल में अभियोग चलाया गया, तो ड्यूक ने उसका पक्ष लिया। जब लंडन के बिशप कोर्टने विक्लिफ को अधर्मी घोषित कर दिया तो ड्यूक ने कोर्टने को बाल पकड़ कर चर्च से बाहर घसीटे जाने की धमकी दी। इस पर एक विद्रोह आरम्भ हो गया। लंडन निवासियों ने बिशप की रक्षा की। विक्लिफ़ मरते-मरते बचा। मार-पीट या गाली गलौज से तो कोई सुधार होता नहीं। विक्लिफ ने उपद्रव में हिस्सा नहीं लिया। जॉन गॉन्ट से विशेष सहानुभूति न थी। सुधारक के रूप में ही उसने अपने विचार फैलाये थे। उसने उपदेश का प्रबन्ध किया और जनता के लिये लैटिन छोड़ कर अँगरेज़ी में पुस्तकें लिखीं। उसने बाइबिल का भी अँगरेज़ी में अनुवाद कर डाला और उसे जनता की सम्पत्ति बना दिया।

विक्लिफ के विद्रोही विचार—उसके कुछ कार्य रोम में तो अरुचिकर ठहरे; किन्तु इंग्लैंड में उनका स्वागत हुआ। उसे इतने से सन्तोष न हुआ। उसके विद्रोही विचारों ने अन्त में यह सिद्धान्त निकाला कि 'स्वर्ग कृपा से प्राप्त होता है।' उसके उपदेश ने यह भावना जाग्रत कर दी कि पापियों की, विशेष कर पापी पोप की आज्ञा का पालन न करना धर्मसंगत है। किन्तु जब उसने कैथलिकों के इस विश्वास का विरोध किया जिसके अनुसार गिरजे की वेदी पर प्रतिष्ठित की हुई रोटी और शराब वास्तव में ईसु की रक्त मांस होती है तो उसको बहुतों की सहानुभूति खोनी पड़ी। जॉन ऑव गॉन्ट ने ऑक्सफर्ड आकर उसे मौन रहने की आज्ञा दी। युनिवर्सिटी ने भी उसे निकाल दिया। आर्कबिशप कोर्ट ने तथा राजा से सहायता पाकर पोप का दल बहुत सशक्त सिद्ध हुआ। विक्लिफ को आक्सफर्ड छोड़ना पड़ा। उसके विचार विधर्मी समझे गये। फिर भी उसका इतना प्रभाव था कि उस पर हाथ डालने का साहस उस समय तक किसी को न हुआ जब तक लुटरवर्फ के गिरजे में शान्तिपूर्वक उसकी मृत्यु न हो गयी।

विक्लिफ का यह सब कार्य उसके समय के आगे का था। धर्माचार्यों की सम्पत्ति और उनकी निश्चेष्टता के विरुद्ध बहुत से अँगरेज थे; किन्तु वे चर्च को विच्छिन्न करना नहीं चाहते थे। हेनरी अष्टम के समय में भी इंग्लैंड ने अपने धर्म विश्वास का परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे किया।

**लौलार्डों का अत्याचार**—फिर भी एक शिक्षक और सुधार की हैसियत से विक्लिफ़ के बहुत से अनुयायी हो गये थे। जो दुखी, ऋणी और असन्तुष्ट थे वे उसके साथ हो गये। किन्तु सभी लौलार्डों के विचार विक्लिफ के मत के समान क्रान्तिकारी न थे। तथापि वे चर्च का विरोध भड़काने के लिए बहुत काफी थे। रिचर्ड स्वयम् लौलार्डों का मित्र न था। उसने अपने अधिकारियों को बिशपों की सहायता करने की आज्ञा दी। विक्लिफ के ग्रन्थ नष्ट कर देने की आज्ञा हुई। हेनरी चतुर्थ और भी प्रबल था। उसने चर्च की सहायता से सिंहासन प्राप्त किया था, अतः लौलार्डों पर अत्याचार कर उसने उसका बदला दिया। १४०१ ई० में पार्लियामेंट ने लौलार्डों का विनाश करने के लिए एक विधान बनाया। उसके क़ानून बन जाने के पूर्व ही विलियम सौत्रे को जला दिया गया। वैसा ही दंड कुछ औरों को भी मिला। फिर भी शहीदों की संख्या थोड़ी ही रही, अधिकांश तोबा करके बच गये।

**सर जॉन ओल्डकासल**—यह सब अत्याचार होने पर भी लौलार्डों में इतना बल था कि हेनरी पंचम के शासन में उन्होंने विद्रोह कर दिया। सर जान ओल्डकासल उनका नेता था। वह हेनरी चतुर्थ के समय में वेल्स के विरुद्ध लड़ा था। किन्तु अपने लौलार्ड विचारों के कारण वह गिरफ्तार किया गया। उसे जीता जला देने की आज्ञा हुई; किन्तु वह निकल भागा। अब राजा को बन्दी करने का एक षडयन्त्र रचा गया; किन्तु रहस्य खुल गया। ओल्डकासल पुनः बन्दी हुआ, और विधर्मी की भाँति जला दिया गया। इसके बाद लौलार्डों के विषय में अधिक चर्चा सुनायी न दी।

यह आन्दोलन असफल ही रहा। इसका कारण था लौलार्डों का अनिश्चित उद्देश्य। धर्माचार्यों की सम्पत्ति और विलास के विरोध में वे एक मत थे; किन्तु अधिक बातों मे नहीं। विक्लिफ के उत्तरकालीन विचारों का अनुकरण करने के कारण कुछ लोग तो विधर्मी हो गये थे और चर्च के कुछ नियमों के विरुद्ध थे; किन्तु अधिकांश लोग उतनी दूर तक जाना अच्छा न समझते थे। विक्लिफ़ के विषय में दो बातें स्मरणीय हैं। एक तो पूरी बाइबिल का अँगरेज़ी अनुवाद और दूसरी लोगों को उसकी यह शिक्षा कि हर एक व्यक्ति बाइबिल के अनुसार बिना किसी की आज्ञा से प्रेरित होकर अपना विश्वास अथवा अपना सिद्धान्त और आचरण निश्चित करने का अधिकारी है।

---

# अध्याय २०

## लंकास्टर और यॉर्क

### १—ऊपरी बातें

लंकास्टर और यॉर्क का झगड़ा—एडवर्ड तृतीय के उत्तराधिकारियों में सिंहासन के लिए जो युद्ध हुए थे, वे 'गुलाबों के युद्ध' कहलाते हैं। लंकास्टर के राजा उसके तीसरे पुत्र जॉन आव गॉन्ट की सन्तान थे। यॉर्क उसके दूसरे और चौथे पुत्र के वंशजों के सम्मिलन से प्रसूत थे। यॉर्क की एक उत्तराधिकारिणी के साथ जॉन ऑव गॉन्ट के एक दूर के वंशज, हेनरी ट्यूडर का विवाह होने पर वे युद्ध समाप्त हुए। इस प्रकार गुलाबों के युद्ध का आरम्भ १४५५ ई० में सेन्ट अलबन्स के युद्ध से होता है; जिसमें रिचर्ड ड्यूक ऑव यॉर्क ने हेनरी षष्ठ को हराया और अन्त होता है १४८५ ई० में बोसवर्थ के युद्ध से, जिसमें रिचर्ड तृतीय युद्ध-क्षेत्र में मारा गया और हेनरी सप्तम को राज्य मिला। तीस वर्ष के इस समय में यद्यपि युद्ध की गति तीव्रतम रही, फिर भी यह उस भीषण घटना का केवल अन्तिम भाग है, जिसमें पूर्वगत समस्त घटना परिपक्व अवस्था को पहुँची। इस दुर्घटना का श्रीगणेश बहुत पहले हो चुका था। धीरे-धीरे इसका क्षेत्र बढ़ने लगा। भविष्य में क्या होने वाला है, इसके चिन्ह प्रकट होने लगे। फिर कुछ परिस्थितियों के कारण इसकी प्रगति रुक सी गयी, परन्तु १४४५ ई० में यह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया। यह परिस्थिति कुछ आश्चर्यजनक न थी। यह तो प्रकट और अवश्यम्भावी हो गयी थी।

आपत्ति का मूल—हेनरी चतुर्थ—इतिहास में इस आपत्ति का मूल प्रायः यॉर्क वंश की महत्वाकांक्षा बतलायी गयी है। इससे प्रेरित होकर उसने लंकास्ट्रियन हेनरी षष्ठ पर आक्रमण किया था। पर हम यह भूल जाते हैं कि लंकास्टर के आदर्श का ही यह अनुकरण था। हेनरी बोलिंगब्रोक ने रिचर्ड द्वितीय के प्रति विद्रोह कर उसका राज्य छीन लिया था। राज्य-विधान की रक्षा तो केवल एक आवरण था जिसे उसने अपने दुष्कृत्य पर चढा रखा था। रिचर्ड की अत्याचारी की भाँति गद्दी से उतरवा कर हेनरी चतुर्थ पार्लियामेन्ट की सम्मति से गद्दी पर बैठा। यह सब न्याय-संगत सा जान पड़ता है; किन्तु उस समय की पार्लियामेन्ट केवल बलवान के हाथ का अस्त्र थी। हेनरी चतुर्थ ने उसे अपने भाई के विनाश में प्रयुक्त किया। वह सशक्त था; अतः उसे खुले शब्दों में विश्वास घाती कहना कठिन था। रिचर्ड की मृत्यु के बाद लंकास्टर नहीं वरन् उसके द्वितीय पुत्र क्लैरेन्स का वंशज मार्च उसका असली उत्तराधिकारी था। वैधानिक इतिहासज्ञों के विचार में इंग्लैंड का राज-सिंहासन परम्परा पर

निर्भर न होकर निर्वाचन वृत्ति के अधीन रहा है। पार्लियामेन्ट निश्चय ही लंकास्टर को राजा बना सकती थी। फिर भी इंग्लैंड निवासी अपने जन्म-सिद्ध अधिकारों की दुहाई देते रहे हैं।

गुलाबों के युद्ध का विकास, रेड कॉट ब्रिज ( १३८६ ई० से ) स्टोक ( १४८७ ई० तक )—व्यापक दृष्टिकोण से पर्सी, मोर्टीमर, और ग्लैन्डोवर की संयुक्त शक्ति के विरुद्ध हेनरी चतुर्थ का युद्ध भी इसी चित्रपट में सम्मलित किया जा सकता है। इस संघर्ष का प्रारम्भ रिचर्ड द्वितीय के शासनकाल में रेडकॉट ब्रिज के युद्ध ( १३८६ ई० ) में पाया जा सकता है, जिसमें ग्लौस्टर, हेनरी ऑव् लंकास्टर और एपैलैन्ट्स राजा के विरोध में अधिक प्रबल सिद्ध हुए। इसके अन्त में हम स्टोक ( १४८७ ई० ) को भी सम्मिलित कर सकते हैं, जिसमें राजा, सिमनेल और उसके यॉर्कष्ट मित्रों को पराजित करने में सफल हुआ। पहले युद्ध की तिथि १३८६ ई० और अन्तिम की सन १४८७। यह एक दूसरा शत-वर्षीय युद्ध है, जिसकी फ्रान्स के युद्ध से बहुत कुछ समानता है। किन्तु यह गृह युद्ध था।

उत्तराधिकार का झगड़ा—उत्तराधिकारी न होने पर राज्याधिकार के झगड़े का वृत्तान्त हम इंग्लैंड में राजा स्टीफन और स्कॉटलैंड में अलक्जेंडर तृतीय के प्रसंग में पढ़ चुके हैं। गुलाबों के युद्ध का मूल भी वही उत्तराधिकार था। राजा के कोई सन्तान न होने अथवा सन्तान होने पर आपत्ति का सामना होता है। पहली दशा में दुर्दशा अनिवार्य हो जाती है, किन्तु दूसरी परिस्थिति पर निर्भर है। फिर भी सदा आपत्ति की आशंका बनी रहती है।

राजा के सामने एक विशाल वंश की विवाह-व्यवस्था का प्रश्न उठता था। विदेशी राजकुमारियों से विवाह कर के सम्बन्ध-विस्तार करने की नीति उत्तम होते हुए भी सरल न थी। पुत्रियों के विदेशी विवाहों में भारी दहेज आवश्यक था। राज-पुत्र और राज-पुत्रियों का अपने राज्य के अमीरों और अमीरजादियों से विवाह करना सरल था। यह नीति भी सरल थी, किन्तु बुरी भी थी। राजनीतिक कठिनाई में फँसने का यह सरल मार्ग इसलिए था कि यह विवाह-सम्बन्ध अमीर घरानों को अर्धराजकीय घरानों में परिणत कर देते थे जिनसे राजा के लिए झंझट पैदा हो जाते थे।

जॉन ऑव् गॉन्ट—ड्यूक ऑव लंकास्टर—राजकीय कुमारों को बड़ी जागीरें देने की नीति का सबसे उत्तम उदाहरण जॉन आफ गॉन्ट और उसके पुत्र हेनरी ऑफ लंकास्टर की स्थिति है। इसका आरम्भ हेनरी तृतीय के समय में हुआ और एडवर्ड द्वितीय और तृतीय के समय तक जारी रहा। जॉन ऑफ गॉन्ट एडवर्ड तृतीय का तीसरा पुत्र था। उसने लंकास्टर की ब्लान्श से जो स्वयम् राजवंश की थी, विवाह कर लंकास्टर की सम्पत्ति और डर्बी और लीस्टर की जागीरें प्राप्त कीं। उसके पुत्र हेनरी ने मेरी बोन से विवाह कर हर्फर्ड का आधा अधिकार प्राप्त किया। इस प्रकार यह प्रकट है कि राजघराने के माता और पिता के कुल में उत्पन्न और चार

रियासतों का अर्ल होने से वह अपने भाई एडवर्ड द्वितीय का कितना सशक्त प्रतिरोधी बन गया था।

### २—नाटक का प्रथम अंश : लंकास्टर घराने द्वारा न्यायसंगत उत्तराधिकार का बलिदान

रिचर्ड द्वितीय ( १३७७-९९ ई० )—रिचर्ड द्वितीय के शासन का इतिहास राज दल और लंकास्टर दल के दीर्घ-कालीन युद्ध से ओतप्रोत है। पहले, जॉन ऑव गॉन्ट इंग्लैंड का स्वामी था, किन्तु किसान विद्रोह ने उसे भयभीत कर दिया। १३८१ ई० के बाद उसने राजनीति से अपना हाथ खींच लिया और सन् १३८६ से १३८९ ई० तक कैस्टील के सिंहासन पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयत्नों में लगा रहा। वह अपनी नीति अपने पुत्र हेनरी को छोड़ गया, जो रिचर्ड द्वितीय के सब से छोटे चाचा ग्लौस्टर के टामस, और वारविक नॉटिंगहम तथा अरण्डेल के अर्लों के साथ राजा को बराबर परेशान करता रहा। उन्होंने पालियामेन्ट के द्वारा कार्रवाई की और राजा के व्यय के नियन्त्रण के लिए एक सभा की स्थापना का प्रस्ताव किया। पालियामेन्ट इस चाल से सहमत हो गयी, क्योंकि कर का बोझ अधिक था, नया व्यक्तिगत कर ( पोल टैक्स ) भी लगा दिया गया था और व्यय का कोई हिसाब-किताब न मिलता था। १३८६ ई० में यह झगड़ा और भी बढ़ गया जब राजा के मित्र डी ला पोल, अर्ल आव सफक और डी वेर, अर्ल ऑव आक्सफर्ड को बरख़ास्त करने का प्रस्ताव हुआ। डी ला पोल ने उसे स्वीकार कर लिया, किन्तु डी वेर और राजा के अन्य मित्रों ने युद्ध छेड़ दिया। रेडकाट ब्रिज के युद्ध में डी वेर हार गया और रिचर्ड को झुकना पड़ा। ग्लौस्टर, डर्बी, वार विक, नॉटिंगहम और अरडेल के अर्लों के अपीलेन्टों के नाम से राजा के मित्रों पर षडयन्त्र का अभियोग लगा कर गुलाबों के युद्ध की नीति का श्रीगणेश किया था। पार्लियामेन्ट की आज्ञा से एक को छोड़कर सब की गरदनें उड़वा दी गयीं।

अपने शासन के शेषकाल में रिचर्ड ने बदला लेने के प्रयत्न किये। १३९७ ई० में उसने ग्लौस्टर, वॉरविक और अरण्डेल को एक इल्जाम लगाकर गिरफ्तार कराया। वैस्टमिन्स्टर महल के चौक में खड़े हुए सशस्त्र चैशायर धनुर्धारियों से भयभीत होकर पालियामेन्ट ने उन्हें अपराधी ठहराया। ग्लौस्टर का जेल में निधन हो गया, वॉरविक बन्दी हुआ, अरंडेल को फाँसी हुई और उसका भाई देश से निकाल दिया गया।

इस प्रकार पाँच अपीलेन्टों में से तीन समाप्त हुए। डर्बी और नॉटिंगहम शेष रह गये थे। उसने उन्हें ड्यूक बना दिया। रिचर्ड स्थिति अब सुरक्षित थी, क्योंकि उसने पालियामेन्ट से जीवन भर के लिए कर ले लिया था, और उस संस्था को उसकी सारी शक्ति अपने १८ मित्रों को देने के लिये विवश कर दिया था। इस प्रकार रिचर्ड स्वेच्छाचारी राजा बन गया। उसे दूसरी पालियामेन्ट बुलाने की आवश्यकता ही न रह गयी।

**हरफर्ड और नार्फक का निर्वासन**—अब एक और परिवर्तन हुआ। हरफर्ड और नार्फक (डर्बी और नाटिंगहम) के ड्यूकों में झगड़ा हुआ। रिचर्ड ने हरफर्ड को सात वर्ष और नार्फक को जन्म भर के लिए देश से निकाल दिया। यद्यपि उसने फरफर्ड को वचन दिया था कि उसके निर्वासन-काल में मिलने वाली भूमि या सम्पत्ति जब्त न की जायगी तथापि उसने उस का पालन नहीं किया। आयरलैंड पर चढ़ाई के लिए जब उसे धन की आवश्यकता हुई तब उसने उसकी लङ्कास्टर की जागीर ले ली। जब रिचर्ड आयरलैंड में था तब ड्यूक ऑव लङ्कास्टर (हरफर्ड) यार्कशायर में उतरा और उसने लङ्कास्टर पर अपने अधिकार की घोषणा की। रिचर्ड के शत्रु भी उससे मिल गये। रिचर्ड ने लौट कर अपने चचेरे भाई ड्यूक आव लङ्कास्टर को काफी शक्तिशाली पाया। ड्यूक ने जागीर के अधिकार के अलावा राज्य पर अधिकार स्थापित करने का आयोजन किया, फलत, पार्लियामेन्ट ने रिचर्ड को सिंहासन से हटाकर ड्यूक को हेनरी चतुर्थ की संज्ञा देकर राजा बना दिया।

### ३—लंकास्टर के विरुद्ध पर्सी-मॉर्टिमर-सन्धि

**हेनरी चतुर्थ का राज्यारोहण**—हेनरी चतुर्थ के राज्यारोहण ने यह सिद्ध कर दिया कि इग्लैंड का राजत्व जन्माधिकार पर नहीं वरन् निर्वाचन पर निर्भर है। कहा जाता है कि रिचर्ड द्वितीय के कुशासन के कारण उसका सिंहासन छिना। हेनरी चतुर्थ प्रजा निर्वाचित एल्फ्रेड, हेरल्ड विलियम तृतीय और जार्ज प्रथम आदि की श्रेणी में है और रिचर्ड द्वितीय प्रजा के तिरस्कृत एडवर्ड द्वितीय, चार्ल्स प्रथम और जेम्स द्वितीय की श्रेणी में। फिर भी हेनरी चतुर्थ का राज्यारोहण एक लम्बे षडयन्त्र का फल था। यद्यपि दल युद्ध में लङ्कास्टर की विजय हुई तथापि युद्ध बराबर जारी रहा।

**हालैंड का षड्यन्त्र**—सन् ११९९ से १४०७ ई० तक हेनरी चतुर्थ कभी विद्रोह से मुक्त नहीं रहा। प्रथम विद्रोह रिचर्ड द्वितीय के अर्द्धभ्राता, हॉलेण्डों, कैन्ट और हन्टिंगडन के अर्लों ने किया। उन्होंने विंसर में क्रिसमस मनाते समय हेनरी को गिरफ़्तार करने का जाल रचा, परन्तु हेनरी को पता चल गया और वह लंडन भाग गया। षडयन्त्रकारी पकड़े गये और सबको फाँसी की सजा हुई। भावी विद्रोह रोकने के लिए रिचर्ड का मृतदेह लंडन लाया गया और वहाँ प्रदर्शित किया गया। रिचर्ड की मृत्यु किसी संयोग वश न हुई थी। उसकी हत्या की गयी थी।

**मॉर्टिमर षड्यन्त्र**—किन्तु रिचर्ड की मृत्यु हेनरी चतुर्थ को राज्य का निकटतम अधिकारी नहीं बना सकी। वास्तव में यह अधिकार मॉर्टिमर घराने का था; इसलिए अगले षडयन्त्र में एक मॉर्टिमर का गहरा सम्बन्ध पाया जाता है। चेशायर और उत्तरी वेल्स में उसका आरम्भ होना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं, क्योंकि दोनों रिचर्ड द्वितीय के सहायक थे।

ग्लेएडोवर—वेल्स के एक जमीन्दार ओवेन ग्लैएडोवर का एक पड़ोसी से झगड़ा हो गया निर्णय के लिये दोनों ने अस्त्रों की शरण ली। इस झगड़े ने राष्ट्रीय कलह का रूप धारण कर लिया। हेनरी स्वयम् एक सेना लेकर उत्तरी वेल्स में गया; परन्तु पहाडी प्रदेश होने के कारण उसे सफलता न मिल सकी। हेनरी पर्सी और एडमंड नॉर्टिमर को ग्लैएडोवर के दमन का कार्य सौंप कर वह चला आया। किन्तु मॉर्टिमर की सेना काट डाली गयी और वह स्वयम् बन्दी कर लिया गया।

एडमण्ड मॉर्टिमर स्वयम् तो राज्य का निकटतम उत्तराधिकारी न था; किन्तु उसका भतीजा अर्ल आव मार्च अवश्य था। इसके सिवा वह हेनरी पर्सी का साला था। अतः पर्सी वंश ने राजा से मॉर्टिमर को छुड़ाने के लिए कहा, परन्तु राजा सहमत न हुआ। वह मॉर्टिमर को कारावास में दूर ही रखना चाहता था। यह कहा जाता था कि मॉर्टिमर ग्लैएडोवर से गुप्त मित्रता रखता था। इसलिए राजा मॉर्टिमर को कारावास से छुड़ाने के लिए इच्छुक न था।

पर्सियों से युद्ध—होमिल्डन हिल—( १४०२ ई० )—पर्सियों का राजा से विरोध बढता गया। संयोगवश इस बीच राजा को वेल्स के युद्ध में असफलता रही, किन्तु पर्सियों ने स्कॉटों के विरुद्ध विजय पायी। होटस्पर ने १० हजार स्कॉटों को होमिल्डन हिल पर हराया। पर्सी वंश बलशाली और प्रभुत्वप्रेमी था। राज्य के बहुत बड़े पद उनके हाथ में थे, फिर वे बड़े लालची थे। उन्हें आशा थी कि स्काट कैदियों से धन लेकर उन्हें आजाद कर देने से वे खूब दौलत प्राप्त कर सकेंगे; किन्तु राजा ने उन्हें कैदी छोड़ने की आज्ञा न दी। इससे उनकी आशाओं पर पानी पड़ गया। इसके अलावा उन्हें यह भी शिकायत थी कि राजा ने उनसे जो कर्ज लिया था, वह भी अदा नहीं किया और न मॉर्टिमर को छोडने का कोई प्रयत्न किया। इन्हीं कारणों से उन्होंने विद्रोह कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि हेनरी के विरुद्ध एक विशाल संघ की रचना हुई। पर्सी वंश उसके नेता थे। उनके बन्दी-अर्ल ऑव डगलस ने स्काटों को मिला लिया। मॉर्टिमर और ओवेन ग्लैएडोवर भी षड्यन्त्र में शामिल हो गये। एक विवाह के कारण सब और भी दृढ़ हो गया। मॉर्टिमर ने ओवेन की पुत्री से विवाह करके सम्बन्ध और दृढ़ कर लिया। उस सबका उद्देश्य था रिचर्ड को अथवा अर्ल ऑव मार्च को राज्य दिलवाना। श्रूजबरी में घोर युद्ध हुआ। ७ हजार आदमी खेत रहे। होटस्पर मारा गया। टामस पर्सी, अर्ल ऑव वोस्टर को कत्ल कर दिया गया। हेनरी की विजय रही और षड्यन्त्र छिन्न भिन्न होगया। अधीनता स्वीकार कर लेने के कारण अर्ल ऑव नार्थम्बरलैंड को उसने क्षमा कर दिया और उसकी रियासत वापस कर दी; किन्तु उसने १४०५ ई० में मोब्रे, अर्ल आव नॉटिंगहम तथा स्क्राप, यार्क के आर्कबिशप के साथ दूसरा षड्यन्त्र रचा। ८ हजार आदमी यार्कशायर में एकत्र हुए। स्क्राप ने राजा पर अनेक अभियोग लगाते हुए कहा कि उस ने दगाबाजी से राज्य छीना; रिचर्ड की हत्या करवायी, लोगों को बिना मुकदमा चलाये प्राणदंड

दिया और अन्यायपूर्ण टैक्स लगा कर प्रजा को बरबाद कर दिया। ये अभियोग बहुत कुछ सत्य थे। लोग उत्तेजित हो उठे। विद्रोही इस विश्वास मे चले कि दोनों पक्षों के नेताओं में समझौता होगया है। नाटिंगहम और आर्कबिशप पकड़ कर क़त्ल कर दिये गये। एक आर्क बिशप को षड्यन्त्र के लिए क़त्ल करा देना भयकर बात थी।

ब्रमहममूर का युद्ध—नार्थम्बरलैंड की मृत्यु (१४०८ ई०)—नारथम्बरलैंड का अर्ल एक बार फिर भाग निकला। वह बड़ा चाई और सतर्क था। स्क्राप की भाँति वह शत्रु के हाथ आने वाला न था। कुछ समय तक वह हेनरी के शत्रुओं में स्काटलैंड, वेल्स, फ्लैंडर्स, फ्रान्स आदि मे घूमता रहा। अन्त मे एक बार उसने यॉर्कशायर में फिर उपद्रव उठाया। उससे युद्ध करने सर टामस रोकबी ब्रमहममूर आया। उसकी सेना तितर बितर कर दी गयी और वह युद्ध मे मारा गया। उसके मरने से हेनरी की कठिनाइयों का अन्त हो गया।

लंकास्टर की विजय—इस प्रकार लंकास्टर और यॉर्क के शतवर्षीय गृह-युद्ध के नाटक का प्रथम अंक रिचर्ड २य के शासन में होता रहा। इसका अन्त लंकास्टर की विजय से हुआ। दूसरे अक का अन्त ब्रमहममूर में हुआ। इसमें लंकास्टर के विरुद्ध युद्ध के प्रयत्न किये गये अन्त भी लंकास्टर की विजय से हुआ। किन्तु इसमें गुलाबों के युद्ध के लक्षण—विद्रोह, षड्यन्त्र, हत्याकाड और फाँसी—स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। पर्सी घराने ने वही काम किया जो आगे चल कर नैविल वंश ने किया। वे पहले किसी को राजा बनाते फिर उसे वंश मे करने का प्रयत्न करते और इसी में नष्ट हो जाते थे। झगड़े का निर्णय वे अस्त्रबल से करने की चेष्टा करते थे। इस सघर्ष में लिवरी और रिटेनर अधिक प्रकाश मे आये।

रिटेनर—प्रायः रिटेनर को लोग जमीन्दारी प्रथा (Feudal) समझते हैं किन्तु यह ठीक नहीं है। सामन्तशासन का आधार भूमि के बदले सेवा करने का था। 'रिटेनर' अपने स्वामी से जमीन के बन्धन से नहीं वरन् वेतन के कारण बँधा था। वह जन्म से नहीं, किन्तु स्वेच्छा से 'रिटेनर' था। स्वामी की सेवा स्वीकृत करके वह अपनी वर्दी और बिल्ला लेता था। वस्तुतः रिटेनर लोग एक प्रकार के सैनिक थे। पहले अमीर लोग युद्ध के समय जमीन्दारी प्रजा की सेना लाते थे, किन्तु जमीन्दारी प्रथा के नष्ट हो जाने पर वे 'रिटेनरों' की सेना लाने लगे। ये लोग जो क्रेसी और ऑजॉकूर में वरदान सिद्ध हुए थे, दुर्भाग्यवश स्वदेश में अभिशाप हो गये। शान्ति के समय ये अपने स्वामियों के लिए फौजदारी, लूट-मार और अनेक प्रकार के अत्याचार करते-फिरते थे। जमीन्दारों की प्रबलता, उद्दण्डता, स्वार्थपरता और क्रूरता देश के लिए नाशक सिद्ध हुई। ये राजा के दुराचार से डरते न थे और न राजा की फिक्र करते थे।

## ४—नाटक का तृतीय अंक

## गुलाबों का युद्ध

आग सुलगना—केम्ब्रिज के रिचर्ड का षड्यन्त्र—(१४१५ ई०)—के

ब्रेमहममूर और १४५५ ई० के सेन्ट एलबन्स के युद्धों के बीच में कोई गृहस्थ न हुआ। फिर भी छिपी आग सुलगती रही। लंकास्टर घराने के प्रति असन्तोष की चिनगारियाँ धरातल के नीचे दहक रही थीं। आर्जोकूर के युद्ध को जाने के समय हेनरी पंचम को अपने विरुद्ध एक षड्यन्त्र का पता लगा। मुख्य षड्यन्त्रकारी केम्ब्रिज के रिचर्ड, लॉर्ड स्क्रोप और सर टॉमस ग्रे को प्राणदंड दिया गया। स्क्रोप उसी आर्कबिशप का सम्बन्धी था जिसे हेनरी चतुर्थ ने कत्ल करा दिया था। रिचर्ड एडमंड ड्यूक ऑव यार्क का पुत्र और क्लैरेन्स तथा मार्टीमर की उत्तराधिकारिणी एन मार्टिमर का पति था। इसलिए लंकास्टर के मुकाबिले में उसका अधिकार अधिक था। वह तो मारा गया, किन्तु उसके अधिकार उसके पुत्र को मिले। यह वही रिचर्ड, (ड्यूक ऑव यार्क) था जिसने आगे चल कर सेन्ट अलबन्स की विजय प्राप्त की और जो वेकफील्ड में मारा गया।

फ्रान्स के साथ युद्ध—फ्रान्स से युद्ध में संलग्न रहने के कारण कुछ समय तक जाति का ध्यान भीतरी समस्याओं की ओर न गया। हेनरी पंचम की नीतिज्ञता की शक्ति और दुर्बलता का प्रमाण यही परिस्थिति है। वह एक सशक्त और प्रजा-प्रिय राजा था; किन्तु उसकी नीति ने आपत्ति को दूर न कर केवल कुछ दिन के लिए टाल दिया था। हेनरी पीछे देखता था, आगे नहीं। उसने सामन्तवाद के दोषों का निराकरण नहीं किया, उन पर परदा भर डाल दिया। उसने रिटेनर्स का नाश कर अमीरों पर नियन्त्रण नहीं लगाया, वरन् उन्हें एक विदेशी शत्रु के प्रति युद्ध में लगा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी युद्ध-शक्ति और भी बढ़ गयी। उसने अवसर की उपेक्षा की जिसका फल उसके पुत्र हेनरी षष्ठ को भोगना पड़ा।

विदेश में असफलता का परिणाम-गृह में असन्तोष (१४२८ ई०) जब तक ऑर्लियाँ की कुमारी लड़ाई में उपस्थित नहीं हुई, तब तक हेनरी की व्यवस्था में कोई बाधा न पड़ी। फ्रान्स वालों की अरस वाली सन्धि का प्रस्ताव अस्वीकृत करने तथा बरगंडी के अँगरेजों के विरुद्ध हो जाने पर भी, कोई विशेष हानि नहीं हुई थी। इसके बाद अठारह वर्ष विनाश के आये। सभी राजनीतिक दल अपना अपना श्रेय चाहते थे, कोई भी असफलता की जिम्मेदारी लेने को तैयार न होता था। टैक्सों की निरन्तर वृद्धि और युद्धों में एक के बाद दूसरी पराजयों के कारण शासन की ख्याति को बड़ा धक्का पहुँचा। यदि पार्लियामेन्ट शक्तिशालिनी होती तो मन्त्रिमंडल के हाथ से शान्तिपूर्वक ही शक्ति छीन ली जाती। किन्तु १५वीं शती में परिस्थिति ऐसी न थी। पार्लियामेन्ट शिकायत मात्र कर सकती थी। मन्त्रिमंडल की शक्ति छीनने का एकमात्र साधन षड्यन्त्र या विद्रोह हो सकता था।

बोफोर्ट—शासन के २५ वर्ष तक हेनरी षष्ठ अपने चचा और चचेरे भाइयों—बोफोर्टों के मतानुसार कार्य करता रहा। जॉन ड्यूक ऑफ बेडफर्ड एक बुद्धिमान तथा देशभक्त नीतिज्ञ था, किन्तु फ्रान्स की समस्याओं में वह ऐसा उलझा हुआ था कि उसे घर का ध्यान रखने का समय न मिला। इससे उसके

भाई ग्लौस्टर को जिस पर हेनरी पंचम का विश्वास न था. अब अवसर मिल गया। वह लालची और स्वार्थी था और उसका बोफोर्टों से झगड़ा होता रहता था। बोफोर्ट जॉन ऑव गान्ट के वंशज थे। एक विंचेस्टर का विशप था, दूसरा सोमरसेट का ड्यूक। यद्यपि वे लोग और ग्लौस्टर भी लकास्ट्रियन थे, तथापि उनमें बड़ा वैमनस्य था।

यार्क का उत्तराधिकार—१४४५ ई० में हेनरी ने फ्रान्स की मारग्रेट ऑव ऑजू से अपना विवाह किया। १४४७ ई० में ग्लौस्टर एक षड्यन्त्र में पकडा गया और निस्सन्देह जेल में मार डाला गया। हेनरी षष्ठ के कोई पुत्र न था. अतः रिचर्ड ऑव केम्ब्रिज का पुत्र रिचर्ड ड्यूक आव यार्क सिंहासन का उत्तराधिकारी हो गया। इस समय तक यार्क राजभक्त रहा था और दस वर्ष से अधिक तक उसने फ्रान्स में वीरत्व का परिचय दिया, परन्तु बोफोर्ट उससे भी ईर्षा करने लगे। फ्रान्स का नायकत्व उससे छीन सोमरसेट के ड्यूक एडमंड बोफोर्ट को दे दिया गया और वह आयरलैंड भेज दिया गया। ( १४४८ ई० )।

केड का विद्रोह—अब फ्रान्स में अन्तिम यातना का समय आया। सन्धि टूट गयी। एक के बाद दूसरी हार हुई। विदेश की असफलता का फल मन्त्रिमंडल को भी भोगना पड़ा। १४५० ई० में बिशप ऑव विंचेस्टर की हत्या हुई। सफोक जिसने फ्रान्स के साथ सन्धि-योजना की थी, निर्वासित कर मार डाला गया। जून में जैक केड ने अपना नाम मार्टिमर रखकर केन्ट निवासियों में विद्रोह की आग लगा दी। उसने लन्दन घेर लिया। बिशप ऑव साल्सबरी और कोषाध्यक्ष लार्ड को मार डाला। नार्मंडी से सोमर सेट के लौटने के साथ ही आयरलैंड से यार्क के आने के कारण यह सन्देह जाग्रत हुआ कि केड के विद्रोह का उत्तेजक यार्क ही है। यार्क वालों का एक दल शक्तिशाली हो गया, और अपने को सुशासन का पोषक तथा बोफोर्ट और दरबारियों का शत्रु घोषित करने लगा। किन्तु स्वयम् यार्क ने संयम से काम लिया और सेना इकट्ठी कर लेने पर भी लड़ाई न छेड़ी। यहाँ तक कि १४५३ ई० में जब हेनरी के पुत्र हुआ तो उसने अपना उत्तराधिकार छोड़कर राजकुमार के प्रति राजनिष्ठा प्रकट की। अगले साल जब राजा पागल हो गया और यार्क को राजा का प्रतिनिधि बनाया गया, तो उसने राज्य छीनने का कोई प्रयत्न न किया। राजा के स्वस्थ होने पर जब उसका शत्रु सोमरसेट शक्तिशाली हो गया तो यार्क को विवश होकर आत्मरक्षा के लिए शस्त्र उठाना अनिवार्य हो गया।

गुलाबों के युद्ध का विभाजन—गुलाबों के युद्ध का आरम्भ वस्तुतः १४५५ ई० में हुआ। इस युद्ध के चार कांड हैं, पहला युद्ध राज-प्रतिनिधित्व के लिए था। यार्क की विजय से यह कांड सेन्ट अलबन्स में समाप्त हो गया। दूसरा १४५६ ई० में रानी मारग्रेट के द्वारा यॉर्क को परास्त करने के प्रयत्नों से ( १४६१ ई० ), और उत्तर में लंकास्ट्रियनों की पराजय के साथ समाप्त हो गया। तीसरे में नेविलों

ने यार्क दल पर अधिकार करने की चेष्टाएँ कीं जो ( १४७१ ई० ) में निष्फल सिद्ध हुईं। चौथे में अपने सहायकों को ही अप्रसन्न कर देने के कारण रिचर्ड तृतीय शत्रुओं के हाथ बोज़वर्थ ( १४८५ ई० ) में मारा गया।

## §.१ यॉर्क और सोमरसेट का विरोध

एलबन्स का युद्ध ( १४५५ ई० )—पहले युद्ध की कथा सरल है। लंकास्टर और यॉर्कों में इतना विरोध न था, जितना कि यॉर्कों और सोमरसेटों में था। इसका उद्देश्य राजमुकुट प्राप्त करने का नहीं, वरन् राज्य की बागडोर ग्रहण करने का था। यॉर्क की सेना की मुठभेड़ राज सेना से सेन्ट अलबन्स में हुई। आक्रमण करते हुए वारविक और उसके साथी लंकास्ट्रियनों के बीच में घुस पड़े। सोमरसेट मारा गया और राजा हेनरी गिरफ्तार हुआ। राज्य की बागडोर यॉर्क और उसके सहायकों के हाथ में आ गयी। मृत होने के कारण सारा दोष सोमरसेट पर थोप दिया गया। यॉर्कों से अच्छे शासन की आशा की जाने लगी।

मारग्रेट ऑव ऑजू—हेनरी षष्ठ उदार और धर्मभीरु था। सरल और सच्चा होने के कारण उससे किसी आपत्ति या किसी को उत्तेजित करने की आशा नहीं की जा सकती थी; किन्तु उसकी रानी मारग्रेट ( की प्रकृति उसकी नम्रता के विपरीत ) बड़ी भयंकर थी। महत्त्वाकांक्षा, धूर्तता, क्रूरता और निर्दयता की वह मूर्ति थी। उसमें स्त्री सुलभ कोमलता का कोई भी अंश न था। षड्यन्त्र और अत्याचार के युग में मारग्रेट सब से अधिक षड्यन्त्रकारिणी तथा बड़ी निर्दय थी। यार्किस्ट लार्डों पर लॉच्छन लाने के लिए उसने फ्रेंच डाकुओं और आततायियों तक को गुप्तरूप से निमन्त्रित करने में संकोच नहीं किया। सेन्ट अलबन्स के दूसरे युद्ध के बाद उसने अपने आठ वर्ष के पुत्र एडवर्ड की इच्छा पर दोनों यार्क बन्दियों के सिर कटवा दिया।

नेविल घराना—जिस प्रकार मारग्रेट लंकास्ट्रियनों की मुख्य सहायक थी, वैसे ही नेविल वंशज यॉर्क दल के मुख्याधार थे। इसके विषय में दो बातें आश्चर्यजनक मालूम होती हैं। प्रथम, नेविल दि किंगमेकर का दादा राल्फ लंकास्ट्रियन था और उसकी दूसरी पत्नी जान ऑव गान्ट की पुत्री थी। अतः राजवंशज होने के कारण नेविलों से यॉर्क पक्ष में होने की आशा नहीं की जा सकती थी। दूसरे किंगमेकर का पिता रिचर्ड नेविल के द्वितीय घराने का सब से ज्येष्ठ पुत्र था, परन्तु प्रथम घराने में ६ सन्तानें थीं, इसलिए उसे उत्तराधिकार की अधिक आशा न होनी चाहिए थी। नेविलों की सहानुभूतियों और उनकी शक्ति का सारा रहस्य 'सौभाग्यपूर्ण विवाह'—इन्हीं दो शब्दों में निहित है।

सौभाग्यपूर्ण विवाह—राल्फ नेविल के उसकी दूसरी स्त्री जोएन बोफोर्ट से १४ और पहली स्त्री मारग्रेट से ६ सन्तानें थीं। यह आशा न थी कि कनिष्ठ शाखा ( जोएन की सन्तानें ) ज्येष्ठ से अधिक सम्पन्न होगी। राल्फ ने उनके लिए सब कुछ

किया। उसने यार्कशायर की सम्पत्ति जोएन को और जोएन ने वह सब अपने बड़े पुत्र रिचर्ड को दे दी। इसके सिवा ये माता पिता अपनी संतानों की विवाह योजना में भी बड़े कुशल थे। इन्होंने द्वितीय शाखा के ज्येष्ठतम पुत्र रिचर्ड का विवाह अर्ल आव सालसबरी की उत्तराधिकारिणी एलिस मोन्टेक्यूट से किया और सबसे छोटी पुत्री सिसली का विवाह रिचर्ड ड्यूक आव यार्क से। ये दो उदाहरण ही यह बतलाने के लिये काफी हैं कि विवाह सम्बन्धों से ही कनिष्ठ नोविलों के भाग्योदय का प्रारम्भ होता है तथा उनके यार्क-पक्ष ग्रहण के प्रश्न का भी यही उत्तर है। चूँकि प्रथम शाखा के भाई लंकास्ट्रियन थे अतएव उनके विरुद्ध कनिष्ठ शाखा वालों ने यार्कों का पक्ष लेना ही हितकर समझा।

बोशॉ विवाह—आर्लियाँ के घेरे में अर्ल ऑव सालसबरी मारा गया, अतः रिचर्ड नेविल अर्ल ऑव सालसबरी हो गया। उसके चार पुत्र और पाँच पुत्रियाँ थीं। उसकी विवाह नीति भी सफल रही। सबसे बड़े पुत्र रिचर्ड का विवाह वारविक के अर्ल रिचर्ड बोशाँ की पुत्री एन से हुआ। इस विवाह से दहेज के अतिरिक्त और कुछ आशा न थी, क्योंकि उत्तराधिकारी हेनरी बोशॉ का अभी विवाह हुआ था। किन्तु नियति रिचर्ड नेविल के अनुकूल थी। हेनरी बोशॉ की मृत्यु हो गयी। उसके एक छोटी पुत्री थी, वह भी मर गयी। अतः रिचर्ड नेविल वॉरविक, स्यूबरा, और ओमार्ल का अर्ल; स्टेनली और हारस्लाप का बैरन, ग्लैमॉर्गन मीरगनक का लार्ड; दक्षिण वेल्स में डेस्पेन्सर प्रान्तों का मालिक, ग्लोस्टरशार की बोशाँ की जमींदारी वारविक, आक्सफर्डशायर और बकिंगहम आदि का स्वामी हो गया। भाग्य के प्रताप से २२ वर्ष का कुमार पिता से भी अधिक शक्तिशाली बन गया। दस वर्ष बाद जब वेकफील्ड में रिचर्ड ज्येष्ठ मारा गया तो पिता का उत्तराधिकार भी उसे मिल गया। उसके और भी अन्य बहुत सम्बन्ध थे। उनकी सूची से रिचर्ड नेविल की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। एक बात यह भी है वह स्वयम् नेतृत्व के गुणों से सम्पन्न एक सतर्क और बुद्धिमान नीतिज्ञ, सुयोग्य सेना- पति एवम् संयमशील पुरुष था। कनिष्ठ शाखा का यही नेविल 'किंगमेकर' कहलाया; सन् १४६० से १४७१ ई० तक के दस वर्ष तो इसी के शासन के कहे जा सकते हैं।

## §२—यॉर्क द्वारा राज मुकुट-ग्रहण

मारग्रेट का प्रतिघात—इस आपत्ति के युग की राजनीति का विस्तृत विवरण अनावश्यक है। इसकी केवल रूपरेखा ही पर्याप्त होगी। सेन्ट अलबन्स के पतन से मारग्रेट निरन्तर षड्यन्त्र करती रही, किन्तु १४५६ ई० तक उसने कोई वार नहीं किया। तब भी लंकास्ट्रियनों की हार हुई। किन्तु एक महीने बाद उन्हें बदला मिल गया। जब लडफर्ड में यार्क सेना भाग खड़ी हुई, तो नेताओं को भी भागना पड़ा—वारविक और सालसबरी को कैले ओर यार्क को आयर्लैंड में शरण लेनी पड़ी। १४६० ई० में वे लौट आये और नार्थम्पटन में लंकास्ट्रियनों को हराया।

हेनरी स्वयम् बन्दी हुआ और ड्यूक ऑव यार्क ने लन्दन में आकर अपने राज्याधिकार की घोषणा की। इस बीच में मारग्रेट लॉर्ड क्लिफर्ड उत्तर में सेना एकत्रित कर रहे थे। ड्यूक उनका सामना करने के लिए उत्तर की ओर बढ़ा, किन्तु संयोगवश वेकफ़ील्ड में मारा गया।

अलवन्स का द्वितीय युद्ध—( १४६० ई० )—वेकफील्ड के युद्ध में दो पिताओं ने दो पुत्रों के लिये स्थान खाली कर दिया। ड्यूक आव यार्क ने अपना उत्तराधिकार अपने पुत्र एडवर्ड, अर्ल आव मार्च को और रिचर्ड नेविल, अर्ल ऑव साल्सबरी; ने अपना स्थान अपने पुत्र रिचर्ड वारविक दि 'किंगमेकर' को छोड़ा। पहले तो कार्य का पक्ष दुर्बल दिखायी दिया क्योंकि मारग्रेट की विशाल सेना लूटमार करती हुई दक्खिन की ओर बढ़ती जाती थी, यार्किस्ट अस्त व्यस्त थे और एडवर्ड पच्छिम में था। मारग्रेट ने सेन्ट अलबन्स में उसे परास्त किया। यह हार भयंकर थी। राजा बन्दी हो गया। यह आशा की जाने लगी कि थोड़े ही दिनों में मारग्रेट लन्दन ले लेगी और हेनरी षष्ट राजसिंहासन पर आसीन होगा।

मारग्रेट की असफलता—परन्तु अवसर नष्ट हो गया। मारग्रेट शिथिल-सी हो गयी। तब तक वारविक एडवर्ड से मिल कर शीघ्रतापूर्वक लन्दन जा पहुँचा। लंकास्ट्रियन उत्तर को चले गये। उनके हाथ से सुअवसर निकल गया।

एडवर्ड चतुर्थ, टाउटन का युद्ध—( १४६१ ई० )—छः सप्ताह से कम में लंकास्ट्रियनों की आशाएँ धूल में मिल गयीं। एडवर्ड ने, जो अब राजा बन बैठा था, मारग्रेट की सेना का पीछा किया। टाउटन में दोनों की मुठभेड़ हुई। गुलाबों के युद्धों में वह सबसे अधिक भयंकर था। सेना बराबर थी, किन्तु आँधी के रुख और बर्फ के कारण लंकास्ट्रियन सेना पर यार्क की तीर-वृष्टि और भी तीव्रतर हुई। लंकास्ट्रियनों के वार निरर्थक रहे। अतः उन्होंने एक पहाडी पर आक्रमण किया। बहुत देर तक युद्ध होता रहा। किन्तु यार्कों की एक नयी सेना ने नार्फक की अध्यक्षता में आकर लंकास्ट्रियनों को उत्तर पच्छिम की ओर घर दबाया। उस मार्ग मे कोक नदी खूब उमड़ी हुई थी। बहुत से लङ्कास्ट्रियन डूब गये और रात होते होते लङ्कास्ट्रियन सेना नष्ट हो गयी।

उत्तर की कशमकश; हैक्सहम—( १४६४ ई० )—यदि मारग्रेट गिरफ्तार हो जाती तो टाउटन का युद्ध इस लड़ाई का पूर्ण रूप से निर्णय कर देता। किन्तु वह भाग गयी और तीन वर्ष तक उत्तर में इधर-उधर लड़ती रही। उसे स्कॉटों और फ्रेन्च सेनाओं से सहायता मिली। वारविक और उसके भाई जॉन नेवल ने सब क़िलों पर कब्जा कर लिया और हेजलेमूर और हेक्सहम के युद्ध में लङ्कास्ट्रियनों की शक्ति पूर्णतः नष्ट हो गयी। लङ्कास्टर नेता मार डाले गये। उनमें हेनरी बोफोर्ट ड्यूक आव सोमरसेट भी था।

### ३—यॉर्क और नेविल का झगड़ा

अब यार्किस्टों के लिए अपने साथियों के अतिरिक्त और किसी का भय न

रहा। अब तक एक शत्रु होने के कारण यार्कों और नेविलों का सहयोग कायम था; किन्तु अब दोनों के स्वार्थ आपस में टकराने लगे। एडवर्ड चतुर्थ को तो सिंहासन मिल गया, किन्तु उसे सिंहासन पर बिठाने वाले को क्या उचित उपहार मिलना चाहिए, यही समस्या थी। अधिक आभारी हो जाने से ऋण चुकाना दुस्तर हो जाता है। किंगमेकर की निरन्तर उपस्थिति कोई राजा सहन नहीं कर सकता दोनों के हृदयों में यही विचार रहता है कि बनाने से बिगाड़ना कहीं सरल है।

यॉर्क और नेविल विच्छेद—इस प्रकार सन् १४६४ से १४७१ ई० तक का समय यार्क और नेविल के विच्छेद का काल है। मनोमालिन्य अब खुली शत्रुता का रूप ग्रहण कर लिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि किंगमेकर की मृत्यु और एडवर्ड चतुर्थ की दूसरी विजय हुई।

नेविलों से जब और कुछ लाभ की आशा न रही तब एडवर्ड ने उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न किया। उसने वारविक को बुरा भला कहना शुरू किया। वारविक एक फ्रेंच राजकुमारी से राजा के विवाह की योजना करने मे सलग्न था। किन्तु राजा एक साधारण विधवा के साथ गुप्त विवाह कर चुका था। जब वारविक को इस विवाह की सूचना का भेद खुल गया तो एडवर्ड ने अपनी पत्नी (एलिजेबेथ वुडविल) के सम्बन्धियों को बढ़ाना आरम्भ कर दिया। नेविलों की शक्ति तोड़ने के लिए वुडविलों का उत्कर्ष आरम्भ हुआ। साधन भी वही थे। राजकृपा और विवाह सम्बन्ध। १४६७ ई० में खुलकर विरोध होने लगा। यार्क का आर्क विशप, जार्ज नेविल चान्सलरशिप से बरखास्त कर दिया गया और रानी का पिता लार्ड रिवर्स उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया गया फिर राजा ने डचेज ऑव एक्सीटर को वारविक के भतीजे के बजाय रानी के ज्येष्ठ पुत्र जॉन ग्रे से विवाह करने पर राजी किया। वारविक का असम्मान पूरा करने के लिए राजा ने उसे अपनी बहन मारग्रेट ऑव यार्क से विवाह के लिए एक फ्रेन्च राजकुमार खोजने भेजा और उसके जाते ही राजकुमारी का विवाह फ्रान्स के राजा के प्रमुख शत्रु ड्यूक ऑव बरगंडी से कर दिया।

क्लैरेन्स नेविल; विवाह नीति—इन घटनाओं से एक बार फिर यह विदित हो जाता है कि उस युग की नीति का सम्बन्ध विवाह नीति से कितना घनिष्ठ था। प्रत्येक पक्ष विवाह द्वारा राज्य, अथवा बल बढ़ाने का प्रयत्न करता था। कोई भी विवाह बुरा न था, यदि उससे लाभ की सम्भावना हो। बाइस बरस के जॉन वुडविल ने नार्फक की बूढ़ी विधवा डचेज से विवाह किया, जो उसकी दादी होने के योग्य थी। इसके अलावा राजा द्वारा वुडविल के उत्कर्ष का वारविक द्वारा प्रत्युत्तर भी विचारणीय है। उसने राजा के भाई जॉर्ज ऑव क्लेरेन्स के साथ अपनी पुत्री एजाबेल नेविइल का विवाह कर राजा के विरोध में एक षडयन्त्र रच दिया।

एजकोट फील्ड—एडवर्ड की गिरफ्तारी—अब परिस्थिति फिर ऐसी होने लगी कि तलवार के अतिरिक्त निर्णय का रास्ता और कोई न दिखाई देता था लङ्का स्ट्रियनों के तरफदार फिर देश में दिखाई देने लगे। १४६६ ई० में वारविक के एक सम्बन्धी सर जान कानियर्स की अध्यक्षता में समस्त दक्खिन यार्कशायर में विद्रोह खड़ा हो गया। एडवर्ड के बुलाने पर वारविक स्वयम् कैले से जार्ज नेविल और अपने दामाद ड्यूक आव क्लेरेन्स के साथ आया, परन्तु सहायता करने के स्थान पर वारविक ने एडवर्ड के विरुद्ध एक सेना तैयार की। बहुत से राजा के सिपाही नेविल की ओर चले गये। लार्ड हर्बर्ट की अध्यक्षता में जो सेना थी, उसे एजकोट में कानियर्स ने तितर-बितर कर दिया। रात में जार्ज नेविल और वारविक के सैनिकों ने राजा एडवर्ड को भी गिरफ्तार कर लिया।

वारविक यदि चाहता तो राजा का वध करा सकता था और अपने दामाद क्लेरेन्स को राजा बना सकता था। यद्यपि एडवर्ड को वारविक के कत्ल की आज्ञा देने में हिचक न होती, फिर भी वारविक ने सहिष्णुता से काम लिया और दो वुडविल सरदारों को फाँसी दिला दी। उसने सोचा कि उसने राजा को काफी शिक्षा दे दी है। परन्तु इसमें उसकी बडी भूल हुई, क्योंकि वस्तुतः उसने एक घोर शत्रु बना लिया था।

नेविलों का पलायनः—मारग्रेट ऑव ऑञ्जू से सन्धि (१४७० ई०)—अब आन्दोलनों का बाजार गरम हुआ। १४७० ई० में एडवर्ड ने एक सेना लेकर लिंकनशायर का विद्रोह दबाया और वारविक और क्लैरेन्स को समुद्र पार भागने को बाध्य किया। फ्रान्स में उन्हें लंकास्ट्रियन दल के बिखरे हुए लोग मिले। मारग्रेट आव आञ्जू उनकी नेता थी। वे वहाँ बडी कठिनाई में थे। राजकुमार दर बदर भीख माँगता फिरता था और रानी धन वस्त्र हीन हो रही थी। एडवर्ड को बरगंडी से सन्धि करने का दड देने के लिए लुई एकादश को यह अवसर अच्छा जान पड़ा। उसने वारविक और मारग्रेट को सन्धि कर लेने पर राजी कर लिया। २० वर्ष तक घोर शत्रु रहने वालों में समझौता कराना सहल काम न था, किन्तु लुई एकादश कूटनीति में बड़ा कुशल था। वारविक ने हैनरी को राजा घोषित किया, और अब की बार मारग्रेट के पुत्र राजकुमार एडवर्ड का अपनी पुत्री एन से विवाह कर दिया। आरम्भ में भाग्य ने साथ दिया और सितम्बर में क्लैरेन्स और वह वारविक पच्छिम में उतरे। एडवर्ड की सेना ने उसका साथ छोड़ दिया और वह गिरफ्तार होते-होते बचा। वह बरगंडी भाग गया और हेनरी षष्ठ टावर से रिहा कर सिंहासन पर बैठा दिया गया।

एडवर्ड का पुनरागमन (१४७१ ई०)—फिर भाग्यचक्र घूमा। एडवर्ड चतुर्थ ने सेना एकत्र की और रैवेन्सपर में उतरा। उसके साथ केवल ३०० आदमी थे। रिचर्ड ऑव ग्लौस्टर २०० और अर्ल रिवर्स भी कुछ आदमियों को लेकर उससे

मिल गये। इतनी थोड़ी सेना लेकर क्या आशा की जा सकती थी? फिर भी रेवेन्सर से आरम्भ मंगलसूचक था हेनरी ऑव डर्बी भी यहीं उतरा था। इन दोनों घटनाओं में एक और भी साम्य था; जिस प्रकार हेनरी ऑव डर्बी ने केवल लंकास्टर पर अपना अधिकार प्रदर्शित किया था, उसी प्रकार एडवर्ड ऑव मार्च ने भी केवल यॉर्क पर अपना अधिकार प्राप्त करने की घोषणा की। हेनरी राजा हेनरी चतुर्थ हुआ, और एडवर्ड राजा चतुर्थ एडवर्ड।

वार्नेट का युद्ध (१४७१ ई०)—दक्खिन की ओर एडवर्ड की अभियात्रा साहस और सौभाग्य के फल का प्रमाण है। वह मान्टेगू से बच कर निकल गया। वॉरविक ने उसे रोकने के लिए क्लैरेन्स को भेजा किन्तु क्लैरेन्स भाई से जा मिला किंगमेकर अपने वॉरविक दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध करने लगा और एडवर्ड सीधा लन्दन की ओर बढ़ा। वॉरविक के पीछा करने पर वह उत्तर की ओर बढ़ गया और बार्नेट में सामना होगया। कुहरे के कारण कौशल से अधिक संयोग पर युद्ध का परिणाम निर्भर रहा। अर्ल ऑव आक्सफर्ड का लंकास्ट्रियन दल अपने यॉर्क विरोधियों को भगाने के बाद मार्ग भूल गया और अपनी ही सेना के पिछले भाग पर आ धमका। परिणाम स्वरूप उन पर तीरों की वर्षा होने लगी। 'विश्वासघात' की चिल्लाहट शुरू हुई। नेविल और लंकास्ट्रियन पंक्तियों में विश्वासघात की सम्भावना भी अधिक थी, क्योंकि वे अनेक बार एक दूसरे के शत्रु रह चुके थे। उनकी पंक्तियाँ शीघ्र ही भंग हो गयीं और वारविक मारा गया।

टॉक्सबरी का युद्ध—नेविलों का पतन—अन्त में भाग्य नेविलों के प्रतिकूल हो गया। एक महीने तक रानी मारग्रेट फ्रान्स के समुद्र तट पर चेनल पार करने की प्रतीक्षा करती रही। एक मास तक तूफान ने उसे रोक रक्खा। बड़ी विलम्ब से वह वेमउथ पर ठीक उसी ईस्टर के दिन उतरी जिस दिन वॉरविक ने बार्नेट पर अपना अन्तिम युद्ध किया था। उसकी सहायता, जो उस युद्ध का परिणाम बदल सकती थी, निरर्थक हो गयी। वह पच्छिम की ओर बढ़ी, किन्तु ४ मई को घेर ली गयी और टॉक्सबरी में परास्त हुई। प्रिन्स एडवर्ड ने क्षमा की निष्फल याचना की। सोमरसेट बन्दी हुआ और फाँसी पर चढ़ा दिया गया। पिता सेन्ट अल्बन्स पर मर चुका था, ज्येष्ठ पुत्र हेक्सहम पर बलि हो गया था और तीसरा टॉक्सबरी पर मारा गया। इस प्रकार बोफ़ोर्टों का कोई पुरुष उत्तराधिकारी न रहा यार्किस्टों को अपने शत्रुओं के वंश के नाश पर हर्ष हुआ होगा, किन्तु उन्हे स्त्री शाखा के एक वंशधर से लड़ना था जिसका नाम हेनरी ट्यूडर था और जो उस समय केवल चौदह वर्ष का था।

टाक्सबरी के साथ गुलाबों के युद्ध का तृतीय कांड समाप्त हो जाता है। सेन्ट अल्बन्स के प्रथम युद्ध में बोफोर्टों पर यार्क और नेविल घराने का प्रभुत्व हो गया था। टाउटन पर उन्होंने राजा हेनरी पर विजय पायी। बार्नेट और टाक्सबरी

में पुराने मित्र एक दूसरे के शत्रु हो गये और नेविल शक्ति का नाश हो गया। अन्तिम कांड का विषय यार्क शक्ति का पतन है।

एडवर्ड चतुर्थ के शेष वर्ष शान्ति से बीते। एडवर्ड के टाक्सबरी से लौटते समय हेनरी षष्ठ की मृत्यु हो गयी। बहुत से लंकास्ट्रियन नेता मर चुके थे;
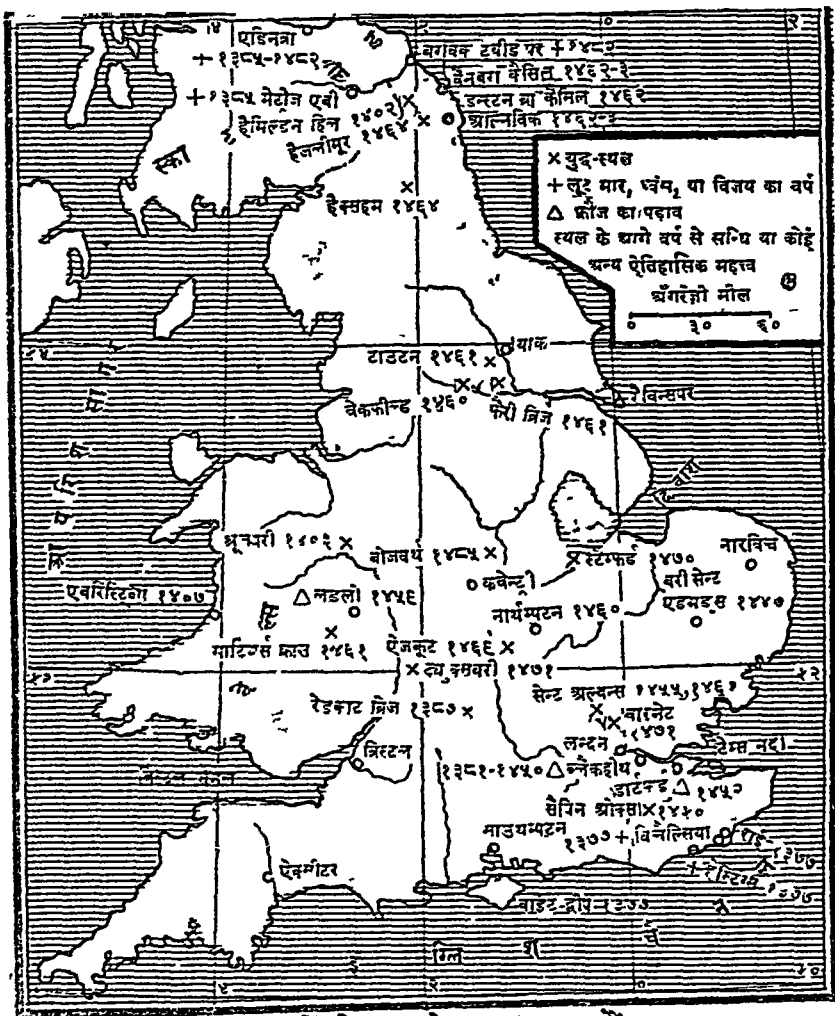
गुलाबों के युद्ध के समय का इंग्लैंड

शेष निर्वासित थे। शासन की व्यवस्था राजा की रुचि पर छोड़ देने में पार्लियामेन्ट सन्तुष्ट थी। यही एडवर्ड चाहता भी था। उसने फ्रान्स से युद्ध किया जो गौरवयुक्त न होकर भी लाभदायक साबित हुआ। लुई एकादश ने उसे ७२ हज़ार क्राउन नक़द और वार्षिक कर देने का वचन देकर लौटाया। एडवर्ड कुछ वर्ष और

जीने की आशा कर सकता था। उसके दो पुत्र भी थे। यह कल्पना की भी जा सकती थी कि यॉर्क का घराना सुरक्षित हो गया।

## ६—यॉर्क-शक्ति का बिनाश

एडवर्ड चतुर्थ की मृत्यु—१४८३ ई० मे एडवर्ड की मृत्यु हो गयी। उसका उत्तराधिकारी एडवर्ड पंचम था; परन्तु उनके चाचा रिचर्ड ऑव ग्लौस्टर की महत्वाकांक्षा ने इंग्लैंड में फिर उपद्रव उपस्थित कर दिया। रिचर्ड अपने वंश की कुटिलता और क्रूरतायुक्त योग्यता का पहले ही परिचय दे चुका था। युद्ध, हत्या और आकस्मिक मृत्यु उसकी राजनीति के साधारण साधन थे। बार्नेट और टॉक्सबरी में वह खूब लडा था। लोगों की धारणा थी कि प्रिन्स एडवर्ड की हत्या में भी उसका हाथ था। वह तो उसे हेनरी षष्ठ के बध का भी जिम्मेदार कहते थे। उसने अपने भाई जार्ज ऑव क्लैरेन्स के विरुद्ध षड्यन्त्र करके उसे कैद करवा दिया और मृत्युदंड दिलवाया। फिर भी देश को उसके प्रति अविश्वास न हुआ क्योंकि इङ्गलैंड राजनीति के रहस्यों से अपरिचित था और नृशंसता का आदी हो गया था। वस्तुतः वह बलशाली और देश में शान्ति स्थापन करने वाला समझा जाता था। शान्ति-रक्षा के उसके भयङ्कर साधन; अभी भविष्य के अन्तरपट में लीन थे।

रिचर्ड की स्थिति—हम देख चुके हैं कि आत्म रक्षा के लिए रिचर्ड ऑव यॉर्क और रिचर्ड ऑव वॉरविक को षड्यन्त्र की शरण लेनी पड़ी थी। एक प्रकार से रिचर्ड आफ ग्लौस्टर के साथ भी यही हुआ। रानी के दल से उनका बहुत पुराना विरोध था। उनके सबल होने से उनकी प्राण जाने की सम्भावना थी। रिचर्ड का पहला काम राजा को उसके चाचा वुडविल और अर्ल रिवर्स के प्रभाव से मुक्त कराना था। ड्यूक ऑव बकिंहम के साथ वह राजा और उसके अनुचरों से स्टोनी स्ट्रेटफर्ड में मिला। उसने सर रिचर्ड ग्रे और रिवर्स को बन्दी कर मिडिलहम भेज दिया और स्वयम् राजा को लन्दन ले गया। उसका दूसरा काम अपने को लार्ड हेस्टिंग्स से मुक्त करना था। उसने उससे अकारण झगड़ा करके काउन्सिल के द्वार पर उसका सर एक लट्ठे से तुड़वा दिया। एडवर्ड पञ्चम अपने टावर के राजप्रासाद में पहुँचाया गया जो उसका बन्दीगृह और अन्त में समाधि भी बन गया। राजा के छोटे भाई के रहते हुए उसका उद्देश्य सिद्ध होना कठिन था इसलिए रिचर्ड ग्लौस्टर ने वेस्टमिनिस्टर के मठ से उसे बुलाकर भाई के साथ टावर में पहुँचा दिया।

रिचर्ड का राजा होना; राजकुमारों की हत्या—अब सब तैयारी पूरी हो गयी। ग्लौस्टर और बकिंगहम के रिटेनरी (सिपाहियों) से लन्दन भरा था एडवर्ड के विवाह को गैर कानूनी ठहराकर बकिंगहम आदि ने उसके बदले रिचर्ड को राज-

सिंहासन पर बैठाने का प्रस्ताव किया। अमीरों ने रिचर्ड को सिंहासन भेंट किया; और उसने स्वीकार कर लिया। विरोध मिटाने के लिए उसने रिवर्स और ग्रे को पहले ही मरवा दिया था। अपनी मजबूरी के लिए उसने राजकुमारों का भी बध करा दिया (१४८३ ई०)।

रिचर्ड के विरुद्ध षड्यन्त्र; 'बकिंगहम'—नृशंसता और क्रूरता की यह पराकाष्ठा थी। वेकफील्ड की विलफर्ड, सेन्ट अलबन्स की मारग्रेट, हेक्सहम का मान्टेग्यू, टाक्सबरी का एडवर्ड, और वूर्स्टर के अर्ल टिपटाफ के समान जल्लाद भी इसके सामने कुछ न थे। अब रिचर्ड का कोई मित्र भी न रह गया था। एक के बाद दूसरा षड्यन्त्र रचा जाने लगा। ड्यूक आव बकिंगहम ने कोर्टने और पच्छिमियों की सहायता से मारग्रेट बोफोर्ट के पुत्र हेनरी ऑव रिचमंड को गद्दी पर बैठाने का षड्यन्त्र रचा; परन्तु भाग्य बकिंगहम के विरुद्ध था। आँधी के कारण रिचमंड समय पर न आ सका और सेवर्न नदी की बाढ के कारण बकिंगहम मित्रों से पृथक हो गया और गिरफ्तार करके मारा गया। बकिंगहम के साथ अत्याचार के कारण यार्क दल का एक और भाग लंकास्ट्रियन हो गया। रिचर्ड का दूसरा प्रस्ताव अपनी पत्नी एन नेविल को तलाक देना था और अपनी भतीजी, एडवर्ड चतुर्थ की पुत्री एलिज़ेवेथ ऑव यार्क के साथ विवाह करना। संयोगवश एन की मृत्यु हो गयी। किन्तु इन बातों से जनता में घृणा उत्पन्न हो गयी थी।

हेनरी अर्ल ऑव रिचमंड—इस परिस्थिति में हेनरी ट्यूडर, अर्ल ऑव रिचमंड रानी के वुडविल सहायकों के साथ, सन् १४८५ ई० में वेल्स में उतरा। उसने एलिज़ेवेथ ऑव यार्क के साथ विवाह का वचन दे दिया था। वेल्स वालों ने उसका साथ दिया। मार्च घराने के लंकास्ट्रियन भी उससे मिल गये, पर फिर भी विजय की कोई विशेष आशा न थी। केवल पाँच हजार आदमी लेकर वह बोजवर्थ में रिचर्ड की दुगुनी सेना से लड़ गया। किन्तु जब आक्सफर्ड ने लंकास्ट्रियनों की ओर से आक्रमण आरम्भ किया, तब रिचर्ड की आधी सेना ने असहयोग कर दिया और स्टेनलियों ने भी उसका साथ छोड़ दिया। रिचर्ड युद्ध में मारा गया (१४८५ ई०)। यद्यपि इस युद्ध मे दो ढाई सौ आदमी मारे गये, किन्तु इसका परिणाम बड़े मार्के का हुआ।

लैम्बर्ट सिमनेल, स्टोक की लड़ाई (१४८७ ई०)—हेनरी सप्तम के राज्यारोहण से यह आपत्ति का युद्ध समाप्त हो जाता है। हेनरी के रक्त और एलिज़ेवेथ के श्वेत रंग वाले दोनों गुलाबों का सम्मेलन इस अध्याय का एक लोमहर्षक उपसंहार है। परन्तु बोज़वर्थ के मैदान पर रिचर्ड तृतीय के बध के साथ दुर्व्यवस्था का अन्त नहीं हुआ और फिर इसका विकास लावेल के विद्रोह में होने लगा। लैम्बर्ट सिमनेल को यार्क ऑव क्लैरेन्स का उत्तराधिकारी बना कर यार्किस्टों, जर्मन सिपाहियों और आयरलैंड की सेना ने मिल कर स्टोक में एक युद्ध और किया और परास्त हुए।

स्टोक का युद्ध गुलाबों के युद्ध की अन्तिम लड़ाई है। फिर भी ११ वर्ष तक एक यार्किस्ट पर्किन वारवेक हेनरी को परेशान करता रहा। टावर में मारे गये राजकुमारों से वह अपने को छोटा बतलाता था। उसने हेनरी के शत्रुओं में एक चक्कर लगाया। पहले वह यार्क की डचेज मारग्रेट के साथ बरगंडी पहुँचा। आयरलैंड में उसने षड्यन्त्र रचा। स्काटलैंड के जेम्स चतुर्थ को उसने राजकुमार बन कर छला और उसकी बहन से विवाह कर लिया। इस प्रकार वह एक गरजते बादल के समान घुमड़ता रहा। अन्त में वह डेवनशायर में उतरा और गिरफ्तार हो गया। जेल में भी उसका उत्पात समाप्त न हुआ। उसने एडवर्ड ऑव क्लेरेन्स के साथ भागने का प्रयत्न किया। अब हेनरी का धैर्य जाता रहा और उसने उसे क्लैरेन्स के साथ फाँसी दे दी। वारवेक सहानुभूति का अधिकारी न था, किन्तु क्लैरेन्स के लिए यह दारुण दुर्घटना थी। वह पहले एडवर्ड तृतीय का फिर हेनरी सप्तम का बन्दी होकर १६ वर्ष तक तो जेल में रहा। राजवंश के परिवर्तन से भी उसका भाग्य न पलटा; क्योंकि वह दोनों वंशों के लिए आपत्ति-कारक था। इस घटना के बाद फिर कोई षड्यन्त्र न हुआ।

गुलाबों के युद्ध का अन्त—हिंसा के इस शुष्क इतिहास की कुछ शिक्षाएँ और कुछ भावी संकेत भी हैं। सब से प्रथम बात तो शक्तिशाली बड़े घरानों का विध्वंस है। सौ वर्ष तक इंग्लैंड का राज्य सिंहासन प्रबल वंशों की महत्त्वाकांक्षा का लक्ष्य बना रहा और तीस वर्ष तक वह प्रमुख योद्धाओं के चंगुल में आता जाता रहा। यह राज रक्षक वालों के द्वन्द्व-प्रति द्वन्द्व का समय था। हेनरी सप्तम इसका अन्तिम विजेता रहा। उसने अपने प्रतिस्पर्धियों को फिर कभी न उठने दिया। 'लिवरी-विधान' बना कर हेनरी ने रिटेनर्स का नाश कर दिया और निजी सैनिकों के साथ व्यक्तिगत युद्धों का अन्त हो गया। उसने अपने मित्र अर्ल ऑव आक्सफर्ड पर भी "बैज" धारण किये हुए दल के साथ राजा का स्वागत करने के कारण भारी जुर्माना किया, क्योंकि वह अपने नियमों का उल्लंघन सहन नहीं कर सकता था।

पैरोकारी के क़ानून (स्टेट्यूट ऑव मेन्टेनेन्स)—पिछले पचास वर्ष से न्यायालय बेकार से हो रहे थे, क्योंकि शक्तिशाली स्वामी के सामने कोई भी न्यायाधीश उसके विरुद्ध अपना कर्तव्य-पालन नहीं कर सकता था। अमीरों के सशस्त्र सैनिक न्यायालय में घुस आते और आतंक जमा देते थे। इसके भय से न्यायाधीश न्याय करने में असमर्थ हो जाता था। इस प्रकार की प्रचंड पैरोकारी हेनरी ने न्याय विरुद्ध ठहरा कर क़ानून द्वारा बन्द कर दी। इस प्रकार न्यायालयों को निर्भयता से न्याय करने का अवसर मिल गया।

स्टार चेम्बर—स्टार चेम्बर के विधान में हेनरी सप्तम की सतर्कता का एक और प्रमाण मिलता है। यद्यपि इस सभा की स्थापना पार्लियामेन्ट के ऐक्ट द्वारा की गयी थी, तथापि इसको वास्तविक शक्ति राजा ने ही प्रदान की थी। सिद्धान्ततः

नुसार राजा न्याय का स्रोत माना जाता था। हेनरी सप्तम स्वयम् विचारपति बनना नहीं चाहता था। स्वयम् राजा को न्यायालय में बैठने के दिन बीत गये थे, इसलिए उसने अपनी अधिकार-शक्ति 'स्टार-चेम्बर' को दे दी। चान्सलर, कोषाध्यक्ष, लार्ड प्रिवी सील, एक बिशप और दो प्रधान न्यायाधीश उसके सदस्य थे। न्याय सभा का कर्तव्य दुर्बल की सबल से रक्षा करना था। उसे जुर्माना और कैद करने के अधिकार प्राप्त थे। यह आश्चर्य की बात है कि यही न्याय सभा आगे चल कर अत्याचार का साधन बन गयी।

नयी नीति और विधानों से अमीरों की रही-सही शक्ति भी नष्ट हो गयी। अब वे न राज्य के बड़े पदों पर रहे और न राजवंशों से विवाह कर प्रबल बन सकते थे। उनकी शक्ति के विनाश के बाद भी उनका भय बना रहा। अतएव ट्यूडर काल में लोग अत्याचारी राजा का भी इसीलिए साथ देते रहे कि कहीं उसको दुर्बल कर देने से फिर आपत्तियों का द्वार न खुल जाय।

गुलाबों के युद्ध और १६४२ के गृह-युद्ध की तुलना—अमीर घरानों का नाश उन्हीं के उत्पातों के कारण हुआ; किन्तु गुलाबों के युद्ध से जनता की क्षति नहीं हुई। १६४२ ई० के गृह-युद्ध से गुलाबों के युद्धों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है। गृह-युद्ध में लन्दन, ग्लौस्टर, ब्रिस्टल आदि नगरों का घेरा डाला गया। गुलाबों के युद्ध में कोई घेरा नहीं पड़ा। लंकास्टर दुर्ग एक अपवाद अवश्य है। कारण यह था कि गुलाबों का युद्ध अमीरों का युद्ध था, जनता का नहीं। यह सत्य है कि यार्क दल लंकास्टर से अधिक लोकप्रिय था। लङ्कास्टर की शासन नीति अच्छी न थी। उनके सहायक क्रूर और अत्याचारी थे। अतः धनी, व्यापारी आदि यार्कवंश के हित-चिन्तक थे। पर वास्तविक युद्ध में उन्होंने कोई भाग न लिया। कुछ स्थानों को छोड़ कर देश में शान्ति रही। व्यापारिक उन्नति जारी थी। बरगंडी के साथ उनके व्यापार में कोई बाधा नहीं हुई और नये नगरों का उदय होता रहा।

गृह-युद्ध की अपेक्षा इंग्लैण्ड को गुलाबों के युद्ध में अधिक दिलचस्पी न थी। गृह-युद्ध में लोगों के उद्देश्य उदार थे। वे व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नहीं, वरन् सिद्धांत के लिये लड़े थे। इनमें बहुत से विख्यात पुरुष थे और अनेक सत्कृत्य हुए। गुलाबों के युद्ध में न तो कोई महापुरुष शामिल हुआ और न कोई महान कृत्य सम्पादित हुआ। यद्यपि वारविक ने कुछ समय तक कर्तव्य पालन करना चाहा, किन्तु बाद में आगे चल कर उसने भी षड्यन्त्र की शरण ली। उसने एडवर्ड को सिंहासन पर बैठाया था। वह या तो उसका अधिष्ठाता ही रह सकता था या शत्रु। एडवर्ड एक अधिष्ठाता को सहन नहीं कर सकता था और वारविक भी स्वाभिमानी था। वह भी दरबारी बन कर नहीं रह सकता था। प्रधान मन्त्री की कल्पना अभी विकसित नहीं हुई थी। फिर उस नाटक के अन्य पात्रों में कोई भी भला नहीं था। कुछ अपने दल

के प्रति तो सच्चे थे; किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं हो सकता। अधिकांश सच्चे भी न थे। उनके युद्धों का निर्णय षड्यन्त्र पर निर्भर रहा। अतः गृह-युद्ध के उदार तत्वों—देश-भक्ति, स्वामिभक्ति, सत्यता और करुणा के स्थान पर गुलाबों के युद्ध में विश्वास-घात, स्वार्थपरायणता और निर्दयता दिखायी देती है। इन युद्धों के परिणाम स्वरूप यार्क वंश धीरे-धीरे क्षीण हो गया। प्रथम नेविल और फिर क्लेरेन्स निकल गये। रिचर्ड तृतीय का ग्रे और वुडविलों से विरोध हो गया। उसके राज्य-ग्रहण के कारण एडवर्ड के मित्र और बरगंडी वाले उससे पृथक् हो गये। राजकुमारों के वध ने एडवर्ड की रानी को भी लङ्कास्ट्रियनों के दल में मिला दिया। बकिंगहम ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। अन्त में अपनी भतीजी के साथ विवाह के पैशाचिक प्रस्ताव ने चर्च को भी उसको शत्रु बना दिया। किन्तु उनके विनाश का परिणाम एक घराने या दल के नाश से अधिक हुआ। उनके नाश के साथ इंग्लैण्ड के माध्यमिक काल का पटाक्षेप और आधुनिक काल का आरम्भ होता है।

---

14 8S 16 1945

# दूसरा प्रकरण

## नवयुग का आरम्भ

## अध्याय १

### हेनरी सप्तम

§१—माध्यमिक काल का अन्त और नवीन युग का आगमन

माध्यमिक से अर्वाचीन काल में परिवर्तन—हेनरी सप्तम का शासन काल इङ्गलैंड के इतिहास में एक ऐसे जल विभाजक की भाँति है जिसकी विभाजक रेखा का निश्चित निरूपण प्रायः कठिन हो जाता है। उसकी राज्य व्यवस्था का अधिकांश मध्य-कालीन प्रतीत होता है; परन्तु उसकी अधिकांश नीति विशेषकर विवाह-नीति नवीन-युग की है। फिर भी युग के दोनों ओर देखने पर वातावरण स्पष्ट हो जाता है। वास्विक मध्य कालीन है; किन्तु बुल्जे नहीं। रिचर्ड तृतीय का परशु और कृपाण हत्या और आकस्मिक मृत्यु का वातावरण प्राचीन इतिहास के अजायबघर की वस्तुएँ हैं। यद्यपि हेनरी अष्टम का समय भी कुछ कम रक्तरंजित नहीं, तथापि वह प्रधानतः नवीन युग का ही प्रतिनिधि है। क्योंकि उस युग में भी हम हेनरी को आजकल के इन प्रश्नों—धार्मिक संस्कारों के विकास, बेकारी की समस्या और वैवाहिक सम्बन्ध की विफलता पर विचार करते हुए, कल्पना कर सकते हैं।

ट्यूडर युग की विशेषताएँ—अन्तर्वंशीय विवाह, नवीन ज्ञान, पुनर्विधान और जल शक्ति की वृद्धि, ये चार ट्यूडर युग को पृथक करने वाली विशेषताएँ हैं। इन का निरूपण कठिन नहीं है। सबसे पहले तो 'अन्तर्वंशीय विवाह' की नीति है। उसका लक्ष्य एक राज्य के साथ दूसरे और फिर दूसरे के साथ तीसरे को वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा जोड़ कर एक वृहत् साम्राज्य की स्थापना करना था। राज्य बढ़ाने की यह नीति कुछ-कुछ उसी ढंग की थी जैसी गुलाबों के युद्धों के अमीरों की जागीर बढ़ाने की। इसी नीति का एक सूत्र इंगलैंड को स्पेन से जोड़ देने की घात में था; दूसरा स्काटलैंड को फ्रान्स से; तीसरे का प्रयत्न इंग्लैंड और स्काटलैंड की वह मंगलमूलक एकता थी जो आज भी सौभाग्य से रक्षित है।

दूसरी, तीसरी और चौथी विशेषताएँ—इसी समय छापे का आविष्कार हुआ जिससे 'नवीन ज्ञान' का उदय हुआ। आप्त वाक्य के तर्कहीन अनुकरण का-

स्थान स्वतन्त्र समालोचना ने ले लिया। धार्मिक क्षेत्र में भी काफ़ी उथल-पुथल हुई, जिसका अन्त पुनर्विधान में हुआ। कुछ काल तक धर्म की प्राचीन और नवीन धाराओं का संघर्ष चलता रहा, अन्त में प्रोटेस्टेन्ट धर्म की स्थापना होकर यह अन्तिम परिवर्तन स्थायी हो गया। फ्रान्स में राज्य-विस्तार-नीति का परित्याग कर दिया गया और उसके स्थान में युरोप के बाहर नयी दुनिया में फैलने का प्रयत्न आरम्भ हुआ। इसका फल हुआ बृटिश साम्राज्य का निर्माण, जो इस जाति की नवीनतम और सबसे बड़ी विरासत कही जानी चाहिए। इनमें से प्रत्येक घटना नवयुग के आरम्भ का चिह्न हो सकती है; परन्तु सब मिल कर तो प्राचीन और नवीन को नितान्त पृथक् कर देने वाली खाई की भाँति हैं।

युरोप में देश-व्यापी परिवर्तन—नवयुग के यह परिवर्तन केवल इंग्लैण्ड की ही सम्पत्ति न थे और न सब का उदय ही इंग्लैण्ड में हुआ। स्पेन ने अन्तर्वंशीय-विवाहों के प्रथम उदाहरण उपस्थित किये। पुर्तगाल के साथ साथ स्पेन ने भी नयी दुनिया में प्रथम प्रवेश किया। इटली में नवीन ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। जर्मनी ने रोम के विरुद्ध ऐसा आन्दोलन उठाया जो युरोप भर में फैल गया। जो विभिन्नता ट्यूडर-इंग्लैण्ड और प्लान्टेजेनट युगों में दिखायी पड़ती है वही १५ वीं और १६ वीं शती के युरोप में है। इसलिए इस युग के इंग्लैण्ड के इतिहास को समझने के लिये आस-पास के देशों में भी इस परिवर्तन का परिज्ञान आवश्यक है।

राष्ट्रीयता का उदय—सक्षेप में यह परिवर्तन प्राचीन क्रिश्चेंडम 'ईसाई धर्म-राज्य' के स्थान पर 'नवीन युरोप' की स्थापना में है। प्राचीन काल में भिन्न भाषा-भाषी तथा भिन्न जाति के होते हुए भी इटली, फ्रान्स, स्पेन, जर्मनी और इंग्लैण्ड के बीच कुछ समान और व्यापक अनुबन्ध मौजूद थे। सबका सम्बन्ध एक चर्च से था। सब ईसाई-धर्मराज्य के अन्तर्गत थे। सब एक प्रकार से पोप और सम्राट् की द्विराजकता में थे। इस प्रकार ईसाई धर्मराज्य का आदर्श एकछत्रात्मक साम्राज्य की भाँति था। उसका भाव था एक धर्म, समान उद्देश्य तथा ईसा के सासारिक प्रतिनिधियों का समान आज्ञा पालन। परन्तु अब युरोप का ऐसा भाव नहीं रहा। वह बहु-छत्रवादी है, क्योंकि युरोप किसी एक शासक का आज्ञाकारी नहीं और न उसमें उद्देश्य की समानता ही है, न चर्च की एकता। युरोप तो कई बड़े छोटे स्वतन्त्र राज्यों का समूह है जिनमें प्रत्येक की शासन व्यवस्था अपनी-अपनी है। यद्यपि इन राज्यों में भौगोलिक सम्बन्ध है, तथा राजनीति के बन्धनों में ये जकड़े हुए हैं, फिर भी प्रत्येक राज्य अपनी अपनी अर्थ-सिद्धि में लगा हुआ है। युरोप में ईसाइयत के भाव का परिवर्तन हो जाने का कारण नवीन राजनीतिक धारणा की जागृति थी। यह धारणा थी राष्ट्रीयता।

पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामन्तवाद के पतन के साथ शक्तिशाली साम्राज्यों का निर्माण हुआ। लुई एकादश ने फ्रान्स की सृष्टि की। फर्डिनेंड और

इज़ावेला के विवाह द्वारा आरगोन और केस्टीन की एकता ने स्पेन को जन्म दिया। ट्यूडर वंश ने गुलाबों के युद्धों की क्षतियों का उपचार कर एक साम्राज्य की स्थापना की। प्रत्येक देश में राष्ट्रीय भावना और स्वदेशाभिमान का उदय हुआ। फ्रान्स के चार्ल्स अष्टम के इटली पर आक्रमण, फ्रान्स और स्पेन के युद्ध, अपने देश के धार्मिक विषयों को अपने अधिकार में रखने की चेष्टाएँ और नयी दुनिया में उपनिवेश ग्रहण करने की प्रतिस्पर्द्धाओं के मूल में यही भावना थी। इस प्रकार ट्यूडर कालीन इंग्लैंड के विधायक तत्वों का उदय युरोप की व्यापक राष्ट्रीय भावना की जागृति से हुआ। कुछ काल तक नूतन भावना प्राचीनता के विनाश में लगी रही। प्राचीन विश्वास, प्राचीननीति, पोप कालीन प्राचीन परम्पराएँ और मध्य-कालीन साम्राज्य सब का एक ओर से अन्त हो गया और राष्ट्रीय भावना का सस्थापन हुआ। इस विषय में फ्रान्स, स्पेन और इंग्लैंड प्रधान हैं। जर्मनी और इटली में यह जागृति कुछ देर से हुई। एक साम्राज्यवाद के भार से दबा रहा और दूसरा पोपवाद के। कई शताब्दियों के बीतने के बाद ये राज्य अथवा रूस की विपुलाकार शक्ति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश कर सकी। जब हम अपने समय की युरोप की सुसगठित और उन्नतिशील राज्य व्यवस्था देखते हैं तब हम यह बात भूल जाते हैं कि उनमें से कुछ राज्य कितने नवीन हैं।

### ६२—बीजारोपण काल

हेनरी सप्तम का शासन उपचार और बीजारोपण का समय था। उन प्राचीन क्षतियों का उपचार हुआ जिनका वर्णन गुलाबों के युद्ध में किया गया है। जो नये बीज बोये गये वे भविष्य में उगे। कुछ काल तक फल दिखायी न दिया इसलिए केवल बीजों का ही विचार करना पर्याप्त है।

ट्यूडर स्वेच्छाचार—पहले शक्तिशाली ट्यूडर राज्य की स्थापना हुई। गुलाबों के युद्ध ने अमीरों की शक्ति क्षीण कर दी, कामन्स की भी साख बिगड़ गयी और देश भर में शान्ति की कामना प्रबल हो गयी। शान्ति का एक मात्र साधन सदव्यवस्था ही थी जिसका स्थापन एक सशक्त सम्राट् ही कर सकता था। इसीलिये जाति ने राजा की सहायता की, क्योंकि उसके निर्बल होने पर दुर्व्यवस्था की आशंका थी। हेनरी सप्तम धन-लोलुप था और हेनरी अष्टम क्रोधी और रक्त-पिपासु। मेरी केथलिक होने से प्रोटेस्टेन्ट प्रजा पर अत्याचार करती थी। फिर भी सब को प्रजा की सहायता मिली। कभी-कभी कहा जाता है कि ट्यूडर राजा स्वेच्छाचारी शासक थे। यदि इसका यह अर्थ लगाया जाय कि ट्यूडर कठोर और अनियन्त्रित शासक थे, जिन पर पार्लियामेन्ट बहुत कम रोक लगा सकती थी, तो यह ठीक है। किन्तु यदि हम यह समझें कि उन्होंने प्रजा को उसकी इच्छा के विरुद्ध कुचल डाला तो यह धारणा ठीक न होगी। ट्यूडर अनियन्त्रित थे क्योंकि इंग्लैंड का उनमें विश्वास था और वह चाहता था कि वे स्वेच्छाचारी हों।

उनके स्वेच्छाचारी होने के कई कारण भी थे। हेनरी सप्तम ने बहुत सम्पत्ति एकत्र कर ली थी। उसके मन्त्री कार्डिनल मार्टन, एम्पसन और डडले ने राजकोष भरने के लिए अनेक साधनों का प्रयोग किया। उन्होंने दान माँगे और उन सब पर बड़े बड़े जुरमाने किये जिन्होंने राजकीय अधिकारों में हस्तक्षेप किया था। हेनरी अष्टम ने पिता की सब सम्पत्ति स्वाहा कर दी; किन्तु मठों और चर्चों को लूट कर फिर अपने को धनी बना लिया।

**बारूद और तोपों के आविष्कार**—सर्वसाधारण में बारूद के प्रयोग ने भी राज्य की शक्ति को बढ़ाया। सौ वर्ष पहले बारूद का आविष्कार हो चुका था, परन्तु पहले पहल जो बन्दूकें बनीं वे ऐसी भद्दी थीं कि वे बाणों और प्राचीन अवरोधक यन्त्रों को न हटा सकीं। जब अच्छी तोपें बनने लगीं, तब अमीरों के प्राचीन दृढ़ किलों का महत्त्व क्षीण हो गया। चूँकि राजा के पास ही तोपख़ाना होता था, इसलिए युद्ध में जो प्राधान्य राजा को प्राप्त था उसका कोई भी विरोधी सरदार मुकाबला न कर सकता था। इसी प्रकार बन्दूक की गोली के निशाने के लिए न तो कोई सरदार अभेद्य था और न उसका कवच। इसलिए अब पुराने ज़माने के कवचधारी सवार भी निकम्मे हो गये। इन सरदारों के लिए अब लड़ाई लड़ना खिलवाड़ भी न रह गया था। जैसे जैसे लड़ाई में जान जोखिम बढ़ती गयी सरदार लोग लड़ाई मोल लेने से हिचकने लगे।

**नयी दुनिया और समुद्री व्यापार**—हेनरी सप्तम के शासन-काल में ही कोलम्बस ने स्पेन के लिये नयी दुनिया खोज ली। वास्को डि गामा ने पुर्तगाल के लिए 'केप ऑव गुडहोप' से घूम कर पूरब का मार्ग खोल दिया। इंग्लैंड भी दर्शक मात्र न रह सका। सन् १४९७ में जान और सिबेस्थियन कैबट के नेतृत्व में ब्रिस्टल के व्यापारियों ने एक अँगरेजी जहाज सुसज्जित किया और अमेरिका के मुख्य भूभाग में जा पहुँचे। इन खोजों के मूल्य का रहस्य पीछे खुला; फिर भी इनके कारण बहुत परिवर्तन हुए अब व्यापार बद्ध-सागर से होने के स्थान में अबद्ध महासागरों में होकर चलने लगा। इसका यह अर्थ है कि अभी तक व्यापार स्थल से घिरे हुए समुद्रों में होकर होता था—विशेष कर भूमध्य सागर में होकर—परन्तु अब एटलान्टिक के प्रशस्त मार्ग से होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि वे देश जो महासागर के तट पर थे समृद्धशाली होने लगे और वे देश जो बद्ध सागर के किनारे पर थे क्षीण हो गये। इस प्रकार इंग्लैंड, फ्रान्स और 'निचले प्रदेश' (हालैंड और डेनमार्क) खूब बढ़े और वेनिस, जिनोआ और भूमध्य सागर के बन्दरगाह क्षीण हो गये। इस प्रकार हेनरी सप्तम के शासन काल में केवल बीज वपन हुआ तथा कई वर्ष उपरान्त जब वह फलित हुआ तब वह इंग्लैंड के लिए बड़े महत्व का और उपयोगी प्रमाणित हुआ।

**नवीन-ज्ञान**—यही बात नवीन ज्ञान के साथ थी। इटली में पुनर्जन्म लेकर इसकी लहर सर्वत्र फैल गयी। प्राचीन काल के इतिहास और साहित्य का अध्ययन

और सत्य की जिज्ञासा यही इसकी विशेषताएँ थीं आरम्भिक काल में तो नवीन ज्ञान में प्राचीन विश्वास के विरुद्ध कुछ न था और कई पोपों ने विद्वानों को प्रोत्साहित भी किया था। परन्तु जब ग्रीक और रोमन संस्कृति के प्रति उत्साह के कारण उनकी वृत्ति प्रचलित धर्म-विरोधी होने लगी तब भी चर्च ने उनके साथ सरल उपेक्षा का ही व्यवहार किया। यद्यपि लैटिन और ग्रीक के अध्ययन में कोई धर्म-विरोधी बात न थी, फिर भी अभाग्यवश पोप के आक्षेप-मुक्त अधिकार कान्स्टेन्टाइन का दान और जाली डिग्रियों सम्बन्धी बयान आदि कुछ ऐसे लेखों पर निर्भर थे जो एक अज्ञानमय युग में ज्ञान की प्राप्ति के लिये लिखे गये माने जा सकते थे, परन्तु जो खोज की समालोचना के सामने नहीं ठहर सकते थे। खोज और आलोचना की यह नयी लहर प्राचीन ग्रन्थों तक ही सीमित नहीं रही। उसने धार्मिक अधिकारों पर आघात आरम्भ किया। पोप को यह अवान्छनीयप्रतीत हुआ। इस प्रकार नवीन ज्ञान और धर्माचारी समुदाय में अन्तर बढ़ता गया। हेनरी के सप्तम समय तक यह विभाजन निश्चित न था। आक्सफर्ड में ग्रीक भाषा के अध्यापक ग्रोसीन और लिनाक्र तथा कोले जो न्यू टेस्टामेन्ट का अध्यापक था केवल ज्ञान के विस्तार में रुचि रखते थे। किन्तु फ्लैमिश विद्वान् इरेस्मस में भावी विरोध के चिन्ह दिखाई देने लगे। इरेस्मस मंकों के धार्मिक विचारों का उपहास करने को सदा उद्यत रहता था। निसन्देह मंकों का ज्ञान पुराने ढचर का और कपोल कल्पित था; किन्तु उपहास विश्वास के समूल विनाश का प्रथम साधन है। इरेस्मस स्वयम् प्रोटेस्टेंट नहीं हुआ; किन्तु उसने अपने अनुयाइयों कोउस पथ की ओर अग्रसर कर दिया।

**अन्तर्वंशीय विवाह**—यही बात अन्तर्वंशीय विवाहों के सम्बन्ध में भी थी। ये विवाह राज-वंशों में होते थे, जिनके द्वारा बड़े-बड़े उत्तराधिकार विरासत में मिलते थे तथा विभिन्न राज्यों में मेल हो जाता था। साधारण दृष्टि से तो आजकल की राष्ट्रीय-नीति के आदर्शों से भिन्न होने के कारण, अन्तर्वंशीय विवाह की नीति का राष्ट्रीय भावना के साथ विकास होना कुछ असंगत सा जान पड़ता है। हमारे लिए मुकुटधारी राजा का विवाह-सम्बन्ध राष्ट्रीय सम्पर्क से असम्बद्ध जान पड़ता है। किन्तु पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियों तक राजा केवल राष्ट्र का एक कर्मचारी नहीं था। तब तक वह प्रजा की सम्पत्ति नहीं गिना जाता था; वरन् प्रजा राजा की सम्पत्ति मानी जाती थी। वह देश की नीति का नियन्ता था; और विवाह के रूप में उसकी मित्रता की अभिव्यक्ति स्वाभाविक थी। विवाह सबसे सरल सम्बन्ध था, राज्य-प्राप्ति से वह सबसे अधिक लाभदायक भी था। इसलिए उस समय के सब राजनीतिज्ञ वैवाहिक सम्बन्ध रचाने वाले होते थे। राजाओं और विवाह कराने वाले राजनीतिज्ञों को इस बात की परवाह न थी कि कहीं राष्ट्र उनके राजनीतिज्ञ विवाह सम्बन्धों का विरोध न करें। अब इंग्लैंड भी पहली बार उनअन्तर्वंशीय विवाहोंमें भाग लेने वाला था। जिनका सोलहवीं शताब्दी के युरोपीय इतिहास पर बहुत प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः उस काल का युरोपीय इतिहास उन सम्बन्धों पर विशेष रूप से अवलम्बित है।

**इटली में फ्रेंच**—चार्ल्स अष्टम के इटली में आक्रमण का उल्लेख हम कर चुके हैं। १४६४ ई० में फ्रान्स का राजा मिलान, जिनेवा और फ़्लोरेन्स से सन्धि कर इटली पर एक सेना चढ़ा ले गया और नेपल्स के राज्य पर उसने अधिकार कर लिया। उसकी इस सहज विजय ने सबको चौकन्ना कर दिया। मेक्सिमिलियन जिसका मिलान पर सम्राट् होने के नाते अधिकार था; स्पेन का फर्डिनेंड, जिसका नेपल्स पर अधिकार था, और पोप, जो इस अकालिक घटना से भयभीत हो गया, सब फ्रान्स के इस उद्धत हमले के विरुद्ध अपनी-अपनी रक्षा का प्रबन्ध करने लगे। उनकी दृष्टि में फ्रान्स का स्वाभाविक शत्रु इंग्लैंड था। इसलिए उन्होंने हेनरी सप्तम से सन्धि करने का प्रयत्न किया। हेनरी भी उनसे सन्धि करने को तैयार था। इस प्रकार इंग्लैंड ने अन्तर्वंशीय विवाह के पथ पर प्रथम पग रखा जिससे देश एक शताब्दी तक त्रास में रहा। अच्छा हुआ कि उसका अन्त हो गया। इंग्लैंड के इन अन्तर्वंशीय विवाहों के परिज्ञान बिना उस समय का इतिहास समझना कठिन है।

**स्पेन और हैप्सबुर्ग घराने का इंग्लैंड से मेल**—इस कहानी का आरम्भ आरगोन के फर्डिनेंड और केस्टील की इज़ाबेला के विवाह से होता है। धीरे-धीरे यह स्पेन के छोटे-छोटे राज्यों तथा प्रान्तों को संयुक्त कर स्पेन के राष्ट्र की स्थापना का साधन बना। उसी समय आस्ट्रिया के सम्राट मेक्सिमिलियन ने बरगंडी की मेरी से विवाह कर लिया जिसके द्वारा उसने हाउस ऑव हैप्सबुर्ग के लिए चार्ल्स दि बोल्ड के सब बरगंडियन और नीदरलैंड प्रदेश प्राप्त कर लिये। स्पेन सम्राट की पुत्री तथा उत्तराधिकारिणी जुआना ने मेक्सिमिलियन के एक मात्र पुत्र फिलिप दि हैंडसम से विवाह कर लिया। इससे हैप्सबुर्ग वंश का पदार्पण स्पेन में भी हो गया। फिलिप और जुआना का पुत्र चार्ल्स बहुत बड़े राज्य का उत्तराधिकारी होता। स्पेन, आस्ट्रिया, बरगंडी, नीदरलैंड और इटली के देश तथा स्पेन के सामुद्रिक प्रदेश सभी उसके थे। इस प्रकार हेनरी सप्तम को आरगोन की कैथरिन जुआना की बहन के विवाह सम्बन्ध से जो राज्याधिकार मिलने थे, वे बड़े आकर्षक थे इसलिए उसने कैथरिन के साथ अपने सबसे बड़े बेटे आर्थर का विवाह मंजूर कर लिया। परन्तु आर्थर विवाह के एक वर्ष बाद मर गया। विधवा राजकुमारी की मंगनी हेनरी के द्वितीय पुत्र हेनरी (बाद में हेनरी अष्टम) के साथ कर दी गयी। यह पहली ही परन्तु विवाह सम्बन्धी एक ऐसी बड़ी चाल थी जिसने फ्रान्स के प्रतिकार के लिए स्पेन और आस्ट्रिया के साथ इंग्लैंड के भाग्य को गूँथ दिया। अँगरेजी पुनर्विधान और 'मेरियन अत्याचार' आदि भावी घटनाएँ इसी सम्बन्ध से प्रकट हुई थीं।

**स्काट विवाह**—इससे सन्तुष्ट न हो कर हैप्सबुर्ग घराने के राजनीतिज्ञों ने फ्रान्स पर एक और चोट करनी चाही। फ्रान्स इंग्लैण्ड का शत्रु था इसीलिए वह स्काटलैंड का मित्र बना रहता था। स्काटलैण्ड को फ्रान्स से तोड़ कर फ्रान्स को अकेला कर देने में भी एक गहरी चाल थी। इसीलिए हेनरी की बड़ी लड़की मारग्रेट

का विवाह स्काटलैण्ड के जेम्स चतुर्थ से करवा दिया गया (१५०२ ई०)। इन साधनों से इंग्लैण्ड की स्थिति को युरोप में प्रभावशाली बनाकर और अपने पुत्र पर अपने आयोजनों का भार छोड़ कर हेनरी सप्तम परलोक चला गया।

---

## अध्याय २

### हेनरी अष्टम और वुल्ज़े

**हेनरी अष्टम का शासन-काल**—हेनरी अष्टम का दीर्घ शासन काल दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग की घटनाओं का सम्बन्ध परराष्ट्रों से है जिनमें फ्रान्स और स्पेन, आस्ट्रियन राज्य और पोप की प्रतिस्पर्धाओं और उनकी कूटनीतिपूर्ण चालों की कशमकश से सारे देश की दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीय गगन मंडल की ओर लगी हुई थी। दूसरे का सम्बन्ध 'पुनर्विधान' से है। दोनों की संयोजक-ग्रन्थि राजा की तलाक के प्रश्न में निहित है। इन दोनों विभागों में अन्तर भी बड़ा गहरा है। पहले में महत्ता का आभास प्रतीत होते हुए भी वास्तविक परिणाम कुछ बड़ा नहीं हुआ। इन समस्त योजनाओं, षड्यन्त्र, मन्त्रणाओं और सन्धियों इत्यादि का कोई फल नहीं हुआ। पिछला भाग अँगरेज़ी इतिहास में अधिक महत्वपूर्ण है फिर भी पहले भाग में एक बात विचारणीय है। इसमें वुल्ज़े का हाथ था और इंग्लैण्ड को युरोपीय राजनीति में महान स्थान पर लाने वाला प्रथम राजनीतिज्ञ वुल्ज़े ही था।

इस युग की विशेषता, राष्ट्रीय भावना की जागृति में थी, इसका उल्लेख हो चुका है। इसके फल स्वरूप राष्ट्र राज्यों का निर्माण हुआ। फिर भी यह नवीन भावना प्राचीन परिस्थिति के बोझ से लदी रही। इसे मध्यकालीन धर्म-राज्य, पोप के प्रभुत्व और साम्राज्यवाद से विरोध करना पड़ा। इसीलिए राजनीति का प्रधान क्षेत्र इटली रहा। यहाँ प्राचीन वातावरण से नवीन शक्तियों का गहरा सामना हुआ। इटली में आस्ट्रियन साम्राज्य, स्पेन और फ्रान्स सभी का सम्बन्ध था। सम्राट अपनी उपाधि से रोमनों का राजा कहलाता था। स्पेन और फ्रान्स दोनों को नेपल्स के राज्य पर अधिकार जमाना था। परन्तु इंग्लैण्ड का न कोई विशेष अर्थ था और न कोई अधिकार। अब तक पोप और साम्राज्य की दृष्टि में उसका स्थान कोई महत्व न रखता था—यहाँ तक कि १४१४ ई० की कान्स्टेन्स की काउन्सिल में, जहाँ निर्वाचन राष्ट्र-राज्यों द्वारा हुआ था, इंग्लैंड को पृथक राष्ट्र नहीं माना गया। उसे जर्मनों के साथ सम्मिलित कर लिया था।

इटली में केन्द्रित युरोपीय राजनीति में हाथ डाल कर इंग्लैंड ने अपना स्थान फ्रान्स, स्पेन और साम्राज्य के बराबर कर लिया। वुल्ज़े की एक राष्ट्र को दूसरे के विरुद्ध कर देने की नीति के कारण कुछ दिनों तक तो इंग्लैंड युरोप का मध्यस्थ बन

गया था। अन्त में वह इटली की राजनीति के कारण ही था कि हेनरी का तलाक वाला प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया। इसका परिणाम रोम से विच्छेद और पुनर्विधान हुआ।

हेनरी अष्टम के राज्य के प्रथम बीस वर्ष तक युरोप भर के राजनीतिज्ञों के लिए प्रधान प्रश्न इंग्लैंड का रुख था उस समय इंग्लैंड की नीति उसके सबसे समान नीतिवेत्ता के हाथ में थी। इसलिए तत्कालीन घटनाओं की प्रगति का कुछ ज्ञान आवश्यक है।

**स्पेन और पोप की पावन सन्धि**—चार्ल्स अष्टम के आक्रमण के बाद इटली में निरन्तर अशान्ति रही। लुई द्वादश ने जो चार्ल्स अष्टम का उत्तराधिकारी था, मिलान पर आक्रमण किया। फिर आरगोन के फर्डिनैंड के साथ फ्रान्सीसियों और स्पेनवालों ने नेपल्स पर संयुक्त आक्रमण किया; परन्तु एक साल बाद इनमें अनबन हो गयी। १५०८ ई० में उस युग की स्वार्थ नीति चरम सीमा तक पहुँची, जब कि वेनिस के प्रदेशों को विभाजित करने के लिए फ्रान्स, स्पेन और पोप जुलियस द्वितीय, केम्ब्राई की लीग बनाकर एक हो गये। इनमें फ्रान्स का भाग सबसे अधिक रहा। पोप जुलियस को यह आशंका हुई कि इस प्रकार की नीति आगे चल कर उससे प्रदेशों को हड़प न कर ले। अतः उसने फ्रान्स का साथ छोड़ दिया और अपनी रक्षा के लिए (पवित्र लीग) नामक एक नया संघ स्थापित किया। इस लीग में स्पेन का फर्डिनैंड भी सम्मिलित हो गया। फ्रान्स को इटली से हटा देने का स्वाभाविक साधन उसे अपने देश की समस्याओं में उलझा रखना था। फर्डिनैंड ने नेवार के आक्रमण की योजना की और अपने दामाद हेनरी अष्टम को गिईन पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। स्पेन की खुशामद से प्रभावित होकर और ख्याति प्राप्त करने की आकांक्षा से हेनरी अष्टम ने 'होली लीग' में भाग लेना स्वीकार किया।

इसका फल हुआ १५११ ई० में गिईन का निरर्थक आक्रमण और १५१३ में रूस की वे सफल चढ़ाइयाँ जिसमें तेरुआन और तूर्ने हाथ आ गये और स्पर्स के युद्ध में विजय हुई। उसका दूसरा परिणाम फ़्लोडेन का युद्ध हुआ। स्काटों ने फ्रान्स से चिरस्थायी मित्रता के नाते इंग्लैंड पर आक्रमण किया; किन्तु फ़्लोडेन में परास्त हो गये। इन युद्धों का विवरण एक अगले अध्याय के लिए छोड़कर यहाँ केवल उनके कारणों पर विचार करेंगे। हेनरी ने जब यह देखा कि सारे काम करने का भार तो उसके सिर पर छोड़ा जा रहा है और लाभ उठा रहे हैं फर्डिनैंड और मैक्सिमिलियन, तब उसने संघ का साथ छोड़ दिया।

**टामस बुल्जे और उसकी नीति**—युद्ध नीति का यह परिवर्तन बुल्जे के प्रभाव से हुआ था। अब तक तो बहुत कुछ वही पुरानी लकीर पीटी जाती रही। गिईन के दबाये हुए प्रदेशों को प्राप्त करने का प्रयत्न, पुराने शत्रु के फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध और उसके साथ सीमा पर पुराने शत्रु स्काटलैंड का धावा, यही घटना क्रम

चलता था। परन्तु कूट राजनीति और युद्ध की तैयारी में वुल्जे ने बड़ी शीघ्रता से ख्याति प्राप्त कर ली। वह मैगडलीन आक्सफ़र्ड का फ़ैलो, लैमिंगटन का रैक्टर, आर्कबिशप आफ केन्टरबरी का चैप्लेन तथा हेनरी सप्तम का राज-गुरु बन गया था। हेनरी अष्टम उसे ऐसा स्वामी मिल गया जिसने उससे उचित कार्य लिया तथा उसके पराक्रम और बुद्धिबल का पुरस्कार दिया। सन् १५१३ के आक्रमण के व्यवस्था करने के उपहार में हेनरी में वुल्जे को टूर्ने का बिशप और अगले साल लिंकन का भी बिशप बना दिया। उस नंये नीतिवेत्ता ने भी चक्र को नये ढंग से घुमाना प्रारम्भ किया। उसने फ्रान्स से विरोध की नीति का परित्याग करके उससे मित्रता स्थापित करने की नीति का आश्रय लिया।

फ्रान्स से मेल—हेनरी मौक्सिमिलियन और फर्डिनैंड से पहले ही नाराज़ था; इसलिए वुल्जे की नीति से सहमत हो गया। सुअवसर भी बहुत शीघ्र आया। लुई द्वादश की रानी की मृत्यु हो गई और वह एक नयी रानी की खोज में था। अत्यन्त गुप्त रूप से वुल्जे ने हेनरी अष्टम की सबसे छोटी बहन मेरी के साथ उसके विवाह की योजना की। राजा बावन वर्ष का था और रानी केवल सत्रह वर्ष की। एक राजनीतिज्ञ के लिए यह कोई विचारणीय बात न थी। कूटनीति के सामने व्यक्तिगत प्रश्नों के लिए स्थान न था। इससे केवल यही साबित नहीं हुआ कि इंग्लैंड में, जो अब तक राजनीति में भूलें ही करता रहा था, एक ऐसा नीतिज्ञ प्रकट हो गया, जो बारीक-बीनी से भाव छिपाने और तेज़ी से काम करने में किसी इटेलियन अथवा स्पेनिश राजनीतिज्ञ से कम न था। इंग्लैंड की फ्रान्स के साथ सन्धि कराके उसने 'पावन-संघ' को गतिहीन कर दिया। इस नीति में नयी कायापलट के चिन्ह दिखायी देने लगे। यह नीति धीरे-धीरे दृढ़ होती गयी। इस समय से इंग्लैण्ड स्पेन को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझने लगा और समुद्र तथा नयी दुनियाँ में उसकी शक्ति का विरोध करने लगा।

यद्यपि उस समय कोई विशेष लाभ दिखायी न दिया; किन्तु इस नीति के भावी परिणाम स्पष्ट और महत्वपूर्ण हुए थे। वुल्जे की नीति का रहस्य शताब्दी के अन्त में जा कर खुला। जैसे-जैसे शताब्दी बीती वुल्जे की राजनीति का रहस्य स्पष्ट होता गया। उस समय तो उसकी कूटनीति उसकी राजनीतिज्ञता छिपाये रही। फ्रान्स के साथ सन्धि करने के लिए वुल्जे ने 'पावन संघ' का परित्याग कर दिया। इसका पहला परिणाम यह हुआ कि अब सब कूटनीतिज्ञ इंग्लैण्ड से मित्रता करने की आकांक्षा करने लगे और इंग्लैण्ड का स्थान युरोप की राजनीति में महत्वपूर्ण हो गया। यह निश्चय था कि कोई भी पक्ष ग्रहण करने पर इंग्लैण्ड निर्णायक शक्ति होगा। वुल्जे समझता था कि अपनी स्थिति को सुरक्षित रखने का एक-मात्र साधन अपने को तटस्थ रखना है। किसी भी पक्ष में निश्चित निर्णय कर लेना निर्णय की शक्ति को खो देना है। समय-समय पर वुल्जे की नीति स्पेन और फ्रान्स के बीच झूलती रही, फिर भी प्रत्येक मारके के अवसर पर फ्रान्स के साथ रही।

लुई द्वादश, फर्डिनैंड और मैक्समिलियन की मृत्यु—घटनाक्रम के विचार से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उसकी नीति का पहला वार खाली गया। यह लुई द्वादश के साथ मेरी के विवाह की योजना कर रहा था। सन् १५१५ में लुई की मृत्यु से यह योजना असफल हो गयी। उसका उत्तराधिकारी फ्रान्सिस प्रथम महत्वाकांक्षी युवक था। वह शीघ्र ही मिलान प्रदेश प्राप्त करने के लिए युद्ध में कूद पड़ा और उसने ड्यूक के स्विस सहायकों को मेरिनागों पर हराया। फ्रान्स की शक्ति बढ़ती देख युरोप पुनः सशंकित हो उठा। अगले वर्ष फर्डिनैंड की मृत्यु हो गयी और उसका पौत्र चार्ल्स उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके अधिकार में बरगंडी, निदरलैण्ड, स्पेन, सिसली आदि अनेक राज्य संयुक्त हो गये। पुनः वुल्जे ने इस भयानक परिस्थिति का सामना फ्रेञ्च सन्धि द्वारा किया और हेनरी की पुत्री मेरी को दोफिन के साथ विवाह का वचन देकर उसे और भी दृढ कर दिया। बड़े कौशल के साथ उसने 'बहु व्यापी' शान्ति की योजना की, जिसमें पोप, आस्ट्रियन सम्राट, फ्रान्स, स्पेन और स्काटलैण्ड सम्मिलित हुए। इस प्रकार उसने इंग्लैण्ड को परम मध्यस्थ की स्थिति प्रदान कर युरोपीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया।

१५१६ ई० में सम्राट मैक्सिमिलियन की मृत्यु से एक और नया परिवर्तन हुआ। फ्रान्सिस और चार्ल्स प्रथम दोनों उसके उत्तराधिकारी होने के दावादार थे। हेनरी ने वुल्जे से आग्रह किया कि सम्राट् पद के निर्वाचन के लिए उसके नाम का भी प्रस्ताव करे, यद्यपि उसके स्वीकृत होने की कोई आशा न थी। अन्त में चार्ल्स का निर्वाचन हो गया। इंग्लैण्ड दोनों पक्षों की ओर से घोर उदासीन रहा ताकि उनमें से प्रत्येक इसी चिन्ता में रहे कि कहीं हेनरी उसके प्रतिद्वन्द्वी का साथ न दे बैठे। प्रत्येक शक्ति वुल्जे और उसके स्वामी की मित्रता चाहती थी और वुल्जे को यह प्रलोभन देती थी कि पोप की गद्दी ख़ाली होने पर उसके निर्वाचन में उसकी सहायता करेगी। इस अध्याय का अन्त 'फील्ड ऑव क्लाथ ऑव गोल्ड' के शानदार सम्मेलन में हुआ जब वहाँ पर फ्रान्सिस के साथ मन्त्रणा करके हेनरी सम्राट् चार्ल्स से मिलने के लिए कैले गया था।

नवयुवक राजा—इस समय सारा युरोप प्रायः नवयुवकों के हाथ में था। फर्डिनैंड और मैक्सीमिलियन आदि की अपेक्षा स्पेन का चार्ल्स, फ्रान्स का फ्रान्सिस, इंग्लैण्ड का हेनरी, लुई द्वादश, कहीं कम सतर्क थे। मैक्सिमिलियन और फर्डिनैंड की शक्ति एक हो जाने से समस्या भी कठिन और तीव्र हो गयी थी। अब स्पेन और साम्राज्य पृथक् न रह गये। प्रतिस्पर्धी फिर भी शान्तिपूर्वक नहीं रह सकते थे। अपनी स्पेन वाली पत्नी के आग्रह से, इंग्लैण्ड और फ़्लैंडर्स के व्यापारिक सम्बन्ध के कारण, एवम् अपने अमीरों को फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध करने की प्राचीन अभिरुचि से प्रेरित हो कर हेनरी ने स्पेन का पक्ष लिया। वुल्जे ने वह नीति ठीक न समझी; परन्तु वह अपने स्वामी पर प्रभाव न डाल सका।

दो चढ़ाइयों से यह स्पष्ट हो गया कि खोये हुए अँगरेज़ी प्रदेशों की पुनर्विजय की योजना बना लेना आसान था, परन्तु उसकी पूर्ति करना अत्यन्त कठिन था। युद्ध के लिए धन प्राप्त करना असम्भव था। पार्लियामेन्ट धन देने को तैयार न थी। यद्यपि वुल्ज़े ने उधार लेने के नये साधन का रुचिकर नाम 'एमिकेबिल लोन' रखा तथापि उसका बड़ा विरोध हुआ। वुल्ज़े ने इससे लाभ उठाने के लिए फ्रान्स के साथ नवीन सन्धि की। १५२५ ई० में फ्रान्सिस हारा और पाविया में गिरफ़्तार हो गया। वुल्ज़े ने स्पेन के पक्ष से अपना हाथ खींच लिया। १५२७ ई० में ड्यूक ऑव बूर्बोन की अध्यक्षता में साम्राज्य की सेना ने रोम को जा घेरा और पोप क्लेमेन्ट सप्तम को क़ैद कर लिया। पोप के इस निरादर से युरोप भर में घोर असन्तोष और विरोध उत्पन्न हुआ। वुल्ज़े ने उससे लाभ उठाने के लिए फ्रान्स के साथ नवीन सन्धि की। इस घटना के थोड़े समय बाद हेनरी की तलाक़ का आपत्तिजनक प्रश्न खड़ा हो गया, जिसका परिणाम वुल्ज़े का पतन और पुनर्विधान का श्रीगणेश हुआ। वुल्ज़े की विस्मय जनक कूटनीति के प्रति देश का शिथिल भाव शीघ्र ही पोप की शक्ति के पुराने विरोध के उत्तेजित होने से प्रज्वलित हो उठा। इसी से 'पुनर्विधान' का आरम्भ हो गया।

---

# अध्याय ३

## पुनर्विधान

### § ९—जर्मनी में नवज्ञान और पुनर्विधान

विश्व इतिहास के महान् व्यक्तियों के विषय में यह निश्चय है कि सामयिक लोकमत का उनके जीवन-निर्माण पर यहाँ तक प्रभाव पड़ता है कि वे बहुत अंशों में प्रभावित होते हैं। फिर भी वे लोकमत पर अपना गहरा प्रभाव डालते हैं और उसे अपना अनुगामी बना लेते हैं। लूथर के विषय में भी यही कहा जा सकता है। उसके कार्य की विशेषता समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि कहाँ तक उसने अपने पूर्वगामी आन्दोलन को अपनाया और कहाँ तक उसने स्वयम् एक नया मार्ग दिखाया।

ज्ञान का पुनरुत्थान—मध्य युग में बहुत काल तक—यहाँ तक कि कुस्तुन्तुनिया में प्राचीन ग्रीक भाषा का पाण्डित्यपूर्ण ज्ञान, एक असाधारण योग्यता की बात हो गयी थी। युरोप के अन्य देशों में तो उसका प्रायः अभाव ही था। किन्तु १४ वीं शताब्दी के अन्त में और विशेषतः १५वीं शताब्दी में ग्रीक साहित्य के अध्ययन का विशेष रूप से इटली में पुनरुत्थान हुआ। ग्रीक साहित्य के प्रति अभिरुचि के जाग्रत होते ही, पढ़ने के लिये ग्रन्थों की आवश्यकता हुई। ऐसे ग्रन्थ प्राचीन

पुरुषों के ही हो सकती थीं। इनमें सबसे पहले प्लेटो का स्थान था। कुतूहल एक बार उत्पन्न होकर दिनोंदिन फैलने लगा और प्राचीन ग्रीक के साथ प्राचीन लैटिन का भी उत्थान हुआ। इस प्रकार इटैलियन जागृति ने प्राचीन साहित्य और कला के उत्थान का रूप धारण कर लिया। संसार के साहित्य, स्थापत्य और चित्रकला पर इसका बहुत कुछ ऋण है, किन्तु पुनर्विधान पर उसका विशेष ऋण नहीं है। इटली में नवीन ज्ञान संचय की प्रवृत्ति कलात्मक तथा साहित्यिक थी, किन्तु उसमें व्यावहारिकता का अभाव था। कोसिमो और लौरंजो डि मेडिची जैसे फ़्लोरेन्सीय विद्वानों का जीवन सरल साहित्यिक वातावरण में बीतता था। किन्तु जब फ़्लोरेन्स में गिरोलमो सावोन-रोला ने नये ज्ञान को व्यावहारिक रूप देने का आन्दोलन उठाया तो फ़्लोरेन्स निवा-सियों ने उसकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया और पोप अलैग्जेन्डर द्वारा उसके जलाये जाने का भी लोगों ने अधिक विरोध नहीं किया। फ़्लोरेन्स के विद्वन्मंडल को शब्दों से प्रेम था, कृत्यों से नहीं। यही दशा रोम की भी थी। जब नवस्थापित रोमन एकेडमी की रुचि प्राचीन विद्या से इतनी प्रभावित हो गयी कि वह धर्म के विरुद्ध जाने लगी तब पोप ने पकड़ धकड़ शुरू कर दी। किन्तु उसे शीघ्र ही पता चल गया कि यह प्रवृत्ति कुछ जोर नहीं रखती, अतएव इस की अवहेलना की जा सकती थी। जहाँ तक इटली का सम्बन्ध है यह ठीक भी था। वहाँ के नवीन ज्ञान की प्रवृत्ति पोप की विरोधी न थी। वह तो शुष्क अध्ययन, टीका-टिप्पणी और समालोचना तक ही सीमित थी। बस इससे अधिक उसका कोई उद्देश्य नहीं था।

**पोप-सम्प्रदाय का पतन**—किन्तु इटली और युरोप के अन्य देशों में भी बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता थी। जिस समय इटली में नवीन ज्ञान का विकास हो रहा था उसी समय चर्च के नेताओं के चरित्र और प्रभाव का पतन हो रहा था। स्वयम् पोप ही इसके प्रमाण थे। जब पोप पायस द्वितीय ऐसे सद्वृत्ति वाले पुरुष ने युरोप से तुर्कों को हटा देने का आन्दोलन उठाया तब भी लोगों में उससे कोई उत्तेजना या स्फूर्ति उत्पन्न न हो सकी। धर्म-युद्धों के प्रति जोश के दिन अब बीत चुके थे। १४७० ई० के बाद धीरे धीरे पोप भी अपने समय के वातावरण में फँस गये। वे भी इटली के राजकुमारों के समान हो गये। चर्च के लिए एक दृढ़ रियासत बनाने की खोज में वे रहने लगे। इटेलियन राजाओं के विरुद्ध अपनी स्थिति सुरक्षित रखने का उनके पास कोई अन्य साधन न था। पोप सिक्सटस चतुर्थ ने चर्च के संगठन को पोप के धार्मिक मार्ग से सांसारिकता की ओर झुकाना आरम्भ किया। अपने राज-नीतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए रोडीरगो बोर्जिया अलैग्जेन्डर षष्ठ पर विष प्रयोग का सन्देह किया जाता था। उसका पुत्र सीजर बोर्जिया तो इटली का प्रसिद्ध बदमाश निकला। जूलियस द्वितीय स्वार्थी न था, किन्तु उसकी चर्च की रियासत बढ़ाने की आकांक्षा ने इटली में बड़ा तहलका मचा दिया। यहाँ तक कि सन् १५१२ में लियो

दशम का निर्वाचन इसी आशा से किया गया था कि वह राजनीति से पृथक् रह कर शान्ति की चेष्टा करेगा।

फिर भी इस युग की अनेक बुराइयों के साथ इटली में कोई वास्तविक उथल-पुथल न हुई। यद्यपि पोपशाही कोरा ढकोसला रह गयी थी, चर्च, सांसारिक प्रलोभनों में फँस रहा था, धर्म और जीवन पृथक् हो रहे थे, नवीन ज्ञान और प्राचीन धर्म में अन्तर बढ़ रहा था, तथापि मध्य कालीन चर्च की स्थिति और उसके अधिकारों का इटली इतना आदी हो गया था कि वे उसे सूर्य के समान ही अचल और अनिवार्य जान पड़ते थे। कुछ विद्वान भले ही चर्च के लोगों से उनके अज्ञान और असंस्कृति के लिए घृणा करते हों; किन्तु उन्होंने पोपशाही का विरोध नहीं किया। पोप सम्प्रदाय भी तरल विश्वास वाले विद्वानों को उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखता, किन्तु उनका व्यक्तित्व सहन कर लेता था। निकोलस पंचम, लियो दशम जैसे पोप साहित्य और कला के बड़े प्रोत्साहक थे। जूलियस द्वितीय ने रोम में ब्रामान्त, राफेल, माइकेल एंजिलो जैसे कलाकारों को आश्चर्यजनक सुअवसर प्रदान किये थे।

**जर्मनी और इंग्लैंड में नवीन ज्ञान**—जर्मनी और इंग्लैण्ड में वह बात मौजूद थी जो अभी इटली में नहीं आ पायी थी अर्थात् वहाँ यह धारणा थी कि यदि दोष पुराना हो तो भी दोष ही है और यदि ठीक बात नवीन भी हो तब भी वह ठीक ही होती है। प्रत्येक सुधारक की यही भावना होती है कि जहाँ तक हो उके उसके सुधार प्रचलित हो जायँ और समाज उनका शीघ्र से शीघ्र अनुगामी हो जाय। अतएव उत्तरी देशवासियों का ध्येय हुआ उस ज्ञान का अनुशीलन जिससे जीवन का वास्तविक सम्बन्ध है। जर्मनी और इंग्लैण्ड का नवीन ज्ञान व्यावहारिक था। क्योंकि इन लोगों का विश्वास था कि जीवन से असम्बद्ध ज्ञान निरर्थक है। ऐसे उन्नतिशील ज्ञान किस काम का जिसके द्वारा मनुष्यों को उन्नत जीवन व्यतीत करने और उन्नत कार्य करने का प्रोत्साहन न मिले। इस प्रकार प्राचीन साहित्य के अध्ययन तक सीमित रहने वाली विद्वत्ता आल्प्स के उस पार न्यू टेस्टामेन्ट तक की छान-बीन करने लगी और उसका फल भी सुखप्रद हुआ।

उत्तर के इन नवीन ज्ञानानुशीलकों में दो प्रवृत्तियों के विद्वान हुए। एक तो वे धर्मानुयायी लोग थे जो परम्परा और प्राचीनता की उपेक्षा न करके भी अपने ज्ञान का उपयोग सत्य की खोज मे करते थे। दूसरे वे सुधारक जो अधिकारियों और सम्मानित लोगों का भय न करके जो कुछ वे सत्य समझते थे उसका पालन करते थे। एक का उदाहरण इरेस्मस और दूसरे का लूथर है।

**इरेस्मस**—डेसिडियस इरेस्मस फ़्लेमिश था। अनाथ अवस्था में एक मठ में रहने के कारण उसे मंकों और उनके जीवन से घृणा हो गयी थी। बड़ा होते ही उसने उस मठ का परित्याग कर दिया। वह पेरिस और आक्सफ़र्ड में पढ़ा था, जर्मनी और इटैली में घूमा था। उसकी मनोभावना इतनी संकीर्ण न थी कि वह इटेलियन

जाग्रति की अव्यावहारिकता में जाता अथवा जर्मनी के विक्षुब्ध रखने वाले धार्मिक झगड़ों में पड़ता। उसके समालोचनात्मक तार्किक विचारों ने ओर के लिए एक ऐसा पथ प्रशस्त किया जिसे आगे चल कर उसे स्वयम् छोड़ना पड़ा। उसका प्रभाव दो प्रकार से हुआ। पहले तो अपनी 'प्रेज ऑव फोली' नामक पुस्तक में उसने संसार को मंकों की प्राचीन ढग की शिक्षा का उपहास करना सिखाया। इससे पहले भी बहुतों ने भिक्षुओं पर आक्रमण किये थे, किन्तु कोई उन्हें हानि न पहुँचा सका था। इरेस्मस के विष बुझे वाक्यों का कोई भी प्रभावशाली उत्तर होने की सम्भावना न थी। फिर भी मंकों और उनके विचारों के उपहास का फल यह हुआ कि लोग उनके संघ और उनके विश्वास से घृणा करने लगे। इसका परिणाम हुआ चर्च की नींव के एक खम्भे को गिरा देना। किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य इरेस्मस की समालोचना थी। सन् १५१६ में उसने ग्रीक टेस्टामेन्ट का सम्पूर्ण संस्करण प्रकाशित किया और उसके साथ ही एक नया लैटिन अनुवाद भी दे दिया। उसने अन्त में कुछ टिप्पणियाँ भी दीं। 'पहाड़ी पर मैं अपना चर्च बनाऊँगा', इसका सकेत पोपों की ओर ही नहीं वरन सभी ईसाइयों की ओर है। ऐसे तरीकों से अपने अधिकारों को बाइबिल से पुष्टि करने के लिए पोपों को विवश होना पड़ता। यदि वे न कर पाते तो जनता द्वारा उनके वहिष्कार की आशंका थी।

मार्टिन लूथर—इरेस्मस की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप देने का कार्य मार्टिन लूथर ने किया। उसका जन्म एक किसान घराने में हुआ था और उसने एरफर्ट के एक आगस्टिन मठ में प्रवेश कर शिक्षा पायी थी। किन्तु मठ के जीवन से सन्तोष न मिला। उसे अपने पोपों की आन्तरिक चेतना ने विक्षुब्ध कर रक्खा था। इससे उसके हृदय में व्यावहारिक गम्भीरता और ईश्वर और सब मनुष्यों के निकट व्यक्तिगत सम्बन्ध जोड़ने की भावना जाग्रत हो गयी, जो उसके जीवन की विशेषता रही। १५०८ ई० में उसने मठ छोड़ दिया और वित्तेनवर्ग के नये सैक्सन विश्व- विद्यालय में धर्माध्यापक हो गया। सन् १५१० में वह रोम गया। वहाँ उसे पोप के दरबार की निश्चिन्तता और निष्क्रियता देखकर बड़ी ग्लानि हुई। उसने बाइबिल को बड़े ध्यानपूर्वक इसलिए पढ़ा कि उस निश्चेष्टता की कोई औषधि मिल जाय जिसने पश्चात्ताप और एक आह मात्र से ही स्वर्ग पहुँचने का मार्ग सरल बना दिया था। जब डोमिनिकन फ्रायर तेत्सेल एक कमीशन के साथ रोम में पीटर्स गिरजे का भवन बनवाने के लिए धन-दान के उपलक्ष में पापों का क्षमा-पत्र प्रदान करने सैक्सिनी आया, तो लूथर व्याकुल हो उठा। उसने सोचा कि इस दान-प्रथा से साधारण पुरुषों को बहुत कुछ धोखा हो सकता है। वह यह नहीं समझ सकते कि पाप का निराकरण आन्तरिक प्रायश्चित्त से हो सकता है, न कि आर्थिक दान से; फिर इस प्रायश्चित के बिना धर्म, दान आदि सभी व्यर्थ हैं। इसलिए उसने वित्तेनवर्ग के चर्च के द्वार पर अपने विचारों की एक सूची लगा दी और पोप को उन पर अपने विचार प्रकट करने के लिए निमन्त्रित किया।

**रोम में लूथर का विरोध**—लूथर धर्म के एक सन्दिग्ध प्रश्न पर वाद-विवाद करना चाहता था। उसके इस भाव में विरोध की कोई भावना न थी। यह कोई अनोखी बात भी न थी; किन्तु पोप संघ को यह स्वीकृत न था। इसमें सन्देह न था कि पाप शमन के इन क्षमा-पत्रों का खूब दुरुपयोग होता था। इससे दोष तो खूब बढ़े परन्तु पोप सत्र को भारी लाभ हुआ। चूँकि इसके निराकरण से पोप की आर्थिक स्थिति संकटमय हो जाती; इसलिए उसमें हस्तक्षेप करना खतरनाक था। बस इसलिए लूथर को चुप रहने की आज्ञा होनी स्वाभाविक थी और उसे यह मान लेने में कोई हिचक न होनी चाहिये थी कि चर्च के सिद्धान्त ठीक थे।

परन्तु लूथर के व्यक्तिगत चरित्र और युग भावना का कठिन प्रश्न उपस्थित हो गया। यदि लूथर दुर्बल हृदय का मनुष्य होता तो चुप बैठ रहता; परन्तु निर्भय होने के कारण वह अपने सिद्धान्त पर अटल बना रहा। अपने विरोधियों के प्रश्न का उत्तर देने में उसने अपने विचारों को बाइबिल और चर्च के प्राचीन धर्म-प्रवर्तकों के आधार पर सिद्ध किया। जब फिर उसे चुप रहने की आज्ञा हुई तो उसने पोप की आज्ञा के उद्देश्य के प्रति सन्देह प्रकट किया और कहा कि पोप भी तो ग़लतियाँ कर सकता है; क्योंकि जब अन्य पोपों से भूलें हुई थीं तो फिर लियो दशम में क्या विशेषता है! यह विचार कि उसका मार्ग संकटमय था, लूथर को नहीं रोक सकता था। उसका अन्त आपज्जनक होगा इसकी भी वह कल्पना नहीं कर सकता था। कोई भी सुधारक धर्म-विरोधी होकर अपना कार्य आरम्भ नहीं करता। वह धर्मविरोधी तभी होता है जब वह अपने ग़लत समझने वाले विरोधियों को समझाने में असफल रहता है।

**लूथर की सफलता**—फिर भी इस मार्ग में लूथर का ही दृढ़ विचार पर्याप्त नहीं हो सकता था। वह भी हस और सैवेनरोला के समान पोप और आस्ट्रियन सम्राट की संयुक्त शक्ति द्वारा नष्ट हो जाता यदि कहीं जर्मनी के राज्यों ने इन दोनों का संयोजन असम्भव न कर दिया होता। पोप लोकप्रिय न था। यदि सम्राट् उसका पक्ष लेता और लूथर का विरोध भी करता तो साम्राज्य के अमीर राजा का एक मत न होते इस प्रकार विरोध बढ़ता गया और लूथर के विचारों का प्रचार होना शुरू हुआ अब उसके विचार प्रदर्शन का ढंग भी स्पष्ट था। लैटिन को छोड़ कर, जो अब तक धर्मग्रन्थों और धर्माचारियों की भाषा थी, उसने जर्मनों को जर्मन भाषा में उपदेश दिये। उसके विचार अधिकाधिक तीव्र होते गये। व्यक्तिगत आक्रमण के बाद सिद्धान्तों पर आक्रमण करना दूसरी सीढ़ी है। वह ईसाई मत के सात में से चार संस्कारों को हटाना चाहता था। उसका मत था कि हर ईसाई की स्वाधीनता का नियन्त्रण तभी हो सकता है जब वह ईशु मसीह और उसकी बादशाहत पर ईमान लाये। बाहरी विधानों से ऐसा नहीं होता।

**लूथर का दमन**—लूथर को शान्त करने का यही एक साधन था कि उसकी शिकायतों का आधार हटा दिया जाता। परन्तु यह तो दोषों के निराकरण और

सहानुभूतिपूर्ण सुधार से ही सम्भव हो सकता था। किन्तु यह रियासत की नीति, पोप सम्राट और विधर्मी, तीनों में से एक को भी अच्छी न लगती थी। १५२१ ई० मे डाइट ऑव वार्म्स मे लूथर की निन्दा की गयी और साम्राज्य के राजाओं को अनुशासन दिया गया कि वे उसकी नास्तिकता का मूलोच्छेद करें। परन्तु उनमें कुछ राजा उदासीन थे और कुछ उत्साही। जहाँ दमन में उत्साह दिखाया गया वहाँ विद्रोह होगया। फिर भी जब तक सम्राट् पोप का सहायक रहा तब तक उसे आशा थी कि उसका आयोजन सफल हो रहा है। किन्तु पाँच वर्ष बाद उनमे विरोध हो गया। पोप ने फ्रान्सिस प्रथम को उन बचनों के पालन से मुक्त कर दिया जो उसने पाविया की पराजय के बाद चार्ल्स को दिये थे। इसलिए चार्ल्स ने पोप को नास्तिकों के विरुद्ध सहायता देने से इन्कार कर दिया। प्रत्येक राजा को लूथर के सम्बन्ध में अपनी रुचि के अनुकूल कार्य करने की स्वतन्त्रता दे दी गयी। शीघ्र ही, मानो यह दिखाने के लिए कि रोमन कैथलिक चर्च के सहायकों में भी एकता का कितना अभाव था, साम्राज्य की सेना ने रोम को घेर लिया और पोप को सेन्ट एञ्जिलो के कासिल में बन्दी कर दिया। इस प्रकार इस राजनीति के खेल मे लूथर गेंद की तरह इधर-उधर नाचता रहा और जर्मनी एक शोचनीय धार्मिक विक्षोभ में पड़ा रहा।

यहाँ तक के पुनर्विधान का विवरण इंग्लैंड के इतिहास में अप्रासंगिक सा जान पड़ता है; किन्तु युरोपीय घटनाओं के ज्ञान के बिना इंग्लैंड के पुनर्विधान का हाल न तो स्पष्ट हो सकता है और न ठीक-ठीक समझ में ही आ सकता है। लूथर ने पोपवाद के मर्मस्थल पर गहरी चोट की थी। इस वार की प्रशंसा भी खूब हुई। जर्मन भाषा मे लिखने के कारण उसका जर्मन लोगों पर प्रभाव था और इसीलिए वह जीवित रह सका। यही उसकी सफलता का चिन्ह था। किन्तु उसमें एक बात का अभाव था। इसीलिए कुछ जर्मन राजाओं ने उसका पक्ष लिया, किन्तु खुले दिल से उसकी सहायता किसी ने न की। किसी ने पोप के प्रभुत्व को ठुकरा कर अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत नहीं किया। यह महत्वपूर्ण काम इंग्लैंड ने ही सबसे पहले किया। यही कारण है कि इंग्लैंड का पुनर्विधान युरोप के इतिहास में इतना अधिक महत्व रखता है।

## § २—इंग्लैंड मे पुनर्विधान—रोम से विच्छेद

इंग्लैंड मे सुधार आन्दोलन—अँगरेज विद्वान भी नवीन ज्ञान के प्रति उतने ही उत्साही थे जितने कि जर्मन। उनकी भावना भी उतनी ही व्यावहारिक थी। ग्रोसीन ने फ़्लोरेन्स में शिक्षा प्राप्त की और १४९१ ई० में वापस आकर आक्सफ़र्ड में शिक्षक हो गया। सेन्ट पाल के डीन जान कोलेट को अपनी ग्रीक भाषा की विद्वत्ता पर उतना ही महत्त्व था जितना इरेस्मस को, क्योंकि वह उसके

द्वारा ईसाई श्रुतियों के रहस्य समझ सकता था। उसने निस्संकोच होकर पादरी शिक्षकों के ज्ञान को एक ओर रख कर मूल न्यु टेस्टामेन्ट को अपने ज्ञान का आधार बनाया। सेन्ट पॉल के ग्रामर स्कूल की स्थापना में उसने अपने उद्देश्यों का स्पष्ट प्रमाण दे दिया। यहाँ उसने मास्टर के आसन के ऊपर बालक ईसु की मूर्त्ति की स्थापना करवायी, जिस पर यह शब्द खुदे हुए थे, 'इनके उपदेश को सुनो।" इरेस्मस ने स्वयम् केम्ब्रिज में पढ़ाया और लेटिमर और फिशर को अपने विचारों से स्फूर्ति दी। कुशल बुद्धि और गम्भीर प्रतिभा में उसका पुराना मित्र टामस मोर ही उसका प्रतिस्पर्धी था। मोर की पुस्तक 'युटोपिया' के उदार और समदर्शी विचार अपने समय की प्रगति से कहीं आगे थे। उसमें एक ऐसे उन्नत राष्ट्र की कल्पना की गयी है जिसमें न्याय का उद्देश्य लोक कल्याण हो, जहाँ सबको धार्मिक स्वतन्त्रता हो, जहाँ कोई निर्धन नहीं हो, (क्योंकि सारी सम्पत्ति पर सब का अधिकार समान होगा), जहाँ सबको काम करना आवश्यक हो (क्योंकि बिना काम के कल्याण नहीं हो सकता। जहाँ प्रजा को दासत्व की ओर ले जाने का प्रयत्न करने वाला राजा तक पदच्युत किया जा सकता हो, जहाँ सभी बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध हो और जहाँ दंड का उद्देश्य अपराधी को सदा के लिए सच्चरित्र बनाना हो। इस पुस्तक में वर्तमान राष्ट्र के आदर्श की ही पूर्ण प्रतिच्छाया नहीं है वरन् बहुत सी ऐसी बातें भी हैं जो अभी व्यवहार में नहीं लायी जा सकी हैं। कोई पुस्तक 'युटोपिया' के समान यह नहीं बताती कि आत्मा अपने सामयिक बन्धनों से बाहर कैसे निकल कर आगे बढ सकती है। फिर भी यद्यपि मोर, और कोले उन 'ट्रोजनों' के विरुद्ध लड़ते रहे जो अब भी पुराने विचारों के गुलाम थे और पुरानी रूढ़ियों पर चलते थे, परन्तु सुधार के वास्तविक काम में स्वयम् अधिक उन्नति नहीं कर सके। बिना राजा या वुल्जे की सहायता के कुछ नहीं हो सकता था और यह दोनों उस समय पराराष्ट्र नीति के झमेलों में उलझे हुए थे। वुल्जे सुधार की आवश्यकता का अनुभव करता था, किन्तु वह बहुत व्यस्त था। कार्डिनल-लिगेट होने के नाते वह चर्च के व्यापारों में हस्तक्षेप कर सकता था; किन्तु वह इस ओर उदासीन रहा। उसके अल्प प्रयत्न भी, सतर्कता और सावधानी के द्योतक थे। परन्तु सतर्क सुधारक किसी भी पक्ष को सन्तुष्ट नहीं कर पाते। वे तो केवल पुरानी परिपाटी के अनुयाइयों को चिन्तित और क्षुब्ध कर देते हैं, जबकि जोशीले सुधारक उनका खंडन करते हैं। कुछ पतित मठों के दबाने और ऑक्सफर्ड में एक कार्डिनल कालेज स्थापित करने के फलःस्वरूप वुल्जे का विरोध हुआ। चर्चवाले उसे झूठा मित्र समझने और अमीर उस पर व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा का दोषारोपण करने लगे।

यद्यपि इंग्लैंड की प्रबल राजसत्ता ने सुधारकों को ऐसा कोई अवसर नहीं दिया, जैसा कि दुर्बल और अनैक्यपूर्ण जर्मनी ने, तथापि यहाँ पर भी आग भड़कने भर की देर थी। एडवर्ड तृतीय और रिचर्ड द्वितीय के समय से अँगरेज

लोग पोप के हस्तक्षेप का घोर विरोध करते आ रहे थे। 'प्रोवाइजर' और 'प्रोमेनाइर, कानूनों द्वारा उन्होंने इंग्लैंड में पोर के हस्तक्षेप एक विरोध तथा अँगरेजी मठों में उसके आदमियों की नियुक्ति के विरुद्ध अपना असन्तोष प्रकट किया। फिर भी विरोधी भाव प्रज्वलित होते हुए भी निहित थे।

इसीलिए यदि इंग्लैंड में कोई भी विशेष कारण होता, तो राजा को अपनी प्रजा से रोम के विरुद्ध सहायता मिलती थी। हेनरी की शक्ति का एक कारण यह भी था कि वह पूर्ण रूप से सच्चा अँगरेज था। वह अपनी प्रजा को समझता था और प्रजा उसे। अब तक पोप से उसका कोई विरोध न हुआ था। उसने लूथर के दमन में भाग लिया और अपने नाम से उस अधर्मी (?) के लेखों का खंडन प्रकाशित कराया था? इसके उपलक्ष में पोप ने उसे 'गोल्डन रोज' से पुरस्कृति कराया। क्लीमेन्ट के पूर्वगामी लियो दशम ने उसे 'फीडि आइ डिफेन्सर ( रक्षक ) का पद दिया। यह उपाधि अब भी अँगरेजी सिक्कों पर विद्यमान है। किन्तु पोपशाही के प्रति हेनरी की हार्दिक श्रद्धा न थी। यदि पोप सहनशील था तो हेनरी भी उदार था। यदि मतान्तर होता तो हेनरी का स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता। १५२६ ई० के आते आते झगड़े का कारण भी दूर न रहा, क्योंकि हेनरी अपनी पत्नी कैथराइन से ऊब उठा था।

कैथराइन की तलाक—यह निश्चित है कि हेनरी और कैथराइन के मेल का कोई भी आधार न था। स्पेन की राजकुमारी होने के कारण वह फ्रान्स के साथ उन सधियों को पसन्द नहीं करती थी जिन्हें वुल्जे के मतानुसार हेनरी सदा सम्पादित करने को तत्पर रहता था। हेनरी इसलिए निराश था कि उससे कोई पुत्र न था जो उसका उत्तराधिकारी होता इस प्रकार दोनों एक दूसरे की ओर खिंचते गये—यहाँ तक कि हेनरी को उसका साथ क्रमशः अधिक अरुचिकर होने लगा। एक विशेष कारण से उसके विचार तलाक के पक्ष में दृढ़ हो गये। वह एन बुलीन से गूढ़ प्रेम करने लगा। एन को प्राप्त करने के लिए कैथराइन से पिंड छुड़ाना आवश्यक था, इसलिए हेनरी ने एक बार फिर वुल्जे की सहायता का आश्रय लिया। बहाना मिलना भी कठिन था। कैथराइन उसके भाई आर्थर की विधवा थी इसलिए विवाह नाजायज था। राजा को विश्वास हो गया कि इस विवाह के सम्बन्ध में पोप की आज्ञा ग़लत थी। फिर भी क्या ऐसा विवाह अवैध नहीं ठहराया जा सकता था? पोप ने तो राजाओं के लिए इससे भी बड़े बड़े काम किये।

वुल्जे के मार्ग में कठिनाइयाँ—वुल्जे ने भी इस विचार का विरोध नहीं किया। कदाचित उसने ही हेनरी को यह सुझाया था। यह कैथराइन और उसके विचारों से छुटकारा पाकर प्रसन्न होता। यद्यपि उसे यह आशा थी कि पोप को राज़ी किया जा सकता है, किन्तु उसके मार्ग में और कठिनाइयाँ थीं। कैथराइन बहुत सदाचारिणी थी। उसके विरुद्ध कहने को कुछ न था। सारे देश में उसके पति

सहानुभूति की आशा थी। विशेष कर जब हेनरी के एन के साथ विवाह का रहस्य प्रकट हो जाय। फिर फ्रान्स और स्पेन इसका विरोध करते। फ्रान्स तो इसलिए कि हेनरी की पुत्री मेरी और दोफ़िन के साथ सगाई हो गयी थी और यह विरोध मेरी को जारज बना देता और स्पेन इसलिए विरोध करता कि चार्ल्स पचम कैथराइन का भतीजा था। १५२१ ई० में जब कि यह घटना काल के गर्भ में ही थी रोम का पतन हुआ और पोप क्लीमेन्ट चार्ल्स पंचम का आश्रित हो गया। पोप को स्पेन के राजा के विरोध को उद्यत करने के लिए इसमें अधिक अमगलकर समय न हो सकता था। इसलिए वुल्जे का सकोच कोई आश्चर्य की बात न थी।

फिर भी सब बातें उसकी आशा के अनुकूल हुईं। न स्पेन और न फ्रान्स ने उसे किसी प्रकार की सहायता दी। क्लीमेन्ट ने वुल्जे और कार्डिनल कैम्पेगियो को निर्णायक नियुक्त किया; किन्तु उन्हें अन्तिम निर्णय का अधिकार नहीं दिया। केम्पेगियो अक्टूबर में इंग्लैंड पहुँच गया, किन्तु जॉच अगले जून तक आरम्भ न हुई। जुलाई में निर्णय की आशा थी, किन्तु उस मास के अन्त में कैम्पेगियो ने दो महीने के लिए बैठक विसर्जित कर दी। इस विलम्ब से हेनरी क्रुद्ध हो उठा।

अब धूमिल रहस्य खुल गया। इंग्लैंड का वास्तविक स्वामी वुल्जे नहीं बल्कि हेनरी था। हेनरी ने अब अपने उस गुण का (दृढ निश्चय में परम्परा और परिणामों की परवाह न करना) प्रदर्शन किया जिसका वुल्जे में अभाव था। जब लोग इस राजनीति की कटीली झाड़ी में से वुल्जे के सतर्क पथ की प्रतीक्षा कर रहे थे, हेनरी बैल की तरह उसमें से टूट पड़ा।

वुल्जे का पतन—उसने वुल्जे को ठुकरा दिया और अपने न्याय-सचिव को उसके विरुद्ध नियम-भंग करने के लिए प्रोमेनाइर प्राप्त करने का आदेश दिया। अभियोग यह था कि पोप का आज्ञाकारी होने के कारण वह कानून के विरुद्ध काम करता है। इस अभियोग में कोई दम न था, क्योंकि वुल्जे ने राजा की इच्छा से ही लिगेट का पद स्वीकार कर लिया था, जिससे उसे वह राजा के उपयोग में ला सके। किन्तु वह जानता था कि उसकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए उसने शीघ्र ही राजा की शरण ली। हेनरी ने उसके अधिकार छीन और उसे पदच्युत कर यार्क भेज दिया; क्योंकि अभी वह यह निश्चय नहीं कर सका था कि उसे फिर भी उसकी आवश्यकता होगी या न होगी। वुल्जे के शत्रु शक्तिशाली थे। कार्डिनल वुल्जे षड्यन्त्र के अभियोग में यार्क मे गिरफ्तार हुआ और टावर में भेज दिया गया। परन्तु मृत्यु राजा से अधिक दयावान थी। आहत हृदय, दुर्बल और निराश वुल्जे ने उसी की शरण ली। हेनरी का अन्तिम कार्य यह हुआ कि उसने मृत्युशैया पर वुल्जे से १५०० पाउंड का हिसाब लेने के लिए दूत भेजा।

वुल्जे के पतन के बाद ही राजा ने ऐसे दो कार्य किये जो भविष्य के लिए महत्वपूर्ण थे। उसने पार्लियामेन्ट के अधिवेशन के लिए निमन्त्रण दिया और सर

टामस मोर को बुल्जे के स्थान पर चान्सलर बनाया। एक छोटे से अधिवेशन को छोड़ कर १४ वर्ष से पार्लियामेन्ट नहीं बैठी थी और न इस बीच में किसी राजा ने अपनी आत्मा को साधारण लोगों के विश्वास पर छोड़ देना उचित समझा था। किन्तु चर्च के पतन के बाद मन्त्रियों और सर्व साधारण दोनों के उत्थान का लक्ष्य इसी ओर था। बुल्जे चर्च के उन सब धर्माचारी नेताओं का मुकुट था जो डन्स्टन से लेकर उसके समय तक इंग्लैण्ड के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उनमें कोई बुल्जे से बड़ा न था। किन्तु उसके आकस्मिक पतन से चर्च के अधिकार की शृंखला टूट गयी। यह अवश्य है कि आगे चल कर लॉड का उदय हुआ, किन्तु अपने समय और स्थान पर वह अकेला ही था, और उसका स्थान आगे या पीछे कहीं भी न रहा।

सुधारक पार्लियामेन्ट—सन १५२० से १५३६ ई० तक पार्लियामेन्ट के अधिवेशन के ७ वर्षों में प्रति वर्ष हेनरी और रोम के बीच भेदभाव बढ़ता गया। इस विरोध का हर क़दम पार्लियामेन्ट को चर्च पर हावी बनाता गया। अस्तु यह सुधारक पार्लियामेन्ट दीर्घ-कालीन पार्लियामेन्ट से भिन्न नहीं। प्रत्येक का आगमन एक काफी लम्बे और अव्यवस्थित शासन के बाद हुआ। प्रत्येक पार्लियामेन्ट के अधिवेशन भी बहुत हुए। संयोग से दोनों की बैठक भी एक ही दिन को हुई। एक ने पोप के प्रभुत्व को छिन्न-भिन्न कर दिया और दूसरी ने राजा की शक्ति को। फिर भी दोनों में एक विशेष अन्तर है। दीर्घ पार्लियामेन्ट का कार्यक्रम अपनी शक्ति पर और सुधारक पार्लियामेन्ट का बल हेनरी पर निर्भर था।

पहला आक्रमण चर्च की जेब पर हुआ। अब तक पादरी और चर्च वसीयत, व्यापार और मृत्यु की फ़ीस आदि से काफी धन पाते थे। कुछ पादरियों ने व्यापार और खेती से भी धन पैदा किया था। परन्तु उनकी आय के ये सब मार्ग रोक दिये गये। बहुत से पादरी एक से अधिक चर्च की जायदादें रखते थे। अनुपस्थिति का कारण बता कर यह प्रथा बन्द कर दी गयी। जब तक राजा की विशेष आज्ञा न मिले किसी पादरी को अपने गिरजे की और उससे लगी हुई जायदाद से दूर रहने का अधिकार न रहा। अब तक यह विशेष आज्ञा पोप देता था। पादरियों को अपनी मुट्ठी में रखने के लिए राजा का यह पहला वार था।

दूसरे अधिवेशन में सब पादरियों पर प्रोमेनाइर के नियमोल्लंघन का वही अभियोग लगाया गया जो बुल्जे पर लगाया गया था। बुल्जे भी अभियुक्त था और वे सब उसके साथ थे। केन्टरबरी के कन्वोकेशन में उसे १ लाख पाउन्ड भेंट दे कर क्षमा प्राप्त कर ली गयी और यार्क से १८ हजार जुर्माना लेकर राजा ने और सब प्रजा को भी क्षमा कर दिया।

लाभ के आंशिक दान का कानून—अगले अधिवेशन के पहले तक राजा के एजेन्ट रोम में व्यस्त थे; किन्तु विवाह-भंग की चेष्टा में राजा को कुछ भी सफलता

नहीं दिखायी पड़ी। इसलिए पार्लियामेन्ट ने अनेट्स के कानून को स्वीकृत कर इस दंडविधान में एक पेच और कस दिया। इसके अनुसार यद्यपि राजा और उसकी प्रजा पवित्र चर्च के परम भक्त थे फिर भी अनेट्स (लाभ का आंशिक दान) पोप को देना दिया बन्द कर गया। जो विशप उल्लंघन करता उसकी सम्पत्ति और भूमि छिन जाती। ऐसी परिस्थिति में यदि पोप किसी नये विशप का निर्वाचन स्वीकृत नहीं करे तो उसके दो सहकारी बिना पोप की स्वीकृति की प्रतीक्षा के उसका निर्वाचन कर लेंगे। किन्तु राजा को और पार्लियामेन्ट इस नयी शक्ति का प्रयोग करने के लिये उत्सुक न थे। इसलिये इस विधान के प्रयोग का अधिकार राजा की इच्छा पर छोड़ दिया गया।

**अपीलों का विधान**—इस प्रकार यदि रोम से कुछ सहायता नहीं मिल सकती थी, तो हेनरी रोम के बिना ही काम चला सकता था। सन् १५३२ के वसन्त में कई विश्वविद्यालयों की राय के आधार पर क्रेनमर कैथराइन की तलाक के मसले की छानबीन में लगा था। फिर कैथराइन की अपील को निष्फल करने के लिए पार्लियामेन्ट ने अपीलों का एक विधान पास कर दिया, जिसके अनुसार वसीयत, विवाह, तलाक़ आदि अपीलों का रोम जाना रोक दिया गया। अब अपीलें कनवोकेशन की बड़ी सभा को भेजी जाने लगीं, जहाँ हेनरी उनका नियन्त्रण आसानी से कर सकता था।

जब तक पार्लियामेन्ट का पाँचवाँ अधिवेशन बैठे तलाक़ की स्वीकृति और एन के साथ विवाह की घोषणा भी हो चुकी थी। पार्लियामेन्ट ने भी अब साहस दिखाया। उसने पहली बार पोप को रोम के विषय की संज्ञा दी और यह व्यवस्था की कि भविष्य में विशपों का निर्वाचन डीन और प्रान्ताचार्य करेंगे, किन्तु उनको नामज़द राजा ही करेगा। रोम के 'पीटसपेन्स' आदि सब कर बन्द कर दिये गये। राजा की स्वीकृति के बिना कोई चर्च का नियम न बन सकेगा। फिर भी यदि पोप अन्तिम समय तक भी पश्चात्ताप प्रकट करता तो हेनरी के इन नियमों का शायद प्रयोग न होता, क्योंकि राजा को अपनी इच्छानुसार उन्हें स्थापित करने या व्यवहार में लाने का अधिकार दे दिया गया था। इसके सिवा राज्य के उत्तराधिकार में प्रथम नियम के अनुसार कैथराइन के साथ हेनरी का विवाह नाजायज घोषित किया गया और कैथराइन की पुत्री मेरी का उत्तराधिकार भी छीन लिया गया।

**प्रभुत्व का नियम**—पाँचवें छठे अधिवेशन के बीच में पोप ने क्रेनमर के तलाक दंड को अस्वीकृत कर दिया। इस पर राजा ने एक घोषणा में सब पुस्तकों, प्रार्थनाओं आदि से पोप का नाम हटा देने की आज्ञा दे दी। पार्लियामेन्ट ने इसके पीछे ही प्रभुत्व-विधान द्वारा राजा को चर्च ऑव इंग्लैंड का अध्यक्ष बना दिया और लोगों से बाहरी (विदेशी) अनुशासन स्वीकृत न करने और इस पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत सब विधानों को मानने की शपथ ले ली। यह शपथ लेने से इनकार करने के कारण चान्सलर सर टामस मोर और विशप फिशर बन्दी कर दिये गये।

**छोटे मठों का बन्द होना**—सातवें और अन्तिम अधिवेशन में छोटे छोटे मठों की समाप्ति हुई। सारी शक्ति राजा के हाथ में आ जाने के कारण; वह उन मठों का निरीक्षक भी हो गया जिन पर अभी तक चर्च के कर्मचारियों और पोप का अधिकार था। इस निरीक्षण का उद्देश्य भी शीघ्र ज्ञात हो गया। २०० पाउण्ड सालाना से कम की आमदनी वाले मठ बन्द कर दिये गये और उनकी जागीरें जब्त कर ली गयीं। इस अन्तिम वार के बाद सुधारक पार्लियामेन्ट समाप्त हो गयी।

इस पार्लियामेन्ट के कार्य पर सामान्य दृष्टि डालने से दो बातें ज्ञात होती हैं। इंग्लैंड में पुनर्विधान पूर्ण रूप से लौकिक रहा। उसका रूप केवल राजनीतिक था और कुछ नहीं। धर्म विरोध ही उनका धार्मिक पक्ष था। तलाक का न्याय सिद्ध प्रमाणित करने के लिए राजा और पार्लियामेन्ट ने इस कठोर नीति को इसलिए ग्रहण किया कि चर्च को दबाकर और पोप के अधिकार छीन कर उसका प्रभुत्व मिटा दिया जाय। इस कार्य में न्याय और भावना को स्थान न था। इस युद्ध में न कोई बल का प्रदर्शन ही हुआ और न अँगरेज़ों की तरफ से तोपों की गड़गड़ाहट ही हुई। युद्ध का वार शत्रु की आमदनी पर पड़ा और वह धीरे-धीरे प्रत्येक बिना रक्तपात के नष्ट हो गयी। यह सब इस प्रकार किया जा सका, इसलिए इसमें देश की सहमति स्पष्ट है। रोम के प्रभुत्व से बहुत से लोग घृणा करते थे। इस सम्बन्ध मे अर्ल ऑव सफक के ये शब्द सभी के शब्द थे—"कार्डिनलों के रहते इंग्लैंड में कभी सुख-समृद्धि न हुई।" उनके हटाये जाने की बड़ी आवश्यकता थी और वे हटा दिये गये। इसका परिणाम क्या होगा—इस विषय में अँगरेज़ों ने कोई चिन्ता नहीं की।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि पोप के प्रभुत्व को गिराकर सुधारक पार्लियामेन्ट ने राजा को इतना ऊँचा उठा दिया जितना कि इंग्लैंड के इतिहास में न तो पहले कभी और न बाद को ही हुआ। राजा के हाथ में चर्च की सम्पत्ति और पोप की शक्ति दे देने के अलावा कानूनों का निर्णय और उसे स्वेच्छानुसार प्रयोग करने न करने का अधिकार भी था। उत्तराधिकार भी उसी के हाथ में दे दिया गया था। एक ऐसा षड्यन्त्र-विधान बनाया गया जिसके अनुसार राजा के प्रतिकूल विचार भी विद्रोह में गिन लिया गया।

भारी भरकम होने के साथ-साथ हेनरी हर बात में राजा था।

**टामस क्रामवेल**—सुधारक पार्लियामेन्ट की ये दो विशेषताएँ उस मनुष्य की प्रकृति की प्रतिबिम्ब हैं जिसमें हेनरी की अधीनता में उनका निर्माण किया। टामस क्रामवेल एक वकील था जो लेन देन से धनी हो गया था। वह हाउस ऑव कामन्स का सदस्य था और वुल्ज़े के नीचे काम किया था। किन्तु वह हृदय से राजा का सहायक था, कार्डिनल का नहीं। इटली में रह चुकने के कारण वह स्वेच्छाचार, अनियन्त्रित शक्ति और उसके निर्दय प्रयोग से भली भाँति परिचित था। उसने राजा के अनुभव को दृढ़ करने में कुछ भी कसर उठा न रक्खी। 'प्रभुत्व एक्ट' के अनुसार

चर्च के प्रधान आचार्य की हैसियत से उसने चर्च को राजा की अधीनता में करदिया। उपदेश के अधिकार के लिए राजभक्ति आवश्यक कर दी। पहले छोटा और फिर बड़े मठों को बन्द करवा के उनकी सारी सम्पत्ति राजा के हाथ में दे दी। सर टामस मोर और बिशप फिशर को 'प्रभुत्व एक्ट' स्वीकार न करने के कारण प्राण-दंड दिलाया। चार्टर हाउस के मंकों को भी इसी अपराध में फाँसी करा दी। जब मठों के भंग कराने के कारण उत्तर में विद्रोह हुआ तो क्रामवेल जरा भी विचलित न हुआ। 'धर्म यात्रा' नाम का यह विद्रोह वास्तविक धार्मिक आशंकाओं से उद्भूतहोने के कारण खतरनाक था। दक्खिन प्रान्तों के भी अधिक अंशों में कैथलिक होने के कारण उत्तरी प्रान्त नये भावों के ग्रहण करने के लिए तैयार न थे। उनकी धारणा यह थी कि मठों के बाद चर्च पर कुठाराघात होगा। राबर्ट आस्क विद्रोहियों का नेता था। उसने मठों की पुनः स्थापना और क्रामवेल आदि सुधारक बिशपों के निर्वासन का आन्दोलन उठाया।

इस अन्तिम उद्देश्य ने उत्तर के अमीरों को भी सम्मिलित कर लिया, क्योंकि वे क्रामवेल को बड़े भय और घृणा की दृष्टि से देखते थे। पर्सी, वेस्टमोरलेंड और लैटिमर के लार्ड, यार्कशायर का अर्ल डाकरे आदि सभी इसमें मिल गये। ये लोग अपने साथ इंग्लैंड के सब से बड़े लड़ाके सिपाही ला सकते थे। चर्च के धर्माचार्य भी इस में शामिल हुए—यहाँ तक कि बालिंग्स का ऐबट तो खुद कवच पहन कर लड़ने पहुँचा। हेनरी ने नार्फक को विद्रोहियों का दमन करने भेजा, किन्तु वह निबल था, इसलिए उसे विद्रोहियों से सुलह करने की आज्ञा दे दी गयी। विद्रोही सब अपने-अपने स्थानों को चले गये। परन्तु हेनरी तो केवल अवसर की प्रतीक्षा में था। जैसे ही फिर कुछ उपद्रव हुआ कि उसने सब वायदे तोड़ दिये। विद्रोही नेता पकड़ लिये गये। लार्ड डार्सी, लार्ड हसी, और चार बड़े मठों के ऐबटों को फाँसी दे दी गयी। उत्तर के दर्जनों छोटे नेताओं को प्राण-दंड दिया गया। प्रभुत्व-विधान की यह निष्ठुर व्याख्या बड़ी शिक्षाजनक है।

**बड़े मठों का पतन**—उपर्युक्त आन्दोलन की असफलता का परिणाम हुआ बड़े मठों का पतन। कुछ षड्यन्त्र करने के दोष में बन्द करा दिये गये, शेष ने राजा की अधीनता स्वीकार कर ली। मंकों को पेन्शनें मिल गयीं। छः बड़े मठों का नये ढंग से संस्थापन किया गया। इनकी कुछ सम्पत्ति का उपयोग शिक्षा प्रसार के लिए हुआ, कुछ का समुद्र तट पर किले बनवाने में। किन्तु अधिकांश धन राजा के हाथ मे गया। उसने बहुत कुछ तो अपने मन्त्रियों आदि में बाँट या बेच दिया, जिससे पुनर्विधान की स्थिति दृढ़ हो गयी। यदि इंग्लैंड फिर रोम का प्रभुत्व स्वीकार कर लेता तो वह सम्पत्ति लौटानी पड़ती, इसलिए कुछ ही वर्षों में यह सम्पत्ति इस प्रकार बँट गयी कि उसमें ४० हजार परिवारों का स्वार्थ सिद्ध हो गया और स्वाभाविकतः ये ४० हजार कुटुम्ब पक्के प्रोटेस्टेन्ट बन गये। मेरी के रोमन-प्रभुत्व को पुनः स्थापन के प्रयत्नों की नाव इसी चट्टान पर टूटी। बल-प्रयोग से उस सम्पत्ति का छीनना असम्भव था। मेरी के पास

इतना धन भी न था कि इसे खरीद सकती; अस्तु, यह व्यवस्था पुनर्विधान का उसी तरह दृढ़ दुर्ग बनी रही जिस प्रकार विलियम तृतीय और जार्ज प्रथम द्वारा लिया हुआ ऋण क्रान्ति के समझौते का। दोनों युगों में पुरातन-धर्म अथवा स्टुअर्ट वंश की पुनःस्थापना के लिए प्रयत्न हुए; परन्तु धनाढ्य लोगों ने अपनी सम्पत्ति तथा अपने कोषों को सुरक्षित रखने के विचार से इन आयोजनों की ओर उदासीनता प्रकट की। यह इसलिए कि इनसे उनको अपनी पूँजी के विनाश का भय था।

हेनरी अष्टम के शेष शासनकाल में किसी प्रकार की उन्नति अथवा प्रतिक्रिया के कोई विशेष चिन्ह नहीं रह जाते। कुछ लोग युग के कृत्यों पर पछताते थे और कुछ कहते थे कि प्रतिक्रिया बहुत जल्द रोक दी गयी। 'आगेवाले' कहते थे 'आगे चलो', 'पीछे वाले' कहते 'पीछे हटो'। किन्तु दोनों दल अल्पसंख्यक थे। अधिकांश राष्ट्र सन्तुष्ट था और उसके साथ राजा भी। इसीलिए ऐसा कोई काम नहीं किया गया जो बहुत विप्लवकारी समझा जाता। यही कारण था कि राजकीय कार्यों का पलड़ा कभी इधर तो कभी उधर झुकता रहा।

बाइबिल का अनुवाद—इन सब में बाइबिल का अनुवाद एक प्रधान कार्य था। तिन्देल के अनुवाद की बहुत सी प्रतियाँ जो इंग्लैंड में छिपा-चुरा कर लायी गयीं नष्ट कर दी गयीं। क्रामवेल ने माइल्स कवरडेल को नये अनुवाद के लिए उत्साहित किया। यह ग्रन्थ तिन्देल के ग्रन्थ के साथ मिला दिया गया और १५३७ ई० में जान राजर्स ने 'मैथ्यु' के कल्पित उपनाम से उसे प्रकाशित किया। राजा को इसे स्वीकृत करने पर राज़ी किया गया और क्रेनमर ने इसकी भूमिका लिखी। इस प्रकार यह महान बाइबिल चर्चों में गयी। जनता को भी उसकी प्रतियों के रखने का अधिकार मिल गया। यद्यपि १५४३ ई० में बाइबिल पढ़ने का अधिकार किसान, मजदूरों और स्त्रियों से ले लिया गया, तथापि १५४४ ई० में लिटैनी और १५४५ ई० में प्रातः और सायंकाल की प्रार्थना अँगरेजी में होती थी।

छः विधान—लोगों के हाथ में यह नयी बाइबिल देने पर भी उन्हें प्राचीन धर्म से पृथक होने का कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया। सरदारों के नेता ड्यूक ऑव नार्फक ने क्रेनमर और पुनर्विधान के सिद्धान्तों का विरोध किया। विंचेस्टर का बिशप गार्डिनर, तथा लन्दन का बिशप बोनर, और सबसे ऊपर स्वयम् हेनरी भी इसके विरुद्ध थे उनका दृष्टिकोण उन विधानों से स्पष्ट हो जाता है जिनका उद्देश्य पुनर्विधान की उठती हुई लहर को रोकना था। इनके आदेश ये थेः—(१) पदार्थ परिवर्तन* के सिद्धान्त में विश्वास (२) आत्मिक सम्पर्क में एक ही प्रकार का व्यवहार (३) पादरियों

* रोमन कैथलिक मत में हर अनुयायी को साल में कम से कम एक बार ईस्टर में 'आम सार्वजनिक पूजन' में शरीक होना ज़रूरी है। इस समय की उपासना में उसके विश्वास के अनुसार शराब और रोटी में ईशु का अंश मौजूद होता है।

के विवाह की अवैधता (४) सदाचार के लिए ब्रह्मचर्य व्रत की आवश्यकता (५) व्यक्तिगत 'मास' का जारी रखना और (६) पाप स्वीकरण का उपयोग। इन विधानों में पुराने धर्म के बहुत अधिक तत्व मौजूद हैं। सब से पहला विधान तो रोमन सिद्धान्त का मर्मस्थल ही है। इसी पर सुधारवादियों का आक्रमण सब से अधिक प्रबल था। तीसरे और चौथे विधानों में पादरियों की विशेष स्थिति मान ली गयी है। जनता पर उनके प्रभुत्व का आधार पाप स्वीकरण था। दूसरे विधान का उद्देश्य इंग्लैंड में जर्मनी में उठने वाले बोहेमियन विचारों को हटाना था। पहले विधान के पहले ही नियम-भग के लिए मृत्यु दंड रखा गया था; किन्तु अन्य नियमों को दूसरी बार भंग करने पर दंड मिलता था। पार्लियामेन्ट को यह विश्वास हो गया कि उपर्युक्त छः विधानों का पालन करने वाला नास्तिक नहीं माना जायगा।

**क्रामवेल का पतन**—धर्म-सिद्धान्त के परिवर्तन के विरोध की इस स्पष्ट घोषणा के पीछे ही क्रामवेल का पतन हुआ। १५३६ ई० में उसने जर्मनी के प्रोटेस्टेन्ट राजाओं को इंग्लैंड के सम्बन्ध द्वारा शक्ति प्रदान करने का प्रयत्न किया और उसने राजा को ड्यूक ऑव क्लेव्स की बहन एन से विवाह करने को राजी कर लिया। यह सम्बन्ध तो टूट गया; किन्तु हेनरी ने, जो चार वर्ष तक अपत्नीक रहा था, अपने वचन पालन का निश्चय किया। एन सुन्दर बतलायी गयी थी, परन्तु वह बहुत साधारण निकली। इसीलिए विवाह के बाद ही हेनरी ने तलाक की स्वीकृति ले ली। उसने क्रामवेल के प्रति क्षोभ प्रकट किया और क्रामवेल के शत्रु नार्फक और उसके साथी सरदार उसके पक्ष में आ गये। उस पर षड्यन्त्र का निस्सार अभियोग लगाया गया और उसे प्राण-दंड हुआ।

१५४०--४१ ई० बीच में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। स्काटलैंड के युद्धों का वर्णन तत्सम्बन्धी अध्याय में आ गया है। राजा ने दो विवाह और किये। पहला कैथराइन होवर्ड से और फिर दुश्चरित्र के लिए उसकी फाँसी के बाद कैथराइन पार से। राज्य के लिए ऋण चुकाना सरल बनाने के लिए उसने घटिया सिक्के चला दिये, किन्तु इसके परिणाम का सम्बन्ध एडवर्ड षष्ट के शासन से है। उसका अन्तिम कृत्य राज्याभिलाष के अपराध में नार्फक के पुत्र अर्ल ऑव सरे का प्राण-दंड था। इस प्रकार हेनरी के शासन का अन्त वैसे ही हुआ जैसे उसका आरम्भ हुआ था। यह काल रक्तरंजित सा दिखाई देता है; किन्तु उस युग के लोगों को इसका वह पक्ष न सूझ पड़ा। गुलाबों के युद्ध की अशान्ति और हेनरी सप्तम के शासन में उसके पुनः फैलने की आशंका के बाद हेनरी अष्टम का शासन शान्ति और समृद्धि का काल समझा जाता है। इस काल में रोम से छुटकारा मिल गया, और मरते दम तक राजा जनता का स्नेहपात्र बना रहा। इंग्लैंड सन्तुष्ट रहा।

हेनरी न तो दयालु था न तर्कशील; न सच्चा और न ईमानदार, परन्तु वह जानता था कि स्वयम् क्या चाहता है और इंग्लैंड उससे क्या आशा रखता है।

उसने अपने ध्येय को स्वयम् प्राप्त किया और प्रजा के ध्येय को प्रथा को प्राप्त करने दिया।

## § ३—एडवर्ड षष्ठ और सिद्धान्त में अपरिपक्व सुधार

**उत्तराधिकार का प्रश्न**—पार्लियामेन्ट ने हेनरी को अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार दे दिया था। हेनरी ने यह वसीयत की कि उसके बाद सिंहासन उसके पुत्र एडवर्ड को दिया जाय। यदि वह बिना उत्तराधिकारी के मर जाय तो उसकी पुत्री मेरी राज्य की अधिकारिणी हो और यदि उसकी भी परम्परा समाप्त हो जाय तो एलिजबेथ रानी बने। उसके भी न रहने पर अन्त मे उसने अपनी छोटी बहन मेरी के वंशजों को उत्तराधिकारी निश्चित किया। हेनरी की अपने वंशजों के अभाव की भावना सत्य हो गयी; किन्तु उसकी वसीयत का पूर्णत पालन न हो सका। इग्लैंड का राज्य उसकी बड़ी बहन के स्काट वशजों के हाथ में चला गया यद्यपि उनको हेनरी ने अपनी वसीयत में बिलकुल छोड़ दिया था।

**संरक्षक समरसेट**—एडवर्ड नौ वर्ष का था इसलिए उसका एक सरक्षक होना अनिवार्य था। ऐसी सरक्षक-सस्था के राजनीतिक तथा धार्मिक विचारों पर प्रत्येक बात का अवलम्बित रहना स्वाभाविक था। हेनरी ने एक संरक्षक समिति का प्रबन्ध किया था जिसमें विविध मतों के लोग थे। उसे आशा थी कि वह स्थिति को ज्यों का त्यों बनाये रक्खेगी। परन्तु हेनरी की योजना असफल रही, क्योंकि युवराज के चचा सीमोर ने समिति के एक भाग को अपनी ओर कर लिया और वह साम्राज्य का प्रधान संरक्षक घोषित हुआ। उनकी सहायता से ड्यूक ऑव समरसेट का पद धारण कर उसने अपने विचारों को प्रयोग में लाना प्रारम्भ किया।

**सामाजिक तथा धार्मिक कठिनाइयाँ**—समरसेट के सामने कई खतरे थे। ऐसे कई अवसर आये जिनका उपयोग किया जा सकता था, किन्तु जिनकी उपेक्षा संघातक होती। एक दल ऐसा तैयार हो रहा था जो धार्मिक सुधारों का इतना पक्षपाती था कि वह पूर्ण रूप से प्रोटेस्टेन्ट हो जाना चाहते थे। दूसरे धर्म सघों के विरोधी थे और उनकी सम्पत्ति लूटने के फिराक में थे। कुछ हृदय से पूर्ण प्रोटेस्टेन्ट धर्म की स्थापना चाहते थे। वे लोग संख्या में थोडे परन्तु प्रमुख थे। सामान्य जनता—विशेष कर उत्तर-पश्चिम की रिआया अपने प्राचीन धर्म और विश्वासों में हस्तक्षेप नहीं चाहती थी। इसके अतिरिक्त देश में आर्थिक संकट भी था। महामारी के समय से खेतो को चरागाह बनाने की प्रक्रिया चली आ रही थी। भेड़ों के व्यापार के लिए अधिक आदमियों की आवश्यकता न थी, इसलिए बहुत से लोग बेकार हो गये थे। मठों के बन्द हो जाने से यह आपत्ति और भी बढ़ गयी। प्राचीन अभिरुचियों के अनुसार मंक पुरानी व्यवस्था के पोषक थे। मठों के नये अधिकारी प्रगतिशील सुधारक थे। उन्हें प्राचीन परिपाटी और पुराने कृषकों के प्रति श्रद्धा न थी। मठों ने विपत्ति के अवसरों पर बहुत कुछ किया था। फिर हेनरी के घटिया सिक्कों ने आपत्ति और भी बढा दी थी।

सभी सिक्के घटिया न थे किन्तु लोगों के लिए ऐसे समय में जब कि उन्हें यह विश्वास नहीं रहा कि शिलिंग छः पैनी का है या १२ पैनी का अच्छे शिलिंग को रख लेना और घटिया सिक्कों को निकालने की चेष्टा करना स्वाभाविक था। इस लिए अच्छे सिक्के गाढ़ कर रख लिये गये या उनकी चाँदी निकालने के लिए गला डाले गये और रद्दी सिक्के चलने लगे। धार्मिक विषयों में मतभेद, खेती में असन्तोष, व्यापार में दुर्व्यवस्था, ये सब लार्ड प्रोटेक्टर को व्यस्त रखने के लिए काफी थे। एक और प्रश्न युवक राजा के विवाह का था। इन सब में समरसेट असफल रहा। उसके सद् विचार उसके विकृत साधनों के कारण छिप गये। उसके नीति के उद्देश्य सराहनीय थे, किन्तु उनका परिणाम विनाशक हुआ।

**समरसेट की स्काट नीति**—सब से पहले तो उसके सामने राजा के ही विवाह द्वारा इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड को एक कर देने का अवसर आया जो एडवर्ड प्रथम के समय से किसी अन्य राजनीतिज्ञ को न मिला था। जेम्स पंचम की अनाथ बालिका एडवर्ड षष्ट की पत्नी हो सकती थी। स्काटलैण्ड इस समय दो दलों में विभक्त था। मेरी ऑव गीज के नेतृत्व में फ्रेञ्च कैथलिक दल और पुनर्विधान के पक्ष में इंग्लिश दल था। समरसेट का यह स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वह इस बात का ध्यान रखता कि ये दोनों दल इंग्लैण्ड के विरुद्ध एक न हो जायें। उसने शीघ्र ही इस ओर ध्यान दिया। यह जान कर कि उसकी विवाह-योजना का स्वागत नहीं किया गया, उसने स्काटलैण्ड में एक सेना भेजी जिसने स्काटों को पिनकी क्लिफ पर बुरी तरह हराया ( १५४७ ई० )। स्काटलैण्ड को अपनी ओर मिलाने का यह तरीका न था। हन्टले ने स्काटलैण्ड की भावना का इन स्मरणीय शब्दों में वर्णन किया है 'मैं विवाह को नापसन्द नहीं करता हूँ परन्तु विवाह करने की विधि का विरोधी हूँ।' राजकुमारी फ्रान्स भेज दी गयी और दोफिन के साथ उसकी सगाई हो गयी। समरसेट की संघातक शीघ्रता ने उसकी योजनाओं पर पानी फेर दिया।

**चर्चों से मूर्ति-निर्वासन**—धार्मिक विषयों में भी उसका वही उद्धत व्यवहार रहा। इस धारणा से कि इंग्लैण्ड पुनर्विधान का समर्थक होने के कारण पुरानी संस्थाओं के सुधारों के लिए तैयार था उसने ( सुधार की आशा से ) शीघ्र ही 'मास' और प्रार्थनाओं में लैटिन का उपयोग बन्द कर दिया और गिरजों में से मूर्तियाँ हटाने तथा दीवारों पर बने हुए चित्र नष्ट करने की आज्ञा दी। राज कर्मचारी मंकों का भेष बनाये चर्च के चित्रों को उसी जोश के साथ जलाते फिरते थे जिस प्रकार अगली पीढ़ी ने गाई फाक्स के पुतले को जलाया था। कर्मचारियों के इस उद्धत व्यवहार के कारण देश में घोर अशान्ति और असन्तोष फैल गया। न मालूम कितने समय से लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी इसी ( सरविस ) उपासना-विधि का उपयोग किया था और इसे मनुष्यों ने सहज ही ईश्वर-प्राप्ति का पवित्र साधन मान

लिया था। चर्च की इन मूर्तियों के सामने अगणित प्रार्थनाएँ की जा चुकी थीं जिनसे कम समझ मनुष्यों को अपने सन्तों और मुक्तिदाता प्रभु में विश्वास उत्पन्न हो गया था। पवित्रात्माओं के चित्रों से न केवल गिरजों की दीवारों की शोभा थी और वह पवित्र हो गयी थीं बल्कि जनता को उनसे प्रेम हो गया था। उनके सम्बन्ध में पवित्र चिन्तन से प्रत्येक दुखी हृदय को सान्त्वना और आशा मिलती थी। वे सब जब अकस्मात नष्ट कर दिये गये तो साधारण ग्रामवासियों को जान पड़ा मानों स्वर्ग का द्वार ही बन्द हो गया। नवीन धवल गिरजाघर उन्हें कारागार से प्रतीत होने लगे।

संघ सम्पत्ति की जब्ती—इस परिवर्तन से विस्मित लोगों के मन पर एक चोट और लगी। अबकी बार नगरों पर ही इसका आघात हुआ। प्राचीन संघों से सब लोग उसी भाँति परिचित थे जैसे धर्म से। उनके उद्देश्य भी निराले थे। व्यापारिक व्यवस्था, उत्सवों की योजना, धार्मिक प्रबन्ध, आदि सब इन्हीं संघों के अन्तर्गत थे। यदि संघ का सदस्य बीमार होता तो संघ उसकी सहायता करता यदि उसके औजार चोरी चले जाते या उसके घर में आग लग जाती तो संघ से सहायता मिलती। यदि गरीबों में उसकी मृत्यु हो जाती तो संघ उसकी अन्त्येष्टि क्रिया का प्रबन्ध; उसके पुत्रों की शिक्षा, विधवा के जीवन की देख भाल करता और उसकी आत्मा की शान्ति के लिए 'मास' के लिए धन भी देता। लोग धर्म के लिए संघ को सम्पत्तियाँ दे जाते थे इसलिए बहुत से संघ सम्पन्न थे। राज्य की लोलुप दृष्टि उन पर भी पड़ी क्योंकि उनका धन भी मठों की भाँति धार्मिक कृत्यों में व्यय होता था। इसलिए अब परोपकारिणी सभाओं, रोगियों की सेवा करने वाली समितियों या कारबारियों की सहायक संस्थाओं के लिए एक कानून पास किया गया जिसके अनुसार उनकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गयी। इसका परिणाम वही हुआ जो आजकल सरकार से सब परोपकारी सभाओं, रोगियों की सेवा करने वाले उपचार गृहों और मज़दूरों की अन्य समितियों की जायदाद और सम्पत्ति ज़ब्त कर लेने पर होता। यह एक ऐसा कानून था जिससे बहुत से लोगों को हानि पहुँची तथा उन्हें असन्तोष हुआ। इस नाराजी का एक कारण यह भी था कि लन्दन से संघों पर यह विषय लागू न हो सका क्योंकि वे बड़े उद्दंड थे।

डेवनशायर और नार्फक में विद्रोह—भावी आपत्ति भी अब दूर न थी समरसेट के भाई सडले के लार्ड सीमोर ने विद्रोह रचा। उसने हेनरी अष्टम की विधवा कैथराइन पार से विवाह कर लिया और अपने लिए वारविक किंग मेकर की सी स्थिति बनाने का यत्न किया। उसने अपने नाम का सिक्का चलाया, तोपें ढलवायीं, होल्ट दुर्ग को सुरक्षित बनाया और प्रोटेक्टर के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। काउन्सिल ने उसे फाँसी का दंड दिया, किन्तु इतने निकट सम्बन्धी के इस षड्यन्त्र से समरसेट की हानि ही हुई। उसकी असफलता के प्रमाण और बढ़े। पूरब और पच्छिम में कैथलिक धर्म प्रचार होने के कारण १५४९ ई० की नयी प्रार्थना पुस्तक थी। पूरब

के देशों में धार्मिक असन्तोष न था। वहाँ के विद्रोह के कारण सामाजिक थे। भेड़ों के चरागाह बनाने के लिए खुली और कृषि योग्य जमीनों के चारों ओर बाड़े बन जाने के कारण बहुत लोग बेकार हो गये थे। घटिया सिक्कों ने कारीगरों और मजदूरों और मजदूरी की दर तथा वस्तुओं के मूल्य सभी की दुर्दशा कर रक्खी थी। नारविच तथा अन्य नगरों में व्यापार संघों के जब्त हो जाने के कारण लोग नाराज थे। इस कारण एक साथ, देश के दूरवर्ती और निकटस्थ प्रदेशों तथा अमीर और गरीब सभी लोगों में विद्रोह फैल गया।

विद्रोह का दमन राज्य का प्रथम कर्तव्य है। कारणों की खोज, भ्रमवश बहके हुए लोगों के साथ सहानुभूति और सुधार तो उस समय की बातें हैं जब विद्रोही हथियार डालकर फिर नागरिक बन गये हों परन्तु समरसेट को यह न सूझा। डेवनशायर के धार्मिक विद्रोहियों के प्रति उसे न दया थी और न सहानुभूति। उन्हें दबाने में समय भी काफी लगा। १५४६ ई० में ग्रीष्म में पश्चिम में आग भड़क रही थी। पोमरोय और अरंडे के नेतृत्व में १० हजार सशस्त्र आदमी थे। उन्होंने एक्सिटर घेर लिया। आशंका इतनी निकट थी कि जर्मन सेना किराये पर लेनी पड़ी उसने बड़ी कठिनाई से विद्रोहियों को परास्त कर पाया। स्टोक के बाद इंग्लैंड में ऐसा घोर युद्ध नहीं हुआ था जिसमें ४ हजार आदमी मारे गये हों। नेताओं को फाँसी हुई। तब कहीं शान्ति स्थापित हो सकी।

पश्चिम के प्रदेश में तो समरसेट इतना दृढ़ था कि उसने अँगरेज किसानों को जर्मन सेना से कुचलवा डाला। वहीं समरसेट पूरब में दुर्बलता की सीमा तक पहुँच गया। उसने राबर्ट और विलियम केन्ट के नेतृत्व में माउस होल्ड पहाड़ी पर नगर के सामने एकत्रित विद्रोहियों के साथ जो आस-पास के अमीरों से रसद वसूल करते थे, सहानुभूति प्रदर्शित की। वह समझ गया कि खेतों के चारों ओर बाड़े बनवाने और घटिया सिक्कों के चलाने से लोगों पर क्या बीत रही थी। अतएव वह उनमें सुधार करना चाहता था। इसलिए उसने सुलह की बातचीत करने की कोशिश की परन्तु इससे विद्रोहियों को और प्रोत्साहन मिला। आखिर युद्ध आरम्भ हो गया और काउन्सिल ने समरसेट से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति अर्ल ऑव वारविक को विद्रोहियों पर आक्रमण करने को भेजा उसने बड़े साहस से युद्ध किया और कुछ को मार कर शेष को भगा दिया।

समरसेट का पतन—इस जीत से वारविक की ख्याति हो गयी। उसने समरसेट को उखाड़ने का प्रयत्न किया। प्रोटेक्टर अनेक बार असफल हो चुका था, कौन्सिल में उसके प्रतिस्पर्द्धी उससे ईर्ष्या रखते थे और कोई सबल दल उसका सहायक न था। आखिर १५५१ ई० में उसने काउन्सिल के आगे आत्मसमर्पण कर दिया और वह टावर में कैद कर दिया गया। क्षमा मिल जाने पर उसका स्थान फिर उसे दे दिया गया, किन्तु वारविक को उससे भय लगा हुआ था। उसका शान्ति पूर्वक रहना

वह नहीं देख सकता था। इसलिए १५५३ ई० मे उसे एक षड्यन्त्र के अपराध में प्राण दंड दे दिया गया।

इस प्रकार समरसेट का पतन हुआ। वह सच्चा और सद्भावनाशील पुरुष था। उसका एकमात्र दोष यह था कि वह समय से आगे चलता था। लंडन और अपनी सभा के जनमत को देश का व्यापक मत मानते तथा यह समझने के कारण कि हेनरी अष्टम के शासन में रोम के बन्धन को ठुकरा देने वाला देश चर्च के सिद्धान्त के सुधार के लिए अवश्य ही तैयार होगा; उसने शीघ्रता से परिवर्तन कर डाले। असफल होने पर भी बहुत से लोग उसे चाहते थे। फाँसी के बाद लोगों ने उसके रक्त में रूमाल भिगो कर स्मृति चिन्ह की भाँति रक्खा। सब कुछ होते हुए भी वह ईमानदार था। कम से कम यह बात उसके बाद में आने वाले पुरुष के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती।

**एडवर्ड षष्ठ**—समरसेट की मृत्यु के समय एडवर्ड षष्ठ केवल १५ वर्ष का था। सब को उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। वह अपने पिता की भाँति बहुत लोकप्रिय था। दरबारी उसकी योग्यता से परिचित थे और उसकी सच्ची प्रोटेस्टेन्ट भावना में विश्वास रखते थे। राष्ट्र भी एक सत्शासक की प्रतीक्षा में था, किन्तु एडवर्ड के भाग्य में राज्य करना न बदा था।

राज्य के अन्तिम दो वर्ष उसके कुछ विचारों के प्रमाण हैं। १५५२ ई० के 'दूसरे प्रार्थना ग्रन्थ' के भाव प्रोटेस्टेन्ट की धर्म की ओर और भी अधिक झुके हुए थे। चर्च की बहुत सी पुरानी रीतियों को बन्द कर दिया। धर्म सम्बन्धी ४२ नये नियम प्रकाशित हुए और घोर सुधारवादियों के विचारों के अनूकूल और भी कई परिवर्तन किये गये। उसी समय कुछ उपयोगी बातें भी हुईं। मजदूरों की दशा सुधारने के लिए बाड़े बनाने की प्रवृत्ति को रोकने और कृषि की उन्नति करने के प्रयत्न हुए। ग़रीबों के लिए 'पुअर ला' पास हुआ। इसके अनुसार हर गाँव में ग़रीबों की सहायता के लिए चन्दा जमा करने का प्रयत्न होना स्वीकृत हुआ। साथ ही राजघराने का जेबख़र्च कम कर दिया गया। दुर्भाग्य वश समय इन सब सुधारों के लिए अनुकूल न था। इंग्लैंड को स्थायी शासन की आवश्यकता थी और परिवर्तन निकट था। एडवर्ड के स्वास्थ्य ने उसका साथ न दिया। कैथलिक मेरी अगली उत्तराधिकारिणी थी। जहाँ भविष्य इतना अनिश्चित था वहाँ वर्तमान का अन्धकार होना अनिवार्य था।

**नार्थम्बरलैंड और प्रोटेस्टेन्ट उत्तराधिकार**—यह स्थिति अर्ल ऑव वारविक के लिए सबसे अधिक हानिप्रद थी। उसने समरसेट के पतन के लिए बहुत प्रयत्न किया था और इस समय उसके स्थान पर हुकूमत कर रहा था। वह हेनरी सप्तम के मिनिस्टर उस डडले का पुत्र था जिसको हेनरी अष्टम ने मरवा डाला था। वारविक, जिसको अब ड्यूक ऑव नार्थम्बरलैंड की उपाधि मिली थी, एक योग्य सैनिक और सफल सिद्धान्तहीन राजनीतिज्ञ था। उसमें कुशल राजनीतिज्ञ की

भाँति समय के अनुसार रंग बदलने का गुण मौजूद था। उसे न ईमानदार होने का दावा था और न विश्वसनीय। उसने घोर सुधारकों का पक्ष इसलिए लिया था कि यह युवक राजा की रुचि के अनुकूल था। दूसरे हेनरी अष्टम का पक्ष लेने वाले अमीर शक्ति पाते ही उसे उखाड़ फेंकते। जब समरसेट जैसा सच्चा पुरुष इँग्लेंड को प्रोटेस्टेन्ट न बना सका तो स्वार्थी नार्थम्बरलैंड की असफलता अवश्यम्भावी थी। वस्तुतः इंग्लैंड इतने सुधार के लिए तैयार ही न था। राजा की कृपाभिरुचि तथा काउन्सिल की अनिश्चित सहायता पर निर्भर रहने के कारण, एडवर्ड का स्वास्थ्य क्षीण होने के साथ ही १५५२ ई० में नार्थम्बरलैंड की स्थिति भी अनिश्चित ही रही थी। इसलिए अपनी स्थिति सुरक्षित बनाने का प्रयत्न किया। एडवर्ड को यह विश्वास दिलाना कठिन न था कि यदि मेरी को सिंहासन मिल गया तो पुनर्विधान का नाश हो जायगा। इसलिए नार्थम्बरलैंड की सम्मति से उसने मेरी और एलिजेबेथ दोनों को राज्याधिकार से वंचित कर दिया और हेनरी अष्टम की सब से छोटी बहन की पौत्री लेडी जेन ग्रे को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया। नार्थम्बरलैंड ने हाल ही में अपनी द्वितीय पुत्र लार्ड गिल्डफर्ड डडले का विवाह लेडी जेन से किया था, इसलिए इस चाल से इंग्लैंड का मुकुट प्रोटेस्टेन्ट राजा को मिलने की आशा के साथ ड्यूक ऑव नार्थम्बरलैंड का यह अपना पारिवारिक प्रभाव बढ़ाने का भी निश्चित प्रयत्न था, क्योंकि भावी रानी का श्वसुर होने के नाते वह शासन करने को आशा कर सकता था।

नार्थम्बरलैंड की असफलता—यदि देश प्रोटेस्टेन्ट राजा के लिए तैयार होता तो नार्थम्बरलैंड की योजना सम्भवतः सफल होती। लेडी जेन में योग्य रानी बनने के सभी गुण मौजूद थे; किन्तु यह शीघ्र ही स्पष्ट हो गया कि देश इसके लिए तैयार न था। जब १५५३ ई० में एडवर्ड की मृत्यु हो गयी तो नार्थम्बरलैंड ने मेरी को सूचना मिलने से पहले ही पकड़ लेना चाहा; किन्तु एक मित्र ने उसे चेतावनी दी और वह नार्फक में अपने होवर्ड संरक्षकों के पास निकल भागी। उसने अपने को रानी घोषित कर दिया। प्रजा ने उसकी सहायता की। लडन में भी नार्थम्बरलैंड की योजना असफल रही। लेडी जेन के रानी होने की घोषणा कर उत्तर मौन या विरोध हुआ। अपने पुत्र लार्ड राबर्ट डडले को उसने मेरी को गिरफ्तार करने भेजा। वह नार्फक तो पहुँचा, किन्तु उसके सैनिकों ने लड़ने से इनकार कर दिया। नौ सेना भी मेरी के ही पक्ष में थी। इस प्रकार हजारों मनुष्य मेरी के पक्ष में संगठित हो रहे थे। नार्थम्बरलैंड की अपनी सेना ने भी ग़दर कर उसका साथ छोड़ दिया। तब उसने निराश होकर केम्ब्रिज में मेरी को रानी घोषित किया। अगले दिन वह गिरफ़्तार कर टावर भेज दिया गया। उसने सूली पर घोषणा की कि वह हृदय से तो सदा कैथलिक था, किन्तु विवशता से सुधारक बन गया था। अपनी पूर्व भावना का विरोध करने के कारण प्रोटेस्टेन्ट उससे घृणा करने लगे। उसके द्वारा यथासम्भव सुधार के काम की हानि करवा कर मेरी ने उसका सर उड़वा दिया।

## ४—मेरी और कैथलिक प्रतिक्रिया

राज्यारोहण के समय मेरी की अवस्था ३६ वर्ष की थी। आधी स्पेनियर्ड और आधी ट्यूडर होने से वह अपने निश्चय से टलने वाली न थी। दूसरे, सारे जीवन उसे कटु अनुभव हुए थे उसकी माँ को तलाक़ दिया गया और उसे राज्याधिकार से वंचित किया गया। उसके चारों ओर शत्रु थे जिनके बीच में वह वस्तुतः एक कैदी थी। रोम का प्रभुत्व मानने के कारण वह आधी विदेशी थी। यही कारण था कि इंग्लैंड के साथ उसे सहानुभूति न थी। नार्थम्बरलैंड बुद्धिमान राजनीतिज्ञ न था, परन्तु वह यह जानता था कि राज्य पाने के बाद मेरी कैसी रानी बनेगी।

परन्तु इंग्लैंड को इस प्रकार का कोई भय न था। कैथलिक शासक से अभी उतने भय की आशंका न थी जितनी जेम्स द्वितीय के काल में। क्योंकि उस समय तक इंग्लैंड में कोई ऐसा शासक नहीं हुआ था जो कैथलिक न हो। हेनरी अष्टम ने रोम का घोर विरोध करते हुए भी अपने को पक्का कैथलिक बना रखा। एडवर्ड षष्ठ ने तो कभी शासन ही नहीं किया। उसके राज्यकाल में तो समरसेट और नार्थम्बरलैंड का ही बोल बाला रहा। अतएव उसका आदर्श भी कुछ उत्साहजनक नहीं था। अँगरेज जनता मेरी को हैरी ट्यूडर की पुत्री मानती थी और उन्होंने उसका उसी राजभक्ति और श्रद्धा के साथ स्वागत किया जो उन के हृदय में सभी ट्यूडर राजाओं के लिए मौजूद थी। एडवर्ड षष्ठ के समय की सुधार योजनाएँ लोकप्रिय न हो सकीं। लोग फिर 'हैरी' का राज्य शासन चाहते थे। मेरी का उत्साहपूर्ण स्वागत करने में उन्हें यह बात विस्मृत हो गयी कि वह इंग्लैंड को रोम के प्रभुत्व में लाने का प्रयत्न करेगी।

**मेरी का शासन**—रानी मेरी के अल्पकालीन शासन के दो विभाग हैं। पहला तो वह काल जिसमें पूर्व परिस्थिति के दृढ़ करने का प्रयत्न और एडवर्ड षष्ठ के समय के असामयिक सुधारों का निराकरण किया गया। उत्तर काल में रानी ने अपने वास्तविक आयोजनों को प्रकट कर दिया। उसने एक स्पेनियर्ड से विवाह कर पोप के आधिपत्य को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। पूर्वकाल 'परावर्तन' का था। उस समय मेरी ट्यूडर के नाम से प्रसिद्ध थी। किन्तु दूसरा काल 'प्रतिक्रिया' का था जब वह खूनी मेरी, के नाम से पुकारी गयी। इसी काल में घोर अत्याचार हुए जिनके फल स्वरूप मेरी के शासन की कटु स्मृति आज भी बनी है।

**दिव्य धर्म का पुनः स्थापन-प्रतिवर्तन और विवाह**—पहले तो मेरी और उसकी प्रजा एक मत की थी। पार्लियामेन्ट ने एडवर्ड षष्ठ के धार्मिक विधानों का खंडन कर हेनरी अष्टम के शासन के अन्तिम दिनों के दिव्य धर्म विधान का पुनः स्थापन किया। मुख्य सुधारवादी राज्य छोड़ कर चले गये। जॉन नॉक्स जो एडवर्ड षष्ठ का

धर्माचार्य रहा था, उन्हीं में था। आर्कबिशप क्रेनमर, लैटिमेर और रिडले को उनके पदों से वंचित किया गया और विन्चेस्टर और लंडन के आठ पुराने पदाधिकारी बिशप गार्डिनर और बिशप बोनर पुनः नियुक्त कर दिये गये। रानी के विवाह-सम्बन्धी विचारों से भी इंग्लैंड में असन्तोष न फैला। देश वस्तुतः उसका विवाह कोर्टने अर्ल ऑव डेवन के साथ चाहता था, जो यार्क दल का अन्तिम प्रतिनिधि था। किन्तु अपने चचेरे भाई रेनल्ड तथा स्पेन के राजदूत रेनार्ड की प्रेरणा से उसने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और स्पेन के फ़िलिप द्वितीय के साथ विवाह करने को तैयार हो गयी।

स्पेन के राजा के साथ विवाह की योजना लोकप्रिय न थी; किन्तु इसका विरोध भी नहीं किया गया। एक विद्रोह अवश्य हुआ जिसके सहायक कोर्टने, ड्यूक ऑव सफक तथा नार्थम्बरलैंड के मित्र थे और जिसका नेता सर टामस वायट था। किन्तु यह अधिक सफल न हो सका। लंडन में भी, जहाँ सुधार की भावनाएँ दृढ़ थीं, वायट का विरोध लंडन ब्रिज पर किया गया। अधिकांश नेता पकड़े गये। वायट और सफक को कत्ल करा दिया गया। लेडी जेन और उसके भाग्यहीन पति की भी यही दशा हुई। कोर्टने को बन्दी बनाया गया। यहाँ तक कि राजकुमारी एलिजेबेथ भी टावर में भेज दी गयी। विवाह की सन्धि को पार्लियामेन्ट ने स्वीकृत किया। १५५४ ई० की जुलाई में फिलिप इंग्लैंड आया और उसने मेरी के साथ विवाह किया।

उस युग के समस्त अन्तर्वंशीय विवाहों में यह विवाह सब से अधिक भयावह था। केवल नाम के लिए इंग्लैण्ड की युरोप के सबसे शक्तिशाली राष्ट्र से सन्धि हो गयी। एक तरह यह सम्बन्ध स्काट रानी मेरी और दोफ़िन के विवाह का उत्तर कहा जा सकता है। उस समय फ्रान्स और स्पेन युरोप के दो महान राज्य थे। स्काटलैण्ड की मेरी ने फ्रान्स के राजा से विवाह किया तो उससे बाजी जीतने के लिए मेरी ऑव इंग्लैण्ड ने स्पेन से नाता जोड़ा, क्योंकि स्पेन फ्रान्स से बड़ा था। राष्ट्रीय गर्व को स्पेन वर के वैभव से भले ही सान्त्वना दी जा सके, किन्तु वास्तव में इस बेमेल विवाह के साथ अनेक आशंकाएँ थीं। फ्रान्स और स्पेन के युद्ध में इंग्लैंड और स्काटलैण्ड दोनों राज्यों के विनाश की आशंका थी। यही नहीं स्काटलैण्ड और फ्रान्स के एक छत्र में होने से इंग्लैंड के लिए बड़ा ख़तरा था और फिर ऐसी परिस्थिति में जब कि स्पेनिश सैनिक इंग्लैंड के लोगों की रक्षा के लिए आते। सब से अधिक आशंका तो इस बात की थी कि ऐसी परिस्थिति में इंग्लैण्ड स्पेन के साम्राज्य में सम्मिलित हो जाता। उसकी स्वतन्त्रता छिन जाती। वह नीदरलैंड की भाँति स्पेन का एक उपनिवेश रह जाता। यह सब परिणाम भयंकर थे। यह सच है कि विवाह सन्धि में सतर्कता से काम लिया गया था और राज्य प्रबन्ध केवल मेरी के हाथ में रखा गया था। सेना में किसी विदेशी को रखने की आज्ञा न थी। इंग्लैंड फ्रान्स के साथ युद्ध में सम्मिलित होने को बाध्य न था। यदि इस सम्बन्ध से कोई पुत्र होता तो वह इंग्लैंड,

बरगंडी और नीदरलैंड में राज्य कर सकता था, स्पेन में नहीं। किन्तु सतर्कता भविष्य की कल्पना पर निर्भर होती है और सन्धियों का सदा पालन भी नहीं किया जाता। अर्ध स्पेनिश माँ और स्पेनिश पिता का पुत्र प्रत्येक प्रकार से सन्देहजनक होता। परन्तु इंग्लैंड ऐसी आपत्तिजनक परिस्थिति से बच गया। वॉयट के इस युद्ध-घोष में—'स्पेन के साथ विवाह न हो' और 'कोई धार्मिक दमन न हो', सर्वसाधारण के भाव की व्यंजना है। वह और उसके सहायक ठीक थे। इस विवाह के परिणाम एक तूफानी बादल की भाँति तीस वर्ष तक इंग्लैंड की राजनीति पर उमड़ते रहे और अर्मडा के संहार में वे घोर गर्जना करके बिखर गये। किन्तु अँगरेजों की एक पीढ़ी का जीवन इसी आशंका में बीता।

कैथलिक प्रतिक्रिया—'स्पेनिश विवाह' मेरी के राज्य में एक बड़े परिवर्तन का आधार है। स्पेन की सहायता से उसने इंग्लैंड पर रोमन प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा की। निर्वाचन की सतर्क व्यवस्था द्वारा एक ऐसी विनीत पार्लियामेन्ट का संयोजन हुआ जिसने हेनरी अष्टम के समय के धार्मिक नियमों का खंडन किया और रोम से विच्छेद के पाप के लिए क्षमा की प्रार्थना की। कार्डिनल पोल ने जो पोप का प्रतिनिधि होकर आया था इस प्रार्थना को स्वीकार कर धार्मिक प्रतिबन्ध हटा दिया और इंग्लैण्ड रोमन प्रभुत्व में आ गया। कार्डिनल पोल ने यह बात मान ली कि मठों की जमीन उन्हीं लोगों के पास छोड़ दी जाय जिनके पास वह उस समय मौजूद थी क्योंकि सब बातें एक बारगी नहीं मेटी जा सकती थीं।

अब पार्लियामेन्ट ने धर्म विरोधी विधान पास कर दिये और प्रोटेस्टेन्टों पर अत्याचार आरम्भ हुए। ग्लौस्टर का बिशप हूपर, सेन्ट पॉल का कैनन राजर्स, सेन्ट डेविड का बिशप फरार और अन्य चौदह पर धर्म-विरोध का अभियोग लगाया गया। मेरी और उसके सलाहकारों को आशा थी कि वे क्षमा मांग लेंगे। एक ने क्षमा मांग ली, किन्तु शेष ने बलिदान स्वीकार किया। यह तो भूमिका मात्र थी। अब अत्याचार बढ चला। लैटिमर और रिडले आक्सफर्ड में जला दिये गये। क्रेनमर के विषय मे विलम्ब हुआ क्योंकि आर्कबिशप को जलाने के लिए पोप की अनुमति चाहिए थी। क्रेनमर ने क्षमा पत्र दे कर लौटा लिया और सदर्प अग्नि में पहले वह अयोग्य हाथ डाला जिससे उसने क्षमा-प्रार्थना पर हस्ताक्षर किये थे।

क्रेनमर मेरी के अत्याचारों का अन्तिम तथा उल्लेखनीय ग्रास था। उसके अतिरिक्त फिर धर्म के लिए किसी महा पुरुष को बलि नही देनी पड़ी। किन्तु लगभग २७० साधारण स्थिति के लोग शहीद हुए। लैटिमर के अपने भाई बिशप रिडले के प्रति साहस और दृढता के कहे शब्द यह हैं:—रिडले! "साहस रक्खो। ईश्वर की कृपा से आज इंग्लैंड में हम ऐसा प्रकाश प्रज्वलित करेंगे जो कभी बुझ न सकेगा।" प्रकाश वास्तव में प्रज्वलित हो गया, किन्तु इसका कितना श्रेय क्रेनमर, लैटिमर और रिडले तथा अन्य शहीदों को है, यह सन्दिग्ध है। सामान्य पुरुष की अपेक्षा किसी

विशप के लिए बलिदान करना सहल नहीं, किन्तु अवसर पड़ने पर उसने अपने धर्म के लिए बलिदान की उसी प्रकार आशा की जाती है, जिस प्रकार एक सैनिक अपने देश के लिए प्राण त्याग करता है। कभी-कभी तो बलिदान धर्म प्रचारकों के लिए धर्म हो जाता है। साधारण पुरुषों को बड़ों के दुखों से दुख होता है किन्तु अपने साथियों की वीरता से उनका विश्वास बढता है। हेनरी अष्टम की सुधार भावना के प्रति सन्देह होना सम्भव है क्योंकि उसके माननेवालों को चर्च की ज़मीन प्राप्त हुई थी। एडवर्ड षष्ठ के समय के धार्मिक जोश के विषय में भी कहा जा सकता है; परन्तु मेरी के समय के प्रोटेस्टेन्ट शहीदों के विषय में ऐसा कोई सन्देह न था। इनका एक मात्र पुरस्कार अपनी आत्मा की रक्षा के लिए अपने शरीर को बलिदान कर देना था। अब तक प्रोटेस्टेन्ट धर्म ऐहिक लाभ, संदिग्ध आदर्शों और सशयात्मक विश्वासों से प्रेरित हुआ प्रतीत होता था; किन्तु साधारण पुरुषों के इस बलिदान ने, जिसमें उन्होंने हँसते-हँसते धर्म के नाम पर अग्नि में भस्म हो जाना स्वीकार किया, उसे दृढ़ता प्रदान की।

मेरी अपने अत्याचारों से इंग्लैंड में धर्म-परिवर्तन की आशा रखती थी किन्तु उसका उपहार उसे घृणा मिला। अत्याचार करवाने वाले पोले, बोनर, कैथलिक और मेरी के स्पेनियर्ड पति फ़िलिप से लोग घृणा करते थे, किन्तु कुछ कर न सके। बाहर की सहायता के बिना विद्रोह सफल नहीं हो सकता था। यदि फ्रेंच सेना आना चाहती तो स्पेन की सेना भी अवश्य आ जाती और इससे स्थिति और भी अधिक भयंकर हो जाती। दूसरे यह सुना जाता था कि मेरी को कोई सघातक रोग था। ऐसी परिस्थिति में अवसर की प्रतीक्षा करना ही सर्वोत्तम प्रतिक्रिया थी।

कैले की हानि—मेरी के जीवन की अवधि अब थोड़ी ही थी फिर भी देश के लिए एक और घोर अपमान लाने के लिए वह बहुत काफी थी। स्पेन की मित्रता का फल फ्रान्स के साथ युद्ध मोल लेना था। इससे इंग्लैंड को कोई लाभ न था; किन्तु फ्रान्स को लाभ था, क्योंकि कैले अभी इंग्लैंड के अधिकार में था। फ्रान्स का आक्रमण कैले पर हुआ। वहाँ सहायता कम पहुँची। लार्ड वेन्टवर्थ ने सेना और धन के लिए लिखा भी, किन्तु मेरी ने कुछ न भेजा। थोड़ी सी सेना से वेन्टवर्थ ने पाँच दिन तक सामना किया, किन्तु इंग्लैंड से कोई सहायता न मिली। इसलिए ६ जनवरी को उसने शत्रु को आत्मसमर्पण किया। २० जनवरी को लार्ड ग्रे ने भी गिनी का क़िला शत्रु को समर्पित कर दिया।

इस प्रकार फ्रान्स में अन्तिम अँगरेजी राज्यप्रदेश छिन गया। युद्ध और व्यापार का द्वार होने के कारण कैले पहले महत्वपूर्ण था, किन्तु अब उसकी उतनी उपयोगिता न थी क्योंकि इंग्लैंड की नीति बदल रही थी।

इंग्लैंड को अब फ्रान्स पर आक्रमण करने की आकांक्षा न थी क्योंकि उसका ध्यान समुद्रपार के सुदूर धनधान्यपूर्ण देशों की ओर था और अब से स्पेन उसका शत्रु था। किन्तु यह समय पर नहीं देखा गया। सन् १३४७ से कैले पर अँगरेजी

अधिकार था और कैले, प्लायटिये और आज़ाँकूर के प्रसिद्ध युद्ध का यह एक मात्र स्मारक बच रहा था। राज्य की इज्जत इसकी रक्षा में थी। इसलिए उसका पतन बड़ा अपमानजनक हुआ।

## § ५—धार्मिक समझौता

७ नवम्बर १५५८ ई० को मेरी की मृत्यु हो गयी। उसके बाद पुनर्विधान की योजना एलिज़बेथ के हाथ में आयी। पिछले तीस वर्ष में अनेक परिवर्तन हो चुके थे। पहला परिवर्तन था हेनरी अष्टम का राजनीतिक पुनर्विधान, जिसने पोप की शक्ति को उखाड़ने पर भी सिद्धान्त को अक्षुण्ण रखा था। दूसरा था एडवर्ड षष्ठ के शासन में सिद्धान्तों के सुधार का प्रयत्न। परन्तु वह लोकप्रिय न हो सका। फिर हुई मेरी के समय की प्रतिक्रिया, जिसने पहले हेनरी अष्टम के काल की धर्म व्यवस्था का मूलोच्छेद कर रोमन कैथलिक धर्म की स्थापना की। परन्तु यह प्रतिक्रिया भी लोकप्रिय न हो सकी। अब एलिज़बेथ के सतर्क कौशल और उसके प्रधान मन्त्री सेसिल ने एक नवीन व्यवस्था की जो आगे स्थायी सिद्ध हुई।

एलिज़बेथ—सामयिक समस्याओं में अब तक काफी हेर-फेर हो गया था। इससे एलिज़बेथ का कार्य सरल हो गया। प्रोटेस्टेन्ट दल अब शक्तिशाली हो गया था और कैथलिक दल कमजोर। बाइबिल का अनुवाद हो जाने से प्रोटेस्टेन्ट पक्ष को लाभ हुआ क्योंकि यद्यपि बाइबिल में किसी विशेष पक्ष का निरूपण नहीं, किन्तु हाथ में बाइबिल होने से लोग धार्मिक विषयों का निर्णय अपने लिए आप कर सकते थे। अधिकारी वर्ग के स्थान पर व्यक्तिगत निर्णय की भावना प्रोटेस्टेन्ट धर्म का मूलतत्त्व है। मेरी के अत्याचारों का फल भी प्रोटेस्टेन्टों के पक्ष में हुआ। हेनरी अष्टम की व्यवस्था से सन्तोष हो जाना अब सम्भव न था। कैथलिक धर्मानुयायी कोई देश भी पोप के विरुद्ध नहीं रह सकता था। अपने शासन को स्थायी बनाने के लिए एलिज़बेथ को आवश्यक था कि वह या तो प्रोटेस्टेन्टों पर भरोसा करे या कैथलिक धर्मानुयायियों पर। वह सदा इन दोनों के बीच पड़ी नहीं रह सकती थी। कैथलिक पक्ष स्पेन के फिलिप और मेरी क्वीन ऑव स्काट्स का पक्ष था, जो एलिज़बेथ की प्रतिद्वन्द्वी और फ्रान्स के राजकुमार की स्त्री थी। आखिर एलिज़बेथ के प्रति प्रोटेस्टेन्टों की श्रद्धा अधिकाधिक होती गयी। प्रोटेस्टेन्टों के राजभक्त होते ही कैथलिक देशद्रोही समझे गये। यद्यपि बहुत अंशों में यह अपवाद ही था, परन्तु कभी कभी सत्य भी प्रतीत होता था और प्रत्यक्ष में तो इसके विरुद्ध प्रमाणित करना कठिन हो जाता था।

एलिज़बेथ की धार्मिक व्यवस्था—यह आशा की जा सकती थी कि पुनः विधान के लम्बे नाटक का अन्त किसी राजनीतिक घटना से होगा। किन्तु वह कुछ न हुआ। एलिज़बेथ की धर्म व्यवस्था पिछले उग्र परिवर्तनों से कुछ उदार थी। पोल की मृत्यु के बाद एक उदार प्रोटेस्टेन्ट मैथ्यु पारकर को आर्कबिशप ऑव

कैन्टरबरी बनाया गया। एलिजबेथ ने अँगरेजी में प्रार्थना पढ़ी जाने की आज्ञा दे दी। १५५९ ई० में पार्लियामेन्ट ने निम्नलिखित व्यवस्था घोषित कर दी।

१५१४ ई० के एक्ट का निराकरण किया गया। इसके द्वारा पोप की शक्ति पुनः उच्छिन्न हो गयी और हेनरी अष्टम की धर्म-व्यवस्था का फिर संस्थापन हुआ।

प्रभुत्व विधान के अनुकूल रानी को सर्व-श्रेष्ठ धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार दिये गये। समानता के विधान द्वारा एडवर्ड षष्ठ के द्वितीय प्रार्थना ग्रन्थ को स्वीकृत किया गया। पादरियों की पोशाक और चर्च की सजावट भी पूर्ववत् रखी गयी। एडवर्ड षष्ठ की धार्मिक व्यवस्थाओं की संख्या ४२ से ३९ कर दी गयी। इतनी व्यापक चर्च व्यवस्था के लिए उपर्युक्त प्रयत्न बहुत साधारण प्रतीत होता है। इसमें कोई विशेष नवीनता न थी, किन्तु था यह बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण। पहला नियम तो अनिवार्य था, क्योंकि इंग्लैण्ड कभी पोप के प्रभुत्व को स्वीकृत नहीं कर सकता था। किन्तु इसके बाद आहत कैथलिक-भावना के उपचार का पूर्ण प्रयत्न किया गया। प्रभुत्व विधान में भी अधिक सतर्कता से काम लिया गया। हेनरी अष्टम की उद्धत घोषणा की भाँति कि वही चर्च का प्रधान था, उसमें कुछ न था। उसके अनुसार केवल अधिकारियों को ही शपथ लेनी पड़ती थी। सामान्य जनता को इसकी कोई आवश्यकता न थी। उस समय भी वही प्रार्थना-ग्रन्थ रायज था जो आज प्रचलित है। उसमें-रोम के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं है। इसमें यहूदियों, तुर्कों आदि विधर्मियों को धर्म के मार्ग में लाने की प्रार्थना की गयी है किन्तु पोपवादियों के सम्बन्ध में उसमें कुछ भी ज़िक्र नहीं है। कैथलिक गिरजों की सामान्य-पूजा (सर्विस) के शब्द ऐसे हैं कि ईसु की सर्वव्यापकता में विश्वास करने तथा न करने वाले दोनों के लिए वे समान हैं। राजा के लिए दो प्रकार की प्रार्थनाएँ रक्खी गयीं। एक कुछ कम प्रोटेस्टेन्ट धर्म के पक्ष में दूसरी ज्यादा। लोगों को बहुत कुछ स्वतन्त्र अधिकार दे दिया गया था। धार्मिक व्यवहार में कोई कठोरता न थी। दंड का उपयोग उसी दशा में किया जाता जब कोई पोप का आधिपत्य बनाये रखने की ज़िद करता था। ऐसे व्यक्ति विद्रोही और दगाबाज कहे जाते थे। रानी मेरी के एक बिशप और दो सौ अन्य चर्च वालों को छोड़कर सबने नयी शपथ लेने से इनकार कर अपना पद त्याग कर दिया। एलिज़बेथ ने उसके स्थानों पर स्वानुकूल ऐसे व्यक्ति नियुक्त किये कि सारे चर्च के नेता उसके पक्ष में हो गये। कैथलिकों के चर्च में न आने और घर में 'मास' लेने पर भी बहुत हस्तक्षेप नहीं किया गया। चर्च न जाने के लिये केवल १ शिलिंग का जुर्माना देना पड़ता। २० शिलिंग प्रति मास देकर कोई भी कैथलिक अपने आप और अपने कुटुम्ब को गिरजा जाने से मुक्त करा सकता था। इसके सिवा अपने धर्म-नेताओं की सेवा के लिए भी उन्हें धन देना पड़ता था। इसलिए कैथलिक होना सम्भव किन्तु मँहगा था।

धीरे धीरे जब गाँव के सम्मानित लोगों ने देखा कि गिर्जे में जाकर धर्म-सभाओं में सम्मिलित होने से आर्थिक लाभ भी था तो वे वहाँ पहुँचने लगे। समय भी एलिज़बेथ के अनुकूल था जिससे उसे व्यवस्था को सुदृढ़ करने का अवसर मिला। उसके बाद इंग्लैण्ड की आगामी पीढ़ियों ने इंग्लैंड को कभी रोमन कैथलिक धर्म का अनुयायी नहीं देख पाया। इसीलिए उन्होंने किसी आनाकानी के इस धार्मिक समझौते को मान लिया।

---

# अध्याय ४

## १—एलिज़बेथ की नीति की रूपरेखा

अब तक हमारा ध्यान एलिज़बेथ के शासन के एक ही पक्ष पर रहा है और वह है उसकी चर्च-व्यवस्था यानी पुनर्विधान का पूर्ण विकास। यह व्यवस्था महत्व-पूर्ण होते हुए भी ऐसी न प्रतीत होती थी कि उसे अन्तिम निर्णय कहा जा सके, क्योंकि बारह वर्ष तक लोगों को ये आशाएँ बनी रहीं कि रानी रोम की ओर फिर झुक जायगी और देश को झुकाने की चेष्टा करेगी। इस बीच में उसकी उदार धर्म नीति और उसकी प्रबन्ध-कुशलता ने ऐसी भावनाओं को पुष्ट कर दिया। १५७० ई० में पोप पायस पंचम ने साधारण प्रबन्धों से काम चलता न देख निराश होकर कैथलिक धर्म से उसका बहिष्कार घोषित कर दिया।

फिर भी सन् १५७० ई० से बहुत पहले—वास्तव में एलिज़बेथ के शासन काल के पूर्व ही—उसे कैथलिक धर्म में दीक्षित कर इंग्लैंड को कैथलिक धर्म में फेर लाने के लिए और भी साधन मौजूद थे। उस समय की यूरोपीय राजनीति में प्रजा का धर्म राजा के धर्म पर आश्रित रहता था और कैथलिक राजा की प्रजा का भी कैथलिक होना स्वाभाविक समझा जाता था। फिर किसी देश में अब तक इस नियम का प्रतिवाद भी नहीं देखा गया था। इंग्लैंड में पुनर्विधान के समस्त परिवर्तन इस विश्वास के प्रमाण हैं। हेनरी अष्टम, एडवर्ड चतुर्थ, मेरी और अब एलिज़बेथ की धर्म भावनाओं के परिवर्त्तनों के साथ इग्लैंड की धर्म-भावना में भी बराबर परिवर्त्तन होता गया। इसलिए पुनर्विधान के पथ से इंग्लैंड को फेर लाने के लिए एक कैथलिक धर्मावलम्बी शासक की आवश्यकता थी और इस लक्ष्य की प्राप्ति के कई साधन हो सकते थे।

एलिज़बेथ के बाद राज्य की उत्तराधिकारिणी स्काटों की रानी मेरी कैथलिक थी। यदि वह सिंहासन पर बैठ जाती तो कैथलिक केन्द्रों की राय में सब कुछ ठीक हो जाता। यदि अपने फ्रान्सीसी पति की मृत्यु के बाद मेरी किसी अँगरेज कैथलिक राजकुमार से विवाह कर लेती तो और भी अच्छा होता। दूसरे स्वर्गीया रानी मेरी का

पति स्पेन का फिलिप अपने बाहुबल से अथवा एलिजेबेथ से विवाह कर के इंग्लैंड का सिंहासन प्राप्त कर सकता था। यदि पोप की व्यवस्था मिल जाती तो फिलिप खुद उसके साथ विवाह कर सकता था। अथवा एलिज़बेथ किसी अन्य हैप्सबर्ग वंशज के साथ विवाह कर सकती थी। इनमें से किसी भी परिस्थिति मे इंग्लैण्ड में फिर स्पेन के कैथलिकों का प्रभुत्व स्थापित हो जाता।

## § १—पुनर्विधान का प्रतिकार

राजनीतिक दृष्टि से एलिजेबेथ का शासन पुनर्विधान के प्रति विरोधी चेष्टाओं के युद्ध की कहानी है। स्पेन, साम्राज्य और पोप ने मिल कर इंग्लैण्ड में प्रोटेस्टेन्ट धर्म के प्रसार को रोकने की चेष्टा की। विरोधी शक्तियाँ बहुत प्रबल थीं। फ्रान्स और बाल्टिक राज्यों को छोड़ कर युरोप का सब शेष भाग स्पेन और साम्राज्य के अधीन था। नयी दुनिया में अपने उपनिवेशों के कारण स्पेन खूब सम्पन्न था और उसकी सेना उस समय युरोप में सर्वोत्तम समझी जाती थी। इसके अलावा पोप के दरबार की बुराइयाँ तथा पिछले दिनों की अन्य शिकायतें भी दूर कर दी गयी थीं। इस प्रकार काउन्सिल आफ ट्रेन्ट (१५४६ ६३ ई०) में पुनर्विधान की ओर झुके हुए लोगों को अपनाने के लिए बहुत कुछ किया जा चुका था। पोप एक बार फिर उग्र और उत्साही हो गये। रोम के चर्च के सभी धर्माचार्यों में भी उत्साह फैल गया। विरोधियों को अपने पन्थ में लौटाने के लिए एक जैसुइट संघ की रचना हुई। प्रतिरोधियों की संघ-शक्ति ने जर्मनी में बहुत कुछ काम किया था, अब उनके प्रयत्न इंग्लैण्ड पर केन्द्रित हुए।

इन सब आघातों के विरुद्ध इंग्लैण्ड की रक्षा की कुंजी थी उसका राज सिंहासन। जब तक एलिजेबेथ जीवित थी इस धर्म परिवर्तन का कोई डर नहीं था। यदि उसका उत्तराधिकारी कैथलिक हो तो भविष्य आशंकामय हो जाता, किन्तु यदि वह प्रोटेस्टेन्ट हो तो सब कुछ सुरक्षित और सुदृढ़ था। पहली आशंका का स्रोत कैथलिक राष्ट्रों की सहायता प्राप्त करने वाली स्काट रानी थी। उस रानी की मृत्यु के बाद इस आशंका ने एक नया रूप धारण कर लिया। यह स्पेन के नेतृत्व में प्रतिरोधियों द्वारा खुले युद्ध का निमन्त्रण था। यह विरोधी शक्तियाँ इंग्लैण्ड के लिए बहुत अधिक प्रबल थीं।

कैथलिक उद्देश्य प्राप्ति के लिए एलिज़बेथ की मृत्यु आवश्यक न होकर भी उपयोगी समझी जाती थी। प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बियों के लिए तो उसका जीवन अमूल्य था। और प्रोटेस्टेन्ट राजकुमार के साथ उसका विवाह आवश्यक था ताकि उसका उत्तराधिकारी भी प्रोटेस्टेन्ट हो। किन्तु इस मामले में उसकी राजनीति बड़ी विलक्षण और विस्मयजनक निकली। वह ब्याह की आशा तो बँधा देती, किन्तु किसी से ब्याह न करती थी। इस ओर यदि उसका थोड़ा बहुत झुकाव था भी तो वह बारम्बार फ्रान्स के एक राजकुमार की ओर होता था, किन्तु कैथलिक होने के कारण रानी की प्रजा उसको स्वीकार न करती थी।

फ्रान्स के साथ सन्धि—परन्तु इस विषय में एलिज़ेबेथ अँगरेज प्रजा से अधिक बुद्धिमान निकली। वह जानती थी कि स्पेन के विरोध के लिए फ्रान्स से सन्धि करना सर्वोत्तम है। फ्रान्स कैथलिक धर्मावलम्बी होते हुए भी प्रतिरोध सन्धि में सम्मिलित न था। फ्रान्स स्पेन से भयभीत था, इसलिए वह इस सन्धि में सम्मिलित नहीं हुआ। फ्रान्स को अपनी ओर रखने के लिये सब से सरल साधन उसको विवाह की आशाओं में फँसाये रखना था। स्पेन भी एलिजबेथ के विरुद्ध तब तक कुछ न कर सकता जब तक कि उसे यह भय रहता कि रानी कहीं फ्रान्स के साथ सन्धि न कर ले। यदि कहीं वह अपना विवाह कर लेती तो एक आशायुक्त रोक का मूल्य जाता रहता। इसलिए फ्रान्स के साथ छलनात्मक प्रेम प्रस्तावों द्वारा एलिज़बेथ ने स्पेन को चुप और फ्रान्स को अपनी ओर मिलाये रखा। फ्रान्स के साथ इस व्यवहार का उसने मरते दम तक निर्वाह किया। यह मित्रता कठिनतम परिस्थिति पड़ने पर भी उसकी सहायता रही। अन्ततोगत्वा स्काटलैंड से उसे एक प्रोटेस्टेन्ट उत्तराधिकारी भी मिल गया।

इस प्रकार एलिजबेथ का सारा शासन प्रतिरोधियों के विरोध का इतिहास है। सुविधा के लिए चार भागों में इस शासन का वर्णन करना अच्छा होगा।

पहला अंश स्काट पक्ष (१५५८-६८ ई०) से शुरू होता है। दस बरस के इस काल का अन्त उस समय हुआ जब स्काटलैंड की रानी मेरी ने इंग्लैंड में शरण लेकर एलिजबेथ को आत्म-समर्पण कर दिया।

दूसरा अंश षड्यन्त्रों का युग (१५६८-८७ ई०) है। इन सबका एक ही उद्देश्य था—मेरी को मुक्त कराना, उसका किसी कैथलिक राजकुमार के साथ विवाह कराना, और उसे एलिजबेथ के स्थान पर इंग्लैंड का राजसिंहासन दिलाना। एलिजबेथ की मृत्यु तक किसी उत्तराधिकारी की आवश्यकता न थी, इसलिए बहुत से षड्यन्त्रों का उद्देश्य एलिजबेथ का निधन करना या कराना था। मेरी के वध के साथ इन सब षड्यन्त्रों का अन्त हो गया क्योंकि उसके बाद उनका कोई आधार ही नहीं रह गया।

तीसरा अंश स्पेन के आरमेडा (१५८८ ई०) की हार के साथ समाप्त हुआ। इस बार प्रतिरोध संघ की शक्ति ने खुले युद्ध की शरण ली किन्तु असफल रहा।

चौथा अंश एलिजबेथ के अन्तिम शासनकाल का वर्णन है। (१५८८-१६०३ ई०) इस काल में स्पेन के युद्ध में सफलता प्राप्त हुई। इसी सम्बन्ध में जहाज़रानी का नवीन उत्साह, समुद्री योद्धाओं के कारनामे और उपनिवेश-स्थापन के आरम्भिक प्रयत्नों का भी वर्णन संगत है।

स्काट पक्ष का विवरण सब के पहले आता है। इसे समझने के लिए स्काटलैंड के इतिहास का परिचय आवश्यक है। स्काटलैंड में भी इंग्लैंड की ही भाँति एक निराला पुनर्विधान प्रकट हुआ। रोम-विरोधी भावनाओं का स्वागत करने

और तदनुकूल नीति का अवलम्बन करने वाला पहला बड़ा देश इंग्लैंड था; परन्तु स्काटलैंड वह पहला देश था जिसने अपने राजा के विरुद्ध भी राजनीतिक और धार्मिक पुनर्विधान की घोषणा की। स्काटलैंड के पुर्विधान की यही विशेषता उसे विशेष महत्वपूर्ण बना देती है।

## § २—स्काटलैंड और अभागा स्टुअर्ट वंश

जब से एडवर्ड प्रथम की इंग्लैंड और स्काटलैंड को संयुक्त राष्ट्र बनाने की चेष्टाएँ असफल हुई थीं, तब से दोनों देशों का एक दूसरे पर कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। इन दोनों पड़ोसी राज्यों में सीमाओं पर बराबर युद्ध होते रहे। फ्रान्स को साथ देने की नीति पर स्काटलैंड दृढ़ रहा; इसलिए परिणाम स्वरूप इंग्लैंड और स्काटलैंड में युद्ध होते रहे जिन में प्रायः स्काटलैंड की हार हुई। एकता की ओर कुछ उन्नति नहीं हुई। अब दोनों देशों की एकता का समय आ गया था। समान धर्म इस एकता का आधार था और धार्मिक सहानुभूति दोनों को एक दूसरे के निकट खींच रही थी। संयोग और एलिजेबेथ की बुद्धिमानी ने जेम्स प्रथम के रूप में इस ऐक्य का एक अवसर उपस्थित कर दिया। इसलिए इस ऐक्य का रहस्य समझने के लिए स्काटलैंड की पिछले दो सौ बरस की नीति और सामाजिक स्थिति पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा।

नार्थम्पटन की सन्धि के बाद केवल एक वर्ष जीवित रह कर १३२९ ई० में राबर्ट ब्रूस की मृत्यु हो गयी। मैलरोज के संसार-प्रसिद्ध एबी में उसका शव दफ़न किया गया। उसका पुत्र डेविड जो केवल चार वर्ष का था राजा हुआ।

प्रारम्भिक बातें—इस अध्याय का उद्देश्य डेविड द्वितीय और स्टुअर्ट राजाओं के शासन का विस्तृत विवरण नहीं, वरन उस युग की उन विशेषताओं का सिंहावलोकन मात्र है, जिनके कारण इंग्लैंड, स्काटलैंड का निकट पड़ोसी होने से वहाँ की राजनीति पर इतना गहरा प्रभाव डाल सका; दूसरे, इंग्लैंड से दोनों की शत्रुता रहने के कारण स्काटलैंड की नीति फ्रान्स के साथ मेल रखने में अचल रही और तीसरे स्काटलैंड की अनियन्त्रित गृह दशा के कारण २०० वर्ष तक बाहरी आक्रमणों और घर के विद्रोहों से स्काटलैंड की शक्ति निर्बल बनी रही। इस के मुख्य कारण थे वहाँ के प्रबल अमीर और लड़ाकू हाईलैंडर जो अपने देश के राजाओं को बराबर परेशान करते रहे और इस प्रकार देश की उन्नति में बाधक रहे।

डेविड द्वितीय के शासन में बाहरी आक्रमण और गृह-विद्रोह दोनों सक्रिय रहे। राबर्ट की मृत्यु के बाद जॉन के पुत्र एडवर्ड बेलियल और अधिकार-च्युत अमीरों ने अपनी जागीरें प्राप्त करने के लिए अन्तिम प्रयत्न करना चाहा। डपलिन-मूर पर उन्होंने १३३२ ई० में राजा की सेना को परास्त किया और एडवर्ड बेलियल राजा हो गया। चार महीने के बाद वह स्काटलैंड से निकाल दिया गया। १३३३ ई० में एडवर्ड तृतीय उत्तर की ओर बढ़ा और उसने हेलिडन हिल पर स्काट

सेनाओं को परास्त किया। अँगरेज़ों ने सारे देश पर अधिकार कर लिया। एडवर्ड बेलियल लौट आया और बालक डेविड सुरक्षा के लिए फ्रान्स भेज दिया गया। इसी समय एडवर्ड तृतीय फ्रान्स के युद्धों में व्यस्त हो गया। १३३७ ई० में बैलियल निकाल दिया गया और धीरे धीरे स्काटलैंड ने अपने खोये हुए किले जीत लिये।

एडवर्ड तृतीय की स्काट नीति का मुख्य लक्ष्य स्काटलैंड और फ्रान्स के मेल को भंग करना था, क्योंकि इस के रहते फ्रान्सीसी युद्धों के अवसर पर स्काट-आक्रमण की आशंका बनी रहती थी। स्काटलैंड को अधीन करने के अब तक के सब प्रयत्न असफल रहे, इसलिए उसने और एक नीति सोची। उसने स्काट अमीरों से यह प्रस्ताव किया कि यदि वे फ्रान्स का साथ छोड़ दें तो वे उन्हें नीदरलैंड प्रदेश, जो उसे बैलियल ने १३३४ ई० में दिये थे, वापिस दिला देगा। सन् १३४१ ई० में डेविड द्वितीय फ्रान्स से लौट आया। वह इंग्लैंड के आक्रमणों की आशंका के कारण एक विचित्र उलझन में था। यदि इंग्लैंड ने फ्रान्स को जीत लिया तो फिर स्काटलैंड को हस्तगत करने से उसे कोई शक्ति न रोक सकेगी और यदि वह फ्रान्स में असफल रहा, तो भी अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए वह स्काटलैंड पर आक्रमण अवश्य करेगा। अन्त में डेविड ने फ्रान्स का साथ देने का निश्चय किया और १३४६ ई० में जब एडवर्ड ३य कैले पर घेरा डाले हुए था, उसने इंग्लैंड पर चढ़ाई की। डरहम के पास नेवाइल क्रास के युद्ध में वह हार कर गिरफ्तार हो गया और सब नीदरलैंड प्रदेश अब फिर इंग्लैंड के हाथ आ गये।

डेविड ११ वर्ष तक इंग्लैंड में बन्दी रहा। दस बरस में एक लाख मार्क्स देने का वचन देने पर वह १३३७ ई० में छोड़ दिया गया। इतना धन जुर्माने में देना स्काटलैंड के ऊपर बड़ा भार था। परन्तु उसने इसे देना मंजूर कर लिया क्योंकि राजा को मुक्त कराये बिना देश स्वतन्त्र नहीं हो सकता था। वास्तव में राजा डेविड का मूल्य तो १ मार्क भी न था। अपने चचा और उत्तराधिकारी राबर्ट दि स्टिवर्ड के प्रति घृणा के कारण उसने अँगरेज राजकुमार को उत्तराधिकारी बनाने का प्रस्ताव किया; पर स्काट पार्लियामेन्ट ने १३६४ ई० में इसे अस्वीकृत कर दिया। उस समय से फिर स्काट स्वाधीनता के प्रति कोई आशंका न रही।

ओटरबर्न और होमिल्डन की लड़ाइयाँ—चौदहवीं शती के उत्तरार्ध में सीमाओं पर निरन्तर युद्ध होते रहे। इनमें सब से महत्वपूर्ण घटना चाँदनी रात में ओटरबर्न का युद्ध था जिसमें जेम्स अर्ल ऑव डगलस मारा गया और दोनों पर्सी राल्फ और हेनरी हाटस्पर ( १३८८ ई० ) बन्दी हुए। किन्तु इस समय और इसके बाद लंकास्ट्रियन राजाओं के राज्यकाल में भी इंग्लैंड की ओर से स्काटलैंड विजय के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं हुआ। सन् १४०२ ई० में होमिल्डन की लड़ाई ही उस समय की एक उल्लेखनीय घटना है जिसमें चौथे अर्ल आर्चिबल्ड डगलस के उत्तर में आक्रमण करने पर पर्सियों ने उसे हराकर ओटरबर्न का बदला

चुरा लिया। इस लड़ाई का परिणाम इंग्लैंड के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसने पर्सी ग्लेंडोवर, डगलस और मार्टिमर के उस संघ की सृष्टि की, जो हेनरी चतुर्थ को परेशान करता रहा। परन्तु स्काटलैंड पर इस लड़ाई का इसके सिवाय और कोई प्रभाव न पड़ा कि इंग्लैंड के धनुर्धर अब भी उनसे कहीं शक्तिशाली थे। स्काट लोग फ्रान्सीसियों के मेल पर अटल रहे और १४४२ ई० में उनकी सहायता से हेनरी पंचम और बेडफर्ड के विरुद्ध उन्होंने फ्रान्स सहायता भेजी। बोजी में डगलस की विजय हुई ( १४२२ ई० ) पर वह वारनेई में परास्त होकर मारा गया। स्टिवर्ड ऑव डार्नले "हैरिंग्स के युद्ध" मे मारा गया। अन्य स्काट ओर्लियाँ की कुमारी के पक्ष में लड़े। हेनरी षष्ठ के शासन में इंग्लैंड फ्रान्स के साथ लड़ाइयों में इतना व्यस्त रहा कि वह स्काटों के इन विरोधी कार्यों की ओर ध्यान न दे पाया। फिर गुलाबों का युद्ध आ गया। इसलिए ट्यूडर काल तक स्काटलैण्ड इंग्लैण्ड के हस्तक्षेप से मुक्त रहा; किन्तु फिर भी उसकी आन्तरिक आपत्तियाँ विचारणीय हैं।

**स्टुअर्ट वंश पर आपत्तियाँ**—डेविड द्वितीय की मृत्यु १३७० ई० में हुई। उसका कोई उत्तराधिकारी न था। राजमुकुट उसकी पुत्री मार्जरी के पुत्र ब्रूस को मिला। रावर्ट द्वितीय के नाम से वह गद्दी पर बैठा। इस प्रकार स्काटलैंड में स्टुअर्ट का पदार्पण हुआ। उसके छः वंशजों ने स्काटलैंड पर राज्य किया। उनमें से केवल एक 'रावर्ट तृतीय' ने शान्ति पूर्वक जीवन का अन्त काल देखा। उसका भी एक पुत्र बड़ी निर्दयता के साथ मार डाला गया और दूसरा इंग्लैण्ड में बन्दी रहा। इन राजाओं में से तीन जीवन के मध्य में ही मृत्यु की भेंट हुए। जेम्स प्रथम मार डाला गया। जेम्स द्वितीय की मृत्यु राक्सबर्ग के घेरे में तोप फट जाने से हो गयी। जेम्स तृतीय क़त्ल करा दिया गया। जेम्स चतुर्थ फ़्लाडेन के युद्ध में मारा गया। जेम्स पंचम हृदय रोग से मर गया। फिर उसकी पुत्री सबसे अधिक अभागिनी रही। उसे १६ वर्ष के कारावास के बाद सूली पर चढ़ना पड़ा इसके समान अनवरत विनाश का क्रम और किसी देश के इतिहास में न मिलेगा। राजाओं के साथ देश का भी दुर्भाग्य था। राजाओं की शीघ्र मृत्यु के कारण नाबालिगों का राज्यारोहण भी कम दुर्भाग्य का कारण न था। जेम्स प्रथम ११ वर्ष का था, जेम्स द्वितीय ६ वर्ष का, जेम्स तृतीय ८ वर्ष का और जेम्स चतुर्थ १८ वर्ष का। जेम्स पंचम २ वर्ष का भी न था और उसकी पुत्री मेरी राज्यारोहण के समय एक सप्ताह की न थी। इस प्रकार एक नाबालिग के बाद दूसरा नाबालिग शासक और एक सरपरस्ती के बाद दूसरी सरपरस्ती का क्रम जारी रहा। महत्वाकांक्षा और अत्याचार का तो मानों द्वार खुला हुआ था। हर वर्ष और हर राज्यकाल में विद्रोह के बाद युद्ध और युद्ध के बाद विद्रोह होता रहा। लोगों के घर जला दिये जाते, खेत नष्ट कर दिये जाते और फौजों की चढ़ाई, आक्रमण, फाँसी, हत्या आदि अत्याचारों का ताँता बँधा रहता। यों राष्ट्रीय स्वाधीनता अच्छी वस्तु अवश्य है; किन्तु सुव्यवस्था

और सुशासन के बिना उसका कोई उपयोग नहीं, क्योंकि कोई राजा अपनी प्रजा की उन्नति के लिए उस समय तक कोई व्यवस्था नहीं कर सकता जब तक कि उसके राज्य का सारा धन अमीरों को दबाने में ख़र्च होता रहे।

राबर्ट तृतीय पंगु था। वह घोड़े पर भी नहीं चढ सकता था। इसलिए वह उस युग के योग्य राजा न था। वह दयालु और उदार प्रकृति का था इससे और भी हानि हुई। शासन सूत्र उसके भाई ड्यूक ऑव अल्वेनी के हाथ में आ गया था। वह डगलस के साथ राबर्ट के ज्येष्ठ पुत्र राथसे की गिरफ्तारी की फ़िक्र में था और सम्भव है जेलखाने में उसकी मृत्यु भी इन्हीं के कारण हुई हो कनिष्ट पुत्र जेम्स इंग्लैंड में बन्दी कर लिया गया था (१४०६ ई०)। शीघ्र ही राबर्ट तृतीय की मृत्यु हो गयी। इसलिए अल्वेनी के हाथ में आमरण शासन सूत्र रहा। (१४२० ई०)। १४२४ ई० में जेम्स ने इंग्लैंड की कैद से छूट कर ड्यूक ऑव मारडक पर उस समय सरपरस्त था तथा उसके दोनों पुत्रों पर चोट की। उन्हें फाँसी दे दी गयी और उनकी रियासत राज्य द्वारा ज़ब्त हो गयी। इसके बाद विरोधी हाइलैण्ड सरदारों को फाँसी दी गयी, डगलस को गिरफ़्तार किया गया और स्ट्रैटहर्न की जागीर जब्त कर ली गयी। अन्तिम घटना घातक सिद्ध हुई; क्योंकि स्ट्रैटहर्न के उत्तराधिकारी सर राबर्ट ग्रेहम ने हाइलेन्ड्स में राजा की हत्या का षड्यन्त्र रचा। इसके लिए उपयुक्त अवसर भी शीघ्र आ गया। जेम्स क्रिसमस मनाने के लिए पर्थ गया और ब्लैक फ्रायर्स के मठ में ठहरा। जाते समय उसे सूचित किया गया कि वह जीवित नहीं लौट सकता; किन्तु उसने इसकी कोई परवाह न की। रात में षड्यन्त्र कारी ताले तोड़ कर जुट पड़े। राजा, रानी और परिचारिकाओं के साथ बैठा था। उसने धरातल का एक तख्ता तोड़ कर तहखाने की शरण ली। इस तहखाने का एक दरवाजा बाहर की ओर खुलता था और राजा ने टैनिस की गेंद अन्दर जाने से रोकने के लिए उसे बन्द करा दिया था। ऊपर परिचारिकाओं ने द्वार बन्द रखने का प्रयत्न किया और कैथराइन डगलस ने चटखनी की जगह बाँह डाल कर उसे बन्द भी रक्खा परन्तु ग्रेहम और उसके साथी घुस पड़े। राजा को न पाकर वह लौट ही रहे थे कि दुर्भाग्य से उसकी आवाज नीचे सुनायी दी। ग्रेहम तहखाने में कूद पड़ा और उसने राजा को वहीं मार डाला।

**जेम्स द्वितीय और डगलस वंश**—जेम्स द्वितीय के शासन में ब्लैक डगलसों का उत्थान और पतन हुआ। स्काटलैण्ड के इतिहास में इनका वही स्थान है जो इंग्लैण्ड के इतिहास में नेवाइलों का। डगलस नेवाइलों की भाँति ही विप्लवकारी और विश्वासघाती थे। किन्तु स्काट राजाओं की नीति उनके प्रति रानी मारग्रेट और एडवर्ड चतुर्थ से कम सतर्क न थी।

जेम्स द्वितीय छः वर्ष का बालक था। पाँचवाँ अर्ल आर्चिबाल्ड उसका सरपरस्त बना। १४३९ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके समय में कोई विशेष घटना

न हुई। डगलस की जागीर विलियम को मिली, किन्तु वह सरपस्त नहीं बन सका। राजा विलियम सत्रह वर्ष का था। उसकी स्थिति ठीक वैसी ही थी जैसी कनिष्ठ रिचर्ड नेवाइल की। डगलस के अर्ल, ड्यूक ऑव ट्युरेन, की स्काटलैण्ड में काफी जागीर थी। ५ हजार सशस्त्र और सुसगठित सेना उसके इशारे पर थी। राबर्ट तृतीय का पौत्र होने के कारण राज्य पर भी उसका दावा था। और इस प्रकार स्काटलैण्ड में वह सब से अधिक शक्तिशाली सरदार था। चान्सलर क्रिप्टन और अभिभावक लिविंग्स्टन जो पहले आपस में लड़ते थे अब एक हो गये और उन्होंने डगलस के फँसाने के लिए एक जाल रचा। वह और उसका भाई डेविड राजा से मिलने एडिनबरा कासिल में निमन्त्रित किये गये और भोजन करते समय उन्हें गिरफ्तार कर कत्ल कर दिया गया (१४४० ई०)।

कई बरस बाद डगलस घराने का नेतृत्व एक दूसरे विलियम के हाथ में आया। पहले इस अर्ल के साथ जेम्स द्वितीय का मित्र भाव था किन्तु डगलस; क्रिप्टन, लिविंग्स्टन और क्रॉफर्ड के अर्ल के झगड़ों ने देश को त्रस्त कर रखा था। अन्त में जेम्स ने क्रिप्टन के अत्याचार का अनुकरण कर स्टर्लिंग में डगलस को निमन्त्रित किया। साथ भोजन करने के बाद राजा ने उस पर रौस और क्राफर्ड के अर्लों के साथ विद्रोही दल में सम्मिलित होने का दोषारोपण कर उस दल को छोड़ देने के लिए कहा। डगलस ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस पर राजा ने उसके छुरी भोंक दी। नवें अर्ल डगलस का भाई जेम्स स्वभावतः हेनरी षष्ठ के साथ विद्रोह और षड्यन्त्र करने में फँस गया। उसे एक बार क्षमा कर दिया गया। किन्तु उसने फिर अँगरेजों और हाईलैंडरों से गुप्त मन्त्रणा कर एक सेना संगठित की। ऐस्कडेल के पास आर्किनहोम पर वह तितर-बितर कर दी गयी और जेम्स इंग्लैण्ड भाग गया। इस प्रकार ब्लैक डगलस वंश का पतन हो गया। किन्तु राजा अभी उनसे मुक्त न हुआ था। उसकी विजय उन्हीं की दूसरी शाखा लाल डगलस, ऑगस के अर्लों की सहायता से हुई थी। वे भी उतने ही असहनीय सिद्ध हुए जितनी पहली शाखा।

जेम्स तृतीय (१४६०-१४८८ ई०)—सन् १४६० में जेम्स द्वितीय की राक्सबर्ग में बम फट जाने से मृत्यु हो गयी। जेम्स तृतीय उस समय आठ वर्ष का था, इसलिए दूसरी सरपरस्ती स्थापित हुई। सेन्ट एंड्रयूज के बिशप कनेडी ने जो अपने समय का एक ही सच्चा और देशभक्त राजनीतिज्ञ था, लंकास्ट्रियन का पक्ष लिया। एडवर्ड चतुर्थ ने राजमाता को अपनी तरफ फोड़ लिया और निर्वासित डगलस तथा हाईलैंडरों से सन्धि की। इस प्रकार गुलाबों के युद्ध के प्रतिघात द्वारा स्काटलैंड और सीमाओं पर और अधिक युद्ध हुए। बड़े होने पर जेम्स का अपने दोनों भाइयों से झगड़ा हो गया। बड़े राजकुमार ने इंग्लैंड से सन्धि कर ली और एडवर्ड चतुर्थ के प्रतिनिधि के रूप में राज्यसिंहासन पर अपना अधिकार प्रदर्शित करने के लिए एक अँगरेजी सेना के साथ स्काटलैंड पर चढ़ आया। जेम्स ने अपने

अमीरों से सहायता माँगी और वे डगलस के अर्ल आर्चिबाल्ड डगलस की अध्यक्षता में एकत्र हुए; किन्तु शत्रु से लड़ने के पूर्व उन्हें आपस का झगड़ा तय करना ज़रूरी था। जेम्स शान्तिप्रिय मनुष्य था। राबर्ट कोकरेन नाम के एक राजा से उसकी मित्रता थी परन्तु अमीर लोग उससे घृणा करते थे। वे उसे दबाने के लिए किसी तदबीर की खोज में थे। अंगस ने अगुवा बनने का उत्तरदायित्व लिया। उसने कोकरेन को बन्दी कर लॉडर ब्रिज पर फाँसी लटकवा दिया। जेम्स को भी बन्दी बना कर एडिनबॉर कासिल भेज दिया गया। अंगस और उसके मित्रों ने अल्बेनी के साथ मित्रता कर ली। परन्तु अल्बेनी और अंगस में झगड़ा हुआ। अल्बेनी कुछ देर राजा की ओर झुकता दिखायी दिया किन्तु शीघ्र विद्रोह हो जाने के कारण उसने इंग्लैण्ड से गुप्त मन्त्रणा की और सन् १४८३ में वह इंग्लैण्ड भाग गया। अगले वर्ष वह और डगलस अँगरेजी सेना लेकर डम्फ्रीशायर तक चढ़ आये, किन्तु हार गये। अल्बेनी फ्रान्स भाग गया और १४८५ ई० में मारा गया। तीन बरस बाद डगलस और दक्खिनी अमीरों ने राजा के विरुद्ध एक नया षड्यन्त्र रचा। सन् १४८८ में राजा और उत्तरी अमीरों ने स्टर्लिङ्ग के पास सोचीबर्न में सामना किया; किन्तु उनकी हार हो गयी। युद्ध के बाद जेम्स मार डाला गया।

जेम्स चतुर्थ (१४८८-१५१३ ई०)—जेम्स चतुर्थ के शासन का आरम्भ अपने पिता से विद्रोह की अमंगल-सूचक घटना से हुआ था; परन्तु परिस्थिति कुछ सुधरती सी दिखायी दी। राजा की शक्ति बढ़ने लगी और उसने नियमों का पालन कराना शुरू किया। इससे आन्तरिक अव्यवस्था शान्त हो गयी। हेनरी सप्तम की बड़ी लड़की मारग्रेट ट्यूडर के साथ जेम्स का विवाह हो जाने से इंग्लैंड से सन्धि हो गयी और सीमाओं पर के युद्ध बन्द हो गये। पच्छिम और उत्तर में क्रामवेल और हन्टले के घरानों की शक्ति बढ़ाकर हाइलैंड को कब्जे में लाया गया। इस तरह देश की समृद्धि बढी और व्यापार की उन्नति हुई। इसलिए यह राज्यकाल स्काटलैंड के इतिहास में 'स्वर्ण युग' कहलाता है। हेनरी सप्तम के समय तक तो सब ठीक रहा, परन्तु जब हेनरी अष्टम राजा हुआ तो व्यक्तिगत विषयों पर झगड़ा आरम्भ हो गया। फ्रान्स के साथ की पिछली सन्धियों ने जेम्स को फिर आकर्षित कर रखा था; इसलिए जब हेनरी ने फ्रान्स के विरुद्ध एक युरोपीय संघ की रचना की तो जेम्स ने विरोध किया और फलोडिन की लड़ाई में हार कर अपनी सारी शक्ति खो दी ( १५१३ ई० )। जेम्स के साथ बहुत बड़ी सेना थी। हाइलैंड लेनोक्स, आर्गिल और हन्टली की अध्यक्षता में, सीमाओं की सेना होम और हेबर्न के नेतृत्व में थी। तथा पर्थशायर के लोग क्राफर्ड और' एरोल के साथ थे। इस सेना ने ट्वीड नदी को पार कर कई सरहद्दी किलों पर अधिकार कर लिया और शेवियों के किनारे के दक्खिन टीलों पर जम गयी।

अँगरेज जनरल सरे के पास स्काटों से कम सेना थी। वह ट्विजेल ब्रिज पर टिल नदी पार कर जेम्स की सेना के पीछे आ गया। जेम्स का विचार था कि शत्रु बरविक

पर आक्रमण करने वाला था। फिर भी स्काट सेना की स्थिति ऊँची जमीन पर होने के कारण मज़बूत थी। अँगरेज सेना तीन दिन की थकी हुई थी और उसे पीने को बियर न मिली थी। स्काट राजा सैनिक दाँवपेच न जानता था। किन्तु शत्रु को पीछे देख उसने सेना बढ़ा दी। अँगरेजी सेना का दाहिना भाग स्काट सेना के बांये भाग से भिड़ गया। इस मोर्चे पर स्कॉट जीत में रहे। होम और हन्टली ने एडमंड होवर्ड और टन्स्टल की सेना को छिन्न भिन्न कर दिया। इसके बाद बीच वाली सेनाओं की मुठभेड़ हुई और जेम्स ने पर्सियों पर आक्रमण किया। अँगरेज़ी तोपखाने ने स्कॉट सेना की पंक्तियाँ बेध डालीं। स्काट तोपें काम में नहीं लायी जा सकीं। स्कॉट सेना के दक्खिनी मोर्चे पर अँगरेज पूर्णतः सफल हुए। स्टेन्ली ने थोड़े से धनुर्धरों को लेकर लैनोक्स और आर्गिल के हाईलैंडरों को परास्त कर दिया। सरदार मारे गये और उनकी सेना भाग गयी इस प्रकार दोनों सेनाओं का एक एक पक्ष टूट गया। मध्य भाग में जो युद्ध हुआ उसका परिणाम अनिश्चित रहा। होम की सरहद्दी सेना तितर बितर होकर लूटपाट मचाने लगी, परन्तु स्टैन्ली की सेना ने जेम्स के पार्श्व पर हमला कर दिया। सब तरफ से घिर कर भी जेम्स और उसके सरदारों ने अन्त तक लड़ने का निश्चय किया। जेम्स का शरीर तीरों के घावों से छलनी हो रहा था फिर भी वह लड़ता रहा। उसके सरदारों ने भी अपने राजा की रक्षा में एक-एक करके अपने प्राण समर्पित कर दिये।

इस युद्ध में अँगरेज़ों को इतनी क्षति हुई कि उन्हें प्रातःकाल तक अपनी विजय और स्काट सेना के पलायन का ज्ञान न हुआ। स्काटलैंड के लिए तो फ्लोडेन की हार संघातक सिद्ध हुई। सरे का कार्य पूरा हो गया। अब आगे बढने की आवश्यकता न रही। स्काट सेना अब इतनी निर्बल हो गयी थी कि उस को दूसरी बार इग्लैंड पर आक्रमण करने योग्य बनने के लिए एक शताब्दी का समय लगा।

जेम्स पंचम (१५१३-१५४२ ई०)—जेम्स पंचम के शासन की नीति मुख्यतः जेम्स द्वितीय तथा तृतीय के शासन की पुनरावृत्ति थी। आन्तरिक विद्रोह फिर उठ खड़े हुए। राजा पर अधिकार प्राप्त करने के लिए लड़ाके सरदार घरानों ने देश को जुदे जुदे दलों में विभाजित कर रखा था हेनरी अष्टम और उसके मन्त्रियों ने स्काटलैंड में अँगरेज विद्रोहियों का एक दल खड़ा कर दिया जिसमें पुनर्विधान के कारण भी कुछ कम वृद्धि नहीं हुई। अब इंग्लैंड की दुर्व्यवस्था और भी बढ़ गयी। ट्यूडर राजा रोम का शत्रु हो गया तो स्टुअर्ट राजा को अपने प्राचीन विश्वासों पर दृढ़ रहने में ही अपना हित दिखायी दिया।

फ्लॉडेन की हार के बाद स्काटलैंड के शासकों में रानी मारग्रेट ट्यूडर रेड डगलसों का शिरोमणि अगस और हैमिल्टनों का सरदार अर्न बचे थे। एक वर्ष के भीतर रानी ने अगस से विवाह कर लिया और अब स्काटलैंड में डगलस अँगरेज़ी दल बन कर हेनरी अष्टम से गुप्त मन्त्रणा करते रहे। स्काटलैंड से न्याय

नीति उठ सी गयी। १५२० ई० का झगड़ा इसका प्रमाण है। अंगस और अर्न एडिनबरा में थे। उन्हें पार्लियामेन्ट में अपने विरोध पर विचार करने के लिए उपस्थित होना था। दोनों अपने अपने सैनिक लाये थे। आर्कबिशप बीटन ने शान्ति का सन्देश दिया। उसने अपने हैमिलटन बन्धुओं का पक्ष लिया और भाषण के आवेश मे छाती ठोकी जिससे भीतर छिपे हुए लोहत्राण की झनकार हुई। ग्वेन डगलस ने व्यंग करते हुए कहा,'भगवन आपको तो अन्तःकरण तक झनकार रहा है।' सर पैट्रिक हैमिल्टन ने भी शान्ति का प्रयास किया। उसके एक नामधारी ने उस पर कायरता का अभियोग लगाया। सर पैट्रिक को क्रोध आ गया और वह अगस के दल पर टूट पड़ा। भयानक युद्ध छिड़ गया और हैमिल्टनों का दल छिन्न भिन्न हो गया।

फ्रान्स स्काटलैंड के इस अँगरेजी दल की शक्ति से बहुत विक्षुब्ध था। १५१५ ई० में ड्यूक ऑव अल्बेनी, जो जेम्स तृतीय के शासनकाल के षड्यन्त्रकारी ड्यूक का पुत्र तथा अपने को स्काटलैंड के सिंहासन का अधिकारी बतलाता था, राजा का सरपरस्त बनकर स्काटलैन्ड आया। मारग्रेट और अगस इंग्लैन्ड भाग गया। किन्तु कुछ वर्ष बाद लौटने पर आपस मे घोर शत्रु हो गये। अल्बेनी १५२४ ई० में स्काटलैंड छोड़ कर चला गया और राजा अपनी माँ मारग्रेट के दबाव मे आ गया। जिसने अंगस को तलाक दे दी थी। अगस ने राजा को पकड़ लिया ब्रांगजहोम के वाल्टर स्काट तथा अन्य लोगों ने उसे डगलस के पंजों से छुड़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु अगस ने केरों और होम की सहायता से विजय प्राप्त की और बालक राजा को अपनी रक्षा के लिए कृतज्ञता प्रदर्शित का बहाना करना पडा। अन्त में वह अपनी माँ के पास स्टर्लिंग भाग गया और डगलस से घृणा करने वाले सब सरदार उसके साथी हो गये। अगस को इंग्लैंड निर्वासित कर दिया गया जहाँ उसे राजा हेनरी से पेन्शन मिलने लगी। वह हेनरी की राय से स्काटलैंड के बिशप बीटन अथवा स्वयम् राजा जेम्स को गिरफ्तार करने का षड्यन्त्र रचता रहा।

जेम्स पंचम के राज्य के अन्तिम १५ वर्ष समृद्धिशाली रहे। इंग्लैंड के साथ सन्धि रही और इसके कारण आन्तरिक षड्यन्त्र बन्द रहे। सीमा पर भी शान्ति रखने का प्रयत्न किया गया और कई दुष्ट सरहद्दी सरदारों को फाँसी लगवा दी गयी। हाइलैंड प्रदेश में भी जेम्स ने दौरा किया। कई जगह सेनाएँ नियुक्त की गयीं। कई सरदारो को जेल में बन्द कर दिया गया और आइल की जागीर जब्त कर ली गयी। चर्च के सुधार की बातचीत हुई और ऐडिनबरा में एक कॉलिज ऑव जस्टिस की स्थापना हुई। सन्धि होते हुए भी हेनरी और जेम्स एक मत न थे। रोम से विद्रोह कर लेने के कारण हेनरी जेम्स को रोम से पृथक् करना चाहता था; परन्तु जेम्स फ्रान्स और रोम का साथ छोड़ना नहीं चाहता था। उसकी विवाह-नीति ने हेनरी को और भी नाराज़ कर दिया। हेनरी अपनी पुत्री मेरी का विवाह उसके साथ करना चाहता

था। परन्तु उसने फ्रान्सिस प्रथम की पुत्री मेडिलिन से विवाह कर लिया। पहली रानी की मृत्यु के बाद जेम्स फिर फ्रान्स गया और उसने मेरी आव गीज से विवाह किया। इस कुमारी पर हेनरी की पहले से आँख थी। हेनरी को अब एन ऑव क्लीव्स से सन्तोष करना पड़ा। फिर जेम्स ने अपने चाचा हेनरी से मिलने से भी इनकार कर दिया। तब ये दोनों राजा युद्ध की ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगे। अंगस के नेतृत्व में अँगरेजी सेना ने आक्रमण किया, परन्तु टेवियेडेल पर वह बुरी तरह परास्त हुआ। उत्तर में जेम्स ने अपने अमीरों को फैलामेर में एकत्र किया। (१५४२ ई०); किन्तु वे उसके साथ इंग्लैंड पर आक्रमण करने के लिए तैयार न थे। सीमान्त वाले सदा लड़ने को तैयार रहते थे, इसलिए राजा ने उन्हें एकत्रित कर ओलियर सिंक्लेयर की अध्यक्षता में रख दिया। परन्तु स्काट अमीर उसके नेतृत्व से घृणा करते थे। व्हार्टन को इस आक्रमण की सूचना पहले ही मिल गयी थी, इसलिए वह दो हजार सेना लेकर चल पड़ा। अमीर सेना का अध्यक्ष कौन बने, इसी पर अभी स्काट वादविवाद कर रहे थे कि अँगरेज घुड़सवारों के एक छोटे से दस्ते ने उन पर आक्रमण कर दिया। स्काट एक ओर दलदल के बीच फँस गये और उनकी पूर्ण पराजय हुई। इस प्रकार सोलवे मास का युद्ध आरम्भ होने के पूर्व ही समाप्त हो गया। स्काट सेना की सारी तोपें नष्ट हो गयीं। बारह सौ आदमी गिरफ़्तार हो गये। अँगरेज़ों के केवल ७ आदमी मरे ( १५४२ ई० )।

इस पराजय के अपमान ने राजा जेम्स को विक्षुब्ध कर दिया। १५ दिन बाद उसके यहाँ एक पुत्री ने जन्म लिया। इसके एक सप्ताह बाद राजा की मृत्यु हो गयी।

इनके पाँचों जेम्स राजाओं का वृत्तान्त बड़ा लोमहर्षक है; किन्तु इतने आन्तरिक विद्रोहों के बाद भी स्काटलैंड जीवित रहा यह उसकी एकता और स्वातन्त्र्यप्रियता का प्रमाण है। १५वीं शती में जीवित रहने के साथ साथ स्काटलैंड की उन्नति भी हर प्रकार से हुई। उसके व्यापार की वृद्धि हुई, न्याय-व्यवस्था का भी विकास हुआ। सेन्ट एंड्र्यूज; ग्लासगो और ऐबरडीन जैसे तीन विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। इसके अलावा जेम्स राजाओं के समय में उस महान स्काट साहित्य की सृष्टि हुई जिसके अनुष्ठान में जेम्स प्रथम, राबर्ट हेनरीसन, विलियम डनबार, गैविन डगलस और एडवर्ड लिंडसे जैसे उत्कृष्ट पुरुषों के नाम आते हैं।

## § ३—स्काटलैंड में पुनर्विधान

स्काटलैंड में पुनर्विधान के परिणाम—पुनर्विधान के सम्बन्ध में स्काटलैंड के विषय में यह बातें याद रखने योग्य हैं। एक तो इसके द्वारा इँग्लैंड की रक्षा की व्यवस्था की एक दुर्बलता दूर हो गयी और यह भी उस समय जब कि इग्लैंड के ऊपर महान आपत्ति के बादल घिरे हुए थे। स्काटलैंड की सदा से फ्रान्स के साथ मैत्री रही और एलिज़ेबेथ के शासनकाल में कैथलिक स्काटलैंड को पुनर्विधान के प्रतिरोध के

आक्रमण का आधार बनाया जा सकता था। यदि कहीं नैपोलियन स्काटलैंड की मित्रता द्वारा उसे इंग्लैंड पर आक्रमण करने का साधन बना सकता, तो यह परिस्थिति इंग्लैण्ड के लिए कितनी भयावह होती, इसका तो अनुमान करने से भी रोमांच हो आता है। इस प्रकार यह ख़तरा एलिज़ेबेथ के समय में भी उतना ही संकटाकीर्ण था जितना कि जार्ज तृतीय के शासनकाल में होता। किन्तु पुनर्विधान के कारण स्काटलैंड के शत्रु को यह अवसर ही न दिया।

इंग्लैंड और स्काटलैंड का ऐक्य—पुनर्विधान ने दो पड़ोसी प्रदेशों की छोटी-छोटी शक्तियों को मिलाकर एक बड़ी शक्ति बना दिया। सोलहवीं शती के युरोपियन नीतिज्ञों के लिए इंग्लैंड एक द्वितीय श्रेणी की शक्ति थी जो सामान्यतः स्पेन के पीछे-पीछे चलती रहती थी। और इसी प्रकार स्काटलैंड फ्रान्स पर आश्रित था। स्काटलैंड में पुनर्विधान की लहर और इंग्लैंड में रानी एलिज़ेबेथ की नीतिकुशलता ने इन दोनों राज्यों को एक प्रोटेस्टेन्ट शक्ति बनाकर युरोपियन राज्यविधानों को पृथक श्रेणी में ला रखा और युरोप के अन्य राज्यों की दृष्टि में युरोपीय महाद्वीप का एक छोटा सा द्वीप होने की हैसियत से जो उत्कृष्ट और प्रबल राजनैतिक सत्ता उसे प्राप्त थी उसका पूरा-पूरा लाभ भी इंग्लैंड ने इसी बार उठाया।

अपने शासकों के विरोध करने पर भी पुनर्विधान की सफलता पूर्वक व्यवस्था करने का प्रथम उदाहरण स्काटलैंड ने ही उपस्थित किया। इस प्रकार यह पहला लोकनिर्मित पुनर्विधान था। दूसरे देशों की तरह यह राजकीय या राजनीतिक पुनर्विधान न था।

ये घटनाएँ बड़ी महत्वपूर्ण हैं। साधारणतया यह अनिवार्य सी जान पड़ती हैं। दोनों देशों में एक ही समय पुनर्विधान का श्रीगणेश हुआ इसलिए अपनी रक्षा के लिए दोनों देशों के सुधारवादियों का एक होना स्वाभाविक सा है। फिर भी आरम्भ में यह बहुत असम्भव सा प्रतीत होता था, क्योंकि दोनों देश एक दूसरे के घोर शत्रु थे और दोनों में सुधारों की रूपरेखा भी भिन्न-भिन्न थी। अगर हेनरी अष्टम स्काट सुधारवादियों को विद्रोही समझ सकता था तो अपने को पैगम्बरों का वंशज समझने के कारण वे भी उसे एक ही विपुलाकार दानव-देह में अहाब और नेबुकादनिज़ार का समन्वय समझते होंगे।

१५४२ ई० में सोलवे मोस की लड़ाई के २६ वर्ष बाद रानी मेरी इंग्लैंड में शरण लेने के लिए पहुँची और अगले उन्नीस वर्ष बाद फादरिंगे कासिल में उसके जीवन का अन्त हो गया। बस यही मेरी के राजकीय जीवन का वृत्तान्त है। उसके राज्यकाल के प्रथम भाग में स्काटलैंड में पुनर्विधान की महत्वपूर्ण घटना उपस्थित हुई। राज्य का उत्तराधिकार सुधारवादियों के हाथ आ गया। इंग्लैंड और स्काटलैंड ने मिल कर अपने समान शत्रु पुनर्विधान के प्रतिरोधियों का सामना किया। दोनों पड़ोसियों का युद्ध भी समाप्त हुआ। एलिज़ेबेथ की सहायता से स्काटलैण्ड में

पुनर्विधान की रक्षा हुई और स्काट सुधारवादियों ने एलिजेबेथ के सिंहासन को डॉवाडोल होने से सँभाले रखा।

स्काट पुनर्विधान की विशेषताएँ—इंग्लैण्ड में राजा ने इस पुनर्विधान को अपनी राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुकूल रूप दिया था। प्रारम्भ में स्काट पुनर्विधान का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था और राजा उसका नेतृत्व कर सकता था। जेम्स पंचम का विश्वास था अपने पादरियों पर, फ्रान्स पर और पोप पर; और उसके अमीरों की लोलुप दृष्टि थी चर्च की अतुल सम्पत्ति पर। सुधारवादियों का पक्ष लेना इन सबका विरोध करना था। और राजा जेम्स के लिए यह सम्भव न था। इसलिए स्काटलैण्ड का पुनर्विधान अवलम्बित था चर्च की प्रचलित धर्म-नीति की आलोचना पर, चर्च में सुधार की आवश्यकता पर तथा स्काटलैण्ड के निवासियों के स्वभाव पर।

१५०० ई० में स्काटलैंड का चर्च—स्काटलैण्ड का चर्च सम्पन्न था, किन्तु अधिकांश धन का उपयोग चर्च के कार्यों में नहीं होता था। वहाँ के बिशप धन-लोलुप और लड़ाकू थे। धर्माचार्य के स्थान पर उन्हें अगर राज्य का सरदार कहा जाय तो अधिक उपयुक्त हो। वे प्रायः बड़े घरानों के ऐसे वंशज थे जिन्हें विरासत में अपनी सम्पत्ति का बहुत कम भाग मिलता; इसलिए अपने घरानों की उन्नति के लिए वे चर्चों को लूटते और आपस में लड़ते थे। जब सेन्ट ऐन्ड्रूज के आर्कबिशप जेम्स बीटन ने अपने प्रायर को अपना अनैतिक जीवन सुधारने की आज्ञा दी तो प्रायर ने उसका उत्तर आर्कबिशप के विरुद्ध युद्ध घोषणा से दिया। परन्तु बीटन ही अकेला लड़ाकू पादरी न था। साधारण पादरी गरीब परन्तु मूर्ख थे, जिनके दुर्व्यवहार के कारण सारे चर्च की बदनामी हो रही थी। स्काटलैण्ड में तो चर्च की फीस लोगों को इंग्लैण्ड से भी अधिक खलती थी। मृत्यु-कर के रूप में मृतक के कुटुम्ब से वस्त्र और गोदान की प्रथा गरीबों के लिए बहुत चिन्ताजनक थी। विवाह सम्बन्धी मामलों में चर्च का हस्तक्षेप बहुत दोषजनक मालूम होता था। वर्जित शाखा में विवाह के अवसर पर चर्च की आज्ञा लेनी आवश्यक होती थी और उसके लिए काफी फीस देनी पड़ती थी। फिर चर्च के लोगों का नैतिक जीवन भी निन्दनीय था। पादरी के लिए ब्रह्मचर्यपालन के नियम का उल्लंघन इतने खुले रूप में शायद किसी देश में नहीं हुआ। अनेक बार ऐसे प्रमाण मिले जब कि पादरियों की जारज सन्तानों को औरस बनाया गया, परन्तु इस दुराचार को रोकने के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया। धर्म-सुधार के लिए अनेक प्रस्ताव हुए, अनगिनत राजाज्ञाएँ निकाली गयीं; किन्तु वे सब व्यर्थ रहीं।

इस बीच में जर्मन सुधारकों का प्रभाव बढ़ने लगा और उनके ग्रन्थ स्काट-लैण्ड पहुँचने लगे। अनुवाद के रूप में धर्म-ग्रन्थों का प्रचार सार्वजनिक हो गया। पार्लियामेन्ट और चर्च ने इन नवीन भावों को रोकने की चेष्टा की। १५२८ ई० में

पैट्रिक हेमिल्टन को इन्हीं नवीन विचारों के समर्थन के अपराध में जीवित जला दिया गया। अपनी जर्मन यात्रा में उसने इन समयानुकूल विचारों को ग्रहण कर लिया था। किन्तु इससे लोग हताश न हुए। सन् १५४६ में जार्ज विशर्ट बाहर से स्काटलैण्ड लौटा और उसने पहले डंडी में और फिर अगर शायर में उपदेश देना आरम्भ किया। पादरियों से उसका झगड़ा बढ़ने लगा। कार्डिनल बीटन ने उसे गिरफ़्तार कराया और अभियोग की जाँच के बाद सेन्टएंड्रूज के गिरजे में उसका बध करा दिया। तीन महीने बाद विशर्ट के बध का बदला लिया गया। बीटन के शत्रु लेज्ली, मेलविले, और किर्कल्डी का एक दल किले में घुस गया और उन्होंने उसे मार डाला। उसका शव विशर्ट के बध-स्थल पर ही प्रदर्शन के लिए टाँग दिया गया। हत्याकारी एक वर्ष तक किले में बन्द रहे और अपने आक्रमणकारियों से लड़ते रहे। अन्त में जब कुछ फ्रान्सीसी जहाज आक्रमणकारियों की सहायता के लिये आ गये तब उन्होंने हथियार डाल दिये। उन्हें फ्रान्सीसी जहाज पर गुलाम खलासियों को काम करने भेज दिया गया। उनके साथ विशर्ट का मित्र जॉन नॉक्स भी था जो आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुआ।

१५४७ ई० में हेनरी अष्टम की मृत्यु हो गयी। समरसेट की इच्छा थी कि बालक राजा एडवर्ड और मेरी स्टुअर्ट का विवाह कर दिया जाय. किन्तु पिनकी के युद्ध ने इन आशाओं पर पानी फेर दिया। राजकुमारी मेरी फ्रान्स भेज दी गयी जहाँ फ्रेञ्च राजकुमार से उसका विवाह हो गया। सुधारक दल को रोक दिया गया। इंग्लैंड ही एक मात्र ऐसा देश था जहाँ से सुधारवादी सहायता प्राप्त कर सकते थे; किन्तु अँगरेजों से सहायता माँगना राजद्रोह समझा जाता था। एडवर्ड षष्ठ ने स्काट प्रोटेस्टेन्टों का स्वागत किया और फ्रान्सीसी जहाजों की कैद से जॉन नॉक्स को छुड़ा लिया।

जॉन नॉक्स—मेरी ट्यूडर के राज्यारोहण ने इस धर्मसुधार के चक्र को उल्टा घुमा दिया। इग्लैंड एक बार फिर कैथलिक हो गया और दोनों देशों के सुधारक एक दूसरे की ओर आकर्षित होने लगे। नॉक्स अब स्काटलैण्ड लौट आया था। फ्रेञ्च गैलियों से मुक्ति के बाद वह एडवर्ड षष्ठ का धर्मगुरू बन कर रहा था। स्काटलैण्ड के रोमन कैथलिक चर्च अपनी आन्तरिक स्थिति का सुधार न कर सके थे। नॉक्स अभी अनुपयुक्त समय जान कर शान्त रहा। कई शक्तिशाली अमीर भी सुधारवादियों के तरफ़दार हो गये। १५५७ ई० में सेन्ट गाइल्स की मूर्ति चुरा कर जला दी गयी और अगले वर्ष इसके जुलूस को छिन्न भिन्न कर दिया गया। इस प्रकार जनता और अमीरों का एक सशक्त दल सुधारवादियों के पक्ष में था। पादरियों को राजा और उसके मित्र फ्रान्सीसी राज्य के सिवाय और किसी का आश्रय न था। परन्तु अब यह आश्रय दृढ मालूम होने लगा था क्योंकि स्काटलैण्ड की रानी मेरी ने फ्रान्स के युवराज फ्रान्सिस से विवाह कर अपने निस्सन्तान मर जाने की परिस्थिति में उसे स्काटलैण्ड का राज्य और इंग्लैंड के राजमुकुट पर अपने सारे अधिकार और दिये

थे ( यह बात उस समय स्काटलैंड में मालूम न हो पायी थी। इस प्रकार अब यह निश्चित सा मालूम होने लगा कि अब स्काटलैण्ड और फ्रान्स के एक छत्र के नीचे आने से सुधारवादियों का पक्ष बहुत निर्बल पड़ गया था।

## ४—स्काटलैंड और एलिजेबेथ

एलिजेबेथ और स्काटलैंड—एलिज़बेथ के राज्यारोहण के समय जो परिस्थिति थी वह पिछले वर्णनों से स्पष्ट हो गयी होगी। दोफिन के साथ मेरी के विवाह को छः महीने हो चुके थे और वह फ्रान्स में ही थी। उसकी माता मेरी ऑव गीज स्काटलैण्ड की रानी की सरपरस्त थी। उसने किसी प्रकार सुधारवादियों के दल को दबाये रखा। यदि एलिजेबेथ स्काटलैण्ड पर अधिकार चाहती तो उसके लिये सुधारवादियों की सहायता करना आवश्यक था; किन्तु यह उचित न था। एक तो इससे फ्रान्स नाराज़ हो जाता और एलिज़बेथ फ्रान्स और स्पेन दोनों से झगड़ा नहीं कर सकती थी। दूसरे वह विद्रोहियों की सहायता करने के ख़िलाफ थी। क्योंकि उसे आशंका थी कि फ्रान्स भी फिर इंग्लैंड के विद्रोहियों की उसके विरुद्ध सहायता कर सकता है। इन सब बातों के अतिरिक्त नॉक्स ने हाल ही में अपनी क्रान्तिकारी पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें मेरी नाम की तीनों रानियों पर आक्रमण किया गया था, क्योंकि तीनों मेरी कैथलिक होने के कारण घृणा की पात्र थीं। स्काटलैंड और इंग्लैंड का भाग्य इस समय रानियों के उत्तराधिकारियों पर निर्भर था। यह बड़े मार्के की बात थी। तीनों विवाह योग्य थीं, इसलिए तीनों भविष्य के लिए आपत्ति-जनक हो सकती थीं। उनके विवाह से देश में बहुत कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती थीं। नॉक्स की पुस्तक का उद्देश्य मेरी ट्यूडर की आलोचना करना था और यह दुर्भाग्य की बात थी कि इसने प्रोटेस्टेन्ट रानी एलिजेबेथ को सतर्क न किया। वह पुस्तक से इतनी नाराज हुई कि उसने नाक्स को इंग्लैंड में हो कर गुजरने की भी मनाही कर दी।

पर्थ का धर्मोपदेश—अगले दो वर्षों (१५५९-६० ई०) में बराबर महत्वपूर्ण घटनाएँ बहुत कम हुई होंगी। नाक्स, अब स्काटलैंड लौट आया था। उसने सुधारवादियों को सहायता देकर उन्हें उत्तेजना प्रदान की। निर्भयता उनके रोम-रोम में भरी हुई थी। किसी मनुष्य से डरना तो वह जानता ही न था!' उपदेशकों और चर्च के धर्माचार्यों का रीजेन्ट से पहले ही विरोध था। पर्थ में एक सभा की गयी जिसमें दोनों दल एकत्र हुए। १७ मई को नॉक्स ने मूर्ति पूजा के विरुद्ध उपदेश दिया, 'घोंसलों को जला दो तो पक्षी आप उड़ जायँगे।' 'इसके परिणाम स्वरूप जनता ने मठों और गिरजाघरों पर आक्रमण किया। हुल्लड़ मचा कर गिरजाघरों को तोड़ने फोड़ने की यह प्रवृत्ति सेन्ट एन्ड्रूज स्टर्लिंग, डंडी और एडिनबरा से सर्वत्र फैल गयी। इसका फल यह हुआ कि धर्माचार्यों के सशस्त्र संगठन ने शीघ्र एडिनबरा पर अधिकार कर लिया। बहुत से अमीर उसके साथ हो गये।

एडवर्ड षष्ठ के जमाने की दूसरी प्रार्थना की पुस्तक गिर्जों में उपयोग के लिए स्वीकृत हुई और लूटे हुए की सम्पत्ति आज्ञाकारी धर्माचार्यों को मिलने की व्यवस्था हुई, परन्तु वह शक्तिशाली अमीरों के बाँट आयी।

इस विद्रोह को दबाने के लिये रीजेन्ट ने फ्रान्स से सहायता माँगी। परन्तु फ्रान्स में भी कई महत्वपूर्ण घटनाएँ घट रही थीं। स्पेन और फ्रान्स में केटू कैम्ब्रैंसी में सन्धि हो गयी और इस सन्धि की खुशी में टूर्नामेन्ट के अवसर पर एक दुर्घटना हो जाने से हेनरी द्वितीय की अचानक मृत्यु हो गयी। इस प्रकार मेरी का पति फ्रान्सिस फ्रान्स का राजा हो गया। एलिजेबेथ के लिए इन घटनाओं ने बड़ी संकटजनक परिस्थिति उपस्थित कर दी। जुलाई में फ्रान्स में स्काटलैंड पर चढ़ाई की तैयारियाँ हो रही थीं इसलिए सुधारवादियों ने एलिजेबेथ से सहायता की प्रार्थना की; परन्तु उसने इसे स्वीकार न किया और इस बात की प्रतीक्षा में रही कि उसके सहायक फ्रान्सीसियों तथा चर्च के धर्माचार्यों के बीच कैसी पटती है। फ्रान्सीसियों ने लीथ ले लिया और सुधारवादी उन्हें हटा न सके। उनका आक्रमण असफल रहा और फ्रान्सीसियों ने स्टर्लिंग पर अधिकार कर लिया। जब एलिज़ेबेथ ने सहायता के लिए हाथ बढ़ाया तब सुधारवादियों की हार होने ही वाली थी। विन्टर की अध्यक्षता में एक बेड़ा फर्थ फोर्थ भेजा गया। सारा काम ऐसे गुप्त ढंग से हुआ कि कोई भी यह न समझ पाया कि वे किसकी सहायता के लिए आये हैं। उसका परिणाम निश्चित था—लीथ की नाकाबन्दी से फ्रान्सीसी सहायता का मार्ग बन्द हो गया। ( दिसम्बर १५५६ ई० )।

लीथ की सन्धि—( जुलाई १५६० ई० )—एलिजेबेथ की चेष्टा का सारा श्रेय लेथिंगटन के मेटलैंड को दिया जाना चाहिए। उसी ने सुधारवादियों को धर्म की पुकार बन्द कर राष्ट्रीयता के आधार पर फ्रान्सीसियों और रीजेन्ट के निकालने की आवाज उठाने की सलाह दी थी। नवम्बर में वह स्काटलैण्ड के राजदूत की हैसियत से एलिजेबेथ से मन्त्रणा करने गया। लेथिंगटन अपने समय की प्रगति से अग्रगामी नीतिज्ञ था। इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड की स्थायी मित्रता उसका लक्ष्य था। उसकी नीति-कुशलता का पहला प्रमाण विन्टर के बेड़े का इंग्लैंड से भेजा जाना है। इसके बाद फरवरी में मेरी आफ गीज के विरुद्ध ऐलिजेबेथ और धर्म-संघ के अमीरों में सन्धि इस सफल नीति का दूसरा प्रमाण है। एप्रिल में एक अँगरेजी सेना स्काटलैण्ड पहुँची और स्काट और अँगरेजों ने मिल कर लीथ को घेर लिया। जून में रीजेन्ट की मृत्यु हो गयी और एक महीने बाद फ्रान्सीसी सेना स्काटलैण्ड से निकाल दी गयी। इतिहास में पहिली बार अँगरेज़ घृणा के स्थान पर कृतज्ञता छोड़ गये। उन्होंने किसी लाभ की कामना से यह सहायता न दी थी। पुराने अधिकारों के विषय में एक शब्द भी नहीं कहा गया। एलिज़ेबेथ ने ठीक अवसर पर भलमनसाहत से काम लिया और इसीलिए उसकी विजय हुई। स्काटलैण्ड का पुनर्विधान-आन्दोलन

सुरक्षित हो गया और सीमा पर प्रोटेस्टेन्ट स्काटलैण्ड होने के कारण यह भी सुरक्षित हो गयी। इसी समय भाग्य ने भी उसकी सहायता की। दिसम्बर १५६० ई० में फ्रान्सिस द्वितीय मर गया। मेरी स्टुअर्ट अब फ्रान्स के राजा की पत्नी न रही। वह स्काटों की सन्तानहीन विधवा रानी थी।

१५६० ई० के अगस्त में स्काट पार्लियामेन्ट ने पुनर्विधान के अनुकूल चर्च स्थापना की घोषणा की। पोप का आधिपत्य हटा दिया गया। केवल प्रोटेस्टेन्ट-धर्म को राजकीय स्वीकृति मिली। सब गिरजाघरों में 'मास' तथा अन्य रोमन कैथलिक धर्म विधियों का प्रयोग दंडनीय करार देकर रोक दिया गया।

§ ५—मेरी स्टुअर्ट

**स्काटों की रानी मेरी स्काटलैंड में**—अगस्त सन् १५६१ में मेरी स्काटलैंड में मानो अपने विनाश ही के लिए लौटी। मेरी के लौटने की कारुणिक घटना का अनुभव करना कठिन है। वह केवल उन्नीस वर्ष की थी। उसने अबतक एक अत्यन्त सभ्य देश में एक राजकुमारी तथा फिर फ्रान्स की रानी बनकर सुखी जीवन बिताया था। उसके पति की अकस्मात् मृत्यु हो गयी और उसे निस्सन्तान होने के कारण स्काटलैंड लौटना पड़ा। सुख समृद्धि साधारण रहन सहन के साधन तथा सभ्यता में स्काटलैंड फ्रान्स से कहीं पिछड़ा हुआ था। स्काटलैंड लौटने पर मेरी की प्रजा ने हृदय से उसका स्वागत किया। प्राचीन स्टुअर्ट वंश की रानी को पाकर उन्हें अपार हर्ष हुआ। किन्तु मेरी पक्की कैथलिक थी। उसे फ्रान्स स्काटलैंड से अधिक प्रिय था। इसलिए प्रोटेस्टेन्ट प्रजा और अमीरों के साथ उसका हार्दिक सम्बन्ध बहुत दिनों तक न रह सका। होलीरूड हाउस में मेरी की पहली धर्मसंगत (मास) बिलकुल निजी थी। फिर भी पादरियों को मार डालने के लिए उपद्रवी शोर मचाते हुए दरवाजे पर जा इकट्ठे हुए। मेरी से पहली ही भेंट के अवसर पर नाक्स ने कैथलिक चर्च के विरुद्ध अपशब्द कहे। एडिनबरा आने पर उसे एक बाइबिल भेंट की गयी और बालकों का एक दल 'मास' बन्द करने के लिए उससे कहने को नियुक्त किया गया। प्रत्येक सुधारवादी उपदेश रानी को रोकना और प्रोत्साहित करना अपना कर्तव्य समझता था। अमीर भी इससे पीछे न थे। बोथवेल तो शायद उसे पहले वर्ष ही मार डालने का जाल रच रहा था। कैथलिक नेता हन्टली तक हैमिल्टनों से गुप्त मन्त्रणा कर रहा था। रानी को मजबूर होकर उसके विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। बहुत थोड़े लोगों ने रानी की सच्चे मन से सेवा की।

फिर भी मेरी असहाय न थी। सौन्दर्य और चतुराई उसके प्रबल सहायक थे। वह अँगरेजी राजसिंहासन की पदाधिकारिणी थी यद्यपि एलिज़बेथ उसके इस अधिकार को स्वीकार नहीं करती थी। उसके हाथ में एक और अस्त्र था कि वह फिर विवाह कर सकती थी।

**मेरी का विवाह**—यह बात सभी जानते थे कि मेरी किसी न किसी के साथ शीघ्र विवाह करेगी। इसलिये इंग्लैंड, स्काटलैण्ड और युरोप के सभी राजनीतिज्ञ

उसके लिए वर की खोज में संलग्न हुए। इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अफवाहें उड़ने लगीं। डेनमार्क या स्वीडन के राजा, सम्राट के राजकुमार, डोन कार्लस तथा फिलिप द्वितीय तक से विवाह की खबरें थीं। एलिजेबेथ भी अपने कृपापात्र, अर्ल ऑव लीस्टर के लिए दबाव डाल रही थी। मेरी इस मन्तव्य पर विचार करने का बहाना करती रही; किन्तु उसने अपनी रुचि के अनुसार हेनरी लार्ड डार्नले से विवाह का निश्चय कर लिया।

इस विवाह के विषय में एक बात यह कही जा सकती थी कि इसने स्काटलैंड को फ्रान्स अथवा स्पेन से नहीं उलझाया। एलिजेबेथ ने भी इसका विरोध नहीं किया और डार्नले को इंग्लैंड से जाने दिया। परन्तु यह विवाह आशंका रहित न था। डार्नले ट्यूडर वंश का था। मेरी और डार्नले दोनों हेनरी अष्टम की बहन मारग्रेट के पौत्र और पौत्री थे। इस प्रकार इस विवाह से दो ट्यूडर शाखाओं का इग्लैंड के सिंहासन पर सम्मिलित अधिकार उपस्थित होता था। यदि एलिजेबेथ का वध हो जाता तो इसके परिणाम स्वरूप इंग्लैंड के सिंहासन पर मेरी डार्नले के संयुक्त अधिकार के कारण कैथलिक शासक का बैठना अनिवार्य हो जाता।

षड्यन्त्र—एलिजेबेथ की कठिनाइयाँ उसके शत्रुओं के दुर्भाग्य से भी बहुत कुछ कम हो गयीं। मेरी का शीघ्र ही डार्नले से झगड़ा हो गया। वह दुश्चरित्र और मूर्ख था। मेरी को उससे कुछ भी सहायता न मिली। उसने उसे राज्य कार्य में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार न दिया। इससे वह अत्यन्त क्षुब्ध होकर प्रोटेस्टेन्ट अमीरों के साथ षड्यन्त्र करने में लग गया। आरम्भ मेरी के इटैलियन सेक्रेटरी रीजियो की हत्या से हुआ। षडयन्त्रकारियों का ध्येय क्या था यह बताना कठिन है। सम्भवतः मेरी की गिरफ्तारी और डार्नले को राज्य देना ही इस षड्यन्त्र का लक्ष्य था। बोथवेल और हन्टली का नया अर्ल ही मेरी के विश्वासपात्र थे। डगलस रुथवेन, मॉर्टन तथा अन्य अमीर सभी उसके विरुद्ध थे। लेनाक्स अपने पुत्र के सिंहासन के लिए उपेक्षा किये जाने पर क्रुद्ध था। उसका पतित पति भी शराब की मात्रा बढाकर साहस संचय कर रहा था षड्यन्त्रकारियों ने डार्नले को सहायता का वचन दिया। डार्नले ने भी उनको हर प्रकार के जुर्म से मुक्त करने तथा उनका धर्म स्थापित करने का वादा किया।

होलीरुड—१२ मार्च १५२६ ई० की शाम को डार्नले होलीरुड हाउस में मेरी के कमरे में घुसा। उसके पीछे रुथवेन, मार्टन और दूसरे षड्यन्त्रकारी थे। रिजिओ ने बड़ी करुणा के साथ मेरी का अंचल पकड़ लिया। इस झगड़े में खाने की मेज गिर पड़ी। विद्रोहियों ने रिजिओ को बाहर घसीट कर मार डाला और उसको जीने के नीचे फेंक दिया।

कोई भी राजनीतिक हत्या इतनी भयानक नहीं हुई। हत्याकारियों पर मेरी

की विजय से अधिक आश्चर्यजनक बात और क्या होगी ? दो दिन में उसने डार्नले को वश में कर उसे अपने साथ डनबर भाग चलने को राजी कर लिया। उसके मित्र उससे आ मिले। बोथवेल की सेना पहुँचने पर हत्याकारी जान लेकर भाग गये। जून में उसके पुत्र हुआ। ग्रीष्म भर वह सन्धि की बातचीत करती रही पर वह उस घटना को न भूली थी। अक्टूबर में डार्नले के विरुद्ध दूसरा षड्यन्त्र रचा गया। जनवरी सन् १५६७ में उस पर ग्लासगो में शीतला का प्रकोप हुआ। वह स्वस्थ हो ही रहा था कि मेरी उसे देखने गयी और उसे अपने साथ एडिनबरा के निकट किर्क ऑफील्ड में ले आयी। ९ फरवरी को वह उससे अन्तिम बार मिलने गयी। जब वह बैठी हुई थी बोथवेल और उसके अन्य सहायक डर्नले के नीचे वाले कमरे में बारूद रख रहे थे। इसके बाद बोथवेल रानी को साथ ले होलीरुड हाउस में एक नाच में शरीक हुआ। १० फरवरी की रात के दो बजे किर्कऑफील्ड बारूद से उड़ा दिया गया। डर्नले और उसके नौकर की लाश बाहर बाग में पड़ी मिली। गला घोट कर उसकी हत्या की गयी थी।

मेरी का बोथवेल से विवाह—बोथवेल का अपराध तो निश्चित था; परन्तु मेरी षड्यन्त्र के विषय में कहाँ तक जानती थी, यह एक ऐतिहासिक पहेली है। उस समय तो किसी को यह सन्देह न था कि वह इससे परिचित थी, किन्तु समस्त घटनाक्रम इस सन्देह को अब निर्मूल बना देता है। षड्यन्त्र में इतने लोग थे कि इस विषय का छिपाया जाना असम्भव हो गया। आख़िर एक जाँच हुई भी पर वह न होने के बराबर थी। बोथवेल बरी कर दिया गया। इसके पश्चात् दूसरा वज्रपात हुआ। बोथवेल अप्रिल में मेरी को उसकी सम्मति में डनबर ले गया। उसने अपनी पत्नी को तलाक दे दी और १५ दिन बाद मेरी और बोथवेल ने साथ-साथ एडिनबरा में पुनः प्रवेश किया। १५ मई को उनका विवाह हो गया। विवाह के ही दिन उस आततायी के प्रति मेरी के दिल में जो थोड़ा भी प्रेम था समाप्त हो गया। वह यह कहती हुई सुनी गयी कि ऐसे जीने से तो मृत्यु ही भली है। परन्तु अभी तो उसे कितनी ही आपत्तियाँ झेलनी थीं। उसकी मुसीबतों का अन्त कभी नहीं हुआ था। इस घटना के बाद उत्तरी प्रदेश के अमीरों ने बोथवेल के विरुद्ध संगठन किया। पिनकी के पास कारबरी पहाड़ी पर दोनों पक्ष की सेनाएँ एकत्रित हुईं। बोथवेल की सेना ने उसका साथ छोड़ दिया और वह भाग गया। किन्तु मेरी गिरफ़्तार हुई और एडिनबरा लायी गयी। लोगों की भीड़ ने रास्ते में उस पर आवाज़ कसी। अन्त में वे लोक्लेवेन के कारागार में भेज दी गयी। शीघ्र ही चाँदी के एक सन्दूक में कुछ पत्र पकड़े गये। यदि ये पत्र सच्चे के वध के षड्यन्त्र से परिचित थी और बोथवेल उसे उसकी रजामन्दी से भगा ले गया था। मेरी को बन्दी बनाने के लिए इन पत्रों की शहादत बहुत काफ़ी थी और फिर इनका इतनी जल्दी और सरलता से प्राप्त होना भी कुछ कम सन्देहजनक नहीं है। इन पत्रों

के कुछ अंश जाली भी मालूम होते हैं, परन्तु मेरी को यह सब प्रमाणित करने का अवसर ही न मिला।

लोक्लेवेन—मेरी की गिरफ़्तारी ने एलिजेबेथ का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट किया। उसने सरदारों को लिखा कि रानी को कोई कष्ट न पहुँचाने पाये और उसके बच्चे जेम्स को इंग्लैण्ड भेज दिया। मेरी के ऊपर अभियोग चलाने की बातचीत हो रही थी; परन्तु अन्त में यह तय हुआ कि वह अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन त्याग दे और उसका सौतेला भाई मरे रीजेन्ट बने। मेरी ने मरे के पास अपने रत्नादि अमानत में रख दिये थे जिसने उनमें से कुछ एलिजेबेथ के हाथ बेच दिये।

मेरी का इंग्लैण्ड भागना—(१५६८ ई०)—रत्नाभूषण, पुत्र, राज-सिंहासन और स्वतन्त्रता छिन जाने पर भी मेरी का सौन्दर्य अभी उसके साथ था। इसके द्वारा उसने अपने जेलर लार्ड डगलस पर विजय पायी। लोक्लेवेन दुर्ग की कुंजियाँ चुराई गयीं और मेरी भाग कर अपने अन्तिम सहायक हैमिल्टनों से जा मिली। मरे ने प्रोटेस्टेन्ट अमीरों को एकत्र कर लैंगसाइड पर हैमिल्टनों को परास्त किया। जब स्काटलैंड में उसकी अन्तिम आशा का भी आधार नष्ट हो गया तो वह इंग्लैण्ड भागी। अब उसने एलिजेबेथ को बड़ा कौतूहलपूर्ण पत्र लिखा जिसमें रानी की हैसियत से नहीं किन्तु एक साधारण सम्भ्रान्त कुल की स्त्री की भाँति सहायता की प्रार्थना की गयी थी। परन्तु एलिज़ेबेथ दया से द्रवित होने वाली न थी।

मेरी को आशा थी कि एलिजेबेथ उसकी सहायता करेगी या कम से कम उसे फ्रान्स आदि से सहायता लेने के लिए इंग्लैंड से होकर जाने देगी। एलिजेबेथ भी उसे स्काटलैंड के सिंहासन पर फिर बैठाने की या उसके वैरियों से सुलह करा देने की सोच रही थी। परन्तु वह पहले यह निश्चय कर लेना चाहती थी कि मेरी अपराधी थी या नहीं। एलिजेबेथ की सहायता पाने की आशा से मेरी जाँच के लिए राजी हो गयी, किन्तु आरम्भ से ही एलिजबेथ ने उसे निकल कर न जाने देने का निश्चय कर लिया था। अस्तु, मेरी कार्लाइल से यार्कशायर के बोल्टन गढ़ में लायी गयी जहाँ से उसका छुटकारा असम्भव था।

जाँच शुरू हुई। अँगरेज कैथलिक सरदारों में प्रधान नार्फक, ससेक्स और सैडलर का मरे मॉर्टन और स्काट दूतों से मिलने का आयोजन किया गया। परन्तु मेरी को अपने विरुद्ध दी हुई शहादत को देखने तथा एलिजेबेथ से मिलने तक की आज्ञा न मिली। उसके साथ न्याय न हुआ। मॉर्टन, जो उसके विरुद्ध प्रधान साक्षी था, रिजियो की हत्या के षड्यन्त्र का नेता था और डार्नले के किर्क-ओ-फील्ड ले जाने का रहस्य भी उसे मालूम था। रानी से अधिक अपराधी वह स्वयम् था; किन्तु एलिजेबेथ फ़ैसला नहीं चाहती थी क्योंकि यदि मेरी निरपराध सिद्ध होती तो उसे छोड़ना पड़ता और यदि वह अपराधी थी तो उसे दंड मिलता। ये दोनों ही बातें

असुविधाजनक होने के कारण एलिजेवेथ ने उसे बन्दी रखना ही अच्छा समझा। इस प्रकार न तो मेरी का अपराध ही सिद्ध हुआ और न उसे मुक्ति ही मिली।

§६—षड्यन्त्रों का युग ( १५६८-८७ ई० )

एलिजेवेथ की उन्नत परिस्थिति—इस प्रकार स्काटलैंड में एक विरोधी रानी की ओर के जो कैथलिक धर्मावलम्बिनी, विवाह-योग्य, अत्यन्त सुन्दरी तथा एलिजेवेथ के सिंहासन की उत्तराधिकारिणी थी तत्कालीन आशंका जाती रही। मेरी वन्दिनी थी; सन् १५६० का स्काट पार्लियामेन्ट द्वारा स्थापित पुनर्विधान सुरक्षित था और फ्रान्स और स्पेन के आक्रमण का द्वार बन्द हो गया था। सुरक्षा के लिए यह बहुत कुछ था। परन्तु १५५७ से सन् १५६८ ई० के बीच एलिजेवेथ के पक्ष में और भी घटनाएँ घटीं। इनके फल स्वरूप केवल उसकी शक्ति ही नहीं बढ़ी वरन् उसके शत्रु भी दुर्बल हो गये। फ्रान्स में धर्म युद्ध शुरू हो गये। कैथलिक दल का नेता गाइज घराना था जिसने राज्य-सिंहासन पर अपना अधिकार प्रदर्शित किया। गाइजों के विरुद्ध फ्रान्स के राजा ने एलिजेवेथ से सहायता माँगी और उन दोनों की मैत्री अक्षुण्ण रही। सेन्ट बारथोलेम्यू के हत्याकांड से भी इसको कोई आघात नहीं पहुँचा। सन्धि का एक आधार तो एलिजेवेथ ने अपनी विवाह नीति बना रखा था। उसने एक फ्रान्सीसी राजकुमार आञ्जू के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। यह सत्य है कि वह इस सम्बन्ध के लिए उत्सुक न थी; परन्तु फिर भी बातचीत जारी रही। इस प्रकार स्काटलेंड से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के कारण धार्मिक युद्धों तथा गाइजों की महत्वाकांक्षा से परेशान ( जिनकी सहायता स्पेन कर रहा था, फ्रान्स को एलिजेवेथ से बाध्य होकर मित्रता करनी पड़ी।

स्पेन की शक्ति भी धार्मिक युद्धों के कारण कम हो चली थी। उसके सबसे सम्पन्न प्रदेश बेलजियम और हालैंड में विद्रोह हो रहे थे और यह विद्रोह दुर्दमनीय थे। एलिजेवेथ के सारे शासनकाल भर यह कशमकश चलती रही और इसने धीरे-धीरे स्पेन की सारी शक्ति क्षीण कर दी। एलिजेवेथ को इससे एक और लाभ हुआ। वह विद्रोहियों की सहायता कर सकती थी। किन्तु स्पेन से युद्ध मोल लेने के लिए वह तैयार न थी। इसीलिए वास्तव में वह ऐसा करना न चाहती थी। किन्तु वह ऐसा करने का संकेत कर सकती थी। इससे स्पेन ने कभी उसका विरोध करने की बात न सोची।

इस प्रकार इन दस बरसों में एलिजेवेथ की स्थिति दिन पर दिन दृढ़ होती गयी। उसकी प्रजा राजभक्त थी, उसकी चर्च व्यवस्था सफल हो रही थी तथा उसके शत्रु अपने-अपने आन्तरिक झगड़ों में व्यस्त थे। फिर भी वह पूर्णरूप से सुरक्षित न थी। मेरी उसकी बन्दिनी थी। परन्तु उसकी मुक्ति और विवाह कराने की योजनाएँ हो सकती थीं। ये मामले छुक छिप कर ही हो सकते थे। इसलिए अगला ज़माना षड्यन्त्रों का ज़माना है।

मई सन् १५६६ ई० की मेरी की जाँच में ही भावी घटनाओं की झलक मिल गयी थी। एलिजेबेथ के चीफ़ कमिश्नर नॉर्फक को पहले तो मेरी के अपराध का निश्चय हो गया; पर बाद में उसने अपना विचार बदल दिया और उसके साथ विवाह करने का उपाय सोचने लगा। वह प्रमुख अँगरेज़ कैथलिक था और ऐसे विवाह से कैथलिक दल को हर्ष होता। इस सम्बन्ध से कैथलिक उत्तराधिकारी की भी आशा की जा सकती थी क्योंकि अभी तक उत्तराधिकार के प्रश्न का कुछ निश्चय न हुआ था। किन्तु एलि.जेबेथ के मन्त्री सतर्क और उनके गुप्तचर अपने काम में कुशल थे। सारा भेद खुल गया; जाँच बन्द हो गयी और मेरी टटबरी में नजरबन्द कर दी गयी।

उत्तर में विप्लव—आगे की बात और भी भयंकर थी। नार्फक और उसके मित्रों ने नीदरलैंड के स्पेनिश कमांडर ड्यूक ऑव आलवा से गुप्त मन्त्रणा की। उन्होंने विद्रोह करके एलिजेबेथ प्रधान मन्त्री सेसिल को बन्दी करने का वायदा किया। आलवा का काम सैनिक सहायता देना और मेरी को मुक्त कराना था। किन्तु आलवा ने तब तक सेना भेजने से इनकार किया जब तक कि विद्रोही अपने उत्साह का यथेष्ट प्रमाण न दें। इधर एलिजेबेथ के मन्त्री फिर सतर्क थे। अस्तु सब से अधिक खतरनाक षड्यन्त्रकारियो, नार्थम्बरलैंड और वेस्टमोरलैंड के अर्लों को बन्दी करने की आज्ञा निकाली गयी। पर्सी और नेविल उत्तर के वीरों में प्रसिद्ध थे। यहाँ के लोग अभी तक युद्धप्रिय तथा लड़ाकू थे। इन दोनों अर्लों ने अपनी सीमान्त की सेनाएँ इकट्ठी कीं और डरहम को ले लिया और वहाँ के कैथिड्रल में प्रार्थना कर दक्खिन की ओर मेरी को छुड़ाने के लिए बढ़े; किन्तु वह कवेन्ट्री पहुँचा दी गयी और महारानी की सेनाओं ने अर्लों को वेस्ट राइडिंग में आगे बढ़ने से रोका। कोई लड़ाई न हुई। विद्रोही नेता स्काटलैंड भाग गये और विद्रोही तितर-बितर हो गये। बहुत से पकड़े गये और फाँसी चढ़ा दिये गये। विद्रोहियों को एक अच्छा सबक सिखाने भी आवश्यकता भी थी। इस प्रकार उत्तर के विद्रोह का अन्त हुआ। यह बात विचारणीय है कि एक ओर तो ये अर्ल अपने को कैथलिक धर्म का पक्षपाती और धर्म-रक्षक घोषित कर रहे थे और दूसरी ओर एलिजेबेथ उन्हें कोरे विद्रोही ठहराने का प्रयत्न कर रही थी। कैथलिक पक्ष के पोषक होने के उनके दावे को झूठा साबित करने के लिए उसने उनके विरुद्ध लड़ने के लिए कैथलिक सेनापति अर्ल ऑव ससेक्स को भेजा।

वहिष्कार—अब तक यह बात स्पष्ट न हुई थी कि आखिर एलिजेबेथ रोम के चर्च की शरण लेगी या नहीं। यद्यपि अँगरेज़ी धर्म विद्रोह बहुत दिनों से चल रहा था तथापि कैथलिकों को उसके दमन किये जा सकने का विश्वास था। यह कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि एलिजेबेथ एक ऐसा धर्म-पक्ष ग्रहण करेगी जो उसे समस्त युरोपीय राजाओं से पृथक कर देगा। इसीलिए इतने दिनों तक पोप उसे प्रायश्चित्त के लिए अवसर देता रहा। किन्तु अब समय आ गया था कि उसे स्पष्ट

सूचना दे दी जाय कि उसका व्यवहार अब और सहन नहीं हो सकता था। इसीलिए १५२० ई० में पायस पञ्चम ने उसे चर्च से वहिष्कृत कर दिया और उसकी प्रजा को उसकी आज्ञा पालन के बन्धन से मुक्त कर दिया। इसका अर्थ एलिजेवेथ और रोम का अन्तिम विच्छेद कदापि न था। वहिष्कार तो रद्द हो सकता था; किन्तु यह स्पष्ट हो गया कि रोम एलिजेवेथ को अपना शत्रु समझने लगा था और सच्चे कैथलिकों से उसका विरोध करने की आशा करता था। इसलिए देश के भीतर और बाहर रानी के विरुद्ध षड्यन्त्रों की धूम मच गयी।

रिडोल्फी पड्यन्त्र—इंग्लैंड, फ्रान्स; स्पेन और इटली के कुछ उत्साही कैथलिक एलिजेवेथ को सिंहासन-च्युत करना अपना धर्म समझने लगे। १५७१ ई० में सब से पहले रिडोल्फ़ी षड्यन्त्र हुआ। रिडोल्फी फ़्लोरेन्स का एक महाजन और पोप का विश्वासपात्र था। नार्फ़ क, स्कॉट रानी मेरी और स्पेन के फिलिप के बीच गुप्त मन्त्रणा का साधन बनाया गया। आलवा से नीदरलैंड से सहायता भेजने के लिए कहा गया। परन्तु उसने उत्तर दिया कि उसे एलिजेवेथ के जीते जी सफलता में सन्देह है। आख़िर बर्ले के दूतों द्वारा षड्यन्त्र का भेद खुल गया। नार्फ़ क पकड़ा गया और उसे फाँसी हुई।

इसके बाद कुछ समय के लिए शान्ति स्थापित हो गयी। ब्लोई की सन्धि के अनुसार फ्रान्स ने स्काटलैंड की मेरी का पक्ष न लेने का वचन दिया। अगस्त सन् १५७२ को बार्थोलेम्यू के हत्याकांड के बावजूद भी एलिजेवेथ और फ्रान्स की सन्धि बनी रही। नीदरलैण्ड के विद्रोही बड़े दृढ़ निकले। उन्होंने स्पेन को बराबर व्यस्त रखा और जब कि डोन जान उनको दमन कर इँग्लैण्ड पर आक्रमण करने तथा मेरी के साथ विवाह करने की योजना कर रहा था, फिलिप अपने सौतेले भाई की महत्वाकांक्षा से इतना सशंकित हुआ कि उसने उसे वापिस बुला लिया।

जेसुइट केम्पियन और पारसन—दूसरी झंझट जैसुइटों ने पैदा की। १५४० ई० में इगनेशियस लायोला द्वारा जेसुइट सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी। उसी समय से इस संस्था का उद्योग उन लोगों को पुनः रोमन चर्च की शरण में लाना था जिन्होंने पुनर्विधान का उपदेश ग्रहण कर लिया था। १५६८ ई० में डुए में अँगरेज जैसुइटों के लिए एक स्कूल खुला जो दस साल के बाद रीम्स में हटा लिया गया। इसका अभिप्राय एक ऐसे धर्म प्रचार के जत्थे को तैयार करना था जो इंग्लैंड को फिर से कैथलिक धर्म स्वीकार कराने की चेष्टा करे। अपनी जान को ख़तरे में डाल कर ये लोग इंग्लैंड आये। १५७० ई० में कथवर्टमेने को फाँसी हुई। १५८० ई० में कैम्पियन और पारसन के आगमन के साथ फिर आन्दोलन आरम्भ हुआ। कहने के लिए तो वे राजनीतिक विषयों में हस्तक्षेप नहीं करते थे, किन्तु उनके उपदेशों से समस्त इंग्लैंड मे कैथलिक भावना और आशाओं की इतनी तीव्र जाग्रति हुई कि गवर्नमेन्ट ने कैम्पियन और उसके साथियों को गिरफ़्तार कर फाँसी लगवा दी।

कैम्पियन के विरुद्ध कोई सबूत न था; किन्तु पारसन जो भाग गया निस्सन्देह राजनीतिक विषयों में भी हस्तक्षेप करता था। उसने दो जैसुइट साथियों को मेरी के पक्ष में आन्दोलन करने के लिये स्काटलैंड भेजा, लंडन-स्थित स्पेन के राजदूत मेंडोजा से गुप्त मन्त्रणा की, फिलिप और पोप से भी उसने बातचीत की और एलिजबेथ की हत्या के लिए जाल रचा। किन्तु वह अँगरेज हत्यारा जो एक लाख फ्रैंक पर रानी एलिजबेथ की हत्या के लिए राजी हुआ था बिलकुल निकम्मा निकला। पारसन ने स्पेनिश आक्रमण का भी षड्यन्त्र रचा जिसमें मेंडोजा और चेशायर का एक सम्मानित व्यक्ति फ्रान्सिस थ्राकमार्टन शामिल थे। फिर भी भेद खुल गया। थ्राकमार्टन पकड़ा गया और उसे फाँसी हुई और मेंडोजा पदच्युत कर दिया गया।

इन सब षड्यन्त्रों के विफल होने से अब तक तो ऐसा मालूम होता था कि एलिजबेथ अमर-सी है। उसकी प्रजा राजभक्त थी। षड्यन्त्रकारी शिथिल मन और शिथिल कार्य हो गये थे। किन्तु १५८४ ई० में एक ऐसी घटना हुई जिसने सिद्ध कर दिया कि षड्यन्त्र सदा ही असफल नहीं होते। बैल्थर जेराई नामक एक हत्यारे ने स्पेन से रिश्वत पाकर नीदरलैंड-विद्रोह के सर्वे सर्वा विलियम दि साइलेन्ट, प्रिन्स ऑव आरेंज का वध कर डाला। उसी समय ऑञ्जू की मृत्यु से स्पष्ट हो गया कि हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद राजदंड प्रोटेस्टेन्ट हेनरी ऑव नेवार के हाथ में जायगा। विधर्मी शासन की सम्भावना फ्रान्स के बहुत से कैथलिकों को असह्य थी। इसलिए शीघ्र ही फ्रान्स में गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। यह युद्ध एलिजबेथ के लिए हानिकारक था। अगर कहीं स्पेन ने आक्रमण कर दिया तो उसे फ्रान्स से कोई सहायता न मिल सकेगी। स्पेन के आक्रमण की अधिक सम्भावना भी थी क्योंकि विलियम ऑव आरेंज की मृत्यु हो चुकी थी और नीदरलैंड में पारमा के नेतृत्व में स्पेन की सेना विजयी थी। परन्तु इससे भी खराब बात यह थी कि फ्रान्स के कैथलिक ह्यूजिनो के सिंहासनारूढ़ होने की आशंका से स्पेन से सहायता माँग रहे थे। यदि फ्रान्स और स्पेन से सन्धि करके कैथलिक संघ का निर्माण कर लिया होता तो एलिजबेथ और इग्लैंड का अहित होना अनिवार्य था। १५८४ ई० के बाद हत्या, शूली, स्पेनिश सेना का जमघट, धार्मिक परीक्षा, अँगरेजों का पतन आदि आशंकाओं से भविष्य ओतप्रोत था।

संघ—इंग्लैंड ने अब उचित प्रतिक्रिया दिखायी। १२ वर्ष पूर्व पार्लियामेन्ट ने मेरी पर अभियोग चलाने की आज्ञा माँगी थी; किन्तु एलिजबेथ ने उसे अस्वीकृत कर दिया। सन् १५८४ में एक संघ की सृष्टि हुई जिसके सदस्यों का ध्येय रानी के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालों एवम् जिसके लाभ के लिए षड्यन्त्र रचा जाय उसको भी प्राण दंड देना था। शीघ्र ही इसके बाद पार्लियामेन्ट ने एक और कानून बनाया। इसके अनुसार किसी ऐसे व्यक्ति पर जो राज्य पर अपना अधिकार प्रदर्शित कर सकता हो तथा विद्रोह में उसका हाथ हो राजकीय कमीशन के सामने राजद्रोह का

अभियोग चलाया जा सकता था। भले ही इस क़ानून से एलिज़बेथ का जीवन सुरक्षित न रह पाता, परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् मेरी राजसिंहासन पर कभी नहीं बैठ सकती थी। उसके प्राण तो हर हालत में जाते। एलिज़बेथ ने साथ ही जेम्स षष्ठ से धर्म रक्षा के लिये सन्धि की और लीस्टर के नेतृत्व में डच लोगों की सहायता के लिए एक सेना भेजी। इससे ज़ुत्फ़ेन के युद्ध के अतिरिक्त और कोई लाभ न निकला। इस युद्ध में वीर सर फिलिप् सिडनी के घातक चोट आयी।

बेबिंग्टन षड्यन्त्र—सन् १५८६ के आरम्भ में यही स्थिति थी। मई में वालसिंगहम ने मेंडोजा को भेजा हुआ मेरी का एक पत्र पकड़ा जिसमें उसने अपने पुत्र जेम्स को अधिकार च्युत कर स्पेन के फिलिप को अपने सब अधिकार दे दिए थे। यह तो केवल भूमिका मात्र थी क्योंकि एक और षड्यन्त्र पनप रहा था। सैवेज नामक एक अँगरेज़ी अफ़सर ने जो स्पेन के सरदार पारमा के साथ काम करता था, एलिज़बेथ के वध करने की शपथ ली। मेंडोजा ने, जो अब फ़्रान्स में राजदूत था, कहा कि सेसिल और वालसिंगहम को भी मार डालना आवश्यक है। इस षड्यन्त्र का अँगरेज़ एजेन्ट एक कैथलिक एन्थानी बेबिंग्टन था जिसका एलिज़बेथ के दरबार से सम्बन्ध था। उसने सेवेज के साथ पाँच और हत्याकारी कर दिये। वालसिंगहम का प्रधान गुप्तचर इस रहस्य का पता पा गया। उसने मेरी और षड्यन्त्रकारियों के बीच चलने वाली गुप्त चिट्ठियों को बीच में हथिया कर उनकी नकलें एलिज़बेथ के पास भेजनी शुरू की। इस प्रकार षड्यन्त्रकारियों की प्रत्येक गति पर वालसिंगहम की कड़ी दृष्टि थी। उसका उद्देश्य यह निश्चित करना था कि हत्या के षड्यन्त्र में मेरी का हाथ था या नहीं। एक बार इस बात के सिद्ध हो जाने पर कि मेरी का इस षड्यन्त्र से सम्बन्ध था कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता था।

मेरी को फाँसी—(१५८७ ई०) आखिरकार जुलाई में मेरी ने लिखा, "इस प्रकार सब मामला ठीक हो जाने पर उन छः सज्जनों के काम करने का समय आयेगा।" बस इतना ही पर्याप्त था। मेरी के काग़जात पकड़े गये। फादरिंगे में कमीशन के सामने उसकी जाँच हुई और वह अपराधी ठहराई गयी। पार्लियामेन्ट ने उसको फाँसी दिये जाने की आज्ञा माँगी। एलिज़बेथ हिचकिचायी। उसका विचार था कि मेरी का वध सारी राजनीतिक स्थिति को पलट देगा और नयी आशंकाओं का द्वार खोल देगा। किन्तु पार्लियामेन्ट और प्रिवी कौन्सिल मेरी की जान लेने पर तुली हुई थी। इसलिए १५८७ ई० के फरवरी मास में मेरी को फाँसी हो गयी।

इस प्रकार षड्यन्त्रों के युग का अन्त उस अभागिनी स्त्री की ही मृत्यु से हुआ जिसके पक्ष में वे रचे गये थे। यदि स्पेन को अब कुछ करना था तो उसका एकमात्र साधन आक्रमण था। गुप्त षड्यन्त्रों के आवरण में छिपे हुए शत्रु को अब सामने आना आवश्यक हो गया था।

## ७. आर्मेडा

साहसी नाविक तथा समुद्री डाकू—हेनरी सप्तम के समय से प्लाइमथ, बिडेफर्ड और ब्रिस्टल के पश्चिमी बन्दरों से साहसी अँगरेज नाविक देशान्वेषण, सोने की खोज, विदेशों से व्यापार तथा लूट-पाट के उद्देश्य से समुद्री यात्रा पर जाने लगे। इनमें से चान्सलर आर्केंजिल, विलोबी उत्तर पूरबी पथ पर (और १५५४ ई० में मृत्यु के मुख में), फ्राबिशर लैब्राडोर की ओर और डेविस उत्तर पश्चिमी आर्कटिक सागर की ओर गये। उत्तर के इन सब साहस पूर्ण कार्यों का उद्देश्य था पूरबी देशों के लिए एक ऐसा मार्ग खोज निकालना जिस पर अँगरेजों का प्रभुत्व हो। गुडहोप तथा हार्न अन्तरीप के मार्ग पर अधिकार हो चुका था। वे पुर्तगाल और स्पेन के थे। एक तो उत्तर में आर्कटिक महासागर दुर्गम और दुर्भेद्य सिद्ध हुआ, दूसरे उस सर्द प्रदेश में कोई निवासी ही न थे जो अँगरेजों के आशानुकूल कपड़ा खरीद सकते। इसीलिए गर्म प्रान्तों में विशेष कर स्पेन के अधीन जलाशय की ओर रुख फिरा।

स्पेन वालों को अँगरेजी जहाजों का आगमन अच्छा न लगा क्योंकि वे अँगरेजों के व्यापार को नाजायज तथा बड़ी सशंक दृष्टि से देखते थे। कभी कभी अँगरेज नाविकों की लूट मार का भी उन्हें अनुभव करना पड़ता था। यद्यपि स्पेनिश समुद्र में प्रायः युद्ध होते रहे तथापि स्पेन ने इंग्लैंड के साथ एक प्रकार से मेल ही रखा। स्पेन अँगरेजों की ज्यादतियों को जिस प्रकार सहता रहा वह आश्चर्य है। आखिर १५६८ ई० में स्पेन ने 'सैनज्वान' में सर जान हाकिन्स के बेड़े पर हमला करके झगड़े का सूत्रपात किया। वास्तव में हाकिन्स का वहाँ कोई काम न था। वह केवल अपने गुलामों को बेचना चाहता था। इस लड़ाई में उसके चार जहाज नष्ट हुए। इनमें एक रानी का भी था। एक लाख पौंड की सम्पत्ति गयी और वह और उसका साथी फ्रान्सिस ड्रेक बड़ी कठिनाई से जान बचाकर निकल सके। इसीलिए वे बड़े क्रुद्ध और बदला लेने के लिए अशान्त थे। १५७२ ई० में फ्रान्सिस ड्रेक ने (नोम्ब्रे डि डियो) पर हमला कर चाँदी से लदा हुआ जहाज लूट लिया। प्रशान्त महासागर के उसने पहले पहल दर्शन किये।

१५७७ ई० में वह फिर पाँच जहाजों के साथ चला जिसमें प्रधान का नाम (सुनहला हिन्द) था। मेगलीन जलडमरूमध्य पार कर उसने प्रशान्त महासागर के तटवर्ती अरक्षित स्पेनिश नगरों पर आक्रमण किया और उन्हें लूट कर वह जावा होता हुआ घर लौटा। इस बार वह अपने साथ एक लाख पौंड की सम्पत्ति लाया। इस पर रानी ने उसे 'नाइट' की पदवी से विभूषित किया। इस पर स्पेन ने रोषपूर्वक विरोध प्रकट किया परन्तु युद्ध न ठना। १५८५ ई० में दोनों देशों ने एक दूसरे के जहाजों पर प्रतिबन्ध लगा दिया और रानी एलिज़बेथ ने ड्रेक को वेस्टइंडीज की लूट करने फिर भेजा। इस पर भी उसके साथ केवल दो सरकारी जहाज थे। यह एक प्रकार से साझे की तिजारती लूट थी। शेष व्यापारियों के जहाज थे जिनकी कुल

संख्या मिलाकर ३० थी। इस वेड़े ने स्पेन के टापुओं को लूटा फिर अन्तरीप, सेन्टीगो तथा डामिनिंगो और कार्टेजिना को लूटा और आग लगाकर विध्वंस कर यह वेड़ा बिना किसी क्षति के सकुशल वापिस लौटा। इस लूट में लाभ तो बहुत कम हुआ, पर शत्रु की हानि बहुत हुई।

आर्मडा—'पच्छिमी द्वीपों' की लूट फिलिप को असह्य हुई। उसके नीदरलैंड के जनरलों ने इंग्लैंड पर आक्रमण करने के लिए ज़ोर दिया। इसके लिए स्पेन एक विशाल जहाजी वेड़ा इकट्ठा कर सकता था। १५८७ ई० में मेरी की मृत्यु ने वह स्पष्ट कर दिया कि यदि यह कठिन कार्य सफल हुआ तो इससे फिलिप को व्यक्तिगत लाभ होगा अस्तु, अभी तक जो तैयारियाँ दबी हुई थीं, ज़ोरों से आरम्भ हुईं। १५८७ ई० में ही आर्मडा प्रस्थान कर चुका होता; परन्तु ड्रेक की स्पेन के राजा की दाढ़ी झुलसने की—काडिज बन्दर में स्थित जहाजों पर आक्रमण वाली—घटना ने सारा काम एक साल के लिए स्थगित कर दिया। ३७ जहाज़ और बहुत सा सामान नष्ट हुआ। लिजबन पर आतंक जमाने के पश्चात् ड्रेक छः सप्ताह तक सेन्ट विन्सेन्ट अन्तरीप के पड़ोस में चक्कर लगाता, स्पेन के तटवर्ती जहाजों पर आक्रमण करता तथा भूमध्य सागर के बन्दरगाहों में स्थित जहाजों की गति पर नियन्त्रण रक्खे रहा। इस साहसपूर्ण कार्य ने भयंकर एल ड्रेक का स्पेन पर और भी आतंक जमा दिया। जर्विस और नेलसन से २०० वर्ष पूर्व ही उसने प्रथम अभिघात का महत्त्व समझ लिया था और इस बात की वास्तविकता भी उसे विदित हो गयी थी कि युद्ध में शत्रु का समुद्र तट ही अपनी सीमा होनी चाहिए। १५८८ ई० में उसने फिर आक्रमण करने की आज्ञा माँगी। यदि एलिज़ेबेथ ने स्वीकृति दे दी होती तो सम्भवतः आर्मडा का कभी प्रस्थान ही न हो पाता। परन्तु एलिजेबेथ ने इस भय से आज्ञा न दी कि कहीं स्पेनिश वेड़ा उसकी आँख बचा कर निकल न आये और चैनल को बिल्कुल अरक्षित पाये।

अस्तु, पोप और पादरियों के आशीर्वाद पा अधर्मियों के विरुद्ध २० मई १५८८ ई० को महान आर्मडा लिजबन से चल पड़ा। उसमें १३० जहाज थे जिनमें ८ हजार मल्लाह और १६ हजार सिपाही थे। उसका उद्देश्य चेनल में जाकर मारगेट को लेना और पारमा से मिलना था जो नीदरलैंड्स से ३० हजार चुने हुए स्पेनिश सैनिक लेकर तैयार था। मौसम इतना खराब था कि करूना पहुँचने में आर्मडा को १६ दिन लग गये। वहाँ मरम्मत के लिए उसे १० जुलाई तक ठहरना पड़ा। मौसम कुछ अच्छा होने पर १६ जुलाई को वह लिजार्ड के पास पहुँचा। चैनेल स्थित अँगरेजी वेड़ा लार्ड होवर्ड के नेतृत्व में ड्रेक, हाकिन्स फ्राबिशर, फेनर और रेमंड के साथ ठीक उसी समय रसद के लिए प्लाइमथ की ओर हटा लिया गया था और विरोधी वायु के कारण वहीं पड़ा हुआ था किसी प्रकार रस्सियों की सहायता से अँगरेजी जहाज जल डमरूमध्य में लाये गये और इस प्रकार समुद्र में पहुँचे। स्पेन

का बेड़ा दक्खिन की ही ओर बढ़ता गया। मन्द गति के होते हुए भी आख़िर आर्मेडा चैनल में पहुँच गया और उसे रास्ता बिल्कुल साफ़ मिला। सीमोर और वीन्टर के छोटे बेड़ों को छोड़ उसके सामने कोई शत्रु न था।

यदि जहाजों की ही गणना की जाय तो अँगरेजी जहाज संख्या में अधिक थे। परन्तु, उन छोटे छोटे जहाज़ों को छोड़ कर जो वास्तव में युद्ध में कोई भाग न ले सकते थे, हॉवर्ड के पास केवल ७० जहाज थे। इनमें भी बहुत से छोटे थे और युद्ध की दृष्टि से उनका कोई महत्व न था। रानी के ३० जहाजों में अधिकांश भली भाँति अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थे। व्यापारी जहाजों में भी दस-पन्द्रह लड़ने योग्य थे। फिर भी संख्या और आकार में वे शत्रु के जहाजों से बहुत कम और छोटे मालूम होते थे। किन्तु इस युद्ध का निर्णय संख्या और आकार पर निर्भर न था। यदि स्पेनियर्ड अपनी पूरी शक्ति का उपयोग कर पाते तो वे दुर्जेय थे; परन्तु प्रश्न यह था कि वे ऐसा करने में समर्थ भी हो सकते थे?

दोनों बेडों में मौलिक अन्तर था। यदि स्पेनिश बेडा भूत काल का प्रतिनिधि था तो अँगरेजी बेड़ा भविष्य का। भूमध्य सागर के प्रशान्त जल में ही अधिकतर युद्ध करते रहने के कारण स्पेन के जहाज़ समुद्री दुर्ग के समान थे। ये मल्लाहों या कभी-कभी 'गैली' के गुलामों द्वारा सञ्चालित किये जाते थे; परन्तु युद्ध के लिए उन्हें उन सुशिक्षित सैनिकों पर ही निर्भर रहना पड़ता था जिनकी एक बहुत बडी संख्या उनमें आ सकती थी। स्पेन के जहाजों में उनके आकार के अनुसार तोपें और बारूद बहुत कम थीं। परन्तु युद्ध-कला, नौ-संचालन तथा बन्दूक चलाने की क्रिया आदि सभी गौण बातें थीं। उनका मुख्य उद्देश्य तो शत्रु के निकट आ उनके जहाजों पर चढ़ तलवार से युद्ध करना था। स्पेन वालों ने लिपैन्टों के सामुद्रिक महायुद्ध में तुर्कों को इसी प्रकार हराया था।

स्पेन का बेड़ा समुद्र पर एक सेना की भाँति था। अँगरेज़ी जहाज नीचे और छोटे किन्तु मजबूत और द्रुतिगामी थे। इंग्लिश चैनल के तूफानी समुद्र में ऐसे ही जहाज अधिक उपयोगी थे। वे इतने छोटे थे कि शत्रुओं का उन्हें निशाना बनाना तक कठिन था। परन्तु आकार छोटा होने पर भी उनमें तोपें काफ़ी मौजूद थीं और वह दूर से ही इनका प्रयोग करने की क्षमता रखते थे। सोलहवीं शती में तोपें ऊँची नीची नहीं की जा सकती थीं; अतः निशाना मारना पोत-संचालन के कौशल पर निर्भर था। सञ्चालन क्रिया ठीक न होने के कारण मन्द वायु के झोंके में भी स्पेन के जहाज़ हवा के रुख पर घूमते थे। उनके वात भाग की तोप के गोले आकाश में और निर्वात भाग की तोपों के गोले समुद्र में गिरते थे। इसके विपरीत अँगरेज़ों के जहाज़ अधिक समतल होने के कारण अपना काम ठीक करते थे। वास्तव में न तो स्पेन के जहाजों के आकार उतने भयावह थे और न उनकी संख्या ही ऐसी अधिक थी जितनी कि प्रतीत होती थी। १३० जहाजों में युद्ध कुशल जंगी जहाज केवल

५० थे। स्पेनिश सेनापति मेडिना सिडोनिया स्थल युद्ध में बड़ा कुशल था। परन्तु जहाजी बेड़े का संचालन उसके मान की बात न थी। उसने अपनी यह अनभिज्ञता फ़िलिप पर प्रकट कर दी थी तथा अपनी नियुक्ति का विरोध भी किया था। सब से बड़ी बात तो यह थी कि हवा का रुख अँगरेज़ों के पक्ष में था। इसीलिए वे चैनल में आर्मेडा का पीछा कर सके तथा झपट्टे मारकर इच्छानुसार दूर या निकट से लड़ सकते थे। इस लड़ाई में जो भी स्पेनिश जहाज बेक़ाम होते वे पीछे छूट जाते और अँगरेज़ों के हाथ पड़ते थे।

इन बातों की सत्यता तो चैनल में पहुँचने पर ही मालूम हुई। अभी तो बस यही मालूम था कि आर्मेडा चैनल में था। लोगों को सजग करने के लिए पहाड़ियों और टीलों पर आग की ज्वालाएँ प्रज्वलित की गयीं। ७० हज़ार स्वयमूसेवक लंडन में इकट्ठे हुए। एलिजेबेथ ने टिलबरी पर अपने पक्ष का निरीक्षण किया।

एक सप्ताह तक इंग्लैंड ने व्यग्रता पूर्वक आक्रमण की प्रतीक्षा की। आर्मेडा अपनी अव्यवस्थित दशा में ही चैनल में बढ़ता गया। सेन्ट अलबन्स और सेन्ट कैथरीन के निकट उसे शत्रु का सामना करना पड़ा। उसके कुछ जहाज नष्ट अवश्य हुए परन्तु इससे उसकी शक्ति का ह्रास न हुआ। आखिर १७ जुलाई को आर्मेडा ने पारमा की सेना ले लेने के लिए कैले में लंगर डाला। परन्तु पारमा तैय्यार न था क्योंकि डच सेना ने उसे घेर रक्खा था। उसने मेडिना सिडोनिया को लिखा कि यदि किसी प्रकार समुद्र से अँगरेज और डच जहाज़ों को हटाया जा सके तो सब ठीक हो जाय।

मेडिना सिडोनिया और उसके कप्तान इस असन्तोषपूर्ण उत्तर पर विचार ही कर रहे थे कि आठ अग्नि-पोत ज्वार के साथ कैले के मार्गों पर भेजे गये। स्पेन वालों में भय फैल गया। उन्होंने अपने जहाजों के रस्से काट दिये जो तितर-बितर हो, पूरब की ओर चल पड़े। अगले दिन (२६ जुलाई को) केवल १५ जहाज मेडिना सिडोनिया के साथ थे जो उस युद्ध में भाग ले सके। किन्तु उसमें अँगरेजी जहाज़ों से भी अधिक बारूद का अभाव था। इनमें कुछ तो पकड़ लिए गये, कुछ डुबा दिये गये और कुछ स्वयम् समुद्र तल में फँस गये। यदि कहीं हवा का रुख और दक्खिन की ओर न बदल जाता तो यही दशा अन्य सब जहाज़ों की भी हुई होती। शाम तक आर्मेडा परास्त होकर उत्तर की ओर भागने लगा। उसे नष्ट करने का शेष कार्य तूफान और स्काटलैंड तथा आयरलैंड की चट्टानों ने किया। एटलान्टिक सागर में पहुँचने पर एक बार फिर उन्हें परेशानी उठानी पड़ी। सब जहाज स्लिगो की खाड़ी में जा फँसे। जो तट पर उतरे उन पर जंगली आयरिस निवासियों ने बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया। केवल ५३ जहाज स्पेन लौटे।

फ़िलिप ने अपने थके माँदे सिपाहियों को यह कह कर सान्त्वना दी कि मैंने तुम्हें मनुष्यों से युद्ध करने भेजा था, प्रकृति से नहीं।" एलिजेबेथ का भी कुछ ऐसा

ही विचार था। उसने अपने आर्मडा विध्वंस वाले तमगों पर यह लेख खुदवाया—"ईश्वर ने अपने वायु से उन्हें उड़ा दिया और वे तितर-बितर हो गये।" परन्तु वास्तविक बात यह नहीं है। कैले की भगदड़ तक सभी बातें आर्मडा के अनुकूल रहीं, अन्त में आर्मडा नष्ट हो गया। थोड़ी सी बातों पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि यह असफलता कितनी बड़ी थी। पहले दिन की लड़ाई में केवल दो अँगरेज़ मरे और सारे युद्ध में केवल ६०। इस युद्ध में अँगरेजों के जितने सैनिक नष्ट हुए, उससे कहीं अधिक स्पेन वालों के जहाज। वास्तव में जिस प्रकार के युद्ध का स्पेनिश बेड़े को सामना करना पड़ा। उसके लिए वह बिलकुल तैयार न था। अँगरेजी बेड़े का सामना कर वह कभी भी चेनल से होकर पीछे न लौट सकता था। बस उसके लिए केवल एक रास्ता उत्तर से घूम कर जाने का था जिसका निश्चित अर्थ था सर्वनाश।

इस प्रकार जो घोर विपत्ति का बादल कोई ४० वर्षों से इंग्लैंड के ऊपर आ रहा था एक सप्ताह तक बुरी तरह छाया रहा और अन्त में छिन्न-भिन्न हो कर उड़ गया।

## §८—एलिज़बेथ के अन्तिम दिन

युद्ध का अन्त—आर्मडा की पराजय के बाद रानी पन्द्रह वर्ष और राज्य करती रही, और ये पन्द्रह वर्ष वैभव से पूर्ण थे। एक प्रकार से १५८८ ई० में ही एलिजबेथ के शासन की इतिश्री हो जाती है। इंग्लैण्ड की उन्नति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। बड़े-बड़े युद्ध जीते जा चुके थे और रानी और उसके मन्त्रियों की नीति सफल सिद्ध हुई थी। अगली घटनाएँ दो शीर्षकों के अन्तर्गत आ सकती हैं अब तक की विजयों का या तो स्वाभाविक संचयन या अथवा महत्वपूर्ण भविष्य का साधारण प्रारम्भ। यह राशि थी या वपन। इस राशि संचयन में स्पेनिश युद्ध के अवशेष भी आ गये जिसका श्रेय अँगरेज जलनायकों को था। १५८९ ई० में ड्रेक ने पुर्त्तगाल पर धावा किया। १५९० ई० में सर रिचर्ड ग्रेनविल ने "एक और तिरपन" का स्मरणीय युद्ध किया। उसका जहाज रिवेञ्ज चट्टानों से टकरा कर सदैव के लिए समुद्र की भेंट हो गया; पर उसकी तथा उसके नायक की स्मृति तब तक बनी रहेगी जब तक अँगरेज़ी झंडा यूनियन जैक फहराता रहेगा। ड्रेक और हॉकिन्स ने १५९४ ई० में वेस्ट इंडीज पहुँचने का अन्तिम प्रयास किया, किन्तु दोनों की समुद्र पर ही मृत्यु हो जाने के कारण यह प्रयत्न असफल रहा। दो बरस बाद होवर्ड, रेले और एसेक्स ने केडिज पर फिर आक्रमण किया और लंगर डाले हुए स्पेनी जहाजों को नष्ट कर डाला। स्पेन के लिए यह बात बड़ी घातक थी कि इंडीज से आने-जाने वाले प्रत्येक सामान, एटलान्टिक पार करने वाले प्रत्येक जहाज़ और नीदरलैंड को जाने वाली सैनिक सहायता को अँगरेज समुद्री डकैतों से मोर्चा लेना पड़े। फिर इनसे बच निकलना भी कठिन हो गया था। इस प्रकार स्पेन की सम्पत्ति

तथा शक्ति का ह्रास होने लगा। नयी दुनिया से प्राप्त उसकी चाँदी लुट गयी, उसके नीदरलैंड्स के सम्पन्न प्रदेश छिन गये और यह स्पष्टतः दिखायी पड़ने लगा कि उसका ह्रास आरम्भ हो गया है। फ्रान्स में भी स्पेन की नीति असफल रही। नेवार का हेनरी ह्यूगिनो एलिज़ेबेथ की सहायता से गाइज और स्पेनी दल के विरोध करने पर भी सिंहासनारूढ़ हुआ। इस प्रकार उस फ्रान्सीसी शक्ति के निर्माण का सूत्रपात हुआ जिसने इतने समय तक युरोप पर आतंक जमाने वाली हैप्सबर्ग शक्ति का स्थान लिया।

नवीन शाखा—आर्मडा के विध्वंस के बाद ही एलिज़ेबेथ के प्रायः उन सभी पुराने मन्त्रियों की मृत्यु हो गयी जिन्होंने कठिन समय में सच्ची स्वामिभक्ति के साथ उसकी सेवा की थी। लीस्टर, वालशिंगहम, हैटन सब १५६१ ई० तक काल के ग्रास हो चुके थे। सिर्फ बर्ले १५६८ ई० तक जीवित रहा। नये लोगों में राबर्ट सेसिल ने अपने पिता बर्ले की सतर्कता विरासत में पायी; किन्तु सर वाल्टर रैले और एसेक्स उतावले स्वभाव के थे। रैले में वह अद्भुत गुण तथा सौजन्य था जिससे उसने एलिज़ेबेथ की कृपा प्राप्त की। उसमें वह साहसपूर्ण उत्साह था जिसने उसे वर्जीनिया में उपनिवेश बसाने तथा गियाना और ओरीनिको खोज निकालने के लिए प्रेरित किया। परन्तु ड्रेक की भाँति उसमें मनुष्यों के हृदय पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपना अनुगामी बना लेने का गुण न था। एसेक्स, रैले से भी अधिक उच्छृंखल था वह शान्ति स्थापित करने के लिए आयरलैंड भेजा गया, किन्तु उसने युद्ध के स्थान पर प्रधान आयरी नेता टीरोन से यह जानते हुए भी कि रानी इसे कदापि स्वीकार न करेगी, अपमानपूर्ण सन्धि कर ली। वह आयरलैंड से बिना आज्ञा लौट आया और थका-मांदा, कीचड़ से सना सीधा रानी के सामने उपस्थित हुआ। रानी ने उसके इस आचरण से नाराज हो कर उसे दरबार से निकाल दिया। इससे क्षुब्ध होकर एसेक्स ने षड्यन्त्र का सहारा लिया। कुछ कैथलिक अमीरों तथा स्काटों से मिल कर अन्त में उसने लन्दन में विद्रोह कराने का प्रयत्न किया। परन्तु १६०१ ई० में वह बन्दी हुआ और उसे फांसी की सजा मिली।

एसेक्स और रैले के साथ इतिहास की दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं का सम्बन्ध है। यह है आयरलैंड की समस्या और औपनिवेशिक साम्राज्य का प्रारम्भ। एलिज़ेबेथ की नीति का आयरलैंड में कोई फल न हुआ। १७ वीं शती के सारे दुष्परिणाम—विद्रोह, क्रामवेल की विजय तथा विलियम के राज्यकाल के कठिन द्वन्द्व—ही उसकी इस नीति के फल थे। गिलबर्ट और रैले सदृश व्यक्तियों के होते हुए भी एलिज़ेबेथ को उपनिवेश बसाने में कोई सफलता न मिली। उसके शासन के अन्त तक इंग्लैंड समुद्र पार एक इंच भूमि पर भी अपना अधिकार न जमा सका। अस्तु, ब्रिटिश औपनिवेश साम्राज्य का वास्तविक इतिहास आगे चल कर प्रारम्भ होता है। प्यूरिटन दल का उत्थान पार्लियामेन्ट का वह नया उत्साह, जिसने उसमें नये जीवन का संचार किया, १७ वीं शती की दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातें हैं। उनके

चिन्ह भले ही एलिज़ेबेथ के समय में दिखायी देने लगे हों, किन्तु अभी उनका समय नहीं आया था। बहुत से ऐसे लोग थे जिनके विचार में एलिज़ेबेथ की चर्च-व्यवस्था पर्याप्त न थी। ऐसे दुराग्रही भी थे जो किसी प्रकार के भी धर्म संस्थापन के विरुद्ध थे। जो लोग अपनी रुचि के अनुसार धर्मोपदेश की पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते थे, वे उस पर नियन्त्रण होने के कारण बिगड़ उठे। ब्राउनिस्ट, बैप्टिस्ट तथा कार्टराइट के अनुयायी इसी कोटि के व्यक्ति थे। इन्होंने बिशपों की खूब निन्दा की। किन्तु इन सब बातों का सम्बन्ध तो स्टुअर्ट काल से है, ट्यूडर-युग से नहीं।

**रानी और पार्लियामेन्ट**—यही बात पार्लियामेन्ट के विषय में भी कही जा सकती है। कुछ साहसी सदस्य यदा-कदा रानी को अप्रिय राय देने का साहस करते। यह राय प्रायः उसके विवाह के विषय में होती, जिसे वह उपेक्षा पूर्वक अस्वीकार कर देती थी। कभी-कभी तो ऐसे सलाहकारों को कठोर कारावास का पुरस्कार भी मिलता था। उसके शासन के अन्त में भले ही पार्लियामेन्ट की विजय की झलक दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि रानी ने एकाधिकार का ठीका न देने का वायदा किया था। आगामी वैधानिक द्वन्द्व का यह सूत्रपात जरूर था, परन्तु वास्तव में रानी और पार्लियामेन्ट का सम्बन्ध उसके सारे शासनकाल में अच्छा ही रहा। वह शासन रूपी नौका खेती रही और वे चुपचाप देखते रहे। वे उसी समय बोलने का साहस करते जब समझते कि रानी ठीक मार्ग पर नहीं जा रही है। और उसकी समझ में रानी सचमुच ग़लत मार्ग पर थी जब उसने विवाह न करने का निश्चय कर सिंहासन को अपने उत्तराधिकारी से वंचित रक्खा।

**एलिज़ेबेथ काल के साहित्यिक**—इस युग की यह विशेषता है कि इसने नये साहित्य की उस साहित्य शाखा को जन्म दिया, जो 'एलिज़ेबेथ' के नाम से प्रसिद्ध है। सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर, प्रसिद्ध प्रेम-गाथा 'फ़ेयरी क्वीन' (परियों की रानी) का लेखक स्पेन्सर तथा गम्भीर और विद्वान लेखक बेकन इसी युग की देन हैं। धार्मिक लेखकों में हूकर का नाम उल्लेखनीय है। नाटककार क्रिस्टोफर मार्लो कल्पना की उड़ान में शेक्सपियर से किसी प्रकार भी घट कर न था। गीति काव्य लेखकों ने, जिनमें सर विलियम सिडिनी प्रधान था, इंग्लैंड के साहित्य के एक सुन्दर संस्कृत तथा सच्चे स्वरूप को जन्म दिया। इस सब की रचनाओं में अपने युग की एक छटा मिलती है। उन्होंने और विशेषकर शेक्सपियर ने पुरानी गाथाओं के आधार पर रचनाएँ की। कभी-कभी तो वे पुरानी शैली का भी अनुकरण करते प्रतीत होते हैं; परन्तु उन्होंने इस चतुराई से पुरानी बातों का अनुकरण किया है कि वे बिलकुल मौलिक प्रतीत होती हैं। उन सूखी हड्डियों में इस प्रकार जीवन का संचार किया गया कि वे जीती जागती मूर्त्तियाँ बन गयीं। 'एलिज़ेबेथ-साहित्य शाखा का यह ओज मस्तिष्क की सतर्कता, आनन्दमय दृष्टिकोण, प्राचीन शृंखलाओं को तोड़ कर विचारों के नये संसार में प्रवेश तथा दृढ़ देशभक्ति—ये सब एलिज़ेबेथ

काल के प्रत्येक अँगरेज़ की अनुभूति का रूप मात्र है जो इन महान व्यक्तियों द्वारा प्रकट हुआ। प्राचीन रूढियों की शृंखलाएँ टूट गयीं, जीवन अधिक शान्तिमय हुआ, शत्रु पर विजय मिली, नये संसार का द्वार खुला तथा अँगरेज़ों का देश इंग्लैंड सुरक्षित हो गया।

एलिज़ेबेथ का चरित्र—आख़िर महारानी एलिज़ेबेथ का स्वर्गवास हुआ। वह सच्ची ट्यूडर थी। अपने प्रजा को वह अपने मन्त्रियों से अधिक समझती थी। थे तो वह सिद्धान्तहीन पर अपनी नीति में वह भली भाँति सफल रही। रूखे स्वभाव की होने पर भी वह लोकप्रिय थी। जब तक उसने राज्य किया लोगों ने सची लगन से उसकी सेवा की; पर उन्हें पुरस्कृत करने में रानी ने सदा कृपणता ही दिखलायी घमंडी, असत्यभाषी और चंचल होने के साथ कभी-कभी उसके व्यवहार में ओछेपन की भी झलक दिखायी पड़ती थी। परन्तु इन सब अवगुणों के रहते भी वह निस्सन्देह महान थी। उसकी नीति अव्यवस्थित दिखायी पड़ने पर भी चतुरतापूर्ण थी। इंग्लैंड वास्तव में मौके पर तलाश में था। स्थापित चर्च को दृढ़ बनाने के लिए, स्काटलैंड के साथ नया सम्बन्ध निर्धारित करने के लिए तथा उन नाविकों की वंश वृद्धि के लिए जिन्होंने महान् आर्मडा को नष्ट किया था, एक शुभ अवसर की आवश्यकता थी। और एलिज़ेबेथ ने इंग्लैंड को यह अवसर प्रदान किया।

अन्त में इंग्लैंड में एकता और प्रेम स्थापित हुआ। विदेशों में उसकी ख्याति बढ़ी। परन्तु, एलिज़ेबेथ ने देश के लिए सब से अधिक महत्त्वपूर्ण उपहार भेंट किया. वह था इंग्लैंड के सिंहासन का उत्तराधिकारी जेम्स। उसके सिंहासनारूढ़-होने से न तो अमीरों का गृह विद्रोह ही हो सकता था और न रोमन कैथलिकों का अतिक्रम। अब इंग्लैण्ड को फ्रान्स और स्पेन के साथ संघातक उलझनों में फँसने का भय भी न रहा था। इस नयी नीति ने इंग्लैंड और स्काटलैंड को शासन के अन्तर्गत लाकर एकता और राष्ट्र-निर्माण का बीज बो दिया था।

---

# तीसरा प्रकरण

## अध्याय १

### स्टुअर्ट राजा जेम्स और चार्ल्स १म तथा उनकी वैदेशिक-नीति

इंग्लैंड की विकास की प्रत्येक अवस्था पर उसके राजाओं के चरित्र की गहरी छाप पड़ी है; किन्तु उसके इतिहास का कोई भी युग राजाओं के चरित्र से इतना प्रभावित नहीं हुआ जितना कि सत्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध। इस समय देश और विदेश दोनों कठिन समस्याओं में उलझे हुए थे।

जेम्स प्रथम का चरित्र—इंग्लैंड राजाओं में जेम्स प्रथम सब से अधिक विद्वान कहा जाता है। उसने उच्च कोटि की शिक्षा पायी थी। युवावस्था में उसके प्रतिभाशाली होने के लक्षण प्रतीत हो चले थे तथा बाद में भी काफ़ी अच्छी कविताएँ लिखता रहा। उसके भाषण और गद्य-लेख ओजस्वी तथा विद्वत्तापूर्ण होते थे। वह धर्मशास्त्र का अच्छा ज्ञाता और वैदेशिक नीति का प्रकांड पंडित था। वह केवल विद्या-प्रेमी ही न था बल्कि कुशल घुड़सवार तथा हर प्रकार के व्यायामों में पटु था। शिकार का भी उसे अत्यन्त शौक था। उसके मजाक भी बड़े चुभते हुए होते थे। वह साफ दिल तथा गम्भीर विचारों वाला कर्त्तव्यशील व्यक्ति था। युद्ध के उस युग में भी उसका सिद्धान्त शान्ति का था। अत्याचारों के वातावरण में वह सहिष्णुता का हामी था और पोप के साथ समझौता कर धार्मिक कलह का अन्त कर देना चाहता था। उस समय वही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने इंग्लैंड और स्काटलैंड की राजनैतिक एकता के महत्त्व को समझा था।

मैकाले के कथनानुसार तो जेम्स का रूप भद्दा था, उसकी चाल में लँगड़ापन था उसका चेहरा भोंड़ा था। यह बात पूर्णतः ठीक नहीं प्रतीत होती और यदि ठीक भी मान ली जाय तो इसमें जेम्स का दोष ही क्या था? फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उसका व्यक्तित्व आकर्षक न था उसकी सभी आदतें भी दोषरहित न थीं। दुर्भाग्यवश उसके दोष गुणों से बढ़े हुए थे। वह तबियत का सुस्त और परिश्रम से जी चुराने वाला था। किसी बात की तह तक जाने की वह परवाह न करता था। अपने निर्णय में भी वह मुस्तैद न था। इसका प्रमाण उसकी वैदेशिक नीति से मिल जाता है। वह अत्यन्त घमंडी था। खुशामद से उसे कभी सन्तोष ही न होता था। वह शेखीबाज़ तथा बकवादी भी था। जेम्स में न तो सहानुभूति थी,

न परिस्थितियों के समझने का माद्दा। स्काट होने और शुरू से स्काटलैंड में रहने के कारण वह साधारण अँगरेज़ी की साधारण बातों से भी बिलकुल अनभिज्ञ था। फ्रान्स के राजा ने एक बार कहा था कि जेम्स युरोप का सब से विद्वान मूर्ख है। यही शायद उसका उपयुक्त चित्रण भी है।

चार्ल्स प्रथम का चरित्र—चार्ल्स प्रथम में कितने ही सुन्दर गुण थे। उसमें काफी भलमनसाहत थी। अपनी स्त्री तथा बच्चों के लिए उसके हृदय में सच्चा प्रेम था। वह साहित्य और कला का प्रेमी था। शेक्सपियर के साहित्य से उसे विशेष अनुराग था। घरेलू युद्ध के पहले उसकी चित्रशाला सारे युरोप में सर्वोत्तम गिनी जाती थी। राजकाज में वह चुप्पा, ज़िद्दी तथा अपनी ही धुन में मस्त रहने वाला कल्पनाहीन व्यक्ति था। उसकी बात का तो कभी विश्वाश किया ही न जा सकता था। वादे तो वह बहुत करता; परन्तु उनका पालन शायद ही कभी होता था। जब तक किसी को उसकी कूटनीति या वैदेशिक नीति का पूर्ण ज्ञान न हो कोई यह नहीं समझ सकता था कि उसके साथ निपटना कितना कठिन है। वह एक साथ ही कई विरोधी योजनाएँ लेकर चलता जिनके कारण उसकी नीति का असफल होना अवश्यम्भावी था। उसके मस्तिष्क में इतनी अधिक योजनाएँ भरी रहती थीं कि एक का भी कार्यरूप में परिणत होना सम्भव न था।

१६०३ ई० के इंग्लैंड की स्थिति—ये तो हुए दोनों राजाओं के चरित्र, अब यह देखना है कि उन्होंने आने वाली परिस्थितियों का सामना किस प्रकार किया। पहले विदेशी समस्याओं को ही लेना संगत होगा, क्योंकि वैदेशिक नीति में भाग लेने के लिए रुपये प्राप्त करने की इच्छा ने ही दोनों स्टुअर्ट राजाओं का सम्बन्ध उनकी पार्लियामेन्ट के साथ जटिल बनाया। कुछ दृष्टियों से तो सन् १६०३ में इंग्लैंड की स्थिति पहले की अपेक्षा कहीं सुरक्षित थी। स्काटलैंड का जेम्स षष्ठ जब जेम्स प्रथम के रूप में इंग्लैंड के सिंहासन पर बैठा तो सैकड़ों वर्ष से प्रतिद्वन्द्वी रहने वाले देश एक राजा की छत्र छाया में आ गये।

अब तक इंग्लैंड के युरोपीय शत्रुओं के लिए स्काटलैंड की मित्रता काम की सिद्ध हुई थी। जब-जब इंग्लैंड युरोपीय देशों में युद्ध में व्यस्त होता, स्काटलैंड आक्रमण का बड़ा अच्छा अवसर मिलता था। इन अवसरों से लाभ उठाने में वह चूकता भी न था। लेकिन अब तो स्काटलैंड इंग्लैंड के शत्रु से मित्र बन गया था। सब से बडी बात तो यह थी कि अब सिंहासन का कोई प्रतिद्वन्द्वी भी न था जिसे लेकर विदेशी राष्ट्र ऊधम मचाते। इसलिए इंग्लैंड की गद्दी बिलकुल सुरक्षित प्रतीत होती थी। स्पेन का तो अब कोई भय रह ही न गया था। एलिज़ेबेथ के ज़माने की स्पेन की महत्वाकांक्षा और फिर बाद में फ्रान्स की महत्वाकांक्षा के कारण इंग्लैंड को अपनी वैदेशिक नीति पर विशेष ध्यान देना पड़ा था। परन्तु अब इंग्लैंड के लिए कोई आशका न रही थी। इसलिए इस ज़माने में इंग्लैंड युरोपीय झंझटों से दूर रहा।

**वैदेशिक नीति १६१८ ई० के पूर्व**—सन् १६१८ से पहले जेम्स प्रथम की नीति उल्लेखनीय नहीं है क्योंकि १६१२ ई० तक उसकी मृत्यु पर्यन्त जेम्स के मन्त्री लार्ड सेलिस्बरी की ही धाक जमी रही। उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण शान्ति की नीति का अनुसरण किया। लार्ड सेलिस्बरी की मृत्यु के पश्चात् जेम्स ने अपनी दो सन्तानों के विवाह की योजना की। उसने अपनी पुत्री एलिजेबेथ का विवाह जर्मनी के कालवेनिस्टिक सम्प्रदाय के नेता, विलियम ऑव आरेंज के पौत्र, राइन के इलेक्टर पैलेटिन से अपने पुत्र चार्ल्स का विवाह स्पेन की कैथलिक राजकुमारी के साथ करने की बात सोची। इसी विचार से उसने १६१७ ई० में इन देशों से बातचीत शुरू की। इसका कोई विशेष फल तो न हुआ, परन्तु इससे जेम्स की प्रजा सशंक तथा क्रुद्ध हो गयी।

उधर १६१८ ई० में जर्मनी में तीस वर्षीय युद्ध छिड़ गया। बढ़ते-बढ़ते इसने एक महान युरोपीय युद्ध का रूप धारण कर लिया और धीरे धीरे युरोप के सारे प्रधान राज्य, इसमें सम्मिलित हो गये। इस युद्ध को तथा इसमें ग्रेट ब्रिटेन के भाग को समझने के लिए उस समय की जर्मनी की दशा जानना आवश्यक है।

**जर्मनी की दशा और बोहीमियन निर्वाचन (१६१६ ई०)**—१७वीं शती में जर्मनी में कोई ३०० रियासतें थीं। इनका एक संघ था। यह संघ था पवित्र रोमन साम्राज्य। इसका अध्यक्ष एक निर्वाचित सम्राट होता था जो जीवन पर्यन्त इस पद पर आसीन रहता। जर्मनी के विधान के लिए भिन्न-भिन्न राज्यों के भिन्न-भिन्न विचार थे। कुछ तो संघ को और संगठित करने तथा सम्राट की शक्ति बढ़ाने के पक्ष में थे और कुछ इसके विरुद्ध। परन्तु सबसे बड़ी विभिन्नता प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथलिकों के बीच थी। उत्तर जर्मनी में प्रोटेस्टेन्टों की तथा दक्खिन जर्मनी में कैथलिकों की प्रधानता थी।

सन् १६१६ में एक ऐसी घटना हुई जिसने बहुत ही निकट परिस्थिति उत्पन्न कर दी। अब तक हैप्सवर्ग घराने का प्रधान व्यक्ति ही जर्मनी का सबसे बड़ा नेता माना जाता था और वही सम्राट् भी चुना जाता था। वह आस्ट्रिया के विशाल राज्य पर ही नहीं वरन् हंगरी पर भी शासन करता था। इसके अतिरिक्त वह बोहीमिया का भी राजा होता था। परन्तु बोहीमिया का राजा भी हंगरी की भाँति निर्वाचन द्वारा चुना जाता था। हैप्सवर्ग घराना कट्टर कैथलिक और बोहीमिया के सरदार प्रधानतः प्रोटेस्टेन्ट थे। १६१६ ई० में सम्राट् की मृत्यु पर बोहीमिया के सरदारों ने एक दूसरे वंश को राजमुकुट समर्पित करने का निश्चय किया। उन्होंने जेम्स के दामाद प्रोटेस्टेन्ट मतावलम्बी पैलेटिन के इलेक्टर फ्रेड्रिक को राजा बनाया। फ्रेड्रिक ने इस सम्बन्ध में जेम्स की भी राय माँगी; परन्तु जेम्स जल्दी किसी निर्णय पर न पहुँच सका। अस्तु फ्रेड्रिक ने बिना उसकी सम्मति के ही राज मुकुट स्वीकार कर लिया। इसी के कारण तीस वर्षीय युद्ध आरम्भ हुआ।

**तीस वर्षीय युद्ध का प्रारम्भ ( १६१६-२२ ई० )**—जर्मनी के कैथलिक राज्यों ने संगठित रूप से आस्ट्रियन साम्राज्य के अधिपति नये सम्राट् फर्डिनैंड के बोहीमिया के उत्तराधिकार का समर्थन किया। इसके विपरीत, जर्मनी के प्रोटेस्टेन्ट

तीस बरसी युद्ध के समय का मध्य यूरोप
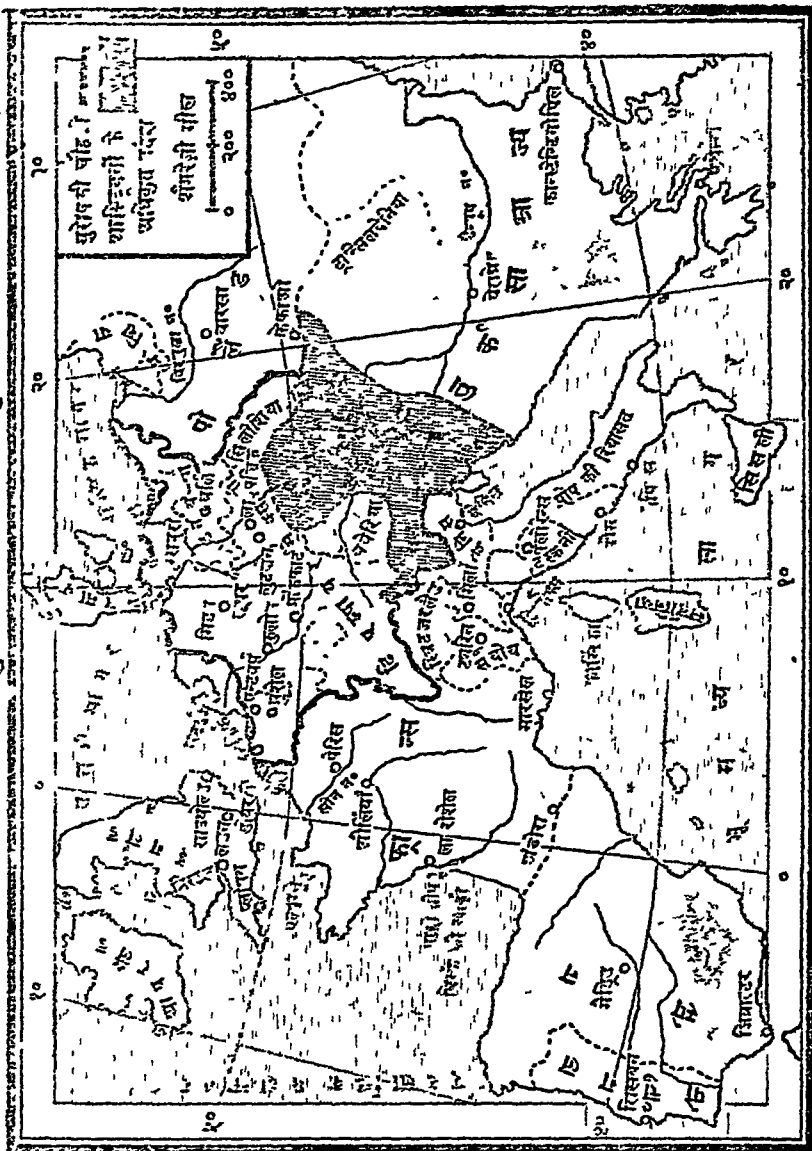
राजाओं ने दिल खोलकर फ्रेड्रिक की सहायता न की। परिणाम यह हुआ कि व्हाइटहिल की लड़ाई में एक घन्टे से भी कम समय में उसकी फौजें परास्त हुईं और १६२० ई० में उसे बोहीमिया से निर्वासित होना पड़ा परन्तु इस झगड़े का यहीं

अन्त न हुआ। बवेरिया के ड्यूक फ्रेड्रिक के राज्य के अपने सीमावर्ती भाग (अपर पैलेटिनेट) पर १६२१ ई० में आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसी प्रकार १६२२ ई० में स्पेन के राजा ने लोअर पैलेटिनेट पर अधिकार कर लिया। अस्तु, युद्ध का प्रारम्भिक फल यह हुआ कि फ्रेड्रिक ने अपने नये राज्य को ही नहीं गँवाया वरन् उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति से भी हाथ धोना पड़ा।

इंग्लैण्ड की नीति—इंग्लैण्ड का लोकमत अँगरेज राजकुमारी एलिजेबेथ के प्रोटेस्टेन्ट पति फ्रेड्रिक को सहायता देने के पक्ष में था। जनता चाहती थी कि गवर्नमेन्ट प्रोटेस्टेन्ट नीति से काम ले और फ़ौरन स्पेन के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे। यदि स्पेन के राजा को विश्वास हो जाता कि पैलेटिनेट पर अधिकार करने से इलैंड से शत्रुता मोल लेनी होगी तो वह स्वप्न में भी पैलेटिनेट विजय की न सोचता। परन्तु, उसका दूत गांडोमर जेम्स की बुजदिली और अनिश्चित विचारों से भली भाँति परिचित था, तथा खुशामदों से उसे वश में कर लेने की कला में भी पटु था। यही कारण है कि यद्यपि अँगरेज स्वयमूसेवक युद्ध के लिए युरोप गये और कामन्स सभा में फ्रेड्रिक के पक्ष में प्रस्ताव भी पास हुए पर इन सब का कोई विशेष फल न हुआ।

जेम्स वास्तव में युरोप का शान्ति-विधायक बनना चाहता था। इस सम्बन्ध में उसने कितने ही दूत युरोप भेजे; परन्तु उसे यह कभी ध्यान न आया कि सैनिक-शक्ति के बिना कूटनीति का कोई महत्त्व नहीं था उस समय की जर्मनी के कैथलिक और प्रोटेस्टेन्टों के झगड़ों का निपटारा न्यायालय की शक्ति के बाहर की बात थी।

स्पेन का विवाह तथा सन् १६२३ की मैड्रिड यात्रा—जब जेम्स स्पेन को पैलेटिनेट पर अधिकार करने से न रोक सका तो उसने उसे विवाह-सम्बन्ध द्वारा वश में करने की बात सोची। अस्तु, उसने स्पेन की राजकुमारी के साथ अपने पुत्र चार्ल्स के विवाह की बातचीत फिर से आरम्भ कर दी। सन् १६२३ में चार्ल्स और जेम्स का पिट्ठू बकिंगहम टाम और जॉन स्मिथ के रूप में स्पेन की राजकुमारी से मिलने के लिए एक रात को मैड्रिड पहुँचे। इनफ़ैन्टा से मुलाकात करने का चार्ल्स को केवल एक अवसर मिला और एक दिन जब इनफैन्टा अपनी वाटिका में घूम रही थी, चार्ल्स गुप्त भेंट के लिए बाग़ में कूद गया। परन्तु इनफ़ैन्टा चीख़ती हुई भाग गयी। पैलेटिनेट के अधिकार को छोड़ देना तो दूर रहा, स्पेन के राजनीतिज्ञों ने उलटे चार्ल्स से इंग्लैंड के कैथलिकों के लिए रियायतों की मांग पेश की। चार्ल्स ने सभी माँगों को स्वीकार कर लिया; यद्यपि वह भली भाँति जानता था कि उनका पूरा करना सम्भव न था। आखिर, स्पेन की राजकुमारी से ब्याह किये बिना ही चार्ल्स निराश होकर इंग्लैंड वापिस लौटा और उसकी इस असफलता पर सारे देश में खुशियाँ मनायी गयीं।

पैलेटिनेट की रणयात्रा (१६२४ ई०)—बकिंगहम और चार्ल्स अब

पैलेटिनेट के पुनरुद्धार के लिए युद्ध के पक्ष में थे। आखिर जेम्स राजी हो गया तथा पार्लियामेन्ट ने भी खर्च मंजूर कर दिया। १६२४ ई० में एक सेना तैयार हुई; परन्तु यह सेना वास्तव में बिलकुल नये रँगरूटों तथा भुक्खड़ों की भीड़ मात्र थी। इस पर भी सन् १६२५ में यह एक दूसरे ही मोर्चे पर भेज दी गयी। इसी वर्ष जेम्स की मृत्यु हुई और पैलेटिनेट बराबर स्पेन के ही अधिकार में रहा।

**चार्ल्स प्रथम का युद्ध में पदार्पण ( १६२५ ई० )**—जब चार्ल्स सिंहासन पर बैठा तो जर्मनी में प्रोटेस्टेन्ट अपनी सत्ता के लिए लड़ रहे थे। परन्तु डेनमार्क का राजा अब प्रोटेस्टेन्ट धर्म की रक्षा का बीड़ा उठा चुका था। चार्ल्स ने जर्मनी में युद्ध के लिए ३ लाख ६० हजार पौंड देने का वचन दिया, परन्तु ४६ हजार पौंड की पहली किश्त ही दे पाया। इसके दो कारण थे। एक तो चार्ल्स को अपनी ही गलती से पार्लियामेन्ट से कम खर्च मिला; दूसरे उसने तथा बकिंगहम ने सोचा कि स्पेन के बन्दरगाहों पर आक्रमण करने से जर्मनी के प्रोटेस्टेन्टों को बड़ी सहायता पहुँचेगी तथा पैलेटिनेट का उद्धार भी हो सकेगा। वास्तव में, स्पेन के राजा पर आक्रमण कर फेड्रिक का राज्य लौटाने के लिए सम्राट् पर दबाव डालने की यह एक टेढ़ी चाल थी। अँगरेज जनता स्पेन के साथ समुद्री लड़ाई के लिए उत्सुक थी और जर्मनी में युद्ध करने की अपेक्षा यह आसान भी था। अस्तु, केडिज के आक्रमण की योजना बनायी गयी। इसका ध्येय ड्रेक की भाँति नगर को उजाड़ना तथा अमेरिका से आने वाले सोने-चाँदी से भरे हुए जहाजों को लूटना था। परन्तु यह आक्रमण बिलकुल असफल रहा। न तो केडिज़ पर अधिकार ही हुआ और न सोने चाँदी के जहाज़ ही लूटे जा सके। डेनमार्क का राजा इग्लैंड से धन की सहायता न मिलने के कारण सिपाहियों का वेतन भी न चुका सका। सेना वेतन के लिए व्यग्र थी। इससे बाध्य होकर उसे लड़ाई छेड़नी पड़ी जिसमें वह बुरी तरह पराजित हुआ और १६२६ ई० में अपने देश को लौट गया। इस प्रकार ३० वर्षीय युद्ध में चार्ल्स के प्रथम प्रयत्न असफल रहे।

**फ्रान्स के साथ कठिनाइयाँ ( १६२५ ई० )**—चार्ल्स को फ्रान्स की ओर से भी काफी परेशानियाँ उठानी पड़ीं। अपने पिता के राज्यकाल के अन्त में एक फ्रान्सीसी राजकुमारी हेनरियाटा मेरिया से उसकी सगाई हुई थी। सिंहासन पर बैठने के पश्चात् उसने उसका पाणिग्रहण किया। विवाह-सन्धि की शर्तों के अनुसार इंग्लैंड के रोमन कैथलिकों को सुविधाएँ देने के वायदे किये गये। जेम्स ने भी मृत्यु के थोड़े ही दिन पूर्व फ्रान्स के राजा को जहाज़ मँगनी देने का वायदा किया था। फ्रान्स के राजा लुई तथा उसके प्रसिद्ध मन्त्री रिशलू इन जहाजों का उपयोग फ्रान्स के प्रोटेस्टेन्ट ( ह्यूजिनो ) के विरुद्ध करना चाहते थे। अपने पिता के वायदों से बचने [illegible]लिए चार्ल्स के सारे प्रयत्न तथा बहाने बेकार हो गये। उसे लाचार होकर जहाज [illegible] भेजने ही पड़े। इस पर इग्लैंड वासियों ने अत्यन्त रोष प्रकट किया।

**[illegible]रूही की समर-यात्रा और बकिंगहम का वध**—अब फ्रान्स के राजा ने

इंग्लैंड के कैथलिकों को भी सुविधाएँ दिये जाने पर ज़ोर दिया। इसका फल यह हुआ कि धीरे-धीरे दोनों देशों में युद्ध की नौबत आ गयी। फ्रान्स का राजा फ्रांस के पच्छिमी तट पर ला रोशेल के ह्यूजिनों के गढ़ का घेरा डाले पड़ा था। घिरे हुए ह्यूजिनों की सहायता के लिए बकिंगहम स्वयम् एक सेना के साथ रही द्वीप का एक किला विजय करने के लिए भेजा गया। उस समय इंग्लैंड में कोई स्थायी सेना न रखी जाती थी। जब सेना एकत्रित करने की आवश्यकता होती तो प्रत्येक काउन्टी को सिपाहियों की एक निश्चित संख्या देनी पड़ती थी। ऐसे अवसरों पर देश हित के नाम बदमाशों और गुंडों की सेना में भर्ती करने से कोई न चूकता था। बकिंगहम की सेना भी ऐसे ही लोगों की थी। फिर इस तरह के रंगरूटों से सफलता की क्या आशा हो सकती थी? फिर भी बकिंगहम के प्रयत्न सराहनीय हैं। उसने अपने सिपाहियों में साहस का संचार किया। परन्तु फ्रान्सीसियों ने किले में फिर से खाद्य सामग्री जमा कर ली और विरोधी हवाओं के कारण इंग्लैंड से सहायता न आ सकी, अन्यथा सम्भव है वह सफलता प्राप्त कर लेता।

इस तरह बकिंगहम कलंक का टीका लेकर फ्रान्स से वापिस लौटा। अब वह दूसरे आक्रमण की योजना करने में लगा था कि फेल्टन नाम के एक असन्तुष्ट अफसर ने छुरा भोंक कर उसके जीवन नाटक पर सदा के लिए परदा डाल दिया।

चार्ल्स की कार्य शिथिलता—( १६२६-४० ई० )—बकिंगहम की मृत्यु के पश्चात् उत्साह तथा उद्योगशीलता की नीति एकाएक शिथिल हो गयी। एक ही साथ चार्ल्स कभी फ्रान्स के साथ स्पेन के विरुद्ध कभी स्पेन के साथ फ्रान्स के विरुद्ध सन्धि का प्रस्ताव करता। कभी वह प्रोटेस्टेन्ट धर्म के नये रक्षक स्वीडन नरेश गुस्टवस एडाल्फस को सहायता देने का वचन देता तो कभी डेनमार्क के राजा को। परिस्थितियाँ भी ऐसी थीं कि उद्योगशील तथा उत्साहपूर्ण नीति का अनुसरण करना सम्भव न था। पहले तो अपनी योजनाओं को कार्यरूप में परिणित करने के लिए चार्ल्स को रुपये की आवश्यकता थी। फिर अपनी प्रजा के ही साथ चार्ल्स ऐसे झंझट में उलझ गया था कि उसे बाहरी बातों के लिए अवकाश न मिला। परिणाम यह हुआ कि चार्ल्स के शेष शासनकाल में ग्रेट ब्रिटेन का प्रभाव वैदेशिक मामलों में नगण्य हो गया।

तीस वर्षीय युद्ध का उत्तरार्द्ध—अब ग्रेट ब्रिटेन की तीस वर्षीय युद्ध में कोई दिलचस्पी न रही और न ही इस युद्ध का उस पर कोई प्रभाव पड़ा। कुछ समय तक तो गुस्टवस एडाल्फस को आश्चर्यजनक सफलता मिली; परन्तु सन् १६३२ में लुटजेन के प्रसिद्ध युद्ध क्षेत्र में वह मारा गया। अब प्रोटेस्टेन्ट धर्म बड़े संकट में पड़ गया। परन्तु रिशलु जो फ्रान्स में प्रोटेस्टेन्टों का मूलोच्छेद करना चाहता था, हैप्सबर्ग घराने को अशक्त बनाने के अभिप्राय से जर्मनी के प्रोटेस्टेन्टों को सैनिक सहायता देने के लिए तैयार हो गया। युद्ध के अन्तिम दिनों में फ्रान्सीसी सेनाओं ने बड़ी सरगर्मी दिखायी और उन्हें आशातीत सफलता मिली। आखिर १६४८ ई० में युद्ध

का अन्त हुआ। फ्रान्स और स्वीडन को जर्मन अधिकृत प्रदेशों का बहुत बड़ा भाग मिला। जर्मनी के प्रदेश पहले से भी और अधिक असम्बद्ध तथा स्वतन्त्र हो गये और इस प्रकार इस युद्ध में जर्मन तथा जर्मनी जाति को सैकड़ों वर्ष के लिए पंगु बना दिया। जब सन् १८८० ई० में प्रशिया के महान राजनीतिज्ञ बिसमार्क ने इस युद्ध के सम्बन्ध में कहा, कि जर्मनी अब भी उस युद्ध के परिणामों का फल भोग रहा है तो उसने अधिक अत्युक्ति से काम न लिया था।

**अँगरेज़ नीति की असफलता तथा उसके कारण**—यह तो स्वीकार ही करना पड़ेगा कि सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में इंग्लैंड की वैदेशिक नीति बिलकुल निकम्मी तथा प्रभावशून्य थी। इसके कई कारण हो सकते हैं। इंग्लैंड की कोई स्थायी सेना न थी। इसलिए अँगरेज़ कूटनीति के पीछे किसी प्रबल शक्ति का अभाव था। फिर यदि इंग्लैंड किसी युद्ध में सम्मिलित होता तो जल्दी में सिखाये हुए उसके सिपाही, अनुभवी सैनिकों के सामने कदापि न ठहर सकते। अँगरेज़ी पार्लियामेन्ट यद्यपि युद्ध के लिए तय्यार थी, परन्तु उसने जेम्स या चार्ल्स किसी को भी सुचारू रूप से युद्ध चलाने के लिए आवश्यक धन न दिया। दुर्भाग्य ने अँगरेज़ों के प्रयत्नों का साथ न छोड़ा। फिर भी अँगरेज़ नीति की असफलता का प्रधान कारण है जेम्स और चार्ल्स का चरित्र। जेम्स की अनिश्चित तथा भीरु और चार्ल्स की कुटिल तथा विरोधी नीतियों का परिणाम असफलता के सिवाय और क्या हो सकता था? इंग्लैंड की असफलता से लाभ फ्रान्स जर्मन, प्रोटेस्टेन्टों का सहायक बन वह धाक जमाने में समर्थ हुआ कि १७वीं शती के समाप्त होते-होते युरोप के प्रत्येक देश की स्वतन्त्रता खतरे में दिखायी देने लगी।

---

# अध्याय २

## जेम्स प्रथम और घरेलू उलझनें

### §१ राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र

**जेम्स प्रथम और बाई तथा मेन के षड्यन्त्र ( १६०३ ई० )**—अब हमें यह देखना है कि प्रथम दो स्टुअर्ट राजाओं के समय में इंग्लैंड की आन्तरिक दशा कैसी थी? एलिज़बेथ के जीवनकाल में ही इंग्लैंड के सिंहासन के और भी उत्तराधिकारी थे; परन्तु भाग्य ने जेम्स का ही हाथ पकड़ा और जनता ने एक स्वर से उसका समर्थन किया। फिर भी जेम्स का मार्ग निष्कंटक न था। उसके विरुद्ध तीन षड्यन्त्र रचे गये और तीनों असफल रहे। पहला तो बिलकुल बेहूदा था। यह बाई प्लाट कहलाता है। इसका ध्येय जेम्स को ग्रीनिविच भगा ले जाना तथा लन्दन के टॉवर पर अधिकार करना था। परन्तु कैथलिक षड्यन्त्रकारियों में से ही एक ने

सरकार को इसकी सूचना दे दी। इस षड्यन्त्र के भंडाफोड़ से एक और षड्यन्त्र का पता चला जिसे मेन का षड्यन्त्र कहते हैं। इसका ध्येय था लेडी अराबेला स्टुअर्ट को स्पेन की सहायता से इग्लैंड के सिंहासन पर बैठाना। परन्तु, ऐसा कोई षड्यन्त्र था भी इसमें सन्देह है। जेम्स की ही भाँति लेडी अराबेला भी हेनरी सप्तम की बड़ी लड़की मारग्रेट की वंशज थी। परन्तु चूँकि उसका जन्म इंग्लैंड में हुआ था, इससे कुछ लोगों के विचार में जेम्स की अपेक्षा इग्लैंड के सिंहासन पर उसका अधिकार अधिक था।

सर वाल्टर रेले—मेन के षड्यन्त्र के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि एलिजेबेथ के दरबार का प्रसिद्ध नाविक तथा आविष्कारक सर वाल्टर रैले इस षड्यन्त्र में सम्मिलित होने का अपराधी ठहराया गया। एक अत्यन्त अनीतिपूर्ण जाँच के पश्चात् विद्रोह के अपराध में उसे फाँसी की सजा दी गयी। परन्तु, कुछ समय के लिए मृत्यु-दंड स्थगित कर उसे टॉवर में कैद कर दिया गया। उसने अपनी कैद का यह समय संसार का एक इतिहास लिखने और रासायनिक प्रयोग करने में ख़र्च किया। १३ वर्ष पश्चात् सन् १६१६ में ओरीनिको नदी की उपत्यका में सोने की खान ढूँढ़ निकालने के उद्देश्य से उसे स्वतन्त्र कर दिया गया; परन्तु उसकी यात्रा असफल रही। उसके जहाजों के मल्लाह निकम्मे थे। अच्छे अच्छे अफसर बीमारी के कारण काल के ग्रास बन गये। वह स्वयम् बीमारी की वजह से नदी के उद्गम स्थान की ओर न जा सका और सबसे बड़ी दुर्भाग्य की बात यह हुई कि नदी तट पर रास्ते में स्पेनवासियों ने एक नगर बसा लिया था। रेले के अनुयायियों तथा स्पेनवालों में झगड़ा हो गया जिसमें बहुत से स्पेनी लोग मारे गये। उसके इंग्लैंड वापिस लौटने पर स्पेनी राजदूत ने उसके दंड के लिए ज़मीन आसमान एक कर दिया। उन दिनों जेम्स अपने पुत्र चार्ल्स तथा स्पेनी राजकुमारी के विवाह की बात-चीत में लगा हुआ था। अस्तु, १६१८ ई० में विद्रोह के पुराने अपराध में उसने रेले को प्राणदंड दिया। जेम्स का यह निन्दनीय कार्य इंग्लैंड के इतिहास में कलंक के काले अक्षरों से सदा अंकित रहेगा।

सन् १६०५ का षड्यन्त्र, गनपाउडर प्लाट—तीसरा षड्यन्त्र गनपाउडर प्लाट के नाम से प्रसिद्ध है। रोमन कैथलिकों को स्काटों की रानी मेरी के पुत्र से बहुत कुछ आशा थी, और सिंहासन पर बैठने के समय जेम्स का झुकाव भी सहिष्णुता की ओर था। उसने रोमन कैथलिकों को उन भारी जुर्मानों से मुक्त कर दिया था जो अपने इलाके के गिरजाघरों में न जाने के कारण २० पौंड प्रति मास से लेकर दो-तिहाई जायदाद की जब्ती तक होते थे। इसका तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि रोमन कैथलिक पादरियों का दल का दल मधु-मक्खियों के समान इंग्लैंड में टूट पड़ा। छः महीने के भीतर डेढ़ सौ के लगभग पादरी आ पहुँचे। आख़िर, जेम्स को बाध्य होकर

फिर से जुर्माना बहाल करना और पादरियों को देश से निर्वासित करना पड़ा। इस पर कुपित होकर कैथलिकों ने १६०५ ई० का गनपाउडर प्लाट रचा।

इसका नेता राबर्ट कैट्सबी एक विलक्षण पुरुष था। उसमें लोगों को आकर्षित करने की क्षमता थी। परन्तु, वह दुराग्रही था और कैथलिकों के प्रति किये गये अत्याचारों ने उसे पागल बना दिया था। षड्यन्त्रकारियों में गाई फाक्स भी था जो प्राचीन यार्कशायर घराने का था। नीदरलैंड के युद्धों में भी वह शरीक हुआ था। इस षड्यन्त्र की योजना थी कि जब दोनों सभाओं के सदस्य और राजा एकत्रित हों उस समय हाउस ऑव लार्ड्स को बारूद से उड़ा दिया जाय और उसके बाद जेम्स के पुत्र चार्ल्स को राजा घोषित कर कैथलिक गवर्नमेन्ट स्थापित की जाय। षड्यन्त्रकारियों ने पहले तो एक समीप के घर से हाउस ऑव लार्डस के नीचे-नीचे सुरंग खोदी। उसके बाद उन्होंने हाउस ऑव लार्ड्स के नीचे की मंजिल में एक कमरा किराये पर लिया और वहाँ पीपों के अन्दर लगभग दो टन बारूद भरकर रख दी। परन्तु षड्यन्त्रकारियों में से एक ने इस भयानक कांड के परिणाम से घबड़ाकर अपने एक भाई को जो हाउस ऑव लार्ड्स का सदस्य था इस षड्यन्त्र की सूचना दे दी। उसने वह पत्र सरकार को दे दिया। फलस्वरूप पार्लियामेन्ट की बैठक होने से एक दिन पहले रात के समय बारूद समेत गाइ फाक्स पकड़ लिया गया और अपने सब साथियों समेत लड़ता हुआ मारा गया। इसका फल यह हुआ कि रोमन कैथलिकों के लिए बड़े कड़े कानून बना दिये गये। उदाहरण के लिए उन्हें सब पेशों से निकाल दिया गया और आवश्यक कार्य बिना लन्दन के दस मील के भीतर प्रवेश करने की मनाही कर दी गयी। परन्तु इन कानूनों का अमल बहुत सख्ती से न हो सका।

## २. राजा के मन्त्रीगण

**लार्ड सेलिस्बरी का मन्त्रित्व ( १६०३-१२ ई० )**—जेम्स ने सिंहासन पर बैठने के बाद एलिजेबेथ के महान मन्त्री लार्ड बर्ले के पुत्र राबर्ट सेसिल को अपना प्रधान मन्त्री बनाया और उसे अर्ल की उपाधि दी। जेम्स उसे बौना कहा करता था। वह आर्थिक विषयों में प्रवीण, पार्लियामेन्टरी मामलों का कुशल प्रबन्धक, अत्यन्त अध्यवसायी तथा विवेकशील व्यक्ति था। १६१२ ई० मे अपनी मृत्यु के समय तक उसने देश के लिए बड़ा काम किया तथा वैदेशिक नीति के संचालन में भी उसका बड़ा हाथ रहा।

**जेम्स के कृपापात्र कार और बकिंगहम ( १६१२-२५ ई० )**—सेलिस्बरी की मृत्यु के पश्चात जेम्स ने अपने कृपापात्रों को राज्यकार्य चलाने के लिए नियुक्त किया। वह यारबाश तो था ही, परन्तु उसका विचार था कि अपने विश्वासपात्रों के द्वारा वह बिना किसी झंझट के निरकुश शासक हो सकेगा। पहले उसने कार नामक एक स्कॉट की नियुक्ति की। उसे राचेस्टर का लार्ड तथा बाद मे समरसेट का अर्ल

बनाया। लार्ड एसेक्स की पत्नी ने कार के साथ विवाह करने के लिए अपने प्रथम पति को तलाक दे दी। बाद में कार तथा उसकी नव पत्नी ओवरबरी नाम के एक व्यक्ति की हत्या के ज़िम्मेदार ठहराये गये। ओवरबरी, कार का घनिष्ट मित्र था। उसने कार का लेडी एसेक्स के साथ विवाह करने का विरोध किया था। इसका बदला लेने के लिए लेडी एसेक्स ने ओवरबरी को विष मिले पकवान खिला दिये। इस पर जेम्स ने १६१६ ई० में कार को बर्ख़ास्त कर दिया और ६ वर्ष तक उसे टावर में कैद रक्खा।

कार के बाद जेम्स ने जार्ज विलियर्स को नियुक्त किया जो ड्यूक ऑव बकिंगहम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसका व्यक्तित्व आकर्षक तथा व्यवहार रुचिकर और मुग्धकारी था। एबट तथा लॉड जैसे बड़े आदमियों से उसकी मित्रता थी। बेकन तथा सर जॉन इलियट भी उसके साथी थे। बेकन उसके द्वारा अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा पूरी करना चाहता था। सर जान इलियट ने आखिर में उसके ऊपर अभियोग चलाया। वह बड़ा साहसी सैनिक और उत्साही लार्ड हाई ऐडमिरल था लेकिन उसकी उन्नति इतनी तेजी से हुई कि इसने उसके चरित्र को दूषित कर दिया और वह इतना उतावला और चंचल हो गया कि राजनीतिक के रूप में कभी सफल न हो सकता था। यदि यह कहा जाय कि वह इंग्लैंड के सभी समय के सभी मन्त्रियों में अयोग्य था तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। विलियर्स का पहले राजाश्रय फिर पुरस्कार प्रदान करने वाले विभागों से सम्बन्ध था और जेम्स के शासन-काल के अन्तिम दिनों में ही राजा की नीति पर उसका बहुत प्रभाव पड़ने लगा था।

फ्रान्सिस बेकन (१५६१-१६२६ ई०)—प्रसिद्ध लेखक तथा दार्शनिक, बेकन, इन सब में सब से योग्य व्यक्ति था। उसके विचार बड़े उदार थे। वह एकतन्त्रवाद का समर्थक था। परन्तु यह केवल इसलिए कि इस प्रकार की राज्यप्रणाली से उसे बड़ी आशाएँ थीं। वह राजा और पार्लियामेन्ट के बीच अच्छे सम्बन्ध की बड़ी आवश्यकता समझता था। उसके मतानुसार पार्लियामेन्ट का कर्तव्य राजा के पास प्रजा की दशा का समाचार पहुँचाना और राजा का कर्तव्य पार्लियामेन्ट के द्वारा प्रजा को अपनी नीति जताते रहना था। जेम्स के राज्य के प्रारम्भिक वर्षों में बेकन अपने चचेरे भाई लार्ड सेलिस्बरी की व्यक्तिगत ईर्ष्या के कारण न बढ़ सका। पर सेलिस्बरी की मृत्यु के पश्चात् वह सन् १५१३ में एटार्नी जनरल हुआ और सन् १६१८ से १६२१ ई० तक लार्ड चान्सलर रहा। इन पदों पर रह कर उसका युद्ध के कानूनी पक्ष पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि जजों को राजा का समर्थक होना चाहिए। न्याय सम्बन्धी मामलों में वे सिंह जैसे निर्भीक हों परन्तु राजा का उन पर अंकुश ज़रूर रहे।

## § ३. राजा और प्रोटेस्टेन्ट दल

धार्मिक समस्या और ऐंग्लिकन सम्प्रदाय—उन दिनों धार्मिक विषयों की चरचा को ही लोग सबसे अधिक महत्व देते थे। सिंहासन पर बैठते ही सबसे पहले

जेम्स का ध्यान भी इसी ओर आकर्षित हुआ। कैथलिकों के प्रति उसकी सहिष्णु नीति का प्रारम्भ और उसकी असफलता का हाल हम पढ़ चुके हैं। अब प्रोटेस्टेन्टों के प्रति उसके व्यवहार को देखना भी उचित है। १७वीं शती में प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय की कई शाखाएँ थीं। एक थी ऐंग्लिकन, जो उस समय आर्मिनियन शाखा कहलाती थी। इंग्लैंड के चर्च की यह शाखा काफ़ी दृढ़ थी। आगे चल कर आर्कबिशप लॉड इसका नेता हुआ। राजनीति के क्षेत्र में इस शाखा के सदस्यों का विश्वास था राजा के दैवी अधिकार में और चर्च के प्रबन्ध में। वे बिशपों के अधिकार के समर्थक थे। कम्यूनियन सर्विस (सामूहिक प्रार्थना) को भी वे दैवी कृपा का साधन मानते थे। लॉर्ड की असहिष्णुता और इसके सदस्यों के आडम्बरों के कारण ऐंग्लिकन सम्प्रदाय के विरोधी सन्देह की दृष्टि से देखे जाते थे। यदि वे रोम के चर्च के सहचारी नहीं तो कम से कम उससे सहानुभूति रखने वाले अवश्य समझे जाते थे। परन्तु उस समय की ऐंग्लिकन सम्प्रदाय के सदस्यों में कवि जार्ज हरबर्ट, तथा विनचेस्टर के बिशप लैन्सलाट ऐंड्रूज़ के सदृश कुछ महान व्यक्ति भी थे। बाइबिल के प्रामाणिक संस्करण के प्रचार में लैन्सलाट ऐंड्रूज़ का प्रधान उत्तरदायित्व था अँगरेज़ी चर्च के ऐतिहासिक रूप और प्राचीन चर्च के साथ उसके घनिष्ट सम्बन्ध में इस सम्प्रदाय का बहुत कुछ हाथ रहा। इग्लैंड के चर्च की प्रार्थना-पद्धति और पूजा-विधि के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए इससे बहुत उद्योग किया था।

**धार्मिक समस्या और प्यूरिटन**—दूसरी शाखा प्यूरिटन लोगों की थी। सत्रहवीं शती के प्रारम्भ में ये लोग इस नाम से चिढाये जाते थे। इस नाम को वे अपने लिए अपशब्द मानते थे। प्यूरिटन लोगों के सम्बन्ध में तीन बातों का स्मरण रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि प्यूरिटनों के सम्बन्ध में जन-श्रुति की बहुत सी बातें ग़लत हैं। ये तो १६६० ई० के पुनरुद्धार के पश्चात् प्यूरिटनों के व्यंग्य चित्र हैं। उदाहरण के लिए सभी प्यूरिटन समाज की निम्न श्रेणी के न थे। बल्कि इसके विपरीत उस समय के बहुत से उच्च कोटि के अँगरेज़ भी प्यूरिटन विचारों के थे। वे आनन्द और उल्लास की उपेक्षा न करते थे। न वे छोटे बाल ही रखने के पक्ष में थे और न नाक से बोलते ही थे। दूसरी बात यह थी कि प्यूरिटनों में अधिकांश इंग्लैंड के चर्च के अनुयायी थे और इन अनुयाइयों तथा विरोधियों के बीच में चार्ल्स द्वितीय के राज्यकाल तक बड़ी खाई उपस्थित न हुई थी। तीसरे प्यूरिटन सम्प्रदाय के अन्तर्गत विभिन्न विचारों के लोग थे। गृह-युद्ध के पश्चात् प्यूरिटन दल में स्वतन्त्र विचारों की १७० शाखाएँ थीं। कुछ प्यूरिटन बिशपों के संयत शासन के पक्ष में थे कुछ उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते तथा उन पर बुरी तरह आक्रमण करते थे। फिर प्रेस्बिटेरियन शाखा विशेष रूप से शक्तिशाली हो गयी थी। इसके अनुयायी ज्येष्ठों (Elders) की शासन व्यवस्था के पक्ष में थे और उनके मत सभी के लिए मान्य समझते थे। स्वतन्त्र दल के लोग प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो रोमन

कैथलिक न हो विचारों की स्वतन्त्रता देने के पक्ष में थे अन्त में जैसा कि प्रत्येक आन्दोलन में हुआ करता है, गर्म दल के भी कई गिरोह हो गये जो उस समय की राज्य व्यवस्था के लिए बहुत ख़तरनाक समझे जाते थे।

फिर भी, प्यूरिटनों की सभी शाखाएँ कुछ बातों में एक मत थीं। सभी रोमन कैथलिकों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। हम आज इस बात का अनुमान नहीं कर सकते कि उस समय रोमन कैथलिकों के विरुद्ध विचार कितने तीव्र थे। मेरी के अत्याचारों की स्मृति अब भी लोगों के हृदय से न मिटी थी। फ़ाक्स की लिखी—शहीदों की पुस्तक इस समय दूसरी बाइबिल ही मानी जाने लगी थी और बहुत से देहात के चर्चों में यह पुस्तक मेज पर सुरक्षित रखी रहती थी। इसके सजीव वर्णन ने मेरी के अत्याचारों की स्मृति लोगों के हृदय में बराबर जाग्रत रक्खी। एलिजेबेथ के विरुद्ध जितने षड्यन्त्र हुए सभी में रोमन कैथलिकों का हाथ माना जाता था। आर्मेडा भी कैथलिक पोपों का आक्रमण ही था! १६०५ ई० का गनपाउडर षड्यन्त्र पोप तथा इंग्लैंड के रोमन कैथलिकों का संगठित षड्यन्त्र माना जाता था। इस पर भी रोमन कैथलिक अपने लिए केवल सहिष्णुता ही न चाहते थे। उनकी एक बड़ी संगठित संस्था थी, जिसका ध्येय इंग्लैंड को रोमन कैथलिक देश बनाना था। सब से बड़ी बात तो यह थी कि प्यूरिटन पोप को ईसा का विरोधी तथा चर्च के संस्कारों को मूर्ति-पूजा और पोप के सिद्धान्तों को शैतानी चर्खा मानते थे। पादरियों को वे लोगों को धर्म तथा राजभक्ति से डिगाने वाले धूर्तात्मा समझते और रोमन कैथलिक धर्म के पुनःसंस्थापन को राष्ट्र के लिए धार्मिक तथा आध्यात्मिक आपत्ति मानते थे।

पोपपन्थी संस्थाओं अथवा संस्कारों के अतिरिक्त और भी ऐसी बातें थीं, जिनका भिन्न-भिन्न प्यूरिटन शाखाओं के अनुयायी एक स्वर से विरोध करते आते थे। वे सभी बिशपों और पादरियों के विशेष अधिकारों के विरोधी थे और आभूषण तथा वस्त्रों की सजधज तथा चर्च के कर्मकांड से उन्हें घृणा थी। किसी न किसी मात्रा में वे सभी कैलविन के अनुयायी थे; अर्थात् वे भाग्यवाद में विश्वास रखते थे और मानते थे कि कुछ की मुक्ति नियत है कुछ की नहीं। (कम्यूनियन सर्विस) सामूहिक प्रार्थना को वे ईसा की मृत्यु का स्मारक मात्र मानते थे न कि भगवत्कृपा का विशेष साधन। बाइबिल को उन्होंने अपने विश्वास और धर्माचरण का आधार बना रक्खा था और ईश्वर के प्रति उत्तरदायित्व की भावना उनमें काफी प्रबल थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि त्रुटियों को दूर करने के प्रयत्नों में ईश्वर उनका सहायक है।

सहिष्णुता का विरोध—इंग्लैंड और स्काटलैंड के धार्मिक दलों के सम्बन्ध में एक बात और याद रखनी चाहिए कोई भी धार्मिक दल—रोमन कैथलिक, आर्मिनियन और प्रेस्बिटेरियन—केवल अपने ही लिए सहिष्णुता के व्यवहार का आकांक्षी न था। सम्भवतः स्वतन्त्रवादियों को छोड़कर—वे सब अपने विरोधियों का दमन करने के पक्षपाती थे। प्रत्येक दल चाहता था कि अन्य धार्मिक दलों में से

प्रत्येक या तो उसके विचारों और व्यवहारों के अनुसार आचरण करे या उसे कुचल दिया जाय।

एलिजवेथ और प्यूरिटन—प्यूरिटनों के कुछ धर्म-सिद्धान्तों का राज्यसत्ता के सिद्धान्तों से विरोध होना अनिवार्य था। एलिजेवेथ के समय में भी उनका कुछ कम विरोध न था। उसके शासन के आरम्भ में प्रसिद्ध वेस्टीएरियन का विरोध हुआ था, जिसके अनुसार प्यूरिटन विचार वाले पादरियों ने 'सरप्लिस' (सफेद सलूका) पहनने तथा प्रार्थना-पुस्तक की अन्य विधियों का पालन करने में आपत्ति प्रकट की थी। आगे चलकर उग्र विचारों के प्यूरिटनों ने एक प्रेस्बिटेरियन शासन व्यवस्था का पक्ष लिया और बिशपों की कड़ी आलोचना की। परिणाम यह हुआ कि एक दर्जन लोग जेल भेजे गये। औरों ने कुछ विशेष सभाओं (प्रोफ़ेसिइंग) का आयोजन किया। इनमें विविध धार्मिक विचारों पर वाद-विवाद होता था तथा पादरियों को धर्म-प्रचार करना सिखाया जाता था। परन्तु एलिज़ेवेथ ने सोचा कि धार्मिक वाद-विवाद से धार्मिक स्वतन्त्रता के विचारों को बहुत उत्तेजना मिलेगी। वह चाहती थी कि प्रर्थना सभाओं में पादरी लोग 'दि बुद ऑव होमिलीज़' के अवतरण पढ़ा करें, न कि अपने बनाये हुए उपदेशों का प्रचार करें। उसका विचार था कि प्रत्येक काउन्टी में एक दो धर्म-प्रचारक पर्याप्त हैं अतः उसने इन धर्म सभाओं को नापसन्द किया और उन्हें दबा दिया। जब कामन्स की सभा ने, जिसमें प्यूरिटन दल प्रबल था, धार्मिक शासन-प्रणाली अथवा धार्मिक सिद्धान्तों पर वाद-विवाद करने का साहस किया तो रानी ने निष्ठुरता-पूर्वक उन्हें डॉट दिया।

आख़िर १५८३ ई० में ह्विटगिफ्ट केन्टरबरी का आर्कबिशप हो गया। वह बड़ा अनुशासनप्रिय था और रानी का उस पर पूर्ण विश्वास था। प्रेस पर ऐसा कड़ा नियन्त्रण लगा दिया गया कि कोई भी पुस्तक बिना आर्कबिशप अथवा बिशप ऑव लन्दन की अनुमति के प्रकाशित नहीं हो सकती थी फिर भी बिशपों के विरुद्ध कुछ पत्र छिपे तौर से छपते रहे जिनके लेखकों का कहीं पता नहीं लगा। कुछ लोग सन्देह के कारण पकड़े भी गये और उन्हें प्राण दंड हुआ। रानी ने कोर्ट ऑव हाई कमीशन को धार्मिक अभियोगों में दंड देने का अधिकार प्रदान किया और इस प्रकार प्यूरिटन दल के अधिक उन्नत प्रतिपादकों पर दमन हुआ।

राबर्ट ब्राउन के अनुयायी (ब्राउनिस्ट) जो अपने उग्र विचारों के कारण चर्च से अलग हो गये थे खास तौर से इस दमनचक्र के शिकार हुए। उनमें से बहुत से हालैंड भाग गये। उनमे से जो लौट आये उनमें अधिकांश १६२० ई० में 'मेफ्लावर' जहाज़ में बैठकर अमेरिका चले गये।

हैम्पटन कोर्ट कान्फरेन्स (१६०४ ई०)—जेम्स के राजा हो जाने पर प्यूरिटन उसके हिमायती थे क्योंकि उनको उससे बड़ी आशाएँ थीं। जेम्स का लालन-पालन प्रेस्बिटेरियन धर्मावलम्बी स्काटलैंड में हुआ था इसलिए प्यूरिटनों को विश्वास

था कि उनके प्रति उसके व्यवहार में काफी सहानुभूति होगी। उन्होंने शीघ्र ही कुछ सुधारों के लिये एक 'मिलीनरी पिटीशन' प्रार्थनापत्र भेजा जिसमें कहा जाता था कि एक हजार पादरियों के हस्ताक्षर थे। वास्तव में इसमें किसी के भी हस्ताक्षर न थे यद्यपि ८सौ पादरियों ने उस पर अपनी अनुमति दे दी थी। १६०४ ई० में हैम्पटन कोर्ट में परिस्थिति पर विचार करने के लिए एक सभा हुई; जिसमें दो आर्कबिशप और छः बिशप एक ओर तथा चार प्यूरिटन दूसरी ओर थे।

राजा स्वयम् इस सभा का प्रधान बना था। उसने पहले दिन पक्षपात रहित होकर कार्य किया। दूसरे दिन एक प्यूरिटन ने किसी बात पर 'प्रेस्बिटरी, शब्द कह दिया। जेम्स को प्रेस्बिटेरियन धर्म से उसकी स्पष्टवादिता और साम्यवादी सिद्धान्तों के कारण बड़ी घृणा थी। प्यूरिटनों को इसका कोई ज्ञान न था। उसने कहा 'एक स्काट प्रेस्बिटरी राजसत्तावाद से उतना ही सहमत होता है जितना ईश्वर शैतान से। इसके बाद सब ऐरे-ग़ैरे पचकल्याणी सम्मिलित होंगे और मुझ पर तथा मेरी काउन्सिल पर दोषारोपण करेंगे।' सभा भंग हो गयी और उस का एकमात्र परिणाम यह हुआ कि बाइबिल का अधिकारयुक्त अनुवाद हुआ। बस इसके अतिरिक्त प्यूरिटिनों के कुछ हाथ न लगा। जेम्स स्वयम् ऐंग्लिकनों का सहायक हो गया और 'न बिशप न राजा' के सिद्धान्त में दृढ़ विश्वास करने लगा। इसका यह तात्पर्य था कि यदि एक बार बिशप का प्रभुत्व जाता रहा तो फिर राजा के प्रभुत्व की भी कोई आशा नहीं रहेगी।

**राजा और पार्लियामेन्ट में विरोध के कारण**—१७वीं शती का मुख्य प्रसंग है राजा और पार्लियामेन्ट का विरोध। धार्मिक मतभेद के अतिरिक्त इसके और भी कई कारण थे। एक कारण तो स्पष्ट था कि उन दिनों विदेशों से लड़ाई का कोई भय न रह गया था। कहा जाता है कि अँगरेज एक समय में एक ही बात पर विचार कर सकता है। फिर एलिजेबेथ के अधिकांश शासनकाल में देश का ध्यान विदेशी संकटों के सुलझाने में लगा रहा। ऐसे समय में जब एक ओर रानी एलिजेबेथ के जीवन-मरण का प्रश्न था और दूसरी ओरनिरंकुशता या विदेशी पराधीनता का सामना करना था, तो प्रजा को अधिकार और सुविधाओं पर विचार करने का समय कहाँ था। किन्तु १६०३ ई० तक ये सब संकट दूर हो चुके थे। १५८६ ई० में आर्मडा की पराजय से स्पेन की महत्वाकांक्षाओं पर ही पानी न पड़ गया था बल्कि ट्यूडर तानाशाही का भी अन्त हो गया था। अब तो वह समय आ गया था जब अँगरेज अपने देश के शासन-कार्य की आलोचना करें और जी जान से उसके सुधार से संलग्न हो जाँय।

विरोध का एक और कारण था राष्ट्रीय चरित्र का विकास। १६वीं शती को हम अँगरेजों की वर्तमान जातीयता और संस्कृति की जननी कह सकते हैं। इस समय अँगरेज़ जाति ने यह अनुभव कर लिया था कि वाणिज्य व्यापार में, समुद्र के संकट-पूर्ण क्षेत्र में और साहित्य की प्रगति में भी वे किस प्रकार अपनी बुद्धि और शौर्य का

परिचय दे सकते थे। सुधार और नवीन जागृति के सूत्रपात से प्रजा में नये ढंग से सोचने विचारने और उसकी छानबीन करने की शक्ति आ गयी थी। अब तो अँगरेज़ जाति अधिक आत्मविश्वासी, अधिक स्वावलम्बी और अधिक स्वेच्छाचारी बन गयी थी। कहने का आशय यह है कि अब अँगरेज़ जाति अपने देश के शासनकार्य में अधिकाधिक भाग लेने के लिए तैयार थी। इस जागृति ने मध्यम श्रेणी के विकास पर तो ख़ास प्रभाव डाला। १७ वीं शती के स्वाधीनता के संग्राम में देश के सरदारों या साधारण प्रजा ने इतना योग नहीं दिया जितना कि ज़मीन्दारों, व्यापारियों और वकीलों ने। इन्हीं वर्गों का विकास ट्यूडर काल में हुआ और उस समय की कामन्स सभा के सदस्य उन्हीं में से थे। ये लोग प्रायः विदेशी मामलात में अनुभवशून्य थे। कभी-कभी ये गवर्नमेन्ट की कठिनाइयों को भी न समझते थे और मन्त्रियों पर व्यर्थ के आरोप करते थे। किन्तु ये सदाचारी और ईमानदार थे। स्वतन्त्र प्रकृति के होते हुए भी ये विनयशील थे। सन्तोषी होते हुए भी दृढ थे।

विरोध की प्रारम्भिक स्थिति में वकीलों ने कामन्स सभा में खूब वाक्युद्ध किया। बेकन तो उन्हें सभा का 'स्वर' और अन्य सदस्यों को व्यंजन मात्र कहा करता था; किन्तु जब अन्य युद्ध आरम्भ हो जाता तब ग्रामीण सभ्य ही तलवार के धनी सिद्ध होते थे।

विवादास्पद विषय—इंग्लैंड को अब किसी विदेश से डर न था और उसमें नागरिकों का एक दल विकसित हो चुका था जो स्वयम् विचार और कार्य कर सकता था। एलिज़ेबेथ के समय में भी रानी और पार्लियामेन्ट का सम्बन्ध पूर्णतः संघर्ष शून्य न था। यह सत्य है कि उसके समय में पार्लियामेन्ट के केवल ग्यारह अधिवेशन हुए और कोई भी अधिवेशन छः सप्ताह से अधिक न रह सका। फिर एलिज़ेबेथ ने स्वयम् मान लिया था कि उसने उन्हें नये विधान बनाने और भाषणों में व्यर्थ समय नष्ट न कर राज्य के काम के लिए धन प्राप्त करने की आज्ञा दी थी। फिर भी कभी कभी कामन्स सभा अपनी स्वतन्त्रता और झगड़ालू प्रकृति का परिचय दे देती थी, जिससे यह प्रकट होता था कि राष्ट्र अब राजा और मन्त्रियों के शासन का साथी मात्र न रह सकेगा; बल्कि शीघ्र ही उनको अपने-अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों पर पुनर्विचार की आवश्यकता होगी। जेम्स प्रथम के समय में इस पुनर्विचार का अवसर आया और यह एक बड़े मार्के की बात है कि उसकी प्रथम पार्लियामेन्ट के प्रारम्भिक अधिवेशन में इतने अधिक सदस्य उपस्थित हुए जितने पहले बहुत कम होते थे। हाउस ने जेम्स के शासनकाल के प्रथम वर्ष में ही यह सूचित कर दिया था कि अब उन कार्यों के सुधार का समय आ गया है जिन पर एलिज़ेबेथ के समय में यथोचित ध्यान नहीं दिया गया था। शासन सम्बन्धी प्रश्नों एवम् अन्य विषयों पर भी व्यवस्था के निर्णय की आवश्यकता प्रकट हो गयी थी।

सिद्धान्त के कुछ प्रश्न ऐसे थे जो अधिकार की जड़ तक पहुँचते थे। उ
हरण के लिए राजा अपने राजसिंहासन पर किस अधिकार से बैठता है? अ
पैतृक दैवी अधिकार द्वारा जैसा राजा, विशपों तथा और लोगों का मत था; अ
पार्लियामेन्ट के कानून के अनुसार? यदि शासक अपने दैवी अधिकार द्वारा श
करता था तो उसकी बातों तथा कार्यों की आलोचना व्यर्थ थी और प्रजा का क
था कि ईश्वर द्वारा नियुक्त शासक की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन करे। ईसी प्र
का यह प्रश्न भी था कि राजा के विशेष अधिकारों का क्या तात्पर्य है? राजा के
का यह विचार था कि राजा में एक ऐसी शक्ति रख दी गयी है जिसके द्वारा
अपनी इच्छानुसार जो चाहे कर सकता है तथा राज्य की परिस्थितियों की आवश्यक
नुसार वह देश के साधारण कानून की भी अवहेलना कर सकता है। इसके अति
पार्लियामेन्टरी दल का यह विचार था कि कानून ही सब अधिकारों का आधार है अ
राजा के अधिकार भी क़ानून पर अवलम्बित हैं, तथा वह क़ानून के अनुसार अ
करण करने के लिए बाध्य है। इसी प्रकार एक और प्रश्न था—राजकीय प्र
का अधिष्ठान कहाँ था? केवल राजा में अथवा राजा और पार्लियामेन्ट दोनों
मिल कर? स्पष्टतः इन प्रश्नों के उत्तर पर दैनिक जीवन के अन्य प्रश्न अवलम्बि
थे—जैसे पार्लियामेन्ट के सहमत हुए बिना राजा की धन इकट्ठा करने की श
लोगों पर बिना अभियोग चलाये उनको कारावास में डाल देने का अधिकार, अथ
मन्त्रियों पर उनके कार्यों का उत्तरदायित्व रखने का पार्लियामेंन्ट का अधिकार। स
उत्तर स्पष्ट न थे। राजा के अधिकार स्पष्ट रूप से वर्णित न थे। अँगरेज़ी शास
विधान न पहले कभी लिखित अथवा सुव्यवस्थित था और न अब भी है। रा
और पार्लियामेंन्ट दोनों के पास अपने-अपने मतों की पुष्टि के लिए तर्क मौजूद थे
आगे चल कर इन मतों के बीच का अन्तर बढ़ता गया, यहाँ तक कि अन्त में केव
तलवार ही उनका निर्णय करती नज़र आयी।

जेम्स ने कहा था कि मैंने अपने इंग्लैंड आने के साथ ही पार्लियामेन्ट
मौजूद पाया; इसलिए मुझे उसके साथ गुजर करनी पड़ी। इस राजा के साथ अवश्
ही इस बात की सहानुभूति होनी चाहिए, क्योंकि यह स्पष्ट है कि स्टुअर्टों के राज्य
रोहण के समय पार्लियामेन्ट विषयक परिस्थिति बहुत जटिल हो रही थी। किन्तु जेम
ने उसे सुलझाने के बदले और भी उलझा दिया। किसी ने कहा है कि राजा औ
प्रजा के अधिकारों का सर्वोत्तम निर्णय मौनावलम्बन द्वारा हो जाता है, किन्तु जेम
वाचाल था। वह सदा राज्य-व्यवस्था की व्याख्या करने का शौकीन था। अप
अधिकारों के निरूपण के लिए वह उत्सुक सा रहता था और उन्हें सिद्धान्त का रू
देता था जिससे मतभेद और विरोध बढ़ता गया।

गॉडविन का मामला—पार्लियामेन्ट के साथ जेम्स के सम्बन्ध के विस्तृ
निरूपण का यहाँ अवकाश नहीं है। उसकी अदूरदर्शिता के उदाहरण रूप एव

घटना का उल्लेख किया जा सकता है जो इसकी प्रथम पार्लियामेन्ट के आरम्भ में हुई थी। राजा की सभा ने हाउस ऑव कामन्स के निर्वाचन के लिए एक व्यक्ति गॉडविन को इसलिए अस्वीकृत कर दिया था कि वह बागी ठहराया गया था और जेम्स ने अपनी विज्ञप्ति में यह घोषित कर दिया था कि किसी राजद्रोही को निर्वाचित नहीं किया जा सकता। हाउस ऑव कामन्स ने यह घोषणा की कि दो संदिग्ध निर्वाचनों का निर्णय करना उनका अधिकार है। जेम्स ने उत्तर दिया कि पार्लियामेन्ट के अधिकार राजा के दिये हुए हैं, इसलिए उनका प्रयोग स्वयम् राजा के विरुद्ध नहीं किया जा सकता। बस पार्लियामेन्ट के अधिकार और उन्हें अस्वीकृत करने की राजा की शक्ति पर विरोध प्रकट हो गया। यद्यपि अन्त में जेम्स ने हाउस ऑव कामन्स को इन निर्वाचन का झगड़ा तय करने की आज्ञा दे दी; फिर भी यह घटना मंगलसूचक न थी।

वेट का मामला (१६०६ ई०)—जेम्स की प्रथम पार्लियामेन्ट में कर सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी उठा था। राज्य-कर का एक अंश जागीरों जमींदारों, आदि स्वतन्त्रता स्रोतों से आता था और वह २ लाख ५० हज़ार पाउंड प्रति वर्ष के लगभग था। और एक अंश कुछ बाहर के आनेवाले समान पर चुंगी से आता था जिसे 'टनेज' और पाउडेज कहते थे। यह कर राजा की गद्दी के जीवन भर के लिए स्वीकृत किया गया था और लगभग १ लाख ५० हजार पाउंड होता था सिंहासन पर बैठने के दो तीन वर्ष बाद जेम्स ने 'टनेज और पाउन्डेज' के अतिरिक्त कुछ चीज़ों पर नियत से अधिक कर लगा दिया। वेट नामक एक व्यापारिक ने किशमिश पर लगे हुए अतिरिक्त कर देने में आपत्ति की। जजों ने निर्णय किया कि उसे यह कर देना होगा—इस कारण ही नहीं कि बन्दरगाह जिनमें होकर माल आता जाता था राजा के थे, वरन् इस कारण भी कि यह राजा का अधिकार और कर्तव्य है कि वह देश की भलाई के लिए उसके व्यापार की अपनी इच्छानुसार व्यवस्था करे। इस निर्णय का परिणाम यह हुआ कि राज्य की ओर से बहुत सी वस्तुओं पर कर ज़्यादा कर दिया गया और राजा की आय बढ़ गयी। ये अधिक कर 'इम्पोजिशन' कहलाते हैं और इस पार्लियामेन्ट तथा अन्य पार्लियामेन्टों द्वारा निरन्तर विरोध के आधार पर बने रहे।

१६२१ ई० की पार्लियामेन्ट—राजा ने प्रथम पार्लियामेन्ट को १६११ ई० में भंग कर दिया और अगले दस बरस तक एक के सिवा कोई और पार्लियामेन्ट न बुलाई गयी। यह भी केवल दो महीने बैठी। यह गूढ पार्लियामेन्ट कहलाती है क्योंकि इसने किन्हीं नियमों को जन्म नहीं दिया। १६२१ ई० में जब फ्रैड्रिक हाथ से पेलेटिनेट प्रदेश जाता रहा, और इंग्लैंड के युद्ध में सम्मिलित होने की सम्भावना प्रतीत हुई तो जेम्स को तीसरी पार्लियामेन्ट बैठानी पड़ी। यह पार्लियामेन्ट बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। हाउस ऑव कामन्स ने सभा शुरू होते ही पहला काम यह किया कि राजा

के मन्त्रियों और अधिकारियों की हाउस आव लार्डस के सामने आलोचना करने का अधिकार पुनर्जीवित कर लिया। यह एक ज़बरदस्त अस्त्र था जिसका प्रयोग १४५६ ई० से नहीं हुआ था; किन्तु आगे चलकर बहुत हुआ। हाउस ऑव कामन्स ने कई एकाधिकार वालों की समालोचना से इससे प्रयोग का श्रीगणेश किया। लार्ड चान्सलर फ्रान्सिस बेकन और लार्ड वेरुलम पर दोषारोपण किया गया। उस ज़माने में मुकदमें वाले प्रायः जजों को उपहार भेजा करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि कई बार बेकन ने निर्णय देने के पहले ही उपहार स्वीकृत कर लिया था, किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं कि बेकन ने इन्हें घूस के रूप में लिया तथा इन्होंने उसके निर्णय को प्रभावित किया। बेकन को चान्सलर पद से उतारा गया और थोड़े दिन बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

भाषण की स्वतन्त्रता—इस हाउस ऑव कामन्स ने अपनी भाषण की स्वतन्त्रता भी प्राप्त कर ली। यह कामन्स सभा कैथलिक धर्मानुयायियों और स्पेनवालों की कट्टर विरोधी थी। जेम्स उस समय स्पेन की राजकुमारी के साथ चार्ल्स के विवाह द्वारा पेलेटिनेट प्रान्त की प्राप्ति की कोशिश में लगा था। कामन्स ने जेम्स के पास एक पत्र भेज कर प्रार्थना की कि चार्ल्स एक 'सहधर्मी' से ही विवाह करे उसमें पोप और उसके 'प्रिय पुत्र' स्पेन के राजा की कुछ खरी आलोचना भी की गयी थी। विवाह सम्बन्धी बातचीत जब जोरों पर चल रही थी उस समय ऐसे प्रार्थनापत्र के आने पर राजा को बहुत क्षोभ हुआ। जेम्स ने एक क्रोधपूर्ण पत्र लिखा और हाउस ऑव कामन्स को आगे से राज्य के गम्भीर विषयों में हस्तक्षेप करने अथवा उनके सम्बन्ध में खुल्लमखुल्ला बहस करने को मना कर दिया। भाग्यवश हाउस ऑव कामन्स ने साहस न छोड़ा और दिसम्बर के महीने में एक दिन जब कुहरे का अन्धकार छाया हुआ था, रोशनी की बत्ती में अपनी भाषण स्वतन्त्रता की रक्षा सम्बन्धी एक प्रस्ताव लिख भेजा। राजा ने इस पर पार्लियामेन्ट भंग कर दिया और कुछ सदस्यों को बन्दी कर उस विरोध वाले प्रस्ताव को सभा की कार्रवाई की किताब में से चीरफाड़ डाला (१६२२ ई०)। फिर भी हाउस ऑव कामन्स ने यह दिखा दिया कि राज्य में एक ऐसा स्थान अवश्य था जहाँ एक अँगरेज जो चाहे सो कर सकता है।

अब चौथे पार्लियामेंट की बारी आयी और जैसा वह चाहती थी इस समय स्पेन से युद्ध छिड़ गया। फिर बकिंगहम और राजकुमार चार्ल्स ने लार्ड ट्रैजरर मिडिलसेक्स पर अभियोग चलाने में हाउस ऑव कामन्स का समर्थन किया। इसलिए राजा और पार्लियामेन्ट के बीच कोई विरोध न रहा और सब काम निर्विरोध चलने लगा। इसके कुछ समय बाद ही जेम्स की मृत्यु हो गयी (१६२५ ई०)।

इस संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो गयी कि राजा तथा पार्लियामेन्ट के झगड़े का श्री गणेश जेम्स के राज्यकाल में हो गया था। हाउस ऑव कामन्स ने अब निर्विवाद उन्नति कर ली थी। उसने अभियोग चलाने; अपने स्वत्वों की रक्षा करने और बिना अनुमति लिए कर बढ़ाने पर विरोध करने का अधिकार प्राप्त कर लिया

था। इन भयंकर प्रश्नों का द्वार खोलने के लिए जेम्स का चरित्र विशेष रूप से उपयुक्त था। उत्तराधिकारी को उनका उत्तर देना अनिवार्य हो गया था।

---

# अध्याय ३

## चार्ल्स प्रथम और देश की स्थिति

चार्ल्स और हेनरिटा मेरिया—ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब चार्ल्स गद्दी पर बैठा तो देश की परिस्थिति सुगम न थी। उसे बकिंगहम जैसा अयोग्य मन्त्री मिला था और दुर्भाग्य की बात यह थी कि राजा जेम्स के राज्य-काल से भी अधिक चार्ल्स के राज्यकाल में उसका प्रभाव बढ़ा हुआ था। इधर राज्य का खजाना ख़ाली था और पार्लियामेन्ट अपनी बढ़ती हुई शक्ति का अनुभव करने लगी। उधर युरोप में तीस वर्षीय युद्ध में प्रोटेस्टेन्टों के हितों की हानि हो रही थी। फिर चार्ल्स को अपनी रानी से भी कोई सहायता न मिली। गद्दी पर बैठने के बाद ही उसने फ्रान्स की रूपवती राजकुमारी हेनरिटा मेरिया से विवाह कर लिया था। धीरे धीरे वह राज्य-कार्यों में हस्तक्षेप करने लगी और राजा के ऊपर उसका प्रभाव बढता ही गया। रानी न तो इस देश के रीति-रिवाजों को जानती थी और न अँगरेज़ी चरित्र से ही परिचित थी। इस पर तुर्रा यह था कि इंग्लैंड जैसे प्रोटेस्टेन्ट देश में वह स्वयम् रोमन कैथलिक धर्मानुयायी होने के कारण अपने सहधर्मियों के लिए सुविधाएँ दिलाने में प्रयत्नशील रहती थी। फिर उसने कठिन परिस्थिति उपस्थित होने पर विदेश से सहायता प्राप्त करने के लिए गुप्त चेष्टाएँ भी कीं। राजा की अतुल शक्ति के सम्बन्ध में उसके विचार बड़े उग्र थे उनके विरोधियों को वह महा दुष्ट समझती थी। कहा जाता है कि शेबा की रानी क्लियोपेट्रा से लेकर जितनी भी सम्राज्ञी हुई हैं उनमें रानी मेरिया ही सब से निकम्मी साबित हुई।

### §१ चार्ल्स और पहली तीन पार्लियामेन्टें
### (सन् १६२५ ई०)

पार्लियामेन्ट से विरोध के कारण—चार्ल्स ने अपने शासनकाल के पहले चार बरसों में तीन पार्लियामेन्ट आमन्त्रित की और तीनों से उसका झगड़ा हुआ। अगले ११ बरस तक उसने बिना पार्लियामेन्ट की सहायता के शासन किया। परन्तु १६४६ ई० में जब स्काटलैंड से लड़ाई के लिए धन की आवश्यकता हुई तो उसे दो पार्लियामेंन्टें बुलानी पड़ीं। इनमें से दूसरी पार्लियामेन्ट ने जब उसके अधिकार कम किये तो १६४२ ई० में गृह-युद्ध छिड़ गया। संक्षेप में पार्लियामेन्ट के साथ चार्ल्स के झगड़ों का यही इतिहास है।

इस विरोध के कारण भी कुछ कम न थे। सबसे पहले तो जेम्स १म के राज्य काल की भाँति धार्मिक कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयी थीं। चार्ल्स स्वयम् ऐंग्लिकन हाई चर्च का अनुयायी था; परन्तु अपनी रानी मेरिया के कारण रोमन कैथलिकों के साथ सहिष्णुता का पक्षपाती हो गया था। उधर पार्लियामेन्ट प्यूरिटन और कैथलिक-विरोधी थी। फिर पार्लियामेन्ट को बकिंगहम, स्ट्रेफर्ड और लॉड इन तीनों मन्त्रियों पर कोई विश्वास न था। उधर चार्ल्स अपने मन्त्रियों को बड़ा योग्य समझता था और पार्लियामेन्ट द्वारा उनकी आलोचनाओं को धृष्ठता और दलबन्दी से प्रेरित मानता था। चार्ल्स के राज्य के शुरू में पार्लियामेन्ट अँगरेजी वैदेशिक नीति की असफलता और बाद में राजा की विदेशी राज्यों से गुप्त मन्त्रणाओं के कारण क्षुब्ध थी।

इन झगड़ों की जड़ में वही प्रश्न थे जिनका ज़िक्र हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं, और वे प्रश्न थे—राज्य करने का अधिकार किसके पास था? देश के शासन का उत्तरदायित्व किस पर था? अब पार्लियामेन्ट देश के शासन में अधिक अधिकार माँगने लगी थी और चार्ल्स यह अधिकार देना न चाहता था। बस, यही सारे झगड़े की जड़ थी अब हमारे जमाने में पार्लियामेन्ट और राजा के अधिकारों का समन्वय सहज मालूम होता है, परन्तु उस समय तो दोनों के अधिकारों को व्यवस्थित करना सहल न था और बिना झगड़े के अधिकार का प्राप्त कर लेना तो असम्भव ही था। इसी प्रयत्न में १६४२ ई० का गृह-युद्ध और १६८८ ई० का विद्रोह हो गया और इनके फलस्वरूप जो व्यवस्था हुई वह भी स्थायी न हो सकी।

चार्ल्स की पहली पार्लियामेन्ट—१६२५ ई० में चार्ल्स की पहली पार्लियामेन्ट की बैठक हुई। उसी समय चार्ल्स डेनमार्क के राजा को बहुत बड़ी रकम सहायता के रूप में दे चुका था और स्पेन पर आक्रमण करने के लिए नौ सेना भेज चुका था। इन दोनों बातों के लिए प्रचुर धन की आवश्यकता थी; परन्तु चार्ल्स की टालमटूली और स्पष्टवादिता का अभाव घातक सिद्ध हुआ। उन दिनों न तो राज्य की ओर से किसी प्रकार की विज्ञप्तियाँ ही प्रकाशित होती थीं और न समाचार पत्र ही छपते थे, जिनमें पार्लियामेन्ट के सदस्यों को राज्य के समाचार मालूम होते रहते। इतना वे अवश्य जानते थे कि जर्मनी में किसी प्रकार का धर्मयुद्ध चल रहा था और यद्यपि वे चाहते थे कि इंग्लैंड प्रोटेस्टेन्ट धर्मावलम्बियों की सहायता करे फिर भी उनकी कठिनाई यह थी कि उन्हें वस्तु-स्थिति का कोई ज्ञान न था। परन्तु चार्ल्स तो न खुद अपनी नीति के समझाने की चेष्टा करता था और न किसी दूसरे के द्वारा ही उसे प्रकट कराना चाहता था। एक सभासद के कहने के अनुसार लोग अपने बैरियों को ही न जानते थे। अपनी आवश्यकताओं को भी उसने साफ़ प्रकट न किया। उसने जल-सेना के लिए माँग तो उपस्थित की, किन्तु वांछित धन के अधिक परिमाण की ओर केवल संकेत मात्र ही किया। फलतः उसे अभीष्ट धन का केवल सप्तमांश ही मिला।

इसके साथ साथ पार्लियामेन्ट ने 'टनेज और पाउन्डेज' के लेने का अधिकार राजा को केवल एक ही वर्ष के लिए दिया। यही पार्लियामेन्ट की धींगाधींगी थी, क्योंकि दो शतियों से राजा को अपने राज्य काल भर के लिये यह अधिकार दे दिये जाते थे। राज्य शासन बिना धन के न चल सकता था। शासन के साधारण व्यय का चलाना ज़रूरी था। फिर एलिजेबेथ के समय से दरबार का ख़र्च बढ गया था। दूसरे नयी दुनिया से चाँदी के आ जाने के कारण चीज़ों का मूल्य बढ़ कर, राजा की आमदनी घट गयी थी। बेट के मुक़दमे के निर्णय ने चार्ल्स को बिना पार्लियामेन्ट की अनुमति के अधिक कर लगाना न्यायसंगत सिद्ध कर दिया था और इसलिए उसने कर बढाना शुरू कर दिया था। फिर इस पार्लियामेन्ट को ही नहीं बल्कि इसके बाद के पार्लियामेन्टों के प्यूरिटन बहुमत को राजा की तरफ से धार्मिक मामलात में भी आशङ्का हो गयी थी। उनका कहना था कि लार्ड ग्रे को मन्त्री बनाने से यह स्पष्ट था कि वह ऐंग्लिकन दल का पक्षपात करता था और कैथलिकों के विरुद्ध कठोर नियमों को भी उसने शिथिल सा कर दिया था।

चार्ल्स की दूसरी पार्लियामेन्ट—१६२६ ई० में चार्ल्स की दूसरी पार्लियामेन्ट बनी। इस समय फ्रान्स के राजा की सहायता के लिये जहाजी बेड़ा भेजा जा चुका था और कैडेज की नौ-सेना नष्ट हो चुकी थी। कामन्स सभा की पहली माँग यह हुई कि आर्थिक सहायता के मिलने से पहले कैडिज की दुर्घटना की जाँच और उसमें विशेष रूप से बकिंगहम के दायित्व की छानबीन होनी चाहिए। चार्ल्स का कहना था कि अपने मन्त्रियों की योग्यता और अयोग्यता का निर्णय वह स्वयम् करेगा, न कि पार्लियामेन्ट और फिर बकिंगहम जैसे विश्वासपात्र मन्त्री के सम्बन्ध में तो वह पार्लियामेन्ट को नुकताचीनी का कोई अधिकार ही न देगा। इस पर हाउस ऑव कामन्स अब एक क़दम और आगे बढ़ गया और कारनिश के सर जॉन इलियट के नेतृत्व में उसने बकिंगहम पर अभियोग लगाया। इलियट बड़ी उच्च भावनाओं वाला श्रेष्ठ वक्ता था और जैसा प्रभावशाली वक्ताओं में प्रायः होता है, वह या तो किसी के सम्बन्ध में बहुत अधिक बढ़ाकर या बहुत अधिक घटा कर बात कहने का अभ्यस्त था। १६२५ ई० में वह बकिंगहम के गुणों की सराहना में ही लगा रहना चाहता था; परन्तु जब अगले वर्ष उसने देखा कि देश का गौरव जाता रहा, इंग्लैंड के जहाज डुबा दिये गये और अँगरेजी सेना का सर्वनाश हो गया और यह सब हुआ न तो लड़ाई के मैदान में, न बैरी के मुकाबिले में और न किसी आकस्मिक घटना ही से—बल्कि यह सब दुर्घटनाएँ हुईं उन लोगों की अकर्मण्यता के कारण जिन पर देश का पूर्ण विश्वास था—तो उसकी क्रोधाग्नि रोके न रुक सकी और उसने एक प्रभावशाली भाषण में बकिंगहम की बड़ी कड़ी आलोचना की। राजा को इस पर ऐसा क्रोध आया कि उसने पार्लियामेन्ट को भंग कर दिया और इलियट से उसका सदा के लिये वैमनस्य हो गया।

**चार्ल्स की तीसरी पार्लियामेन्ट**—दो बरस बाद तीसरी पार्लियामेन्ट की बैठक १६२८ ई० में हुई। चार्ल्स का पहला भाषण ही आवश्यकता से अधिक उद्धत था। उसने कहा, 'अगर पार्लियामेन्ट हमारी आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती तो ईश्वर ने मुझे जितनी भी शक्ति दी है मैं उस सब का उपयोग करूँगा। मैं यह सब आप लोगों के धमकाने के विचार से नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि अपनी बराबरी वालों के सिवाय और किसी को धमकी देने से मै घृणा करता हूँ।' यद्यपि इस पार्लियामेन्ट का आरम्भ ही ऐसा निराशाजनक था, फिर भी राजा के भाषण से भी अधिक उसके असन्तोष का एक और कारण हुआ। रूही का आक्रमण असफल हो चुका था। दूसरे पार्लियामेन्ट राज्य की धर्मनीति के विषय में भी अभी तक असन्तुष्ट थी। तीसरे राजा चार्ल्स ने ज़बरदस्ती कर्ज उगाहने का प्रयत्न किया था। इन सब ज़्यादतियों का इतने पर भी अन्त न हुआ था, बल्कि उन पाँच सरदारों को, जिन्होंने इस जबरदस्ती से कर्ज देने से इनकार किया था, कैद कर दिया गया था। जब उनको अदालत के सामने पेश किया गया तो राजा की विशेष आज्ञा ही उनके इस दंड का कारण बतलायी गयी। सरकारी पक्ष के वकीलों ने अदालत के सामने इस बात पर बहस की कि राज्य की रक्षा के निमित्त, राजा को यह अधिकार होना परमावश्यक है कि वह लोगों को बिना किसी प्रकार की जाँच के पकड़वा कर जेलखाने में बन्द करा सके। यह युक्ति बहुत अंश में ठीक भी हो सकती है, परन्तु भय यह था कि इस शक्ति के निरन्तर उपयोग करने का राजा आदी हुआ जा रहा था। सरदार-पक्ष के वकीलों का कहना था कि राजा की ऐसी निरंकुश शक्ति अँगरेजों की स्वतन्त्रता और मेग्नाकार्टा के प्रतिकूल थी। ऐसी कठिन परिस्थिति में न्यायाधीश कोई निश्चित निर्णय न कर के, यद्यपि उन्होंने उन सरदारों को जेल से मुक्त कर देने से इनकार कर दिया।

**पिटीशन ऑव राइट ( अधिकारों का प्रार्थना-पत्र—१६२८ ई० )**—तीसरी पार्लियामेन्ट ने राजा की इस विशेष शक्ति के दुरुपयोग को रोकने का प्रयत्न करने में ज़रा भी विलम्ब न किया और एक अधिकार-पत्र ( पिटीशन ऑव राइट ) तैयार किया। इस अधिकार पत्र का पहला नियम यह था कि पार्लियामेन्ट की अनुमति के बिना कोई कर्ज या लगान अवैध होगा और बिना कारण बतलाये किसी को बन्दी बनाना भी कानून के विरुद्ध है। तीसरे प्रजा के निवास स्थानों में सैनिकों का रखना बन्द कर दिया जाय और चौथी बात यह थी कि शान्ति के समय मार्शल ला का प्रयोग न किया जाय। राजा ने पहले तो बहुत कुछ टालमटूल की, परन्तु आख़िर इस प्रार्थना-पत्र की स्वीकृति दे दी। यद्यपि चार्ल्स ने इसके प्रत्येक नियम का उल्लंघन किया, फिर भी यह प्रार्थना पत्र वैध अधिकारों की लड़ाई में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

**पार्लियामेन्ट का भंग होना**—इस प्रार्थना-पत्र के स्वीकृत हो जाने पर हाउस ऑव कामन्स का नेता वेन्टवर्थ राजा से मिल गया। अब १६२६ ई० में तीसरी

पार्लियामेन्ट की दूसरी बैठक शुरू हुई। इस पार्लियामेन्ट का मत था कि राजा ने प्रार्थना-पत्र के अनुकूल अपने वचन का पालन नहीं किया। इस पर राजा और पार्लियामेन्ट का विरोध और भी बढ़ गया। इसपर चार्ल्स ने पार्लियामेन्ट के भंग कर देने का निश्चय किया; परन्तु उसके भंग होने से पूर्व ही वह प्रसिद्ध दृश्य उपस्थित हुआ जब स्पीकर को ज़बरदस्ती कुर्सी पर बैठाकर और सभा के द्वार बन्द कर तीन प्रस्ताव स्वीकृत कराये गये। इनके अनुसार जो कोई धर्म में नवीन परिवर्तन करेगा, पार्लियामेन्ट की बिना अनुमति के किसी प्रकार का टैक्स देगा या उसके दिये जाने का प्रस्ताव करेगा वह राज्य का शत्रु और उसकी स्वतन्त्रता का विनाशक समझा जायगा। ये तीनों प्रस्ताव इस पार्लियामेन्ट के अन्तिम प्रस्ताव थे, क्योंकि इनके स्वीकृत होते ही पार्लियामेन्ट भंग कर दी गयी और इसके सभासदों में सबसे अधिक उदार सज्जन इलियट टावर में बन्द कर दिया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गयी।

अब हम इस विरोध के प्रथम अध्याय के अन्त तक पहुँच गये हैं। यद्यपि पार्लियामेन्ट कभी कभी अनुचित रूप से सशंकित हो जाती, धन देने में उचित से भी अधिक कृपण बन जाती और धर्म सम्बन्धी मामलों में बिलकुल असहिष्णु हो जाती थी, फिर भी वह बहुत अधिक शान्त, बहुत अधिक व्यवहार कुशल और राजा तथा उसके सलाहकारों से कहीं अधिक समझदार रही। ऐसी परिस्थिति में यह मानना पड़ेगा कि वह ठीक भी थी। परन्तु साथ ही हमें यह न भूल जाना चाहिए कि पार्लियामेन्ट राजा और उसके मन्त्रियों पर वह नियन्त्रण स्थापित करना चाहती थी जो उन पर ट्यूडर-काल में न रह गया था। अतएव इस विषय में राजा का विरोध करना भी अस्वाभाविक न था।

## § २. अनियन्त्रित शासन और देश-व्यापी असन्तोष

अनियन्त्रित शासन—( १६२६–४० ई० )—अगले ११ बरस तक पार्लियामेन्ट की कोई बैठक न की गयी। पार्लियामेन्ट के इतिहास में इतने वर्षों का अन्तर कभी न हुआ था। किन्तु कई वर्ष तक पार्लियामेन्ट के न बैठने को कोई विलक्षण घटना न समझना चाहिए, क्योंकि एलिज़ेबेथ के राज्य में पार्लियामेन्ट प्रायः तीसरे वर्ष बैठती थी। फिर हमें यह भी न मान लेना चाहिए कि चार्ल्स कोई दुष्ट और अत्याचारी शासक था, जिसने अपनी प्रजा के अधिकार, उनकी धन दौलत या उनके जीवन का नाश किया हो। उस काल में तो साधारणतः देश की समृद्धि बढ़ी थी। इलियट को छोड़ राष्ट्रीयता की वेदी पर और कोई बलि नहीं चढ़ायी गयी और राजा ने भी अपने को न्याय और नीति की निर्धारित सीमा के भीतर रखा। फिर भी ये ११ वर्ष इंग्लैण्ड के लिए आशंकामय थे और जब ये बीत गये तब इंग्लैण्ड की प्रजा ने यह दिखा दिया कि उसका यह निश्चय था कि ऐसे स्वेच्छाचारी शासन की पुनः आवृत्ति न हो सके।

स्ट्रेफर्ड का अर्ल, टामस वेन्टवर्थ—इस समय के चार्ल्स के सलाहकारों के सम्बन्ध में भी कुछ जानना आवश्यक है। इन सलाहकारों में कोई भी बकिंगहम के रोब दाब को न पहुँच सका। फिर भी टामस वेन्टवर्थ और विलियम लॉड उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। वेन्टवर्थ यार्कशायर के एक पुराने ज़मीन्दार-कुल का था और उसने हाउस ऑव कामन्स में आते ही चार्ल्स का पक्ष लिया था। चार्ल्स की पहली पार्लियामेन्ट में तो वह राजा की नीति का सब से प्रबल विरोधी था और उसी प्रेरणा से 'अधिकार पत्र' की रचना हुई थी। परन्तु तीसरे पार्लियामेन्ट के दोनों अधिवेशनों के बीच वह राजा के पक्ष में आ गया और १६२८ ई० में स्ट्रेफर्ड का अर्ल बना दिया गया। इस नीति परिवर्तन पर वेन्टवर्थ की इस बात में ईमानदारी का अभाव है कि उसने अधिकार पाकर ऐसे कार्य किये जिनका विपक्ष में होते हुए सम्भवतः वह स्वयम् विरोध करता। परन्तु उसकी यह नीति प्रायः स्वार्थ मूलक ही कही जायगी।

वेन्टवर्थ उन सशक्त और योग्य व्यक्तियों में से था जो अपनी क्षमता में तो अपरिमित विश्वास रखते हैं परन्तु दूसरों की शक्ति में तनिक भी नहीं रखते। वह विरोध पक्ष में इसलिए था कि उसे बकिंगहम पर विश्वास न था और वह उसकी वैदेशिक नीति से असन्तुष्ट था। साथ ही राज्य के कई स्वेच्छाचारी कार्यों से भी वह नाराज़ था। वास्तव में वह विरोध पक्ष का कभी न था। उसे बहुमत पक्ष की प्यूरिटन प्रवृत्ति से ज़रा भी सहानुभूति न थी। यहाँ तक कि वह इसी कारण अपने अनेक साथियों से घृणा करता था। फिर पार्लियमेन्ट के पंचायती शासन में भी वह विश्वास न रखता था। उसकी राय में शासन प्रजा के लिये अवश्य होना चाहिये, किन्तु प्रजा स्वयम् शासन नहीं कर सकती। उसके मतानुसार राज्य के सरदार प्रजा के सदस्य पोषक थे और राज्याधिकार शासन और नीति का था। ऐसी परिस्थिति में राजा के पक्ष में रह कर ही वह अपनी शासन-कुशलता का परिचय दे सकता था। इसलिए वेन्टवर्थ ने राजा का पक्ष लिया और १६२८ ई० में वह उत्तरी प्रदेश का प्रेसिडेन्ट बना दिया गया। १६३२ ई० में वह आयरलैंड का लार्ड डिप्टी नियुक्त हुआ और आयरलैंड में ही उसने अपनी राजनीति की शक्ति और दौर्बल्य का जैसा परिचय दिया उसका वर्णन हम आगे करेंगे। १६३९ ई० में वह चार्ल्स का प्रमुख मन्त्री और शीघ्र ही देश भर का सब से अधिक घृणास्पद व्यक्ति हो गया।

विलियम लॉड—लॉड वेन्टवर्थ का परम मित्र था। दोनों ही राजा के भक्त और उसके पक्ष के सहायक थे। लॉड आक्सफर्ड के सेन्ट जान्स कॉलिज का प्रधान रह चुका था, फिर सेन्ट डेविड का बिशप नियुक्त हुआ। १६२८ ई० में वह लंडन का बिशप और पाँच वर्ष बाद केन्टरबरी का आर्कबिशप हो गया। लॉड ही राज्य की धर्म-नीति का विधाता था। उसकी नीति की बहुत सी बातें प्रशंसनीय थीं। उसके समय में गिरजों के निर्माण, उनकी मरम्मत और उनकी सम्पत्ति वापिस दिलाने में बहुत

काफ़ी धन ख़र्च किया गया। गिरजाघरों की प्रार्थना-पद्धति ( चर्च सर्विस ) को भी उसने व्यवस्थित और सुन्दर बना दिया। अपने कर्मचारियों द्वारा उसने अपने चर्च की जायदादों का निरीक्षण कराया और बहुत सी सुधार करने योग्य बातों का ज्ञान प्राप्त किया। बहुत से गिरजाघरों के पादरी धर्म प्रचार पर ध्यान नहीं देते थे और बहुधा अनुपस्थित रहते थे। किसी गिरजे के दालान के भीतर स्थानीय सरदार के कर्मचारी द्वारा छत से गिरा हुआ काँसा गलाया जाता था। किसी गिरजे के दालान में मुर्गों की लड़ाई करायी जाती थी और उसमें बड़ा पादरी भी स्वयम् उपस्थित रहता था। लॉड ने सेन्टपाल के गिरजे को फैशनेबिल लोगों की गप्प उड़ाने का क्लब घर तथा बालकों के खेल कूद की जगह बनाने की भी मनाही कर दी थी और वह लोगों को गिरजा घर के भीतर टोप लगा कर भी न घुसने देता था। लॉड बड़े आदमियों के प्रभाव और रौब में न आता था। उसकी दृष्टि में दुष्कर्म सदा निन्दनीय था, चाहे वह कितने ही बड़े व्यक्ति द्वारा सम्पादित हुआ हो।

किन्तु इतनी मुस्तैदी और सद्भावना के होने पर भी लॉड सहानुभूतिहीन संकीर्ण वृत्ति का व्यक्ति था। वह सोचता था कि प्रत्येक मनुष्य उन्हीं धर्म सिद्धान्तों में क्यों न विश्वास करे जिनमें स्वयम् उसका विश्वास था। फिर चाहे वह अँगरेज़ हो या स्काट या आयरिश या फ्रान्सीसी या स्पेनी। प्रेस को अपने चंगुल में दाब कर उसने अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध लोकमत का प्रकाशन बन्द करा दिया; परन्तु कोर्ट ऑव स्टार चैम्बर और हाई कमीशन में उसकी विशेष रूप से बदनामी हुई। कटुवाणी और चिड़चिड़े मिज़ाज वाला लॉड सदा धर्मापराधियों के लिए कठिन से कठिन दंड के पक्ष में रहता था। कोड़े लगवाना, दागना, कान कटवा देना आदि अमानुषिक दंड दिलाने का उत्तरदायित्व उसी के ऊपर था। इसलिए जहाँ लॉड ने इंग्लैंड के चर्च की कैलविनिस्ट विश्वासों की बेड़ियों की जकड़ से रक्षा की तो वहाँ सरल साधारण प्रोटेस्टेन्टों को प्यूरिटन पक्ष में ले जाने के लिए भी वह उत्तरदायी था।

अर्थ नीति—चार्ल्स को विशेष रूप से आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। राजकीय—जागीरों, ज़मीन्दारियों, टनेज और पाउन्डेज तथा ( इम्पोज़िशन ) आरोपणों आदि से उसकी पर्याप्त आय न होती थी। इसलिये आमदनी बढ़ाने के लिये उसे और भी नये साधन ढूँढने पड़े। थोड़ी जागीर या चालीस पौंड से अधिक वार्षिक आय वालों को उसने 'नाइट' की पदवी देकर उन पर सालाना कर लगा दिया और उसके देने से इनकार करने वालों पर जुर्माना करना शुरू किया। उन अमीरों पर भी जुर्माना किया जिनके पूर्वजों ने सैकड़ों वर्ष पूर्व राज्य के रक्षित जंगलों की सीमा का अतिक्रमण किया था। कुछ वार्षिक कर देने पर बहुत सी कम्पनियों को ईंट, नमक और साबुन आदि साधारण वस्तुओं का पूरा ठेका दे दिया गया। इन सब बातों में चार्ल्स ने ट्यूडर काल की प्रथा का अनुसरण ही किया था। क्योंकि ट्यूडर काल में व्यापार की सुव्यवस्था करना राजा का काम था। उदाहरण के लिए स्टार

चेम्बर की अदालत में नाज के उन व्यापारियों पर मुक़दमा चलाया जाता था जो बहुत सा माल ख़रीद कर अधिक मुनाफा कमाने के लिए जमा कर लेते थे। इसी प्रकार बेरोजगारों के लिए काम तलाश किया जाता था। चीजों की बिक्री का ठेका देने की प्रथा भी उसी समय से चली आती थी। असल बात यह थी कि चार्ल्स ने आर्थिक कठिनाई के कारण इस प्रथा का दुरुपयोग किया। परन्तु अब प्रजा का दृष्टिकोण भी अधिकाधिक वैयक्तिक होता जा रहा था।

फिर इस समय अँगरेजी जल सेना इतनी हो रही थी कि १६२४ २५ ई० में बराबरी के समुद्री डाकू डोरसेट में आ उतरे और बराबर लूट पाट करते रहे। इसलिए सन् १६३४ में चार्ल्स ने समुद्र तट के प्रदेशों और नगरों पर एक जहाजी कर लगा दिया। युद्ध के अवसर पर तो यह कर पहले कई बार लगाया जा चुका था किन्तु चार्ल्स ने इसे शान्ति के समय लगाया था। अगले साल उसने दूसरी आज्ञा जारी करके यह लोक निन्दित कर सारे देश पर लगा दिया।

संकट का आरम्भ—१६३७ ई० तक राजा के कामों से घोर असन्तोष होते हुए भी उसका अधिक विरोध न हुआ था। किन्तु इस आन्दोलन युग के प्रथम वर्ष से विरोध आरम्भ हो गया। जून में जनमत को अभिव्यक्ति का अवसर मिला। प्राइन नाम का एक वकील, बर्टन नाम के एक पादरी और बैस्टविक नाम के एक डाक्टर को बिशपों पर आक्रमण करने के अपराध में कान कटाने, ५ हजार पौंड जुर्माना देने और आजन्म कारावास का कठोर दंड दिये जाने का हुक्म दिया गया। बैस्टविक ने लिखा था कि बिशप लोग ईश्वर के, राजा के और चर्च के भी द्रोही हैं और गिरजाघरों में आडम्बरपूर्ण रीतियाँ उसी तरह बढ गयी हैं जैसे कुत्ते के कलिनयाँ पड़ जाती हैं। राजमहल के चौक में इस दंड का पहला कृत्य समाप्त हुआ। प्राइन के कान तो चार बरस पहले ही थियेटर की कड़ी आलोचना करने पर काटे जा चुके थे। यद्यपि उस समय इससे लोगों में कोई हलचल न हुई थी, परन्तु इस बार तो सारा लण्डन उससे सहानुभूति दिखाने को उपस्थित था। रास्ते भर इन लोगों पर पुष्पवर्षा हुई। बहुत लोग रोते हुए देखे गये और जब प्राइन के कान काटे गये तो सारी जनता के मुँह से क्रोध और पीड़ा की चीख़ निकल पड़ी!

इसके बाद १६३७ ई० के नवम्बर में जान हैम्पडन का प्रसिद्ध मुक़दमा हुआ। अब राजा तीसरी बार 'जहाजी कर' लगाने की आज्ञा निकाल चुका था और ऐसा प्रतीत होने लगा था कि पार्लियामेन्ट की अनुमति लिये बिना ही वह इस कर को स्थायी कर बना देना चाहता है। बकिंगहमशायर के एक प्रसिद्ध जमीन्दार हैम्पडन ने यह कर देने से इनकार कर दिया। उस पर मुक़दमा चलाया गया और पाँच जजों ने विरोध तथा सात जजों ने पक्ष में यह फ़ैसला दे दिया कि 'जहाजी कर' अनियमित नहीं था। इस मुक़दमे ने बड़ी ख्याति प्राप्त की और हैम्पडेन के वकीलों की युक्तियाँ छपवा कर राज्य भर में बाँटी गयीं। इसी वर्ष लॉड के शासन के

सम्बन्ध में उस समय के महान् साहित्यिक मिल्टन ने अपने 'लाइसीडस' में खूब आलोचना की।

इंग्लैंड की अपेक्षा स्काटलैण्ड में तो १६३७ ई० में और भी अधिक मार्के की घटनाएँ हुईं।

स्काटलैंड का चर्च—जॉन नॉक्स के जीवन काल में ऐसा प्रतीत होता था, कि अन्त में स्कॉटलैण्ड का चर्च बिशप-शासन के ही किसी परिवर्तित स्वरूप को स्वीकार कर लेगा किन्तु उसके उत्तराधिकारी ऐन्ड्रयू मेलवील के समय में यह विचार-धारा सर्वमान्य थी कि सब पादरियों के अधिकार बराबर हैं और शासन व्यवस्था के उन कार्यों को करने के लिए, जो पहले बिशप किया करते थे अब प्रेस्बीटेरियन काउन्सिल की नियुक्ति हुई। प्रत्येक धार्मिक सभा का एक 'किर्क सैशन' होता जिसमें सभा द्वारा निर्वाचित मन्त्री और बुजुर्ग ( elder ) रहते।

इस प्रकार स्काटलैण्ड का चर्च शासन-व्यवस्था के विचार से निश्चित रूप से प्रेस्बिटेरियन हो गया था। इस व्यवस्था में चर्च कोर्ट है। सब धर्म सभाओं के चार प्रेस्बीट्री मंडल हैं जिसके कोर्ट पर हर सभा की ओर से एक पादरी और एक बुजुर्ग प्रतिनिधि स्वरूप रहते हैं। तीन या इससे अधिक मंडलों से एक प्रान्तीय परिषद् बनायी जाती है। ऐसी परिषदें बारह होती हैं। चर्च की परमोच्च कोर्ट जिसका नाम लोक-परिषद है, वर्ष में एक बार बैठती है और मंडलों के निर्वाचित पादरी और बुजुर्ग इसके सदस्य होते हैं।

जेम्स षष्ठ की नीति—इस प्रेस्बिटेरिन व्यवस्था के आधार पर स्कॉटलैंड का जेम्स षष्ठ या इंग्लैंड का जेम्स प्रथम बिशपों को नियुक्त करना चाहता था। परन्तु बिशप न तो इंग्लैण्ड में लोक-प्रिय थे, और न स्काटलैंड में। लोग इन्हें चर्च का अभिशाप समझते थे। और प्लेग, दुष्काल तथा महामारी की ही भाँति बिशपों से त्राहि-त्राहि पुकारते थे। और जेम्स और उनके बाद चार्ल्स प्रथम दोनों राजाओं के दैवी अधिकारों में विश्वास करते थे। इधर स्काटलैंड की प्रजा भी लोक परिषद् के स्वर्गीय अधिकारों में कम विश्वास न करती थी और चर्च के कार्यों में राज्य के हस्तक्षेप को नहीं देख सकती थी। लोक परिषद् का प्रभाव चर्च के क्षेत्र से बाहर भी था। वस्तुतः वह एक प्रतिनिधि परिषद् हो गयी थी जो राज्य-शासन के विरोध का भी केन्द्र बन गयी थी। दूसरी ओर स्काट पार्लियामेन्ट अथवा काउन्सिल ऑव स्टेट्स एक सामन्त परिषद थी, जिन पर उन लार्ड और अन्य अमीरों का नियन्त्रण रहता था, जिनके निर्वाचन में राजा का बहुत कुछ हाथ होता था। इसीलिए राजा और चर्च में विरोध होना अनिवार्य सा था। जेम्स ने बड़ी संलग्नता का परिचय दिया और १६१२ ई० तक उसने स्काटलैंड में, बिना प्रेस्बिटेरियन कोर्टों का नाश किये ही, बिशप शासन स्थापित कर दिया था। फिर उसने उपासना की विधियों के परिष्कार का प्रयत्न किया और साम, दाम, दंड तथा भेद से १६१८ ई० में लोक परिषद् को 'पर्थ के पाँच विधान' पास

कराने पर राजी कर लिया। इनमें एक विधान जो लोगों को सबसे अधिक अखरता था वह था कम्यूनियन के साथ घुटने टेकना। स्काटों को तो यह स्पष्टतः मूर्तिपूजा का द्योतक प्रतीत होता था।

**चार्ल्स प्रथम और प्रार्थना का नवीन धर्मग्रन्थ (१६२७ ई०)—** चार्ल्स १६२५ ई० में गद्दी पर बैठा और बारह बरस में सारा राष्ट्र उसके विरुद्ध संगठित हो गया। सब से पहले तो रोमन कैथलिक राजकुमारी के साथ उसके विवाह की बहुत समालोचना हुई। फिर पुनर्विधान के समय चर्च से मिली हुई कुछ भूमि को छीनने के प्रयत्नों ने अमीरों को डरा दिया। उन्होंने प्रेस्बिटेरियन कोर्टों को हटा कर तथा अँगरेज़ी प्रार्थना ग्रन्थ के अनुरूप एक नये ग्रन्थ के निर्माण द्वारा चर्च ऑव इंग्लैंड के साथ पूर्ण सभ्यता स्थापित करने के प्रयत्नों द्वारा समस्त प्रजा के रोष को उत्तेजित कर दिया। नये प्रार्थना विषयक ग्रन्थ में अँगरेज़ी प्रार्थना ग्रन्थ से अन्तर का कारण लॉड का प्रभाव बतलाया जाता है। लोगों को यह पोपपन्थी प्रतीत होता था। एक समकक्ष व्यक्ति ने कहा कि यह प्रार्थना पुस्तक पोपीय स्काटी-सर्विस-बुक थी।

**सेन्ट गाइल्स में विद्रोह—**लॉड की उपासना विधियों का प्रयोग सबसे पहले एडिनबरा के सेन्ट गाइल्स केथिडरल में रविवार २३ जुलाई १६३७ ई० को हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि जैनी गेडिज नाम की एक स्त्री के भड़काने से दंगा हो गया जिसे एक विद्रोह का श्रीगणेश कहा जा सकता है। उपासना-ग्रन्थ को हटा कर चार्ल्स इस विषय परिस्थिति का निराकरण कर सकता था, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उपासना-ग्रन्थ का विरोध बढ़ते-बढ़ते चर्च-शासन के उन्मूलन के आन्दोलन में परिणत हो गया और एक उत्साही प्रेस्बिटेरियन संस्था जिसका नाम 'टेबिल्स' था, राजा और काउन्सिल के विरुद्ध स्काटलैंड का शासन करने लगी। चार्ल्स के दुराग्रह का परिणाम यह हुआ कि ग्रेफ्रायर्स चर्च यार्ड में १ली मार्च सन् १६३८ को राष्ट्रीय संकल्प पर हस्ताक्षर हुए और इसकी प्रतियाँ सारे स्काटलैंड में बाँटी गयीं। देश भर में इस संकल्प पर लोगों ने बड़े उत्साह के साथ हस्ताक्षर कर इस बात का प्रण किया कि वे प्रोटेस्टेन्ट धर्म और प्रेस्बिटेरियन चर्च के सिद्धान्तों पर दृढ़ रह कर सच्चे धर्म की हर प्रकार रक्षा करेंगे।

**ग्लासगो की सभा—**इस दंगे से चार्ल्स को वास्तविक परिस्थिति की गम्भीरता का ज्ञान हुआ। वह इस बात पर तैयार हो गया कि उपासना ग्रन्थ का प्रचार रोक दिया जाय; एक स्वतन्त्र लोक परिषद बना दी जाय तथा स्वतन्त्र पार्लियामेन्ट का अधिवेशन किया जाय। किन्तु अब बहुत विलम्ब हो गया था। नवम्बर में जब ग्लासगो में लोक परिषद का अधिवेशन हुआ तो केवल कवेनेन्टर लोगों (वे स्काट जिन्होने पोप ग्रन्थों को निर्मूल कर प्रेस्बिटेरियन धर्म स्थापित करने की शपथ ले रखी थी कवेनेन्टर कहलाते थे) को सदस्य होने का अधिकार मिला। रायल कमिश्नर हैमिल्टन ने यह देख कर परिषद बिशप-शासन के उन्मूल की माँग पेश करेगी,

राजा के नाम पर भंग कर दिया। किन्तु परिषद का अधिवेशन यथावत् होता रहा और बड़ी धूमधाम के साथ 'पर्थ के पाँच विधान' और उपासना ग्रन्थ को अस्वीकार कर दिया गया। बिशपों को पदच्युत कर बिशप शासन को उन्मूलित किया गया और प्रेस्बिटेरियन मत की दृढ़ स्थापना की गयी।

बिशपों का पहला युद्ध ( १६३९ ई० )—राजा का इस परिषद के प्रस्तावों को अस्वीकृत कर देना स्वाभाविक बात थी और यह स्पष्ट दिखायी देता था कि अब युद्ध होना अवश्यम्भावी है। आख़िर १६२९ ई० में युद्ध प्रारम्भ हो गया यह बिशपों का प्रथम युद्ध कहलाता है। कवेनेन्टरों ने डेविड लेसली के नेतृत्व में बरविक के निकट डन्सलो पर मोरचा जमाया। राजा एक अल्पसंख्यक और निकम्मी सेना लेकर उत्तर की ओर आया, किन्तु वह ( बरविक संधि के अनुसार ) स्काट लोगों की माँगों को पूरा करने के अतिरिक्त और कुछ न कर सका। उसकी प्रधान माँग यह थी कि नयी लोक परिषद का अधिवेशन किया जाय। अगस्त में यह अधिवेशन हुआ और ग्लासगो परिषद के सारे प्रस्ताव फिर पास कर दिये गये। इसके अतिरिक्त एक और नया विधान पास हुआ, जिसके अनुसार कवेनेन्ट पर हस्ताक्षर करना राष्ट्र भर के लिए अनिवार्य हो गया। राजा इन सब विधानों से सहमत तो हो गया किन्तु चार्ल्स जो हर प्रकार की धींगाधींगी करके अपनी ही चलाना चाहता था उन्हें व्यापार में लाने को कानून का रूप देने के लिए पार्लियामेन्ट के विधान के रूप में स्वीकार करने को सहमत न हुआ। परिस्थिति यथावत् बनी रही और १६४० ई० में बिशपों का दूसरा युद्ध छिड़ गया। इंग्लैंड में शार्ट पार्लियामेन्ट के अधिवेशन का रुख देख कर स्काटों को यह डर न रहा कि अँगरेज़ राष्ट्र चार्ल्स की सहायता करेगा। इसलिए उन्होंने इंग्लैंड पर आक्रमण किया और न्यू कैसिल ऑव टाइन तक पहुँच गये। चार्ल्स ने रिपन में स्काट प्रतिनिधियों से भेंट की और कोई व्यवस्था न होने तक न्यू कैसिल पर स्काटों का अधिकार स्वीकार कर लिया। अगस्त १६४१ ई० में उसने स्काटों की सब माँगें स्वीकृत कर लीं और ८५० पौंड प्रतिदिन के हिसाब से न्यू कैसिल की सेना को ख़र्च दिया। तब स्काट अपने देश को लौट गये। सितम्बर में चार्ल्स अँगरेज़ी पार्लियामेन्ट के बढ़ते हुए विरोध के विपक्ष में सहायता प्राप्त करने की आशा से स्काटलैंड गया। उसने बड़ी उदारता से स्कॉटों की सब माँगें स्वीकार कर लीं, प्रमुख कवेनेन्टरों का खूब सम्मान किया और उन पर हर तरह का अनुग्रह प्रदर्शित किया। परन्तु वह अपने मुख्य ध्येय की प्राप्ति में असफल रहा। उसके इस व्यवहार का यह फल निकला कि अगले गृहयुद्ध में स्कॉटलैंड का उसके साथ कोई विरोध न हुआ और इसीलिए स्कॉटों ने किसी पक्ष की सहायता न की; परन्तु अब कवेनेन्टर लोग इंग्लैंड और स्कॉटलैंड की चर्च व्यवस्था में सामान्यता स्थापित करने का नया स्वप्न देख रहे थे। इस सामान्यता का आदर्श था दोनों देशों की चर्च व्यवस्था को प्रेस्बिटेरियन ढंग पर व्यवस्थित करना, क्योंकि चार्ल्स की भाँति वे उसे बिशप-शासन में न लाना चाहते

थे। अपने इस ध्येय की प्राप्ति के लिए उन्होंने अब उद्योग करना प्रारम्भ कर दिया था।

शॉर्ट (छोटी) पार्लियामेन्ट (१६४०-४२ ई०)—अब हमें देखना है कि स्कॉटलैंड की इन घटनाओं का अँगरेज़ी राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा। कहा जाता है कि स्कॉटलैंड के विद्रोह ने इँग्लैण्ड को उसकी पार्लियामेन्ट की व्यवस्था पुनः प्रदान की। ११ वर्ष तक चार्ल्स ने बिना पार्लियामेन्ट के काम चलाया। उसके पास केवल आवश्यकता भर के लिए धन था। कोई भी आकस्मिक आवश्यकता होने पर पार्लियामेन्ट की बैठक अनिवार्य होती। बिशपों के पहले युद्ध के बाद स्ट्रेफर्ड इंग्लैंड आया और उसके सम्मान से स्कॉटलैंड में पुनः युद्ध आरम्भ करने के लिए धन प्राप्त करने के उद्देश्य से पार्लियामेन्ट आमन्त्रित की गयी। यह पार्लियामेन्ट एप्रिल १६४० ई० में बैठी। यह पार्लियामेन्ट केवल तीन सप्ताह तक रही। इसीलिए शॉर्ट पार्लियामेन्ट कही जाती है। राजा 'शिपमनी' के बदले में 'सहायक कर' प्राप्त करने की चेष्टा में था। किन्तु वह असफल रहा और जब पार्लियामेन्ट ने स्कॉटलैंड के साथ शान्तिमय समझौते का प्रस्ताव पेश किया तो वह भंग कर दी गयी। यह पार्लियामेन्ट पिम नामक समरसेट—शायर के एक रईस सज्जन को राजनीतिक क्षेत्र में ले आयी जो आगे चल कर एक बड़ा पार्लिमेन्टेरियन (वैधानिक नेता) हुआ। पिम बड़ा स्पष्ट और सशक्त वक्ता, कुशल नीतिज्ञ तथा स्फूर्तिशील पुरुष था। एक दो घंटे के भाषण में उसने राजा के भाषण की दुर्व्यवस्था की समालोचना की और अपने राजनीतिक सिद्धान्तों का सार इन शब्दों में व्यक्त किया—"पार्लियामेन्ट की शक्ति राष्ट्र के लिए उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार आत्मिक शक्ति शरीर के लिए।" पिम ने शीघ्र ही वह स्थिति प्राप्त कर ली कि उसके शत्रु भी अगले पार्लियामेन्ट की बैठक में उसे 'राजा पिम' कहने लगे।

लॉग (बड़ी) पार्लियामेन्ट (१६४० ई०)—छोटी पार्लियामेन्ट के भंग होने के बाद ही बिशपों का दूसरा आरम्भ हो गया। जिस सन्धि द्वारा इसका अन्त हुआ उसके अनुसार चार्ल्स ने स्कॉट सेना के लिए ८५० पौंड प्रतिदिन देने का वचन दिया था। इस धन की प्राप्ति के लिए दूसरी पार्लियामेन्ट बुलानी पड़ी और उसकी माँगों को सुनना पड़ा। साथ ही चार्ल्स ने टकसाल का १ लाख ३० हजार पौंड का सोना ज़ब्त कर लिया जिसका फल यह हुआ कि धन के अभाव में साहूकार अपनी हुंडियाँ न सकार सके। साहूकारों की इस अस्तव्यस्तता के कारण सारा व्यापारी वर्ग चार्ल्स के विरुद्ध हो गया। उस समय का हाउस ऑव कामन्स प्रजातन्त्री जन-संस्था न होकर अमीर उमराओं की संस्था थी। दूसरी पार्लियामेन्ट जो नवम्बर १६४० ई० में हुई थी उसमें अब अँगरेज़ी सभ्य समाज के रत्न और शिक्षित वर्ग के ही लोग थे। इस पार्लियामेन्ट के पहले ६ महीने राजसत्ता और स्वेच्छाचारी शासन के उन्मूलन में ख़र्च हुए। अब ४० वर्ष बाद वह समय आ गया

था जब राजा और पार्लियामेन्ट के बीच उन प्रश्नों का निश्चित् निर्णय हो जाता जिनके कारण यह सब दुर्व्यवस्था फैली हुई थी। इन ६ महीनों में हाउस ऑव कामन्स का कार्य जिस सहानुभूति और सर्व सम्मत्ति से होता रहा उससे ज्ञात होता है कि राजा के प्रति असन्तोष कितना व्यापक था। इस अधिवेशन में पिम के नेतृत्व में यह नियम पास हुए :—

(१) पार्लियामेन्ट बिना अपनी अनुमति के भंग नहीं की जा सकेगी।

(२) भविष्य में पार्लियामेन्ट का अधिवेशन हर तीसरे वर्ष होगा।

(३) स्टार मेम्बर और कोर्ट ऑव हाई कमीशन आदि नृशंस अदालतें तोड़ दी जायँ।

(४) शिपमनी आदि कर अवैध हैं।

(५) बिना पार्लियामेन्ट की स्वीकृति के 'टनेज और पाउण्डेज़' भी नाजायज कर हैं।

**स्ट्रेफर्ड पर अभियोग और उसकी जाँच—(१६४१ ई०)**—उक्त नियमों के स्वीकृत होने के साथ ही राजा के पूर्व सलाहकारों को दंड दिये जाने का प्रसंग आया। कई तो समुद्र पार भाग गये थे। कई गिरफ़्तार हुए उन पर मुक़दमा चलाया गया। इनमें लॉर्ड और स्ट्रेफर्ड मुख्य थे। १६४५ ई० तक लार्ड को फाँसी नहीं हुई किन्तु सामान्य लोगों के विचार में स्ट्रेफर्ड ही राजा की स्वेच्छाचारी शक्ति की प्रतिमूर्ति था। सारी प्रजा उसकी विरोधी थी। जब उस पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया तो यह समझा जाता था कि उसका निर्णय इस बात का निर्णय होगा कि भविष्य में शासन केवल राजा के विशेषाधिकार पर निर्भर रहेगा अथवा राजा और पार्लियामेन्ट दोनों के सम्मिलित अनुशासन पर। किन्तु यह सिद्ध करना असम्भव था कि स्ट्रेफर्ड राजद्रोह का अपराधी था। वह राष्ट्र के प्रति अपराधी हो सकता था, परन्तु राजा के प्रति नहीं। आयरलैंड के उसके अनुशासन के सम्बन्ध में जो घोर विरोध था उसका उसने बड़ी योग्यतापूर्वक प्रतिवाद किया। सब लोगों का ऐसा विश्वास था कि स्ट्रेफर्ड ने राजा को अँगरेज़ी विरोधी दल का सामना करने के लिए आयरी सेना के उपयोग की सम्मति दी थी। इसका एक लिखित प्रमाण मिलता है। प्रिवी काउन्सिल की एक बैठक में, उसके एक सदस्य ने, एक वाक्य इस प्रकार लिखा था जो स्ट्रेफर्ड द्वारा कहा हुआ बतलाया जाता है। 'तुम्हारे पास यहाँ एक सेना है, जिसका प्रयोग तुम इस राज्य के जीतने में कर सकते हो।' परन्तु प्रसंग से यह कहना असम्भव है कि 'इस राज्य' का तात्पर्य स्काटलैंड से था या इंग्लैंड से।

**स्ट्रेफर्ड का वध (१६४१ ई०)**—आखिर हाउस ऑव कामन्स ने अभियोग चलाना छोड़कर राजद्रोह का कलंकी बिल पास कर उसे राजद्रोही ठहराया। इस बिल के अनुसार जिस व्यक्ति को कलंकी घोषित किया जाता था उसकी जायदाद ज़ब्त कर ली जाती थी और उसको अपनी जायदाद को किसी को देने अथवा किसी से

सम्पत्ति पाने का अधिकार न रहता था। ऐसे अभियुक्त को कलंकित कर देना ही उसके प्राणदंड देने के लिए काफ़ी अभियोग समझा जाता था। एडवर्ड ४थ के राज्यकाल में राजा के अनुग्रहीत डेस्पेन्सरों' के विनाश के लिए यह नियम सबसे पहले प्रयुक्त हुआ। गुलाब पक्षों की लड़ाइयों में भी इसका खूब उपयोग हुआ। १४५६-६० ई० में पार्लियामेन्ट का ऐक्ट बन गया। इसके द्वारा अभियुक्त को न्यायालय के सामने अभियोग चलाने की ज़रूरत नहीं होती थी। १५४० ई० में टामस क्रामवेल, १६४१ ई० में स्ट्रेफ़र्ड और १६६७ ई० में सर जान फ़ेनविक इसके अभियुक्त हुए थे। सन् १७६८ ई० में आयरी विद्रोह लार्ड एडवर्ड फ़िजरल्ड के विरुद्ध इस कानून का अन्तिम बार उपयोग हुआ था। १७८० ई० में यह कानून रद्द कर दिया गया।

यह बिल हाउस ऑव लार्ड्स में भी भेजा गया जिसने कुछ संकोच के साथ उसे पास कर दिया। अब स्ट्रेफ़र्ड की जीवन रक्षा का एक मात्र आधार राजा ही रह गया था। दो दिन के कष्टप्रद असमंजस के बाद जब चार्ल्स ने देखा कि विक्षुब्ध जन-समूह ने उसका महल घेर लिया है और उसकी प्रिय रानी पर भी अभियोग चलाये जाने का भय है तो अपनी काउन्सिल, जज, बिशप और स्वयम् स्ट्रेफर्ड की सम्मति से उसने बिल के अनुकूल अपनी स्वीकृति दे दी। स्ट्रेफर्ड ने अन्त समय तक शिष्टता और वीरता का परिचय दिया। मई १६४१ ई० को टॉवर हिल पर उसको फाँसी दी गयी। उस स्थान पर उपस्थित २ लाख मनुष्यों के लिए, तथा अधिकांश अँगरेज़ी जनता और सारे राष्ट्र की रक्षा के निमित्त उसका वध आवश्यक हो गया।

नवम्बर १६४१ ई० की शिकायत—सन् १६४१ के ग्रीष्म में पार्लियामेन्ट के भीतर मतभेद हो गया और उसके कार्यों में एक मत न रहा। नवम्बर में महान् शिकायत के विवाद पर दोनों दलों में आख़िरकार विभेद हो गया। इससे पहले चार्ल्स स्काटलैंड में कुछ सहायता की आशा से गया था जो फलीभूत न हो सकी। गोल्फ खेलते समय उसे आयरी कैथलिक विद्रोह की सूचना मिली। इस विद्रोह का प्रभाव इंग्लैंड पर भी बहुत हुआ। इंग्लैंड में इस विद्रोह के हालात की जो सूचनाएँ मिलीं उनमें इसकी भीषणता बड़ी अतिशयोक्ति के साथ वर्णन की गयी थी। इसलिए प्रोटेस्टेन्टों की भावना उत्तेजित हो उठी। राजा पर भी इसका प्रभाव पड़ा, क्योंकि उस पर विद्रोहियों से सहमत होने का सन्देह किया जाता था। फिर विद्रोह शान्त करने के लिए सेना की आवश्यकता थी। इस पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि सेना का नियन्त्रण राजा के हाथ रहेगा अथवा पार्लियामेन्ट के इस प्रश्न के उत्तर पर अब इंग्लैंड की स्वतन्त्रता निर्भर थी।

इसी समय पिम ने अपना महान भर्त्सना का प्रस्ताव उपस्थित किया। इसके कुछ अंशों में उन अनीतियों का उल्लेख था जिनके लिए पिम और प्यूरिटन दल चार्ल्स को अपराधी ठहराते थे। इसके अतिरिक्त इनमें एक सुधार की भी योजना

थी जो उस समय को देखते हुए बहुत अधिक उन्नत और बढ़ी चढी थी। उदाहरण स्वरूप इस योजना में प्रस्ताव प्रकट किया गया था कि हाउस ऑव कामन्स द्वारा अनुमोदित मन्त्रियों को ही नियुक्त किया जाय तथा धार्मिक परिवर्तनों के लिए 'साइनड आव डिवाइन्स' ( प्रेस्बिटेरियन पादरियों की सभा ) की व्यवस्था की जाय। यह ऐसे प्रस्ताव थे जिनसे राजा और विशप दोनों की शक्ति छिन्न-भिन्न होती थी। उन पर गम्भीर तथा लम्बे वाद विवाद हुए। चर्च वाले प्यूरिटनों के विरुद्ध थे। फॉकलैंड, हाइड—आदि राज्यतन्त्रवादी जो अब भी यही चाहते थे कि राजा ही राज्य की व्यवस्था करे, पिम आदि राज्य के विरुद्ध थे जो राज्यसत्ता पर अधिकार कर मन्त्रियों पर पार्लियामेन्ट का सीधा अधिकार चाहते थे। आखिरकार प्रायः सारी रात के वाद विवाद होने पर नवम्बर २३ को प्रातः समय केवल ग्यारह वोटों से यह प्रस्ताव पास हो गया। एक सदयस्य का कहना है कि इस विवाद के समय लोग उत्तेजित हो होकर तलवार उठा लेते थे। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि हम सब मृत्यु छाया की घाटी में बैठे हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में गृह-युद्ध छिड़ जाने में क्या देर हो सकती थी।

पाँच सदस्यों पर आक्रमण ( जनवरी सन् १६४२ ई० ) विप्लवकारी परिवर्तनों की चेष्टा असफल होना संघातक होता है। चार्ल्स के साथ भी ठीक यही बात हुई थी। ४ जनवरी १६४२ ई० को यह सुनकर कि हाउस ऑव कामन्स रानी पर अभियोग लगाना चाहता था, इस कार्य की पूर्व प्रतिक्रिया के लिए उसने हाउस के पाँच सदस्यों पर जिनमें पिम और हैम्पडन भी थे, स्काटों से दुष्ट मन्त्रणा के लिए राजद्रोह पर अभियोग लगाने का निर्णय किया। चार्ल्स ने स्वयम् इन पाँचों सदस्यों को गिरफ्तार करने का निश्चय किया और ४०० सैनिक लेकर हाउस ऑव कामन्स पर चढ गया। कहा जाता है कि इस घटना के पूर्व चार्ल्स स्वयम् सेना के साथ जाने में हिचकिचा रहा था परन्तु जब रानी ने उसे डॉट कर कहा "जाकर इन दुष्टों के कान ऐंठो नहीं तो मेरा मुँह न देखना" तो वह जाने पर राजी हो गया। किन्तु रानी के एक मूर्ख मित्र द्वारा उन सदस्यों को राजा के अभिप्राय का पता लग गया था। इसलिए चार्ल्स के वहाँ पहुँचने के पूर्व ही चिड़ियाँ उड़ गयी थीं।'

इस प्रकार हाउस ऑव कामन्स पर चढ़ जाना राज्याधिकार का अतिक्रमण था। अगले सात महीनों में दोनों पक्षों ने सेना पर अधिकार करने की चेष्टा की। पार्लियामेन्ट ने इसी सम्बन्ध में एक बिल पास किया, किन्तु राजा ने उसे अस्वीकृत कर दिया। दोनों ओर से युद्ध की तैयारियाँ शुरू हो गयीं। एप्रिल में हल का गवर्नर होथम् तो यहाँ तक बढ़ गया कि उसने अपने नगर में राजा का प्रवेश तक निषिद्ध कर दिया। नवम्बर में नाटिंगहम् में राजा का झंडा फहराया गया और शीघ्र ही गृह युद्ध आरम्भ हो गया।

---

# अध्याय ४

## गृह-युद्ध

### ( १६४२-४५ ई० )

**दोनों दलों के सहायक**—इस युद्ध में अधिकांश अमीर, रईस, सभ्य समाज और उनके आश्रित किसान राजा की ओर, तथा अधिकांश नागरिक और छोटे ज़मींन्दार पार्लियामेन्ट की ओर थे। फिर भी यह कहना भूल होगा कि यह एक श्रेणी के विरुद्ध, दूसरी श्रेणी का युद्ध था। ८० पियर ( लार्ड ) राजा की ओर लड़े और तीस उसके विरुद्ध, तथा हाउस ऑव कामन्स के १७५ सदस्य राज पक्ष में थे। क्षेत्र-विभाजन की दृष्टि से हम्बर से साउथम्पटन तक खींची जाने वाली रेखा दोनों पक्षों के क्षेत्रों को अलग अलग करती है। उस रेखा के पूरब में सामान्यतः पार्लियामेन्ट दल था। उसके पश्चिम की ओर ब्रिस्टल, ग्लौसेस्टर और प्लीमथ को छोड़ कर सामान्यतः राज पक्षी दल था। वास्तविक विभाजक-रेखा राजनीतिक है जिसके अनुसार कौन बड़ा है, राजा या पार्लियामेन्ट—और उससे भी बढ़कर धार्मिक है—एँग्लिकन के विरुद्ध प्युरिटन।

**युद्ध की प्रगति और सम्भावनाएँ**—जब हम दोनों दलों की विशेष सुविधाओं पर विचार करते हैं तो हमें कहना पड़ता है कि लडन नगर पार्लियामेन्टरी दल के हाथ में था और देश की लगभग दो तिहाई जनता और तीन चौथाई सम्पत्ति इसके पक्ष में थी।

पार्लियामेन्ट को छोटे तथा दूर दूर के दुर्गों की रक्षा करने में तथा गाँव के घरों को किलाबन्द करने में कम सेना का उपयोग करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त पार्लियामेन्ट के पास सामुद्रिक सेना थी जिससे वह बहिर्देशीय सहायता को ही नहीं रोक सकती थी वरन् देश के भीतर सुगमता से सेना संचालन कर सकती थी और तटस्थ नगरों की रक्षा भी कर सकती थी। पार्लियामेन्ट की पैदल सेना भी उन्नत थी। उस समय तक संगीन का आविष्कार न हुआ था इसलिए आधी सेना के पास भाले थे जो पन्द्रह फीट से अधिक दूर तक काम नहीं कर सकते थे। आधी सेना के पास तोड़ेदार बन्दूकें थीं, इसलिए वह भी मुठभेड़ के युद्ध के अयोग्य थीं। बन्दूक चलाने में उस समय, समय भी काफ़ी लगता था और बड़ी दिक्कत भी होती थी। क्योंकि बन्दूकची को पहले बारूद की कुप्पी में से बारूद निकाल कर नली में रखनी पड़ती थी, फिर अपने मुँह में से एक गोली निकाल कर नली के मुँह में रखकर गज़ से ठोक-ठोक कर उसे ठीक स्थान तक पहुँचाना पड़ता था। इसके बाद बन्दूक को जो बहुत काफ़ी भारी और लम्बी होती थी

उसके चौखटे में जमाना पड़ता था और तब अन्त में रंजक लगा कर उसे चलाया जाता था। इस सेना को इसी प्रकार की अन्य बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। यही कारण है कि गृहयुद्ध की लड़ाइयों में विजय अश्व सेना पर ही अवलम्बित थी।

परन्तु युद्ध के प्रारम्भ में अश्व सेना में राज-पक्षी दल का पाँसा ऊँचा था। उनके पास अधिक कुशल सवार और अच्छे घोड़े थे दूसरे ध्येय की एकता और सेना की नायकता का प्रतीक राजा उनके साथ था। नेता भी उनके पास योग्य और अनुभवी थे। इसी प्रकार शुरू में दो वर्ष तक युद्ध नीति और सैन्य-संचालन कौशल में राजपक्षी दल ही चढ़ा बढ़ा रहा। इसके अतिरिक्त चार्ल्स का भतीजा कुमार रूपर्ट, जो अभी २३ वर्ष का भी न था, बड़ा सिद्धहस्त और कुशल अश्वसेना-नायक था। उसकी वीरता और पराक्रम से उसकी सेना को बड़ी स्फूर्ति मिलती थी और युद्ध की निर्णायक व्यवस्था करने में वह बड़ा योग्य सेनापति था। रूपर्ट और राज्य दल के अन्य नायक पार्लियामेन्टरी दल के सेनापति लार्ड एसेक्स और लार्ड मैनचेस्टर राजा को बहुत अधिक तंग करना हृदय से नहीं चाहते थे। परन्तु रूपर्ट सलाह देने में तेज मिज़ाजी प्रदर्शित करने लगता था इसलिए उसके साथ सहयोग करना कठिन हो जाता था। इससे भी अधिक वह युद्ध में उतावलापन दिखाने लगता था जिससे राजा का पक्ष निर्बल और क्षीण होता गया।

सन् १६४३ की मुहिम—पहले वर्ष राजा का उद्देश्य एक सेना लेकर लंडन पर चढ़ जाना था। श्रूज़बरी से चढ़ कर वह एसेक्स से, जो मिडलैंड्स से उसी ओर आ रहा था, आगे निकल गया; किन्तु फिर ऐजहिल पर उसका मुकाबला करने के लिए लौट आया। गृह युद्ध के समय की सेनाएँ एक दूसरी से पार्थक्य-दर्शाने के लिए कोई न कोई चिन्ह अपनी वर्दी पर लगाये रहती थीं। एजहिल की लड़ाई में पार्लिया-मेंन्टरी सेना नारंगी रंग के रूमाल गले में बाँधे थी। न्यूबरी की लड़ाई में हरे रंग की कफ पहने थी और मार्स्टन मूर की लड़ाई में उनकी टोपियों में सफेद काग़ज़ के टुकड़े सफ़ेद रूमाल खोसे हुए थे।। न्यू माडल सेना की वर्दी का रंग लाल था इसलिए अँगरेजी सेना रंग की वर्दी पहनने लगी। राजपक्षी दल की अश्वसेना के दोनों कक्ष सफल रहे, किन्तु रूपर्ट बहुत दूर तक विपक्षी सेना का पीछा करता चला गया और उत्तेजित होकर राजा चार्ल्स की रिज़र्व अश्वसेना भी जिसमें सुसज्जित अमीर और जमीन्दार शामिल थे, विपक्षियों के पीछा करने में चल पड़ी। फल यह हुआ कि राजपक्षी दल की परास्त सेना को कठिनाई का सामना करना पड़ा और जब बहुत देर के बाद आखिर रूपर्ट अपनी सेना की ओर लौटा तो बड़ी मुश्किल से वह उसको हारते-हारते बचा सका। अर्थात् इस लड़ाई में किसी पक्ष की जीत नहीं हुई। राजा फिर भी आगे बढ़ता गया और लंडन के निकट टर्नहम ग्रीन तक पहुँच गया। वहाँ २४ हजार लंडन निवासी उसका मार्ग रोके खड़े थे। इसलिए उसे हटकर आक्सफर्ड चला जाना

पड़ा। सैनिक आलोचकों को चार्ल्स की इस नीति पर सन्देह है कि उसे लण्डन की ओर बढ़ने की चेष्टा करनी चाहिए थी। राजपक्षी दल की सेना फिर कभी भी राजधानी के इतने निकट न पहुँच सकी।

१६४३ ई० की मुहिम और लण्डन पर तितरफा चढ़ाई—दूसरे वर्ष अर्थात् १६४३ ई० में राजा चार्ल्स ने लण्डन पर तीन तरफ से आक्रमण करने की योजना की। उत्तर को परास्त कर लेने के बाद लार्ड न्यूकैसिल को दक्खिन की ओर जाना था। दक्खिन-पश्चिम को सर कर लेने के बाद हौप्टन को पूरब की ओर बढ़ना था और चार्ल्स को एसेक्स को उलझाये रखकर जब सब तैयार हो तो लण्डन पर चढ़ाई करना था। बसन्त और ग्रीष्म में पार्लियामेन्टरी दल के लिए परिस्थिति आशाजनक नहीं थी। १ली जून को न्यूकैसिल ने अथर्टनमूर जीतकर यार्कशायर के अधिकांश प्रदेश पर अधिकार कर लिया और हौप्टन ने पार्लियामेन्ट के होनहार सेनापति वालर को राउंड अवे डाउन पर जुलाई में परास्त कर दिया। इस लड़ाई की हार ने पिम को स्काटों से सैन्य-सहायता के लिए बातचीत करने को बाध्य कर दिया। इस पर हाउस ऑव लार्ड्स के कई सदस्यों ने हाउस ऑव कामन्स में प्रस्ताव किया कि लज्जाजनक शर्तों के होते हुए भी राजा से समझौता कर लिया जाय; परन्तु हाउस ऑव कामन्स ने उस प्रस्ताव को केवल ७ वोटों से अस्वीकृत कर लिया। इस बीच में राजा के हाथ से रैडिंग निकल गया किन्तु पार्लयामेन्टरियों को चालग्रव पर पराजय हुई जिसमें हैम्पडन मारा गया।

सितम्बर १६४३ ई० में लहर ने पलटा खाया। हल और प्लीमथ की लड़ाइयों ने पार्लियामेन्टरी पक्ष को बचा लिया। न्यूकैसिल के उत्तरियों ने हल को जीते बिना शत्रु की दया पर घरबार और सम्पत्ति छोड़ कर दक्खिन की ओर जाना स्वीकार नहीं किया। हौप्टन पूरब की ओर बढता गया, परन्तु उसकी सेना क्षीण होने लगी क्योंकि उसके पश्चिमियों को भी यही आशंका थी कि प्लीमथ को शत्रु के हाथ में छोड़ने से उनकी कुशल नहीं है। इस बीच में लंडन की ओर न बढ़ सकने के कारण चार्ल्स ग्लौसेस्टर को घेरने के लिए अगस्त के शुरू में आगे बढ़ गया था, किन्तु सितम्बर में एसेक्स ने सफलतापूर्वक उसे मुक्त करा दिया। लौटते समय चार्ल्स ने एसेक्स की सेना के मुकाबले का प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रहा और एसेक्स को लंडन लौट जाने से न रोक सका। न्यूबरी की इस लडाई में लार्ड शेफलैंड मारा गया। अक्टूबर में विन्सबी की लड़ाई के फलस्वरूप हल भी, जिसे न्यू कैसेल ने घेर रक्खा था, मुक्त हो गया। विन्सबी की लडाई में प्यूरिटनों का भावी नेता क्रामवेल प्रधान था। इस प्रकार दक्खिन में केवल हौप्टन ही सफलतापूर्वक आगे बढ़ता रहा।

वर्ष के अन्तिम महीने में पिम की मृत्यु से पार्लियामेन्ट की बड़ी हानि हुई। किन्तु अपनी मृत्यु से पहले वह स्काटों से सन्धि की बातचीत तय कर चुका था। इस

समय दोनों दलों ने स्काटों से सहायता माँगी थी। प्रेस्बिटेरियनों ने यह सोचकर कि यदि राजा की विजय हुई तो वह उनके दबाने का प्रयत्न करेगा, पार्लियामेन्ट वालों का
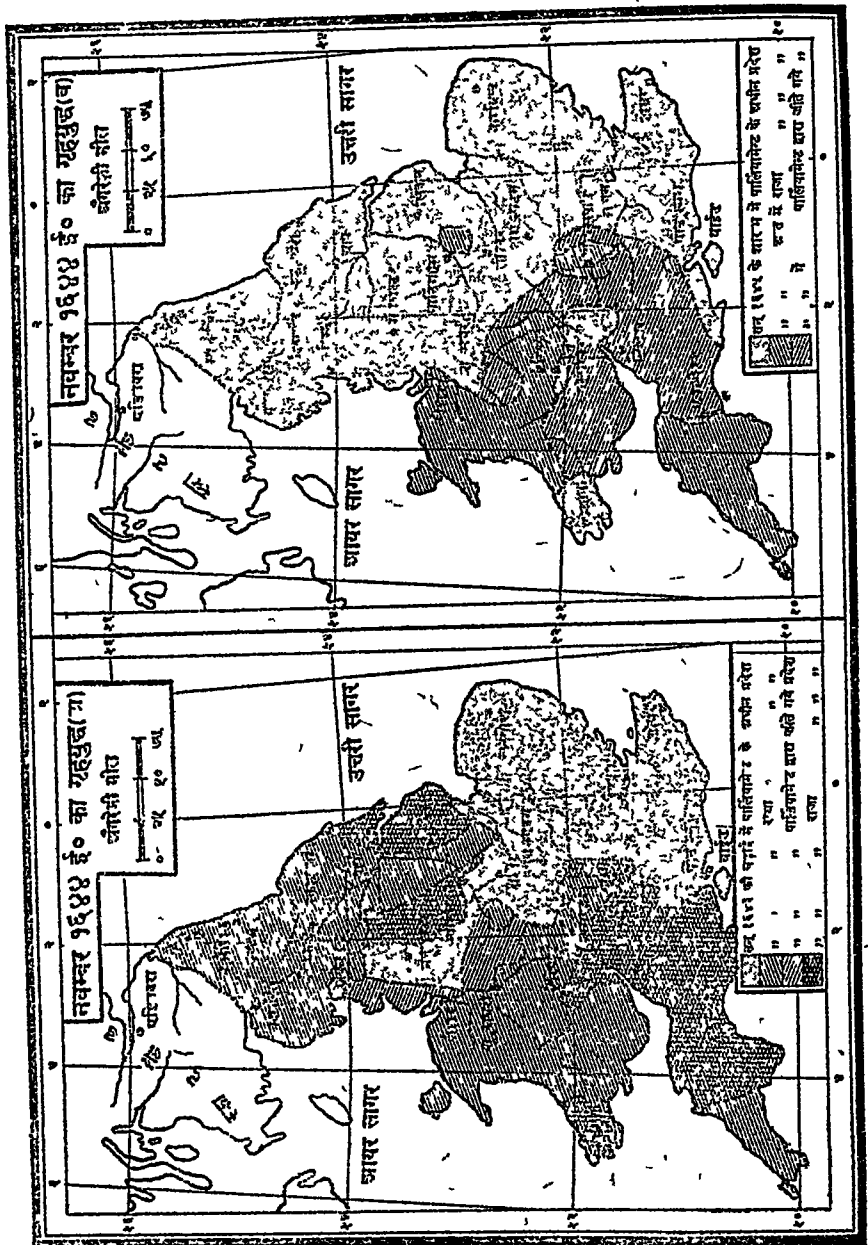
पक्ष लिया। परन्तु स्काटों की यह शर्त कि इँग्लैंड का भावी राज्यधर्म प्रेस्बिटेरियन धर्म हो, बड़ी कड़ी थी। पार्लियामेन्ट ने सॉलेम लीग ऐंड कवेनेन्ट में इसे थोड़े

हेरफेर के साथ स्वीकार कर लिया। इसके बदले में स्काटलैंड से २० हजार सेना मिल गयी, जिसके कारण पार्लियामेन्ट-दल को विजय मिली।

१६४४ ई० की मुहिम—१६४४ ई० में युद्ध ने कुछ और ही रूप धारण कर लिया। दोनों पक्षों को एक एक सहायक मिल गया था। स्काटों ने पार्लियामेन्ट का पक्ष लिया और चार्ल्स को आयरलैंड की सेना मिल गयी। फिर भी पार्लियामेन्ट का पलड़ा ऊँचा रहा। स्काट सेना पार्लियामेन्ट के लिए बहुत सहायक सिद्ध हुई। आयरिश सेना निकम्मी थी और कैथलिक धर्मावलम्बी होने के कारण उसने राजा के सहायकों में बहुतों से शत्रुता करा दी। अँगरेज आयरिश विद्रोहियों से बहुत चिढ़ते थे अतः उनके आ जाने से चार्ल्स के पक्ष की बड़ी हानि हुई। इँग्लैंड पर इस सेना का वही हानिकारी प्रभाव पड़ा जो कदाचित् सन् १८५७ ई० के सिपाही-विद्रोह के बाद इसी प्रकार की समस्या खड़ी हो जाने पर हिन्दुस्तानी सेना के कारण पड़ता। इस समय पूरबी काउन्टियों ने अपनी रक्षा के लिए संघ बनाकर जो सेना इकट्ठी की थी वह अपना प्रदेश छोड़ कर लार्ड मैनचेस्टर के नेतृत्व में युद्ध में भाग लेने को तैयार हो गयी। मार्च में हौप्टन की पराजय के बाद राज-पक्ष को एसेक्स और केन्ट पर सफलता प्राप्त कर सकने की आशा न रही।

मार्स्टनमूर की लड़ाई (जुलाई १६४४ ई०)—जुलाई १६४४ ई० में राज-पक्ष की मार्स्टनमूर पर गहरी हार हुई। न्यूकैसिल को, जिसे यॉर्क में स्कॉट, फेयरफेक्स और मैनचेस्टर की सेनाओं ने घेर लिया था, रूपर्ट ने मुक्त कर दिया। उसके बाद ही पार्लियामेन्ट और राजपक्ष की सम्मिलित सेनाओं में मार्स्टनमूर पर एक घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में राज-पक्षी सेना की संख्या १७ हजार और पार्लियामेन्ट की सेना की संख्या २६ हजार थी। वह युद्ध इसलिए भी प्रसिद्ध है कि इसमें रूपर्ट के मुकाबिले में ऑलिवर क्रामवेल एक नया सेनापति निकल आया। क्रामवेल हन्टिंग्डनशायर का रहने वाला एक छोटा जमीन्दार था जिसने पूरबी काउन्टियों के संघ के लिए एक ऐसी घुड़सवार सेना बनायी थी जो राज पक्ष की सवार सेना का सामना कर सकती थी। क्रामवेल रूपर्ट के समान ही योग्य सेना-नायक था। वह अपनी अश्व सेना को रूपर्ट के समान ही तीव्र आक्रमण के लिए प्रेरित कर सकता था। साथ ही वह उसे आगे के हमले के लिए रोके भी रख सकता था। यह बात रूपर्ट के बूते की नहीं थी। राज पक्ष के सैनिकों का विचार था कि उस दिन लड़ाई न होगी, इसीलिए न्यूकैसिल अपनी गाड़ी में जाकर तम्बाकू का पाइप मुँह में दबाये आराम करने लगा। इधर शाम को सात बजे क्रामवेल ने स्कॉट घुड़सवारों की सहायता से, रूपर्ट की अश्व सेना को हरा दिया और फिर चक्कर काट कर उसने उस राज-पक्ष की अश्व सेना की टुकड़ी को अस्तव्यस्त कर दिया जो उस बाजू पर जीती हुई थी। इसी बीच में स्कॉट पैदल सेना को कठिन स्थिति का सामना करना पड़ रहा था। क्रामवेल ने बिना दम लिये शीघ्र ही उसकी सहायता की और न्यूकैसिल के श्वेतवस्त्रों को तहस-नहस कर

डाला। विजय का श्रेय वस्तुतः क्रामवेल के हाथ आया क्योंकि पार्लियामेन्टरी सेना के तीन मुख्य सेना-नायक उस समय मैदान छोड़ भागे थे। इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि न्यूकैसेल देश से बाहर चला गया और छः उत्तरी प्रान्त राज्य के हाथ से बाहर निकल गये।

न्यूकैसिल की दूसरी लड़ाई—अगस्त सन् १६४४ के अन्त में चार्ल्स ने कार्नवाल में लास्टवीथिल पर एसेक्स की सेना को घेर लिया। एसेक्स समुद्र की राह से भाग निकला। यद्यपि उसकी घुड़सवार सेना राज-पक्ष की सेना को चीरती हुई भाग कर निकल गयी। फिर भी उसकी पैदल सेना को आत्मसमर्पण करना पड़ा। परन्तु अक्टूबर में लौटते समय चार्ल्स ने न्यूबरी पर मैनचेस्टर और एसेक्स की दूसरी सेना द्वारा अपना मार्ग अवरुद्ध पाया। इस दूसरी लड़ाई में भी मैनचेस्टर की ओर से ढिलाई न होती तो चार्ल्स का आक्सफ़र्ड पहुँचना दुस्तर हो जाता।

न्यू माडल सेना और आत्मबलिदान-विधान—न्यूबरी के दूसरे युद्ध ने इन अधकचरे सेनानायकों की ढिलाई को स्पष्ट कर दिया। क्रामवेल आदि सेना-नायक इससे बहुत असन्तुष्ट थे, इसलिए पार्लियामेन्ट ने आत्म बलिदान का एक नया विधान पास किया जिसके अनुसार पार्लियामेन्ट के सदस्यों ने अपने अपने सैनिक पदों से इस्तीफा दे दिया। मैनचेस्टर और एसेक्स ने भी स्तीफ़ा दिया, किन्तु स्तीफ़ा दे देने पर भी क्रामवेल को पुनः सेनापति नियुक्त किया गया। पार्लियमेन्ट ने सेना की सुव्यवस्था का भी निश्चय किया और उसका फल यह हुआ कि न्यू मॉडल सेना खूब सुसंगठित हो गई। योग्य नायक इसके अफ़सर बनाये गये। सिपाहियों को नियमित रूप से वेतन मिलने लगा और इसकी घुड़सवार सेना और तोपखाना बहुत मजबूत हो गया। इस सेना के अधिकांश नायक उच्चकुलोत्पन्न व्यक्ति थे।

फ़ेयरफ़ेक्स बड़ा वीर योद्धा, साहसी सेनापति और चतुर अनुशासनप्रिय व्यक्ति था। वह अपने शत्रुओं और प्रतिद्वन्द्वियों के साथ भी उदारता का व्यवहार करता था। वह बड़ा साहित्यप्रेमी भी था। जब १६४६ ई० में उसने आक्सफ़र्ड नगर पर कब्जा किया तो उसने तुरन्त एक दस्ता सेना भेज कर बोडलायन पुस्तकालय की सुरक्षा का प्रबन्ध कर दिया।

फ़ेयरफ़ेक्स को इस सेना का प्रधान सेनापति बनाया गया और उसे सेना पर पूर्ण अधिकार दे दिया गया जिसमें पार्लियामेन्टी कमीशन का कोई हस्तक्षेप नहीं था। क्रामवेल को घुड़सवारों का नायक बनाया गया।

नेसबी की लड़ाई—(जून १६४५ ई०) न्यूमाडल सेना का कौशल १६४५ ई० के जून महीने में नेसबी के युद्ध में देखने को मिला। रूपर्ट ने अपने सामने के पक्ष को परास्त कर दिया, किन्तु वह उसे बहुत आगे खदेड़ता चला गया। दूसरे बाजू पर क्रामवेल सफल हुआ और मार्स्टनमूर की भाँति उसने अपने सवारों को फिर व्यूह बनाकर राजपक्ष की पैदल सेना पर आक्रमण किया। क्रामवेल ने रूपर्ट के

लौटते हुए सवारों पर एक ओर आक्रमण किया और उन्हें तितर-बितर कर युद्ध में विजय प्राप्त की। इस युद्ध में चार्ल्स की अश्वसेना और तोपखाना, समस्त पैदल सेना और बहुत से श्रेष्ठ नायक काम आये। इस लड़ाई में चार्ल्स की एक आल्मारी पकड़ी गयी जिसमें पाये गये पत्रों ने विदेशी शक्तियों के साथ उसकी गुप्त मन्त्रणा का भेद खोल दिया। नेसबी के बाद युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो गया क्योंकि राज-पक्ष के इतिहास लेखक क्लेरेंडन के शब्दों में 'नेसबी की लड़ाई में राजा और राज्य दोनों ही समाप्त हो चुके थे।' दक्खिन-पच्छिम की तरफ़ लैंगपोर्ट पर फ़ेयरफ़ैक्स को सफलता मिली और सितम्बर में उसने ब्रिस्टल को फिर जीत लिया।

स्काटलैंड में मॉन्टरोज़ की सफलता—इसी बीच में स्कॉटलैंड में राजा के भाग्योदय के सफल प्रयत्न हुए। मार्स्टनमूर की लड़ाई के दो महीने बाद एक स्कॉट अमीर मार्क्विस ऑव मॉन्टरोज ने चार्ल्स की ओर से युद्ध आरम्भ किया। १६३० ई० में उसने नेशनल कवेनेन्ट पर हस्ताक्षर किये थे और कवेनेन्टरों के लिए लड़ा भी था। किन्तु वह सदा अपने को राजभक्त कहता था। कवेनेन्टरों की पार्लियामेन्टी दल के साथ सन्धि उसके मत के अनुसार राजद्रोह थी। राजभक्ति और ईमानदारी के नाते उसके लिए एक ही रास्ता था अतः उसने अपनी तलवार राजा को सौंप दी। ४ हजार पैदल सेना और २०० घुड़सवारों से ही उसने बारह महीने में छः लड़ाइयाँ जीतीं। पहली जीत सितम्बर १६४४ ई० में पर्थ के पास टिपरम्योर पर एक रगरूट सेना पर छापा मार कर प्राप्त हुई। फिर एबरडीन के विजय के बाद, जिसमें उसकी सेना ने नगर निवासियों पर बहुत अत्याचार किये, वह आर्गिल की ओर बढा। कैम्पबेलों के संघातक शत्रु, मैकडनल्डों की सहायता से उसने इनवरलोकी की लड़ाई में अपनी से दुगुनी सेना को हराया। दो अन्य सफलताओं के बाद ग्लासगो के पास किलसिथ की लड़ाई में भी उसे विजय प्राप्त हुई।

मॉन्टरोज़ की हार—किलसिथ के युद्ध के बाद ग्लासगो पर अधिकार हो जाने से ऐसा ज्ञात हुआ कि स्कॉटलैंड राजा से मिल जायगा। मॉन्टरोज को २० हजार सेना लेकर सीमा पार करने की भी आशा थी, किन्तु अब विजय लक्ष्मी उसका साथ छोड़ चुकी थी। मैकडनल्डों ने कैम्पबेलों से युद्ध आरम्भ करने के लिए उस का साथ छोड़ दिया। इसी प्रकार किसी विशेष व्यक्तिगत कारणों से गर्डन लोग भी चले गये। लोलैंड प्रदेश में उसे कोई सहायता न मिली। लोक परिषद् ने उसका बहिष्कार कर दिया था और उसके आयरिश सैनिक शैतान के अस्त्र समझे जाने लगे थे। किलसिथ की अन्तिम विजय से दो महीने पहले नेसबी का सघातक युद्ध हो चुका। इसलिए स्काट सेना का एक भाग जो अब मॉन्टरोज के विरुद्ध लड़ने के लिए तैयार था, उत्तर की ओर बढ़ गया। इस प्रकार सितम्बर १६४५ ई० में सेलकर्क के निकट फिलिपहाफ पर मॉटरोज़ की पराजय हुई। युद्ध के बाद वह राजा की आज्ञा

से युरोप चला गया। इस प्रकार इंग्लैंड और स्काटलैण्ड दोनों देशों में गृह युद्ध प्रायः समाप्त हो चुका था। जब चार्ल्स ने मई सन् १६४६ ई० में स्काट सेना को आत्म समर्पण कर दिया तो अगली जून में आक्सफर्ड नगर पर पार्लियामेन्टी दल का अधिकार हो गया और इस प्रकार गृह युद्ध का अन्तिम अध्याय भी समाप्त हो गया।

---

## अध्याय ५

## गृह-युद्ध पुनर्विधान तक

### ( १६४५-६० )

**युद्ध के बाद की परिस्थिति और राजा**—गृह युद्ध समाप्त हो गया था, किन्तु फिर भी बड़े महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय नहीं हो सका था। इंग्लैंड की भावी राज्य-व्यवस्था क्या होनी चाहिए? ईसाई धर्म का कौन सा स्वरूप राष्ट्र धर्म माना जाय और अन्य धर्मियों के प्रति कहाँ तक सहिष्णुता का व्यवहार किया जाय? ये प्रश्न स्वयम् ही कठिन थे, फिर इनके निर्णय में भाग लेने वाले दलों ने इन्हें और भी उलझा दिया। सबसे पहले तो चार्ल्स प्रथम का ही प्रश्न था। राजा पराजित हो चुका था, किन्तु कोई भी राज्य सत्ता का उन्मूलन करना नहीं चाहता था। चार्ल्स बड़ी उच्च भावनाओं वाला मानी पुरुष था जो इंग्लैंड के चर्च और विशप, मन्त्रि-मंडल तथा सेना को पार्लियामेन्ट के हाथों में सौंप देने को तैयार न था। परन्तु उसकी उदार वृत्ति उसे इसलिए दिखावे से बाज़ न रख सकी कि वह अपने प्रतिद्वन्द्वियों के कान उमेठने के लिए यह सब कुछ करने को तैयार था। इसी विचार से उसने एक एक कर और कभी एक साथ भी प्रत्येक दल से गुप्त मन्त्रणा की तथा आयरलैंड के कैथलिकों और फ्रान्स के मन्त्री मेजेरिन से भी सन्धि करनी चाही।

**स्काट सेना और पार्लियामेन्ट**—दूसरी पार्टी थी स्कॉट सेना जो इंग्लैंड में सदा के लिए प्रेस्बिटेरियन धर्म स्थापित करने पर तुली हुई थी। पार्लियामेन्ट ने सॉलेम लीग एन्ड कवेनेन्ट्स द्वारा ऐसा करने का वचन दिया था। तीसरी पार्टी थी लॉंग पार्लियामेन्ट, जिसमें गृह-युद्ध में भाग लेने वाले ७५ राज पक्ष दल के सदस्य अब शामिल न थे। इस पार्लियामेन्ट के अधिकांश सदस्यों का मत था कि चार्ल्स राज्य करे किन्तु वे उसका शासन नहीं चाहते थे। दूसरी ओर इसे न्यू माडल सेना का भय था। धार्मिक विषयों में यह समस्त इंग्लैंड पर प्रेस्बिटेरिन धर्म का आरोपण करना चाहती थी और इसने स्कॉट कमिश्नरों और धर्मात्माओं की वेस्टमिन्स्टर एसेम्बली की सहायता से इस धर्म को इंग्लैंड का राज्य-धर्म स्थापित करने के लिए बहुत कुछ व्यावहारिक प्रयत्न भी किये थे।

**चरमपन्थी और न्यू माडल सेना**—चौथी पार्टी चरमपन्थियों के उन विविध समूहों की थी जो बड़ी हलचलों के समय प्रायः बन जाया करते हैं। इनमें प्रमुख थे लोकतन्त्रवादी जो यह चाहते थे कि हर वर्ष पार्लियामेन्ट का अधिवेशन हो और प्रजा को सार्वजनिक निर्वाचन का अधिकार प्राप्त हो। इसके बाद थे साम्यवादी जो सभी मनुष्यों की समानता चाहते थे। फिर वे आदर्शवादी जो यह सोचते थे कि डेनियल की भविष्यवाणी के अनुसार पंचम साम्राज्य उन्हीं के उदार शासन में आया होगा। अन्त में और सब से ऊपर थी न्यू माडल सेना जिसमें स्वतन्त्रवादियों की प्रधानता थी। वे धार्मिक व्यवस्था के प्रश्नों के विषय में निरपेक्ष थे किन्तु विभिन्न आत्मविश्वासियों के लिए सहिष्णुता अवश्य चाहते थे। साथ ही ऐंग्लिकन बिशप और प्रेस्बिटेरियन एल्डर किसी का भी एकान्त प्रभुत्व नहीं देख सकते थे। चालीस-पचास हजार सुशिक्षित और सुनियन्त्रित सेना अगर राजनीतिक विषयों में हस्तक्षेप करे तो उसका विरोध करना कठिन हो जाता है और फिर भला आलिवर क्रामवेल जैसे युगान्तरकारी सेनापति के नेतृत्व में सेना के विचारों की अवहेलना करना नहीं तो और क्या हो सकता था।

**ऑलिवर क्रामवेल**—ऑलिवर क्रामवेल का जन्म १५९९ ई० में हन्टिंग्डन के एक प्रदेश में हुआ था। २९ वर्ष की अवस्था में वह पार्लियामेन्ट का सदस्य हो गया। १६४२ ई० में ४२ वर्ष की अवस्था में उसके सैनिक जीवन का श्रीगणेश हुआ जो ५२ वर्ष की अवस्था तक उन्नति करता रहा। गृह युद्ध के समय अश्व-सेना-नायक के रूप में उसने ख्याति प्राप्त कर ली थी। प्रिन्स रूपर्ट के मुकाबले योग्य अश्व सेना की शिक्षा और संगठन का श्रेय भी उसी को था। अश्व सेना विषयक युद्ध कौशल में वह रूपर्ट से बढ़ चढ़ कर था। घुड़सवार सेना के संचालन में वह इस नीति का समर्थक न था कि धावा बोलने से पहले गोली बरसा दी जाय और न ही वह राजकुमार रूपर्ट की भाँति वेगपूर्ण हल्ले की उपयोगिता में विश्वास करता था। क्रामवेल के कथनानुसार उसकी घुड़सवार सेना का दल साधारण तेज चाल से परन्तु एक साथ चल कर हल्ला बोलता था। गृह-युद्ध में उसने यह दिखा दिया था कि यदि वह लड़ाई के दाँव पेच में विशेष चतुर न भी हो किन्तु उसमें युद्ध की कठिन परिस्थिति को समझने और अथक पराक्रम द्वारा विजय प्राप्त करने की प्रतिभा मौजूद थी।

परन्तु राजनीति में तो उसने कभी कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया था। वह *लॉग पार्लियामेन्ट* का सदस्य था और धार्मिक प्रश्नों में उसे इतनी दिलचस्पी थी कि उसी के कथनानुसार यदि प्रबल शिकायत (ग्रांड रिमोन्स्ट्रेन्स) वाला बिल स्वीकृत न हो जाता तो वह दूसरे ही दिन अपना सब कुछ बेच कर सदा के लिए इंग्लैंड को नमस्कार कर विदेश चला जाता। गृहयुद्ध के बाद विशेष कर राजा और पार्लियामेन्ट के बीच समझौते की बातचीत में उसका विशेष गुण यही प्रकट होता था कि जब तक किसी बात का निर्णय नहीं हो जाता तब तक वह बड़े संकोच और असमंजस में पड़ा

रहता था किन्तु एक बार निर्णय हो जाने पर उसके पालन करने में वह बड़ी कठोरता और अचल साहस का परिचय देता था।

अब वह समय जाता रहा, जब क्रामवेल को आत्म प्रवंचक, दुष्ट और धर्मान्ध कहा जाता था। क्रामवेल अपनी धार्मिक भावनाओं में इतना पक्का था कि वह अपने प्रत्येक कार्य को ईश्वरेच्छा से प्रेरित मानता था। व्यवहारिक बुद्धि की भी उसमें प्रचुरता थी अपने सैनिकों को उसने उपदेश दिया था कि ईश्वर पर विश्वास रखते हुए सदा कर्म-पथ पर कटिबद्ध रहो और अपनी गोला बारूद सूखी रक्खो। इस उपदेश से उसके चरित्र पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है।

उसके भाषण उलझे हुए और प्रायः अस्पष्ट होते थे। किन्तु उनसे उसकी दृढ़ स्फूर्ति और आदर्श-प्रियता का पता लगता है। यह कैथलिकों से घृणा करते हुए तथा ऐंग्लिकनों से सहायकों के प्रति कठोर होते हुए भी उदाराशय था। उसकी सहिष्णुता की भावना उस समय के विचारों से बहुत आगे बढ़ी हुई थी। शक्ति ग्रहण करने पर जब उसने अवान्छनीय विनोद का अन्त कर अँगरेज़ों के जीवन को गम्भीर बनाने का प्रयत्न किया तब हमें यह न समझना चाहिए कि वह हर प्रकार के विनोद का विरोधी था। वह संगीत और कविता प्रेमी था। अच्छे घोड़े रखने का उसे बड़ा शौक था वह बड़ा कुशल घुड़सवार था और सवारी के सब करतबों में बेजोड़ साहस और कौशल उसे प्राप्त था। उस समय के ऐतिहासिक शब्दों में शारीरिक और नैतिक बल के साथ कोमल आध्यात्मिक भावनाओं में जिस प्रकार शेक्सपियर विचार जगत् में अपने युग का आदर्श अँगरेज़ था उसी प्रकार कर्त्तव्य जगत् में क्रामवेल था।

गृह-युद्ध के बाद के १४ वर्षों का इतिहास संक्षेप में यह है कि न्यू माडल सेना ने राजनीति में हस्तक्षेप आरम्भ कर दिया और अन्त में वह परम शक्तिशालिनी हो गयी। क्रामवेल उसका नेता था। फिर उसने पार्लियामेन्ट द्वारा प्रतिपादित अँगरेज प्रजा की अनुमति पर अपनी अधिकार शक्ति को आश्रित करना चाहा। परन्तु इसमें वह असफल रहा। इन्हीं परिणामों पर अब ज़रा विस्तार के साथ विचार करेंगे।

## §१. आक्सफर्ड के आत्मसमर्पण के बाद से राजा चार्ल्स के बध तक

## ( १६४६-४९ ई० )

चार्ल्स और स्काट—राजा चार्ल्स और पार्लियामेन्ट के वैधानिक झगड़े १४ बरस तक चले। परन्तु आक्सफर्ड के आत्मसमर्पण से चार्ल्स को फाँसी दिये जाने तक के ढाई बरसों के समय ( जून १६४६ से जनवरी १६४९ ई० ) में अनेकों समझौते के प्रयत्न और अनेकों गुप्त मन्त्रणाएँ हुईं। राजा स्काट सेना के साथ था जो न्यूकैसिल तक हट गयी थी। उसने उनके बहुत कुछ दबाव डालने पर भी सॉलेम लीग और कवेनेन्ट की शर्तों को अस्वीकार कर दिया। वह पार्लियामेन्ट की सन्धि की शर्तों के लिए भी तैयार न था, क्योंकि उनके अनुसार उसके सारे अधिकार छिने जा रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में उसे स्काट सेना के साथ स्काटलैण्ड भी नहीं ले जाया जा सकता था। इसलिए पार्लियामेन्ट से अपने व्यय के ४० हज़ार पौंड पा जाने के वायदे पर उन्होंने राजा को पार्लियामेन्ट के हवाले कर दिया और फ़रवरी १६४७ ई० में ट्वीड नदी पार कर स्काट सेना स्काटलैण्ड को लौट गयी। उसके इस आचरण की कड़ी आलोचना भी की गयी है, परन्तु यह बतलाना बहुत कठिन है कि उनके लिए और कौन सा रास्ता सुगम होता।

**पार्लियामेन्ट और सेना**—अब पार्लियामेन्ट का सेना से झगड़ा हो गया। विरोध का आधार कुछ अंशों में धार्मिक था। पार्लियामेन्ट प्रेस्बिटेरियन धर्म की समर्थक थी। सेना में प्रधानतः स्वतन्त्र विचार के लोग थे जो प्रेस्बिटेरियन के शासन के उतने ही विरोधी थे जितने पादरी के, और जो आत्मविश्वासियों के लिए स्वतन्त्रता चाहते थे। युद्ध समाप्त हो जाने के कारण पार्लियामेन्ट सेना को कम करके केवल एक तिहाई संख्या ही रखना चाहती थी और शेष को आयरलैण्ड में वहाँ के युद्ध को समाप्त करने के लिए भेजना चाहती थी। किन्तु सेना के संगठन को तोड़ देने के प्रस्ताव द्वारा उसने सेना के प्रति अपने पुराने विद्वेष को प्रकट कर दिया। फिर यह सोचना भी मूर्खता थी कि सेना केवल ६ सप्ताह का वेतन लेकर ही सन्तुष्ट हो जायगी, जब कि पैदल सेना की १८ सप्ताह की और घुड़सवार सेना की ४२ सप्ताह की तनख्वाह चढ़ी हुई थी। सेना ने इसका विरोध किया और अपनी माँगों का विज्ञापन करने के लिए आन्दोलन-कर्त्ताओं को निर्वाचित किया। अन्त में कोर्नेट जुइस और एक सैनिक-दल ने नार्थम्पटनशायर में राजा को गिरफ़्तार कर लिया और उसे न्यूमार्केट के सेना के हेड क्वार्टरों में ले गये। इस बीच में सेना लण्डन पहुँच गयी और अपने विरोधी ग्यारह सदस्यों के हाउस ऑव कामन्स से निकाले जाने पर जोर देने लगी। यह सेना का प्रथम हस्तक्षेप था। क्रामवेल ने मध्यस्थ बनने का प्रयत्न किया किन्तु अन्त में वह सेना के साथ हो गया।

**सेना और राजा**—अब राजा और सेना के बीच बातचीत शुरू हुई। क्रामवेल के दामाद आयरटन की प्रेरणा से सेना ने जो शर्तें पेश कीं उनमें बिशप-शासन को राज्य-धर्म मान कर धार्मिक व्यवहार में और लोगों के साथ सहिष्णुता की नीति बरतने का विधान था। वैदेशिक मामलात और सेना का प्रबन्ध एक कौन्सिल ऑव स्टेट को सौंप कर १० बरस के लिए पार्लियामेन्ट को मन्त्रियों की नियुक्ति का अधिकार दे दिया गया था। पार्लियामेन्ट की निर्वाचन-विधि में भी नये संशोधन पेश किये जाने और पार्लियामेन्ट के सभासदों की संख्या में भी बहुत कुछ काँट-छाँट करने का प्रस्ताव था। इन शर्तों को अस्वीकार कर कदाचित राजा ने बुद्धिमत्ता प्रदर्शित नहीं की। (१८३२-ई० के रिफार्म बिल के प्रयोजन इससे बहुत अंशों में मिलते जुलते थे)।

**चार्ल्स की स्काटों से फिर मन्त्रणा**—किन्तु राजा को स्काटों के साथ फिर मन्त्रणा करना ही अच्छा लगा। इससे उलझनें और भी बढ़ गयीं। स्काटलैण्ड में

विशेष कर वहाँ के सरदारों में राजा के पक्ष से सहानुभूति सूचक प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। स्काट स्वातन्त्र्यवादियों की सफलता से नाराज थे और उन्हें अब भी आशा थी कि वे इंग्लैण्ड से प्रेस्बिटेरियन धर्म मनवा लेंगे। स्काट कमिश्नरों के संकेत से नवम्बर १६४७ ई० में राजा निकल कर ह्वाइट द्वीप में कैरिसब्रुक कैसिल में भाग गया। किन्तु उस द्वीप का गवर्नर राजा की आशा के विपरीत सेना के ही पक्ष में रहा और उसने राजा को वहाँ पर बन्दी बना रखा। फिर भी चार्ल्स स्काटों से सन्धि की बात-चीत पूरी कर ली। १६४७ ई० के बड़े दिन के दो दिन बाद उसने सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये, जिसके अनुसार राज्य मिल जाने पर चार्ल्स ने इंग्लैण्ड में तीन वर्ष के लिए प्रेस्बिटेरियन धर्म की स्थापना और अन्य मतों के दमन का वचन दिया था।

दूसरा गृह-युद्ध—( १६४८ ई० )—इस सन्धि के परिणाम स्वरूप ड्यूक ऑव हैमिल्टन ने एक स्काट सेना लेकर १६४८ ई० में इंग्लैंड पर आक्रमण किया। वेल्स और दक्खिन पूरबी इंग्लैण्ड में राज-पक्ष के लोगों ने बलवे किये। किन्तु दूसरे गृह युद्ध में वह पहला सा उत्साह नहीं दिखायी दिया। खुद स्काटलैंड में फूट थी। अधिकांश शक्तिशाली प्रेस्बिटेरियन मन्त्री इंग्लैंड पर आक्रमण करने के विरोधी थे। फेयरफेक्स ने दक्खिनी पूरबी प्रदेशों का दमन कर, कोलचेस्टर ले लिया और क्रामवेल ने बड़ी तेजी के साथ अपनी सेना हैमिल्टन और स्काटलैण्ड के बीच स्थापित कर दी। उसने प्रेस्टन पर राज पक्ष की एक अँगरेज टुकड़ी को परास्त किया जो स्काट सेना का साथ दे रही थी। फिर तीस मील की अश्रान्त दौड़ धूप के बाद स्काट सेना को अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया। १० हजार बाकी सैनिक उसके हाथ लगे। अन्त में क्रामवेल ने स्काटलैण्ड में प्रवेश किया और प्रेस्बिटेरियन दल के अध्यक्ष आर्गिल का प्रभुत्व स्थापित कर दिया।

राजा का वध—( जनवरी सन् १६४८ )—इसी बीच में युद्ध के समय राजा फिर पार्लिंयामेन्ट से बातचीत कर रहा था और ऐसी रियासतें देने का वचन दे रहा था जिन्हें पूरी करने की उसकी तनिक भी इच्छा न थी। किन्तु अब उसका अन्त भी निकट था क्रामवेल और उसकी सेना युद्ध में इस उद्देश्य से गयी थी कि वहाँ से लौटने पर वे इस 'खूनी पुरुष' ( राजा ) को दण्ड दिये बिना न रहेंगे। जब लौटकर उन्होंने पार्लियामेन्ट को राजा से सन्धि की बातचीत करते हुए पाया तो उन्होंने शक्ति का प्रयोग किया। ६ दिसम्बर, १६४८ ई० को कर्नल प्राइड ने लाल वर्दी वाले बन्दूकधारियों के एक दल के साथ हाउस ऑव कामन्स के द्वार पर खड़े होकर उसके १४३ सदस्यों को भीतर जाने से रोक दिया। इस ( Pride's Purge ) सफ़ाई के बाद पार्लियामेन्ट में केवल ६० सदस्य रह गये थे। उन्होंने राजा पर अभियोग चलाने के लिए एक न्याय-समिति नियुक्त करने का निश्चय किया। वेस्टमिन्स्टर हाल में राजा पर अभियोग की जाँच हुई ( जिस स्थान पर चार्ल्स खड़ा होता था वहाँ अब एक

पीतल की तख्ती लगा दी गयी है।) जाँच के समय हाल के गलिहारों में स्त्री पुरुषों की बड़ी भीड़ रहती थी। (अपनी रक्षा के लिए जज ने गोली से रक्षा करने वाली जो लोहे की टोपी पहन रखी थी वह भी आक्सफर्ड में सुरक्षित है।)

जाँच का फल पहले ही से निश्चित था। ३० जनवरी, १६४६ ई० को २ बज कर ४ मिनट पर ह्वाइट हाल के भोजन गृह के बाहर सूली पर चढ़ा कर राजा को क़त्ल कर दिया गया। इस समय राजा ने सरदी के कारण दो कमीज़ें पहन ली थीं। यह इसलिए कि कहीं सरदी से काँपने पर लोग यह न समझ लें कि वह डर से काँप रहा था। फिर सेन्ट जेम्स महल से ह्वाइट हाल के भोजन गृह तक वह इतनी तेज़ चाल से गया कि उसके रक्षक दौड़ने पर भी उसके पीछे रह गये। चार्ल्स ने अपने अन्तिम दिनों की जैसी शिष्टता और चरित्र की महानता कभी प्रदर्शित नहीं की थी। कहा जाता है कि अगली रात को चारों ओर से अपने आपको लबादे से छिपाये एक सज्जन राजा की मृत देह के पास पहुँचे और बड़े शोक से भरी वाणी में उनके मुँह से 'निर्दय आवश्यकता' ये शब्द निकल पड़े। लार्ड साउथम्टन का विचार था कि यह आवाज़ क्रामवेल की थी।

राजा के वध से जनता को बड़ा शोक हुआ और जब जल्लाद ने चार्ल्स का कटा हुआ सिर हाथ में लेकर दिखलाया तो लोगों के मुँह से जो दर्द भरी चीत्कार सुनायी पड़ी वह बड़ी करुणापूर्ण थी। फाँसी की निर्दयता को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता; उसकी आवश्यकता ज़रूर विवादास्पद हो सकती है। जब चार्ल्स के अन्त समय के विचारों का विवरण प्रकाशित हुआ तो बहुत से लोग उसे शहीद मानने लगे।

## § २. रम्प पार्लियामेन्ट का शासन

## ( १६४९-५३ ई० )

रम्प पार्लियामेन्ट और दूसरा युग – इस तरह कामनवेल्थ का श्रीगणेश हुआ। जनवरी सन् १६३६ से लेकर एप्रिल १६५४ ई० तक के चार बरस को दूसरा युग कहा जाता है। इस समय में शासन-सूत्र उस हाउस ऑव कामन्स के हाथ में रहा जो १६४० ई० में निर्वाचित होकर लाँग (बड़ी) पार्लियामेन्ट के नाम से प्रसिद्ध हुई। क्रामवेल के शब्दों में इस बड़ी पार्लियामेन्ट के सदस्य धीरे धीरे घटते-घटते ४६० से (केवल ६० ही) मुट्ठी भर रह गये थे। इस रम्प पार्लियामेन्ट ने इंग्लैंड पर जिस अधिकार के साथ शासन किया वैसी सत्ता न तो उसके पहले और न ही उसके बाद किसी अन्य पार्लियामेन्ट को नसीब हो सकी। रम्प तो किसी अंश में भी राष्ट्र की प्रतिनिधि न थी, क्योंकि उसमें न तो काउन्टियों के ही कोई प्रतिनिधि थे और न नगरों के (सारी पार्लियामेन्ट में वेल्स से ३ और लण्डन से एक प्रतिनिधि था)। फिर उस पर न राजा का नियन्त्रण था न हाउस ऑव लार्ड्स का। यह सब

होते हुए भी नियमानुकूल ऐसे पार्लियामेन्ट को भी उसकी इच्छा के बिना विसर्जन कर देना असम्भव था। यह अपनी इच्छानुसार नियम बनाती और इच्छानुकूल नीति का अनुसरण करती थी। ४१ सदस्यों की एक काउन्सिल ऑव स्टेट को देश का शासन सौंपा हुआ था, जिसमें अधिकांश सदस्य रम्प के थे। विशेषज्ञों की अध्यक्षता में विविध समितियाँ विभिन्न विभागों का प्रबन्ध करती थीं।

क्रामवेल, समतावादी और आयरलैंड—रम्प पार्लियामेन्ट की सारी शक्ति फ़ेयरफेक्स, क्रामवेल और न्यूमाडल सेना पर निर्भर थी। यही कारण था कि वह इतनी सफलतापूर्वक शत्रुओं का दमन कर सकी। राजा के वध के बाद गरम दल के लोग बड़े शक्तिशाली मालूम हुए। परन्तु क्रामवेल तो समतावादी या पाँचवीं सत्ता में विश्वास करने वाला नहीं था क्योंकि ऐसे विचारों के आशकामय परिणामों को वह खूब समझता था। उसका कहना था कि या तो हम इन का विनाश कर दें नहीं तो हमारा विनाश किये बिना नहीं रहेंगे। इसीलिए न्यूमाडल सेना के विद्रोह को उसने बड़ी कठोरता और फुर्ती से दबा दिया। अब आयरलैण्ड क्रामवेल की क्रियाशीलता का दूसरा क्षेत्र बना। क्योंकि चार्ल्स के वध के बाद आयरलैण्ड के सब दलों ने मिल कर उसके पुत्र का पक्ष लिया। आयरलैण्ड पर क्रामवेल ने किस प्रकार विजय प्राप्त की इसका प्रसग आगे आयगा।

चार्ल्स २य और स्काटलैंड—अब क्रामवेल को स्काटलैण्ड से लड़ने के लिए जाना पड़ा। इस समय स्काटलैण्ड में दो दल थे। एक तरफ़ तो मान्टरोज़ हाईलैण्ड में विशुद्ध राज-पक्ष वालों से बलवा कराना चाहता था और दूसरी ओर आर्गिल यह चाहता था कि चार्ल्स २य कवेनेन्ट की शर्तों को मान कर तीनों राज्यों ( स्काटलैंड, इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड ) में प्रेस्बिटेरियन मत को राज्य-धर्म बना दे। चार्ल्स २य मान्टरोज की योजना का प्रकट रूप से विरोध करते हुए भी भीतर-भीतर उसका समर्थक था, इसलिए मान्टरोज़ ने आख़िर हाईलैंड में बलवा करा ही दिया। परन्तु वह हार गया और पकड़ा जाकर मई १६५० ई० में एडिनबरा के ग्रास मार-केट में फाँसी पर लटका दिया गया। इसी बीच में चार्ल्स ने आर्गिल की उन शर्तों को मान लिया जिनके अनुसार प्रेस्बिटेरियन धर्म सारे राज्य का धर्म हो और स्काटलैंड के मामलात में लोक परिषद् ( जनरल एसेम्बली ) और स्काट पार्लिया-मेन्ट के सलाह के बिना कोई काम न हो। इसके थोड़े ही समय बाद चार्ल्स २य स्काटलैंड जा पहुँचा।

डनबर की लड़ाई ( ३, सितम्बर, १६५० ई० )—इंग्लैंड और स्काटलैंड में अब युद्ध छिड़ गया। क्रामवेल ने आयरलैण्ड से लौट कर स्काटलैंड पर आक्रमण किया, किन्तु स्काट सेनापति लेस्ली ने उसे डनबर की अन्तरीप में रौंद दिया। क्रामवेल की सेना क्षीण, हीन अस्तव्यस्त और दबी हुई थी। लेस्ली पहाड़ियों में सुरक्षित था और क्रामवेल की ओर से बच कर निकल भागने की ज़रा सी भी चेष्टा होने पर

आक्रमण के लिए तैयार बैठा था। इस प्रकार क्रामवेल के सामने बड़ी कठिन परिस्थिति उपस्थित थी। परन्तु लेस्ली ने प्रतीक्षा करने के बजाय अपने दाहने पक्ष को ओर आगे नीचे के प्रदेश में उतार कर क्रामवेल के निकल भागने का मार्ग बन्द कर दिया। ऐसा करने से उसका बाम पक्ष अलग हो गया और मध्य भाग पहाड़ी पर होने के कारण शीघ्रता से व्यूह रचना करने में शिथिल पड़ गया। क्रामवेल ने यह देख कर सवेरे ही दाहने पक्ष पर आक्रमण कर उसे हरा दिया। शेष स्काट सेना एक पहाड़ी और घाटी के बीच में पड़कर असहाय हो गयी। इस लड़ाई में क्रामवेल के केवल २० आदमी काम आये, परन्तु १० हजार कैदियों के अतिरिक्त स्काटों के ३ हज़ार सिपाही खेत रहे।

**वॉसेस्टर की लड़ाई**—( ३ सितम्बर, १६५१ ई० )—अब क्रामवेल एडिनबरा की ओर बढा और १६५१ ई० में उसने पर्थ ले लिया। उसके उत्तर की ओर बढ़ जाने के कारण इंग्लैंड का मार्ग खुला रह गया था, इसलिए चार्ल्स कार्लाइल से होकर वर्सेस्टर पहुँच गया। परन्तु क्रामवेल ने दक्खिन की ओर लौट कर उसे रास्ते में ही पकड़ लिया और उसका लंडन का मार्ग रोक दिया। ठीक एक साल बाद, डनबर विजय के दिन, क्रामवेल ने चार्ल्स २य पर नदी के दोनों ओर से आक्रमण किया और पाँच घन्टों के बड़े कठिन युद्ध के बाद उसे पूर्ण रूप से परास्त किया। चार्ल्स तो स्वयम् भाग कर युरोप पहुँच गया, परन्तु उसकी सेना का कोई सैनिक या सिपाही उसका सफल अनुकरण करने में समर्थ न हो सका। इस प्रकार वर्सेस्टर की लड़ाई ने १६६२ ई० में पुनः संस्थापन ( रेस्टोरेशन ) तक के लिए राज पक्ष के भाग्य का निर्णय कर दिया। इसी बीच में राजपक्ष की ओर से यद्यपि अनेकों षडयन्त्र रचे गये परन्तु सफलता एक को भी न हुई। इस लड़ाई ने स्काटलैंड की स्वतन्त्रता का भी अन्त कर दिया। एक अँगरेजी सेना ने स्कॉटलैण्ड पर आक्रमण कर उसके प्रमुख स्थानों पर क़ब्ज़ा कर लिया और कामनवेल्थ शासन के अन्त तक जनरल मंक वहाँ शासन करता रहा।

**क्रामवेल और रम्प पार्लियामेन्ट**—अब क्रामवेल और उसकी विजयी सेना को देश की राजनीति में भाग लेने का अवकाश मिला। रम्प पार्लियामेन्ट जितनी धीमी चाल से सुधार कर रही थी, उससे यह सन्तुष्ट न थे और इसलिए यह पार्लियामेन्ट को विसर्जन कर देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने कई महीने तक उसे ऐसे ही चलने दिया। परन्तु जब क्रामवेल को मालूम हुआ कि रम्प के सदस्य एक ऐसी नयी पार्लियामेन्ट का निर्माण करना चाहते थे जिनके न सिर्फ़ वे ही सदस्य होते बल्कि जिसे अन्य सदस्यों को निकाल देने का भी अधिकार होता, तो उसके धैर्य का बाँध टूट गया और सादा ( काला कोट और भूरे रंग का पाजामा पहने ) वेश उसने पार्लियामेन्ट में आकर एक भाषण दिया। फिर अपने सैनिकों की सहायता से उसने स्पीकर को खींच कुर्सी पर से हटा दिया। उसके सामने रखे रहने वाले दंड को

खिलौना कह कर उठा ले गया और सदस्यों को बाहर निकलवा कर पार्लियामेन्ट-भवन के दरवाजे बन्द करा दिये। लोग पार्लियामेन्ट के शासन से इतने तंग आ गये थे कि उसके सदस्यों के इस प्रकार ज़बरदस्ती निकाले जाने पर (क्रामवेल के शब्दों में) किसी ने चूँ तक न की।

## §३. क्रामवेल का शासन

### (१६५३-५८ ई०)

तीसरा युद्ध—एप्रिल सन् १६५३ में रम्प पार्लियामेन्ट के भंग होने और सितम्बर १६५८ ई० में क्रामवेल की मृत्यु एक तीसरे युग का समय है। इस बीच में राजा, गरम दल वाले (चरमपन्थी) आयरिश और स्काट सेना और लाँग पार्लियामेन्ट के अवशिष्ट सदस्य आदि सभी बारी-बारी से इंग्लैंड से राजनीतिक रंग-मच से हटाये जा चुके थे, और क्रामवेल और उसकी सेना का हर तरफ़ बोल बाला था परन्तु क्रामवेल के सामने जो समस्या थी वह इतनी कठिन थी कि वह उसे अन्त तक हल न कर सका। एक ओर तो वह स्वतन्त्र निर्वाचन प्रणाली पर अवलम्बित तथा सुव्यवस्थित न्याय-व्यवस्था सहित राज्य सत्ता स्थापित करना चाहता था। (आजकल के विधान के अनुसार किसी अंश में भी यह लोकतन्त्र शासन व्यवस्था न थी, बल्कि इससे तो मध्यम श्रेणी के लोगों का प्राधान्य था।) दूसरी ओर वह अपने विचारानुकूल एक ऐसा दिव्य-राज्य स्थापित करना चाहता था जो हर मनुष्य को नैतिक जीवन व्यतीत करने को बाध्य करे। परन्तु यदि अँगरेज़ प्रजा उसके इस दिव्य राज्य की रूप-रेखा पर उसके विचारों से सहमत न हो तो वह अपनी इन दोनों भावनाओं का समन्वय किस प्रकार करे यही टेढ़ी समस्या थी! क्रामवेल और उसकी सेना मानो सिपाही की तलवार की नोक पर एक कानूनी टोपी सी पहना देना चाहते थे। परन्तु दुर्भाग्य से उसका शासन सार्वजनिक सहायता पर आश्रित न हो पाया था, इसलिए शीघ्र ही यह कानूनी टोपी गिर गयी और तलवार नगी निकल पड़ी। अपनी इस नीति के अनुसार क्रामवेल ने कई बार पार्लियामेन्ट बुलायी परन्तु जब तक उसके सदस्य सेना के नेताओं द्वारा मनोनीति न होते अथवा जब तक विरोध पक्षियों को छाँट कर अलग न कर दिया जाता, ऐसी सभाओं का बेक़ाबू हो जाना अनिवार्य था।

बेयरबोन्स पार्लियामेन्ट (सन् १६५३ ई०)—इसलिए सेना का सबसे पहला प्रयास यह हुआ कि उसी के अधिकारियों की काउन्सिल द्वारा चुने हुए लोगों की एक पार्लियामेन्ट बुलायी गयी। फ्लीट स्ट्रीट के एक चमड़े के व्यापारी के नाम पर इस पार्लियामेन्ट का नाम बेयरबोन्स पार्लियामेन्ट पड़ गया। इसके सदस्यों में बहुत से प्रसिद्ध प्यूरिटन शामिल थे और ईटन का प्रोवोस्ट इस का स्पीकर था। ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड के संयुक्त राज्य की यह पहली पार्लियामेन्ट थी; परन्तु यह बहुत कल्पनाशून्य और अव्यावहारिक निकली। यह सारे नियम कानूनों को ('पाकेट बुक'

आकार का ) संक्षिप्त कर देना चाहती थी, इससे सारे वकील नाराज़ हो गये। इसी प्रकार सेना के ख़र्च के लिए जिन तरीकों से धन प्राप्त करने का इसने प्रस्ताव किया उनसे विदित था कि उसे प्राप्त करने में कितनी अधिक कठिनाई होगी। फिर धार्मिक व्यवस्था की उसकी योजनाओं ने विरोध का ऐसा बवंडर खड़ा कर दिया कि एक दिन नरम दल वाले सदस्यों ने अपने विपक्षियों के सतर्क होने से पहले ही यह प्रस्ताव पास कर दिया कि पार्लियामेन्ट अपने सारे अधिकार क्रामवेल के हाथ में सौंप कर भंग हो जाय ( दिसम्बर १६५३ ई० )।

शासन का विधान ( इन्स्ट्रूमेन्ट ऑव गवर्नमेन्ट )—क्रामवेल का दूसरा प्रयास एक शासन विधान उपस्थित करना जिसे उसके दामाद आयरटन ने, जो बड़ा प्रसिद्ध अफ़सर था बनाया था। इसे शासन विधान या इन्स्ट्रूमेन्ट ऑव गवर्नमेन्ट कहते हैं। इस विधान के अनुसार क्रामवेल को संरक्षक ( प्रोटेक्टर ) का पद दिया गया था। शासनाधिकार के साथ उसकी गवर्नमेन्ट के ख़र्च के लिए एक रकम निश्चित कर दी गयी थी। पार्लियामेन्ट की एक सभा थी जिसका काम नियम बनाना था। इस पार्लियामेन्ट पर प्रोटेक्टर का नियन्त्रण रहता था। वही इसको निमन्त्रित कर सकता था; वही उसके किसी कार्य को जो नये विधान के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हो रद्द ( अस्वीकृत ) कर सकता था और वही पाँच महीने की बैठक हो जाने के पश्चात् उसे भंग भी कर सकता था। क्रामवेल के ऊपर कुछ अंशों में 'काउन्सिल ऑव स्टेट' का नियन्त्रण होता। यह काउन्सिल इसी विधान के अन्तर्गत बनायी गयी थी। फिर क्रामवेल के ऊपर एक प्रकार से पार्लियामेन्ट का भी नियन्त्रण था। अगर उसे निश्चित धन से अधिक आवश्यकता पड़ जाती तो उसकी स्वीकृति पार्लियामेन्ट से ही मिल सकती थी। क्रामवेल के ये अधिकार आजकल के अमेरिका के युनाइटेड स्टेट्स के प्रेसिडेन्ट के अधिकारों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

पहली संरक्षित ( प्रोटेक्टरेट ) पार्लियामेन्ट ( १६५४ ई० )—इस समय से अँगरेजी इतिहास में संरक्षित शासन युग का आरम्भ होता है। पहली संरक्षित पार्लियामेन्ट सन् १६५४ में बैठी और उसने नये शासन-विधान की आलोचना करनी शुरू कर दी। नतीजा यह हुआ कि उसके १०० सदस्य निकाल दिये गये। बाकी सदस्यों ने सेना और सेना पर होने वाले खर्च को कम करने की इच्छा प्रकट की। साथ ही उन्होंने धर्म-वर्जित रीतियों की एक सूची बनायी जिनसे सबको बचना आवश्यक बताया गया। इसके द्वारा अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति को छोड़ देने का प्रस्ताव हुआ। दूसरे उन्होंने ऐसे बीस धार्मिक नियम उपस्थित किये जिन पर किसी को विरोध न हो। इस असहिष्णु पार्लियामेन्ट को भंग करने के लिए विधानानुकूल क्रामवेल को पाँच महीने की प्रतीक्षा करनी पड़ी, परन्तु उसने उसे शीघ्र भंग कर देने की तरकीब निकाल ली।

मेजर जनरल—पार्लियामेन्ट को भंग कर देने के बाद क्रामवेल ने स्थानीय

लोक-शासन पद्धति में सुधार का एक और प्रयास किया। सारे इँग्लैण्ड को ११ प्रान्तों में विभाजित कर उसने हर प्रान्त में मेजर जनरल नाम का एक अफसर नियुक्त किया जिसका काम था सेना का पर्यवेक्षण करना, राज-पक्षवालों के षड्यन्त्रों का विरोध और दल में स्वीकृत किये हुए चरित्र और नैतिक व्यवहार सम्बन्धी नियमों को पालन कराने में स्थानीय शासकों को सहयोग और प्रोत्साहन देना। इन नये नियमों के पालन कराने के प्रयत्नों ने इस प्यूरिटन शासन को इतना लोक-निन्दित बना दिया था कि लोग इसे सैनिक तानाशाही कह कर घृणा करते थे।

दूसरी संरक्षित (प्रोटेक्टरेट) पार्लियामेन्ट (१६५६-५८ ई०—सन् १६-५६ की ग्रीष्म में क्रामवेल ने दूसरी संरक्षित पार्लियामेन्ट बुलायी। इस के सौ सदस्यों को तो उसमें बैठने से पहले ही रोक दिया गया। बाकी सदस्यों ने 'विनीत प्रार्थना और सम्मति-पत्र' (Humble Petition and Advice) नाम का एक नया शासन-विधान उपस्थित कर क्रामवेल के प्रति श्रद्धा दिखलायी। इस विधान के अनुसार काउन्सिल ऑव स्टेट हटा दी जाती, क्रामवेल के अधिकारों में वृद्धि कर वह राजा बना दिया जाता और एक दूसरी सभा की और सृष्टि होती। क्रामवेल को अपनी इस नयी उपाधि पर बहुत संकोच हुआ, यद्यपि वह इसे अपने लिए बड़ा सम्मान मानता था। इसे स्वीकार कर लेने में उस समय बहुत से व्यावहारिक लाभ थे परन्तु यह उसी समय सम्भव होता जब राजसत्ता परिमित होती और लोग उसकी शक्तियों को समझते होते। सेना क्रामवेल की इस उपाधि के विरुद्ध थी, इसलिए उसने अन्य सब परिवर्त्तन स्वीकार करते हुए राजा की उपाधि के धारण करने से इनकार कर दिया।

क्रामवेल की मृत्यु—दूसरे संरक्षित पार्लियामेन्ट की इस दूसरी बार बनी हुई सभा का फिर इजलास हुआ। इस समय क्रामवेल के बहुत से समर्थक सदस्य नयी संगठित अपर सभा में पहुँच गये थे और १०० निकाले हुए सदस्य प्रजादल वाली लोअर सभा में फिर आ गये थे। इसलिए फिर वही कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुईं। प्रजा दल की सभा में अपर सभा के सगठन और उसकी कार्य-प्रणाली पर बहस होते होते खुद (प्रोटेक्टर) संरक्षक के भी अधिकारों पर बहस छिड़ गयी। फरवरी १६५८ ई० में यह पार्लियामेन्ट बरख़ास्त कर देनी पड़ी। आखिर सात महीने बाद, ३ सितम्बर, १६५८ ई० को क्रामवेल की मृत्यु हो गयी और लोकनियन्त्रित व्यवस्था के साथ एक सत्तात्मक शासन के समन्वय की पहेली उलझी पड़ी रही।

## §४. राज्य पुनर्स्थापना की ओर

### (१६५८-६० ई०)

चौथे युग में सेना और पार्लियामेन्ट—सन् १६५८ से लेकर १६६० ई० तक का चौथा युग बड़ी उलझन का समय है। जब क्रामवेल का पुत्र रिचर्ड संरक्षक बनाया गया। तो उस समय काफ़ी शान्ति थी; किन्तु यह शान्ति अधिक समय तक न

रहने वाली थी। एक नयी पार्लियामेन्ट फिर बैठी; परन्तु सेना के अफसरों का उससे झगड़ा हो गया। रिचर्ड ने दोनों में बीच-बिचाव करने का प्रयत्न किया, परन्तु फिर अफ़सरों का पक्ष ग्रहण कर उसने पार्लियामेन्ट को भंग कर दिया। इसके पन्द्रह दिन बाद रिचर्ड ने इस्तीफा दे दिया। सेना ने 'रम्प' पार्लियामेन्ट के पुनः स्थापन का निर्णय किया! इसने नये कमांडर-इन-चीफ के अधिकारों को सीमित करना चाहा और यह तय किया कि भविष्य में सेना की सभी नियुक्तियों (commissions) पर स्पीकर के हस्ताक्षर होने चाहिए। इसका अर्थ यह था कि कुछ अंशों में सेना पर उनका नियन्त्रण हो जाय। दूसरे उन्होंने धार्मिक विषयों में आत्म-स्वातन्त्र्य पर भी प्रहार करना चाहा। यही स्वतन्त्रता सेना को बहुत प्रिय थी, इसलिए सेना में सर्वमान्य ('ऑनेन्ट जान') लेम्बर्ट ने हाउस ऑव कामन्स भवन को फिर चारों ओर से घेर लिया और सदस्यों को अन्दर जाने से रोक दिया। एक बार फिर सेना विजयी हुई।

**मंक और राज्य-पुनर्स्थापन**—परन्तु अब स्काटलैंड के कमांडर-इन-चीफ जार्ज मंक ने एक बड़ी सेना और अपने कोष के ७० हजार पौंड से 'कृपाण शासन, की इस असहनीय दासता का अन्त करने तथा एक स्वतन्त्र पार्लियामेन्ट बनाने का निश्चय किया। ८ दिसम्बर, १६५६ ई० को वह कोल्डस्ट्रीम में आ पहुँचा। लेम्बर्ट ने जो उत्तर में उसका मुकाबला करने गया था अपनी सेना को अस्तव्यस्त होते देखा; परन्तु वह कुछ न कर सका। लंडन में आकर मंक ने बड़ी (लॉग) पार्लियामेंन्ट के सदस्यों को फिर बुलाया। उसमें प्राइड द्वारा निकाले हुए सदस्य भी थे। इस सभा का उद्देश्य था एक पार्लियामेन्ट के निर्माण की व्यवस्था करना। यह व्यवस्था पूर्ण होने पर निर्वाचन बड़े-उत्साह से हुआ। स्टुअर्टों के पुनः संस्थापन के लिए बहुत बड़ा पक्ष तैयार हो गया। मंक ने चार्ल्स को पहले से ही सारी व्यवस्था का संकेत दे दिया था। चार्ल्स ने उसी के अनुकूल ब्रेडा से अँगरेजों के प्रति एक घोषणा-पत्र भेजा। उस घोषणा का बड़े उत्साह से स्वागत हुआ और २८, मई १६६० ई० को चार्ल्स फिर लंडन लौट आया। उसके मार्ग पर फूल बिछाये गये गिरजाघरों के घंटे बजाये गये, सड़कों पर झंडे फहराये गये और शराब के फ़व्वारे चलाये गये। इस प्रकार इंग्लैंड के कॉमनवेल्थ शासन का अन्त हो गया।

**कॉमनवेल्थ का शासन**—क्रामवेल्थ और कामनवेल्थ के शासन में बहुत सी त्रुटियाँ थीं और वह आलोचना से मुक्त था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और भाषण की स्वाधीनता पर कॉमनवेल्थ के शासन में चार्ल्स प्रथम के समय से भी अधिक नियन्त्रण रहा। यद्यपि चार्ल्स प्रथम के समय से राज्य-कर भी तिगुना बढ़ गया था, फिर भी प्रति वर्ष ख़र्च के लिए पाँच लाख पौंड की कमी रहती थी। धार्मिक स्वतन्त्रता के विषय में भी बहुत कुछ पक्षपात होता था। कॉमनवेल्थ शासन में यहूदियों और क्वेकरों के प्रति तो सहिष्णुता दिखायी गयी परन्तु (अगर ऐंग्लिकनों को भी छोड़ दिया जाय तो भी) रोमन कैथलिकों के प्रति उसका व्यवहार अवश्य कठोर रहा।

यद्यपि 'कृपाण द्वारा सन्तों के इस शासन' की खिल्ली उड़ाना बहुत सहल है जिसमें उन्होंने कानून बना कर लोगों के पुण्याचरण का प्रचार करना चाहा, तलवार से लड़कर पारस्परिक झगड़ों के निपटारा करने की पुरानी कुप्रथा को बन्द करने की चेष्टा की, घुड़दौड़, मुर्गों की लड़ाई और रीछों के सधाने में जुआ खेलने के दुर्व्यसन को रोकना चाहा और रविवार के दिन गिरजाघरों में प्रार्थना के लिए सर्व साधारण के जाने पर जोर दिया—फिर भी उनके इस प्रयत्न में बहुत सी बातें सराहनीय थीं। पुनर्विधान काल से लेकर उस समय तक के अन्य राज्य शासनों की अपेक्षा कॉमनवेल्थ शासन में धार्मिक सहिष्णुता की भी मात्रा अधिक रही। इस समय की व्यवस्था में अनुशासन भी अच्छा रहा और कई प्रकार के घोर आपत्तिजनक आमोद प्रमोदों के बन्द कर देने के इनके प्रयत्न भी सफल रहे। शासन विधान सम्बन्धी प्रयास बुद्धिमत्तापूर्ण रहे। चान्सरी अदालतों में सुधार करने और मुकद्दमों का खर्च कम करने के प्रयत्न भी कुछ कम प्रशंसनीय न थे। इस प्रकार कॉमनवेल्थ के समय के बहुत से सुधार आधुनिक से प्रतीत होते हैं और सम्भवतः इस शासन की असफलता का एक बहुत बड़ा कारण भी यही था। इन सब बातों के ऊपर थी इस शासन की वैदेशिक नीति जिसने इंग्लैण्ड को, जो स्टुअर्ट काल में बहुत हीन अवस्था में था, बहुत ऊँचे स्थान पर पहुँचा दिया। कहा जाता है कि क्रामवेल के समान उससे पहले की किसी भी गवर्नमेन्ट की सूझ बूझ इतनी अधिक साम्राज्यवर्धिनी न रही थी।

---

# अध्याय ६

## इंग्लैंड की वैदेशिक नीति

### ( सन् १६४६—८८ ई० )

वृहत्तर ब्रिटेन—( सन् १६६३ ८८ ई० )—फ्रान्स के साथ शतवर्षीय युद्ध के बाद कामनवैल्थ के शासनकाल में इंग्लैंड की नीति की प्रवृत्ति सबसे अधिक युद्ध की ओर रही। १६५१ ई० तक तो कामनवैल्थ की कुछ शक्ति राज-पक्ष के साथ ही लड़ने में व्यस्त रही। इधर क्रामवेल अपने देश में डनबर और वुर्स्टर पर विजय प्राप्त कर रहा था; तो ब्लेक समुद्र पर राजपक्ष के लूटमार करने वाले प्राइवेट जहाजों को चैनल और भूमध्य सागर से हटाकर कामनवैल्थ का शासन स्वीकार करने को मजबूर कर रहा था। अब १६५२ ई० में कामनवैल्थ शासन को अपने युरोपीय प्रतिद्वन्दी राज्यों के उपनिवेशों के साथ हस्तक्षेप करने का अवकाश मिला और ४० हजार सैनिकों की सुशिक्षित स्थल और २०७ जहाजों की सशक्त जल-सेना का हस्तक्षेप निर्णायक सिद्ध हुआ।

डच युद्ध के कारण ( १६५२ ई० )—हालैंड इग्लैंड का सबसे पहला शत्रु बना। यह आशा की जा सकती थी कि वे दोनों राज्य प्रणाली तथा धर्म (प्रोटेस्टेन्ट) में समान होने के कारण एक हो सकते थे, किन्तु व्यापार क्षेत्र में इंग्लैंड और हालैंड घोर प्रतिस्पर्धी थे। लॉंग पार्लियामेन्ट के एक सदस्य के इस सम्बन्ध में ये वाक्य याद रखने योग्य हैं—'हम लोग संसार की सबसे सुन्दर प्रेयसी व्यापार के एकाधिकार के लिए लड़ रहे हैं।" अब तक हालैंड विजयी रहा था। डचों ने अँगरेजों का पूरबी इंडीज़ का व्यापार बन्द कर दिया था। जहाजी व्यापार में उनका प्रायः एकाधिकार था और उनके जहाज संसार के सब सागरों का माल ढोने वाले वाहन हो गये थे। सन् १६५१ के रम्प पार्लियामेन्ट ने एक 'नेविगेशन एक्ट' पास कर दिया जिसके अनुसार इंग्लैण्ड आने वाला सामान या तो अँगरेज़ी जहाजों में ही आ सकता था अथवा जिस देश से सामान आये उसी देश के जहाज़ों में। यह कोई नयी नीति न थी; क्योंकि रिचर्ड द्वितीय के राज्यकाल से लेकर कई नेविगेशन ऐक्ट पास हो चुके थे; परन्तु उनके नियमों की पाबन्दी नहीं हुई थी। यदि किसी विधान ने किसी देश को महान बनाने में सहायता की है। तो यह ऐक्ट उनमें से एक है। अगले वर्षों में अँगरेज़ी जहाजरानी की जितनी उन्नति हुई है। उसका श्रेय मुख्यतः इसी ऐक्ट को है। अँगरेज़ी जहाजरानी की उन्नति के साथ-साथ डचों को इससे काफ़ी चोट पहुँची। फिर इन राष्ट्रों के बीच और भी कई प्रश्न उठ खड़े हुए। अँगरेजों और फ्रान्स में एक प्रकार का युद्ध हो रहा था। अँगरेज़ डच जहाजों पर से फ्रान्सीसियों का माल छीन लेना चाहते थे। डचों ने इसका विरोध किया। अन्त में आत्म-सम्मान का प्रश्न आ गया। अँगरेज़ चाहते थे कि चैनेल में से जाते हुए डच जहाज़ अपना झंडा नीचा कर दिया करें। परन्तु वे इससे सहमत न हुए। इस पर डोवर पर अँगरेज़ और डच जहाज़ी बेड़ों में मुठभेड़ हो गयी और युद्ध आरम्भ हो गया ( मई सन् १६५२ ई० )।

युद्ध की घटनाएँ ( १६५२-४ ई० —युद्ध में अँगरेजों को अपने दृढ़ और सुसज्जित जहाज़ों का बल था। यद्यपि उनके पास ट्रौम्प जैसा कुशल नायक न था फिर भी ब्लेक में व्यवस्थापना, सतर्कता और क्रियात्मक साहस का समन्वय था। दो बरस में कई समुद्री लड़ाइयाँ हुईं। नवम्बर १६५२ ई० में ट्रौम्प ने डगनेस के पास ब्लेक को हराया और चैनेल पर अधिकार कर लिया। परन्तु अगली फरवरी १६५३ ई० में ब्लेक पोर्टलैंड के पार तीन दिन के युद्ध के बाद चैनेल पर पुनः अधिकार कर लेने में समर्थ हुआ। अँगरेजी जहाज़ों ने डचों के फैले हुए व्यापार को बहुत हानि पहुँचायी। इस युद्ध के जमाने में १४०० डच जहाज पकड़े गये जिनमें २२० लड़ाई के जहाज भी शामिल थे। युद्ध के अन्त में कोई डच व्यापारी जहाज़ चैनेल मे नहीं दिखायी देता था।

क्रामवेल की सन्धियाँ ( १६५४ ई० )—इसी बीच दिसम्बर १६५३ ई० में क्रामवेल संरक्षक हो गया था। क्रामवेल की वैदेशिक नीति का एक प्रधान उद्देश्य

यह था कि विदेशी सहायता द्वारा स्टुअर्ट राजाओं के पुनः संस्थापन को रोका जाय। उसके दो अन्य उद्देश्य थे प्रोटेस्टेन्ट धर्म का प्रतिष्ठापन और अँगरेजी व्यापार का विकास। इन नीतियों से क्रामवेल के चरित्र की गम्भीर धार्मिक भावना और व्यावहारिक सूझबूझ का परिचय मिलता है। पहले तो क्रामवेल ने शान्ति की नीति का अनुसरण किया और प्रोटेस्टेन्ट शक्तियों के साथ सन्धि की चेष्टा की। एप्रिल १६६४ ई० में डच युद्ध समाप्त हो गया। डचों ने इंग्लिश चैनेल में अँगरेजी झंडे का अभिवादन करना स्वीकार किया और अपने देशों में राजपक्ष-वालों को निर्वासित कर देने का वचन दिया। नेविगेशन ऐक्ट की शर्तों को भी उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार कर लिया। इसके बाद डेनमार्क, स्वीडन और पुर्तगाल से सन्धियाँ हुईं जिनसे इँग्लैंड को बहुत सी व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हो गयीं।

पच्छिमी ईंडीज पर चढ़ाई—१६५५ ई० में अपनी शक्ति के प्रदर्शन के लिए क्रामवेल को शीघ्र ही एक और क्षेत्र मिल गया। सन १६४८ में जर्मनी के तीस वर्षीय युद्ध का अन्त हो चुका था, किन्तु स्पेन और फ्रान्स का युद्ध अभी चल रहा था। दोनों क्रामवेल की सहायता से लाभ उठाना चाहते थे; किन्तु उसकी शर्तें बड़ी कठिन थीं। स्पेन के सामने उसने यह प्रस्ताव रक्खा कि अँगरेज़ों को स्पेन के उपनिवेशों में अपने धर्म के प्रतिपालन और पच्छिमी इंडीज में व्यापार करने की स्वतन्त्रता रहेगी। स्पेन के राजदूत ने विस्मित होकर उत्तर दिया कि यह तो मेरे मालिक की दोनों आँखें माँगने के बराबर है। तब क्रामवेल ने स्पेन के साथ हिस्पेनियोला उपनिवेशों के लिए युद्ध करने का निश्चय किया। १६५५ ई० में उसने स्पेनिश वेस्ट इंडीज में हिस्पेनियोला पर कब्ज़ा कर लेने के लिए एक नौ-सेना भेजी। उन दिनों इस प्रकार की सेना भेज देने से स्पेन और इंग्लैंड में बाक़ायदा युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना नहीं थी। परन्तु इस आक्रमण में क्रामवेल को बुरी तरह से हार खानी पड़ी। फिर भी अँगरेज़ों का जमैका पर अधिकार हो गया और क्रामवेल ने बड़ी तत्परता के साथ वहाँ उपनिवेश स्थापन करना आरम्भ कर दिया।

इस रण-प्रस्थान और वेस्ट इंडीज के आक्रमण से ही क्रामवेल कार्य शक्ति समाप्त नहीं हो गयी। ब्लेक को भूमध्यसागर में भेजा गया। उसने ट्यूनेस पर इसलिए आक्रमण किया कि वहाँ के बेग ने अँगरेज़ कैदियों को छोड़ देने से इनकार कर दिया था। फिर भी इस यात्रा का महत्व इस बात में है कि इससे भूमध्यसागर में अँगरेज़ों की नाविक कार्यशक्ति के विकास को बड़ा प्रोत्साहन मिला। उसी वर्ष ड्यूक ऑव सेवाइ ने वौदुआ ( Vaudois ) की घाटी में रहने वाले प्रोटेस्टेन्टों पर फ्रान्सीसियों की जानकारी में बड़े अत्याचार किये। इससे क्रामवेल बहुत क्रुद्ध हुआ। फ्रान्स के राजा ने जो क्रामवेल से सन्धि करना चाहता था, ड्यूक पर हत्याकांड बन्द करने के लिए दबाव डाला और इस प्रकार क्रामवेल युरोप भर में प्रोटेस्टेन्टों का संरक्षक समझा जाने लगा।

सान्टा क्रूज़ पर आक्रमण और डनकर्क पर अधिकार ( १६५७ ई० )—इसके बाद क्रामवेल ने फ्रान्स से सन्धि कर ली और १६५६ ई० के आरम्भ में इंग्लैंड और स्पेन के युद्ध की घोषणा हो गयी। १६५७ ई० की समुद्री लड़ाई में अँगरेजों को महान् सफलता हुई। ब्लेक के अँगरेज़ी बेड़े ने सान्टा क्रूज पर स्पेन के ख़ज़ाने से लदे हुए जहाज़ों को जा घेरा; परन्तु ये उस समय किले की तोपों से सुरक्षित थे। बन्दरगाह में प्रवेश कर, परिणाम की चिन्ता न करते हुए, ब्लेक ने भाटे के साथ लौटने के पूर्व ही प्रत्येक स्पेनिश जहाज को डुबाने, नष्ट करने और जलाने में सफलता पायी। परन्तु ७ अगस्त, १६५७ ई० को प्लीमथ के निकट पहुँचते-पहुँचते ब्लेक का जहाज पर ही देहान्त हो गया। अगले वर्ष ( १६५८ ई० में ) स्थल युद्ध हुआ। फ्रान्स और इंग्लैण्ड ने डनकिर्क को घेरने का निश्चय किया। इस स्थान पर अधिकार हो जाने से अँगरेजों के हाथ में डचों की लगाम और युरोप महाद्वीप का द्वार आ जाता। न्यू माडल सेना के ६ हजार सैनिक फ्रान्सीसी सेना के साथ हो लिये। इस युद्ध में उन्होंने इतना प्रमुख भाग लिया कि वे 'अमर' विख्यात हो गये। शीघ्र ही डनकर्क का पतन हो गया, किन्तु इसी समय क्रामवेल की मृत्यु हो गयी और घरेलू उलझनों के कारण आगे कुछ न हो सका। अपने देश में क्रामवेल ने अपने शौर्य और कौशल से जो महानता प्रकट की वह क्लेरेंडन के मतानुसार उसकी प्रादेशिक महानता की छाया मात्र थी। राज-पक्ष के इस इतिहासकार की इस सम्मति से कामनवेल्थ-शासन की वैदेशिक नीति की सफलता स्पष्ट हो जाती है और यह प्रकट हो जाता है कि कॉमनवेल्थ शासन ने प्रथम दो स्टुअर्टों के राज्य काल में इँग्लैण्ड के खोये हुए गौरव को पुनः स्थापित करने के लिए कितना महत्त्वपूर्ण काम किया।

लुई चतुर्दश के शासन-काल में फ्रान्स की स्थिति (१६४३-१७१५ ई०)—कामनवेल्थ के समय में इंग्लैंड ने युरोप में एक प्रभावशाली स्थान प्राप्त कर लिया था; किन्तु १६६० ई० में स्टुअर्टों के पुनरागमन के साथ इस प्रभाव का शीघ्र नाश होना था। चार्ल्स द्वितीय के फिर राज पाने ( १६६० ) और जेम्स द्वितीय के तीन वर्ष के शासन के बाद क्रान्ति ( १६८८ ई० ) के बीच २८ वर्ष का अन्तर है। इस बीच में फ्रान्स का राजा लुई चतुर्दश युरोपीय राजनीति में केन्द्रीय व्यक्ति है। अपने राज्य का विशाल धन सम्पत्ति और अपने योग्य मन्त्री और वीर सेनापतियों की सहायता से उसने न केवल फ्रान्स में ही अपने राज्य को पूर्ण शक्ति-सम्पन्न बना लिया था वरन युरोप में भी एक मुख्य स्थान प्राप्त कर लिया था यहाँ तक कि सन् १६८७ के आन्दोलन के समय तक उसकी महत्वाकांक्षा और शक्ति प्रत्येक युरोपीय राष्ट्र के लिए आशंकाप्रद हो गयी थी।

फ्रान्स के प्रति चार्ल्स २य की नीति—विना किसी विदेशी शक्ति की सहायता का आभारी हुए १६६० ई० में चार्ल्स इंग्लैण्ड लौट आया। वह प्रारम्भ से ही

फ्रान्स की ओर आकर्षित था। उसकी माता फ्रान्स की राजकुमारी थी। उसका चचेरा भाई लुई चतुर्दश फ्रान्स का ऐसा प्रख्यात राजा था, जैसा कि वह स्वयम् इंग्लैण्ड में होना चाहता था। फिर चार्ल्स इंग्लैण्ड की व्यापारिक उन्नति करना चाहता था। इसलिए फ्रान्स की जगह वह हॉलैण्ड को इंग्लैण्ड का प्रतिस्पर्द्धी समझता था। इसलिए उसने अपनी बहन हैनरिएटा का विवाह ड्यूक ऑव आलियाँ के साथ कर दिया और अपना पुर्तगाल के राजा की पुत्री कैथराइन ऑव ब्रागान्जा से इसलिए किया कि पुर्तगाल और फ्रान्स में मैत्री थी। कैथराइन को दहेज में दो महत्वपूर्ण प्रदेश प्राप्त हुए। एक तो बम्बई, जिसे चार्ल्स ने १० पौंड प्रतिवर्ष के नाममात्र किराये पर ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया और दूसरा टैनजियर जो भूमध्यसागर में ऐसे मार्के का बन्दरगाह था कि उस पर अधिकार रहने से इंग्लैण्ड को यह आशा हो गयी कि भूमध्य सागर में होकर गुजरने वाले समुद्री व्यापार पर उसका अनुशासन चल सकेगा। चार्ल्स ने डनकर्क को फ्रान्स के हाथ बेच दिया। इसकी काफी अप्रिय आलोचना हुई। किन्तु इसमें बुद्धिमानी की गयी थी; क्योंकि डनकर्क किसी मार्के के स्थान पर स्थित न था और वहाँ सेना रखने में अधिक खर्च होता था। फिर चार्ल्स डनकिर्क और टैनजियर दोनों स्थानों पर रक्षक सेना नहीं रख सकता था।

दूसरा डच युद्ध (१६६५-६७ ई०)—इसी बीच में इंग्लैण्ड और हालैण्ड की व्यापारिक महत्वाकांक्षाओं के कारण आफ्रिका में युद्ध आरम्भ हो गया। दोनों देशों में गम्भीर व्यापारी प्रतिस्पर्द्धा के कारण विरोध था और डच लोगों के विरुद्ध चार्ल्स द्वितीय के पास अनेकों प्रार्थनापत्र आये थे। इनमें तुर्की कम्पनी और ईस्ट इंडिया कम्पनी को डच नाविकों की लूट मार के कारण ७ लाख पौंड की हानि हुई थी। अन्त में १६६५ ई० में हॉलैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा हो गयी। इस युद्ध में नाम के लिए फ्रान्स हॉलैण्ड के साथ था; क्योंकि जितनी लड़ाइयाँ हुईं सब समुद्र पर हुईं और उनमें फ्रान्स में हॉलैंड का कोई साथ नहीं दिया। इस युद्ध की कई भयंकर लड़ाइयों में अग्निपोतों (उस समय की टारपीडो किश्तियों) ने बड़ा काम किया। चार्ल्स के भाई जेम्स, ड्यूक ऑव यॉर्क ने लोवेस्टोफट के पार एक महान युद्ध में विजय पायी और एक ही जहाज खोकर उसने डचों के १२ जहाजों का नाश कर दिया। परन्तु उनकी आज्ञा ठीक न समझ सकने के कारण अंगरेजी बेड़े ने डच जहाजों का पीछा नहीं किया और डच बेड़े को निकल जाने दिया। अगले वर्ष १६६६ ई० में मंक और रूपर्ट ने दुर्भाग्यवश अपने-अपने बेड़े पृथक्-पृथक् कर लिये; इसलिए मंक एक युद्ध में हार गया। १६६७ ई० में इंग्लैण्ड के ऊपर एक अमिट असम्मान का कलंक लगा। धनाभाव के कारण चार्ल्स को अपने जहाज़ डाक में बुला लेने पड़े। यह ठीक है कि चार्ल्स २ य की फ़िजूलखर्ची के कारण ही धनाभाव का यह प्रश्न सामने आया; परन्तु वास्तविक कारण यह था कि इन लड़ाइयों में अनुमान से बहुत अधिक खर्च हो गया था और पार्लियामेन्ट में जिने

क्सों द्वारा लड़ाई का ख़र्च स्वीकार किया गया था, उनसे भी बहुत कम आय हुई थी। डच अवसर पाकर मेडवे के ऊपर चैथम तक चढ़ आये और १६ अँगरेजी जहाज नष्ट कर गये। भाग्य से ६ सप्ताह के बाद ही अँगरेजों ने ब्रेडा की सन्धि कर ली, जिसमे उन्हें उत्तरी अमेरिका में न्यूजर्सी और न्यूएम्स्टर्डम मिल गये। ड्यूक ऑव यार्क के सम्मान के लिए इसका नाम न्यूयार्क पड़ा।

**डोवर की सन्धि और तीसरा डच-युद्ध**—ब्रेडा की सन्धि के एक वर्ष के भीतर इंग्लैण्ड, हालैंड और स्वीडन की सन्धि ने त्रिराष्ट्र सम्बन्ध का रूप धारण कर लिया। इस नयी सन्धि का उद्देश्य था लुई चतुर्दश का विरोध करना और चार्ल्स का इसमें सम्मिलित होने का प्रयोजन था डचों के प्रति फ्रान्स को उत्तेजित कराना। इसीलिए इस सन्धि पर हस्ताक्षर होने के एक ही सप्ताह बाद वह लुई से गुप्त-मन्त्रणा करने लगा और इसमें डचेज ऑव आर्लियाँ ने बड़ा हिस्सा लिया। आख़िर १६७० ई० में डोवर की सन्धि हुई जो इंग्लैंड के लिए बहुत लज्जाजनक थी। इस सन्धि में यह ठहरा कि हालैंड को बाँट लिया जाय और चार्ल्स को उसकी सैनिक सहायता के बदले में धन से सहायता दी जाय। फिर अगर चार्ल्स किसी सुविधाजनक अवसर पर अपने को रोमन कैथलिक धर्मावलम्बी घोषित कर दे तो उसे लुई की तरफ से और धन की सहायता दी जाय और अगर इस कारण से देश में कोई दंगा फिसाद हो जाय तो उसे रोकने के लिए लुई से सैनिक सहायता भी मिल सके। सन्धि की इस अन्तिम शर्त का हाल चार्ल्स २य के मन्त्री क्लिफर्ड और आर्लिंग्टन को ही मालूम था और ये दोनों ही कैथलिक और 'कैबल' मन्त्रिमंडल में से थे। और मन्त्रियों तथा सारे राष्ट्र को धोखा देने के लिए एक नकली सन्धि-पत्र तैयार किया गया था जिसमें डचों से युद्ध के सम्बन्ध की शर्तें थीं। डोवर के इस सन्धि के साथ चार्ल्स २य की वैदेशिक नीति का श्रेयस्कर भाग समाप्त हुआ। १६७२ ई० के युद्ध में डचों ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया। उन्होंने पुश्ते तोड़ दिये तथा देश को फ्रान्सीसियों से बचाने के लिए उसका कुछ भाग जलमग्न कर समुद्र को अर्पित कर दिया। यद्यपि साउथोल्ड खाड़ी में उनके जहाजी बेड़े की हार हो गयी फिर भी आगे चल कर उसने युद्ध में डट कर मुकाबला करने में कोई कोर-कसर न उठा रखी। नतीजा यह हुआ कि १६७४ ई० में इंग्लैंड को हालैंड के साथ सन्धि करनी पड़ी। परन्तु इस युद्ध में हालैंड की शक्ति क्षीण हो गयी और उसका अधिकांश व्यापार अँगरेज़ों के अधिकार में आ गया।

**वैदेशिक नीति—( १६७४-८८ ई० )** सन् १६७४ से लेकर १६८८ ई० तक वैदेशिक नीति में इंग्लैंड का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं रहा कभी-कभी चार्ल्स २य फ्रान्स के मुकाबले में स्वतन्त्रा प्रदर्शित कर देता था। जैसे ड्यूक ऑव यार्क की पुत्री राजकुमारी मेरी के हालैण्ड के शासक विलियम ऑव आरेंज के साथ विवाह का अवसर एक ऐसी घटना है। परन्तु इस युग के अधिकांश भाग में अँगरेज़ राजा

ज़्यादा से ज़्यादा लुई १४श का पेन्शनभोगी कहा जा सकता है। लुई ने चार्ल्स २य को पार्लियामेन्ट के अधिवेशन स्थगित कर देने के लिए काफी धन दिया; परन्तु जब राजा बहुत अधिक स्वतन्त्र होता दिखायी दिया तो उसने पार्लियामेन्ट में विरोधी पक्ष को भी घूस दे दी। इस सब का परिणाम यह हुआ कि अन्त में चार्ल्स २य ने अपनी मृत्यु से एक वर्ष पूर्व लुई १४श को प्रसन्न करने के लिए टैनजियर उसके हवाले कर दिया। जब १६८५ ई० में जेम्स २य गद्दी पर बैठा तो फ्रान्सीसी राजदूत ही उसकी विनाशक नीति का प्रधान समर्थक दिखलायी पड़ा। लुई चतुर्दश की शक्ति और महत्वाकांक्षा बराबर बढ़ रही थी, यहाँ तक कि १६८८ ई० के विद्रोह के समय तो उसका प्रभुत्व सारे युरोप के लिए आशंकामय हो गया था।

साम्राज्य का श्रीगणेश (१६०३-८८ ई०)—१७ वीं शती की अँगरेजी वैदेशिक नीति और ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में बहुत कुछ सामंजस्य है। जेम्स प्रथम के राज्यारोहण के समय ब्रिटिश साम्राज्य का कहीं नाम निशान तक न था। वर्जीनिया में उपनिवेश स्थापन के प्रयत्न असफल हो चुके थे। १६०० ई० में पूरबी देशों से व्यापार के लिए ईस्ट इंडिया कम्पनी बनी थी; किन्तु एलिजेबेथ की मृत्यु तक उसका पहला जहाजी बेड़ा भी लौटकर नहीं आया था। जेम्स के गद्दी पर बैठने के छः महीना बाद ये जहाज १० लाख पौंड की मिर्च लाद कर लौटे। स्टुअर्टों के जमाने से ही साम्राज्य का श्रीगणेश हुआ और इसलिए न केवल साम्राज्य के विकास के विचार से बल्कि गृह शासन की उन्नति की दृष्टि से भी १७वीं सदी बड़े महत्व की साबित हुई। यह भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि साम्राज्य के विकास और उसकी उन्नति में साधारण व्यक्तियों का श्रम ही फलदायी हुआ।

सुदूर पूरब में डचों का प्रभुत्व—अब हम पहले पूरबी देशों के मामले पर ध्यान देंगे। १५०० ई० में पुर्तगाल वालों ने गुडहोप होकर भारतवर्ष और पूरबी प्रदेशों का मार्ग खोज निकाला था। १६ वीं शती में पूरबी देशों के व्यापार पर पुर्तगाल का एकाधिकार रहा। रानी एलिजेबेथ के राज्यकाल में कई अँगरेज भारतवर्ष में पहुँचे। इनमें सबसे पहला स्टीफेन्स नाम का एक जीसूइट पादरी था जो १५७० ई० में भारतवर्ष में पहुँचा था। सत्रहवीं शती में डचों और अँगरेजों ने इस व्यापार में भाग लेने का निश्चय कर लिया। डच बड़े कुशल और निडर व्यापारी थे। डच ईस्ट इंडिया कम्पनी ने पुर्तगाल से मसाले के टापू जीतकर उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अँगरेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी पूरब में व्यापार करने का उद्योग किया; किन्तु डच कम्पनी अधिक धनी और शक्तिशाली थी। डचों और अँगरेजों में झगड़ा हुआ; जिसका परिणाम हुआ एम्बोएना का हत्याकांड। इसमें दस अँगरेज डच गवर्नर के विरुद्ध जापानी सैनिकों से गुप्त मन्त्रणा करने के अभियोग में मारे गये। इसके बाद अँगरेजों ने सुदूर पूरब में व्यापार करने के प्रयत्न छोड़ दिये और वे फिर १८ वीं सदी के अन्त तक इनमें सम्मिलित नहीं हुए।

**भारतवर्ष में अँगरेजी कारखाने**—भारतवर्ष में अँगरेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी को अधिक सफलता मिली। इसे पुर्तगालियों के विरोध का सामना करना पड़ा; किन्तु इसने उन्नति की व्यवस्था कर]ली। १६१२ ई० में इसने भारतवर्ष के पच्छिमी तट पर सूरत में पहली फैक्ट्री खोली। इसके बाद मदरास ( १६३६ ई० ) बम्बई ( १६६१ ई० ) और कलकत्ता ( १६६० ई० ) में भी फैक्ट्रियाँ खुलीं। सत्रहवीं शती के अन्त में एक और ईस्ट इंडिया कम्पनी इंग्लैंड में खोली गयी, किन्तु १७०६ ई० में दोनों कम्पनियाँ एक हो गयीं और मिलकर व्यापार में उन्नति करने लगीं। अब तक भारत में अँगरेजों का उद्देश्य केवल व्यापार करना था। किस प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी ने यहाँ रासकुमारी से लेकर हिमालय तक इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित कर लिया वह अगले अध्याय का विषय है।

**वर्जीनिया की स्थापना (.१६०७ ई० )**—इसी बीच में जब अँगरेज व्यापारी पूरबी देशों में व्यापार की उन्नति कर रहे थे, अँगरेज औपनिवेशिकों ने पच्छिम में बहुत से प्रदेश बसा लिये। मई सन् १६०७ ई० में कई सौ अँगरेज चेसापीक खाड़ी में जा उतरे और उन्होंने जेम्सटाउन नाम का नगर बसाया। इस प्रकार उपनिवेश बसाने का सबसे पहला प्रयास वर्जीनियाँ में सफल हुआ। उपनिवेश बसाने में प्रारम्भ में बहुत सी कठिनाइयाँ हुईं; परन्तु जॉन स्मिथ की अध्यक्षता में थोड़ी बहुत उन्नति जरूर हुई। १६१० ई० में जब लार्ड डी ला वार गवर्नर होकर वर्जीनिया पहुँचा तो इस उपनिवेश के इतिहास में भी बड़ा परिवर्तन हुआ और इंग्लैंड के बहुत लोग इस प्रदेश में बसने के लिए आ पहुँचे।

**पिलग्रिम फ़ादर्स**—१६२० ई० मे सुदूर उत्तर में प्यूरिटन उपनिवेशों की स्थापना हुई। एलिज़बेथ के शासन काल में अत्याचारों के कारण बहुत से प्यूरिटन भागकर हालैंड में जा बसे थे। इनमें से एक सौ मनुष्यों को जेम्स से अमेरिका में अँगरेजी उपनिवेश स्थापित करने की आज्ञा मिल गयी। वे 'पिलग्रिम फादर्स' कहलाये। मेफ्लावर जहाज़ में बैठकर वे प्लीमथ से चलकर केप कॉड हार्बर में जा उतरे और उन्होंने 'न्यू प्लीमथ' नामक उपनिवेश की स्थापना की। 'चार्ल्स १म के कुशासन और असहिष्णुता नीति के कारण शीघ्र ही उनकी संख्या बढ गयी। चार्ल्स के राज्यारोहण और १६४० ई० की बड़ी पार्लियामेन्ट की स्थापना के बीच में २० हजार औपनिवेशिक न्यू इंग्लैंड में बस गये। उत्तरी उपनिवेशों की स्थापना की इस प्रगति मे मेसाचुसेट्स सब से प्रधान रहा।

**चार्ल्स द्वितीय के शासन में उपनिवेशों का विकास**—अमेरिकन उपनिवेशों के इतिहास में चार्ल्स द्वितीय का शासन बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस समय उत्तरी दक्खिनी कैरोलाइना की स्थापना हुई। अमेरिका में अँगरेजी उपनिवेशों की शृंखला बँध गयी। अँगरेजों के उत्तरी और दक्खिनी उपनिवेशों के बीच के भाग में डचों ने अपने उपनिवेश बसा लिये थे। १६६५ ई० के डच युद्ध में उन पर

आक्रमण किया गया और युद्ध समाप्त होने पर सन्धि के समय डचों ने उन्हें छोड़ दिया। न्यू एमस्टर्डम न्यूयार्क हो गया और न्यूजर्सी; डेलावेर और पेनसिलवेनिया के उपनिवेश स्थापित हुए।

**अमेरिकन उपनिवेशों की अवस्था**—इंग्लैंड और अमेरिकन उपनिवेशों के विषय में चलकर बहुत कुछ कहना है। यहाँ इतना ही पर्याप्त होगा कि उनमें से अधिकाश में एक अँगरेज गवर्नर नियुक्त किया गया था और इन उपनिवेशों में हर एक की स्वतन्त्रता में काफी भेद विभेद था। उस समय के अनुकूल इंग्लैंड उपनिवेशों को अपनी सम्पत्ति का स्रोत समझता था तथा औपनिवेशिक व्यापार अँगरेजी व्यापारियों को लाभ पहुँचाने के दृष्टिकोण से ही बड़ी सावधानी के साथ नियन्त्रित किया जाता था। इन उपनिवेशों में बहुत कुछ भिन्नता थी। न्यू इंग्लैंड (मेसाचुसेट कनेक्टिकट न्यू हैम्पशायर और रहोड द्वीप) उपनिवेश वासी प्यूरिटन धर्म के अनुयायी थे। यहाँ के शासन का रुख बहुत अंश में प्रजातन्त्र की ओर था और वे बड़े परिश्रमी तत्पर तथा सरल आदतों के मनुष्य थे। दक्खिनी उपनिवेश (वर्जीनिया मेरीलैण्ड उत्तरी और दक्खिनी कैरोलाइना और जार्जिया) निवासियों के शासन में वहाँ के सरदार और धनिक प्रधान थे और चर्च ऑव इंग्लैंड की वहाँ राज्य की ओर से स्थापना हुई थी। यहाँ का जलवायु गरम था, मुख्य-पैदावार तम्बाकू और चावल थी। इसकी खेती गुलाम करते थे। मध्य उपनिवेशों में सभी प्रकार के धर्म और जातियाँ मिल सकती थीं। इतने भेदोपभेदों के होते हुए उनमें संगठन सरल न था। मुख्यतः सीमा सम्बन्धी झगड़े निरन्तर हुआ करते थे। मातृदेश के दबाव डाले बिना उनमें एकता उत्पन्न नहीं हुई। जब १७७५ ई० में इंग्लैंड का दबाव पड़ा तो सबने एकत्र होकर सामना किया। इसके एक शताब्दी के बाद उनके आन्तरिक भेदों के कारण अमेरिकन गृहयुद्ध हुआ (१८६१ ई०)।

**साम्राज्य के अन्य भाग**—इसके अतिरिक्त पश्चिमी द्वीप-समूह में बार्बडोस का द्वीप १६२६ ई० तक बस चुका था। जमैका पर भी १६५५ ई० में क्रामवेल का अधिकार हो गया था। यह द्वीप कैप्टिन डैम्पियर जैसे प्रसिद्ध समुद्री डाकू (बुकैनियरी) का अड्डा था। ये कैरीबियन सागर में स्पेन के व्यापारी जहाजों को लूट लेते थे। न्यू-फाउडलैंड और बहामाज़ में भी उपनिवेश स्थापित हो गये। १६५१ ई० में सेन्ट हेलेना पर भी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अधिकार कर लिया था।

---

# अध्याय ७

## इंग्लैंड और स्काटलैंड की गृहनीति

### ( १६६०—८८ ई० )

अब सन् १६६० के राज्य पुनः स्थापन और १६८८ ई० के आन्दोलन के बीच के २८ वर्ष का आन्तरिक इतिहास समझने के लिए पहले चार्ल्स द्वितीय और उनके भाई जेम्स द्वितीय दोनों राजाओं के विषय में कुछ कहना ठीक होगा।

चार्ल्स द्वितीय का चरित्र—राज्य की पुनर्स्थापना के साथ इंग्लैंड के इतिहास में राष्ट्रीय आदर्श पतन होने लगता है। पिछले संकट के समय पर दोनों दल में उच्च भावनाओं से पूर्ण, उदारचरित वाले महान व्यक्ति हुए थे। राज्य-पुनः स्थापन के साथ वर्तमान इंग्लैंड का प्रारम्भ होता है, जिसमें वीरता का युग विवेक के युग में परिणित होता है। चार्ल्स ऐसे ही युग के अनुरूप शासक था। १५ वर्ष की अवस्था में उसने लंदन में पुनः प्रवेश किया। हर अँगरेज नागरिक की भाँति उसे टेनिस खेलने, शिकार करने और टहलने का शौक था। किन्तु राज-कार्य में वह प्रायः शिथिल प्रवृत्ति का था और उसकी अनुत्तरदायित्वपूर्ण चपलता की कोई हद न थी। उसकी काहिली के सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब एक बार डच तोपें टेम्स में गरज रही थीं, वह एक तुच्छ पतंगे का पीछा करने में व्यस्त था। वह नितान्त स्वार्थी और सिद्धान्तहीन व्यक्ति था जो अपने स्वार्थ-साधन के लिए धर्म, मित्र, मन्त्री आदि किसी की भी बलि दे सकता था। निर्वाचन काल में उसका जीवन पतनशील रहा था। इंग्लैंड में भी उसका दरबार लेडी कासिलमेन और डचेज ऑव पोर्टसमथ जैसी स्त्रियों के दुष्प्रभाव के लिए बदनाम था। वह भीतरी दिल से कैथलिक धर्मावलम्बी था, किन्तु वह ऐसा घोषित नहीं कर सकता था। इसका कारण या तो उसकी राजनीतिक सचेतनता थी या उसमें धर्म-निष्ठा का बहुत काफ़ी अभाव था।

जेम्स द्वितीय—जेम्स का वैयक्तिक जीवन भी बुराइयों से परे न था; किन्तु कुछ बातों में वह चार्ल्स से अच्छा था। जेम्स बड़ा अच्छा सैनिक था। अपने भाई के राज्य में फ्रान्सीसियों के साथ युद्ध में उसने ऐसी योग्यता प्रदर्शित की कि एक फ्रेंच जनरल ने उसकी वीरता और साहस की बड़ी प्रशंसा की थी। समुद्र पर युद्ध में भी उसने अच्छी ख्याति प्राप्त की और जलसेना का प्रबन्ध भी उसने काफी कुशलता से किया। उसमें स्फूर्ति के साथ सच्ची लगन भी थी। किन्तु चार्ल्स की अभिरुचि प्रकृति-निरीक्षण, विज्ञान और कला के प्रति जेम्स से अधिक थी और वह उससे कहीं अधिक भाग्यवान पुरुष भी था। जेम्स हठधर्मी था तथा हर बात में अति

कर देता था। वह पक्का रोमन कैथलिक था। अपने से सहमत न होने वालों को वह विधर्मी समझता था। वह राजाओं के अपरिमित अधिकारों में विश्वास रखता था और अपने विरोधियों को विद्रोही समझता था। चार्ल्स भी उन्हीं विचारों का था तथा उनके सफल बनाने के लिए कुछ हठीला भी था, फिर भी वह जेम्स से अधिक विनम्र, चतुर और व्यवहार-कुशल था। सबसे अधिक वह इस बात में दृढ़ था कि एक बार भूल करके दूसरी बार उस गलती को न दुहराये। कदाचित् जेम्स के राज्यारोहण के समय परिस्थिति अधिक नाजुक थी फिर भी यह अन्तर उनके व्यक्तिगत चरित्रों के कारण और भी विसम हो गया था। चार्ल्स ने २८ वर्ष राज किया और अपनी शक्ति पहले से अधिक दृढ़ बना ली; परन्तु जेम्स का शासन केवल ४ वर्ष के बाद एकाएक समाप्त हो गया।

राज्य व्यवस्था—चार्ल्स ने इंग्लैंड आने के पूर्व ब्रेडा की घोषणा में चार वचन दिये थे, जिनका पूरा होना पार्लियामेन्ट की अनुमति पर निर्भर था। सबसे पहला वायदा यह था कि सिपाहियों को पिछला वेतन दे दिया जाय। यह पूरा किया गया और कोल्डस्ट्रीम गार्ड का एक रेजिमेन्ट छोड़ कर शेष सारी न्यू माडल सेना तोड़ दी गयी। दूसरा वायदा था राजनीतिक अभियुक्तों को क्षमा प्रदान करना। चार्ल्स स्वयम् क्षमाशाली था और किसी से बदला लेने के पक्ष में न था। फिर भी पार्लियामेन्ट ने क्षतपूर्ति और उपेक्षा का नियम ('इडेम्निटी ऐंड ओब्लीवियन ऐक्ट') पास करने वाले लोगों को क्षमा कर दिया। किन्तु चार्ल्स प्रथम के मृत्यु वारन्ट पर दस्तख़त करने वाले १३ व्यक्तियों को प्राणदंड और २५ को आजीवन कारावास मिला। क्रामवेल का शव निर्दयता से क़ब्र खोद कर निकाला गया और टाइबर्न पर फांसी लटका कर जल्लादखाने के नीचे गाड़ दिया गया।

तीसरा वचन चार्ल्स ने यह दिया था कि कामनवेल्थ के समय में भूमि प्राप्त करनेवालों को उस पर स्थायी अधिकार दे दिया जायगा। परन्तु भूमि का यह प्रश्न कठिन और उलझा हुआ निकला। आख़िर यह तय हुआ कि और राज्य से सम्बन्ध रखनेवाली, तथा कामनवेल्थ शासन द्वारा ज़ब्त की हुई भूमि पुराने अधिकारियों को लौटा दी जाय। परन्तु व्यक्तिगत रूप से बेची हुई जमीन अपने नये मालिकों के ही पास रहे यद्यपि यह भूमि लोगों पर कामनवेल्थ शासन द्वारा किये हुए जुरमाना देने के लिए बेची गयी थी। फिर भी इस समझौते से कोई भी पक्ष प्रसन्न न हो सका।

कवेलियर पार्लियामेन्ट (१६६१-७९ ई०)—इन सब विषयों का निर्णय कन्वेन्शन पार्लियामेन्ट ने किया था; किन्तु चार्ल्स के द्वारा किये हुए चौथे वायदे को पूरा करने में यह सहमत न हो सका। चौथा वायदा यह था कि धार्मिक विषयों में हर व्यक्ति को आत्मिक स्वतन्त्रता दी जायगी। चार्ल्स ने एक सभा द्वारा प्रमुख धर्माचार्यों में पारस्परिक समझौता करवाना चाहा; परन्तु यह प्रयत्न असफल रहा। इस पर विचार करने के लिए एक नयी पार्लियामेन्ट बनी जो इतिहास में केवेलियर पार्लिया-

मेन्ट के नाम से प्रसिद्ध है और जो १६६१-७९ ई० तक जारी रही। शुरू के कुछ वर्षों में इसकी नीति राजपक्ष की समर्थक रही। कहा जाता है कि यह राजा से भी अधिक राजपक्ष की हामी थी। धार्मिक प्रश्नों में केवेलियर पार्लियामेन्ट साधारण हाई चर्चवालों के अनुयायियों से भी अधिक ऐंग्लीकन सिद्ध हुई और सन् १६६१ से १६६५ ई० के बीच में प्यूरिटनों के विरुद्ध चार ऐक्ट पास किये गये।

क्लैरैन्डन कोड (१६६१-५ ई०)—कारपोरेशन ऐक्ट के अनुसार कोई भी ऐसा मनुष्य स्थानीय म्युनिसिपल संस्थाओं का सदस्य नहीं हो सकता था (जो नगरों का शासन करती तथा पार्लियामेन्ट के सदस्य निर्वाचन की व्यवस्था रखती थी) जब तक कि वह राजा के विरुद्ध किसी भी परिस्थिति में अस्त्र ग्रहण करने को अवैध स्वीकार न करे और चर्च ऑव इंग्लैंड की नीति के अनुकूल कम्यूनियन न ग्रहण करे। इस ऐक्ट का उद्देश्य प्यूरिटनों को नगरों और हाउस ऑव कामन्स पर प्रभुत्व से वंचित करना था। फिर समानता के ऐक्ट के द्वारा प्रत्येक पादरी और स्कूल मास्टर को उसी प्रकार के निर्विरोध का वचन देना पड़ता था और प्रार्थना पुस्तक के प्रत्येक शब्द पर अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करना पड़ता था। यह सच है कि इस प्रार्थना-पुस्तक में जो परिवर्तन किये गये थे वह बहुत साधारण से थे, परन्तु फिर भी वे प्यूरिटन-विरोधी अवश्य थे। कम से कम २ हजार पादरियों ने इस ऐक्ट को स्वीकार करने से इनकार कर दिया और उनका स्थान जाता रहा। पाँच मील के ऐक्ट द्वारा ये प्रवंचित पादरी अपने प्राचीन स्थान के पाँच मील के अन्दर आने से उस समय तक के लिए रोक दिये गये जब तक कि वे कारपोरेशन ऐक्ट द्वारा निर्धारित राजा से निर्विरोध की शपथ न ले लें और जब तक वे इस बात का वचन न दें कि वे किसी भी परिस्थिति में चर्च या राज्य में परिवर्तन कराने का प्रयत्न न करेंगे। धर्मसभा (कनवेन्टिकल) ऐक्ट द्वारा चर्च ऑव इंग्लैंड के अतिरिक्त सभी धार्मिक सभाएँ बन्द कर दी गयीं। इस नियम-भंग का दंड पहले अपराध के लिए जेल और तृतीय के लिए कालापानी था इन ऐक्टों से चर्च ऑव इंग्लैंड और उन्नत विचार प्यूरिटनों के बीच का अन्तर बढ़कर बहुत गहरा हो गया। ये ऐक्ट कभी कभी 'क्लैरैंडन कोड' भी कहलाते हैं। यद्यपि क्लैरैंडन उन दिनों प्रधानमन्त्री था, किन्तु इन नियमों के बनाने में राजा और मन्त्री किसी का भी हाथ न था।

राजा की शक्ति—इस प्रकार कुछ समय के लिए राज्य विरोधियों को क्षमा, कामनवैल्थ शासन द्वारा जब्त की हुई भूमि पर नये स्वामियों का अधिकार और धर्म सम्बन्धी सभी प्रश्न सुलझ गये; किन्तु एक प्रश्न फिर भी ऐसा जटिल बना रहा जिसे देश का कोई दल न सुलझा सका। वह प्रश्न यह था कि राजा और पार्लियामेन्ट के अधिकारों का सामंजस्य किस प्रकार कराया जाय तथा राजा और पार्लियामेन्ट की शक्ति का समन्वय कैसा हो? इस समय तो ऐसा मालूम होने लगा था कि राज्य-पुनर्स्थापन के साथ राजा की पूर्ण शक्ति लौट आयी हो; क्योंकि अब राजा पहले की

भाँति अपने मन्त्री चुनता और देश की गृहनीति और वैदेशिक नीति का संचालन करता था। यद्यपि जागीरदारी कर हटा दिया गया था फिर भी राजा के लिए अब पार्लियामेन्ट ने चुंगी और आबकारी कर जीवन भर के लिए स्वीकृत कर दिया था। एक प्रकार से चार्ल्स अपने पूर्वजों से अधिक शक्तिशाली था क्योंकि उसके पास लगभग ५ हजार आदमियों की स्थायी सेना थी जो संख्या उसके शासनकाल के साथ बराबर बढ़ती गयी।

किन्तु वास्तव में राजा की शक्ति पहले की उतनी न थी। स्टार चैम्बर के से निरंकुश न्यायालय अब न रहे थे। केवल राजा की सत्ता का ही नहीं वरन् पार्लियामेन्ट के अधिकारों का भी पुनःसंस्थापन हुआ था और अब पार्लियामेन्ट की इच्छाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। एक चतुर निरीक्षक का कहना है कि फ्राँस का राजा अपनी प्रजा को अपनी इच्छानुसार चला सकता है, परन्तु इंग्लैंड के राजा को अपनी प्रजा के साथ चलना पड़ता है। १६६७ ई० में पार्लियामेन्ट की शक्ति बहुत आगे बढ़ गयी। अब उसे यह अधिकार मिल गया कि राजा को नियत करों के अतिरिक्त दिया गया धन केवल निर्धारित कामों में ही व्यय किया जाय तथा इसका सन्तोष करने के लिए पार्लियामेन्ट इसकी जाँच का प्रबन्ध करे।

**क्लैरेंडन मन्त्रिमंडल ( १६६०–६७ ई० )**—चार्ल्स के शासन के प्रथम सात वर्षों में ( हिस्ट्री ऑव रेबिलियन ) 'विद्रोह का इतिहास' नामक पुस्तक का लेखक लार्ड क्लैरेंडन प्रधान मन्त्री था। इसका इतना प्रभाव था कि कहा जाता है कि चार्ल्स केवल नाम का राजा था। एडवर्ड हाइड के नाम से वह लॉग पार्लियामेन्ट का सदस्य रह चुका था और जब तक ग्रांड रेमान्सट्रेन्स' नहीं पेश किया गया वह उसके बनाये ऐक्टों से सन्तुष्ट रहा। क्लैरेंडन कोड से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह हाई चर्च का बड़ा असहिष्णु पोषक था किन्तु राजनीति में वह नरम विचारों का ईमानदार और परिश्रमी व्यक्ति था। उसका उद्देश्य था पार्लियामेन्ट और राजा की शक्ति का समन्वय करना। अपनी नरमी के कारण ही वह सब लोगों में अप्रिय हो गया। राजा उसके भाषणों से तंग आ गया; दरबारी उसकी नैतिकता का उपहास करने लगे। राजपक्ष वाले राज्य-विरोधियों के प्रति क्षमा और जब्ती की भूमि के प्रश्नों पर और प्यूरिटनों के प्रति उसकी उदारता के कारण उससे घृणा करने लगे, और 'नान-कनफार्मिस्ट' लोग उससे कोड के कारण घृणा करते थे। उसने अपनी लड़की एन हाइड का विवाह राजा के भाई, जेम्स ड्यूक ऑव यार्क के साथ कर दिया। इसमें लोगों को उसकी स्वार्थभावना प्रतिलक्षित होने लगी। डनकर्क के बेचने के लिए उस पर फ्रान्स के राजा लुई चतुर्दश से घूस लेने का दोष लगाया गया। यह अपवाद तो यहाँ तक बढ़ा कि पिकैडिली में उसका मकान बनता हुआ देख कर लोगों ने उसका नाम 'डनकर्क हाउस' रखकर यह प्रकट करने की चेष्टा की कि उस नगर को बेच देने से मिली हुई घूस की रकम से वह भवन बनवाया जा रहा था।

दो घटनाओं से क्लैरेंडन की अख्याति और भी बढ़ गयी, यद्यपि वह उनके लिए भी उत्तरदायी न था। १६६५ ई० में सारे देश में महामारी फैल गयी और चार महीने तक मेह न बरसने के कारण लंडन में बड़ी गन्दगी जमा हो गयी। इस महामारी में लंडन की $\frac{1}{5}$ जन-संख्या नष्ट हो गयी। अगले वर्ष के अग्निकांड ने लंडन के दो तिहाई घर जला दिये और सेन्ट पॉल के सहित १०० के करीब गिरजा-घर नष्ट हो गये। ११६१ ई० में टेम्स के मुहाने तक डच जहाजी बेड़े के चले आने के लिए क्लैरेंडन को ही उत्तरदायी ठहराया गया। अतः राजा ने उसको पदच्युत कर दिया और पार्लियामेन्ट ने उस पर मुकदमा चलाया। इसलिए उसे देश छोड़कर चला जाना पड़ा।

केबाल मन्त्रिमंडल (१६६७-७३ ई०)—क्लैरेंडन के पतन के साथ चार्ल्स ने शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया। अगले पॉच वर्षों में केबाल नाम के उसके पॉच प्रधानमन्त्री हुए। उनके नाम के शुरू के अक्षरों के आधार पर इसे केबाल मन्त्रिमंडल कहते हैं। इनमें से दो मन्त्री क्लिफर्ड और आर्लिंग्टन रोमन कैथलिक थे, बकिंगहम का कोई ठीक न था। आज वह कैथलिक था तो कल वह प्रोटेस्टेन्ट और परसों ऐंग्लिकन। इसी प्रकार उसके कामों में भी कोई स्थिरता न थी। उसके जीवन की चरित्रहीनता, उसके धर्म और व्यापार की अनिश्चितता आदि सभी बातें उस युग के अनुरूप थीं। चौथा मन्त्री था एशले कूपर (लॉर्ड शाफ्टसबरी) जो हमेशा ठीक समय पर पक्ष-परिवर्तन करता था। वह निस्सन्देह बड़ा योग्य नीतिज्ञ था। धार्मिक विषयों में वह सहिष्णुनीति के पक्ष में था। अतः वह डचों के विरुद्ध युद्ध का समर्थक था। इस प्रकार आजकल के स्टैंडर्ड के अनुसार वह सबसे पहला प्रमुख पार्टी नेता समझा जाता है और उसी को वर्तमान पार्लियामेन्टरी भाषण-विधि-प्रवर्तक होने का श्रेय प्राप्त है। लाडरडेल पाँचों मन्त्रियों में सबसे दुष्ट था और वह स्काटलैंड का शासक था।

धार्मिक अनुग्रह (इंडलजेन्स) घोषणा—केबाल मन्त्रि-मंडल किसी प्रकार आज की कैबिनेट की भाँति न था। न तो उसके सदस्य एकमत थे। न उन का कोई नेता था और न उन सब में मिलकर परामर्श होता था। इसी केबाल मन्त्रि मंडल के समय में त्रिराष्ट्र मेल हुआ तथा तीसरा डच युद्ध हुआ। डोवर की गुप्त सन्धि का हाल केवल क्लिफर्ड और आर्लिंगटन को मालूम था।

डच युद्ध के ठीक पहले लुई चतुर्दश के साथ सन्धि की शर्तों के अनुसार चार्ल्स ने रोमन कैथलिकों और डिसेन्टरों के प्रति सहिष्णुता नीति बरतने का प्रयत्न किया। उसने धार्मिक अनुग्रह की घोषणा (डिक्लेरेशन ऑव इंडलजेन्स) जारी कर दी जिसके अनुसार उसने रोमन कैथलिकों और डिसेन्टरों के विरुद्ध कठोर नियमों को स्थगित कर दिया। किन्तु पार्लियामेन्ट ने इसका विरोध किया और चार्ल्स को अपनी घोषणा वापिस लेनी पड़ी। फिर उसे 'टेस्ट ऐक्ट' से सहमत होना पड़ा जिसके

अनुसार कोई मनुष्य जो चर्च ऑव इँग्लैंड के अनुकूल संस्कृत न हो, राज्य के किसी पद का अधिकारी नहीं हो सकता। इसके कारण ड्यूक ऑव यार्क को एडमिरेल्टी छोड़नी पड़ी और क्लिफर्ड और आर्लिंग्टन को मन्त्रिपद त्याग देना पड़ा। चार्ल्स ने शॉफ़्ट्सबरी को बरखास्त कर दिया और कैबाल मन्त्रि-मंडल का अन्त हो गया।

डेनबी मन्त्रिमंडल ( १६७३-८ ई० ) अगले कुछ वर्ष चार्ल्स का प्रधान मन्त्री डेनबी रहा, जो ऐँग्लिकन धर्मावलम्बी था। चार्ल्स ने अब कैथलिक धर्म के पुनरुद्धार के प्रयत्न त्याग दिये। इस जमाने में कूट उपायों का ताँता बँध गया था। केवेलियर पार्लियामेन्ट में बहुत अशान्ति फैली हुई थी। मन्त्री पद से जाने पर शॉफ्टसबरी ने दोनों सभाओं में विरोध पक्ष का संगठन आरम्भ कर दिया था। इसी बीच में फ्रान्स का राजा एक ओर चार्ल्स को पार्लियामेन्ट भंग करने के लिए धन की सहायता दे रहा था और दूसरी ओर विरोध पक्ष को राजा का विरोध करने के लिए घूस। इस प्रकार सारे राष्ट्र में असन्तोष फैला हुआ था।

पोप का षड्यन्त्र ( १६७८ ई० )—इसी समय टाइटस ओटो नामक एक व्यक्ति ने लन्डन के एक मैजिस्ट्रेट को पोप षडयन्त्र की सूचना दी। इसका उद्देश्य राजा का बध करना तथा उसके स्थान पर ड्यूक आव यार्क को राज्य दिलाना और फ्रान्स से एक सेना लाना था। शीघ्र ही वह मजिस्ट्रेट मरा पाया गया। देश में सनसनी फैल गयी। टाइटस स्कूल से, जीसूट गिरजाघरों से और जल सेना से निकाला हुआ बदमाश गुंडा था, जिस पर दो अदालत में झूठी गवाही देने के अभियोग में मुकद्दमा चल चुका था। फिर भी उसके प्रत्येक शब्द पर विश्वास कर लिया गया। सारे देश में मुखबिरों की बन आयी और रोमन कैथलिकों को तनिक से सन्देह पर फाँसी दी जाने लगी। प्रोटेस्टेन्ट लोग रोमन कैथलिकों के कल्पित आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए नाज कूटने के डंडे लिये फिरते थे। हाउस ऑव पार्लियामेन्ट ने उस नारकीय षडयन्त्र के अस्तित्व की घोषणा कर दी। वास्तव में एक षडयन्त्र मौजूद था जिसमें चार्ल्स स्वयम् डोवर की सन्धि के अनुसार सम्मिलित था और जिसका उद्देश्य इंग्लैंड में रोमन कैथलिक धर्म की पुनः स्थापना करना था। परन्तु इस षड्यन्त्र की बातें नितान्त कल्पित और झूठी थीं। शाफ्टसबरी और विरोध पक्ष ने इस षडयन्त्र का खूब उपयोग किया क्योंकि वे राजा के एक जार पुत्र ड्यूक ऑव मन्मथ को चार्ल्स के स्थान पर गद्दी पर बैठाना चाहते थे। उन्होंने सोचा कि इस षड्यन्त्र की आड़ में उनका प्रस्ताव लोकमत से स्वीकृत हो सकेगा।

तीन छोटी पार्लियामेन्टें ( १६७९-८० ई० )—इसी बीच में फ्रान्स के राजा के साथ चार्ल्स की ओर से धन प्राप्ति के लिए डेनबी की गुप्त बात-चीत का भेद खुल गया। उस पर अभियोग लगाया गया। चार्ल्स ने उसकी रक्षा के लिए कवेलियर पार्लियामेन्ट भंग कर दी। फिर दो बरसों के बीच में तीन छोटी छोटी पार्लियामेन्टें बुलायी गयीं। पहली पार्लियामेन्ट का हठ था कि डेनबी टॉवर में रखा जाय। उसका

उद्देश्य था मन्त्रियों में उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत करना। शाफ्टसबरी के प्रभाव से एक 'हेबिअस कोर्पस' ऐक्ट पास कर दिया गया, जिसका उद्देश्य यह था कि बन्दी को यथा सम्भव शीघ्र जाँच का अवसर मिलना चाहिए।

वहिष्कार ( एक्सक्लूजन ) बिल—इन तीनों छोटी पार्लियामेन्टों का प्रधान उद्देश्य था जेम्स को राज्याधिकार से वंचित करना। शाफ़्टसबरी और विरोध पक्ष ड्यूक ऑव मन्मथ के उत्तराधिकार पर ज़ोर दे रहा था। उसे वे चार्ल्स का औरस पुत्र बतलाते थे। क्योंकि कहा जाता था कि उसकी मा और चार्ल्स के विवाह का प्रमाण-पत्र एक काले सन्दूक में गुप्त रीति से छिपा हुआ था। चार्ल्स का कथन था कि वह अपने पुत्र को फाँसी पर चढ़ता देख सकता था, किन्तु उसे औरस नहीं मान सकता था। इसी समय पहली बार राजनीतिक दलों का सङ्गठन हुआ था। ये दल इस समय अभ्यर्थक ( पिटीशनर ) और उपेक्षक ( एब्होरर ) कहलाते थे, क्योंकि उनमें से एक दल पार्लियामेन्ट को बुलाने की प्रार्थना कर रहा था तथा दूसरा राजा के विशेष अधिकारों पर हस्तक्षेप करने का विरोधी था। इसके बाद वे 'ह्विग' और 'टोरी' कहलाने लगे और ये नाम अभी तक प्रचलित रहे हैं। राजा ने लंडन छोड़ कर अन्तिम पार्लियामेन्ट ऑक्सफर्ड के क्राइस्टचर्च हॉल में बुलायी। इस समय इतनी उत्तेजना फैली हुई थी कि लोग सशस्त्र आये। परन्तु यह सभा एक सप्ताह ही चल सकी थी कि चार्ल्स ने उसे भंग कर दिया। वहिष्कार बिल अब भी पास नहीं हो सका था।

चार्ल्स का प्रधानत्व—आक्सफर्ड पार्लियामेन्ट के बाद राजा के पक्ष में प्रतिक्रिया शुरू हुई। ७० वर्ष से अधिक आयु के एक निर्दोष रोमन कैथलिक पियर लार्ड स्ट्रेफर्ड को पोप षड्यन्त्र में भाग लेने के अनुमान पर फाँसी का दंड दिया गया। लोग अब समझे कि उन झूठे अपवादों का कितना भीषण परिणाम हुआ जिनमें वे अभी तक विश्वास करते थे। उन्होंने मान लिया कि विरोध-पक्ष ने बहुत अति कर दी थी। इस समय किसी को गृह-युद्ध छेड़ने की कामना न थी; इसलिए अपने शासन के अन्तिम चार वर्षों में अनुकूल मन्त्रि-मंडल मिल जाने के कारण चार्ल्स को अपने शत्रुओं पर अत्याचार करने का अवसर मिला और लुई चतुर्दश की आर्थिक सहायता के कारण उसे पार्लियामेन्ट बुलाने की आवश्यकता नहीं रह गयी। शाफ़्टसबरी को हालैंड भाग जाना पड़ा और ड्यूक ऑव मन्मथ निर्वासित कर दिया गया। राई हाउस षड्यन्त्र में राजा को न्यू मार्केट से जाते समय मार डालने की व्यवस्था की गयी थी। इसके कारण चार्ल्स को रसेल और सिडनी नामक दो प्रमुख ह्विग सभासदों को फाँसी देने का अवसर मिल गया। राजा ने लण्डन और अन्य ६५ नगरों के, जो ह्विगों के केन्द्र थे और पार्लियामेन्ट के सदस्य निर्वाचन के अधिकारी थे, चार्टर बदल दिये और निर्वाचन का अधिकार स्वयम् नियुक्त किये हुए लोगों के हाथ में सौंप दिया। फिर भी चार्ल्स स्वेच्छाचारी अत्याचारी शासक की

भाँति शासन नहीं करना चाहता था। वह और किसी के अधिकार को न मानना चाहता था और यह बात वह अपनी मृत्यु के पूर्व तक पूरी कर सका।

**जेम्स द्वितीय का राज्यारोहण**—१६८५ ई० में भाई की मृत्यु के बाद जेम्स द्वितीय को राज्य ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। लोगों ने इस बात का अनुभव किया कि वहिष्कार बिल के द्वारा उसके साथ कठोरता का व्यवहार किया जा रहा था, इसलिए नरम दल के सभी लोग उसके सहायक हो गये। पार्लियामेन्ट ने उसके लिए काफी बड़ी आमदनी की सम्पत्ति स्वीकृत कर दी। पोप षडयन्त्र के विधायकों के साथ बड़ा अत्याचारपूर्ण व्यवहार हुआ। तीन दिन में ओट्स के २ हजार ४०० कोड़े लगाये गये। फिर भी लोग उस दंड को ही उचित ही समझते थे।

**मन्मथ का विद्रोह (१६८५ ई०)**—दो विद्रोहों के सफलता के साथ दमन हो जाने से राजा की शक्ति बहुत बढ गयी थी। आर्गाइल ने स्काटलैण्ड में मन्मथ के पक्ष में विद्रोह आरम्भ किया, किन्तु उसे केवल अपने वर्ग ही के कुछ कैम्बेलों से सहायता मिल सकी। अन्त में वह गिरफ्तार हुआ और कत्ल कर दिया गया। मन्मथ स्वयम् डोर्सेट पर उतरा और उसने लोगों को अपना साथ देने के लिए उत्तेजित किया। सेजमूर पर उसने राजा की सेना पर आक्रमण किया, किन्तु एक गुप्त और गहरी खाई के बीच में आजाने के कारण यह असफल रहा। मन्मथ गिरफ्तार हुआ और मार डाला गया। चीफ जस्टिस जेफ्रे को पश्चिम में विद्रोहियों की जाँच करने भेजा गया। इसकी 'खूनी अदालत' ने लगभग ३०० मनुष्यों को फाँसी दे दी और ८०० को कालेपानी भेज दिया।

**जेम्स का अत्याचार (१६८६—८८ ई०)**—अपने शासन के पहले नौ महीने १६८५ ई० के अन्त तक जेम्स का व्यवहार नम्रतापूर्ण रहा। दो विद्रोहों की ऐसी सरलता से दमन कर देने की सफलता ने उसकी नीति को उग्र बना दिया। उसने स्थायी सेना की संख्या बढ़ा कर ३० हजार कर दी और रोमन कैथलिकों के विरुद्ध नियमों को अपने विशेषाधिकार द्वारा स्थगित कर सेना में रोमन कैथलिक अफ़सर रखना आरम्भ कर दिया। उसने अपने मन्त्री भी बदल दिये। हेलिफ़ौक्स जैसे नरम नीति के शासक और रोचेस्टर जैसे हाई चर्चमैन के स्थान पर संडरलैंड जैसे हाल के धर्मपरिवर्तन किये हुए रोमन कैथलिक नियुक्त किये गये। इसी प्रकार आयरलैंड में उसने टायरकनल को वायसराय बना दिया। वह बड़ा कट्टर कैथलिक था। आक्सफर्ड विश्वविद्यालय में भी उसने अपनी धर्म-परिवर्तन की इच्छा का परिचय दिया। क्राइस्टचर्च कालिज का डीन एक रोमन कैथलिक को बनाया और मेगडलेन कालिज में प्रोटेस्टेन्ट फैलोओं के स्थान पर रोमन कैथलिक नियुक्त किये। इस प्रकार यह विश्वविद्यालय, जो स्टुअर्ट वंश का सहायक रहा था, जेम्स का शत्रु हो गया। उसने हाई कमीशन कोर्ट को पुनः स्थापित किया और रोमन कैथलिकों और डिसेन्टरों के विरुद्ध कड़ी सज़ा के नियमों के अवरोध के लिए (इन्डल्जेन्स) धार्मिक अनुग्रह

की घोषणा कर दी। उसने पहली पार्लियामेन्ट को स्थगित कर भंग कर दिया और फिर एक रोमन कैथलिक और नॉन-कनफार्मिस्ट सदस्यों की पार्लियामेन्ट बनाने का प्रयत्न किया।

मई-जून का संकट—जेम्स के इस व्यवहार से केवल उसके पिता के विरोधी ही नहीं, वरन् उसके पक्षवाले सहायक भी उसके विरुद्ध हो गये। यहाँ तक कि १६८८ ई० में क्रान्ति आगयी। मई में राजा ने दूसरे (इन्डलजेन्स) धार्मिक अनुग्रह की घोषणा की और गिरजों में उसने पढ़े जाने की आज्ञा दी। आर्कबिशप ऑव कैन्टरबरी तथा अन्य छः बिशपों ने एक विरोध-पत्र तैयार किया। जेम्स ने उन पर मानहानि का अभियोग लगाया। जून में उसकी दूसरी पत्नी मेरी नोडेना के एक पुत्र हुआ। अब तक लोगों को नये शासन की आशा पर सन्तोष हो रहा था। वे इस आशा में थे कि जेम्स की प्रोटेस्टेन्ट पुत्री मेरी और उसका पति विलियम ऑव आरेञ्ज इंग्लैंड के राज्य का उत्तराधिकारी होगा। किन्तु अब जेम्स का एक उत्तराधिकारी उत्पन्न हो गया था, जिसे रोमन कैथलिक बनाया जा सकता था। लोगों में यह भी धारणा थी कि वह जेम्स और उसकी रानी का पुत्र न था। ३० जून को सातों बिशप छोड़ दिये गये। उस रात को लंडन में अवर्णनीय आनन्दोत्सव मनाया गया। उसी दिन सन्ध्या को सात भिन्न भिन्न मत वाले प्रमुख व्यक्तियों ने मिल कर विलियम को एक पत्र भेजा जिसमें उसे एक सेना लेकर आने तथा लोगों की स्वाधीनता की रक्षा के लिए निमन्त्रित किया गया था।

विप्लव और क्रान्ति (१६८८ ई०)—इस अवसर पर लुई चतुर्दश ने जेम्स को अपनी सहायता देनी चाही, परन्तु जेम्स ने आशंका का अनुमान न करके उसे अस्वीकृत कर दिया। विलियम के सौभाग्य से लुई ने जर्मनी पर आक्रमण करने के लिए नीदरलैंड की सीमा से अपनी सेनाएँ हटा लीं। इस प्रकार अब हालैंड में फ्रान्स का डर न होने के कारण विलियम ने इंगलैण्ड आना उचित समझा। अँगरेज़ी जल और स्थल सेना के नायकों ने उसे सहायता का वचन दे दिया था। नवम्बर ५, १६८८ ई० को वह टोरबे पर उतरा और उसे तत्क्षण सहायता मिली। जॉन चर्चिल जो बाद में ड्यूक ऑव मार्लबरा प्रसिद्ध हुआ अब उससे मिल गया। वह सेना का प्रमुख नायक था। जेम्स की दूसरी पुत्री एन ने यार्कशायर में विद्रोह खड़ा कर दिया। जेम्स ने शान्ति का प्रयत्न किया किन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी। उसने भागना चाहा; किन्तु बड़े असम्मान के साथ वह लंडन वापिस लाया गया। अन्त को विलियम ने लंडन पहुँच कर जेम्स को रोचेस्टर भेज दिया। वहाँ उस पर अधिक कठोर पहरा नहीं रक्खा गया। जेम्स पुनः भाग निकला और १६८८ ई० के बड़े दिन को ३ बजे वह फ्रान्स पहुँचा। इस प्रकार जेम्स का राज्य समाप्त हो गया और उसके साथ राजा और पार्लियामेन्ट का दीर्घ-कालीन झगड़ा भी। १६८८ ई० के आन्दोलन से शासन व्यवस्था में बहुत कुछ परिवर्तन हुए और कवेनेन्टरों को घर

पकड़ करने के लिए सेना के सिपाहियों से काम लिया जाने लाग। १६०८ ई० में ८ हजार हाईलैण्डरों की एक सेना ने दक्खिन पच्छिम प्रदेशों के इन कवैनेन्टरों में खूब लूट मार की और बहुतों की हत्या कर डाली।

§ कामनवेल्थ और उत्तरकालीन स्टुअर्ट शासन में स्काटलैण्ड

कॉमनवेल्थ शासन में स्काटलैण्ड (१६५१-६० ई०)—१६५१ ई० में वुर्स्टर की लड़ाई में स्काट सेना नष्ट हो गयी और स्काटलैण्ड में एक अँगरेज़ी सेना का प्रभुत्व हो गया। सन् १६६० के राज्य पुनर्स्थापना के समय तक उस पर जॉन मङ्क और अँगरेज़ कमिश्नर यथेष्ट सफलता से शासन करते रहे। टैक्स अवश्य भारी था, किन्तु फौजदारी और माल के सभी मुकद्दमों में पहले की अपेक्षा न्याय होता था। प्रेस्बिटेरियन चर्च का अत्याचार बन्द हो गया था और धार्मिक मतभेद में सहिष्णुता की ओर कुछ प्रयत्न किये गये थे। हाईलैण्ड में शान्ति थी और स्काटलैंड में सर्वत्र सुव्यवस्था। स्काटलैण्ड को इंग्लैंड के साथ स्वतन्त्र व्यापार करने का अधिकार मिल गया था जिससे उसकी खूब समृद्धि हुई।

स्काटलैण्ड और राज्य-पुनर्स्थापन—इसके बाद राज्य की स्थापना हुई। इस परिवर्तन का एक परिणाम यह हुआ कि स्काटलैण्ड का इंग्लैंड के साथ स्वतन्त्र व्यापार जाता रहा। उसको राजनीतिक स्वतन्त्रता अवश्य मिल गयी। दूसरा नतीजा यह हुआ कि राजा का प्रभुत्व पुनः स्थापित हो गया। राजनीतिक विषयों में अपना प्रभुत्व प्राप्त कर लेने के साथ ही चार्ल्स चर्च सम्बन्धी विषयों में भी अपनी प्रमुखता चाहता था। इसलिए उसने स्काटलैंड में बिशप-शासन (एपिस्कोपेसी) की पुनः स्थापना की और उसे जारी रखने की ठान ली। प्रेस्बिटेरियन लोग जो सन् १६३६ से १६५१ ई० तक मनमानी करते रहे थे; अब भी सोलेम लीग और कवेनैन्ट के मनवाने के लिए जोर डाल रहे थे। राजा भी बिशप शासन की स्थापना के लिए उतना ही असहिष्णु और दृढ़ था, जितने कि ये सब प्रेस्बिटेरियन धर्म के प्रचार के लिए—इस समय तक जितने पादरियों को जमीन और जायदाद मिली हुई थी उन सब की नियुक्ति नये सिरे से अब बिशपों द्वारा हो सकेगी और उन सब को कवेनेन्ट त्याग देना पड़ेगा, यही इस राजाज्ञा का आशय था। बहुत से—विशेष कर दक्खिन-पच्छिम के—पादरियों के मना करने पर उनका स्थान ऐसे लोगों को दे दिया गया जो प्रायः दुष्ट प्रकृति के और अशिक्षित थे। चर्च जाने से मना करने वालों पर जुर्माना होता था। गिरजों के बाहर होने वाली धार्मिक संघों (कन्वैन्टिकल) में भाग लेने वालों के विरुद्ध कठोर नियम पास किये गये। १६६६ ई० की कवेनेन्ट मानने वालों के विप्लव के बाद बहुत कुछ अत्याचार हुआ। लाडरडेल ने जो १६६७ ई० में रायल कमिश्नर हो गया, समझौते का प्रयत्न किया, किन्तु उसे कोई सफलता न मिली। कवेनैन्टर एकान्त और दुर्गम स्थानों में अपनी सभाएँ करने लगे। इसलिए उनके दमन की नीति और कठोर हो गयी।

शार्प का वध और ड्रमक्लोग और बोथवैलब्रिज—१६७९ ई० में सेन्ट एंड्यूज़ के आर्कबिशप जेम्स शार्प का वध कर दिया गया, क्योंकि वह कवेनैन्टरों का साथ छोड़ कर अत्याचारियों में मिल गया था। कवेनैन्टरों के एक समूह ने समस्त नागरिक नियन्त्रण के प्रति अपना विरोध घोषित कर दिया। लंकाशायर में ड्रमक्लोग पर उन्होंने ग्राहम क्लेवरहाउस को हराया जो उनका दमन करने के लिए भेजा गया था। इस विजय से उनका उत्साह बढ़ गया और वे ग्लासगो नगर पर चढ़ गये; किन्तु क्लाइड नदी के किनारे बोथवैलब्रिज पर मन्मथ ने उन्हें हरा दिया।

संघातक युग (१६८०-८७ ई०)—बोथवैलब्रिज की लड़ाई के कुछ समय बाद तक स्काटलैंड के साथ नम्रता का व्यवहार किया गया; किन्तु जब जेम्स, ड्यूक ऑव यार्क १६८१ ई० में स्काटलैंड का रायल कमिश्नर हो गया तो संघातक युग का आरम्भ हुआ और प्रेस्बिटेरियनों पर भीषण अत्याचार हुए। १६८५ ई० में जेम्स के राज्यारोहण तक यह अत्याचार अपनी सीमा पर पहुँच चुका था। १६८७ ई० में जेम्स ने प्रेस्बिटेरियन और रोमन कैथलिक दोनों के लिए (इन्डलजेन्स) धार्मिक अनुग्रह स्वीकृत कर दिया। इससे दमन का अन्त हो गया और प्रेस्बिटेरियनों को धार्मिक स्वतन्त्रता मिल गयी। इससे रोमन कैथलिक धर्मावलम्बियों के लिए भी रास्ता खुल गया और इसके साथ प्रोटेस्टेन्टों को राज्य-कर्मचारियों के पदों से हटा दिया गया और उनके स्थान पर रोमन कैथलिक नियुक्त किये गये। होलीरुड हाउस रोमन कैथलिकों को दे दिया गया। इसलिए जिस समय १६८८ ई० की क्रान्ति शुरू हुई उस समय स्काटलैंड में घोर असन्तोष फैला हुआ था।

---

# अध्याय ८

## ट्यूडर और स्टुअर्ट शासन-काल में आयरलैंड

(सन् १४८५ से १६८८ ई० तक)

१४८५ ई० में आयरलैण्ड की अवस्था—स्काटलैंड के सम्बन्ध में ट्यूडर और स्टुअर्ट काल का वृत्तान्त पढ़ कर अब हम आयरलैंड की ओर दृष्टि डालते हैं। जब १४८५ ई० में हेनरी सप्तम इँग्लैंड के सिंहासन पर बैठा, तो आयरलैंड की अवस्था बहुत बुरी थी। नवीन ज्ञान की जागृति आदि आन्दोलनों का इस देश पर कोई प्रभाव न पड़ा था। यहाँ ज्ञान का नाश हो गया था और धर्म का लोगों पर कोई नियन्त्रण न था। सारा देश बनों और दलदलों से घिरा था। आवागमन कठिन था सड़कें नहीं थीं। दो तिहाई जन संख्या जंगली, असभ्य जीवन व्यतीत कर रही थी।

अँगरेजी व्यवस्था के 'पेल' नामक प्रान्त का - विस्तार कम होते-होते केवल तीस मील के लगभग—डनडाक से डबलिन तक —रह गया था। इस प्रान्त के बाहर आयरी रीति रिवाज और भाषा का प्रचार था। प्रत्येक प्रदेश में एक सरदार प्रमुख था। हेनरी द्वितीय के शासनकाल में देश को जीतने वाले ऐंग्लो सैक्सन आयर निवासियों से भी ज़्यादा आयरी हो गये थे। इनमें दक्खिन-पूरब के अर्ल ऑव आरमंड के सजातीय बटलर और मन्स्टर में अर्ल ऑव डेस्मन्ड और लीन्स्टर में अर्ल ऑव किलडेर के सजातीय फ़िज़ जेरल्ड प्रमुख थे। प्राचीन आयरी घरानों में अल्स्टर के ओ 'नील और ओ' डॉमल का नाम बहुत विख्यात हो गया था।

किलडेर के अर्लों का शासन ( सन् १४८५-१५४४ ई० ) —हेनरी सप्तम के राज्यारोहण से लेकर १५३४ ई० तक आयरलैंड के इतिहास का बहुत कम लेखा मिलता है। अधिकांश समय में आयरलैंड पर दो किलडेर के अर्लों का शासन रहा। इस शासन-काल में वे समय-समय पर टावर ऑव लंडन में बन्दी बना कर रक्खे गये, इसलिए उनका शासन सुशृंखलित न रह सका। इसी समय में अर्ल ऑव किलडेर पर राजद्रोह का सन्देह होने पर सर एडवर्ड पोइनिंग को आयरलैण्ड का 'लॉर्ड डिप्टी, बना कर भेजा गया। पोइनिंग ने आयरलैण्ड की पार्लियामेन्ट में दो ऐसे नियम पास कराये जिन्होंने उस पार्लियामेन्ट को पूर्ण रूप से इंग्लैंड का आश्रित बना दिया। अब कोई पार्लियामेन्ट बिना राजा और उसकी कौन्सिल की अनुमति के नहीं बैठ सकती थी और न वह बिना इन की सम्मति के किसी बिल पर विचार कर सकती थी।

१५३४ ई० से हेनरी अष्टम आयरलैण्ड के विषय में अधिक सक्रिय भाग लेने लगा। अर्ल ऑव किलडेर के विरुद्ध शिकायतें हुईं। उसे इंग्लैण्ड बुलाया गया और उसके उत्तर सन्तोषजनक न होने के कारण उसे टॉवर में रक्खा गया। उसके पुत्र टॉमसन ने यह सुन कर कि उसके पिता को फाँसी हो गयी और उसके वंश का अन्त कर दिया जायगा, विद्रोह खड़ा कर दिया। किन्तु जब टॉमस अर्ल ऑव किलडेर की सेना ने यह सुना कि लीन्स्टर में जेराल्डों का मेनूथ दुर्ग नये अँगरेज़ लॉर्ड डिप्टी ने ले लिया तब वह भाग खड़ी हुई। अन्त में टॉमर्ड ने अपने को राजा की दया पर छोड़ दिया। वह इंग्लैण्ड भेज दिया गया और कुछ महीने बाद उसे और उसके चार चचाओं को टाइबर्न में राजद्रोह का दंड भोगना पड़ा। इस प्रकार किलडेर के महान घराने का पतन हुआ। टॉमस का एक भाई बच रहा था जो भाग कर फ्रान्स जा पहुँचा और रानी मेरी के राज्यकाल में आयरलैण्ड लौट आया। तब उसे किलडेर वंश की ज़मीन जायदाद दे दी गयी।

आयरलैंड मे परिवर्तन ( १५३५–४७ )—हेनरी अष्टम के शेष शासन-काल मे राजा की शक्ति की खूब वृद्धि हुई और आयरलैंड में अँगरेज लार्ड डिप्टी नियुक्त होने लगे। आयरी पार्लियामेन्ट ने हेनरी को आयरलैंड का राजा स्वीकृत कर लिया। इँग्लैंड की भाँति आयरलैण्ड में भी धार्मिक परिवर्तन हुए। पोपवाद का बहिष्कार

कर हेनरी को आयरी चर्च का अध्यक्ष स्वीकृत किया गया ? मठ बन्द कर दिये गये और बहुत से चर्चों की मूर्तियाँ तोड़ डाली गयीं। हेनरी ने विद्रोह शान्त रखने के लिए आयरी सरदारों के साथ उदार नीति से काम लिया। चर्च और राज्य में हेनरी प्रभुत्व स्वीकार करके अपनी जाति की भूमि को उसके समर्पण करने के बदले में उन्हें अँगरेज़ी उपाधियाँ दी गयीं और उन्हीं की भूमि भी उनके और उनकी आने वाली सन्तानों के लिए उपहार में दी गयी। हेनरी के जीवन काल में उनकी नीति सफल रही और उसकी मृत्यु के पूर्व आयरलैंड में पूर्ण शान्ति थी।

हेनरी के उत्तराधिकारियों के शासन काल में भी कोई आपत्ति उपस्थित न हुई। एडवर्ड षष्ठ के सलाहकारों को प्रोटेस्टेन्ट दिशा में धर्म परिवर्तन करने में किसी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा। मेरी के शासन-काल में लॉर्ड डिप्टी को पोप का प्रभुत्व स्थापित करने में तथा एलिज़ेबेथ के गद्दी पर बैठने पर उसका नाश करने में भी कोई कठिनाई नहीं हुई।

**शेन ओ नील का विद्रोह**—एलिजेबेथ का शासन-काल विद्रोहों की एक लम्बी सूची है। उसके शासन के ही प्रारम्भिक वर्षों में ही शेन ओ नील का विद्रोह हुआ। उससे ओ नील जाति की अध्यक्षता और टाइरोन की सरदारी पर, जो शेन के पिता के हेनरी अष्टम से मिली थी, अपना अधिकार प्रकट किया। उसका एक और प्रतिस्पर्धी था जिसका गवर्नमेन्ट ने पहले पक्ष लिया, किन्तु फिर एलिजेबेथ ने सेन के अधिकारों को स्वीकृत कर लिया। किन्तु शेन की आकांक्षाएँ महान् थीं। वह अल्स्टर का स्वामी बनना चाहता था। उसके पास एक बड़ी सेना थी। उसने स्काटों की रानी मेरी और फ्रान्स के राजा चार्ल्स नवम के साथ गुप्त मन्त्रणा की। अन्त में अँगरेज़ी गवर्नमेन्ट ने उसे राजद्रोही करार दे दिया। शेन परास्त हुआ और मार डाला गया ( १५६७ ई० )।

**कैथलिक धर्म का पुनरुद्धार**—इसी बीच में आयरलैंड में एक महान धार्मिक आन्दोलन हुआ। 'पेल' के बाहर प्रोटेस्टेन्ट धर्म की प्रस्थापना का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। यह सत्य है कि एलिजेबेथ के शासन काल में एक नियम द्वारा ऐंग्लिकन धर्म को छोड़ कर अन्य सभी धार्मिक विधियाँ वर्जित ठहराई गयी थीं, किन्तु सारे राष्ट्र पर ऐसे नियम का आरोपण असम्भव था और आयरलैंड के रोमन कैथलिकों को वास्तविक धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी। एलिजेबेथ के शासन-काल में ही पुनर्विधान प्रतिरोध आन्दोलन हो रहा था। इस आन्दोलन को कहीं भी आयरलैंड से अधिक सफलता नहीं मिली। एलिजेबेथ के राज्यारोहण के बाद ही जेसूट पादरी आये और उन्होंने बड़ा प्रभाव प्राप्त कर लिया। १५७० ई० में एलिजेबेथ के बहिष्कार के समय पोप आयरलैंड का शासक समझा जाता था। स्पेन के फिलिप द्वितीय से भी सहायता मिलने की आशा थी।

**डेसमंड विद्रोह**—( १५७९-८३ ई० ) इस समय दो विद्रोह हुए, जिनका

नेतृत्व मन्स्टर में रहने वाले फिज जेराल्डों की शाखा के हाथ में था। पहला विद्रोह तो अधिक महत्वपूर्ण न था, किन्तु दूसरे के कारण अर्ल ऑव डेसमंड के नेतृत्व में बहुत बड़ी उथल-पुथल हुई। विद्रोहियों को बहुत कुछ सफलता मिली और एक स्पेनी और इटेलियन सेना स्मेरविक में आ गयी। इसके साथ पोप, डाक्टर निकोला सांडर्स ने अपना एक प्रतिनिधि (नन्सियो) भी भेजा था। इसने विद्रोहियों को उत्तेजित करने में बड़ी तत्परता दिखलायी और इसे गिरफ़्तार करने में बड़ी कोशिश करने पर भी सफलता न मिली। अन्त में यह शीत के कारण एक जंगल में मुर्दा पड़ा पाया गया। किन्तु शीघ्र ही विदेशियों ने अधीनता स्वीकार कर ली और वे सब मार डाले गये, क्योंकि उनके पास फ़िलिप द्वितीय का कोई प्रमाण पत्र न था। अन्त में चार वर्ष के युद्ध के बाद मन्स्टर जीत लिया गया। सारा युद्ध बहुत भीषण हुआ। किसी आयरी सिपाही की उस समय तक खैरियत न थी जब तक वह अपने साथी का सिर काट कर न लाये। मन्स्टर वीरान हो गया। युद्ध के अन्तिम ६ महीने से ३० हज़ार मनुष्य भूख से मर गये। तब मन्स्टर में अँगरेज़ी उपनिवेश स्थापित करने का निश्चय हुआ। यह विचार नया था। मेरी ने इसकी व्यवस्था की थी और एलिज़बेथ के शासन में अब वह एक बृहत् रूप में सम्पादित हो रहा था। लगभग पाँच लाख एकड़ ज़मीन उन ठेकेदारों को दे दी गयी जिन्होंने अँगरेज़ी उपनिवेशिकों को लाने का वचन दिया; परन्तु यह वायदा बहुत हालतों में पूरा न हो सका।

टाइरोन का विद्रोह (१५७९-१६०३ ई०)—सबसे अधिक शक्तिशाली विद्रोह का केन्द्र आयरलैण्ड के उत्तर में था। इसके नेता ह्यू ओ नील, अर्ल ऑव टाइरोन, तथा ह्यू रो (ओ, डनलों का अध्यक्ष) थे। टाइरोन ने १५९८ ई० में ब्लैक वाटर के यलोफोर्ड पर एक विजय प्राप्त की। थोड़े और साहस से उसने डबलिन पर अधिकार कर लिया होता। उसकी विजय से मन्स्टर में फिर बलवा हो गया। स्पेन वालों ने उससे सन्धि कर ली और उसे अस्त्र और सेना की सहायता भेजी। पोप ने उसके लिए एक 'मोरपंख' भेजा और चर्च की रक्षा के लिए विद्रोह करने वालों को धार्मिक अनुग्रह प्रदान करने का वचन दिया। परिस्थिति गम्भीर थी। इसके पहले कभी ऐसा विद्रोह न हुआ था जिसमें आयरलैंड की इतनी अधिक जातियों में एकता हो गयी हो या जिसने एक राष्ट्रीय विद्रोह का रूप धारण किया हो। एलिज़बेथ के कृपा-पात्र अर्ल ऑव इसैक्स को वहाँ भेजा गया, किन्तु उसके युद्ध करने के बजाय टाइरोन से सन्धि कर ली। उसके उत्तराधिकारी लार्ड मान्टजाय ने आयरलैण्ड को डबलिन तक विद्रोहियों के अधिकार में पाया। किन्तु वह बहुत सक्षम पुरुष था। उसने किनसेल में उतरी हुई एक स्पेनी सेना को दमन किया और फिर टाइरोन से युद्ध किया। आवागमन के मार्ग रोकने के लिए उसने प्रमुख दर्रों पर किले बनाये और क्रम से एक एक प्रान्त पर आक्रमण कर उसकी रसद बन्द कर अपनी अधीनता में कर लिया। उसकी यह नीति बहुत सफल रही। १६०३ ई० में एलिज़बेथ की मृत्यु की

सूचना आयरलैण्ड में पहुँचने के पूर्व ही टाइरोन ने इस शर्त पर अधीनता स्वीकार कर ली थी कि उसकी उपाधि तथा उसकी ज़मीन उसे वापस मिल जायगी।

आयरी युद्ध की भीषणता—एलिजेबेथ की मृत्यु के साथ प्रथम बार आयरलैंड पर पूर्ण विजय प्राप्त हो सकी। किन्तु यह बहुत महँगी पड़ी और इसके कारण इतनी हिंसा हुई कि वास्तव में एलिजेबेथ का राज्य आयरलैंड की मृतक प्रजा और उजड़े हुए प्रदेश पर था। इस युद्ध के अत्याचारों का वर्णन बड़ा लोमहर्षण और कारुणिक है। कहा जाता है कि अँगरेज़ डिप्टियों ने शेन ओ 'नील को विष-मिश्रित वारुणी का उपहार भेजा। डेस्मंड विद्रोह में अँगरेज सैनिकों ने बच्चों को भालों पर उछाल कर बड़ी क्रूरता से मार डाला। मान्टजॉय के आक्रमण में स्त्रियाँ इतनी भूखों मरीं कि वे बच्चों को आकर्षित करने के लिए आग जलाती और उन्हें पकड़कर खा जाती थीं। यह सब अत्याचार अँगरेज़ों तक ही सीमित न थे। आयरलैंड के निवासी स्पैन्सर के शब्दों में 'असभ्य राष्ट्र समझे जाते थे फिर वे अँगरेज़ों के दो जानी दुश्मन, पोप और स्पेन के राजा से मिले हुए थे तथा आयरी सरदारों का व्यवहार भी अँगरेज़ डिप्टियों के साथ विश्वासघातपूर्ण था। फिर भी इतने क्रूरतापूर्ण अत्याचारों के लिए कोई भी न्यायसिद्ध क्षमा नहीं हो सकती। १६४१ ई० में आयरलैण्ड के प्रोटेस्टेन्टों को इस युग के दुष्कृत्यों का बहुत अधिक मूल्य देना पड़ा।

## २—स्टुअर्टों के शासन में आयरलैण्ड

१६०७ ई० में अल्स्टर की योजना—जेम्स प्रथम के गद्दी पर बैठने के बाद ही एलिज़ेबेथ के शासन में प्रारम्भ हुए उपनिवेश स्थापना की व्यवस्था के विकास का अवसर आया। १६०७ ई० में टाइरोन और टाइरकनल के अर्ल राजद्रोह के अभियोग के भय से भाग गये। राज्य ने उनकी जागीरें ज़ब्त कर लीं। वे अल्स्टर की दो बड़ी जातियों के नेता थे। आयरी रीतिरिवाज के अनुसार ये दोनों जागीरें ज़ब्त की गयी थीं अतः अँगरेजी गवर्नमेन्ट का कृत्य न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। सबसे रद्दी भूमि आयरलैंड-वासियों को मिली और अधिकांश अच्छी भूमि स्काटलैंड और इंग्लैंड के लोगों को तथा सिटी ऑव लंडन और अन्य बाहरी कम्पनियों को दे दी गयी। अकेले अल्स्टर के साथ ही यह व्यवहार न हुआ। आयरलैण्ड में काफी विदेशी इकट्ठे हो गये थे। वे गवर्नमेंन्ट से स्वीकृति लेकर लोगों की भूमि ले लेते थे।

आयरलैण्ड में स्ट्रैफर्ड (१६३३-४३ ई०)—आयरलैंड के इतिहास में स्ट्रैफ़र्ड का शासन दूसरा महत्वपूर्ण विषय है। कई प्रकार से उसका शासन-सराहनीय है। उसने अफसरों को निश्चित कार्य करने पर बाध्य किया और अनियंत्रित अधिकरण बन्द किया। जब वह आयरलैंड में पहुँचा तो वहाँ की सेना के पास न वर्दी थी, न अस्त्र-शस्त्र न उसे समय पर वेतन मिलता था और न उसे किसी प्रकार की शिक्षा दी गयी। उसने इसे एक सुशिक्षित सेना में परिणत कर दिया। समुद्री

डाकुओं को भी उसने बड़ी कठोरता से दबाया और आयरलैंड के समुद्र से उनका नाम निशान मिटा दिया। आयरलैंड के फ़्लेक्स व्यापार की उन्नति उसी की प्रेरणा से हुई। उसने प्रोटेस्टेन्ट चर्च की अवस्था में सुधार किया, उपासना की व्यवस्था की और इग्लैण्ड के योग्य पादरियों को वहाँ आने को उत्साहित किया। उसने आयरलैण्ड की पार्लियामेन्ट की बैठक की और उसमें अच्छे अच्छे नियम बनाये।

इन सभी बातों के लिए स्ट्रैफर्ड के शासन की जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है; परन्तु उसमें कुछ दोष भी थे। उसका मिजाज बहुत कुछ स्वेच्छाचारी था और मनुष्यों के साथ उसका व्यवहार भी बहुत कठोर था। कनॉट प्रदेश के साथ उसका व्यवहार सब से बुरा रहा। वह उस प्रान्त को उसी तरह बसाना चाहता था जैसा कुछ वर्ष पहले अल्स्टर बसाया गया था। उसने भूमि छीनने के अभिप्राय से उनकी मिलकियतों की जाँच करने की आज्ञा निकाली और उन्हें ज़ब्त कर लेने के लिए न्यायाधीशों और पंचों को धमकियाँ देने का प्रयत्न किया। परन्तु इंग्लैंड से लोगों को बुलाकर बसाने के पूर्व ही उसे खुद १६४० ई० को वहाँ की परिस्थिति के कारण आयर छोड़ना पड़ा।

स्ट्रैफर्ड के अध्यवसाय से आयरलैंड का बहुत कुछ उपकार हुआ, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु आयरलैंड की आशाओं के साथ उसकी सहानुभूतिहीनता और देशी रीति-रिवाजों और प्रजा की मनोभावनाओं के प्रति उसकी नृशंसता के कारण उसका शासन देश भर में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। स्ट्रैफर्ड के विचार में लोगों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की कल्पना बिलकुल खोखली थी और प्रजा का धर्म था कि वह राजा के अनुशासन में चले। परन्तु अब इंग्लैंड में ही नहीं बल्कि आयरलैंड में भी इस भावना का युग बीत गया था। अब लोग यह नहीं चाहते थे कि उनके भले की दुहाई देकर उन पर शासन किया जाय; बल्कि अब तो स्वशासन ही में गलतियाँ और अहित तक करने के दुस्साहस को भी तैयार थे।

आयरलैंड का विद्रोह (१६४१ ई०)—अक्टूबर १६४१ ई० में स्ट्रैफर्ड के वध के पाँच महीने बाद आयरलैंड में विद्रोह उठ खड़ा हुआ। इस विद्रोह का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी; क्योंकि पिछले अन्यायों को मिटाने की प्रेरणा उसके आरम्भ के लिए पर्याप्त कारण थी। एलिजेबेथ के शासन-काल में बड़ी कठोरता से आयरलैंड का दमन किया गया था। जेम्स प्रथम के शासन में अल्स्टर बसाया गया और स्ट्रैफर्ड के शासन में कैनॉट बसाने की धमकी दी गयी। आयरलैंड निवासियों को यह सब बातें अन्यायपूर्ण प्रतीत होती थीं। परन्तु विगत काल से भी अधिक भविष्य का भय था। पार्लियामेन्ट में स्काट कवेनेन्टरों और प्यूरिटन लोगों का प्रभुत्व था। कहा जाता था कि लॉग पार्लियामेन्ट के एक सदस्य ने यह खुल्लम खुल्ला कह रखा था, कि एक हाथ में बाइबिल और दूसरे हाथ में तलवार लेकर ही आयरलैंड के पैपिस्ट लोगों को धर्म-परिवर्तन के लिए मजबूर किया जा सकता था। इसी प्रकार

पिम ने घोषणा कर दी थी कि पार्लियामेन्ट आयरलैंड में एक भी कैथलिक पादरी न रहने देने के पक्ष में थी।

यह विश्वास भी न था कि वे आयरलैंड से रोमन कैथलिक धर्म का नाम निशान मिटा देंगे। २२ अक्टूबर १६४१ ई० का विद्रोह प्रारम्भ हो गया और लगभग १० वर्ष तक आयरलैंड निरन्तर युद्ध क्षेत्र बना रहा। विद्रोह का केन्द्र पहले अल्स्टर बना, जहाँ से अँगरेज और स्काट निर्वासन के अकथनीय कष्ट झेलने के लिए निकाल दिये गये। फिर विकलो में विप्लव शुरू हुआ। उस जमाने के विद्रोह में हत्याकांड होना अनिवार्य था। लगभग ४ हजार प्रोटेस्टेन्ट मारे गये। इससे दूने अकाल और खुले मैदानों में पड़े रहने पर मर गये। इंग्लैंड में इस संख्या के विषय में बहुत अतिशयोक्ति से काम लिया गया। कुछ इसकी कल्पना एक लाख करते थे; परन्तु अन्य तीन लाख तक बताते थे। विद्रोह की ज़्यादतियों से क्षुब्ध होकर लॉग पार्लियामेन्ट ने कैथलिकों के विरुद्ध दो नियम पास किये। एक नियम के अनुसार आयरलैंड के कैथलिकों के प्रति किसी प्रकार की सहिष्णुता दिखाना बन्द कर दिया गया और दूसरे के अनुसार ढाई लाख एकड़ भूमि विद्रोह दमन में सहायता करने वालों के लाभ के लिए ज़ब्त कर ली गयी। इन नियमों के फलस्वरूप आयरलैंड की प्रजा भड़क उठी और बहुत से कैथलिक सज्जन विद्रोह में सम्मिलित होने के लिए अग्रसर हो गये।

**सन् १६४२ से १६४९ ई० तक आयरलैंड की स्थिति**—१६४२ ई० में गृह-युद्ध के कारण आयरलैंड की स्थिति इतनी जटिल हो गयी और दलबन्दियों के कारण आयरलैंड के मामले उलझ गये कि उनका संक्षिप्त विवरण सम्भव नहीं है चार्ल्स १म ने गृह-युद्ध के दिनों में आयरलैंड से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया किन्तु इसका कोई निश्चित परिणाम न हुआ। फिर सन् १६४६ ई० में जब उसको फाँसी हुई तो कुछ समय के लिए उसके पुत्र के पक्ष में आयरलैंड के सभी दल एक हो गये थे क्योंकि रम्प पार्लियामेन्ट के शासन से सभी घृणा करते थे।

**आयरलैंड में क्रामवेल ( १६४९-५० ई० )**—इसलिए क्रामवेल को दमन करने भेजा गया; किन्तु उसके पहुँचने के पूर्व ही एक कर्नल जोन्स ने रैथमाइन्स पर आयरलैंड की सम्मिलित सेना को परास्त कर दिया और जब तक अधिक सेना इकट्ठी हो आयरलैंड वालों को अपने किलों की शरण में जाकर अपनी रक्षा करनी पड़ी। क्रामवेल ने शीघ्र ही ड्रगेडा और वैक्सफर्ड पर धावा किया और आयरलैंड को छोड़ने के पूर्व उसने वाटरफर्ड को छोड़ कर समस्त तट पर अधिकार कर लिया। क्रामवेल ने ड्रगेडा के किले की सारी सेना को क़त्ल करवा दिया; क्योंकि उस जमाने के नियमों के अनुसार जिस दुर्ग की सेना, हथियार डालने से इनकार कर आक्रमण करने वालों से लोहा लेती थी, हारने पर उसको प्राणदंड मिलना आवश्यक होता था। क्रामवेल के इस विजय कार्य को उसके दामाद आयरटन ने पूरा किया और १६५२ ई० तक समस्त आयरलैंड पर अधिकार हो गया।

इस दीर्घकालीन युद्ध के बाद आयरलैंड की अवस्था दयनीय थी। इस दस वर्ष के हत्याकांड के युग में एक तिहाई से अधिक आदमी मर चुके थे। अधिकांश भूमि बिना बोई हुई वीरान पड़ी थी। अधिकांश प्रदेश सूने और जनशून्य थे। हज़ारों
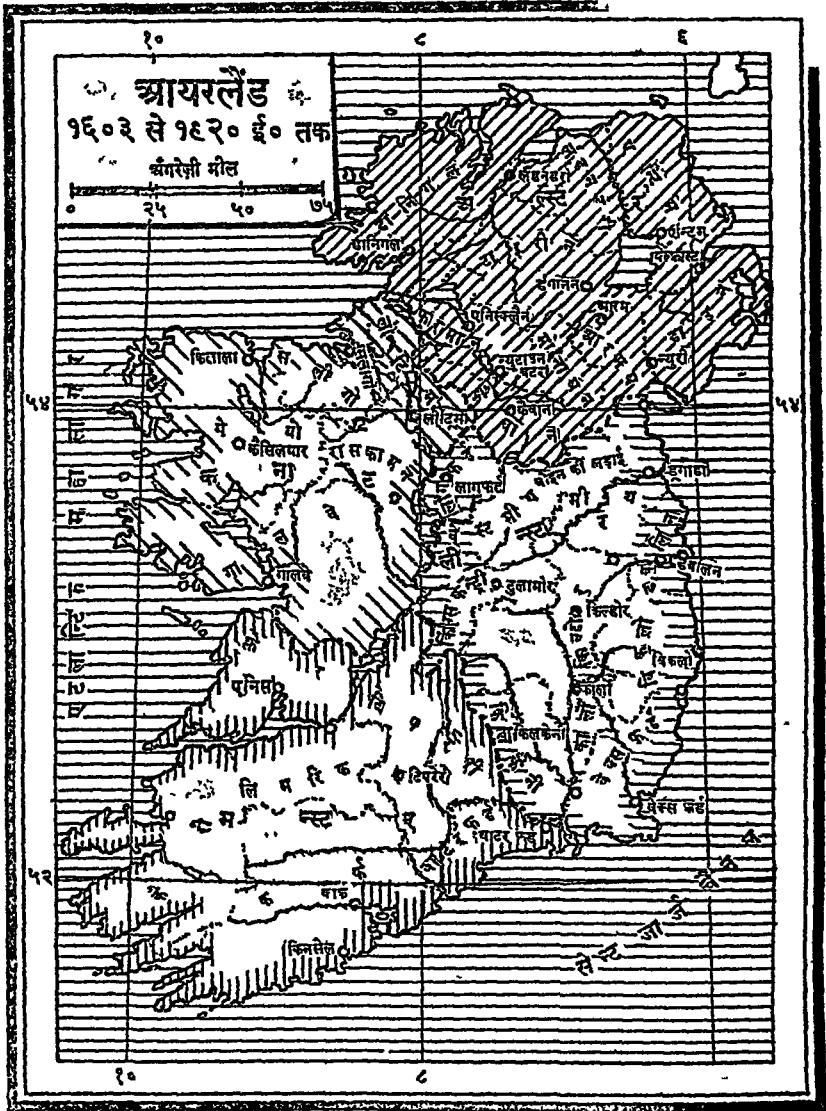
लोग सेना में भरती होने विदेशों को चले गये थे और सैकड़ों लड़के-लड़कियाँ जहाज़ों में भरकर बारबडो द्वीप में भेज दिये गये थे, जहाँ उन्हें खेतिहरों के हाथ बेच दिया गया था।

कामनवेल्थ का शासन—युद्ध के बाद नयी बस्तियाँ आबाद हुईं। कामन-

वेल्थ के सैनिकों और प्रोटेस्टेन्टों को बहुत सी भूमि दी गयी और पुराने भूस्वामियों को कैनॉट प्रदेश की भूमि देकर सन्तुष्ट किया गया। कैथलिक धर्मावलम्बियों का कठोरता से दमन किया गया। स्कॉटलैंड की भाँति क्रामवेल के आयरलैंड के शासन में भी बहुत कुछ अच्छाइयाँ थीं। युद्ध के कारण देश में इतने भेड़िये पैदा हो गये थे, कि लोगों का बस्तियों में रहना असम्भव हो गया। इसलिए हर खेतिहर को ज़मीन का पट्टा देते समय उससे यह शर्त करा ली जाती थी कि भेड़ियों को मार भगाने के लिए शिकारी कुत्ते अवश्य पाले। इस प्रकार उन क्षुब्ध आयरी सैनिकों को नृशंसता से बचने के लिए, जिनके घर ज़मीन सब छिन गये थे और जो इन नयी बस्तियों में रहने वालों को रात में क़त्ल कर के या ढोर-डंगर खोल ले जा कर या खेती को बरबाद करके अपना बदला चुकाना चाहते थे, बड़ी कड़ी व्यवस्था करनी पड़ी। एक भेड़िये के मार डालने पर ५ पौंड और एक टोरी सैनिक के मार डालने पर २० पौंड पुरस्कार मिलता था। सामान्यतः न्याय व्यवस्था अच्छी रही। सबसे अधिक लाभ आयरलैंड को इंग्लैंड के साथ स्वतन्त्र व्यापार से मिला।

**चार्ल्स द्वितीय के शासन में आयरलैंड**—सन् १६६० ई० में जब राज्य पुनः स्थापित हुआ तो आयरलैंड में भी भूमि के प्रश्न पर वही कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं जो इँग्लैंड में हुई थीं। यह प्रश्न इस प्रकार हल हुआ कि उन ज़मीन्दारों को जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने सन् १६४१ ई० के विद्रोह में भाग नहीं लिया था उनकी भूमि फिर मिल जाय और उस भूमि के बजाय क्रॉमवेल के समय के अधिकारियों को दूसरी जगह देकर मुआविज़ा दे दिया जाय। किन्तु यह व्यवस्था सन्तोषजनक न रही; बहुत से निरपराध कैथलिकों को अपनी सब भूमि नहीं मिली और बहुतों को कुछ भी नहीं मिला। परिणाम यह हुआ कि जहाँ सन् १६४० में दो तिहाई ज़मीन्दार रोमन कैथलिक थे, वहाँ १६६५ ई० के बाद केवल एक तिहाई देशी रह गये, जिनमें ऍंग्लो नारमन नस्ल के रोमन कैथलिक भी शामिल थे। एक तिहाई आयरी अधिकारी ऐसे थे जिनमें एलिज़ेबेथ और जेम्स प्रथम के समय के बसाये हुए लोग सम्मिलित थे और जो अधिकांश प्रोटेस्टेन्ट थे। बाकी एक तिहाई अँगरेज़ अधिकारी थे, जिन्हें क्रामवेल ने बसाया था।

चार्ल्स द्वितीय के शासन काल में आयरलैंड में शान्ति रही। अधिकांश ज़माने में ऑरमंड आयरलैंड का शासक रहा और उसके शासनकाल में सहिष्णुता नीति के कारण शान्ति बनी रही। परन्तु इसी ज़माने में आयरलैंड का इंग्लैंड के साथ स्वतन्त्र व्यापार का अधिकार ही नहीं जाता रहा वरन् ईर्ष्यावान् अँगरेज़ व्यापारियों और किसानों के पार्लियामेन्ट में अनुदार नियमों के कारण उसे बहुत हानि भी उठानी पड़ी।

---

# अध्याय ९

## विदेशी युद्धों का ज़माना

### ( १६८९ से १८१४ ई० )

फ्रान्स से युद्ध—( १६८६-१८१५ ई० )—१६८८ ई० के आन्दोलन ने ग्रेट ब्रिटेन को कई युद्धों में फँसा दिया। १६८८ ई० से १८१५ ई० तक, १२७ बरस में सात बड़े युद्ध छिड़े जिनको समाप्त होने में ५६ बरस लग गये। इनमें से पाँच युद्धों के आरम्भ में और दो के अन्त में, ग्रेट ब्रिटेन का प्रमुख शत्रु फ्रान्स रहा। ऐसी परिस्थिति में इन दोनों देशों के बीच उत्पन्न हुई अमैत्री के साधारण कारण जानने की कोशिश करें।

फ्रान्स के सीमान्त पर दुर्ग-पंक्तियाँ—इस वैमनस्य का सबसे पहला कारण था फ्रान्स की युरोप में प्रमुखता की महत्वाकांक्षा। फ्रान्स अपनी पूरबी सीमा को बढ़ाकर राइन नदी तक जो प्राचीन गॉल की सरहद थी लाना चाहता था दक्खिन पूरब में जर्मन रियासतों तथा उत्तर-पूरब में नीदरलैंड को अधीन करने पर ही यह बात पूरी हो सकती थी। नीदरलैंड में उस समय दो भाग थे। एक भाग हालैंड या संयुक्त प्रदेश था जो स्वतन्त्र था; दूसरा आजकल का बेलजियम था जो उस समय से १७१३ ई० तक स्पेन के राजा के अधिकार में रहा और जो बाद में फिर आस्ट्रिया के अधिकार में चला गया। फ्रान्स और बेलजियम के बीच कोई प्राकृतिक सीमा न थी; किन्तु इनकी सीमा के दोनों ओर एक दुर्ग पंक्ति बनी हुई थी। बेलजियम पक्ष के दुर्ग फ्रान्स के हाथ मे आते जा रहे थे। अगर एक बार वे सब फ्रान्स के हाथ में आ जाते तो वह फिर बेलजियम पर ही नहीं बल्कि हालैंड पर भी अधिकार कर लेता। किन्तु हालैंड की स्वतन्त्रता से इंग्लैण्ड का सीधा सम्बन्ध था और फ्रान्स का उत्तरी-समुद्र का तट पा लेना इंग्लैण्ड की सामुद्रिक स्थिति और उसकी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए ख़तरनाक था। इसलिए इंग्लैंड ने (हालैंड के सैनिकों द्वारा) दुर्ग पंक्तियों की रक्षा के लिए जोर दिया, क्योंकि उस समय के अँगरेज़ राजनीतिज्ञों के विचार से इंग्लैंड की रक्षा हालैंड की सुरक्षा पर निर्भर करती थी।

फ्रान्स और स्पेन—फ्रान्स की महत्वाकांक्षा राइन नदी के प्रदेशों की प्राप्ति तक ही सीमित न थी। सन् १६८६ से १८१५ ई० के बीच फ्रान्स के शासकों ने सन्धि अथवा वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा स्पेन पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था। फिर शुरू में चौदहवें लुई और अन्त में नेपोलियन ने युरोप में ऐसी राजनीतिक प्रमुखता प्राप्त कर ली थी जो अन्य सभी राज्यों की स्वतन्त्रता के लिए भयमूलक थी।

फ्रान्स और इंग्लैंड की संसार-व्यापी महत्वाकांक्षाएँ—इस प्रकार स्पष्ट है कि फ्रान्स और इंग्लैंड के इन निरन्तर युद्धों के कारण, एकान्त रूप से, युरोप तक ही सीमित न थे। दोनों देशों की साम्राज्य-प्राप्ति की महत्वाकांक्षाओं ने संसार भर में पारस्परिक विरोध जाग्रत कर दिया था। पूरब में भारतवर्ष और पच्छिम में पच्छिमी द्वीप-समूह, उत्तरी अमेरिका और उत्तरी आफ्रिका आदि देश उनके इस संग्राम के क्षेत्र बन गये थे, जहाँ उनकी राज्य-प्रसार-प्रवृत्तियों की प्रतिस्पर्द्धापूर्ण महत्वाकांक्षाओं का निर्णय करने के लिए यह परमावश्यक हो गया था कि संग्राम किया जाय। फिर उस समय के प्रायः सभी राजनीतिज्ञ यह जरूरी समझते थे कि इस साम्राज्य संग्राम का प्रमुख क्षेत्र युरोप में ही रहे, परन्तु अब अंगरेज़ी और फ्रान्सीसी साम्राज्यवादियों के लिए साम्राज्य प्राप्ति के युद्ध चाहे वे कहीं भी लड़े जायँ—बहुत बड़ा महत्व रखते हैं।

लुई चतुर्दश की बहुमुखी प्रतिभा—१६८८ ई० में, युरोप भर में, लुई चतुर्दश के नाम का दौर दौरा था। चालीस बरस तक उसकी स्थल सेनाएँ युद्ध में निरन्तर विजय पाती रहीं, और उनकी कोई गहरी पराजय नहीं हुई। फिर उसकी जलसेना की शक्ति इँग्लैंड और हालैंड दोनों को मिलाकर भी हुई थी। लुई के सौभाग्य से उसे यूव्वा जैसा योग्यतम युद्ध-सचिव, वोब्राँ जैसा कुशल इंजिनियर और तूरवील जैसा युग प्रसिद्ध नौ-सचिव मिले हुए थे। १६८६ ई० में कॉडी और टुरेन दोनों जगत प्रसिद्ध फ्रान्सीसी सेनापति मर गये; फिर भी फ्रान्स में लग्जैम्बूर और विलार्स जैसे अग्रगण्य सेनानी मौजूद थे। इन्हीं सामन्तों के बाहुबल और शौर्य का यह परिणाम था कि लुई ने नीदरलैंड के सीमा-प्रदेश के अनेकों दुर्ग और आगे दक्खिन में आल्सेस, फ्रांके कॉमटी और स्ट्रेट्सबुर्ग के प्रसिद्ध किले जीत कर अपने राज्य में मिला लिये थे। अभी भी उसकी प्रगति रुक न गयी थी और वह नीदरलैंड और जर्मनी में और प्रदेश जीत लेने की धुन में लगा था। इंग्लैंड के राजा चार्ल्स द्वितीय और जेम्स द्वितीय एक प्रकार से लुई के पेन्शनभोगी थे। उधर वह अपने वंशजों के लिए स्पेन का राज-सिंहासन प्राप्त करने के प्रयत्नों में लगा था। इँग्लैंड में १६८८ ई० के विप्लव के कारण लुई की आशाओं पर जरूर पानी फिर गया। धन के लिए लुई पर और सम्मति के लिए उसके राजदूत पर, निर्भर रहनेवाले इँग्लैंड के राजा का उत्तराधिकारी हालैंड का शासक विलियम ३य हुआ, जिसका सारा जीवन ही फ्रान्स का विरोध करने में व्यतीत हुआ था। विलियम ने १६८८ ई० में ही फ्रान्स के विरुद्ध एक संघ की स्थापना की थी। १६८६ ई० में इँग्लैंड की सहायता ने सोने पर सुहागे का काम किया।

ॲंगरेज़ी राज्य के उत्तराधिकार का युद्ध—इसके बाद जो युद्ध हुआ वह युरोपीय इतिहास में ऑग्सबर्ग के संघ का युद्ध कहलाता है। इंग्लैण्ड के इतिहास में इसे अँगरेजी राज्य के उत्तराधिकार का युद्ध कहते हैं। इंग्लैण्ड का राज्य प्राप्त

करने के लिए लुई चतुर्दश जेम्स द्वितीय की सहायता कर रहा था। पहले दो बरसों में तो अँगरेज़ी सेना की कार्रवाई ब्रिटिश द्वीप और समुद्र तक ही सीमित रही; परन्तु जून सन् १६८९ ई० में स्काटलैंड में वाईकाउन्ट डंडी (क्लेयरहाउस के जान ग्राहम) ने हाईलैंडरों को जेम्स के पक्ष में उभाड़ा और किलीमैंकी के दर्रे के पास मैके की अधिनायकता में विलियम की सेना को, जो अपनी बन्दूकों की नाल में नयी संगीनें लगाने में व्यस्त थी, दो मिनट में परास्त कर दिया। इस लड़ाई में डंडी के संघातक चोट लगी और उसकी मृत्यु के साथ इस आन्दोलन की शक्ति क्षीण हो छिन्न-भिन्न हो गयी।

जेम्स द्वितीय अब फ्रान्सीसी सेना और धन की सहायता पाकर आयरलैंड में आ गया; परन्तु आयरलैंड की परिस्थिति स्काटलैंड से भी अधिक गम्भीर थी। धार्मिक विरोध के अतिरिक्त आयरलैंड निवासियों और अँगरेज तथा स्काटों में जातीय घृणा की भावना भी जागृत हो गयी थी। शीघ्र ही कैथलिकों और प्रोटेस्टेन्टों में युद्ध छिड़ गया। उत्तर में प्रोटेस्टेन्टों पर आक्रमण हुआ और उनके दो किले लंडनडरी और एन्स्कलीन पर घेरा डाल दिया गया। लंडनडरी के प्रोटेस्टेन्ट १०५ दिन तक सहायता आने की आशा में डटे रहे और एन्स्कलीन के घिरे हुए सैनिकों ने शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया और न्यूटनबटलर की लड़ाई जीत ली। इसके बाद विलियम स्वयम् आयरलैंड आया और पहली जुलाई १६९० ई० को बाइन नदी पर एक लड़ाई में विजयी हुआ। इस युद्ध में कई राष्ट्र सम्मिलित थे। जेम्स की एक तिहाई सेना फ्रान्सीसियों की थी और उसका सेनापति भी फ्रान्सीसी था। फिर विलियम की आधी सेनाएँ इंग्लैण्ड निवासियों की थीं। बहुत से आयरी प्रोटेस्टेन्ट भी इसमें शामिल थे। २ हज़ार डच और शेष ह्यूजिनो, प्रशियन, डेन और फिलैंडर थे। प्रधान सेनापतियों की सम्मति के विरुद्ध विलियम ने उस नाले को पार करना निश्चय किया जिसके उस पार जेम्स की सेना थी। उसे अपनी इस उच्छृंखलता का बहुत कठोर दंड मिलता, परन्तु उधर जेम्स ने अपने बाएँ बाजू की रक्षा के लिए फ्रान्सीसी सेना हटा ली और अर्द्ध-शिक्षित अनियन्त्रित आयरी पैदल सेना शीघ्र परास्त कर दी गयी। फ्रान्सीसी सेना और आयरी सवारों की बहादुरी के कारण यह हार बहुत हानिकारक नहीं हुई; फिर भी जेम्स फ्रान्स भाग गया और १६९१ ई० में आयरलैंड में युद्ध समाप्त हो गया। जॉन चर्चिल भावी (ड्यूक ऑव मार्लबरा) ने प्रबल आक्रमण किया और कार्क और किनरोल ले लिये; तथा डच जनरल ग्रिनकेल ने बड़ी वीरता से आउग्रिम की लड़ाई जीता। कुछ महीने बाद अन्तिम कैथलिक दुर्ग लिमरिक के पतन के साथ आयरलैंड में विलियम की जड़ जम गयी।

समुद्र पर इन दो वर्षों में लुई चतुर्दश ने कई स्वर्ण अवसर खो दिये। उत्तर बेड़ा और उस युग के सर्वश्रेष्ठ नौ-सेनापति तूरवील के होते उसे आयरलैंड को इंग्लैण्ड से पृथक् करने की चेष्टा करनी चाहिए थी, जिससे वह जेम्स को सहायता पहुँचा सकता। परन्तु उसने वह नीति ग्रहण न की और विलियम को

निर्विघ्न आयरलैंड चला जाने दिया। ३० जून १६८६ ई० को बोइन के युद्ध से पहले बीचीहैड पर तूरवील ने संयुक्त डच और अँगरेज़ी बेड़े का सामना किया जो लार्ड टारिंग्टन के नेतृत्व में था। लार्ड टारिंग्टन के पास जहाज कम होने के कारण वह अपने आमुख और मध्य पार्श्वों से युद्ध न कर पीछे हटता हुआ युद्ध करना चाहता था; किन्तु उसके आमुख पार्श्व पर उद्धत डच सेना युद्ध करने पर उतारू हो गयी और उसकी अच्छी दुर्गति बनी। फिर भी यदि तूरवील इस विजय के बाद पूरी शक्ति से खदेड़ता तो परिणाम बड़ा विनाशक होता।

युद्ध के शेष काल में, (१६६१ से १६६७ ई० तक) समुद्र पर इंग्लैंड का प्रभुत्व रहा। १६६२ ई० की लाहोग की विजय प्राप्त हुई। तूरवील ने इस अवसर पर अँगरेज़ नौ सेनापति रसेल के विरुद्ध बड़ी वीरता से युद्ध किया, किन्तु युद्ध के बाद फ्रान्सीसी बेड़े की दुर्व्यवस्था में हटना पड़ा और बहुत से जहाज़ों ने रेस ऑव एलडरनी के खतरनाक मार्ग से निकलने की चेष्टा की; परन्तु १२ फ्रान्सीसी जहाज मार्ग की सँकड़ाई के कारण न निकल सके और उन्होंने लाहोग में शरण ली। यहाँ रसेल के बेड़े ने उनमें आग लगा दी। इस विजय पर इंग्लैंड में बड़े उत्साह से खुशियाँ मनायी गयीं। कई दिन तक लंडन के गिरजाघरों के घंटे निरन्तर दिन रात बजते रहे, कोने-कोने पर झंडे लहराये गये। हर घर में मोमबत्तियाँ जलायी गयीं और हर चौराहे और तिराहे पर होलिका प्रज्वलित की गयी। तीन लार्ड ३७ हज़ार पौंड के सिक्के लेकर नौ-सैनिकों में बाँटने गये; इस विजय से इँग्लिश चैनल पर इंग्लैंड का अधिकार हो गया। तब फ्रान्स अँगरेजों के व्यापार-विनाश पर उतारू हो गया और इससे बहुत बड़ी हानि हुई। उन्होंने स्मर्ना जाते हुए ४०० जहाज़ों में से १०० जहाज़ पकड़ लिये। १६६४ ई० में एक मनोरंजक घटना हुई। विलियम ने भूमध्यसागर में एक बेड़ा भेजा जहाँ उसने बार्सिलोना को फ्रान्सीसियों के आक्रमण और स्पेन को उनके आधिपत्य से बचाया, और कैडिज में जाड़ा बिताकर अगले वर्ष फिर भूमध्य सागर में लौट आया इससे युद्ध की प्रगति पर काफी प्रभाव डाला।

नीदरलैंड में युद्ध की प्रगति—इन्हीं वर्षों में युरोप के महाद्वीप पर स्पेनी नीदरलैंड, इंग्लैंड का समर-क्षेत्र रहा। इस युद्ध में सेनाएँ मुख्यतः घेरा डाले पड़ी रहीं। सैनिक की हैसियत से तो विलियम साहसी किन्तु प्रतिभाशाली न था; उसका विपक्षी लग्ज़ेम्बुर्ग युद्ध-कुशल किन्तु बहुत शिथिल था। इसलिए विलियम को प्रायः युद्ध में हार नसीब होती, परन्तु लग्ज़ेम्बुर्ग अपनी शिथिलता के कारण इस विजय से कोई लाभ नहीं उठा सका। विलियम की व्यवस्था अवश्य अच्छी होती थी। १६६१ ई० में स्टाइनकर्क पर उसने लग्जेम्बुर्ग पर अकस्मात् आक्रमण का प्रयत्न किया; किन्तु उसने प्रारम्भ में तोपों की गोलाबारी में ११ घन्टे नष्ट कर दिये। फिर उसने बड़ी दिलजमई के साथ पैदल सेना का व्यूह रचने की चेष्टा की; जिसमें और भी

देर लग गयी। लग्ज़ेम्बुर्ग पर अकस्मात आक्रमण अवश्य हुआ, परन्तु उसने बड़ी तत्परता और फुर्ती से अपनी सेना को तैयार कर युद्ध जीत लिया।

अगले वर्ष १६६३ ई० में नीरविंडन में विलियम परास्त हुआ किन्तु अपनी धुन का पक्का होने के कारण वह युद्ध मे डटा रहा और दो वर्ष बाद उसने नामूर किले पर आक्रमण करके पहली महान विजय प्राप्त की।

रिज़विक की सन्धि—अन्त में १६९७ ई० में फ्रान्स की शक्ति का ह्रास हो गया। रिजविक की सन्धि में उसने विलियम को इंग्लैंड का राजा स्वीकृत किया और स्ट्रासबर्ग को छोड कर १६७८ ई० के अन्त तक के सारे जीते हुए प्रदेश लौटाकर युद्ध समाप्त कर दिया। यह युद्ध बहुत नीरस न रहा। अँगरेज खूब लड़े। समुद्र पर उन्होंने प्रभुत्व प्राप्त कर लिया। विलियम के नेतृत्व में उन्होंने बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण बातें सीखीं जिनका प्रभाव ड्यूक ऑव मार्लबरा के नेतृत्व में अगले युद्धों में दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने सम्मानपूर्ण सन्धि कर ली और लुई चतुर्दश की महत्त्वाकांक्षाओं में प्रथम बार एक निश्चित रोक डालने में सफल हुए।

## §२—स्पेन के उत्तराधिकार की लड़ाइयाँ

स्पेन का उत्तराधिकार—१६९८ ई० में एक ऐसी परिस्थिति उपस्थित हो गयी जिसका किसी तरह भी समर्थन नहीं किया जा सकता। यह कभी न्याय-संगत नहीं प्रतीत होता कि दो राजा एक तीसरे राजा की मृत्यु की आशा से उसके राज्य-को बिना उसकी या उसके मन्त्रियों की अनुमति लिये ही आपस में बाँट लेने की आयोजना कर लें। स्पेन के साम्राज्य में स्पेन ही नहीं वरन् स्पेनी नीदरलैंड, मिलान और नेपिल्स, सिसली और सार्डीनिया तथा पच्छिमी द्वीपसमूह और दक्खिनी अमेरिका का भी बहुत कुछ भाग शामिल था। स्पेन के राजा चार्ल्स द्वितीय के न कोई लडका था और न भाई; किन्तु उसके दो बहनें और दो फूफियाँ थीं। इन दोनों में बड़ी का फ्रान्स के राजा और छोटी का सम्राट् के साथ विवाह हुआ था। यद्यपि वे दोनों मर चुकी थीं किन्तु उनकी सन्तानें मौजूद थीं। इनमें से बड़ी के पुत्र लुई चतुर्दश ने स्पेन के राजा की बड़ी बहन तथा सम्राट लियोपल्ड ने छोटी बहन के साथ विवाह कर लिया था। इसलिए परिस्थिति और कठिन हो गयी थी।

राज्य-विभाजन की सन्धियाँ—( १६९८–१७७२ ई० )—यह तो स्पष्ट था कि लुई चतुर्दश या सम्राट लियोपल्ड या उनके ज्येष्ठ पुत्रों में से किसी को भी फ्रान्स या आस्ट्रिया के राज्य के साथ-साथ स्पेन और उसके विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य के मिला देने का अवसर नहीं दिया जा सकता था; क्योंकि इन सबके मिल जाने से अन्य राज्यों के लिए बड़ी भय-सूचक परिस्थिति उत्पन्न हो जाती। चार्ल्स द्वितीय बीमार और कुछ कुछ विक्षिप्त सा था; इसलिए १६९८ ई० में लुई चतुर्दश और विलियम ३य ने एक विभाजक सन्धि की योजना की जिसके द्वारा बवेरिया की रियासत

का उत्तराधिकारी बालक, जो लियोपल्ड का पौत्र था स्पेन के अधिकांश राज्य का भावी मालिक होता।

दुर्भाग्य से बवेरिया के इस बालक उत्तराधिकारी की शीतला से मृत्यु हो गयी। इसलिए १७०० ई० में दूसरी सन्धि हुई जिसके अनुसार आर्कड्यूक चार्ल्स, सम्राट् का द्वितीय पुत्र स्पेन के अधिकाश राज्य का अधिकारी होता और फ्रान्स के दाउफ़ों को नेपल्स और मिलान मिलते। ऐसी परिस्थिति में यह कोई आश्चर्य की बात न थी जब स्पेन के राजा को इन सन्धियों की सूचना मिले तो वह क्रोध से तिलमिला उठे और उसकी रानी गुस्से के मारे अपने कमरे का सामान तोड़ डाले। आख़िर सन् १७०० में स्पेन का राजा बीमार पड़ गया और उससे अपने सारे अधिकार दाउफों के द्वितीय पुत्र फ़िलिप के लिए छोड़ जाने का सफल अनुरोध किया गया। लुई चतुर्दश ने कुछ संकोच के साथ राजा की वसीयता को स्वीकार किया और सन्धि की शर्तों को ठुकरा दिया। इस प्रकार फिलिप स्पेन का राजा हो गया और हैप्सबर्ग राज-घराने का उत्तराधिकार एक बोर्बन राजकुमार को मिला।

दुबारा युद्ध छिड़ना—लुई चतुर्दश द्वारा इस वसीयत को स्वीकार कर लेने से ही युद्ध छिड़ जाना आवश्यक नहीं था; क्योंकि उसके ज्येष्ठ पौत्र की जगह राज्याधिकार अब उसके द्वितीय पौत्र को मिला था। परन्तु लुई ने और भी कई काम ऐसे किये जिनके कारण युद्ध अनिवार्य हो गया। उसने सीमान्त दुर्ग-पंक्तियों से डच सैनिकों को निकाल दिया और उसमें फ्रान्सीसी सेना की नियुक्ति द्वारा नीदरलैंड की ओर बढ़ने की इच्छा प्रकट की। फिर उसने फ्रान्स के राज्यसिंहासन का अधिकार भी फिलिप के लिए इसलिए निश्चित कर दिया क्योंकि उसका बड़ा भाई रोगी होने के कारण बहुत दिनों जीवित न रहता। तीसरे उसने अपनी नीति से यह प्रदर्शित कर दिया कि वह फ्रान्स के लिए भी स्पेन अमेरिका के साथ व्यापार में बड़ी सुविधाएँ प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था जो इंग्लैंड को मिली हुई थीं। चौथे १७०१ ई० में जेम्स द्वितीय की मृत्यु के बाद उसने जेम्स के पुत्र तृतीय जेम्स को, जो 'ओल्ड प्रिटेन्डर' कहलाता है, इंग्लैंड का राजा स्वीकृत कर लिया था। लुई चतुर्दश ने रिजविक की सन्धि में इंग्लैंड के सिंहासन पर विलियम का अधिकार स्वीकृत किया था। इसलिए चार वर्ष बाद प्रिटेन्डर की सहायता द्वारा उसने विलियम को ही नहीं बल्कि इंग्लैंड को भी युद्ध के लिए उत्तेजित कर दिया। इन्हीं सब कारणों से १७०२ ई० में युद्ध आरम्भ हो गया, किन्तु युद्ध में कोई भाग ले सकने के पूर्व ही विलियम की मृत्यु हो गयी।

स्पेन के उत्तराधिकार का युद्ध और मार्लबरा (१७१२-१३ ई०)—युद्ध के प्रारम्भ में इंग्लैंड, हालैंड, आस्ट्रिया और बहुत सी जर्मन रियासतें एक ओर थीं, और बाद में पुर्तगाल और सेवॉय भी उनके साथ हो गये। दूसरी ओर फ्रान्स, स्पेन और बवेरिया थे। मित्रराष्ट्रों में प्रमुख व्यक्ति था जॉन चर्चिल, जो ड्यूक ऑव

मार्लबरा बना दिया गया था। १६५० ई० में उसका जन्म हुआ। चार्ल्स द्वितीय के समय में यह हालैंड में फ्रान्सीसी सेना का कर्नल रहा। जेम्स द्वितीय के समय में उसने सेजमूर की लड़ाई में बड़ी कठिन परिस्थिति में सेना की रक्षा की। फ्रान्सीसी सेनापति टूरेन का वह बड़ा विश्वासपात्र था। विलियम तृतीय के समय में दक्खिनी आयरलैण्ड पर कई चढ़ाइयों में उसने सफलता प्राप्त की थी। उसकी लोलुपता और विश्वासहीनता में कोई सन्देह नहीं क्योंकि उसने दो बार जेम्स द्वितीय का साथ छोड़ा। विलियम तृतीय के शासनकाल में उसने लुई चतुर्दश पर दो आक्रमणों का भेद खोल दिया था और एक वर्ष में उसके विरुद्ध दो षड्यन्त्रों में सम्मिलित रहा। इसलिए उसे पदच्युत कर दिया गया और विलियम के राज्य के अन्त तक फिर उसकी कोई प्रतिष्ठा न रह गयी। राजनीतिक मामलों में इतना विश्वासहीन होते हुए भी व्यक्तिगत मित्रता में वह बड़ा पक्का और ईमानदार साथी प्रमाणित हुआ।

मार्लबरा के युद्ध-कौशल के विषय में सभी सैनिक आलोचकों का मत है कि वह अपनी सेना के हर भाग से बड़ी तत्परता और योग्यता से काम निकालता था। मित्र-राष्ट्रों के प्रसिद्ध जनरल, यूजेन के साथ उसकी घनिष्ठ सैनिक मित्रता और इसी प्रकार अँगरेज़ गृहसचिव गोडोल्फ़िन के साथ उसकी राजनीतिक मैत्री उसके इस व्यक्तिगत चरित्र की दृढ़ता के बड़े सजीव प्रमाण हैं। अपने युग का महान् सेनापति होने के साथ साथ वह उस समय का सबसे कुशल राजनीतिज्ञ भी था। वह बड़ा रूपवान था और उसका व्यवहार भी बड़ा आकर्षक था। अपने अनुनयन से वह मित्रराष्ट्रों को इतना प्रसन्न कर लेता था कि वे उसे सैनिक सहायता देने में आनाकानी न कर पाते थे। वह इस बात पर बड़ा जोर देता था कि पैदल सेना के हर सिपाही को ठीक निशाना लगाने का खूब अभ्यास होना चाहिए। साथ ही उसने सारी सेना को आक्रमण करते समय फ्रान्सीसियों के व्यवहार के विरुद्ध एक साथ गोली छोड़ना सिखाया था। रूपर्ट और क्रामवेल के आदर्श के अनुकूल उसने घुड़सवार सेना को केवल गोली चलाने की जगह आक्रमण के वेग पर निर्भर रहना सिखाया था। बड़ी बड़ी कठिन परिस्थितियों में घुड़सवार सेना का बड़े कौशल से आक्रमण कराके वह रणक्षेत्र पर निश्चित विजय हस्तगत कर लेने में सफल रहा। तोपख़ाने के प्रयोग में भी वह बड़ा कुशल था और ब्लेनहाइम की लड़ाई में तो उसने हर एक तोपखाना अपनी निजी देख रेख में खड़ा कराया था। शत्रु की सेना में उस के दुर्बल स्थल देख लेने की तत्परता भी सराहनीय थी। रेमिलीज की लड़ाई में इसका सर्वोत्तम प्रमाण मिला था। युद्ध-क्षेत्र पर व्यूह रचना और सैन्यविन्यास में उसे कमाल हासिल था। उसकी बहुत सी योजनाएँ मित्र-राष्ट्रों और विशेष कर डच सैनिकों के विरोध के कारण व्यवहार में न आयीं, किन्तु जितनी योजनाओं को वह काम में ला सका वह उसे इस देश का ही नहीं बल्कि उस युग का सर्वश्रेष्ठ सेना नायक

सिद्ध करती हैं। उसने कोई ऐसा युद्ध नहीं लड़ा जिसमें उसकी विजय न रही हो तथा कोई ऐसा स्थान नहीं घेरा जिस पर उसने अधिकार न कर लिया हो।

**मार्लबरा की सैनिक युक्तियाँ**—मार्लबरा की सैनिक कार्रवाइयों को समझने के लिए यह याद रखना चाहिए कि युद्ध के आरम्भ में स्पेनी नीदरलैंड फ्रान्स के

१७०२ ई० में पश्चिमी युरोप
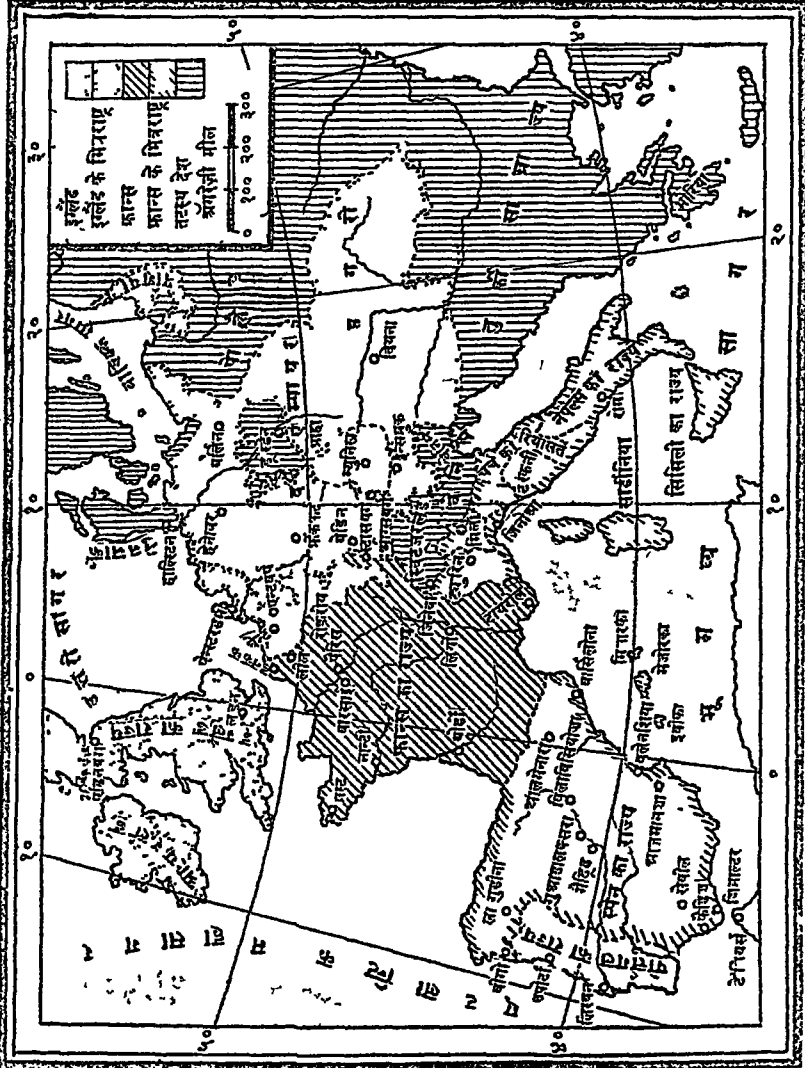
अधिकार में थे। इसलिए मार्लबरा के आक्रमण का उद्देश्य था नीदरलैण्ड से फ्राँन्सीसियों को निकाल देना। ब्लेनहाइम की प्रसिद्ध लड़ाई का उद्देश्य यह था कि सीमान्त दुर्गों पर अधिकार कर फिर फ्रान्स के अन्तः प्रदेश में प्रवेश किया जाय। परन्तु अपनी यह योजना सफल कर सकने के पूर्व ही उसे वापिस बुला लिया गया।

नीदरलैंड की नदियाँ तीन समानान्तर वक्र रेखाओं में बहती हैं। मोजेल और राइन, जिसमे मोजेल गिरती है, बाहरी वक्र रेखा का निर्माण करती है। दूसरी तरफ की रेखा म्यूजे द्वारा बनती है। शैल्ड इन दोनों के बीच में आ गयी है। इस प्रकार यह तीन समानान्तर वक्र रेखाएँ पूरी होती हैं। इस बात को ध्यान में रखने से उसकी उपरोक्त योजना स्पष्ट हो जायगी।

पहले दो वर्षों ( १७०२-३ ई० ) में कोई बड़ा युद्ध न हुआ; किन्तु मार्लबरा ने कई छोटे-बड़े दुर्ग ले लिये और म्यूजे तथा राइन की घाटियों में फ्रान्स की शक्ति को छिन्न भिन्न कर दिया। १७०४ ई० में मार्लबरा को पहली महान् विजय प्राप्त हुई। इस समय मित्र-राष्ट्रों की परिस्थिति बड़ी नाजुक थी। आस्ट्रिया की राजधानी वियना पर पूरब से हँगेरी के विद्रोहियों और पच्छिम से फ्रान्स की ओर से बवेरिया की सेना के आक्रमण का भय था। मार्लबरा ने वियना की रक्षा करने के लिए नीदरलैंड से मार्च करने की व्यवस्था की। किन्तु यह योजना बड़ी जटिल थी। उसे डच सेना को भुलावा देकर निकल जाना था। फिर फ्रान्सीसियों के मोर्चों के बीचो बीच से बढ़कर बड़े ऊबड़-खाबड़ अगम प्रदेश में होकर उनके पार्श्व तक पहुँच जाना था और फ्रान्सीसी सेनाओं के मिल सकने के पूर्व ही उसे यूजेन की सेना से जा मिलना था। अन्त में डेन्यूब पार करने के लिए उसे बवेरिया की सेना द्वारा रक्षित एक बड़े सुरक्षित स्थान को अधिकार में कर लेना था।

उसने यह सब काम सफलता पूर्वक किये और उसकी और यूजेन की सेनाएँ मिलकर फ्रान्सीसी सेनाओं और वियना के बीच में डट गयीं। तब ब्लेनहाइम का युद्ध हुआ। नेर्बेल नदी के पीछे फ्रान्सीसी और बवेरी सेनाएँ बड़ी दृढ़ता से एक सुदृढ़ स्थान पर जमी हुई थीं। मार्लबरा ने पहले लार्ड कट्स को फ्रान्सीसी सेना के दाहने पार्श्व पर ( ब्लेनहाइम पर ) आक्रमण करने भेजा। फ्रान्सीसियों की सेना के दक्खिन पार्श्व से उसका कठिन सामना हुआ और उसकी अग्नि-वर्षा से कट्स को पीछे हटना पड़ा। इसी बीच में मार्लबरा ने फ्रान्सीसी अग्र भाग की दुर्बलता देख ली। इस मोर्चे पर फ्रान्सीसी रिसाला खड़ा था और उसके और मार्लबरा की सेना के बीच दलदल पड़ता था। मार्लबरा ने इन दलदलों से गुजर कर आक्रमण करने के उद्देश्य से नदी पार करना आरम्भ कर दिया। इस बीच में कट्स ब्लेनहाइम पर आक्रमण करने का दिखावा करता रहा और यूजेन ने बाएँ पार्श्व पर आक्रमण जारी रक्खा। आखिर मार्लबरा का आक्रमण सफल हुआ। उसने फ्रान्सीसी अग्र पार्श्व को घेर लिया और सन्ध्या तक दो प्रधान फ्रान्सीसी सेनापति, १०० तोपें और ११ हज़ार सैनिक बन्दी हो गये।

ब्लेनहाइम का यह युद्ध इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने वियना की शत्रु के हाथ में जाने से रक्षा की, जर्मनी को फ्रान्सीसी आधिपत्य में जाने से बचाया और स्थल युद्ध में फ्रान्स की अजेयता की जमी हुई धाक को निर्मूल कर दिया। साथ ही आँजाकूर के युद्ध के बाद से अँगरेज़ों की खोयी हुई प्रतिष्ठा को फिर स्थापित कर दिया।

किन्तु ब्लैनहाइम विजय से मार्लबरॉ की उस वर्ष की योजना समाप्त नहीं हो गयी। विलियम की भाँति मार्लबरॉ भी भूमध्य सागर के महत्व को समझता था। उसने ड्यूक ऑव सेवॉय द्वारा स्थल से और अँगरेजी नौसेना द्वारा समुद्र पर से टुलोन पर आक्रमण करने की व्यवस्था की। दुर्भाग्य से ड्यूक ऑव सेवॉय को आक्रमण करने का अवसर न मिला, परन्तु अँगरेजी नौसेना ने रुक के नेतृत्व में जिब्राल्टर ले लिया और उसके उत्तर पूरब में मालगा बन्दर से हट कर नौ-युद्ध लड़ा। इस युद्ध मे किसी पक्ष की विजय नहीं हुई, फिर भी भूमध्य सागर में अब फ्रान्सीसी बेड़े को अँगरेजों से लोहा लेना बहुत मुश्किल हो गया।

रेमिलीज़ की लड़ाई (१७०६ ई०)—इसके बाद १७०६ ई० मे फिर कई महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई। ट्यूरिन के युद्ध के परिणाम-स्वरूप फ्रान्सीसी इटली से निकाल दिये गये। फिर नीदरलैण्ड में मार्लबरॉ ने रेमिलीज की लड़ाई में विजय पायी। इस युद्ध में मार्लबरा नामूर के दुर्ग पर आक्रमण करना चाहता था; इसलिए फ्रान्सीसी सेनापति ने बहुत सी सेना वहाँ जमा कर रखी थी। मार्लबरा की तीक्ष्ण दृष्टि से यह बात छिपी न रह सकी कि व्यूह-रचना करते समय एक पार्श्व से दूसरे पार्श्व की ओर सेना चलाने में फ्रान्सीसियों की अपेक्षा वह अधिक तेजी और शीघ्रता कर सकता था; क्योंकि उसके पार्श्वों के बीच की दूरी अधिक न थी और साफ मैदान बीच में पड़ता था। इसलिए अपने सैनिकों की स्फूर्ति पर विश्वास कर मार्लबरॉ ने एक पार्श्व पर आक्रमण कर वहाँ साफ़ दिखायी पड़ने वाले लाल वर्दी वाले अँगरेज सैनिकों को छोड दिया और हलके रंग की वर्दी की मित्रराष्ट्रों की सेना को दूसरे पार्श्व की ओर बढ़ा दिया। फ्रान्सीसी सेना भुलावे में आ गयी और दोनों पार्श्वों पर घिरे रहने के कारण हार गयी। मार्लबरा का रास्ता अब साफ़ हो गया और उसे विजय पर विजय प्राप्त होने लगी; यहाँ तक कि साल भर के भीतर ही फ्रान्सीसियों के हाथ से एन्टूवर्प और ब्रूसेल्ज ही नहीं बल्कि समस्त स्पेन अधिकृत नीदरलैण्ड प्रदेश भी निकल गये।

स्पेन युद्ध (१७०५-६ ई० में)—मित्र राष्ट्रों की तीसरी विजय १७०६ ई० में स्पेन में हुई। दो वर्ष पहले इन्हीं राष्ट्रों ने आर्कड्यूक चार्ल्स को स्पेन के सिंहासन पर बैठाने का प्रयत्न किया था। पहले पहल आरम्भ में अधिक सफलता न मिली; किन्तु १७०५ ई० में पीटरबरो के सहकारी सेनापतियों ने बड़ी वीरता से लडकर बार्सिलोना ले लिया और कैटोलोनिया और वेलेन्सिया घेर लिये। १७०६ ई० में गालवे की अध्यक्षता में पुर्तगाल से चलकर मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं ने मैड्रिड पर अधिकार कर लिया और पूरब से बढ़कर पीटरबरो भी गालवे से मिल गया। एक वर्ष बाद मैड्रिड ख़ाली करना पड़ा और दोनों सेनाएँ वेलेन्सिया की ओर हट गयीं। यह वर्ष लुई चतुर्दश के लिए इतना विघातक सिद्ध हुआ कि उसने सन्धि का प्रस्ताव किया परन्तु उसे मित्र-राष्ट्रों ने न मानी।

अँगरेजों की विजय (१७०८ ई०)—१७०८ ई० में मित्र राष्ट्रों को पीछे

हटना पड़ा। यूजेन फ्रान्स पर आक्रमण करने में असफल रहा। नीदरलैंड में भी मार्लबरा कुछ न कर सका। स्पेन में गालवे की ओर भी बुरी तरह हार हुई। आलमाञ्ञा के युद्ध में पुर्तगाली सेना भाग गयी और अँगरेजी सेना को अपने से तीन गुनी सेना का मुकाबला करना पड़ा। अगले वर्ष (१७०६ ई०) मार्लबरा ने ऊदेनार्द पर फिर विजय प्राप्त की, जिससे नीदरलैंड पर उसका पूर्ण अधिकार होगया और फ्रान्स के सीमान्त दुर्गों में सबसे महत्व दुर्ग लील उसके हाथ में आ गया। इसके बाद अँगरेजों ने मिनारका जा घेरा और इसी प्रकार उनको भूमध्यसागर में एक ऐसा अच्छा बन्दरगाह मिल गया जहाँ जाड़ों में अँगरेजी बेड़ा सुरक्षित रह सकता था। फ़र्थ आव फोर्थ से होकर एडिनबरा पर आक्रमण करने का फ्रान्सीसी प्रयत्न तूफान के कारण असफल रहा। लुई ने फिर सन्धि का प्रस्ताव किया और अबकी बार वह केवल फिलिप के लिए केवल नेपिल्स और सिसली सुरक्षित रखने पर सन्तुष्ट हो गया। मित्र-राष्ट्रों की जिद् थी कि आवश्यकता होने पर वह फिलिप को स्पेन से निकालने में युद्ध के लिए ससैन्य सहायता करे। ऐसे प्रस्ताव ने राजा लुई को ही नहीं बल्कि फ्रान्सीसी राष्ट्र को भी उत्तेजित कर दिया और इसका फल यह हुआ कि १७०६ ई० में मार्लप्लाके की यड़ाई हुई जिसमें बहुत सी सेना कटाकर विजय प्राप्त हुई। इसी लड़ाई में उसने मौन्स पर अधिकार प्राप्त कर लिया।

फ्रान्स पर विजयी होना (१७१०-१३ ई०)—अँगरेजों की लगातार विजयों की शृंखला मार्लप्लाके की लड़ाई के बाद टूट गयी। अब फ्रान्स में नया उत्साह जाग्रत हुआ। मित्रराष्ट्र शिथिल पड़ गये। ब्रिटेन में शान्तिप्रिय टोरी मन्त्रिमंडल आ गया। इस मन्त्रिमडल ने १७११ ई० में मार्लबरा को पदच्युत कर दिया और उसके उत्तराधिकारी सेनापति औरमंड को यह आदेश दिया कि वह किसी युद्ध में अपनी ओर से आक्रमण न करे, परन्तु उससे कहा गया कि वह इस भेद को मित्र राष्ट्रों से गुप्त रक्खे। औरमंड ने यह आज्ञा पालन की और अपनी सेनाओं को ऐसे समय युद्धक्षेत्र से हटा लिया जब फ्रान्सीसियों को सहज ही में बड़ी करारी हार होने वाली थी। इस कारवाई से सारी सेना निरुत्साह हो गयी और सारे सैनिक औरमंड को भीरु तथा मन्त्रिमंडल का कठपुतला कहने लगे। कहा जाता है कि बहुत से सैनिक तो कई कई दिन तक लज्जा और ग्लानि के कारण अपने सिपाहियों को मुँह दिखाने से झिझकते रहे। स्पेन में मैड्रिक पर कुछ दिन अधिकार बना रहने पर भी मित्र राष्ट्र १७१० ई० में दो युद्धों में परास्त हुए और अगले वर्ष आर्कड्यूक चार्ल्स के सम्राट निर्वाचित हो जाने और आस्ट्रियन प्रदेशों पर उसके अधिकार प्राप्त कर लेने के कारण सारी परिस्थिति ही बदल गयी।

उतरेख्त और रास्टाट की सन्धियाँ (१७१३ ई०)—१७११ ई० में आर्कड्यूक चार्ल्स समस्त आस्ट्रियन राज्य का अधिकारी हो गया। इसलिए केवल स्पेन के राज्य पर ही उसका अधिकार हो, इस उद्देश्य से ग्रेट ब्रिटेन का युद्ध जारी रखना

निरर्थक था। किन्तु कठिनाई यह थी कि मित्र राष्ट्रों में डच और आस्ट्रियन सन्धि के लिए सहमत न थे। ऐसी परिस्थिति में बोलिंगब्रुक जिसने फ्रान्स के साथ पहले ही मे सन्धि की बातचीत करना आरम्भ कर दिया था, कर ही क्या सकता था। इसलिए १७१३ ई० में उतरेख्त पर फ्रान्स, स्पेन हालैण्ड और इंग्लैण्ड के बीच और अगले

पश्चिमी यूरोप और उतरेख्त और रास्टाट की सन्धियाँ १७१३-१४ ई०
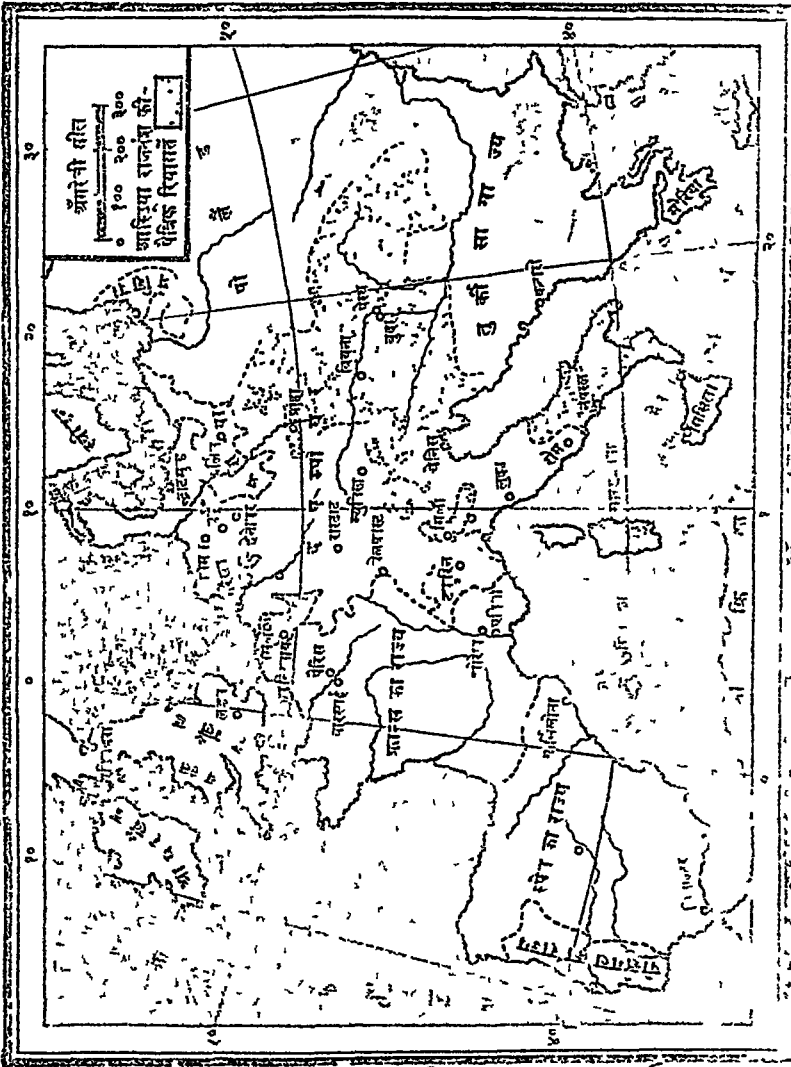
वर्ष रास्टाट पर फ्रान्स और आस्ट्रिया में सन्धियाँ हुई। स्पेन और नयी दुनिया फिलिप के अधिकार में रहे, किन्तु फ्रान्स के सिंहासन का अधिकार उसे छोड़ना पड़ा। सम्राट चार्ल्स को इटली और नीदरलैंड के स्पेन प्रदेश मिल गये। सीमान्त दुर्गों में डच सेना का अधिकार हो गया। ग्रेट ब्रिटेन में प्रोटेस्टेन्ट उत्तराधिकार स्वीकार कर लिया गया। ब्रिटेन को फ्रान्स से न्यूफाउंडलैंड और नोवास्कोशिया तथा स्पेन से जिब्राल्टर

और मिनारका मिल गये। इन स्थानों पर अधिकार हो जाने से इंग्लैंड के हाथ में भूमध्यसागर की कुंजी आ गयी जो युरोप की राजनीतिक शतरंज का केन्द्र है। स्पेन ने ग्रेट ब्रिटेन को स्पेन-अधिकृत अमेरका की रियासतों में गुलामों के व्यापार का एकाधिकार तथा स्पेनी पोर्टो बैलो में हर साल एक जहाज भेजने की आज्ञा दे दी।

इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन को इस युद्ध से अपने सभी लक्ष्य प्राप्त हो गये। साथ ही उसके साम्राज्य में कई बड़े महत्वपूर्ण प्रदेश शामिल हो गये। इस प्रकार स्पेन के आरमेडा के विनाश से यदि इंग्लैंड ने औपनिवेश विस्तार के क्षेत्र में प्रवेश किया तो उतरेख्त की सन्धि में उसे बहुत बड़ा साम्राज्य प्राप्त हो गया। साथ ही शान्ति स्थापना के समय सन्धि की जो शर्तें की गयीं उनमें इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखा गया कि जहाँ फ्रान्स की महत्वाकांक्षाओं का अवरोध हो वहाँ उसके साथ ऐसी कठोरता का भी व्यवहार न किया जाय जिससे उस देश को अगले युद्ध में बदला चुका लेने की कामना बनी रहे। परन्तु अँगरेजों के लिए यह नितान्त लज्जा की बात हुई कि उन्होंने कैटेलोनिया के लोगों को, जो मित्र राष्ट्रों के साथ बड़ी दृढ़ता और वीरता से लड़े थे, फ़िलिप की क्रोधाग्नि का निशाना बनने के लिए छोड़ दिया।

---

## अध्याय १०

# इंग्लैंड की आन्तरिक परिस्थिति

### ( १६८६ से १७१४ ई० )

### § १—विलियम और मेरी

**पार्लियामेन्ट का आर्थिक नियन्त्रण**—इंग्लैंड की वैदेशिक राजनीति का और अधिक उल्लेख करने के पूर्व यह बहुत आवश्यक है कि अब हम उस देश में होने वाली घटनाओं के साथ वहाँ की आन्तरिक स्थिति पर ध्यान दें। इसमें कोई शक नहीं है कि सन् १६८८ की क्रान्ति का इंग्लैंड की गृहनीति और वैदेशिक नीति दोनों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। अँगरेज़ी शासन-व्यवस्था पर क्रान्ति का सब से बड़ा प्रभाव यह हुआ कि उसके बाद से राज्य कर का अधिकांश पार्लियामेन्ट की स्वीकृति से ही मिलने लगा। इसलिए पार्लियामेन्ट प्रति वर्ष बैठती थी। इसके परिणाम स्वरूप अर्थनीति पर पार्लियामेन्ट का पूरा अधिकार हो गया। इससे राज्य की शासन व्यवस्था में भी उसका अधिकार बढ़ गया। धीरे धीरे दोनों हाउसों के सम्बन्ध में भी अब बहुत परिवर्तन हो गया था। १४०७ ई० में हाउस ऑव कामन्स को धीरे-धीरे यह अधिकार प्राप्त था कि वह सर्व साधारण से प्राप्त धन ख़र्च के लिए पेश होने वाले बिलों पर स्वीकृति दे और टैक्स लगाने के लिए पेश किये हुए बिलों पर विचार

कर अपनी अनुमति प्रदान करे। यहाँ तक कि चार्ल्स द्वितीय के समय में इतने हाउस ऑव लार्ड्स को ऐसे बिलों में सुधार करने के अधिकार से भी वंचित कर दिया। इसलिए अब लोअर हाउस ही अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। फिर भी अपर हाउस के कुछ सदस्यों का व्यक्तिगत प्रभाव अब भी बहुत अधिक था।

**अधिकारों का बिल ( १६८६ ई० )**—१६८८ की क्रान्ति के बाद दो ऐक्ट पास किये गये जिनके द्वारा राज्य की शक्ति बहुत कुछ परिमित हो गयी। एक विलियम और मेरी के शासन के आरम्भ में और दूसरा विलियम के राज्य के अन्त में। अधिकारों के बिल ( बिल ऑव राइट्स ) ने मेगना कार्टा के रूप में प्रारम्भ हुए राजनीतिक कार्य को पूरा कर दिया। उसके अनुसार विलियम और मेरी को इंग्लैण्ड का राजा-रानी घोषित किया गया और राज्य का उत्तराधिकार उनकी सन्तान को अथवा सन्तान न होने पर जेम्स की दूसरी पुत्री एन को देना निश्चय हुआ। इसके साथ एक बात और तय हुई कि कोई रोमन, कैथलिक अथवा किसी रोमन कैथलिक से विवाह करने वाला व्यक्ति सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकेगा। दूसरी बात यह निश्चित हुई कि राज्य के नियम स्थगित करने अथवा उन के अतिक्रमण करने और कोर्ट ऑव हाई कमीशन आदि जैसे कोर्ट स्थापित करने के अधिकार अनियमित करार दे किये गये। तीसरी बात यह तय हुई कि पार्लियामेन्ट का निर्वाचन स्वतन्त्र रूप से होने लगे बल्कि पार्लियामेन्ट के प्रत्येक सदस्य को बोलने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो और उसका अधिवेशन नियमित रूप से और निरन्तर होने लगे तथा उसकी सम्मति के बिना कोई कर न लगाया जा सके। चौथी बात यह निश्चित हुई कि स्थायी सेना रखना अवैध ठहराया गया। अधिकार बिल की यह शर्त अभी तक बनी हुई है और वर्ष पार्लियामेन्ट में वार्षिक सैनिक ऐक्ट पास करके उसे वैधानिक रूप दे दिया जाता है। अब हर वर्ष पार्लियामेन्ट की बैठक अनिवार्य होने का यह भी एक कारण हो गया है।

**१७०१ ई० का उत्तराधिकार-निर्णायक ऐक्ट**—१७०१ ई० में सबसे पहला प्रश्न उत्तराधिकार का उठा; क्योंकि विलियम और मेरी के कोई सन्तान न थी और एन के सभी बच्चों की मृत्यु हो चुकी थी। स्टुअर्ट वंश के दो ही प्रोटेस्टेन्ट प्रतिनिधि राज्याधिकार के उपयुक्त हो सकते थे—जेम्स प्रथम की पौत्री और हनोवर के एलेक्टर की पत्नी। यही दोनों राज्य की निकटतम अधिकारिणी थी। इसलिए उत्तराधिकार-निर्णायक ऐक्ट द्वारा यह निश्चित हुआ कि राजमुकुट राजकुमारी सोफिया या उससे उत्पन्न हुए बालकों को दिया जाय। इस ऐक्ट के कुछ अन्य विधान इसलिए रखे गये थे कि राजा विलियम लोकप्रिय न था और उसकी वैदेशिक नीति इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों के लिए ईर्षा का कारण थी। इन विधानों में से एक यह था कि राजा को पार्लियामेन्ट की अनुमति के बिना राज्य छोड़ने का अधिकार न था और विलियम के अधिकार की विदेशी रियासत के लिए इंग्लैन्ड युद्ध करने के लिए बाध्य न था। किन्तु यह दोनों बन्धन शीघ्र ही हटा दिये गये। फिर भी

इंग्लैण्ड की राजनीति के विकास में यह दोनों प्रतिबन्ध स्थायी महत्त्व रखते हैं। इस ऐक्ट ने राजा का एक और महत्वपूर्ण अधिकार हस्तगत कर लिया। अब से राजा को किसी जज के पदच्युत करने का अधिकार न रहा। न्यायालय में अभियोगी सिद्ध होने पर अथवा पार्लियामेन्ट की दोनों सभाओं के प्रस्ताव द्वारा ही जज पदच्युत किये जा सकते हैं। इसी प्रकार कामन्स सभा द्वारा अभियोगी ठहराये जाने पर राजा से प्राप्त क्षमा का न्याय की दृष्टि से कोई मूल्य न रह गया। इस प्रतिबन्ध से यह स्पष्ट हो गया कि राज्य के प्रत्येक कार्य के लिए राजमन्त्री ही उत्तरदायी ठहराये जायँगे।

**जनमत और प्रेस की स्वतन्त्रता ( १६६५ ई० )**—विलियम के शासन काल तक तो कम से कम मन्त्रियों के निर्वाचन और गृह-नीति और वैदेशिक नीति के नियन्त्रण में राजा ही का हाथ था; फिर भी क्रान्ति का यह परिणाम अवश्य हुआ कि प्रत्येक अँगरेज को राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल गयी और उसके प्रतिनिधि स्वरूप अँगरेजी पार्लियामेन्ट को राज्य-कर और नियम बनाने की व्यवस्था का पूरा अधिकार प्राप्त हो गया। राजा तो अब विशेष नियम-विधान का प्रतिषेध भर कर सकता था। अन्य दो बातों में भी इस परिवर्तन का प्रभाव महत्वपूर्ण था। चार्ल्स २य के शासन तक लंडन, यार्क और आक्सफर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों में ही छपाई होती थी और किसी नयी किताब के पूर्व उसकी जाँच होकर लाइसेन्स दिया जाता था। इस प्रकार 'लाइसेन्सिग ( अनुज्ञा ) ऐक्ट' द्वारा प्रकाशन पर बड़ा कड़ा नियन्त्रण था। १६६५ ई० में कामन्स सभा ने निश्चय किया कि इस ऐक्ट को जारी न किया जाय। इस प्रकार प्रेस की स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गयी। इसके लिए ५७ वर्ष पहले मिल्टन ने बड़ा प्रयत्न किया था। फिर भी अभी अपवाद विषयक नियम इतने कड़े थे और अख़बार भेजने का डाक महसूल इतना अधिक था कि इस स्वतन्त्रता से पूरा-पूरा लाभ न उठाया जा सके।

**१६८९ ई० का सहिष्णुता ऐक्ट**—फिर धार्मिक नियन्त्रण की कठोरता भी कम करने का प्रयत्न किया गया। सहिष्णुता ऐक्ट द्वारा सर्व साधारण की प्रार्थना-पुस्तकों के ३९ नियमों में से ३६ का पालन करने वालों को धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी गयी। केवल रोमन कैथलिक और यूनिटेरियन इससे वंचित रहे। और नॉनकनफ़र्मिस्ट तो अब भी चार्ल्स २य के जमाने के 'टेस्ट' और 'कारपोरेशन ऐक्टों के कारण किसी सरकारी पद मिलने से वंचित थे। फिर भी उस समय से सहिष्णुता की भावना बढ़ती रही और सहिष्णुता ऐक्ट से बहुत कुछ उन्नति हुई; यहाँ तक कि हनोवर वंश के राज्यारोहण के बाद नॉनकनफ़र्मिस्टों को इस दंड से मुक्त करने के लिए प्रति वर्ष एक ऐक्ट पास होता था। नॉनकनफ़र्मिस्टों के साथ इतनी सहिष्णुता होने पर भी रोमन कैथलिकों के विरुद्ध कई नियम जारी रहे। १६९९ ई० के एक विधान में तय हुआ कि 'मास' पढ़ाने वाले पादरियों को आजन्म कारावास दिया जाय। इसके अनुसार ऐटकिन्सन नाम के एक पादरी को उसकी नौकरानी के शिकायत पर ३० वर्ष

तक हर्स्ट कासिल में क़ैद रखा गया। इन कठोर नियमों का राज्य की ओर से पालन कम होता था और रोमन कैथलिक प्रायः बिना रोक टोक के पूजा-प्रार्थना करते थे। यह सब होते हुए भी सब पन्थ वालों को जिनमें रोमन कैथलिक भी शामिल थे, १९ वीं शती तक धार्मिक स्वतन्त्रता न मिल सकी।

विलियम और मेरी के प्रति राजभक्ति का अभाव—विलियम और मेरी ने आसानी से आशा से अधिक अपनी स्थिति दृढ़ कर ली। किलीक्रकली के युद्ध में डंडी की मृत्यु हुई और बोइन के युद्ध के बाद जेम्स फ्रान्स भाग गया। इन घटनाओं के परिणाम स्वरूप स्कॉटलैंड और आयरलैंड इंग्लैंड के अधीन हो गये। ख़ास इंग्लैंड में तो राजा का बहुत कम विरोध था। केवल एक आर्कबिशप, चार बिशप और ४०० पादरियों ने विलियम और मेरी की प्रजा होने की शपथ लेने से इनकार किया। ( इन्हें नान जूरर्स कहते हैं ) इसीलिए इन्हें गिरजों की धार्मिक सम्पत्तियों से वंचित होना पड़ा। अधिक विरोध न होने पर भी, नवीन शासकों के प्रति प्रजा में राजभक्ति अधिक न थी। राजनीतिज्ञ और सेनानायक दोनों को राजा पर श्रद्धा न थी। पाँच वर्ष तक प्रधान मन्त्री रहने वाला ( लॉ होग युद्ध का विजेता ) जनरल मार्लबरा और उच्च पदाधिकारी होते हुए भी रसिल जेम्स से गुप्त मन्त्रणा करते रहे। पार्लियामेन्ट भी प्रायः उसके अनुकूल न रहती थी और एक बार तो विलियम की हत्या का षडयन्त्र भी रच डाला गया था; परन्तु उसका भेद खुल गया और राजा साफ बच गया।

विलियम और मेरी का चरित्र—इस आन्दोलन से प्राप्त हुए लाभों के लिए अँगरेजों को अवश्य कृतज्ञता का अनुभव करना चाहिए; किन्तु विलियम और मेरी के प्रति अश्रद्धा में आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। राजा विलियम को केवल वैदेशिक राजनीति में बड़ी अभिरुचि थी। उसके लिए इंग्लैंड और फ्रान्स का युद्ध एक मात्र प्रसंग ही था। उसी समय के एक व्यक्ति का कहना है कि, इंग्लैंड तो उसे फ्रान्स के मार्ग में मिल गया था।" विलियम की व्यक्तिगत भावनाएँ भी उसे लोकप्रिय बनाने वाली न थीं। वह कैलविनिष्ट मत का था, इसलिए चर्च ऑव इंग्लैंड के सशक्त हाई चर्च दल के अविश्वास का पात्र बना रहा। राजनीति में वह तटस्थ रहता था। यद्यपि १६६५ ई० में युद्ध के प्रति टोरी विरोध ने उसे कुछ समय के लिए ह्विग मन्त्रिमंडल ( ह्विग जन्टो ) पर आश्रित रहने के लिए बाध्य कर दिया था, किन्तु अपने शासन के अधिकांश ज़माने में वह राजनीतिक पार्टियों की उपेक्षा कर दोनों पक्षों में बिना पक्षपात के निर्वाचित मन्त्रिमंडल द्वारा शासन करने का प्रयत्न करता रहा। इसलिए भी उसे किसी पक्ष की पूर्ण सहायता न मिल सकी। फिर विलियम के व्यक्तित्व में भी कोई आकर्षण न था। उसके क्षीणकाय, छोटे कद में केवल आँखें ही प्रकाशमान थीं। उसका व्यवहार कठोर और प्रकृति अनाकर्षक थी। इसलिए वह लोगों के साथ बहुत मेलजोल और दोस्ती पसन्द न करता था। जो थोड़े से मित्र थे वे सब डच थे। अस्वस्थ होने के कारण वह क्रोधी और चिड़चिड़े मिजाज का हो गया था। इस प्रकार

विलियम में कोई ऐसे गुण न थे जो अँगरेज़ प्रजा के लिए आकर्षक होते। ऐसी परिस्थिति में शत्रुओं के साथ उसका सद्व्यवहार, कठिनाइयों के समय उसकी शान्ति और धीरज रखने की प्रकृति और लोक कार्यों में उसके अध्यवसाय के साथ उसकी प्रजा कोई न्याय न कर सकी। इसके विपरीत रानी मेरी बहुत विनम्र, दयालु और उदार थी। १६६४ ई० में मेरी की मृत्यु से विलियम की इस नाज़ुक स्थिति को और भी चोट पहुँची और उसके बाद उसकी लोकप्रियता दिन प्रति दिन कम होती गयी।

विलियम का विरोध—१६६७ ई० में फ्रान्स के युद्ध समाप्त हो जाने पर विलियम की नीति के प्रति विरोध बढ चला। टोरी पार्लियामेन्ट ने इस बात का घोर विरोध किया कि आयरलैंड में राजा ने अपने उच्च कृपापात्रों को इतनी अधिक भूमि दे दी थी। फिर विलियम की स्थायी सेना भी इस विरोध के बढ़ाने का कुछ कम कारण न थी। इसलिए पार्लियामेन्ट ने सशस्त्र स्थायी सेना को कम करके ७ हजार कर देने का हठ किया। पार्लियामेन्ट विलियम की वैदेशिक नीति से भी सन्तुष्ट न थी इसलिए उत्तराधिकार के ऐक्ट में ये विधान रख दिये गये कि राजा बिना पार्लियामेन्ट की आज्ञा के देश से बाहर नहीं जा सकेगा और इंग्लैण्ड के लिए यह आवश्यक न होगा कि वह राजा की विदेशी रियासत के लिए लड़ाई करे। विलियम इस विरोध से इतना क्षुब्ध हो उठा कि उसने राज्य त्याग करने का विचार किया और इस आशय की एक घोषणा भी तैयार कर ली। वास्तव में अँगरेज़ वैदेशिक राजनीति की चालों से अनभिज्ञ थे और उन्होंने विलियम के कार्य के उस महत्व का अनुभव नहीं किया था जो उसने इंग्लैण्ड के ही लिए नहीं बल्कि सारे युरोप के लिए किया था। विलियम को उसकी मृत्यु के समय केवल यह सन्तोष था कि अँगरेज राष्ट्र स्पेन के उत्तराधिकार के युद्ध में उसकी पूरी सहायता कर रहा है।

आर्थिक स्थिति की विशेषताएँ—विलियम और मेरी के शासनकाल में राष्ट्रीय अर्थ नीति में दो विशेष महत्व की बातें हुईं। सब से पहली विशेषता है राष्ट्रीय ऋण जिसका प्रारम्भ १६६३ ई० में हुआ और जो चार वर्ष के भीतर (१६६७ ई०) में दो करोड़ पौंड और अगले १५ वर्ष (१७१३ ई०) में बढ़ कर ७ करोड़ ८० लाख पौंड तक पहुँच गया। यही ऋण अगले सौ वर्ष में अर्थात् १८१५ ई० तक, ८४ करोड़ पौंड तक बढ़ गया। दूसरी महत्व घटना हुई बैंक ऑव इंग्लैण्ड की स्थापना, जो १६६४ ई० बनी, और जिसने आने वाली शती में इंग्लैण्ड की व्यापारी और सामाजिक विकास की नींव जमा दी। सन् १६६५ ई० में एक और महत्वपूर्ण बात यह थी कि सारे देश के पुराने घिसे हुए सिक्के जिनके किनारे प्रायः कट जाते थे, खज़ाने में माँग लिये गये और उनके स्थान पर नये खड़े किनारों के ऐसे सिक्के चलाये गये जिन्हें भविष्य में काटना असम्भव हो गया।

———

## § २—रानी एन का राज्य ( १७०२-१४ ई० )

१७०२ ई० में विलियम की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार बिल के अनुसार राजकुमारी एन राज्य-सिंहासन पर बैठी। उसके शासनकाल में होने वाले स्पेन के उत्तराधिकार के युद्ध का वर्णन हो चुका है। स्काटलैण्ड के साथ इंग्लैण्ड का मेल १७०७ ई० में उसके राज्य की सबसे महत्वपूर्ण घटना हुई।

**ह्विग और टोरी दल**—उस समय की गृहनीति में दो विशेष बातें उल्लेखनीय हैं। एक तो राजनीतिक दलों के विरोध की भीषणता और दूसरी है राजनीति और साहित्य का घनिष्ट सम्बन्ध। एन के शासन के अन्त की ओर तो यह फूट भिन्न-भिन्न दलों की महिलाओं तक फैल गयी थी। ह्विग और टोरी दोनों महान दल चार्ल्स द्वितीय के समय पास हुए बहिष्कार बिल के परिणाम थे। एन के शासन में उनका विरोध निश्चित रूप धारण कर चुका था। ह्विग दल सहिष्णुता नीति के पक्ष में था और टोरी दल चर्च ऑव इंग्लैण्ड का पक्का पक्षपाती था। उसे तो इस बात में भी कम असन्तोष न था कि सहिष्णुता विधान के अनुसार डिसेन्टरों की स्वतन्त्रता दी जाय। इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप ह्विग विकसित वैधानिक शासन के पक्ष में थे, और टोरी अभी राजा के दैवी अधिकार और उसकी प्रजा के निस्संशय प्रतिपालन में विश्वास करते थे। ह्विग स्पेन के उत्तराधिकार-युद्ध के समर्थक थे। टोरी शुरू में तो यह चाहते थे कि युद्ध केवल समुद्र पर ही लड़ा जाय, परन्तु अन्त में उसके विरुद्ध हो गये। ह्विग रानी एन की मृत्यु हो जाने पर हनोवर की राजकुमारी सोफियाँ तथा उसके पुत्र जार्ज के उत्तराधिकार के पक्ष में थे, परन्तु बहुत से टोरी जेम्स द्वितीय के पुत्र के तरफ़दार थे।

**राजनीति और साहित्य**—एन के शासन की एक और विशेषता है राजनीति और साहित्य के निकट सम्बन्ध मे। उन दिनों पार्लियामेन्ट के भाषणों का प्रकाशन वर्जित था और जनसाधारण की सभाएँ करने का युग आरम्भ न हुआ था। किन्तु देश की समस्याओं के प्रति जागृत हुई अभिरुचि और पार्लियामेन्ट के बढते हुए महत्व ने दोनों विरोधी दलों के लिए यह भी आवश्यक बना दिया था कि वे राष्ट्र पर अपना-अपना प्रभाव डालें। यह कार्य पत्रों और विज्ञापनों द्वारा होने लगा और उस समय के बड़े-बड़े योग्य साहित्यिक इसमें भाग लेने लगे। ह्विग दल का एडिसन, जो स्पेक्टेटर का सम्पादक था सेक्रेटरी ऑव स्टेट हो गया, यद्यपि उसने कभी हाउस ऑव कामन्स में अपना मुँह नहीं खोला। इसी प्रकार टोरी दल का पादरी स्विफ्ट राजनीतिक महत्व के विज्ञापन लिखता था जिनका देश पर बड़ा प्रभाव था। एन के राज्य के अन्त में टोरी दल के शक्तिसम्पन्न होने पर वह नीति विधान में सहायता करने के लिए हर सप्ताह गवर्नमेन्ट के दो नेताओं के साथ इसलिए भोजन किया करता था कि उस समय बातचीत में राज्य की नीति निर्धारण में वह भी सहयोग दे सके।

**गुडोल्फिन मन्त्रि-मंडल और उसके पतन के कारण**—( १७०१-१७१० ई० ) एन के शासन-काल में दो मन्त्रि-मंडल बने। एक गुडोल्फिन के नेतृत्व

में जो मार्लबरा से मिला हुआ था और दूसरा टोरी मन्त्रि-मंडल जिसके विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। गुडोल्फिन कुशल नीतिज्ञ था जो न कभी किसी के काम में अड़ंगा और न कभी अपने काम में गाफिल रहता था, यद्यपि उसके व्यक्तित्व का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पहले तो दोनों दलों से गवर्नमेन्ट के सदस्य लिए जाते थे किन्तु टोरी दल के बढ़ते हुए युद्ध विरोध के कारण मन्त्रिमडल में धीरे धीरे ह्विग दल का प्रभुत्व हो गया। गुडोल्फिन का मन्त्रिमंडल इंग्लैंड के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। इसी के शासनकाल में मार्लबरा और पीटरबरा के कारनामे प्रसिद्ध हुए और जिब्राल्टर और मिनारका पर इंग्लैंड का अधिकार तथा स्काटलैण्ड के साथ एकता जैसी महान् घटनाएँ घटीं।

१७१० ई० में गुडोल्फिन मन्त्रिमंडल का अकस्मात अन्त हो गया इसके कई कारण थे। युद्ध जारी रखने की नीति लोकप्रिय न रह गयी थी और इस पर ज़ोर दिया जा रहा था कि ग्रेट ब्रिटेन को लुई चतुर्दश का सन् १७०६ और फिर १७०६ ई० का सन्धि प्रस्ताव स्वीकृत कर लेना चाहिए था दूसरे मार्लबरा अँगरेज़ी सेना का आजीवन केप्टेन जनरल बनने की 'आकांक्षा रखता था। इससे अँगरेज़ों को यह भय हुआ कि वह दूसरा क्रामवेल बनना चाहता है। यद्यपि ह्विग मन्त्रिमंडल ने इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया था, किन्तु फिर भी वह लोकप्रिय न रह सका।

रानी एन से विरोध—आगे चल कर रानी एन का भी मन्त्रिमंडल से विरोध हो गया। यद्यपि एन कुछ अधिक प्रतिभावाली न थी और न शासन व्यवस्था में ही उसका अधिक प्रभाव था, किन्तु वह अपनी दयालुता के कारण प्रजा के सभी वर्ग में बहुत लोकप्रिय थी। रानी एन अपने आपको पूर्ण अँगरेज़ कहा करती थी। उसे न तो साहित्य से ही प्रेम था न संगीत से। शिकार का उसे बड़ा शौक था और वह खुद अपनी गाड़ी हाँक लेती थी। वह ह्विग मन्त्रिमंडल से भी सन्तुष्ट नहीं थी और ह्विग को अपने पति पर अभियोग लगाने के लिए क्षमा नहीं कर सकी थी। उसके पति की मृत्यु के बाद दूसरा पति कर लेने के लिए उनके प्रस्ताव ने उसे और भी क्रुद्ध कर दिया था। फिर रानी पर महिलाओं का प्रभाव अधिक था। कुछ समय तक डचेज ऑव मार्लबरा का बहुत प्रभाव रहा। वह बहुत मनचली, रोबीली और झगड़ालू स्त्री थी। उसका मिज़ाज इतना चिड़चिड़ा था कि वह अपने दामाद से भी लड़ गयी, यहाँ तक कि अपनी पौत्री से नाराज हो जाने के कारण उसने उसके चित्र को काला कर डाला और नीचे लिख दिया कि उसका अन्तरंग और भी काला है। इसी प्रकार एक बार वह अपने डाक्टर से भी भिड़ गयी। १७०८ ई० में उसका रानी से झगड़ा हो गया। उसके बाद श्रीमती मैशम रानी की कृपापात्री हो गयी। यह परिवर्तन गुडोल्फिन मन्त्रिमंडल के लिए अमंगल सूचक था क्योंकि मैशम टोरी विचारों की थी।

सेकवेरेल पर अभियोग—एन चर्च ऑव इंग्लैंड की दृढ समर्थक थी। इसलिए चर्च खतरे में है इस आशंका के उठ खड़े होने से ह्विग मन्त्रिमंडल का

पतन और भी निश्चित हो गया। डाक्टर सेकवेरेल ने, जो बड़ा सुन्दर भाषण देता था, लार्ड मेयर के सामने एक धर्मोपदेश दिया जिसमे उसने इस बात का समर्थन किया कि चर्च के विभक्त हो जाने का भय है। उसने मन्त्रियों पर आक्षेप करते हुए गुडोलिफन का मजाक उड़ाया और मन्त्रिमंडल के निष्क्रिय आज्ञापालन का समर्थन किया। गवर्नमेन्ट ने डाक्टर पर अभियोग लगाकर बड़ी भूल की। इससे लोगों में बड़ी उत्तेजना फैली। जब रानी उसका मुकदमा सुनने वेस्टमिन्स्टर हाल की ओर जा रही थी तो लोगों ने नारा लगाया कि "सम्राज्ञी चर्च और डाक्टर सेकवेरेल का समर्थन करें।" इस प्रकार से कवेरेल लोकप्रिय नेता हो गया और उसे बहुत साधारण सा दंड देकर छोड़ देना पड़ा। जब वह श्रोपशायर को गया तो लोगों ने रास्ते में उसका खूब अभिवादन सत्कार किया।

यह मुकद्दमा इसलिए और भी महत्वपूर्ण है कि इसी राजनीतिक आन्दोलन मे सबसे पहली बार इंग्लैंड की स्त्रियों ने भाग लिया। मार्लबरा की डचेज इसमें अवश्य शामिल नहीं हुई। रानी की आज्ञा से ह्विग मन्त्री पदच्युत कर दिये गये और टोरी दल को शासन-कार्य सुपुर्द कर दिया गया। पार्लियामेन्ट भंग कर दी गयी और नयी कामन्स सभा में टोरी दल की प्रधानता रही।

**हार्ली और सेन्ट जॉन का टोरी मन्त्रिमंडल ( १६१० १४ )**—रानी एन के शासनकाल भर टोरी मन्त्रिमंडल का प्रभुत्व रहा। हार्ली ( अर्ल ऑव आक्सफ़र्ड ) और सेन्ट जान ( वाइकाउन्ट बोलिंगब्रुक ) इनके नेता थे। हार्ली बड़ा साहसी और साहित्य-प्रेमी था। ब्रिटिश म्युजियम में सुरक्षित उसका हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह अमूल्य है। राजनीति में वह मध्यम मार्ग का था। इसलिए उसके निर्णय और उसकी व्यवहारिक नीति बहुत कुछ शिथिल मालूम होती थी। इसलिए उसके टोरी सहकारियों को यह भ्रम हो जाता था कि वह उसका पूर्णतः साथ नहीं देता; क्योंकि अपनी नीति के अनुसार उसे अपने विरोधियों से सलाह मसविरा कर लेने में कोई संकोच न होता था। इसलिए उसे उस समय की राजनीति की आँख में तिल के समान समझा जाता है। कहा जाता है कि बोलिंगब्रुक बड़ा कुशल धूर्त था। उसके कौशल में किसी को भी सन्देह नहीं था। स्विफ्ट और पोप जैसे साहित्यकों से लेकर पिट जैसे राजनीतिज्ञ ने भी उसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। उसकी शैली को इतिहासकार गिबन ने आदर्श बताया और उसके राजनीतिक विचारों का प्रभाव डिजरायली जैसे नीतिज्ञों पर पड़ा। उसकी कूटनीति न तो इतनी निस्वार्थ थी जितनी कि वह प्रदर्शित करता था और न ही इतनी सच्ची और उदार जैसी कि वह जाहिर होती थी। बोलिंगब्रुक बड़े उग्र स्वभाव का था और दलबन्दी का पक्का था। वह शीघ्र ही टोरी पार्टी में सर्व-प्रिय बन गया और हार्ली उससे पिछड़ गया।

**टोरी मन्त्रिमंडल के कार्य**—टोरी मन्त्रियों ने उन्हीं लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया, जो उनके समर्थकों को सबसे अधिक प्रिय थे। १७११ ई० में 'अकेजनल

कनफार्मिटी' और १७१४ ई० में 'शिज्म ऐक्ट' नाम के दो विधान पास करके चर्च की शक्ति बढ़ाने तथा नानकनफर्मिस्टों को कमजोर करने का प्रयत्न किया। पहले ऐक्ट के द्वारा नान-कनफ़र्मिस्टों को इस चाल चलने से रोक दिया गया कि वह 'टेस्ट ऐक्ट' और 'कारपोरेशन ऐक्ट' के प्रतिबन्धों से बचने के लिए अधिकारी पद प्राप्त करने के इरादे से किसी ऐंग्लिकन गिरजे में जाकर कभी-कभी कम्युनियन लेने में शामिल हो जाते थे। दूसरे ऐक्ट द्वारा शिक्षा की व्यवस्था पर नानकनफर्मिस्टों के अधिकार पर चोट की गयी और यह नियम कर दिया गया कि बिना बिशप के प्रमाण-पत्र के कोई पढ़ा नहीं सकता था। इसी प्रकार युद्ध को जनसाधारण में निन्दित करने के लिए स्विफ्ट की विद्वत्ता का अधिक उपयोग किया गया और उससे 'मित्र राष्ट्रों की करतूतें' आदि ऐसे पैम्फलेट लिखाये कि उन्हें पढ़कर युद्ध से घृणा उत्पन्न होने लगी। मार्लबरा को भी इसीलिए एक दो वर्ष शिथिलता से युद्ध चलाकर उतरेख्त की सन्धि कर उसे १७१३ ई० में समाप्त कर देना पड़ा।

**राज्य के उत्तराधिकार का प्रश्न**—अब राज्य के उत्तराधिकार का प्रश्न आया। हनोवर वंश का इतनी शान्ति के साथ इंग्लैंड का उत्तराधिकार पा जाना इस देश के इतिहास की अभूतपूर्व घटना कही जाती है। यह घटना असम्भव नहीं किन्तु आश्चर्यजनक अवश्य थी। अधिकाश लोगों की भावनाएँ टोरी दल की समर्थक थीं और स्टुअर्ट वश के पक्ष मे थे—विशेषकर जब हनोवर वंश की राजकुमारी सोफिया और उसके पुत्र जार्ज को इंग्लैंड में कोई भी न जानता था। यह सत्य है कि उत्तराधिकार निर्णायक ऐक्ट में राजकुमारी सोफिया को राज्य का अधिकारी बनाया गया था, परन्तु रानी एन ने उसका नाम वसीयत नामे में लिख देने के बाद न तो कभी उसे इंग्लैंड में बुलाया और न उसे किसी उपाधि आदि से विभूषित किया। स्टुअर्टों के समर्थकों का मन्त्रिमंडल ने विश्वसनीय पदों पर नियुक्त किया था। इस प्रकार अर्ल ऑव मार स्काटलैंड का और ड्यूक ऑव औरमंड को (सिंकेपोर्टो) सैंडविच, डोवर, हाइथ, रीमों और हेस्टिंग्स नाम के कैन्ट और ससेक्स तट के पाँच बन्दरगाहों का अभिभावक बनाया गया था। स्टुअर्ट वंश के राज्य के सम्बन्ध में दो बाधाएँ थीं। पहली बात तो यह थी कि ओल्ड पिटेंडर रोमन कैथलिक धर्म का परित्याग करने पर तैयार न हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि टोरी दल यह निश्चय न कर सका कि वह ऐंग्लिकन चर्च के प्रति विश्वास तथा स्टुअर्ट राजवश के प्रति श्रद्धा में से किसे तरजीह दे। स्काट लोगों की भी यही कठिनाई थी। प्रोटेस्टेन्ट धर्म पर उनका अटल विश्वास होने के कारण उनके लिए यह सम्भव था कि वे किसी रोमन कैथलिक राजवश की हिमायत लें; परन्तु फिर भी स्टुअर्टवंश के प्रति उनकी इतिहास प्रसिद्ध राजभक्ति उन्हें बड़ी द्विविधा में डाले हुए थी।

दूसरे रानी एन की मृत्यु बड़ी जल्द हो गयी। टोरी नेताओं में विरोध था; और बोलिंगब्रुक ने शीघ्र ही हार्ली को पदच्युत कराके उससे मुक्ति पा ली। बोलिंग-

ब्रुक का कोई उद्देश्य निश्चित नहीं मालूम होता था। सम्भव है वह ओल्डप्रिटेंडर राजा हो जाने के लिए प्रयत्नशील रहा हो। परन्तु इस समय घटनाचक्र बड़े वेग से चल रहा था। हार्ली के मन्त्रीपद से हटने के दो दिन बाद रानी एन सख्त बीमार पड़ी। इस नयी परिस्थिति पर विचार करने के लिए एक कौन्सिल की बैठक हुई। दो ह्विग ड्यूक जो प्रिवी कौन्सिल के भी सदस्य थे अकस्मात कौन्सिल में घुस आये और जैसा कि उन्हें अधिकार था, उन्होंने भी वाद-विवाद में भाग लिया। निश्चित हुआ कि कोषाध्यक्ष का पद श्रूजबरी को, जो नरम विचारों का ह्विग था, दिया जाय। रानी एन ने मृत्यु-शय्या पर ही उसे कोष का अधिकार दे दिया और उसकी मृत्यु पर, जब कि बोलिंगब्रुक की योजनाएँ अभी विकसित न थीं, श्रूजबरी के प्रभाव से जार्ज प्रथम को राजा घोषित कर दिया गया क्योंकि राजकुमारी सोफिया की भी मृत्यु हो चुकी थी। यदि रानी छः महीने अथवा छः सप्ताह भी और जीवित रहती तो इंग्लैंड के राजवंश का इतिहास बहुत कुछ भिन्न होता।

## § ३ स्काटलैंड की परिस्थिति

**१६८९ ई० मे स्काटलैंड की अवस्था**—विलियम तृतीय के राज्यारोहण के समय स्काटलैण्ड की अवस्था शोचनीय थी। धार्मिक विरोधों ने सारे देश को विभाजित कर रक्खा था। देशव्यापी धनाभाव के साथ-साथ न तो कोई उद्योग धन्धे थे और न कोई व्यापार। फसल अच्छी न होने के कारण अकाल पड़ गया था। दक्खिनी लोलैंड (निचले प्रदेश) इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड की सीमा पर होने के कारण अराजकता के शिकार थे। उत्तरी लोलैण्डों और हाईलैंडरों के आक्रमण होते रहते थे। हर साल लगभग ५ हजार पौंड के गोरू चोरी चले जाते थे और इतना ही धन लोगों को अपने मवेशियों को चोरी से बचाने में ख़र्च हो जाता। समस्त हाईलैण्ड प्रदेश असभ्य अवस्था में थे। उनका सरदार सारी जाति का नेता तथा सबसे बड़ा अधिकारी होता था। लूटमार करना उनका व्यवसाय, उनका पराक्रम और उनका सफल व्यापार था। १७वीं शती तक देश में सभ्यता की यह अवस्था थी कि धुर उत्तर के प्रदेशों के मकानों में धुँआले नहीं होते थे। गड़ी खींचने के लिए घोड़ों की पूँछ में बाँध दी जाती थी और मोमबत्ती जलाना और आलू खाना केवल धनिकों के आनन्द के साधन थे। अस्त्रों को छोड़ कर लोहे का उपयोग कोई न जानता था।

**१६९२ ई० मे स्काटलैंड का हत्याकांड**—विलियम और मेरी तथा रानी एन के शासन काल स्काटलैण्ड के लिए समृद्धि के युग का चिन्ह है। इस जमाने में एक भीषण अत्याचार अवश्य हुआ। १६८९ में किलीक्रैंकी में लड़ाई और डंडी की मृत्यु के बाद ही युद्ध समाप्त नहीं हो गया; क्योंकि बहुत से कबीलों ने नये शासकों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। अन्त में एक घोषणा निकाली गयी जिसके अनुसार सन् १६९१ ई० के अन्तिम दिन तक राजभक्ति की शपथ लेने वालों को

क्षमा का विश्वास दिलाया गया। केवल दो सरदारों ने निश्चित तिथि तक शपथ नहीं ली। उनमें से मैकडनल्ड ने अन्तिम क्षण तक शपथ लेने को सम्मान का चिन्ह समझा और फिर गलत स्थान पर शपथ लेने गया। ज्वाइन्ट सेक्रेटरी ऑव स्टेट सर जान डेलरिम्पिल को हाई लैण्डरों से कोई सहानुभूति न थी और उसने ग्लैंको निवासियों को उनकी उद्दडता के लिए कठिन सजा देने का पक्का इरादा कर लिया था। इसलिए उनके परम्परागत शत्रु ग्लैनलियों के नेतृत्व मे सेना भेजी गयी। उन्होंने १५ दिन तक मैकडनल्ड कबीले का आतिथ्य ग्रहण किया और एक दिन उन पर एकाएक नृशसता के साथ आक्रमण कर बड़ी निर्दयता से सरदार और उसके ३७ साथियों को मार डाला (१६९२ ई०)।

परिस्थिति में उन्नति के कारण—१६८८ ई० के आन्दोलन के बाद स्कॉटलैंड की अवस्था में बड़ी तेजी से उन्नति हुई। १६९५ में स्थापित बैंक ऑव स्काटलैण्ड व्यापार की उन्नति के लिए उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुई। १७०१ ई० में 'हाईबस कोर्पस ऐक्ट' पास हुआ जिसके कारण व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा हुई। किन्तु इन सबसे अधिक स्कॉटलैंड की समृद्धि तीन अन्य बातों पर निर्भर थी। सबसे पहली बात तो यह हुई कि प्रेस्बिटेरियन धर्म, जो अधिकांश लोगों को मान्य था, १६८९ ई० में स्काटलैंड का देशव्यापी धर्म स्थापित कर दिया गया, और एपिस्कोपेलियनों के साथ जो बिशप शासन में विश्वास रखते थे, सहिष्णुता का व्यवहार होने लगा। इस प्रकार स्काटलैंड में धार्मिक विरोध का अन्त हो गया। कुछ थोड़े से उग्र मत वाले अब भी उसी पुरानी लकीर के फ़कीर बने रहे और प्रेस्बिटेरियन के विरुद्ध पास किये हुए विधानों का आश्रय माँगते रहे। १६९६ ई० में एक दूसरे ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक पैरिश में स्कूल की स्थापना हुई जिससे २०० वर्ष से स्काटलैंड में निर्विघ्न शिक्षा व्यवस्था होने से वहाँ के सर्वसाधारण की मानसिक उन्नति का धरातल बहुत ऊँचा हो गया।

स्काटलैंड और इंग्लैंड की एकता (१७०७ ई०)—फिर १७०७ ई० में इग्लैंड और स्कॉटलैंड में एक ही राज्य स्थापित हो गया। इस ऐक्य के मार्ग में अनेकों कठिनाइयाँ उपस्थित हुई। अँगरेज व्यापारी स्काटलैंड निवासियों को व्यापारी सुविधाएँ देना नहीं चाहते थे, और अँगरेज़ पादरी प्रेस्बिटेरियन धर्म को स्वीकृत करने से घबड़ाते थे। उधर स्काटलैंड को अपनी राष्ट्रीयता का अभिमान था, और वह अपने राष्ट्रीय व्यक्ति को इग्लैंड के साथ मेल करके खो देना नहीं चाहता था। धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट हो गयी थी कि दोनों राज्यों की शिथिल एकता को या तो ख़तम कर देना होगा या इस सम्बन्ध को अधिक दृढ बनाना होगा। दो स्वतन्त्र पार्लियामेन्टों की योजनाओं में भी बहुत सी उलझनें उपस्थित हो सकती थीं। फिर ख़ास कर ऐसे समय में जब रानी एन की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का प्रश्न उपस्थित था। बहुत सी मन्त्रणा के बाद आखिर दोनों राज्य एक होने का विधान पूरा हो गया। इसके अनुसार स्काटलैंड को कामन्स सभा में ४५ सदस्य और लार्ड्स सभा में १६ पियर्स

भेजने का अधिकार मिला। भूमिकर का एक चौथाई और राष्ट्रीय ऋण के लिए ४ लाख पौंड सालाना देना उसके हिस्से में आया। न्यायालय स्काटलैंड के अपने रहे और एक नये विधान (ऐक्ट) द्वारा प्रेस्बिटेरियन धर्म सारे देश का राजधर्म स्थापित हुआ। स्कॉटलैण्ड और इंग्लैण्ड में स्वतन्त्र व्यापार होने लगा और स्कॉटलैण्ड को उपनिवेशों में भी व्यापार करने का अधिकार मिल गया। इस प्रकार स्कॉटलैण्ड को अपने उद्योग-धन्धों में उन्नति करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ जिससे स्कॉटलैण्ड के नगरों की बड़ी उन्नति होने लगी। ग्लासगो की तो आश्चर्यपूर्ण उन्नति हुई। स्कॉट-लैण्ड के जहाज़ और वहाँ के कारख़ानों में बना माल इंग्लैण्ड का मुकाबला करने लगे। ब्रिटिश साम्राज्य के व्यापार-विकास और समृद्धि में स्कॉटों का जो बहुत बड़ा हिस्सा है उसका श्रेय किसी से छिपा नहीं है।

फिर भी कुछ समय तक दोनों राज्यों का एक होना लोकप्रिय न हो सका। सन् १७१५ और १७४५ ई० के विप्लवों के समय स्कॉटलैण्ड मे जनता की पुकार इस एकता में भंग करने के लिए थी। इंग्लैण्ड में स्कॉट लोग बहुत समय तक सर्व-साधारण की दृष्टि में अप्रिय बने रहे। यहाँ तक कि जार्ज तृतीय के शासन काल में प्रधान मन्त्री ब्यूट इसलिए लोकप्रिय न था कि उसके पुरखे स्कॉट वंश के थे। धीरे-धीरे इन सब अन्तर्जातीय परन्तु स्वाभाविक दुर्भावनाओं का अन्त हुआ और पारस्परिक मनमुटाव भी कम हो गया। दोनों देश एकता के महत्त्व और लाभ का अनुभव करने लगे और इसके बाद से इंग्लैण्ड और स्कॉटलैण्ड के इतिहास का एक दूसरे से निकट सम्बन्ध हो गया।

---

# अध्याय ११

## वैदेशिक घटनाएँ और साम्राज्य स्थापना

### (१७१४—६३ ई०)

### §१—वैदेशिक नीति

हनोवर का प्रभुत्व—जार्ज प्रथम के राज्यारोहण के साथ इंग्लैंड की वैदेशिक राजनीति पर एक नया प्रभाव पड़ा। विक्टोरिया के राजगद्दी पर बैठने तक जार्ज प्रथम और उसके उत्तराधिकारी केवल इंग्लैंड के शासक ही नहीं वरन् हनोवर के एलेक्टर्स भी थे। साधारण अँगरेज प्रजा के विचार में हनोवर की एलेक्टरेट जर्मनी मे एक बहुत मामूली सी रियासत होगी, ऐसा अनुमान हो सकता है; परन्तु वस्तुतः हनोवर जर्मन राज्यों में अग्रणी था और उत्तरी सागर में कई अच्छे जहाजी नाकों पर उसका अधिकार था। जार्ज प्रथम और जार्ज द्वितीय के शासन-काल में इंग्लैंड की वैदेशिक

नीति की बहुत सी उलझनें इस कारण थीं कि लोगों में ऐसी धारणा थी कि ये दोनों राजा अपने स्वदेश की रक्षा के लिए इंग्लैंड को विदेशी युद्ध में सम्मिलित कर देंगे। इस आशंका के लिए कारण भी मौजूद थे। जार्ज प्रथम के गद्दी पर बैठने के बाद ही ब्रिटिश, समुद्री वेड़े के प्रदर्शन ने पहले स्वीडन को और फिर रूस को युद्ध के लिए उत्तेजित कर दिया था।

**ब्रिटेन का सम्बन्ध फ्रान्स के साथ**—उतरेख्त की सन्धि हो जाने से यह युद्ध बच गया और सन् १७१३ से १७३६ ई० तक ग्रेट ब्रिटेन को शान्ति नसीब हो गयी। फ्रान्स और इंग्लैंड दोनों ही इस सन्धि को अक्षुण्ण रखना चाहते थे। इस समय दोनों देशों में शान्तिप्रिय मन्त्रियों का शासन था। वालपोल सन् १७२१ से १७४२ ई० तक ग्रेट ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री रहा और सन् १७२० से १७२६ ई० तक फ्रान्स की नीति सञ्चालन की बागडोर फ्लूरी के हाथ में रही। इस जमाने में कभी कभी इन दोनों देशों में सहकारिता भी जारी हो जाती जो १८वीं शती में बड़ी अनोखी सी बात मालूम होती है।

**ग्रेट ब्रिटेन का सम्बन्ध स्पेन से ( १७१४-३६ ई० )**—दूसरी ओर आस्ट्रिया और स्पेन के शासक उतरेख्त की सन्धि से असन्तुष्ट थे। ब्रिटेन की प्रधान कठिनाई थी स्पेन के साथ। सन् १७१८ में ग्रेट ब्रिटेन ने स्पेन के जहाजी बेड़े को केप पिसारो के पास ध्वन्स किया और उसे सिसली पर अधिकार करने से रोका। इसी प्रकार सन् १७२५ ई० में जब जिब्रालटर और मिनारका पर फिर अधिकार कर लेने की आशा से स्पेन और बवेरिया में सन्धि हुई तो उसके उत्तर में और उसे रद्द करने के लिए ब्रिटेन ने फ्रान्स के साथ मेल कर लिया। फिर कुछ साल बाद व्यापारी झगड़ों के कारण स्पेन के साथ विरोध बढ़ गया। उतरेख्त की सन्धि से साल में एक बार पोर्टो-बेलों में जहाज भेजने की आज्ञा का ब्रिटेन खूब फायदा उठा रहा था और इस जहाज को बन्दरगाह में खड़ा रखकर अँगरेज दिन भर उस पर माल लादते रहते थे और रात में छोटी छोटी नावों पर उसे उतार कर बन्दरगाह के बाहर खड़े हुए अपने अन्य जहाजों में पहुँचा देते थे। इस प्रकार ब्रिटिश जहाज लुके-छिपे ही नहीं बल्कि बड़ी धाँधली से दक्खिनी अमेरिका के साथ खूब व्यापार करते थे। यह बात स्पेन को अखरनी ठीक भी थी; क्योंकि स्पेन वाले अपने अधिकृत दक्खिनी अमेरिका के उपनिवेशों में अपना व्यापार न बढ़ा सकने पर भी किसी दूसरे देश को व्यापार नहीं करने देना चाहते थे।

**स्पेनियों के अत्याचार और जैन्किन्स के कान काटने की घटना**—स्पेन वालों ने अँगरेज व्यापारियों की इस धींगाधींगी के रोकने के लिए स्पेन अधिकृत अमेरिका जाने वाले जहाजों को समुद्र पर पकड़ कर ब्रिटिश जहाजों की तलाशी लेना तय किया और अँगरेज मल्लाहों के साथ उनके आनाकानी करने अथवा तलाशी दे से इनकार करने पर कठोरता का व्यवहार करना शुरू कर दिया। इससे अँगरेजों उत्तेजना मिली और तत्कालीन प्रधानमन्त्री वालपोल के विरोधी राजनीतिज्ञों ने ७

भावना को और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया। जब कप्तान जैन्किन्स ने अपना कटा हुआ कान एक बोतल में रख कर कामन्स सभा के सामने पेश किया, और कहा कि यह स्पेन वालों ने काट लिया था तो विरोधी दल की इच्छानुसार इस घटना का प्रभाव लोकमत पर वही हुआ जो उन्होंने सोचा था। जब एक प्रश्न के उत्तर में जैन्किन्स ने कहा कि स्पेनियों के इस क्रूर व्यवहार ने उसे इस बात पर मजबूर कर दिया कि वह अपने देशवासियों के सामने अपनी अपील करे, तो अपने जातीय अपमान के कारण अँगरेज़ों के क्रोध की अग्नि और भी भभक उठी। लोकमत का विरोध सम्भव न देख वालपोल ने स्पेन से निरर्थक शिकवा-शिकायत करने के बाद अन्त में १७३६ ई० में युद्ध की घोषणा कर दी।

**स्पेन से युद्ध ( १७३६ )**—सन् १७३६ ई० से बहुत दिनों जारी रहने वाले युद्ध का सिलसिला शुरू हुआ। जिन कारणों से प्रेरित होकर अँगरेज़ों ने स्पेन के साथ युद्ध-घोषणा की थी\वे बहुत अंशों में सम्मानसूचक न थे और इसलिए शायद इस युद्ध में अँगरेजी सेनाओं को भी कोई गौरवपूर्ण विजय प्राप्त नहीं हुई। स्पेन अधिकृत अमेरिका में कार्टेजिना पर जो आक्रमण किया गया। उसमें अँगरेजों की बुरी तरह हार हुई। अँगरेज़ों की एक मात्र सफलता अगर किसी बात में कही जाय तो वह आन्सन की विश्व-प्रदक्षिणा रही। आन्सन ने दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर मनीला से आने वाले जहाज पर लदे हुए बहुत बड़े खजाने को अपने अधिकार मे कर लिया।

**आस्ट्रिया के उत्तराधिकार का युद्ध (१७४०-४१ ई० )**—इसी बीच में १७४० ई० में एक और उत्तराधिकार का युद्ध प्रारम्भ हो गया। इसका सम्बन्ध आस्ट्रिया से था। चार्ल्स षष्ठ जिसे हम आर्कड्यूक चार्ल्स के नाम बतलाते आये हैं विशाल आस्ट्रियन साम्राज्य का शासक था, और उसके मेरिया थेरिसा केवल एक ही पुत्री थी। उसने प्रायः सारे युरोप के राज्यों को अपनी उस नाम मात्र की राजाज्ञा (प्राग्मेटिक सैंकशन) के मान लेने पर राजी कर लिया था जिसके अनुसार उसकी पुत्री उसके सारे साम्राज्य की स्वामिनी होती। किन्तु १७४० ई० में चार्ल्स की मृत्यु होने पर उसके बड़े भाई के दामाद बवेरिया के एलेक्टर ने अपना राज्याधिकार पाने का दावा पेश किया। फ्रान्स के राजा ने उसकी सहयता की और राइन के पार दो सेनाएँ भेजीं। फ्रेड्रिक द्वितीय ने जो इतिहास में फ्रेड्रिक महान् के नाम से प्रसिद्ध है तथा जो हाल ही में प्रशिया के सिंहासन पर बैठा था, चार्ल्स के प्रति अपने वचन की उपेक्षा की और साइलेशिया पर जो आस्ट्रिया के राज्य में था अधिकार कर लिया।

आस्ट्रिया अधिकृत नीदरलैंड्स की ओर से आक्रमण की आशंका और एक राजकुमारी का पक्ष लेने में शौर्य-प्रदर्शन की भावना ने ग्रेट ब्रिटेन को मेरिया थेरिसा की सहायता के लिए प्रेरित किया। दूसरा कारण यह भी था कि हनोवर के एलेक्टर हैप्सबर्ग घराने के परम्परागत मित्र रहे थे। इस प्रकार इंग्लैंड और फ्रान्स एक बार फिर विरोधी दलों के सहायक होने के कारण एक दूसरे के शत्रु हो गये। प्रारम्भ में

अँगरेजों की सहायता बहुत मन्द रही और मेरिया थेरिसा की स्थिति बहुत नाजुक हो गयी; परन्तु उसकी प्रजा ने उसका खूब साथ दिया और उनकी राजभक्ति ने ही उसे हारते-हारते बचा लिया।

कार्टरेट की नीति ( १७४२-४४ )—१७४२ ई० में वालपोल के पद त्याग करने पर कार्टरेट इंग्लैंड की वैदेशिक नीति का मन्त्री हुआ। युरोपीय राजनीत का उसका ज्ञान बड़ा गम्भीर था। वह जर्मन खूब बोल सकता था और इसलिए वह उन थोड़े से वैदेशिक मन्त्रियों में था जो यह चाहते थे कि युरोप की राजनीति में ग्रेट ब्रिटेन का पाया सदा ऊँचा रहे। उसने फ्रेड्रिक और मेरिसा थेरिसा में सन्धि कराने में सफलता प्राप्त की, जिससे फ्रेड्रिक ने युद्ध से अपना हाथ खींच लिया। फिर उसने प्रशिया को छोड़कर समस्त जर्मन राज्यों को फ्रान्स के विरुद्ध संगठित कर लिया।

डेटिङ्गन की लड़ाई ( १७४३ ई० )—अँगरेज और हनोवरियनों की एक सयुक्त सेना लार्ड स्टेयर के नेतृत्व में जर्मनी से फ्रान्सीसियों को निकालने के लिए भेजी गयी। स्वयम् जार्ज द्वितीय उसके साथ था। किन्तु डेटिङ्गन में सेना की स्थिति बहुत नाजुक हो गयी। उसके भोजन का कोई ठीक प्रबन्ध न था और फिर उसके एक ओर मेन नदी थी और दूसरी ओर अभेद्य पर्वत और वन। इसके अलावा उसके आगे और पीछे का मार्ग फ्रान्सीसी सेना ने घेर रखा था। सौभाग्य से फ्रान्सीसियों ने अपना सुदृढ़ मोर्चा छोड़ दिया। बस फिर क्या था अँगरेज़ों को आक्रमण करने का अवसर मिल गया और हारते-हारते उनकी विजय हो गयी। फ्रान्सीसी सेना ने जर्मनी खाली कर दिया और इस प्रकार स्थिति सँभल गयी।

फौन्तिनाय की लड़ाई ( १७४५ ई० )—जर्मन-राज्यों का संघ फिर वि[illegible] हो गया। प्रशिया ने फिर आस्ट्रिया के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कर लिये और कार्टरेट देश में लोकप्रिय न होने के कारण राज्य कार्य से विरति ले ली। इसी बीच में हजार फ्रान्सीसी सेना ने प्रसिद्ध मार्शल साक्स के नेतृत्व में आस्ट्रिया अधिकृत नी[illegible] लैंड पर आक्रमण किया और ब्रिटिश सेनाओं के होते हुए भी वह सर्वत्र विजयी हु[illegible] सन् १७४५ ई० में फौन्तिनाय पर अँगरेजों की हार हुई। इस लड़ाई में अँ[illegible] पैदल सेना ने बड़ा सफल आक्रमण किया; परन्तु फ्रान्सीसी सेना के आयरी[illegible] ने उसका खूब मुकाबिला किया। 'इसी वर्ष यंग प्रिटेन्डर' के आक्रमण के ब्रिटिश सेना को युरोप से हट आना पड़ा। इस प्रकार फ्रान्सीसियों ने अब प्रायः नीदरलैंड पर अधिकार कर लिया।

एक्सला शापेल की सन्धि—१७४८ ई० में एक्सला शापेल की के साथ युद्ध समाप्त हो गया। आस्ट्रिया का साम्राज्य और आस्ट्रिया अधिकृत [illegible] लैंड मेरिया थेरिसा के अधिकार में रहे। साइलेशिया प्रशिया से मिल गया। सिवाय और कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ। फ्रान्स और ब्रिटेन के [illegible] युद्ध युरोप तक ही सीमित न रहा। भारतवर्ष में फ्रान्सीसियों ने मदरास ले

और अँगरेज़ों ने केप ब्रिटेन द्वीप के बन्दरगाह लुईबर्ग पर अधिकार कर लिया, जो नयी दुनिया का जिब्राल्टर कहा जा सकता है। सन्धि के समय ये दोनों स्थान एक दूसरे को लौटा दिये गये और स्पेन के साथ लड़ाई के मुख्य कारण अँगरेज जहाजों की तलाशी के सम्बन्ध में इस सन्धि में कोई चरचा नहीं हुई।

एक्स ला शापेल की सन्धि का निर्णय स्थायी न रह सका क्योंकि सन् १७५६ ई० में एक और सप्तवर्षीय भीषण युद्ध छिड़ गया। अमेरिका और भारतवर्ष में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स की प्रतिस्पर्द्धापूर्ण महत्वाकांक्षाओं का निर्णय होना था और यह निर्णय युद्ध द्वारा ही सम्भव था। उत्तरी अमेरिका में एटलान्टिक महासागर के पूर्वी तट पर अँगरेजों के अधिकार में इस समय तक १३ उपनिवेश थे। इनके उत्तर में फ्रान्स अधिकृत कनाडा का प्रदेश और दक्खिन-पच्छिम में लुसियाना था। जैसे १६ वीं शती में फ्रान्स की प्रबल इच्छा थी कि आफ्रिका के पूरब से पच्छिम तक उसके अधिकृत प्रदेशों का सीधा सिलसिला हो जाय, उसी प्रकार १८ वीं शती में भी उसकी महत्वाकांक्षा थी कि अँगरेजों के अधिकार के वे प्रदेश लेकर केनाडा और लुसियाना को मिला दें जो उसके दक्खिन और पच्छिम में पड़ते थे। फ्रान्सीसियों का यह साम्राज्य-स्वप्न बहुत असम्भव न जान पड़ता था; क्योंकि फ्रान्सीसी उपनिवेशों का राज्य सुसंगठित था और योग्य फ्रान्सीसी हाकिम वहाँ शासन करते थे। फिर कनाडा के उपनिवेश में केवल ६० हजार फ्रान्सीसियों की बस्ती थी और अँगरेज लगभग १५ लाख थे, परन्तु फ्रान्सीसी बस्तियाँ खूब घनी आबाद थीं और पास पास थीं। अँगरेज बस्तियाँ दूर दूर भी थीं और उनकी आबादी भी बिखरी थी। अँगरेज़ों के १३ उपनिवेशों का शासन पृथक् पृथक् था। उनके बीच वैमनस्य भी कुछ कम न था और उनको एक करने के सभी प्रयत्न असफल रहे थे।

फ्रान्सीसी उपनिवेशों की भूगोलिक स्थिति भी फ्रान्सीसी आकांक्षाओं और योजनाओं के अनुकूल थी और इसके प्रतिकूल अँगरेजी उपनिवेशों के पच्छिम की ओर प्रसार में एलिघनी पहाड़ों की स्वाभाविक रुकावट मौजूद थी।

फ्रान्सीसी दुर्ग—एक्स ला शापेल की सन्धि के बाद घटना-क्षेत्र युरोप से अमेरिका की ओर बढ़ गया और फ्रान्सीसियों की महत्वाकांक्षाओं के सफल होने के लक्ष्य दिखायी देने लगे। मान्ट्रिल के दक्खिन की ओर चैम्पलेन झील के किनारे फ्रान्सीसियों ने क्राउन प्वाइन्ट टिकन्ड्रोगा नामक दो किले बना लिये थे। अब उन्होंने उत्तर से दक्खिन तक एक ऐसी दुर्ग पंक्ति बनाने का प्रयत्न किया जिसके द्वारा वे एलिघनी, ओहाइयो और मिसीसिपी नदियों की घाटियों पर अधिकार रख सके। इसी बीच में अँगरेजों ने ओन्टेरियो झील के दक्खिन मे केवल एक किला उसवेगो बना पाया था। इसका कारण था ब्रिटिश उपनिवेशों का अनैक्य और इंग्लैंड की गवर्नमेन्ट की बहुत देर में प्राप्त होने वाली स्वीकृति। फिर १७५४ ई० में फ्रान्सीसियों ने पेन्सिलवेनिया के पच्छिमी तट और तीन नदियों के संगम पर इस दुर्ग पंक्ति की अन्तिम श्रेणी

दुक्कइनी नामक दुर्ग बनाया। इसके निर्माण के बाद ही युद्ध छिड़ गया। इस दुर्ग को लेने के लिए दो प्रयत्न किये गये। १७५४ में वाशिंगटन के नेतृत्व में पहला हमला हुआ और १७५५ ई० में ब्रेडाक की कमान में दूसरा। ब्रेडॉक १२०० सिपाहियों की
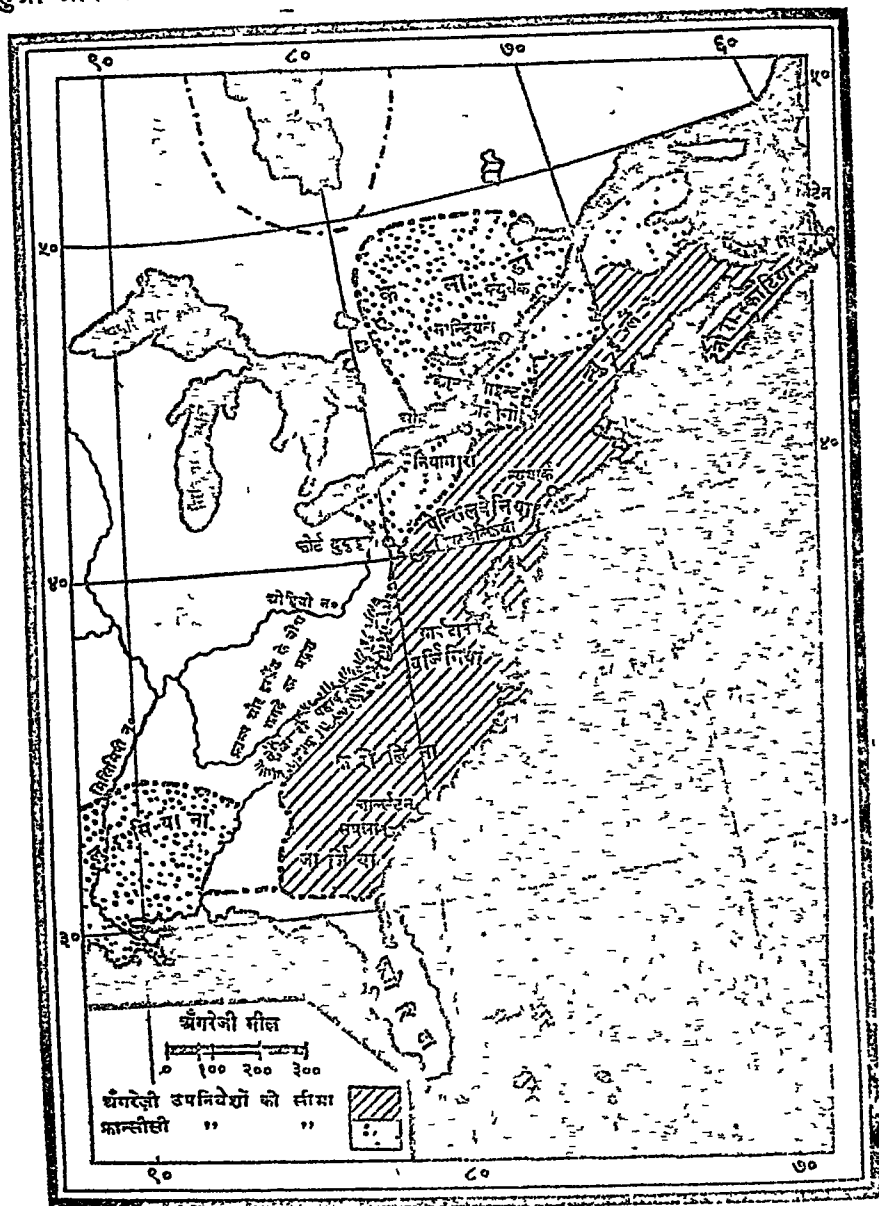
१७५४ ई० में उत्तरी अमेरिका में इंग्लैंड और फ्रान्स के उपनिवेश

सेना लेकर आगे बढ़ा परन्तु अभी दुर्ग से ७ मील के फासले पर था कि उस पर फ्रान्सीसियों की सेना ने छापा मार कर उसकी दो तिहाई फ़ौज काट डाली। दोनों हमलों

में बुरी तरह हार हुई। इस प्रकार १७५६ ई० में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स के बीच युद्ध की घोषणा के समय अमेरिका में फ्रान्सीसियों की स्थिति बहुत अच्छी थी।

अँगरेजी और फ्रान्सीसी ईस्ट इंडिया कम्पनियाँ—इस प्रकार पूरब और पच्छिम अर्थात् भारतवर्ष और अमेरिका दोनों देशों में फ्रान्सीसियों और ब्रिटिश महत्वाकांक्षाओं का संघर्ष हुआ। भारतवर्ष के पच्छिमी तट पर बम्बई अँगरेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ मे था और माही फ्रान्सीसी ईस्ट इंडिया कम्पनी के। वे दोनों बहुत दूर-दूर थे, किन्तु पूरबी तट पर उनकी कम्पनियाँ एक ही प्रान्त में थीं। उत्तर में अँगरेजों के अधिकृत कलकत्ता, फ्रान्सीसी चन्द्रनगर के निकट था और दक्खिन में फ्रान्सीसियों का पांडिचेरी मदरास और फोर्ट सेन्ट डेविड के बीच में पड़ता था। दोनों कम्पनियाँ अब इस स्थिति पर पहुँच गयी थीं जब कि उनके विकास के लिए भारतीय राज्यों की राजनीति में हस्तक्षेप करना आवश्यक हो गया था। कहना नहीं होगा कि उस समय की भारतवर्ष की स्थिति ने ही इस हस्तक्षेप को अनिवार्य बना दिया था।

भारतवर्ष की जातियाँ—यह स्मरण रहना चाहिए कि भारतवर्ष फ्रान्स अथवा जर्मनी की भाँति उस समय एक देश नहीं मालूम होता था। यह तो एक अच्छा ख़ासा महाद्वीप है। रूस को छोड़ कर इसका क्षेत्रफल शेष युरोप के बराबर है और जनसंख्या तो और भी अधिक है। इस देश के निवासी लगभग ५० भाषाएँ बोलते हैं। इनके वर्णं मे भी बड़ा अन्तर है। उत्तर-पच्छिम के पठानों का रंग हलका बादामी है तो दक्खिन के तामिलों का काला। भारतवर्ष की विभिन्न जातियाँ एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न-भिन्न हैं। यह कहा जा सकता है कि हिन्दू धर्म का प्रभाव जरूर बहुत अंशों में ऐक्य की ओर रहा है; किन्तु मुसलमान, पारसी और सिक्ख कई धर्मावलम्बी अल्प संख्या में होते हुए भी बहुत सशक्त हैं। हिन्दुओं मे भी बहुत सी जातियाँ और उपजातियाँ हैं जिसमें बहुत कम सामाजिक सम्पर्क है। अनगिनत देवी-देवताओं की उपासना इनमें प्रचलित है। फिर उपासना में भी अनेक विभेद हैं। शिक्षित ब्राह्मणों के धर्म में द्वैत और अद्वैत दोनों विचार-धाराएँ मौजूद हैं।

१७०७ ई० के बाद की अराजकता—धीरे-धीरे १६ वीं शती से प्रारम्भ होकर मुगल वंश का अधिकार लगभग समस्त भारतवर्ष पर हो गया था। १६वीं शती मे, विशेष कर अकबर के समय से, मुगलों की शक्ति निरन्तर बढ़ती ही गयी थी। किन्तु १७०७ ई० में औरंगजेब की मृत्यु के बाद साम्राज्य छिन्न-भिन्न होने लगा और भारतवर्ष मे अराजकता फैल गयी। १७३६ ई० में अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली पर आक्रमण किया। निरन्तर ६ आक्रमणों के बाद अफग़ानों ने पंजाब में अपना राज्य जमा लिया। १७वीं सदी के अन्त तक सिक्खों ने उन्हें हराकर पंजाब में अपना राज्य कायम कर लिया। उत्तर पूरब मे अवध और बंगाल के शासक प्रायः स्वतन्त्र हो गये थे। मध्यभारत में पूना और नागपुर के केन्द्रों से मराठे उत्तर और पूरब की ओर आक्रमण करते थे। दक्खिन में हैदराबाद का निजाम बहुत बड़ा राजा था और

दक्खिन-पूरब में करनाटक का नवाब उसके अधीन था। उधर दक्खिन-पच्छिम में मैसूर का राजा बड़ा शक्तिशाली हुआ जा रहा था।

**भारत में डूप्ले ( १७४१ ५४ ई० )**—भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों का निरन्तर विरोध प्रतिद्वन्दी विदेशियों का सौभाग्य बन गया। १७४१ ई० में डूप्ले पांडिचेरी का गवर्नर नियुक्त हुआ। उसने देश की डाँवाँडोल स्थिति से लाभ उठाने की चेष्टा की। आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध के दिनों में उसने मदरास पर अधिकार करने का प्रयत्न किया जिसे युरोप में सन्धि हो जाने पर वापिस देना पड़ा। किन्तु अब कर्नाटक और हैदराबाद में उत्तराधिकार के झगड़े शुरू हो गये। डूप्ले और अँगरेजों ने अलग अलग एक-एक दावेदार का साथ दिया। फ्रान्सीसियों द्वारा समर्थन किये हुए एक अधिकारी को हैदराबाद में सफलता प्राप्त हुई और दूसरे को—त्रिचिनापल्ली छोड़ कर—जिस पर आक्रमण हो रहा था और जिसके पतन की पूरी पूरी सम्भावना थी—सारा करनाटक मिल गया।

**क्लाइव और अरकाट का घेरा (१७५१ ई०)**—इस कठिनाई के अवसर पर १७५१ ई० में क्लाइव ने परिस्थिति की रक्षा की। क्लाइव श्रापशायर के एक छोटे जमीन्दार का पुत्र था। लड़कपन में वह बड़ा शरारती और उद्दंड था। ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक साधारण क्लर्क के पद पर नियुक्त होकर वह भारत में आया था। इस काम पर उसकी तबियत बिलकुल न लगती थी, इसलिए उसने गोली मार कर आत्म-हत्या करनी चाही; परन्तु बन्दूक से गोली निकली ही नहीं। फिर वह सेना में भर्ती हो गया। जब डूप्ले ने मदरास पर आक्रमण किया तो क्लाइव ने शत्रु का ध्यान बटाने के विचार से अरकाट पर आक्रमण करने का प्रस्ताव किया। उसका यह प्रस्ताव मान लिया गया और थोड़ी सी सेना से उसने अरकाट जीत लिया। इस साहसपूर्ण विजय का फल यह हुआ कि त्रिचिनापल्ली का घेरा तो उठ गया परन्तु अब जब तक कुमक आये उसे अरकाट की रक्षा करनी पड़ी। २५० आदमियों की सेना से उसने ५० दिन तक १० हजार सेना का मुकाबला किया और दो बार किले की दीवार टूट जाने पर भी उसने शत्रु की सेना को गढ़ न लेने दिया। अरकाट की सफलता से अँगरेज़ों की सामरिक शक्ति और युद्ध-कौशल का सबसे पहला परिचय मिला। कई और लड़ाइयों में विजय प्राप्त करने के बाद कर्नाटक में अँगरेजों के पक्ष का नवाब बन गया और १७५४ ई० में डूप्ले को फ्रान्स बुला लिया गया। अभी भी युद्ध समाप्त नहीं हो गया था। अँगरेज़ों के लिए सप्तवर्षी युद्ध का प्रभाव कनाडा की विजय से जितना महत्वपूर्ण हुआ उतना ही भारवर्ष में इन लड़ाइयों में जीतने से।

**१७५६ ई० में सप्तवर्षी युद्ध का श्रीगणेश**—१७५६ ई० तक सप्तवर्षी युद्ध की घोषणा नहीं हुई थी; किन्तु अमेरिका और भारतवर्ष में युद्ध से बहुत पहले ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स में झगड़े आरम्भ हो गये थे। १७५१ ई० में क्लाइव ने अरकाट पर घेरा डाला और उसे जीत कर फिर उसकी रक्षा की। १७५४ ई० में अमेरिका में

डुक्वेने दुर्ग पर अँगरेजी आक्रमण हुआ। १७५५ ई० में समुद्र पर भी युद्ध छिड़ गया और अँगरेजों ने फ्रान्सीसियों के दो लड़ाई के जहाज पकड़ लिये जिनमें कनाडा के लिए सेना जा रही थी। तब फ्रान्सीसियों ने १७५६ ई० में मिनारका पर आक्रमण किया और इस अन्तिम घटना के साथ दोनों देशों में नियमित रूप से युद्ध की घोषणा हो गयी।

## § २—प्रशिया और आस्ट्रिया की प्रतिद्वन्द्विता

इस सप्तवर्षी युद्ध का कारण केवल ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स का ही विरोध न था। आस्ट्रिया और प्रशिया में भी खूब तनातनी चल रही थी, क्योंकि मेरिया थेरिसा फ्रेड्रिक के साइलेशिया हड़प कर लेने को सहन नहीं कर सकती थी। उसको इस देश का हाथ से निकल जाना इतना खला था कि कहते हैं जब वह किसी साइलेशिया-निवासी को देखती तो रोने लगती थी। दोनों विरोधी पक्षों के सहायक कौन हों अब इसी प्रश्न का निपटारा होना था। आस्ट्रिया के उत्तराधिकार के युद्ध के मित्रराष्ट्र एक दूसरे से असन्तुष्ट रहे थे। कई और कारणों से सप्तवर्षी युद्ध में पुराने मित्र अब शत्रु हो गये। आस्ट्रिया और फ्रान्स जो अब तक एक दूसरे के विरोधी थे, एक हो गये और उन्होंने रूस को अपनी ओर मिला लिया। ग्रेट ब्रिटेन ने इसलिए आस्ट्रिया के विरोधी प्रशिया का पक्ष लिया।

१७५६-५७ ई० के युद्ध में अँगरेजों की हार—जहाँ तक ग्रेट ब्रिटेन का सम्बन्ध है सप्तवर्षी युद्ध का विवरण दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। शुरू के दो बरसों में अँगरेजों की निरन्तर असफलता रही। इस समय ड्यूक ऑव न्यू कैसिल प्रधान मन्त्री था और वह इस युद्ध के संचालन के लिए नितान्त अयोग्य था। राज्य की ओर से कोई प्रोत्साहन न मिलने के कारण स्थल और जल सेना के सेनापतियों ने बिना सोचे विचारे तथा पूरी-पूरी तैयारी किये पुराने ढंग और भौंडे शस्त्रास्त्रों से लड़ाइयाँ लड़ीं। इसका फल यह हुआ कि युद्ध के आरम्भ में ग्रेट ब्रिटेन को आक्रमण की आशंका हो गयी और अपनी रक्षा के लिए हेसियन और हनोवरियन सैनिक रख कर सारे देश को असम्मानित होना पड़ा।

बिंग और मिनारका—इसी बीच में बिंग एक ऐसा जहाजी बेड़ा लेकर मिनारका को फ्रान्सीसियों के आक्रमण से मुक्त करने पहुँचा जिसके पास न तो पूरे अस्त्र-शस्त्र थे और न खाने का काफ़ी सामान। मिनारका द्वीप से दूर ही वह फ्रान्सीसी बेड़े से लड़ गया। बिंग को चाहिए था कि ऐसी परिस्थिति में, वह युद्ध न करता और केवल शत्रु की रसद सामान लाने के रास्तों पर छापा मारता रहता; परन्तु उसने अपने सैनिकों की एक युद्ध-सभा की और उसकी सम्मति से मिनारका छोड़ कर लौट आया। इस पर सारा राष्ट्र विक्षुब्ध हो उठा। बिंग पर कर्तव्य की उपेक्षा करने का अभियोग लगाया और दोषी प्रमाणित होने पर पोर्ट्स्माथ के बन्दरगाह में उसे उसी के जहाज पर गोली से मार दिया गया। इस प्रकार बिंग को अँगरेजी सरकार की नालायकी

और अँगरेजी नौ सेना की अकर्मण्यता का शिकार होना पड़ा। अमेरिका में उसवेगो और फोर्ट विलियम हेनरी अँगरेजों के हाथों से निकल गये और लुईबुर्ग का आक्रमण भी असफल रहा। जर्मनी में भी जार्ज द्वितीय का पुत्र ड्यूक ऑव कम्बरलैंड, जो हनोवर तथा फ्रान्स के आक्रमण से प्रशिया की पच्छिमी सीमा की रक्षा करने के लिए भेजा गया था, १७५७ ई० में सेनवेक पर हार गया और मजबूर होकर 'क्लोस्टर सेविन' की सन्धि पर हस्ताक्षर कर उसे देश खाली करना पड़ा। रौसबाख में फ्रान्सीसियों पर और ल्युथेन में आस्ट्रियनों पर फ्रेड्रिक की आश्चर्यजनक विजय ने परिस्थिति को बचा लिया।

अँगरेजों की सफलता (१७५८-६३ ई०)—युद्ध के पिछले ५ वर्षों में अँगरेजों का भाग्य जगा और उन्हें बराबर विजय मिलती गयी। सन् १७५७ में विलियम पिट और ड्यूक ऑव न्यू कैसिल ने मिलकर संयुक्त मन्त्रि-मंडल बना लिया। पिट में वे सभी गुण मौजूद थे जो एक महान युद्ध-मन्त्री के लिए आवश्यक हैं। उसमें आत्म विश्वास के अतिरिक्त लोगों को स्फूर्ति-प्रदान करने की भी शक्ति थी। उसका दृढ़ विश्वास था कि वह अपने देश की रक्षा कर सकता है। उसमें योग्य मनुष्यों को चुन लेने की क्षमता थी। कई अयोग्य आदमियों को भी उसने नियुक्त किया परन्तु हॉक, वुल्फ और फ़र्डिनाड ऑव ब्रंज्विक जैसे योग्य पुरुषों की नियुक्ति उसकी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का सजीव प्रमाण है। सक्षेप में यह कहना ठीक ही है कि जहाँ पिट में बड़ी बड़ी योजनाओं के बनाने की प्रतिभा मौजूद थी वहाँ उसमें उनको बड़े साहस और गम्भीर धैर्य के साथ कार्य रूप में परिणत करने की भी योग्यता थी। एक बार उसने अपने एक साथी मन्त्री पर जो उससे सहमत नहीं हो रहा था मुकद्दमा चला देने की धमकी दी और एक दूसरे मन्त्री की शिकायत थी कि वह कभी कभी बदजबानी भी कर बैठता था। इसमें सन्देह नहीं कि वह अभिमानी और उद्धत स्वभाव का था; किन्तु यही गुण उसे ब्रिटेन का ऐसा महान् युद्ध मन्त्री बनाने में सहायक हुए जिसका जल और स्थल सेना पर तथा राष्ट्र की राजनीति पर पूरा पूरा अधिकार रहा। प्रशिया का राजा फ्रेड्रिक महान् पिट का मित्र था। इन्हीं दो महापुरुषों के सहयोग से वर्तमान ब्रिटिश साम्राज्य और प्रशिया राज्य की नीवें पड़ीं।

पिट की कूटनीति—सक्षेप में पिट की कूटनीति में सबसे पहली बात तो यह थी कि प्रशिया के राजा की सहायता अवश्य दी जाय क्योंकि अकेले फ्रेड्रिक के नेतृत्व में प्रशिया में इतना बल न था कि आस्ट्रिया फ्रान्स और रूस की संयुक्त शक्तियों का सामना कर सके। दूसरे युरोप में ही फ्रान्स की सेनाओं को व्यस्त रखना पिट की नीति का एक बड़ा पहलू था। इसीलिए तो यह कहा करता था कि ऐल्ब पर ही कनाडा विजय करने का युद्ध लड़ा जा सकता है। इस नीति के अनुसार उसने फ्रेड्रिक की धन से सहायता ही नहीं की, बल्कि हनोवर और प्रशिया के पच्छिम सीमा की रक्षा के लिए फर्डिनैंड ऑव ब्रंज्विक के नेतृत्व में जर्मनी में एक ब्रिटिश और

हनोवरियन सेना रक्खी। साथ ही साथ वह फ्रान्स के तट प्रदेश के कई स्थानों पर आक्रमण भी करता रहा। इनके आक्रमणों के कारण फ्रान्स निरन्तर आशंका में रहा और ३० हज़ार फ्रान्सीसी सेना कहीं बाहर आक्रमण करने के बजाय फ्रान्स में ही व्यस्त रही। पिट का पहला उद्देश्य था पच्छिमी द्वीप समूह और पूरब में ब्रिटिश व्यापार की रक्षा करना और बाद में अँगरेज़ी राज्य का विस्तार करना। कनाडा विजय करने में उसने अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर दी थी। फ्रान्सीसियों को युरोप के राजनीतिक झगड़ों में फँसाये रख कर उसने अँगरेज़ी शक्ति को कनाडा विजय करने में लगा दिया।

१७५८ ई० की मुहिम और विजय का ज़माना (१७५६ ई०)—१७५८ ई० से विजय-प्राप्ति का श्रीगणेश हुआ। अमेरिका में अँगरेज़ों की तीन अलग अलग सेनाएँ आगे बढ़ीं। पहली सेना टिकोंड्रोगा लेने में अवश्य असफल रही, किन्तु शेष दो में से एक ने नौ सेना की सहायता से लुइसबर्ग और दूसरी ने फोर्ट डुकुइने लेने में सफलता प्राप्त की। फ्रान्स पर अँगरेज़ी बेड़े के दो आक्रमण हुए। सेन्ट मालों पर बहुत से फ्रान्सीसी जहाज नष्ट कर दिये गये और शेरबुर्ग पर बहुत काफी नुकसान करने के बाद यह बेड़ा फिर सेन्टमालों पर जा पहुँचा; परन्तु इस बार उसे बुरी तरह मार खाकर वापिस लौटना पड़ा। जर्मनी फर्डिनैंड राइन तक पहुँच गया; यद्यपि उसे फिर पीछे हटना पड़ा। वर्षान्त के पूर्व ही पच्छिमी आफ्रिका में गोरी नामक फ्रान्सीसी उपनिवेश पर अधिकार कर लिया गया। १७५६ ई० इंग्लैंड के इतिहास में बड़े महत्व का वर्ष है। इस वर्ष इंग्लैंड की सेनाओं को सबसे अधिक महत्वपूर्ण विजयें प्राप्त हुईं। कनाडा पर पिट ने दो चढाइयों का एक साथ प्रबन्ध किया। एमहर्स्ट के सुपुर्द किया गया कि वह टिकोंड्रोगा लेकर क्वेबेक पहुँच जाय। उसने टिकोंड्रोगा तो ले लिया परन्तु वह क्वेबेक नहीं पहुँच सका। फिर पिट के कृपापात्र वुल्फ को स्थल सेना का और सान्डर्स को जल सेना का सेनापति बनाकर क्वेबेक पर आक्रमण करने भेजा गया। इनको आदेश था कि सेन्ट लॉरेन्स नदी के मुहाने से घुस कर क्वेबेक पर कब्ज़ा कर लें। कुहरे और विरोधी वायु के होते हुए भी सॉन्डर्स बेड़े को सेन्ट लॉरेंस नदी में चढ़ा ले गया।

क्विबेक पर आक्रमण—सेन्ट चार्ल्स और सेन्ट लारेन्स नदियों के संगम पर क्वेबेक एक पहाड़ी चट्टान पर स्थित है। फ्रान्सीसी सेनापति मोन्तकाम ने सेन्ट लारेन्स और सेन्ट चार्ल्स के संगम से लेकर आठ मील नीचे मान्टमारेन्सी के संगम तक सेन्ट लारेन्स नदी का तट किलेबन्दी करके सुरक्षित कर रक्खा था। इस प्रकार वुल्फ को अपनी निर्बल सेना से ऐसे सुसज्जित शत्रु का सामना करना था जो अपने बचाव का पूरा प्रबन्ध किये हुए था। उसने शीघ्र ही आर्लियाँ द्वीप पर, जो क्वेबेक के ठीक नीचे है, अधिकार कर लिया, किन्तु वह मोन्तकाम को अपनी दृढ़ स्थिति से नीचे लाने में सफल न हो सका और मान्टमॉरेन्सी नदी के इस पार से फ्रान्सीसियों पर जो आक्र-

मण किया गया वह असफल रहा। इसी प्रकार ग्रीष्म बीत चला और परिस्थिति निराशाजनक प्रतीत होने लगी।

इसी बीच में कई अँगरेजी जहाज नदी में होकर किले की तोपों से बच कर सफलतापूर्वक नगर के ऊपर जा पहुँचे। क्वेबेक के ऊपर सेन्ट लारेन्स की उत्तरी किनारे की चट्टानें बड़ी ढालू हैं, किन्तु उस किले से डेढ़ मील की दूरी पर वुल्फ़ ने एक टेढ़ा मेढ़ा रास्ता ढूँढ़ लिया था जो उनके शिखर पर पहुँचता था। वह उस स्थान पर रात में आक्रमण करना चाहता था। इसलिए बड़ी चतुराई से शत्रु का ध्यान उस स्थान से बँटाता रहा। क्वेबेक के नीचे मोन्तकाम का ध्यान सॉन्डर्स के जहाज़ों की गोलाबारी के कारण उसकी ओर था और गढ़ के भीतर की सेना पर नदी के दूसरे किनारे से आक्रमण हो रहा था। इसी बीच में वुल्फ़ अपनी सेना सहित क्वेबेक के
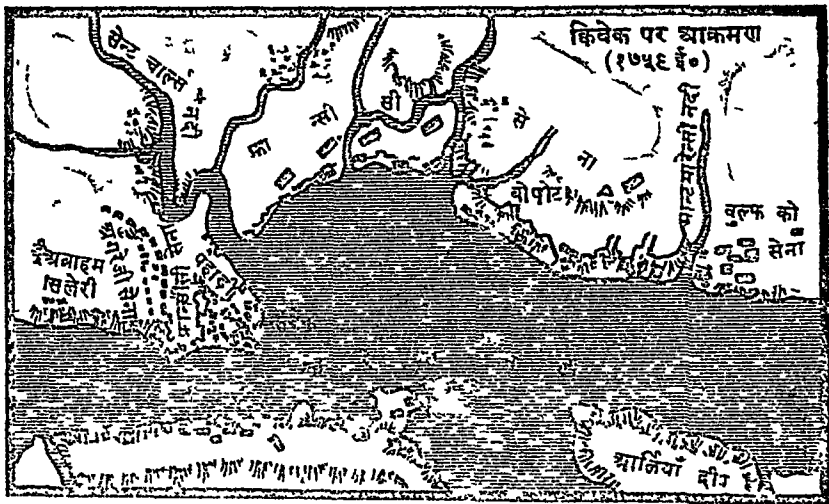
ऊपर खड़े हुए जहाजों पर चढ़ गया। आक्रमण की रात को जहाज निश्चित्त स्थान से ६ मील दूर थे। बुगेंविले एक बड़ी सेना लिये इन जहाजों की निगरानी कर रहा था इसलिए उसका ध्यान भी वुल्फ के वास्तविक उद्देश्य से हटाये रखना ज़रूरी था। बस आक्रमण की योजना जितनी आकर्षक थी उतने ही कौशल के साथ उसका सम्पादन हुआ। १२ सितम्बर को २ बजे प्रातःकाल सैनिकों से भरी हुई जहाज की नावें अपनी यात्रा पर चल दीं। तट के दो पहरेदारों को धोखा देकर वे किनारे उतर गये और उसी मार्ग से ऊपर चढ़ गये। शिखर की थोड़ी सी रक्षक सेना पर आक्रमण कर दिया गया और इस प्रकार वुल्फ की शेष सेना के किनारे पर उतर जाने का रास्ता साफ हो गया।

**हाइट्स ऑव अब्राहम के उच्च शिखर**—१३ सितम्बर को इस आक्रमण की सूचना मोन्तकाम और बुगेंविले को भी मिली परन्तु बुगेंविले बहुत दूर था। मोन्तकाम

ने वॉल्फर्स के उद्देश्य के विषय में निश्चित होने के कारण कुछ असमंजस के बाद अपनी सेना ( हाइट्स ऑव अब्राहम ) पहाड़ी पर स्थित की। १० बजे के करीब फ्रान्सीसी आगे बढ़े। अँगरेज़ों ने उनके ३५ गज की दूरी तक आने की प्रतीक्षा की और फिर बन्दूकों से दो बाढ़ें मार कर आक्रमण कर दिया। इस हमले में हाईलैंडरों ने बड़ी वीरता दिखाई। २० मिनट में युद्ध समाप्त हो गया और क्वेबेक पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया। दोनों ओर के वीर सेनापति मोन्तकाम और वुल्फ सख्त घायल हुए।

पहली अगस्त का मिंडेल का युद्ध—ॲंगरेजों को अन्यत्र भी इसी प्रकार सफलता हुई। पच्छिमी द्वीपों में मार्टिनीक पर आक्रमण असफल रहा; किन्तु ग्वादलूप पर अधिकार हो गया। जर्मनी में फ़र्डिनैंड को अपनी सेना पीछे हटानी पड़ी और हनोवर को अरक्षित छोड़ देना पड़ा। किन्तु उसने मिंडेन की फ्रान्सीसी सेना पर आक्रमण कर प्रत्याघात किया। ॲंगरेज़ी पद-सेना के नौ बटेलियनों ने शत्रुओं की अश्व सेना की तीन पंक्तियों पर आक्रमण किया और उन्हें अस्तव्यस्त कर डाला। इस समय अगर कहीं लार्ड जार्ज सैकविले के घुड़सवारों ने भी इसी प्रकार का हमला किया होता तो विजय बड़ी मार्के की होती।

लागोस और क्विबरन खाड़ी के युद्ध—इसी बीच मे फ्रान्सीसी इंग्लैंड पर आक्रमण करने की योजना बना रहे थे। टूलोन और ब्रेस्ट के फ्रान्सीसी बेड़े मिल कर फ्रान्सीसी सेना को समुद्र पार ले जाते, बस यही उनकी योजना थी। टूलोन के बेडे ने हारबर छोड़ दिया, किन्तु जिब्राल्टर के जलडमरूमध्य से जाते हुए उसे देख लिया गया और ब्रिटिश एडमिरल बोस्कोएन ने तीन घटे में उसका पीछा करना आरम्भ कर दिया। अगले दिन के अन्त तक बहुत से फ्रान्सीसी जहाज लागोस पार तितर-बितर कर दिये गये और शेष कैडिज़ में भाग गये। ब्रेस्ट के बेड़े ने हॉक के बेड़े की अनुपस्थिति से लाभ उठाया और दक्खिन की ओर चल दिया। हॉक का बेड़ा भीषण तूफान के कारण दक्खिन की ओर हट गया था, किन्तु हॉक ने क्विबरन खाड़ी तक उसका पीछा कर नवम्बर के तूफान में भी उसका सामना किया। उसने फ्रान्सीसी बेड़े के दो जहाज पकड़ लिए और दो नष्ट कर दिये। शेष फ्रान्सीसी जहाज छिन्न भिन्न हो गये उनमें से सात ने नदी के भीतर शरण ली। इस प्रकार इंग्लैंड पर फ्रान्सीसी आक्रमण की यह योजना बिलकुल असफल रही।

ॲंगरेजों की सर्वव्यापी विजय ( १७६१-२ ई० )—युद्ध के पिछले दिनों में तो अँगरेजों को और भी अधिक सफलताएँ प्राप्त हुईं। जार्ज तृतीय के राज्यारोहण के वर्ष (१७६० ई० में) मान्ट्रियल ले लिया गया और कनाडा पर भी विजय हो गयी। १७६१ ई० में ॲंगरेजों ने फ्रान्स के पच्छिमी तट पर बेलील ले लिया। उसी वर्ष स्पेन फ्रान्स के साथ हो गया। पिट को इस सन्धि की गुप्त रूप से सूचना मिल गयी थी और वह स्पेन पर उसकी युद्ध-घोषणा से पहले ही युद्ध-घोषित करके स्पेन अधिकृत अमेरिका से आने वाले वार्षिक कोष के जहाज पर आक्रमण कर देना चाहता था।

परन्तु उसका मन्त्रिमंडल उससे सहमत न हुआ। इस पर पिट ने पद-त्याग कर दिया और ब्यूट मन्त्रिमंडल का प्रधान हो गया। स्पेन ने कोष-पोत के सुरक्षित पहुँच जाने पर युद्ध घोषित कर दिया; किन्तु उसे इस हस्तक्षेप में हानि ही रही। १७६२ ई० में
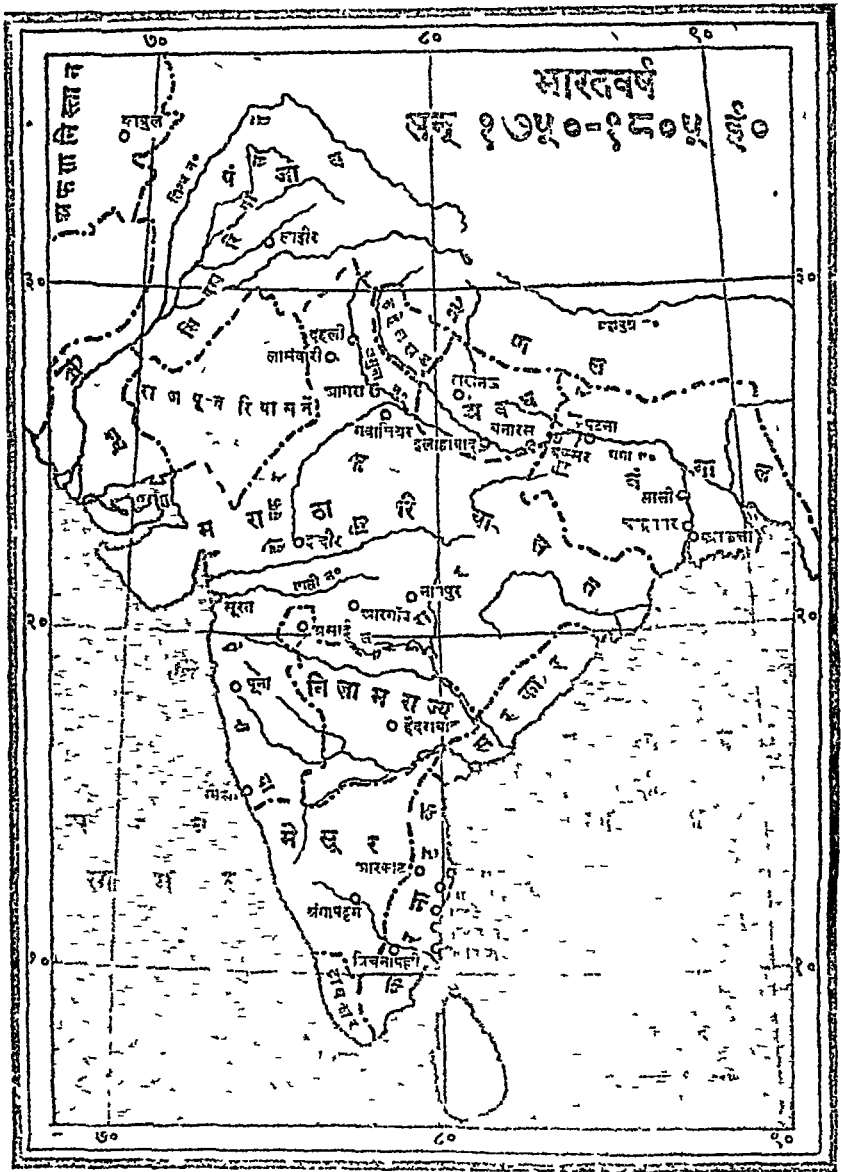
ग्रेट ब्रिटेन ने क्यूबा की राजधानी हवाना तथा फिलिपाइन द्वीपों की राजधानी मनीला ले लिये। फ्रान्स के मार्टिनीक और सेन्ट लूसिया भी अँगरेजों के अधिकार में आ गये। इसी बीच सन्धि की बातचीत आरम्भ हो कर १७६३ ई० में सन्धि हो गयी।

**बंगाल में प्लासी युद्ध ( १७५७ ई० )**—सन्धि का विवरण देने के पूर्व युद्ध की भारतीय परिस्थिति पर भी प्रकाश डाल देना आवश्यक है। भारतवर्ष में भी युद्ध के आरम्भ में अँगरेजों की हेठी रही। १७५६ ई० में बंगाल के नये नवाब सिराजुद्दौला का अँगरेजों से झगड़ा हो गया और उसने कलकत्ता छीन लिया। 'ब्लैक हॉल' की दुर्घटना इसी समय घटी बतलायी जाती है! क्लाइव मद्रास से आया और उसने कलकत्ता वापिस ले लिया। १७५७ ई० में उसने ३ हजार सिपाहियों और आठ तोपों से, ४० तोपों से सुसज्जित ५० हज़ार सेना पर प्लासी के मैदान पर विजय प्राप्त की। इस लड़ाई में नवाब के एक सेनापति मीरजाफर के विश्वासघात ने क्लाइव की बड़ी सहायता की। एकाएक मेह बरस जाने से नवाब का गोला बारूद भीग गया और क्लाइव ने त्रिपाल डाल कर अपना सामान भीगने से बचा लिया। फिर भी इतनी थोड़ी सेना होकर इतनी बड़ी सेना से भिड़ जाना क्लाइव ही जैसे वीर सेनापति का साहस था। इस विजय में बंगाल में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राजनीतिक प्रभुत्व का श्रीगणेश हुआ। कम्पनी ने मीर जाफर को गद्दी पर बैठाया और इसके बदले में उसे कलकत्ते के पास बहुत बड़ी जमींदारी मिल गयी।

**दक्खिन भारत मे वान्देवाश की लड़ाई ( १७६० ई० )**—दक्खिन में भी परिस्थिति बड़ी गम्भीर हो रही थी। फ्रान्सीसियों ने फोर्ट सेन्ट डेविड लेकर मदरास को घेर लिया था; किन्तु उन्हें शीघ्र ही भाग जाना पड़ा। १७५९ ई० में मसलीपट्टम के आक्रमण द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को सरकार प्रदेश का ८६ मील का पूरबी तट मिल गया और निजाम हैदराबाद के दरबार मे फ्रान्सीसियों के स्थान पर अँगरेजों का प्रभुत्व हो गया। अगले वर्ष बान्देवाश पर आयरकूट ने फ्रान्सीसियों को हराया, जिससे पांडिचेरी और फ्रान्सीसियों के अन्य नगर भी अँगरेजों के हाथ आ गये।

**१७६३ ई० की पेरिस की सन्धि**—१७६३ ई० में पेरिस की सन्धि के साथ इस गौरवप्रद युद्ध का अन्त हुआ। अमेरिका में नोवास्कोशिया और केप ब्रिटेन, कनाडा के अतिरिक्त मिसिसिपी के प्रदेश का सारा प्रदेश, केप ब्रिटेन द्वीप और सेन्ट लॉरेन्स नदी ग्रेट ब्रिटेन को और उसकी खाड़ी मे स्थिति सारे द्वीप फ्रान्सीसियों को मिले; तथा स्पेन से हवाना के बदले फ्लोरिडा मिल गया। पच्छिमी द्वीप समूह में उसे डोमिनिका, टुबागो और ग्रिनाडा, भूमध्यसागर में मिनारका और आफ्रिका में सेनिगल नदी के तट की बस्तियाँ मिलीं। ग्रेट ब्रिटेन ने स्पेन को हवाना और मनीला लौटा दिये और फ्रान्स को बेलील और गोरी, मार्टिनीक और सेन्ट लूसिया वापिस दे दिये। इसी प्रकार भारतवर्ष में फ्रान्स के नगर इस शर्त पर लौटा दिये गये कि वह उनकी क़िलेबन्दी न करे। न्यु फाउन्डलैंड के तट पर फ्रान्स को मछली पकड़ने के अधिकार के साथ-साथ दो छोटे छोटे द्वीप भी दिये गये। अगर इस समय पिट इंग्लैंड का प्रधान मन्त्री होता तो इस सन्धि की शर्तें और भी लाभप्रद होतीं। फिर भी ब्रिटिश साम्राज्य के विकास में पेरिस की सन्धि ने बहुत बड़ी उन्नति

उपस्थित कर दी। फ्रान्स ने जर्मनी को उसके सभी प्रदेश लौटा दिये। फ्रेड्रिक की यह भावना रही कि पृथक सन्धि कर ब्रिटेन ने उसका साथ छोड़ कर बड़ी नीचता दिखायी। यह अभियोग सत्य नहीं है फिर भी इसके कारण ब्रिटेन के सम्बन्ध में प्रशिया के विचार बहुत ज़माने तक कुंठित बने रहे।

---

# अध्याय १२

## प्रथम दो जार्ज राजाओं की गृहनीति

### ( १७१४-६० ई० )

### § १—ब्रिटिश शासन विधान का विकास

### ( १७१४ से १८३२ ई० तक )

अब हम युद्धों के प्रसंग को छोड़ कर १७१४ ई० के बाद की ग्रेट ब्रिटेन की गृहनीति पर विचार करना चाहते हैं। सन् १६८८ ई० के आन्दोलन के फल स्वरूप पार्लियामेन्ट ने शासन और कर व्यवस्था पर नियन्त्रण का अधिकार प्राप्त कर लिया था। फिर भी विलियम तृतीय ने स्वयम् अपना मन्त्रिमंडल बनाया और इंग्लैंड की गृहनीति और वैदेशिक नीति का सचालन किया—यहाँ तक कि रानी एन भी विभिन्न विभागों के प्रधानों के अधिवेशनों में अध्यक्षता करती थी और स्वयम् मन्त्रियों की नियुक्ति भी करती थी। इस समय की प्रिवी कौन्सिल मत-प्रदर्शन के विचार से बहुत बड़ी हो गयी थी।

चार्ल्स १म के राज्यकाल में एक अन्तरंग राजसभा बन गयी थी जिसे 'कैबिनेट' कहते थे। १६८८ ई० के विप्लव के बाद यह कैबिनेट एक स्थायी संस्था बन गयी। उस समय की प्रिवी कौन्सिल और कैबिनेट में बड़ा अन्तर हो गया था। प्रिवी कौन्सिल शासन के सम्बन्ध में सब कुछ जानने का दिखावा करते हुए भी वास्तव में कुछ न जानती थी और कैबिनेट के सदस्य यह समझते थे कि शासन की अन्तरंग बातें उनके सिवाय और किसी को ज्ञात नहीं थीं। किन्तु हनोवर वंश के राज्यारोहण के साथ एक भारी परिवर्तन उपस्थित हुआ। इसलिए १७१४ ई० के बाद १०० वर्षों के शासन-विधान का संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक हो गया है।

प्रधान मन्त्री और कैबिनेट प्रथा—उत्तराधिकार-निर्णायक ऐक्ट के अनुसार इंग्लैंड के राजसिंहासन पर एक विदेशी राजा बैठा जिसके परिणाम स्वरूप इंग्लैंड के शासन-विधान में प्रधान मन्त्री के पद का विकास हुआ। जार्ज प्रथम अँगरेज़ी बिलकुल नहीं बोल सकता था और जार्ज द्वितीय जो कुछ टूटी फूटी बोलता भी था वह उसके जर्मन स्वर के कारण बड़ी कठिनाई से समझ में आती थी। इसीलिए वालपोल को जो १७२१ ई० के बाद प्रधान मन्त्री बनाया गया था राजा से लैटिन भाषा में बोलने

का अभ्यास करना पड़ा। फिर दोनों राजाओं में से कोई भी ब्रिटिश राजनीति की पेचीली चालों में अधिक अभिरुचि नहीं रखता था। यही कारण था कि इन दोनों राजाओं में से कोई भी कैबिनेट के अधिवेशनों में उपस्थित न होता था। इसलिए जब जार्ज तृतीय राजा हुआ तो बहुत कुछ इच्छा होते हुए भी उसे अपने पूर्वजों के आदेश का अनुगामी होना पड़ा, और इस प्रकार कैबिनेट के अधिवेशनों में राजा के बजाय किसी एक मन्त्री के लिए ही प्रधान बनना और उसकी कार्रवाई चलाना स्वाभाविक सा हो गया। धीरे-धीरे राजा के स्थान पर वही मन्त्रियों की नियुक्ति करने लगा और स्वयम् प्रधान मन्त्री कहलाने लगा। इस तरह कैबिनेट के अधिवेशनों में जहाँ हर विषय के हर पहलू पर बहस होती थी उपस्थित न होने के कारण राजा का शासन-व्यवस्था से अधिकार हटता गया और कैबिनेट क्या निश्चय करे यह उसके अधिकार के बाहर की बात हो गयी। उसे कैबिनेट की कार्रवाई की सूचना मिल जाती थी और वह क्या करे इस विषय में उसके मन्त्रियों की सलाह। किसी विषय को अच्छी तरह न समझ पाने पर अथवा उस विषय में उसका कोई विशेष सम्बन्ध न होने पर वह उनकी सलाह से सहमत हो जाता था। धीरे-धीरे अँगरेज़ी कैबिनेट प्रणाली की और बातें भी जड़ पकड़ने लगीं और यह प्रथा चल पड़ी कि कैबिनेट के सब मन्त्री एक ही दल से चुने जायँ, वे सब मिलकर कैबिनेट की नीति के लिए उत्तरदायी हों अथवा अपने पद-पर बने रहने के लिए राजा की बजाय कामन्स सभा के निश्चय पर निर्भर करने लगें। अब तक प्रायः सारी नीति का निर्णय राजा पर निर्भर रहता था और मन्त्रियों की सम्मति ली जा सकती थी परन्तु अब धीरे-धीरे क्रम पलटता गया। अब मन्त्री निर्णय करने लगे और राजा से सम्मति ली जाने लगी। साथ ही रानी एन के बाद से इंग्लैंड के राजाओं ने पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत बिलों पर अनुमति देने से इनकार करना बन्द कर दिया।

आधुनिक समय में कैबिनेट राजा के विश्वस्त कर्मचारियों की एक समिति है। जब तक ये कर्मचारी राजा और पार्लियामेन्ट के विश्वासपात्र रहते हैं तब तक इनका अधिकार रहता है कि राजकीय विशेषाधिकारों को व्यवहार में लाने तथा राजकीय नीति को रूप देने में सम्मत्ति दें। इनका नेता प्रधान मन्त्री या प्राइम मिनिस्टर होता है जिसे राजा स्वयम् चुनता है और जो राजा की अनुमति से अपने सहकारियों को चुनता है। यह प्राइम मिनिस्टर राजा और (कैबिनेट) मन्त्रि-मंडल के बीच की कड़ी होता है। व्यक्तिगत रूप में इसका प्रत्येक सदस्य अपने-अपने विभाग की कार्रवाई का उत्तरदायी होता है और संयुक्त रूप में साम्राज्य की नीति का उत्तरदायित्व सारे कैबिनेट पर होता है। व्यवहार में इस समिति के सदस्य कामन्स सभा के बहुमत प्राप्त दल से चुने जाते हैं और उस समय तक अपने पदों पर बने रहते हैं जब तक यह बहुमत उनका सहायक रहता है। सामयिक राजनीतिक जटिल

समस्याओं पर इन सदस्यों का एक मत होता है तथा ये सब एक साथ पदत्याग करते हैं।

राजा की कौन्सिल के अर्थ में लोग 'कैबिनेट' से पहले से अभिज्ञ थे। चार्ल्स द्वितीय के शासन-काल में इसकी आलोचना अवैधिक कह कर की जाती थी। दोनों ह्विग और टोरी दल मन्त्रि-मंडल के उत्तरदायित्व को सिद्ध करने पर तुले हुए थे। इस गुप्त कैबिनेट की उन्नति में उन्होंने प्रिवी-कौन्सिल की स्थिति आशंकामय देखी। विलियम और एन के शासन-काल में इसकी स्थिति अधिक स्पष्ट होने लगी। १७१४ ई० में एक कैबिनेट विद्यमान थी यद्यपि उस समय तक न उसकी कोई स्पष्ट परिभाषा थी न सार्वजनिक स्वीकृति। उसके सदस्यों को सलाह देने का एकाधिकार न था न उनमें संयुक्त-उत्तरदायित्व था। राजा का अपने विश्वस्तों का चुनना भी स्पष्ट सिद्धान्त पर निर्भर न था। अर्थात् उस समय तक राजा मन्त्री द्वारा शासन करता था न कि आजकल की भाँति मन्त्री राजा द्वारा।

कैबिनेट प्रणाली के विकास की शिथिलता—कैबिनेट प्रणाली के विकास विवेचन में हमें दो भूलों से सतर्क रहना चाहिए। पहली भूल तो यह है कि हम को इस विकास-क्रम में किसी बात का उसके सम्पादित हो जाने के पूर्व ही पूर्ण न मान लेना चाहिए। जैसे १८वीं शती तक मन्त्रि-मंडल का प्रधान सचिव प्रधान मन्त्री न कहलाता था और मन्त्रियों के लोकप्रिय न होने की परिस्थिति में वह उनका प्रधान बनना अस्वीकार कर दे सकता था। फिर उस समय तक कैबिनेट के सभी मन्त्री राजा को अलग-अलग और भिन्न-भिन्न सम्मति दे सकते थे और सब मन्त्री एक साथ पद त्याग भी न करते थे। उस समय तक राजा की शक्ति भी बहुत विस्तृत थी और राष्ट्र के शासन-विधान का वह प्रधान अंग समझा जाता था। इस प्रकार वास्तव में १८वीं शती के मन्त्रियों को राजा और कामन्स के बहुपक्ष दो स्वामियों की सेवा करनी पड़ती थी और ऐसी परिस्थिति में जब देश में कोई सुव्यस्थित राजनीति का दल न था तो शासन और राजनीति में बहुत अधिक हाथ होना स्वाभाविक ही था।

कुलीनों की शक्ति—दूसरे यह भी समझ लेना चाहिए कि इस समय राजा की खोयी हुई शक्ति जन साधारण को मिल गयी थी और राज्य शासन प्रणाली की जगह प्रजातन्त्र स्थापित हो गया था। १८वीं शती में ब्रिटेन का शासन ऐसे थोड़े से पूंजीपतियों के हाथ में था जिनकी अपनी धन सम्पत्ति और ज़मीन जायदाद के कारण ही बड़ी विशाल शक्ति प्राप्त थी। उस समय के शासकवर्ग में लंडन नगर में रहने वाले वह थोड़े से सशक्त और सम्पन्न कुटुम्ब शामिल थे जिनके व्यक्ति किसी पास के पब्लिक स्कूल में शिक्षा पाकर एक दूसरे के साथ विवाह सूत्र में बँधे होने के कारण लंडन में धनीमानी समझे जाते थे। इस प्रकार के कुटुम्बों में पेल्हम; रसेल और कैवेंडिश आदि ही अग्रगण्य थे और इनके नेता प्रायः हर गवर्नमेन्ट में उच्च पदों पर पाये जाते थे और इनके सगे सम्बन्धी छोटे-छोटे पदों पर। एक कैबिनेट के आधे

सदस्य ड्यूक थे, और दूसरी में केवल एक सदस्य सर्वसाधारण में से था। इस ज़मीन्दार वर्ग का प्रभाव अकेले राजा पर ही नहीं था बल्कि लार्ड्स सभा में उनका प्रभुत्व था और कामन्स सभा में भी उन्हीं की तूती बोलती थी।

कामन्स सभा का विधान—१८३२ ई० के सुधार बिल के पूर्व तक हाउस ऑव कामन्स का संगठन किसी लोकतन्त्र प्रणाली के किसी सिद्धान्त के अनुकूल न था। सभा का प्रतिनिधित्व बड़ा असमान और विषम था। उदाहरण के लिए कामन्ससभा में कार्नवाल के इतने अधिक सदस्य होते थे जितने समस्त स्काटलैंड के। इसका कारण यह था कि कार्नवाल राजा की जागीर (डची) में था। इसी प्रकार इंग्लैंड और वेल्स की काउन्टियों में केवल भूस्वामियों की ही कामन्स सभा में जाने का अधिकार था और इन काउन्टियों में ऐसे भूस्वामी बहुत ही कम थे। इसी प्रकार इंग्लैंड और वेल्स के बरों में कारपोरेशन के सदस्यों को ही वोट देने का अधिकार मिला था। यहाँ तक कि बाथ नगर में केवल ३५ वोटर थे। मैन्चेस्टर और बरमिंगहम जैसे उन्नतिशील नगरों का कोई प्रतिनिधि न था और कई छोटे छोटे बर्गों के कामन्स सभा में एक या दो सदस्य तक चले जाते थे। इनमें से अधिकांश बरों के थे क्योंकि उनका पार्लियामेन्ट का सदस्य चुनने का अधिकार धन सम्पत्ति या कौटुम्बिक प्रभाव के अधीन था। इसलिए प्रत्येक बरों प्रायः सबसे ऊँची बोली बोलने वाले किसी धनी व्यापारी के हाथ बिका होता था। इसी प्रकार 'पाकेट बरा' का स्वामी कोई पड़ोस का जमीन्दार होता था जो पार्लियामेन्ट में भेजने के लिए अपने आसामी नियुक्त करता था। कहा जाता है कि १८ वीं शती के मध्य में ५० से कम सदस्यों को ड्यूक ऑव न्यू कैसिल के प्रभाव के कारण स्थान मिला था। थोड़े समय के बाद सर जेम्स लाउदर ६ सदस्यों को मनोनीत करने लगा। ये लोग सर जेम्स के 'नाइन पिन्स' या नौ पहलवान कहलाते थे और उनकी वोट पर उसी का अधिकार रहता था। जार्ज ३य के राज्यारोहण के समय पार्लियामेन्ट में अंगरेजी ठिकानों से केवल ४८६ सदस्य जाते थे। इस में से ८० काउन्टियों के प्रतिनिधि होते और प्रायः सभी जमीन्दार और कुलीन वर्ग के थे। बराओं के प्रतिनिधियों में ३२ का चुनाव गवर्नमेन्ट के अधीन था और २०० सदस्यों के वोट लगभग १०० संस्थानों के हाथ में थे। बाकी बचे १८० सदस्यों में से अधिकांश या तो स्वयम् रुपया देकर पार्लियामेन्ट में पहुँचते थे या उनके अभिभावक रुपया देकर उन्हें वहाँ पहुँचा देते थे। १७३० में पार्लियामेन्ट की मेम्बरी के लिए लगभग १५०० पौंड ख़र्च करने पड़ते थे। स्काटलैंड की निर्वाचन व्यवस्था भी इतनी ही अप्रतिनिधित्वशील थी। ब्यूट की काउन्टी में केवल १२ वोटर थे और बरों के निर्वाचन कुछेक व्यक्तियों के अधिकार में थे। १८३२ ई० के सुधार बिल पास होने के पहले २५ लाख की जन संख्या के स्काटलैंड में केवल ३ हजार निर्वाचक थे और स्काटलैंड में देश भर से किसी एक साधारण निर्वाचन में जितने वोट मिलते थे। उतने अकेले वेस्टमिन्स्टर के एक उपनिर्वाचन में

पड़ जाते थे। दूसरे स्कॉटलैंड से सम्बन्ध रखने वाले मन्त्रियों का प्रभाव बहुत अधिक था और वे तत्कालीन गवर्नमेन्ट के अनुकूल सदस्य प्राप्त करने में उस प्रभाव का उपयोग भी खूब करते थे। वालपोल के मन्त्रित्व में ड्यूक ऑव आर्गाइल और उसके भाई का बोल बाला था और पिट के समय में हेनरी डंडाज़ का इतना प्रभाव था कि वह नवाँ हेनरी कहलाता था और सब स्कॉट सदस्य उसी के पक्ष के थे।

राजनीति में उन्नति—१८वीं शती में राजनीति बड़ा लाभप्रद व्यवसाय समझा जाता था और उस समय के मन्त्री अपने सम्बन्धियों तथा सहायक को ऐसे अच्छे पद दिला सकते थे, जिनमें थोड़े से काम से अधिक धन प्राप्त हो सकता था। उदाहरण के लिए प्रधान मन्त्री वालपोल के तीसरे पुत्र होरेस वालपोल को जब वह ईटन में पढ़ता था ३०० पौंड सालाना की आय की जगह मिली हुई थी। अभी वह २० वर्ष का भी न हुआ था कि सरकारी ख़ज़ाने में उसे १५०० पौंड सालाना का पद मिल गया। प्रधान मन्त्री का देहान्त हो जाने पर इसी होरेस को चुंगीघर से एक हजार पौंड सालाना और मिलने लगा और वह जीवन भर इन सब पदों पर काम करता रहा। उसके अन्य दो भाइयों को भी जीवन भर के लिए ऐसे ही पद मिले हुए थे। फिर उस समय किसी पार्टी या मन्त्री का समर्थन करने का उपहार भी खूब मिलता था। जार्ज ३य के समय में ३८८ पियर बढ़ा दिये गये और इन में से अधिकांश को उनकी राजनीति सेवाओं के कारण ही यह पदवी मिली थी। इसी प्रकार के बहुत से पद और पेन्शनें पार्लियामेन्ट के सदस्यों के लिए सुरक्षित थीं। यह सब बातें उस समय की राजनीतिक प्रथा के अनुकूल ही थीं। हाँ, ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं जब पार्लियामेन्ट के किसी सदस्य को किसी विशेष अवसर पर उसकी वोट प्राप्त करने के लिए खुल्लम खुल्ला घूस दी गयी हो। फिर बड़े और छोटे पिट जैसे राजनीतिज्ञों के प्रयत्नों ने राजनीतिक आचरण के आदर्श को ऊँचा करने में बहुत सहायता की और १८ वीं शती के अन्त में इन पदों को तोड़ देने और पेन्शनों को कम कर देने के लिए जो बिल पास हुआ उसके कारण भी राजनीति के आदर्श में बहुत बड़ी उन्नति हुई। फिर सभी राजनीतिज्ञों के लिए राजनीति लाभप्रद व्यवसाय नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए ड्यूक ऑव न्यू कैसिल ने लगभग ५० वर्ष तक सार्वजनिक सेवा में व्यतीत किये और अन्त में वह २ लाख पौंड का कर्ज़ छोड़ कर मरा।

इस प्रकार सन १७१४ ई० से १८३२ तक जो राजनीतिक व्यवस्था रही उसने भी कई बड़े योग्य राजनीतिक उत्पन्न किये। इन लोगों ने बड़े कठिन समय में ब्रिटेन का सफलतापूर्वक नेतृत्व किया। वालपोल, कैनिंग, फॉक्स, बड़ा और छोटा पिट, ग्लैडस्टन, पामर्स्टन आदि अनेक महान राजनीतिज्ञों ने अपना राजनीतिक जीवन 'पाकेट बराओं' के प्रतिनिधि की हैसियत से प्रारम्भ किया। इसमें कोई शक नहीं कि उस समय की कामन्स सभा देश के लोकमत की विशेष चिन्ता न करती थी और न ही सर्व साधारण के विचारों में किसी परिवर्तन का उसे आभास होता था। परन्तु यह

भी मानना पड़ेगा कि अगर देश में किसी विषय पर लोकमत काफी प्रबल होता तो उसका प्रभाव अन्त में कामन्स सभा पर पड़े बिना न रह सकता था। इस प्रकार यह व्यवस्था बहुत अंशों में अच्छी ही थी; क्योंकि इसके कारण जहाँ कामन्स सभा की स्थिति में स्थायित्व आ गया था वहाँ उसके सदस्यों में भी स्वतन्त्रता का सूत्रपात हो चला था। और यह दोनों ही बातें देश की राजनीतिक उन्नति के लिए बड़ी मूल्यवान निधि बनती जा रही थीं। यद्यपि इस समय ज़मीन्दार-वर्ग की शक्ति प्रधान थी, किन्तु यह न समझ लेना चाहिए कि समस्त शक्ति उन्हीं के हाथ में थी और अन्य पेशे वाले जैसे व्यापारी और उद्योग-धन्धों वालों का इस सभा में कोई प्रतिनिधित्व ही न था। वकील, व्यापारी, जल सेना तथा स्थल सेना के आफिसर, साधारण नागरिक, नीतिज्ञ और अधिकारी सभी हाउस ऑव कामन्स में उपस्थित थे और उसे राष्ट्र की वास्तविक एकत्रित शक्ति बनाने में सहायक थे।

हनोवरवंश के राज्यारोहण से कैबिनेट शासन के विकास को अवसर ही नहीं मिला बल्कि लगभग ५० वर्ष तक ह्विग दल का प्रभुत्व बना रहा। उस समय के टोरी दल वाले निर्वासित स्टुअर्टों (जेम्स २य, उसके पुत्र और पौत्र) के हामी थे और 'जैकोबाइट' कहलाते थे। इसलिए ह्विग पार्टी का राज-स्थान पर अधिकार रहा। किन्तु १७६० ई० में जार्ज तृतीय के राज्यारोहण के साथ धीरे धीरे परिवर्तन होना शुरू हो गया और जैसे जैसे समय गुजरता गया टोरी दल का हनोवर वंश के साथ विरोध मिटता गया और राज्यसत्ता सम्बन्धी उसके और राजा के विचारों में बहुत कुछ समानता आ गयी। तब लगभग ६० वर्ष (सन् १७७० से १८३० ई०) तक अँगरेज़ी मन्त्रि-मंडल में टोरी दल की प्रधानता रही; यहाँ तक कि १७८९ ई० में फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति के डर से बहुत से ह्विग भी टोरी दल में सम्मिलित हो गये। इसी-लिए १८वीं के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड की इन राजनीतिक दलों और उनके मतों का विभाजन कठिन हो गया है। दो उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायगी। लॉर्ड नार्थ १७७० ई० में १२ वर्ष तक मन्त्री रहा। उसका मन्त्रि-मंडल प्रायः टोरी समझा जाता है परन्तु वह अपने को ह्विग कहता था। इसी प्रकार चैथम को किसी राजनीतिक दल में रखना कठिन है।

## §२—स्कॉटलैंड में सन् १७१५ और १८४५ ई० के विप्लव

सन् १७१४ से १७६० ई० के युग की प्रवृत्ति—जार्ज प्रथम और जार्ज द्वितीय के शासन के विषय में भी कुछ विस्तृत विवरण आवश्यक हो गया है। एक ऐतिहासिक ने कहा है कि इस युग में जनता की आत्मा तो मृतप्राय रही; हाँ उनका भौतिक जीवन ज़रूर स्थिर कहा जा सकता है। वस्तुतः इस युग में कोई ऐसी बात नहीं हुई जो स्फूर्तिदायक कही जा सके। इसके अन्त में राजनीति में सर्वथा कलुषिता व्याप्त थी और विरोधी दलों के पारस्परिक मतभेद किसी सिद्धान्त पर अवलम्बित न थे।

धर्मक्षेत्र में चर्च ऑव इंग्लैंड निष्क्रियता की निद्रा में पड़ा था और उसके नेता अर्थात् बिशपों को किसी प्रकार ईसाई नहीं कहा जा सकता था। उस समय की कविता में शब्दों के अर्थ बाहुल्य में चातुर्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति में बड़ी कृत्रिमता आ गयी थी और पोप इस प्रकार की कविता लिखने में सिद्धहस्त था। फिर इस युग में बहुत दिनों की शान्ति के बाद जब युद्ध का ज़माना आया तो अँगरेज़ी स्थल और जल सेनाएँ दोनों ही बिलकुल निकम्मी और अयोग्य पायी गयीं। यह सब त्रुटियाँ होते हुए भी इस युग में धार्मिक बातों में बहुत कुछ सहिष्णुता आने लगी थी और इहलौकिक विषयों में लोगों के ज्ञान की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी। देश समृद्ध हो रहा था, और व्यापार और उद्योगधन्धों की उन्नति हो रही थी। इस युग के पूर्वार्द्ध में तो देशव्यापी शान्ति की जितनी आवश्यकता थी उससे कहीं अधिक वह इंग्लैंड को प्राप्त हुई।

फिर ऐसे युग में यह कैसे सम्भव हो सकता था कि लोग हारे हुए पक्ष के निराश्रय आशा बनाये रखें। यद्यपि टोरी जमीन्दार और ऑक्सफ़र्ड के अन्दर जेकुएट स्टुअर्टों के ही गुणगान करते रहे, परन्तु अधिकांश राष्ट्र ने हनोवर वंश का राज्य स्वीकृत कर लिया था। केवल स्काटलैंड और विशेषकर हाईलैंड प्रदेश में स्टुअर्ट राजवंश के प्रति श्रद्धा दिखायी देती थी। स्काटलैंड दो विद्रोहों का केन्द्र रहा। पहला विप्लव सन् १७१५ ई० में हुआ। इसे 'मार्स का विद्रोह' कहते थे। यह तय हुआ था कि सारे स्काटलैंड में एक साथ विप्लव हो जाय। हाईलैंड प्रदेश में अर्ल ऑव मार्स और कम्बरलैंड के फास्टर इसके नेता रहे। तथा पश्चिम इंग्लैंड में ड्यूक ऑव ऑर्मंड आयरलैंड से आकर आक्रमण कर दे। परन्तु पश्चिम की ओर से होने वाला यह आक्रमण सम्भव न हो सका। इसी प्रकार दोनों स्कॉट सेनाओं को स्टर्लिंग पर संयुक्त आक्रमण करना चाहिए था, क्योंकि इस स्थान से स्कॉटलैंड के लोलैंड और हाईलैंड दोनों प्रदेशों को जाने वाले रास्ते की रोक हो जाती। परन्तु लोलैंड की सेनाएँ उत्तर के स्थान पर दक्खिन की ओर गयीं और प्रेस्टन पर कम्बरलैंड वाली सेना के साथ गिरफ़्तार हो गयीं। उसी दिन मार्स ने शेरिफम्योर पर हनोवरियन सेना का सामना किया। यद्यपि दोनों सेनाओं के एक-एक पार्श्व ने अपने सामने वाले पार्श्व को बुरी तरह हराया फिर भी युद्ध का परिणाम अनिश्चित रहा। अँगरेज़ी राज्य सेना ने एडिनबरा को जाने वाला मार्ग रोक लिया और सारा विद्रोह छिन्न भिन्न हो गया।

असफलता के कारण—इस विद्रोह की विफलता के कई कारण थे। पहले तो इसके नेता अयोग्य थे और किसी को मार्स के नेतृत्व में अधिक आस्था न थी। दूसरे विद्रोहियों के निश्चय के अनुसार ओल्ड प्रिटेंडर स्कॉटलैंड के तट पर उतरा अवश्य किन्तु उस समय जब कि शेरिफम्योर की लड़ाई हो चुकी थी। फिर वह ऐसी बेसरो सामानी की हालत में था कि न तो वह अपने साथ धन लाया और न सेना। साथ ही उसमें कोई ऐसा आकर्षण भी न था जो उत्साहवर्द्धक सिद्ध होता। फिर लुई चतुर्दश की अभी-अभी मृत्यु हुई थी और रीजेन्ट आर्लियाँ, जो लुई पंचदश की नाबा-

लिगी में शासन का प्रबन्ध करता था, ग्रेट ब्रिटेन के साथ शान्ति बनाये रखना चाहता था। इसीलिए फ्रान्स से भी कोई सहायता न मिल सकी और सब से आवश्यक कारण यह हुआ कि ह्विग गवर्नमेन्ट ने इस विषम परिस्थिति में बड़ी दृढ़ता के साथ व्यवहार किया।

सन् १७१८ ई० में स्पेन की एक छोटी सी सेना अर्ल मैरिस्कल के नेतृत्व में स्कॉटलैंड उतरी और मार्किस ऑव टुलिबार्डिन के नेतृत्व में १ हजार के लगभग स्कॉट उसके साथ हो लिये। राज्य की सेना ने ग्लेन्शील पर उन्हें परास्त कर तितर-बितर कर दिया।

१७४५ ई० का विद्रोह—सन् १७४५ ई० का तीसरा विद्रोह पिछले दोनों विद्रोहों से अधिक प्रबल था, यद्यपि १७१६ ई० और १७४५ ई० के बीच में स्टुअर्टों के पक्ष में यह विद्रोह सिर्फ़ स्काटलैंड तक ही सीमित रह गया था। यह विद्रोह आस्ट्रियन उत्तराधिकार के युद्ध के अवसर पर फोन्टिनाय की लड़ाई के बाद ही हुआ था जिसमें अँगरेज़ों की बहुत सी सेना कट गयी थी। सन् १७४५ ई० के विद्रोह का नायक ओल्ड प्रिटेन्डर का पुत्र चार्ल्स एडवर्ड था। उसका साहस और आकर्षक व्यक्तित्व विजयाभिमुख हाईलैंडरों के नेतृत्व के योग्य था। यद्यपि फ्रान्स ने उसे सहायता देने से इनकार कर दिया फिर भी उसने अपने पूर्वजों के सिंहासन को लौटाने का निश्चय कर लिया था, और जुलाई सन् १७४२ ई० में वह केवल सात आदमी लेकर स्काटलैंड के उत्तर पच्छिमी तट पर मोइडार्ट में आ उतरा।

कई हाईलैंडर सरदार इस प्रयत्न की मूर्खता को खूब समझते थे। लोकेल के लॉशील और मैकडनल्ड ने उसे समझने का प्रयत्न किया; किन्तु उसने उनकी एक न सुनी। उसका अटल निश्चय देखकर इन दोनों ने भी उसकी सहायता की। कई और कुटुम्ब भी उसके साथी हो गये और चार्ल्स दक्खिन की ओर आगे बढ़ा। विपक्ष का सेना नायक कोप एडिनबरा से उसका सामना करने उत्तर को आया। किन्तु वह उससे बड़ी भारी भूल हुई और चार्ल्स का एक बहुत ही योग्य अफ़सर लॉर्ड जॉर्ज मरे अविरोध एडिनबरा में प्रवेश कर गया और कोप का सामना करने के लिए प्रेस्टनपान्स की ओर बढ़ा। उस समय तक कोप भी समुद्र की राह होकर वहाँ पहुंच गया था। एक अभेद्य दलदल को रात में ही पार कर चार्ल्स प्रातःकाल तक शत्रु के सामने दो सौ गज की दूरी पर जा पहुँचा और उसकी हाईलैंडर सेना ने पहले अँगरेज़ी तोपख़ाना, फिर सवार और फिर पैदल सेना पर ताबड़तोड़ आक्रमण कर दस मिनट में निश्चित विजय प्राप्त कर ली। अँगरेज़ी सेना सिर पर पैर रख कर भाग गयी और चार्ल्स की सेना में बहुत क़म सिपाही घायल हुए। इस विजय के परिणाम स्वरूप सारा स्काटलैंड अब उसके अधीन हो गया।

इंग्लैंड पर आक्रमण—इसी बीच में जनरल वेड को इंग्लैंड पर आक्रमण की रक्षा के लिए १० बटेलियनों के साथ उत्तर की ओर न्यूकैसिल भेजा गया। राज-

कुमार चार्ल्स अपने योग्यतम सलाहकारों की सम्मति के विरुद्ध दक्खिन की ओर चढ़ गया। फिर वेड की आँख बचाकर पच्छिम की ओर मुड़ पड़ा, और कारलाइल से इंग्लैंड में प्रवेश कर, मान्चेस्टर पर जा धमका। डारबी पहुँच जाने से वह लंडन से केवल १२५ मील दूर रह गया था। उसे अभी और आगे बढ़ना चाहिए था या नहीं यह बड़ा विवादग्रस्त विषय है; परन्तु यदि वह यह जान पाया कि उस समय स्थिति ऐसी भयंकर हो गयी थी कि प्रधान मन्त्री न्यूकैसिल, इस सोच विचार में था कि प्रिटेंडर का साथ दे अथवा न दे; द्वितीय जार्ज हनोवर लौट जाने की तैयारी कर रहा था और लोग भय और आशंका के कारण बैंक से अपना रुपया निकाल रहे थे—तो वह ज़रूर आगे बढ़ जाता। ऐसी विषम परिस्थिति में लार्ड जार्ज मरे ने बड़ी सतर्कता से काम लिया। उसने सोचा कि उत्तर में एक सेना वेड के साथ मध्य प्रदेश (मिडलैंड) में, दूसरी कम्बरलैंड के साथ, और तीसरी सेना लंडन के पास पड़ी हुई है। इधर चार्ल्स की सेना तितर-बितर हो रही है और उसे सैनिक नहीं मिल रहे। फिर स्काटलैंड के लोलैंड प्रदेश जिन्हें इंग्लैंड के साथ एकता के कारण बहुत कुछ लाभ हुआ था चार्ल्स की ओर से उपेक्षित हो रहे हैं और उत्तरी इंग्लैंड में उसे तनिक भी प्रोत्साहन नहीं मिला है। ऐसी हालत में उन सब का धैर्य छोड़ देना इच्छा के बड़ी भारी भूल होगी। बस फिर क्या था, परिस्थिति बदल गयी और चार्ल्स विरुद्ध उलटे पीछे लौटना पड़ा।

विद्रोह का दमन—चार्ल्स के इस पीछे लौट पड़ने का परिणाम यह हुआ कि अब विप्लवकारी अपने बचाव की चेष्टा करने लगे और इस नीति-परिवर्तन से विद्रोह की असफलता अनिवार्य हो गयी। चार्ल्स स्काटलैंड में सुरक्षित पहुँच गया और जनवरी १७४६ ई० में फालकिर्क पर उसने एक विजय भी प्राप्त की। किन्तु अब ड्यूक ऑव कम्बरलैंड को स्कॉटलैंड का प्रधान सेनापति बनाया गया। उसने योग्यता से अपनी सेना का शिक्षण शुरू किया। हाईलैंडरों पर विजय पाने के लिए उसने अपनी पैदल सेना की सामने की श्रेणियों को घुटनों के बल बैठ कर संगीनें ताने हाईलैंडरों के सामने आते ही उन पर आक्रमण करने और पीछे की श्रेणियों को एक साथ गोली चलाने की शिक्षा दी। इस प्रकार जाड़ों भर पहाड़ी प्रान्त में बड़ी कुशलता से शिविर-युद्ध लड़ने के बाद कम्बरलैण्ड ने इनवरनैस के पास कलोडन पर चार्ल्स का सामना किया और एप्रिल १७४६ ई० में पूर्ण विजय प्राप्त की।

युद्ध के बाद कम्बरलैण्ड ने हारे हुए स्कॉटों पर घोर अत्याचार किये। विद्रोह-शान्त हो जाने पर भी बहुत से स्कॉटों को फाँसी हुई। प्रिन्स चार्ल्स के सिर का मूल्य ३० हजार पौंड लगा दिया गया था; परन्तु पाँच महीने दलदलों पहाड़ों और पच्छिमी द्वीपों में मारे-मारे फिरने के बाद फ़्लोरा मैकडनल्ड की वीरता से वह स्त्री वेष में निकल भागा और फ्रान्स में जा पहुँचा। वह १७५० ई० में एक बार फिर गुप्त रूप से इंग्लैण्ड आया; परन्तु इस बार उसे कोई सहायता न मिली और आख़िर १७८८

ई० में० में उसकी मृत्यु हो गयी। इस बीच में पार्लियामेन्ट ने स्काटलैण्ड के निशस्त्री-करण के लिए एक ऐक्ट पास किया। हाईलैण्ड के सरदारों के विद्रोह में सम्मिलित होने के कारण उनके परम्परागत अधिकारों को छीन लिया गया और हाईलैन्डरों को राष्ट्रीय वेष-भूषा भी नष्ट करने का असफल प्रयत्न किया गया। इस प्रकार इस विद्रोह की असफलता के साथ जेकोबाइटों (स्टुअर्ट पक्षवालों) की सब आशाएँ मिट्टी में मिल गयी। शीघ्र ही हाईलैण्डर हनोवर वंश के उसी प्रकार राजभक्त बन गये जैसे वे स्टुअर्ट वंश के थे। पिट ने सप्तवर्षीय युद्ध के अवसर पर हाईलैण्डरों के दो रेजिमेन्ट भरती किये जिन्होंने 'अब्रहम की पहाड़ी' वाली लड़ाई में बड़ी वीरता और साहस के काम कर अपना सुयश विस्तीर्ण किया।

## § जार्ज १म और जार्ज २य ह्विग मन्त्री

अब दोनों जार्ज राजाओं के विषय में भी कुछ कहना आवश्यक है। जार्ज १म और जार्ज २य दोनों के व्यक्तित्व में कोई विशेष आकर्षण न था। जार्ज १म को तो राजसी आचार-विचार का भी कोई ज्ञान न था। जार्ज द्वितीय कर्कश, चिड़चिड़ा तथा कंजूस था। उसने अपने १५ वर्ष से काम करने वाले मन्त्री वालपोल को ही उपहार दिया और वह हीरा भी दोषपूर्ण था। इनमें से कोई भी राजा विज्ञान, कला-कौशल अथवा साहित्य में अभिरुचि नहीं रखता था। दोनों का अपने ज्येष्ठ पुत्रों से झगड़ा हुआ जार्ज प्रथम का अपनी रानी से भी झगड़ा हुआ और उसने उसे तीस वर्ष तक जेल में रक्खा। जार्ज द्वितीय अपनी रानी कैरोलाइन के साथ बहुत कम करता था। वह बड़ी योग्य रानी थी और सामयिक साहित्य और दर्शन में उसकी बड़ी तीव्र अभिरुचि थी। उस समय की राजनीति पर भी उसका बहुत कुछ प्रभाव था।

परन्तु जार्ज प्रथम और जार्ज द्वितीय दोनों में ऐसे गुण भी थे जिनका उन की प्रजा पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। दोनों बड़े वीर सैनिक थे। १५ वर्ष की अवस्था से ही जार्ज प्रथम ने अपना सैनिक जीवन प्रारम्भ किया था और स्पेन के उत्तराधिकार के युद्ध में कुछ समय तक सेना का संचालन भी किया। जार्ज द्वितीय ने ऊदेनार्द की लड़ाई में एक बड़ी अश्व सेना लेकर आक्रमण किया था और ३५ वर्ष बाद डेटिञ्जन की लड़ाई में वही पुरानी वर्दी पहन कर सिंह की भाँति लड़ा था। दोनों राजा सत्यनिष्ठ तथा विश्वासपात्र थे। अपने मित्रों के प्रति दोनों बड़ी श्रद्धा रखते थे और दोनों शत्रुओं के प्रति उदार थे। उनसे बदला लेने के लिए कभी इच्छुक न थे। इन दोनों राजाओं के सम्बन्ध में एक बात बड़े मार्के की यह है कि हनोवर के अवाध्य शासक होते हुए भी, उन्होंने इंग्लैण्ड में वैधानिक शासन की सीमाओं का कभी उल्लंघन नहीं किया और इंग्लैण्ड की राज्य-व्यवस्था में उन्होंने सदा ब्रिटिश मन्त्रियों की सलाह और मन्त्रणा पर विश्वास कर कभी किसी जर्मन मन्त्री या कृपापात्र से मश-विरा लेने की भूल नहीं की। जार्ज प्रथम से, जो ५४ वर्ष की आयु में इंग्लैंड की गद्दी

पर बैठा और अँगरेजी का एक शब्द भी न जानता था, अँगरेज़ी राजनीति की अन्तरंग बातें समझने की आशा नहीं की जा सकती थी। उसका आधा जीवन हनोवर में बीता था और उसका प्रभाव इंग्लैंड में बहुत कम था। जार्ज द्वितीय भी हनोवर का प्रेमी था परन्तु ग्रेट ब्रिटेन के विषय में भी उसकी खूब जानकारी थी। कुशल नीति से तथा ज्ञानशील होने के कारण यहाँ की गृहनीति पर उसका काफ़ी प्रभाव था।

सन् १७१४ से १७२० ई० तक का ह्विग मन्त्रिमंडल—सन् १७१४ में जार्ज प्रथम के राज्यारोहण के साथ ह्विग दल शक्तिशाली बन गया। टोरियों पर जेकोबाइटो के प्रति सहानुभूति रखने का लांछन लगा था, इसलिए जार्ज तृतीय के राज्यारोहण के बाद ४५ वर्ष तक ह्विग दल ही शासनाधिकार में रहा। जार्ज प्रथम की प्रथम पार्लियामेन्ट में ह्विग बहुमत का प्राबल्य था और उसने खूब जोर शोर से काम किया और रानी एन के समय के टोरी पार्लियामेन्ट द्वारा प्रसारित असहिष्णुता सूचक ऐक्टों को रद्द कर दिया। हार्ली आदि कई टोरी नेताओं पर अभियोग चलाया। मार्स के विप्लव के बाद इस आशंका से कि नयी पार्लियामेन्ट में टोरी बहुमत न हो जाय, ह्विग मन्त्रि-मंडल ने एक ऐक्ट पास किया जिसके अनुसार भविष्य में पार्लियामेन्ट का निर्वाचन सप्तवर्षी कर दिया गया। इस प्रकार इन लोगों ने अपने अधिकार-शासन की अवधि बढ़ा ली। इस ऐक्ट के अनुसार हर पार्लियामेन्ट का जीवन सात वर्ष का हो गया और यह क्रम सन् १६११ तक जारी रहा। वास्तव में सात वर्ष की अवधि विलियम तृतीय के समय की तीन वर्ष की अवधि से कहीं अच्छी थी; परन्तु इसी बीच में ह्विग मन्त्रि-मंडल के चार मन्त्रियों में विरोध हो गया और १७१७ ई० उनमें से दो टाउनसेंट और वाल पोल ने पद त्याग कर दिया। इस प्रकार मार्लबरा के दामाद संडरलैण्ड और मिनारका विजेता स्टैनहोप परम शक्तिशाली हो गये। सन् १७२० में इन दो मन्त्रियों का शासन भी अकस्मात समाप्त हो गया।

दक्खिनी सागर का बुलबुला—सन् १७११ में 'हार्ली ने दक्खिनी सागर के व्यापार की उन्नति के लिए एक कम्पनी बनायी। इसकी खूब समृद्धि हुई और १७१६ ई० में इसने राष्ट्रीय ऋण का भार ले लेने का प्रस्ताव किया। इस प्रकार यह कम्पनी ही गवर्नमेन्ट को एक मात्र ऋण देने वाली हो जाती और अन्य ऋण देने वालों को कम्पनी के हिस्से देकर या नकद रुपया देकर ऋण चुका देती। इस एकाधिकार के लिए कम्पनी ने ७० लाख पौंड देने और राष्ट्र से व्याज खाते वसूल होने वाली रक़म कम कर देने का प्रस्ताव किया। गवर्नमेन्ट ने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया, क्योंकि कम्पनी ने कई मेम्बरों को घूंस दी थी। सब लोग इसमें हिस्से ख़रीदने लगे और इसकी इतनी धूम मची कि कम्पनी के डाइरेक्टरों ने यह सोचा कि गवर्नमेन्ट के एक मात्र ऋणदाता होने से उनका बड़ा विज्ञापन होगा।

यह कार्य बड़ा उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुआ। १०० पौंड के हिस्सों का दाम बढ़ते-बढ़ते १ हजार पौंड तक पहुँच गया। परन्तु अब सट्टे-बाज़ों की बन आयी और

अनेकों कम्पनियाँ खुल गयीं। इन सबके हिस्से भी धड़ा-धड़ बिकने लगे। कुछ समय बाद इसकी प्रतिक्रिया शुरू हुई। लोगों को साउथ सी कम्पनियों के हिस्सों के मूल्य के विषय में सन्देह होने लगा और वे उनसे मुक्ति पाने का प्रयत्न करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि इन हिस्सों का मूल्य जितनी तेजी से बढ़ा था उतनी ही, बल्कि उससे भी अधिक शीघ्रता से घटने लगा और सैकड़ों हजारों मनुष्य जिन्होंने बढ़ती के समय इस कम्पनी के हिस्से खरीदे थे अपनी सारी धन-सम्पत्ति गँवा बैठे। आख़िर वालपोल ने परिस्थिति को सँभाला। डाइरेक्टरों की २० लाख पौंड की सम्पत्ति जब्त कर ली गयी और हिस्सेदारों में बाँट दी गयी। कम्पनी ने जो ७० लाख पौंड सरकार को देने का वचन दिया था वह क्षमा कर दिया गया। इस प्रकार कम्पनी की पूँजी के पुनर्विभक्त करने से प्रत्येक हिस्सेदार को ३३ प्रति शत धन मिल गया।

मन्त्रि-मंडल का पतन (१७२० ई०)—शीघ्र ही प्रतिहिंसा की पुकार सुनायी देने लगी। लोगों में बड़ी नाराज़गी फैल गयी और उनका क्रोध इस हद तक बढ़ा कि डाइरेक्टरों को बोरों में बन्द करके टेम्स नदी में फेंक देने तक के प्रस्ताव किये गये। मन्त्रियों को घूस देने का भी भेद खुल गया और गवर्नमेन्ट का पतन हो गया। सन्डरलैंड ने पदत्याग कर दिया। स्टेनहोप के ऊपर जब अनीति का अभियोग लगाया गया तो वह मूर्च्छित होकर मर गया। एक और मन्त्री ने आत्महत्या कर ली; दूसरा टावर में भेजा गया और तीसरे पर शीतला का प्रकोप होने से वह भी मर गया। इस प्रकार वालपोल के लिए मन्त्री बन जाने का मार्ग सुलभ हो गया। वालपोल का साउथ सी कम्पनी से कोई सम्बन्ध नहीं रहा; यद्यपि उसने बड़ी बुद्धिमानी से अपने हिस्सों के क्रय-विक्रय में १ हज़ार प्रतिशत तक लाभ प्राप्त किया था।

वालपोल का चरित्र—राबर्ट वालपोल अपने युग का आदर्श मन्त्री था। नारफक के एक जमीन्दार के यहाँ उसका जन्म हुआ था। ईटन में उसकी शिक्षा हुई। वह बड़ा हँसमुख, मिलनसार और सहिष्णु प्रकृति का मनुष्य था। खेलकूद और तमाशों का वह इतना शौकीन था कि उसकी अन्य चिट्ठियाँ कितनी ही आवश्यक क्यों न हों, वह पहले अपने शिकारगाह की डाक खोलता था। वह बड़ा परिश्रमी और बुद्धिमान था। वह कभी जल्दबाज़ी न करता। उसमें अपनी चिन्ताओं को भुला देने का बड़ा असाधारण गुण था। वह कहा करता था कि कपड़े उतार देने के साथ ही मैं अपनी चिन्ताओं का भार हलका कर डालता हूँ। उसका कथन था कि वह कोई सन्त है न सुधारक और न ही बड़ा धीर वीर। पुरुष वृत्ति का सीधा-साधा मनुष्य होने के कारण उसमें उत्साह का अभाव था। उसकी वैदेशिक नीति में देश के सामने उपस्थित करने के लिए कोई उच्च आदर्श न था और न ही उसे इस बात की लगन थी कि अपने देशवासियों का दुख दूर कर उनके जीवन को सुखी बनाये। ऐसा नीतिज्ञ देश को समृद्ध बना सकता है, किन्तु उसे महान् नहीं बना सकता। यह ग्रेट-ब्रिटेन का सौभाग्य

था कि वालपोल के बाद उसे पिट जैसा क्रियात्मक शक्ति का देने वाला और कार्यशील मन्त्री प्राप्त हुआ।

**वालपोल का शासन**—(१७२१-४२ ई०) वालपोल के २१ बरस के शासनकाल का कोई बड़ा इतिहास नहीं है। उसने अपने शासन के अन्त तक विदेशों से शान्ति रखने का प्रयत्न रखा और यह नीति इंग्लैंड के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुई। गृह-नीति में कोई विशेष घटना नहीं घटी। उसकी अर्थनीति का इतिहास अवश्य बहुत महत्वपूर्ण है। वालपोल महान् अर्थनीतिज्ञ था। दक्खिनी सागर कम्पनी वाली दुर्घटना के बाद उसने आर्थिक स्थिति को सँभाल कर लोगों में साख बनाये रखी। उसने शीघ्र ही मालूम कर लिया कि इंग्लैण्ड की आयात-निर्यात चुंगी युरोप के सब देशों की अपेक्षा बहुत अनिश्चित थी, इसलिए उसने बहुत सी वस्तुओं पर से चुंगी हटा ली और इस प्रकार अपने देश का टैरिफ़ बहुत उन्नत कर दिया। आर्थिक व्यवस्था के प्रत्येक काम में वह बड़ा दक्ष था और यद्यपि जार्ज १म के शब्दों में वह मिट्टी से सोना नहीं बना सकता था फिर भी वास्तव में अपनी सी सब कुछ करने में कोई कोर-कसर न रखता था।

**वालपोल और कैबिनेट शासन का विकास**—कैबिनेट शासन के विकास में वालपोल का शासन बड़ा महत्वपूर्ण है और वह इंग्लैण्ड का सबसे पहला प्रधान मंत्री कहलाता है, क्योंकि वह अपने सभी सहकारियों की नियुक्ति करता और उनसे आग्रह करता था कि वे उसके साथ एक मत हों। मन्त्रि-मंडल की बैठक में राजनीति और शासन-विधान सम्बन्धी प्रश्नों पर वाद-विवाद और तर्क-वितर्क करने की शैली में उसका बहुत कम विश्वास था। वह तो यह पसन्द करता था कि अपने दो तीन खुशमिजाज सहकारियों के साथ भोजन के समय, जब किसी विशय पर अधिक मत-भेद-प्रदर्शन नहीं होता, ऐसे मामलात पर बातचीत कर ले। यदि किसी मन्त्री का उससे मत भेद हो जाता तो या तो उसे कार्टरेट की भाँति आयरलैंड का शासन करने के लिये हटा दिया जाता, या पुल्टनी की भाँति उसे विरोध-पक्ष का नेता बनना पड़ता अथवा टाउन्सेंड की भाँति खेती करने पर मजबूर होना पड़ता।

वालपोल के मन्त्रित्व में कैबिनेट व्यवस्था ने बड़ी उन्नति की। वह पार्लियामेन्ट को अपने समकक्षों से अधिक कुशलता से अपनी मुट्ठी में रख सकता था। वह एक दक्ष दल का नेता था और उसकी नीति 'दल-नीति' थी। वह वास्तव में पहला प्राइम मिनिस्टर था, यद्यपि उसने अपने आलोचकों की इस आलोचना का खंडन किया। उसने कैबिनेट में अपना प्रभुत्व और 'दबदबा' स्थापित किया। यह सच है कि उसे अपना कैबिनेट बनाने या अपने सहकारियों को मनोनीत करने का अधिकार नहीं था, फिर भी अपने साथियों को रखने और निकालने की उसकी शक्ति बहुत व्यापक थी। उसके प्रतिद्वन्दी बड़े महत्वाकांक्षी थे और प्रभुत्व के लिए उसकी कैबिनेट में अकसर झगड़े हुए। परन्तु उसने अपने से सहमत न होने वालों को

था तो अपना मत मानने या पदत्याग करने, पर विवश किया। मोटे तौर पर वालपोल राजा को एक मात्र सम्मति देने का अधिकार प्राप्त करना चाहता था और यह स्वीकार नहीं कर सकता था कि राजा किसी दूसरे की सम्मति पर चले। परन्तु वह इतने पर्याप्त समय तक मन्त्रीपद पर न रहा कि संयुक्त उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को स्थापित कर पाता। उसने अन्त में पद त्याग किया; इस कारण नहीं कि वह राजा का विश्वास पात्र न था, वरन् इसलिए कि वह पार्लियामेन्ट का विश्वासपात्र न रह गया था।

वालपोल और विरोध पक्ष—अपने मन्त्रित्वकाल में यद्यपि वालपोल का बोलबाला रहा फिर भी उसे कई प्रबल विरोध पक्षों का सामना करना पड़ा। जार्ज प्रथम के राज्यारोहण के समय बोलिंगब्रुक को जो युरोप भाग गया था अब इस पर इंग्लैंड लौटने की आज्ञा मिल गयी थी कि उसे हाउस ऑव लार्ड्स में बैठने और बोलने का अधिकार नहीं था। फिर भी वह 'क्राफ्टस्मैन' नामक पत्र में बड़े भावपूर्ण और जोशीले लेख लिखा करता था। बोलिंगब्रुक और उसके टोरी दल के साथ पुल्टनी के नेतृत्व में वे बुजर्ग ह्विग भी शामिल थे जो वालपोल की एकाधिकारी प्रभुता का विरोध करते थे तथा वे नवयुवक ह्विग भी जो विलियम पिट के साथ उस समय घूसखोरी और अनीत पर निरन्तर आघात करते रहते थे। फिर भी वालपोल अपने सिद्धान्त पर अटल रहा। उसे जार्ज प्रथम और जार्ज द्वितीय दोनों की सहायता प्राप्त थी—विशेष कर रानी केरोलाइन की। इसके अतिरिक्त उसकी तीव्र बुद्धि, सद्ज्ञान और सद्विनोद के समन्वय ने उसे हाउस ऑव कामन्स का प्रमुख नेता बना दिया था। फिर उसने पद और पेन्सनों के देने के अपने अधिकार और अपने प्रमुख सहायकों के पाकेट बराओं पर शासन रखने के कारण कामन्स सभा में अपना बहुमत स्थापित कर लिया था।

१७३३ ई० का ऐक्साइज बिल—वालपोल अधिक विरोध न बढ़ाने के विषय में भी खूब सतर्क था। डिसेन्टरों को छोटे छोटे नगरों में तथा अन्यत्र पद ग्रहण करने की आज्ञा देकर भी उसने इस विषय के निषेधात्मक नियमों का सविधि खंडन कर चर्च को नाराज़ कर देना उचित नहीं समझा। परन्तु एक दूसरे प्रसंग में उसने लोकमत से हार मान ली। सन् १७३३ में उसने एक एक्साइज़ बिल पेश किया। इसमें यह प्रस्ताव किया गया था कि शराब और तम्बाकू पर बन्दरगाह में पहुँचते ही कर नहीं लगाया जाय किन्तु आने पर उसे गोदामों में रख दिया जाय और वहाँ से जब देश के भीतर उपयोग के लिए निकाला जाय तब कर वसूल कर लिया जाय। इसका उद्देश्य यह था कि उन चीजों के लुका-छिपी के व्यापार को रोक दिया जाय तथा लन्डन और अन्य स्थानों का (फ्री पोर्ट) ऐसा बन्दरगाह बना दिया जाय जहाँ संसार के किसी भी देश के जहाज बिना चुंगी दिये माल उतार और लाद सकें।

परन्तु इस बिल का प्रबल विरोध हुआ। लोगों में यह ख़बर फैल गयी कि चुंगी वसूल करने वाले अधिकारियों की एक सेना बन जायगी, जो अपने बोझों से

निर्वाचनों में उथल पुथल कर देगी। ये लोग घर-घर चुंगी वसूल करने की फ़िकर में जाँच करते फिरेंगे और अँगरेज़ प्रजा का जीवन दूभर कर देंगे। लंडन के नागरिकों ने इस बिल के विरोध में एक प्रार्थना पत्र भेजा। वेस्टमिन्स्टर से लेकर टेम्पिल बार तक गाड़ियों की पंक्तियाँ इस प्रार्थना-दल के साथ थीं। सेना के सिपाही भी इसलिए विद्रोह करने को तैयार थे कि वे समझते थे कि उनकी पीने की तम्बाकू पर चुंगी बहुत बढ़ जायगी। इस प्रकार सारे देश में 'न चुंगी, न हुड़दंगी' की पुकार मच गयी और लोग इसी प्रकार के वाक्य अपनी टोपियों पर लिखकर प्रदर्शन करने निकल पड़े। हाउस ऑव कामन्स में विपक्षी दल की ओर से बिल का घोर विरोध हुआ। वालपोल का बहुमत क्षीण होकर केवल १७ रह गया। ऐसी परिस्थिति देख कर वालपोल ने बिल को स्थगित कर दिया।

१७३६ ई० का पोर्टियस विद्रोह—एक्साइज़ या (चुंगी) बिल के वापिस ले लेने के तीन वर्ष बाद स्काटलैंड में वालपोल के शासन की बहुत निन्दा की गयी। १७०७ ई० की एकता के परिणाम-स्वरूप इंग्लैंड जैसे ही स्काटलैंड में भी आबकारी कर बढा कर बराबर कर दिये गये थे। इसलिए स्काटों ने इन करों से बचने के लिए प्रयत्न करने शुरू कर दिये और स्कॉटलैंड भर में गुप्त व्यापार इतना जोर पकड़ गया कि चुंगी बिना दिये माल निकाल ले जाना यहाँ के लोगों का व्यवसाय बन गया। यह कुप्रथा यहाँ तक बढ़ गयी कि १७३६ ई० में दो प्रसिद्ध चोर व्यापारियों पर मुकदमा चलाकर उन्हें एडिनबरा में फाँसी लटकाने की आज्ञा हुई। परन्तु एक ने दूसरे को वीरता पूर्वक छुड़ाकर अपने को लोक-प्रसिद्ध नायक बना लिया। इसका फल यह हुआ कि उसकी फाँसी के समय उससे सहानुभूति प्रदर्शित करने वाली बड़ी भारी भीड़ जमा हो गयी। फाँसी के बाद कुछ हलचल मची और नगर-रक्षक सेना पर पत्थर फेंके गये। कप्तान पोर्टियस ने गोली चलाने की आज्ञा दे दी और लोग मारे गये इस पर जनता उत्तेजित हो उठी। कप्तान पोर्टियस पर अभियोग चलाया गया और उसे मृत्यु दंड की आज्ञा हुई; किन्तु सरकार ने उसे इस दंड से मुक्त कर दिया। तब जनता ने सरकारी आज्ञा का तिरस्कार कर उसे पकड़ लिया और फाँसी पर लटका दिया। इस पर वालपोल की सरकार ने एडिनबरा नगर भर को दंड देने के लिए एक बिल पास कराने का प्रयत्न किया। किन्तु इसकी सज़ाएँ इतनी कठोर थीं कि समस्त स्कॉट सदस्यों ने इसका घोर विरोध किया। आख़िर इस बिल का बहुत कुछ परिष्कार किया गया। इसी समय ड्यूक ऑव आर्गाइल ने उसका साथ छोड़ दिया और इस कारण स्काटलैंड में वालपोल का प्रभाव और भी कम हो गया। इन सब घटनाओं का यह परिणाम हुआ कि सन् १७४१ की नयी पार्लियामेन्ट में केवल ६ स्कॉट सदस्यों ने वालपोल का पक्ष लिया।

वालपोल का पतन (१७४२ ई०)—१७३७ ई० में रानी कैरोलाइन की मृत्यु ने वालपोल को एक प्रधान सहायक से वंचित कर दिया। इसी बीच में प्रिन्स

ऑव वेल्स भी विरोध पक्ष में सम्मिलित हो गया। अन्त में १७३६ ई० में विरोध पक्ष ने स्पेन के साथ युद्ध पर इतना ज़ोर दिया कि वालपोल को लड़ाई छेड़नी पड़ी और उसमें वालपोल की दुर्व्यवस्था का फल यह हुआ कि १७४२ ई० में कामन्स सभा ने उसके विरोध में प्रस्ताव पास कर उसे पद त्याग करने पर मजबूर कर दिया। वालपोल का शासन यद्यपि उत्साहजनक न था; किन्तु विदेशों में शान्ति क़ायम रखने और स्वदेश में निश्चेष्ट रहने की उसकी नीति के दो फल हुए। एक ओर तो हनोवर वंश की स्थिति सुरक्षित हो गयी और दूसरी ओर देश में शान्ति बनी रहने से उसको अपनी उन्नति कर लेने का अवकाश मिल गया, जिससे वह अगली शती के युद्धों का भार सहन कर सका। इसी प्रकार वालपोल की दृढ़ और निर्मल सूझबूझ गृहशासन की व्यवस्था में बहुत मूल्यवान प्रमाणित हुई और उसकी कुशल अर्थनीति ने तो देश की समृद्धि और व्यापार की उन्नति को बहुत लाभ पहुँचाया।

पेल्हम मन्त्रिमंडल (१७४४-५४ ई०)—वालपोल के स्थान पर जो नया मन्त्रिमंडल बना उसका प्रमुख सदस्य कार्टरेट था। आस्ट्रियन उत्तराधिकार के युद्ध में उसका कौशल देखने में आया। उसके बाद एक दूसरा मन्त्रिमंडल बना जिसमें हेनरी पेल्हम और उसके भाई ड्यूक ऑव न्युकैसिल के नेतृत्व में सभी प्रधान ह्विग शामिल थे। यह मन्त्रिमंडल सन् १७४४ से १७५४ ई० तक चला और इसने आस्ट्रियन उत्तराधिकार के युद्ध को समाप्त किया तथा १७४५ ई० के विद्रोह को शान्त किया। इस मन्त्रिमंडल ने भी गृह-शासन में वालपोल की शान्ति नीति का अनुसरण किया। इस मन्त्रिमंडल के शासन में कर-सुधार एक महत्वपूर्ण प्रसंग है। अब तक ग्रेट ब्रिटेन में पुराने रोमन कैलेंडर का प्रयोग होता था और सन् १५८२ में ग्रिगरी के सुधारे हुए पंचांग का नहीं। पुराने कैलेंडर (पंचांग) में कई दिन का फेर पड़ता था। मन्त्रिमंडल ने इसे ठीक करने के लिए १७५२ ई० के नवम्बर में कुछ दिन कम कर ३री तारीख को १४ वीं मान लिया। इस पर बड़ी हलचल मची और जनता मे यह पुकार मच गयी कि "हमारे यह दिन लौटाओ।" इसी समय एक और परिवर्तन हुआ और कानूनी साल का आरम्भ २५ मार्च की जगह पहली जनवरी से हो गया पेल्हम मन्त्रिमंडल के जमाने में ही १६५३ ई० में ब्रिटिश म्युजियम की नींव पड़ी और इस संस्था के स्थापित करने के लिए लाटरी डाल कर धन इकट्ठा किया गया।

ड्यूक ऑव न्यूकैसिल (१७५४-५६ ई०)—१७५४ ई० में पेल्हम की मृत्यु हो जाने पर ड्यूक ऑव न्युकैसिल प्रधान मन्त्री बना। वह बड़ा निकम्मा था। जल्दबाज़ी और शोरगुल के बावजूद भी वह कुछ करता धरता न था। उसके भाषण और उसका तौर तरीका सभी बड़ा विचित्र था और जब वह बोलता तो ऐसा मालूम होता था मानों कोई हुक्का गुड़गुड़ा रहा हो। परन्तु अनेक पाकेट बरों पर जहाँ से कामन्स के सदस्य आते थे उसके व्यक्तिगत प्रभाव तथा औरों की स्थिति सुरक्षित बनाने के लिए अपनी विशाल सम्पत्ति व्यय कर देने के कारण, उसकी स्थिति ऐसी दृढ़ हो

गयी थी कि वह ४० वर्ष तक निरन्तर प्रधान मन्त्री बना रहा। वह और उसका मन्त्रिमंडल इतना अशक्त था कि १७५६ ई० में सप्तवर्षी युद्ध के प्रारम्भ होते-होते उनको पद त्याग करना पड़ा। उसके उत्तराधिकारी मन्त्रिमंडल ने न्यूकैसिल की सहायता बिना अपने आप को असमर्थ पाया और उसका जैसा कोई प्रभावशाली व्यक्ति न होने के कारण वह कुछ भी न कर सका। भाग्यवश १७५१ ई० में पिट और न्यूकैसिल ने संयुक्त मन्त्रिमंडल बना लिया। न्यूकैसिल के ज़िम्मे लोगों को आश्रय, सहायता तथा पेन्शन आदि देने और व्यापार सम्बन्धी महकमे थे और पिट के ऊपर युद्ध संचालन का सारा काम छोड़ दिया गया था। किन्तु इसके पहले ही पिट और न्यूकैसिल सप्तवर्षी युद्ध को समाप्त कर पाते १७६० ई० में जार्ज द्वितीय की मृत्यु ने गृह-नीति का रूप ही बदल दिया और सन् १७१४ से स्थापित ह्विग प्रभुत्व बड़े ख़तरे में पड़ गया।

## § ४—पिट और वेली

पिट का चरित्र और प्रभाव—हनोवर युग के प्रारम्भ में इंग्लैंड की अवस्था बड़ी सन्दिग्ध हो गयी थी। सारे देश में निरुत्साह व्याप रहा था। इंग्लैंड के इतिहास में ऐसी अकर्मण्यता देखने में न आयी थी। आखिर १८ वीं शती के मध्य में पिट और वेज़ली के प्रयत्नों से इंग्लैंड की निद्रा भंग हुई। ईटन में शिक्षा प्राप्त करने के बाद पिट अश्व सेना में भर्ती हो गया। १७३५ ई० में उसने पार्लियामेन्ट में प्रवेश किया। वालपोल के समय के भ्रष्ट वातावरण ने उसे विरोध पक्ष में पहुँचा दिया। फिर कार्टरेट की वैदेशिक नीति के कारण उसे इस दूसरे मन्त्रिमंडल का भी विरोध करना पड़ा। वह अपने विचारों को इतने उग्र और दृढ़ रूप में प्रदर्शित करता था कि उससे प्रसन्न होकर वृद्धा डचेज़ ऑव कार्लबरा उसके लिए १० हजार पौंड की सम्पत्ति छोड़ मरी। पेलहम मन्त्रिमंडल में वह सेना के बख़्शी या वेतन बाँटने के पद पर नियुक्त हुआ; परन्तु इस पद के साथ लगी हुई परम्परागत वेतन बढ़ा कर दिखाने और हज़ारों लाखों की रकम हजम कर जाने की नीति पर चलने से उसने इनकार कर दिया। सन् १७५७ से १७६१ ई० तक पिट ही ग्रेट ब्रिटेन का असली शासक था। निस्सन्देह उसने एक स्थिर नीति का अवलम्बन नहीं किया। मन्त्रिमंडल के विपक्ष में उसने जिन बातों का विरोध किया था अधिकार पाने पर उन्हीं का वह समर्थक हो गया। बहुत से लोग इसलिए उसे प्रवंचक या मक्कार तक कहते हैं और यह कुछ अंशों में सत्य भी है। वह तड़क भड़क और दिखावा पसन्द करता था। सादगी उसे छू भी न गयी थी। नाट्यकार की भाँति उसे कृत्रिम-प्रदर्शन से अनुराग था और जब कोई उससे मिलने आता तो उसकी लाठी और बैसाखी ठीक स्थान पर सजी हुई पाता था। मन्त्रियों के साथ उसका व्यवहार दबदबे का था, और कभी-कभी असहनीय भी।

किन्तु पिट एक महान् पुरुष था। वह बड़ा अद्भुत और प्रभावशाली वक्ता था। एक समकालीन का कथन है कि उसके शब्द इतने गम्भीर होते थे कि युवकों

तक के तेज दौड़ने वाले रक्त संचार को स्तब्ध कर देते थे और कभी इतने उग्र कि उनकी शिराओं का रक्त प्रहार इतना तेज हो जाता था कि मानों वे फट जायँगी। कामन्स सभा पर पिट की वक्ता का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता था कि उसके बोलते ही लोग चित्र-लिखे से रह जाते थे और उसके विरुद्ध मुँह न खोल पाते थे। पिट इतना ईमानदार था कि उसे पथभ्रष्ट करना असम्भव था और बिना किसी अत्युक्ति के यह कहा जा सकता है कि अँगरेज़ी लोक-जीवन की उन्नति पर किन्हीं दो मनुष्यों का इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ा जितना इन दोनों पिता पुत्र का। नितान्त निर्भीक होने के कारण वह अन्याय देखकर प्रबल से प्रबल विरोध का सामना करने को तैयार हो जाता था। युद्ध मन्त्री की हैसियत से तो उसका कार्य सबसे महान् रहा और वह उन थोड़े से नीतिज्ञों में से था जो सभी विषयों में उन्नति और विशाल भावनाएँ रखते हैं। यह देश के दुर्भाग्य की बात थी कि वह अधिक काल तक मन्त्री पद पर न रहा। सन् १७५७ से १७६१ ई० तक ४ वर्ष और सन् १७६६ में केवल एक वर्ष ही उसे अपने महान् कार्य के सम्पादन के लिए मिल सके। यदि कहीं वह कुछ और समय के लिए रह पाता तो आयरलैंड शान्त हो जाता, अमेरिका हाथ से न निकल पाता, भारतीय साम्राज्य की व्यवस्था कुछ पहले हो जाती और पार्लियामेन्ट सम्बन्धी सुधार भी शीघ्र ही पूर्ण हो जाते—ऐसी धारणा अब भी लोगों में मौजूद है। वह स्वयम् ही उच्च भावनाओं से प्रेरित नहीं होता था, वरन् राष्ट्र के भी उच्च विचारों और श्रेष्ठ कृत्यों के लिए उत्साहित कर सकता था।

जॉन वेजली और मेथडिस्ट आन्दोलन—अँगरेज़ी राष्ट्र के धार्मिक जीवन का जॉन वेजली का वही प्रभाव था जो पिट का देश राजनीतिक जीवन पर। वेजली की शिक्षा चार्टर हाउस और ऑक्सफर्ड में हुई थी। पादरी बन जाने के बाद १७२६ ई० में वह ऑक्सफर्ड का फैलो हो गया और अगले ६ वर्ष तक वह एक छोटे से समाज का नेता बन गया, जिसका उद्देश्य व्यक्तिगत और पारस्परिक उन्नति करना था। इसी समाज के सदस्यों में उसका भाई चार्ल्स और जार्ज ह्विटफील्ड भी थे। यूनिवर्सिटी में वे लोग मेथडिस्ट कहलाते थे। वेजली दो वर्ष तक अमेरिका में नव-स्थापित उपनिवेश जार्जिया का पादरी रहा था। वहाँ से लौटकर उसने इंग्लैंड में फिर वही धार्मिक कार्य शुरू कर दिया जिससे उसे इतनी ख्याति प्राप्त हुई थी। १७३६ ई० में उसने ब्रिस्टल में अपना सबसे पहला मठ स्थापित किया और लंडन में सबसे पहली मेथडिस्ट सोसाइटी खोली। इस प्रकार १७३१ ई० में खुले स्थानों पर भी धर्मोपदेश होने लगे और उसका सन्देश लाखों आदमियों के पास पहुँचने लगा।

मेथडिस्टों का कार्य—जॉन वेजली और उसके सहकारी चार्ल्स वेजली, तथा ह्विटफील्ड ने बड़ा आश्चर्यजनक कार्य किया। तीनों में ह्विटफील्ड सबसे बड़ा उपदेशक था। उसने अपने ३४ वर्ष के उपदेशक जीवन में प्रायः ३० हजार

श्रोताओं के सामने प्रति सप्ताह १० धर्मोपदेशों के औसत से प्रचार किया। कोई धर्मोपदेशक ह्विटफील्ड के समान लोकप्रिय न था। तीस तीस हजार की भीड़ में भी उपदेश देते समय उसकी आवाज सब को स्पष्ट सुनायी देती थी और उसके वाक्यों में ऐसा जादू सा भरा था कि लार्ड चैस्टरफील्ड जैसा शिष्ट और आचारवान पुरुष भी एक बार उसका उपदेश सुनते सुनते भरी सभा में दयाद्रवित होकर चिल्ला उठा था। जॉन वेजली उससे भी बढ़ चढ़ कर था क्योंकि १७६१ ई० तक अपनी मृत्यु के पूर्व के ५० बरसों में उसने प्रायः ४० हजार धर्मोपदेश दिये और घोड़े पर बैठे-बैठे २½ लाख मील का देश-पर्यटन किया। कार्नवाल की खदानों में काम करने वाले मजदूर और सेना में लड़ाई लड़ने वाले साधारण सिपाही से लेकर जॉर्जिया के हब्शी और लंडन के फ़ैशन-प्रवृत समाज के सदस्य—उसके धर्मोपदेशों का सभी वर्गों पर प्रभाव पड़ता था। मैथडिस्टों का कार्य इंग्लैंड और वेल्स तक ही सीमित न रहा क्योंकि उनके विश्वास के अनुसार समस्त संसार उनका धर्मक्षेत्र था। ह्विटफ़ील्ड ने एटलान्टिक पार बारह बार से अधिक यात्राएँ कीं और वेज़ली ने ८० वर्ष से अधिक अवस्था में भी स्काटलैंड की यात्रा की।

मैथडिस्ट मत और चर्च ऑव इंग्लैंड—वेजली जीवन भर चर्च ऑव इंग्लैंड का सदस्य बना रहा, परन्तु धीरे-धीरे उसका चलाया हुआ आन्दोलन चर्च ऑव इंग्लैंड से स्वतन्त्र होता गया। कस्बों और नगरों में सर्वसाधारण की पूजा अर्चना के लिए बने हुए गिरजाघरों के साथ साथ उसके व्यक्ति विशेषों के लिए भी निजी गिरजे बनवाने की प्रथा चला दी। पहले तो ये निजी गिरजे सार्वजनिक गिरजाघरों के सहायक मात्र रहे, परन्तु अन्त में उसके प्रतिद्वन्दी बन गये। १७३७ ई० के शुरू में वेजली 'साधारण उपदेशक' नियुक्त करने लगा था; परन्तु ११ वर्ष के बाद १७४८ ई० में तो वह पादरियों को दीक्षा भी देने लगा और उसकी मृत्यु के बाद उसके अनुयायियों (वेज़लियो) ने अपनी संस्था ही बिलकुल अलग बना ली। वेजली की मृत्यु के समय से इन मैथडिस्ट सोसाइटियों की बड़ी उन्नति हुई है।

अँगरेजी राष्ट्र पर वेजली का प्रभाव—जार्ज वेज़ली केवल एक धार्मिक नव व्यवस्था का ही संस्थापक न था वरन् वह एक बड़ा समाज-सुधारक और धार्मिक नेता भी था। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सर्वसाधारण के प्रति दया और मनुष्यता की भावना का जो प्रदर्शन हुआ, या गरीबों की समस्या पर सहानुभूति के व्यवहार मूलक प्रयत्नों का जो तारतम्य चला, उसके विकास का अधिकाँश श्रेय उसी को है। समस्त ब्रिटिश जनता पर उसके धार्मिक उपदेशों का प्रभाव था।

जार्ज १म के राज्यारोहण के समय एक प्रतिष्ठित फ्रान्सीसी दार्शनिक का मत था कि इग्लैंड में धार्मिक जागृति का बहुत बड़ा अभाव था और इसमें सन्देह नहीं है कि हनोवर राजाओं के शासन के प्रारम्भ में देश भर में धार्मिक उत्साह का अभाव रहा, परन्तु जान वेजली के ही त्याग और अध्यवसाय का यह फल था कि उसने इग्लैंड

में ईसाई धर्म को मनुष्यों के व्यक्तिगत धर्म में और सारे राष्ट्र के जीवन में एक सजीव शक्ति का रूप दे दिया। इस कार्य के लिए उसकी कीर्ति सदा अमर रहेगी।

---

# अध्याय १३

## ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी अमेरिका

(१७६३–८३ ई०)

**सप्तवर्षी युद्ध का प्रभाव**—अब हम इंग्लैंड के इतिहास की एक बड़ी संकट-पूर्ण घटना अर्थात् अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम के कारण और उसकी प्रगति का वर्णन करेंगी। सप्तवर्षी युद्ध की सफलता ने उत्तरी अमेरिका से अँगरेजों की स्थिति को बड़ा गम्भीर बना दिया था। कहा जाता है कि हाईट्स ऑव अब्राहम पर वुल्फ की विजय के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका के इतिहास का श्रीगणेश हुआ। कैनाडा की विजय ने अमेरिका स्थित उपनिवेशों को फ्रान्स के राज्य में सम्मिलित कर लिये जाने से बचा दिया और उन्हें स्वतन्त्र होने तथा अपनी उन्नति करने के योग्य बना दिया। इस युद्ध के व्यय के कारण उपनिवेशों पर कर लादने का प्रयत्न किया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर में प्युरिटन लोकतन्त्रवादी और दक्खिन के ऐंग्लिकन जनतन्त्रवादी और गुलामों से खेती करानेवाले सभी वर्गों के लोग पहली बार सम्मिलित होकर इँग्लैंड का विरोध करने के लिए संगठित हो गये।

**व्यापारी नियन्त्रण**—सप्तवर्षी युद्ध के अन्त तक और सब उपनिवेशों की अपेक्षा ब्रिटिश अमेरिका के साथ सबसे अच्छा व्यवहार किया गया था। बहुत से उपनिवेशों ने तो १८वीं शती में ही बहुत अंशों में स्वतन्त्र शासन प्राप्त कर लिया था। यह सच है कि हर उपनिवेशों का गवर्नर प्रायः राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था, किन्तु इन उपनिवेशों की धारासभाओं को वैधानिक व्यवस्था तथा अर्थ नीति संचालन करने का बहुत कुछ अधिकार मिला हुआ था। फिर गवर्नर का वेतन भी उनकी व्यवस्था में आ जाने से वे गवर्नर को भी अपनी इच्छानुसार चलने के लिए बाध्य कर सकते थे। किन्तु इन सब उपनिवेशों की व्यापारी नीति का नियन्त्रण अभी ग्रेट ब्रिटेन के ही हाथ में था और वह इसका लाभ भी खूब उठाता था। इसके परिणाम स्वरूप अमेरिका में स्टील या ऊन का सामान बनाने—यहाँ तक कि टोपियाँ बनाने का भी इसलिए निषेध था कि ब्रिटेन से आने वाले माल के साथ प्रतिस्पर्द्धा न हो सके। युरोप से आने वाला सारा सामान पहले इंग्लैण्ड आता था और उपनिवेशों पर नेविगेशन ऐक्ट भी लगा हुआ था। फिर इन उपनिवेशों की कुछ प्रमुख-फ़सलें जैसे कपास और तम्बाकू तो केवल ग्रेट ब्रिटेन को ही भेजी जा सकती थीं। यह सत्य है कि उपनिवेशों को इसका बदला भी अच्छा मिलता था। यहाँ की

बहुत सी पैदावार—अन्न, मछली और रम—वे चाहे जहाँ भेज सकते थे। साथ ही उन्हें ब्रिटिश स्थल और जल सेनाओं का संरक्षण भी प्राप्त था। उत्तरी अमेरिका के उपनिवेशों को नेविगेशन ऐक्ट की सहायता से ही अपने व्यापारी जहाज बनाने का अधिकार था। फिर ब्रिटेन निवासियों को भी केवल अमेरिका की ही तम्बाकू पीने की आज्ञा थी। इन सब प्रतिबन्धों के कारण लुका-छिपा अनियमित व्यापार खूब चलता था।

सन् १७६३-६५ में ग्रेनविल की नीति—१७६३ ई० में जॉर्ज ग्रेनविल ग्रेट ब्रिटेन का प्रधान-मन्त्री हो गया। उसके समय में चार आपत्तिजनक घटनाएँ हुईं। उसने देखा कि अमेरिका से केवल २ हज़ार पौंड प्रति वर्ष आय होती थी। इससे प्रत्यक्ष था कि चोरी के व्यापार के कारण इंग्लैंड की काफी हानि हो रही थी। जब उसने इसे रोकने का प्रयत्न किया तो अमेरिकनों में बहुत उत्तेजना फैली। सन् १७६३ में कानून बना कर उत्तरी अमेरिका के अँगरेजी उपनिवेशों में फ्रान्सीसी पच्छिमी द्वीप-समूह से शीरे की आमद इसलिए रोक दी गयी कि वहाँ का शीरा ब्रिटेन अधिकृत पच्छिमी द्वीपसमूहों के आने वाले शीरे से अधिक सस्ता पड़ता था और बोस्टन के रम बनाने वालों का नुकसान होने के कारण चोरी का व्यापार खूब चलने और कानून का प्रतिबन्ध शिथिल पड़ने लगा था। ग्रेनविल ने बाहर से आने वाले शीरे पर चुंगी तो आधी कर दी परन्तु कानून की पाबन्दी पर जोर देकर उसे वसूल करने में कड़ाई करनी चाही। ब्रिटेन पर बहुत बड़ा आर्थिक संकट आ पड़ा था और ऐसी परिस्थिति में उसका वह विचार अनुचित न था कि हर उपनिवेश रक्षक सेना के लिए कुछ न कुछ धन व्यय करे। परन्तु इन सब कारणों से उपनिवेशों में उत्तेजना बढ़ गयी। तीसरे ब्रिटिश सरकार ने अमेरिका के मूल-निवासी (इन्डियनों) से भूमि छीन लेने की दुर्व्यवस्था को रोकने के लिए एक घोषणा की जिसके अनुसार उपनिवेशों के बड़े-बड़े भाग इन मूल-निवासियों के सुरक्षित कर दिये और बिना गवर्नर की सम्मति के रेड इंडियनों द्वारा भूमिदान करने का निषेध कर दिया गया। इस आज्ञा को इन उपनिवेशवासियों ने अपने अनियमित प्रसार की स्वतन्त्रता में बाधक और अपने अधिकारों का घातक समझा। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने इस कार्य पर बड़ा सन्देह और रोष प्रकट किया। चौथे ग्रेनविल की राय में अमेरिकन उपनिवेशों की फ्रान्सीसियों और मूल-निवासियों के आक्रमणों से रक्षा के लिए एक स्थायी सेना की आवश्यकता थी। सप्तवर्षी युद्ध के कारण ग्रेट ब्रिटेन पर राष्ट्रीय ऋण दूना हो गया था। इंग्लैंड निवासियों पर राज्य-कर भी बहुत अधिक था—यहाँ तक कि खिड़की के शीशों और सवारी की गाड़ियों पर भी टैक्स लगा दिया गया था। फिर युद्ध छिड़ जाने की भी आशंका हो रही थी। इसलिए इसका ख़र्च उपनिवेशों को ही देना चाहिए था।

सन् १७६५ ई० का स्टाम्प ऐक्ट—इस प्रकार ग्रेनविल का यह प्रस्ताव भी न्याय सम्मत था कि हर उपनिवेश सेना के व्यय के लिए एक तिहाई ख़र्च दे और

इसके प्राप्त करने के लिए एक ऐक्ट पास किया जाय जिसके अनुसार समस्त कानूनी कागज़ों पर टिकट लगाया जाय। उसने इस नियम पर विचार करने के लिए एक वर्ष का समय भी दिया, और उपनिवेशों के एजेन्टों से कह दिया कि यदि वे किसी और रूप में धन की व्यवस्था कर लेंगे तो उसके लिए यह भी सन्तोषजनक होगा। परन्तु जब वे कोई उपाय न सोच सके तो ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने १७६५ ई० में स्टाम्प ऐक्ट पास कर दिया। स्टाम्प ऐक्ट पास करने का ब्रिटिश पार्लियामेन्ट का यह अधिकार न्यायसिद्ध था; किन्तु यह स्वाभाविक था कि स्वाधीनताप्रिय लोग एक ऐसी पार्लियामेन्ट के कर-निर्धारण का विरोध करें जिसमें उनका कोई प्रतिनिधित्व नहीं, और जिसका सम्बन्ध ३ हज़ार मील के दूर देश से था और जो अपना ऋण हलका करने के लिए उनपर कर लगाना चाहता था। 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं लगाया जा सकता', यह सिद्धान्त अँगरेजी स्वतन्त्रता का मूलमन्त्र रहा है। इसलिए इस विरोध को रोकने की चेष्टा करना अँगरेज़ों के लिए भी कठिन हो गया। इसके साथ ही सुई के छिद्र में होकर ऊँट निकल जाने की कहावत के अनुसार उपनिवेश-निवासियों को यह भी आशंका हो गयी कि यदि इस कर को स्वीकार कर लिया गया तो ऐसा कौन सा प्रतिबन्ध हो सकता है जो भविष्य में और नये कर लगाने से पार्लियामेन्ट को रोक सकेगा। इसलिए इन उपनिवेशों ने विचारार्थ दी गयी एक वर्ष की अवधि का उपयोग विरोधान्दोलन के विस्तार में दिया और जब नियम पास हो गया और उस पर अमल दरामद शुरू हुआ तो दंगे शुरू हो गये। गवर्नर के घर में आग लगा दी गयी और कलक्टरों की मूर्ति का पुतला बनाकर उसे जला दिया गया। किसी ने स्टाम्प का उपयोग नहीं किया और १३ में से ६ उपनिवेशों के प्रतिनिधियों के इस कानून का विरोध करने के लिए एक मत होने से यह प्रमाणित हो गया कि इस ऐक्ट के विरोध में जनमत कितना प्रबल था।

**स्टाम्प ऐक्ट का रद्द होना ( १७६६ ई० )**—इन घटनाओं का समाचार जब इंग्लैंड पहुँचा तो ब्रिटिश नीतिज्ञों में मतभेद था। राजा और ग्रेनविल ने ग्रेट ब्रिटेन के न्यायसिद्ध अधिकार का समर्थन किया; किन्तु बर्क आदि नीतिज्ञों ने इस के न्यायसंगत होने पर विचार न कर उसे अनुचित और असामयिक बतलाया। पिट का विचार था कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को उपनिवेशों की आन्तरिक व्यवस्था के लिए कर लगाने का कोई अधिकार न था और उसने यह घोषणा की कि दास बन जाने पर ही अमेरिकन इसका विरोध स्थगित कर सकते थे। इस बीच में ग्रेनविल के पदत्याग के बाद राकिंगहम प्रधान मन्त्री हुआ। उसने स्टाम्प ऐक्ट रद्द कर दिया, यद्यपि उसी वर्ष यह ऐक्ट पास किया गया कि ग्रेट ब्रिटेन को उपनिवेशों पर कर लगाने का न्यायसिद्ध अधिकार था। अमेरिकन लोग इससे बड़े प्रसन्न हुए और आपत्ति की आशंका का अन्त होता दिखायी दिया।

**१७६७ ई० के नये कर और सन् १७६९ में उनका रद्द होना**—किन्तु

लार्ड चैथम के मन्त्रिमंडल के कोषाध्यक्ष टाउन्सैंड के कारण एक दूसरी आपत्ति खड़ी हो गयी। १७६७ ई० में जब चैथम बीमारी के कारण नितान्त असमर्थ था, टाउन्सैंड ने अमेरिकन उपनिवेशों मे आने वाले चाय, शीशा और काग़ज़ पर चुंगी लगा दी। उसका कहना था कि बन्दरगाह पर वसूल किये जाने के कारण यह तो वाह्य कर हैं और औपनिवेशिक इनका विरोध नहीं करेंगे। फिर इससे वसूल होने वाले धन से गवर्नरों तथा अन्य अफसरों का वेतन निकल आयगा जो अब तक एसेम्बली दिया करती थी। इस कार्य से औपनिवेशिक स्वराज्य के मूल सिद्धान्त की जड़ ही कट जाती इसलिए इसका प्रबल विरोध हुआ। सन् १७७० में लार्ड नार्थ के मन्त्रिमंडल ने जो आगामी १२ बरसों तक बना रहा, शीशा और काग़ज़ पर चुंगी हटा दी; किन्तु ब्रिटेन के कर लगाने के अधिकार को सुरक्षित रखने के विचार से चाय पर चुंगी यथावत रही। यह सरासर भूल थी।

सन् १७७०-७३ की दुर्घटनाएँ—दोनों ओर से खिंचाव होने पर छोटी छोटी घटनाएँ भी बढ़ कर उत्तेजनादायक हो जाती हैं और इसीलिए इस समय की कई घटनाओं से दोनों तरफ़ गहरा मनोमालिन्य उपस्थित हो गया। इस बात के बतलाने के लिए केवल दो प्रसंग पर्याप्त होंगे। बोस्टन के नागरिकों ने ब्रिटिश रेजिमेन्टों का अनेक भाँति अपमान किया और अन्त में एक दल ने सैनिकों को घेर लिया और उन्हें गालियाँ देने के बाद उन पर बर्फ के ढेले फेंकना आरम्भ किया। इसी झगड़े में उन पर गोली चला दी गयी और चार आदमी मारे गये। इसी घटना को बढ़ा कर "हत्याकाँड" कर दिया गया और बड़ी उत्तेजना फैल गयी। दूसरी घटना ने अँगरेजों को और भी उत्तेजित कर दिया। १७७२ ई० में एक राजकीय जहाज़ को जो चोरी व्यापार के दमन के लिए नियुक्त था अमेरिकनों ने जला दिया और इस कृत्य में भाग लेने वालों को कोई दंड नहीं दिया गया।

१७७३ ई० की बोस्टन टी पार्टी—और भी ऐसी ही कई घटनाएँ हुईं जिनके कारण शीघ्र ही युद्ध उपस्थित हो गया। इस समय भारतवर्ष में ईस्ट इंडिया कम्पनी बड़ी आर्थिक कठिनाइयों में थी इसलिए उसे भारतवर्ष की चाय सीधी अमेरिका भेजने की आज्ञा मिल गयी। इससे कम्पनी को केवल तीन पेन्स प्रति पाउंड मात्र अमेरिकन कर देना पड़ता। गरम दल वाले औपनिवेशिकों ने सोचा कि अँगरेज़ी सरकार इस प्रकार चाय सस्ती करके उन्हें खुश करना चाहती है और धोखा देकर उनसे चुंगी देना स्वीकृत करा लेना चाहती है। इसलिए जब १७७३ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के जहाज बोस्टन बन्दर में पहुँचे तो कुछ लोग मुहाकों के छद्म वेश में जहाज़ों पर चढ़ गये और उन्होंने चाय की ३४० पेटियाँ समुद्र में फेंक दीं।

१७७५ ई० के युद्ध का आरम्भ—अब ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने कड़ाई से काम लिया। मेसाचुसेट्स के शासन विधान में कुछ परिवर्तनों के एक ऐक्ट पास किया गया जिससे बहुत से अफसरों की नियुक्ति सरकारी अधिकार में आ गयी। बिना गवर्नर की

आशा के जनसाधारण की सभाएँ करना बन्द हो गया। बोस्टन का बन्दरगाह बन्द कर दिया गया, और इस प्रकार हज़ारों बोस्टन निवासी बेकार हो गये। गेज नाम के सैनिक को मेसेचुसेट का गवर्नर बनाया गया और उसकी सहायता के लिए बहुत सी सेना भी भेज दी गयी। अन्य उपनिवेशियों ने मेसेचुसेट्स की सहायता की, और फिलेडेल्फिया में अकेली जॉर्जिया को छोड़ कर अन्य सभी उपनिवेशों के प्रतिनिधियों की एक सभा हुई। इस सभा ने अपने अधिकारों की घोषणा ( डिक्लेरेशन ऑव राइट्स ) का विधान तैयार किया जिसमें पार्लियामेन्ट के तेरह ऐक्टों को रद्द करने की माँग पेश की और ब्रिटिश माल का बहिष्कार शुरू कर दिया। लॉर्ड नार्थ ने समझौते का प्रयत्न किया, किन्तु १७७५ ई० में लैक्सिंगटन पर एक झड़प हो जाने के कारण बीचबिचाव के लिए अवसर न रह गया।

अगले वर्ष ४ जुलाई, १७७६ ई० के दिन 'स्वतन्त्रता की घोषणा' हुई जिसमें १३ उपनिवेशों ने ग्रेट ब्रिटेन से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। इस समय भी इन उपनिवेशों में ऐसे बहुत से लोग मौजूद थे जो इस हद तक जाने से सहमत नहीं थे। इस घोषणा से संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वतन्त्र इतिहास का श्री गणेश होता है। स्वतन्त्रता की यह भावना किसी प्रकार रोकी जा सकती थी इसमें बहुतों को सन्देह है, परन्तु ब्रिटिश सरकार का भी बहुत कुछ दोष था, इसमें किसी को सन्देह नहीं। उस समय की अँगरेज़ी हकूमत उपनिवेशों के प्रति सहानुभूति न रखती थी और वहाँ की वस्तु स्थिति से अनभिज्ञ थी। फिर उसकी नीति भी अस्थिर थी। उस समय के औपनिवेशिक भी ज़रा-ज़रा सी बात में अपनी मानहानि समझने और झगड़ा करने लगते थे। किन्तु परिस्थिति बहुत कठिन हो गयी थी और किसी प्रकार की नीतिकुशलता उस समय काम न दे सकती थी। इस सम्बन्ध में दो बातें विशेष रूप से विचारणीय हैं। पहली तो यह कि औपनिवेशिक भी अँगरेज़ थे इसलिए स्वतन्त्रता और स्वराज्य की उनकी भावनाएँ भी अँगरेज़ों की ही भाँति थीं। उनमें भी उग्र विचारों के लोग अँगरेजी प्रभुत्व को नाम मात्र के लिए भी स्वीकार न कर सकते थे और उन्हें अँगरेजी गवर्नमेन्ट की हर बात में दमन और क्रूरता ही नजर आती थी। इसीलिए उन्होंने विद्रोह भी किया। किसी अन्य जाति के उपनिवेशवासी इस हद तक शायद न जाते। दूसरे जार्ज तृतीय के राज्यारोहण तक उपनिवेशों का बहुत कुछ राजनीतिक विकास हो गया था किन्तु इंग्लैंड को इसका कोई अनुभव न था और वास्तव में यही कठिनाई इस विद्रोह का प्रधान कारण थी। एक अमेरिकन इतिहासकार का कथन है कि अँगरेजों को छोड़कर और कोई जाति अँगरेज़ी इतिहास के आधार पर अमेरिकन स्वतन्त्रता स्थापित न कर पाती। ब्रिटिश साम्राज्य का छिन्न-भिन्न होना अवश्यम्भावी था, क्योंकि अमेरिका निवासी अँगरेजों की माँग उसी स्वतन्त्रता के लिए अदमनीय हो गयी थी जिसका स्वयम् इंग्लैंड ने संसार के किसी दूसरे देश की अपेक्षा सब से अधिक पोषण किया था।

अमेरिका का स्वतन्त्रता संग्राम ( १७७४-८३ ई० )—वास्तव में ब्रिटेन के लिए तीन हजार मील की दूरी पर १ हजार मील लम्बे बनाच्छादित प्रदेश में युद्ध संचालन करना बड़ा ही कठिन कार्य था। किन्तु विरोधियों की परिस्थितियों को देखते हुए भी यह असाध्य था। औपनिवेशिक सैनिक घर से दूर जाना पसन्द नहीं करता था; फिर वह थोड़े ही समय के लिए सेना में भर्ती होता था। इसलिए युद्ध के बीच में छोड़ कर चला जा सकता था। दूसरे उसे किसी की अधीनता सह्य न थी, विशेष कर किसी दूसरे उपनिवेश के सेनापति की। सेनानायकों की व्यवस्था करने वाली काग्रेस स्वयम् बातूनी और अयोग्य थी; और सेना को माल देने के ठीकेदार दूसरों का माल हड़प लेने वाले सन्दिग्ध चरित्र के थे। फिर बहुत से लोग इंग्लैंड के भक्त थे अथवा दोनों पक्षों की ओर से उपेक्षामय। अँगरेज़ों ने शत्रु की शक्ति का ठीक-ठीक अनुमान लगाने में भूल की। ( एक रण-कुशल आफ़िसर के मत से तो केवल चार रेजिमेन्ट ही अमेरिका-विजय के लिए पर्य्याप्त थे! ) फिर युद्ध की सम्भावना देख कर भी उन्होंने काफ़ी सेना भेजने की कोई ठीक व्यवस्था न की। न ही उन्होंने उत्साह के साथ युद्ध का आरम्भ किया और उपनिवेशियों को सन्तुष्ट करने और उनके साथ समझौता हो जाने की आशा ( दुराशा ) में यह भूल गये कि शान्ति के सिद्धान्तों पर युद्ध करना असम्भव है। ब्रिटिश सेना में कोई बड़ा सेनानायक न था। वेतन के लोभ से भर्ती की हुई जर्मन सेना और फिर लार्ड जार्ज जर्मन ( लार्ड जार्ज सैकविल जिसने मिन्डेन पर आक्रमण करने से इनकार कर दिया था ) जैसा अयोग्य युद्ध सचिव लेकर उन्होंने युद्ध शुरू किया। दूसरी ओर उपनिवेशियों को वर्जिनिया का प्लान्टर जार्ज वाशिंगटन जैसा योग्य सेनापति मिल गया था। वाशिंगटन में यद्यपि बड़े सेनापति के बहुत कम गुण थे फिर भी वह बड़ा सज्जन और सत्यनिष्ठ था। सैन्य-व्यवस्था मे अत्यन्त अध्यवसायी होने के साथ-साथ वह बड़ा साहसी और युद्ध में अत्यन्त कठिन और सकटापन्न अवसर पर भी सुदृढ रहने वाला था। सतवर्षी युद्ध में वह वर्जिनिया की सेना में ऐडजुटेन्ट था और बड़ी वीरता से फ्रान्सीसियों और मूल-निवासियों के विरुद्ध लड़ा था। १७५४ ई० वाली ब्रैडक की मुहिम में भी उसने बड़ी वीरता दिखाई थी।

लैक्सिंग्टन और बंकर्सहिल ( १७७५ ई० )—युद्ध के प्रथम तीन बरसों में अँगरेज बराबर अवसर खोते रहे। पहले साल युद्ध की सरगरमी बोस्टन पर केन्द्रित रही जो अँगरेजी सेना के अधिकार में था। युद्ध का आरम्भ इस तरह पर हुआ कि अँगरेजी सेना की एक टुकड़ी ने बोस्टन से कुछ मील दूर कई सैनिक गोदामों पर कब्जा कर लेने का प्रयत्न किया; परन्तु लौटते समय लैक्सिंग्टन से उस पर बड़े ज़ोर का आक्रमण हुआ और उसकी हानि भी हुई। इस आक्रमण से यह स्पष्ट था कि अमेरिकन युद्ध के लिए तैयार थे; किन्तु ब्रिटिश कमांडर गेज आत्म-विश्वास के प्रमोद में विलम्ब करता रहा। उसने बोस्टन बन्दर के सामने बंकर्सहिल

नाम की पहाड़ी की चोटी पर स्थित एक सुरक्षित सेना पर सीधा आक्रमण किया। तीन दिन रसद से लदी हुई सेना ने ग्रीष्म के दिनों में लम्बी-लम्बी घास में चलकर तीन हमलों के बाद पहाड़ी पर अधिकार कर पाया। इस विजय के प्राप्त करने में

अँगरेजी सेना का ½ भाग काम आया। फिर गेज ने वाशिंगटन पर ज़ोरदार आक्रमण न करके विजय का सुअवसर खो दिया, क्योंकि वह बिना गोला बारूद के ही बोस्टन पर घेरा डाले हुए था। सौभाग्य से कनाडा पर अमेरिकन सेनाओं का आक्रमण अस

फल रहा और कार्लटन ने योग्यता से क्वेबेक की रक्षा की। १७७४ ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने क्वेबेक ऐक्ट पास किया, जिसमें रोमन कैथलिकों को कुछ रियायतें दी गयी थीं। इससे फ्रान्सीसी कनाडी शान्त हो गये और इसीलिये शत्रु को कनाडा में अँगरेजों के खिलाफ़ कोई सहायता न मिल सकी।

हाउ की कारगुजारी ( १७७६ ई० )—युद्ध के दूसरे वर्ष में हाउ अँगरेज़ी सेना का नायक हुआ। वह योग्य तो था, किन्तु बहुत सुस्त था। फिर पक्का ह्विग होने के कारण वह अमेरिकनों की भावनाओं से सहानुभूति रखता था। बोस्टन ख़ाली करके वह अपनी सेना को दक्खिन में लाँग द्वीप पर ले गया और ब्रुकलिन पर उसने वाशिंगटन की सेना को हराया। किन्तु उसकी शिथिलता के कारण वाशिंगटन को युद्ध में हार जाने के बाद रात में अपनी सारी सेना सहित एक मील जल राशि पार कर जाने का अवसर मिल गया। हाउ ने उसका पीछा किया और न्यूयार्क ले लिया। फिर एक और लड़ाई में वाशिंगटन को हरा कर उसने न्युजर्सी पर धावा मार कर डेलावेर नदी तक का प्रदेश घेर लिया। इस प्रकार उपनिवेशियों की स्थिति डांवाडोल होने लगी। किन्तु साल के अन्त में अमेरिकनो का भाग्य उदय हुआ और डेलावेर नदी के किनारे ट्रेन्टन पर जब एक हेसियन रेजिमेन्ट बड़े दिन का उत्सव मनाने में मस्त थी वाशिंगटन ने उस पर आक्रमण कर उसे नष्ट कर डाला।

१७७७ ई० में युद्ध की नयी योजनाएँ—तीसरे वर्ष में ऐसी गड़बड़ हुई कि उससे इंग्लैंड को बड़ी भयंकर हानि उठानी पडी। अँगरेजी सरकार के समीप दो योजनाएँ प्रस्तावित की गयी थीं। पहली योजना थी पार्लियामेन्ट के एक सदस्य बर्गोइन की जो नाटककार भी था और कनाडा की सेना का अधिनायक भी। इसके अनुसार बर्गोइन को कनाडा से दक्खिन की ओर और हाउ को न्यूयार्क के उत्तर की ओर बढना था। यह दोनों सेनाएँ हडसन नदी के किनारे पर अधिकार जमाये रखने के लिए एक दूसरे से मिलकर न्यू इंग्लैंड नाम के उपनिवेश को पृथक कर देतीं। दूसरी योजना हाउ की थी जो फिलेडेल्फिया पर आक्रमण करना चाहता था। लार्ड जार्ज जर्मेन दोनों से सहमत हो गया। यह बड़ी भूल थी, क्योंकि यह असम्भव था कि फिलेडेलफिया पर आक्रमण करके हाउ ठीक समय पर बर्गोइन के पास सेना भेज सकता। इस प्रकार बर्गोइन को वास्तव में दक्खिन से वह प्रत्याशित सहायता न मिल सकी जिस पर उसकी सफलता निर्भर थी। उसने टिकोंड्रोगा पर अधिकार कर लिया; परन्तु जैसे-जैसे वह आगे बढ़ा उसकी कठिनाइयाँ भी बढ़ती गयीं। शिकार के दिन निकट होने के कारण इंडियनों ने उसका साथ छोड़ दिया, चारों ओर देश में बड़े घने जंगल थे और फौजी रसद भी काफी न थी। इसलिए अपनी चार हजार फौज के साथ अपनी से चौगुनी सेना के सामने अक्टूबर मास में सराटोगा पर उसे आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। यह घटना इस युद्ध के इतिहास में निर्णायक सिद्ध हुई। सारे युरोप से राष्ट्र ग्रेट ब्रिटेन को मैत्री की दृष्टि से न देखते थे, इस दुर्घटना

के कारण वे खुल्लमखुल्ला अँगरेजों के शत्रु बन गये। फ्रान्स ने दो महीने बाद ही 'संयुक्तराज्य' से सन्धि कर ली। इसी बीच में हाउ ने फिलेडेल्फ़िया ले लिया और ब्रेन्डीवाइन की लड़ाई में वाशिंगटन को हराया। किन्तु हाउ की यह सफलता सेराटोगा की हार के सामने कुछ न रही।

युद्ध का विस्तार ( १७७८-८० )—अगले तीन वर्षों में अँगरेजों के शत्रु बढ़ते गये। फ्रान्स ने सन् १७७८ ई० में तथा स्पेन ने १७७६ ई० में अँगरेजों के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया। कारण यह था कि तटस्थ राज्यों का यह सिद्धान्त था कि स्वतन्त्र देश के जहाजों पर लदे हुए माल की जब्ती नहीं हो सकती, अँगरेजों को मान्य न था। इस माल पर न तो आक्रमण किया जा सकता और न उसे पकड़ कर ज़ब्त किया जा सकता था। इस विरोध के कारण, और कौन सा माल युद्ध सामग्री में शामिल करके निषिद्ध ठहराया जाय इसका निर्णय न हो सकने के कारण, इंग्लैण्ड पर और रूस, डेनमार्क और स्वीडन आदि ने ग्रेट ब्रिटेन पर युद्ध की घोषणा करने की धमकी दी। नये शत्रु पैदा हो जाने के कारण युद्ध का विस्तार पश्चिमी द्वीप समूह तक हो गया और भारतवर्ष में भी लड़ाई छिड़ गयी। इधर भूमध्यसागर में जिब्राल्टर घिरा हुआ था। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन बड़ी संकटपूर्ण परिस्थिति में था। सप्तवर्षी युद्ध के बाद अँगरेज़ी जलसेना का पराभव होता रहा और इस बीच में फ्रान्सीसी जल सेना बहुत उन्नत हो गयी थी। शिक्षण की उत्तमता और संख्या की वृद्धि में फ्रान्सीसी जल सेना पहले कभी अँगरेजी जल सेना के इतनी निकट नहीं पहुँच पायी थी। इधर इसकी नयी युद्ध प्रणाली भी बड़ी सफल प्रमाणित हुई थी। यह थी जहाजों के मस्तूल और बादबानों और रस्सियों पर गोली का निशाना लगाकर उन्हें बेकाम कर देने की युक्ति जो बड़ी सफल परन्तु बड़ी ही भयानक साबित हुई थी। ऐसी विषम परिस्थिति में आधुनिक सैनिक आलोचकों के विचार हैं कि अँगरेजों को अपने शत्रुओं के बन्दरगाहों का अवरोध करने में सन्तुष्ट रखना चाहिए था। परन्तु उस समय अँगरेज़ी बेड़े के जहाज़ चारों ओर फैले हुए थे और वह कई दूरवर्ती स्थानों पर अधिकार किये हुए थे।

अमेरिका का युद्ध ( १७७८-८१ ई० ) १७७७ ई० के बाद अमेरिका की स्थिति भी बिलकुल बदल गयी थी। इस समय ग्रेट ब्रिटेन का समुद्र पर प्रभुत्व न रहा था और फ्रान्सीसी बेड़े का बोल बाला था। १७७८ ई० में नये कमान्डर क्लिन्टन फिलेडेल्फिया खाली कर दिया और वह न्युयार्क को चला गया। दक्खिन में अपना पक्ष सबल देखकर सन् १७८० में अँगरेजों ने उसी ओर आक्रमण करने का निश्चय किया और दक्खिनी कैरोलाइना की राजधानी चार्ल्सटाउन पर बड़ी सफलता पूर्वक अधिकार हो गया। अँगरेजी सेनापति कार्नवालिस ने सेराटोगा के विजेता गेट्स को कैमडन पर हराया। उसने उत्तरी कैरोलिना पर आक्रमण किया और १७८१ ई० में अमेरिकनों के सर्वश्रेष्ठ सेनापति ग्रीन को मिलडफोर्ड कोर्ट हाउस पर हराया। अन्त में वह वर्जीनिया की ओर बढ़ा।

**यार्कटाउन का आत्मसमर्पण (१७८१ ई०)**—यह परिस्थिति देखकर अमेरिकन निराश होने लगे, परन्तु कार्नवालिस ने दक्खिन में जो कुछ जीता था वह उनके हटने के साथ ही निकल गया क्योंकि वहाँ बहुत कम अँगरेज़ी सेना रह गयी थी। फिर कार्नवालिस की सहायता के लिए क्लिन्टन न्युयार्क से और सेना न भेज सका। इसलिए ब्रिटिश बेड़े की सहायता की आशा से कार्नवालिस समुद्र तट की ओर यार्कटाउन जा पहुँचा। किन्तु फ्रान्सीसी बेड़ा ने उसका निरोध कर दिया, और उधर खुश्की की ओर से वाशिंगटन एक बड़ी सेना लेकर आ गया। अब कार्नवालिस के लिए पीछे हटना असम्भव हो गया और उसकी स्थिति बड़ी गम्भीर हो गयी आख़िर कोई और चारा न देखकर उसे आत्मसमर्पण करने पर मजबूर होना पड़ा। यार्कटाउन में इस आत्मसमर्पण से युद्ध का अन्त हो गया। थोड़े दिनों में उपनिवेशों ने चार्ल्सटाउन फिर ले लिया और केवल न्यूयार्क ही अँगरेज़ों के पास रह गया।

**अन्यत्र युद्ध की प्रगति (१७७६-८२ ई०)**—अन्यत्र भी युद्ध की प्रगति अच्छी न थी। बार बडोस और जमैका को छोड़ कर समस्त पच्छिमी दीप अँगरेज़ों के हाथ से निकल गये थे। जिब्राल्टर भी बुरी तरह घिरा हुआ था। भारतवर्ष में भी अँगरेजों की हालत नाज़ुक हो रही थी। सन् १७८१ के शुरू में फ्रान्सीसियों ने मिनारका ले लिया। इस घटना से लार्ड नार्थ के मन्त्रि मंडल का पतन हुआ। एप्रिल में रोडने ने पच्छिमी इन्डीज में, डोमिनिक के आगे "बैटिल ऑव दि सेन्ट्स" में फ्रान्सीसी बेड़े को परास्त किया। सितम्बर में जिब्राल्टर पर स्पेन और फ्रान्स ने ४६ जहाज़ों और १० जहाजी तोपख़ानों से समुद्र की राह और ४० हज़ार सेना लेकर खुश्की की तरफ से आक्रमण किया। गवर्नर इलियट और उसकी सात हजार सेना की दृढ़ता के कारण यह आक्रमण असफल रहे। तीन वर्ष, ७ महीने और १२ दिवस तक घिरे रहने के बाद ब्रिटेन से सहायता आगयी और दुर्ग की रक्षा हो गयी। इन्हीं दो सफलताओं के कारण अँगरेज इस युद्ध से कुछ सम्मान के साथ निकल पाये।

**१७८३ ई० में वरसाई की सन्धि**—अब सन्धि की बातचीत होने लगी और १७८३ ई० में वरसाई की सन्धि हो गयी। यूनाइटेड स्टेट्स को एक स्वतन्त्र राष्ट्र स्वीकार करना पड़ा। मिसिसिपी नदी और झीलें कनाडा और संयुक्त राज्यों के बीच की सीमा हो गयीं। अँगरेजों ने अपने पक्षवालों को बचाने की बहुत कोशिश की और बहुत से कनाडा चले गये; परन्तु जो वहाँ जाने को राजी नहीं हुए उन्हें उपनिवेशी साथियों की दया पर छोड़ना पड़ा। ग्रेट ब्रिटेन ने मिनारका और फ़्लोरिडा स्पेन को दे दिये और टोबागो, सेनिगेल गोरी, सेन्ट लूसिया, तथा लड़ाई में जीते हुए भारतवर्ष में फ्रान्स के अधिकृत प्रदेश फ्रान्स को लौटा दिये। इस प्रकार अमेरिकनों के स्वतन्त्र संग्राम ने जहाँ ब्रिटेन को एक साम्राज्य से वंचित कर दिया वहाँ एक दूसरे साम्राज्य की नींव सुदृढ़ कर दी।

अमेरिकनों के स्वतन्त्रता संग्राम का विवरण नीचे दिये हुए खुलासे से स्पष्ट हो जायगा :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १७७५ ई० | कांग्रेस के राज्याधिकार ले लेने की घोषणा | लैक्सिंग्टन; बोस्टन का अवरोध; बंकर्स हिल की लड़ाई; कनाडा पर अमेरिकनों की चढ़ाई। | |
| १७७६ ई० | जुलाई ४, स्वतन्त्रता की घोषणा | बोस्टन का परित्याग; ब्रुकलिन ( वि ); न्युयार्क पर अधिकार; न्यूजर्सी का अवरोध; ट्रेन्टन ( प ) | |
| १७७७ ई० | | ब्रांडिवाइन ( वि ); सेराटोगा ( प ) | |
| १७७८ ई० | फ्रान्स की युद्ध घोषणा; चेथम की मृत्यु | फ़िलेडेल्फ़िया का परित्याग | |
| १७७९ ई० | स्पेन की युद्ध घोषणा | सवान्ना पर अधिकार ( वि ) | जिब्राल्टर का अवरोध आरम्भ |
| १७८० ई० | हालैंड की युद्ध घोषणा सशैन्य तटस्थता | चार्ल्सटाउन पर अधिकार ( वि ) कैमडन ( वि ) | हैदरअली का करनाटक पर हमला |
| १७८१ ई० | | गिल्डफर्ड ( वि ) यार्कटाउन ( प ) | पोर्टो नोवो ( वि ) |
| १७८२ ई० | लार्ड नार्थ का इस्तीफ़ा शान्ति की बातचीत | | मिनारका छिना ( प ) सेन्टलूसिया के तट पर बैटल ऑव सेन्ट्स (वि) जिब्राल्टर का घेरा उठा ( वि ) |
| १७८३ ई० | वरसाई की सन्धि | | |

**१७७४ ई० का क्वेबेक ऐक्ट**—यह बतलाया जा चुका है कि १७७४ ई० में पार्लियामेन्ट ने कनाडा के सम्बन्ध में क्वेबेक ऐक्ट पास कर दिया था। इस ऐक्ट द्वारा कनाडा की सीमाओं का प्रसार हुआ, गवर्नर तथा एक ( मनोनीत ) नामजद काउन्सिल द्वारा शासन की स्थापना हुई, और रोमन कैथलिक चर्च को कनाडा का राष्ट्रीय चर्च स्वीकृत किया गया। १३ हों उपनिवेशों की अँगरेज़ प्रजा इस ऐक्ट की निर्धारित बातों से बहुत असन्तुष्ट थी, इसलिए युद्ध का एक कारण यह भी था। इन उपनिवेशियों को इस ऐक्ट की यह दो बातें ख़ास तौर पर अखरती थीं। एक तो उनके विस्तार को रोक कर क्वेबेक की सीमा-विस्तार किया जाय दूसरे रोमन कैथलिक चर्च को सारे कनाडा का राजधर्म बना दिया जाय। लेकिन कनाडा के

फ्रान्सीसी उपनिवेशी इसे अपने अधिकारों का मैगना कार्टा मानने लगे और इस ऐक्ट के कारण ही फ्रान्सीसी प्रजा कनाडा में अँगरेजों का शासन स्वीकार कर सकी।

कनाडा पर युद्ध का प्रभाव—अमेरिका के इस स्वतन्त्रता संग्राम के बाद कनाडा में और नये देशान्तर निवासी आने शुरू हुए। युद्ध के बाद अँगरेजी राज्य के पक्षवालों की स्थिति 'यूनाइटेड स्टेट्स' में बहुत नाजुक हो गयी और उनमें से बहुत से कनाडा की ओर आने लगे और फ्रान्सीसी अधिवासियों के पूरबी प्रदेशों में जा बसे। यहाँ वे बढ़ने तथा समृद्धि प्राप्त करने लगे, किन्तु जाति, धर्म और प्रकृति के अन्तर के कारण फ्रान्सीसियों और अँगरेजों में झगड़े होने लगे। यहाँ तक कि १७९१ ई० में ब्रिटिश सरकार ने कनाडा को पूरबी और पच्छिमी दो भागों में विभक्त कर दोनों को थोड़ा बहुत स्वराज्य दे दिया और हर प्रान्त का गवर्नर अलग कर दिया। इसी व्यवस्था के कारण सन् १८११ ई० के युद्ध में जब युनाइटेड स्टेट्स ने कनाडा को समझा बुझा और डरा-धमका कर अपनी ओर करना चाहा तो वह अपनी राजभक्ति से विचलित न हुआ। कुछ समय तक यह व्यवस्था चलती रही। १८१२ ई० में यूनाइटेड स्टेट्स अँगरेजी सरकार और कनाडा निवासियों के बीच और कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयीं जिनके अन्तिम निपटारे में अँगरेजों को युनाइटेड स्टेट्स वाले विद्रोह की अपेक्षा अधिक सफलता मिली।

---

## अध्याय १४

### ग्रेट-ब्रिटेन और भारतवर्ष

### ( १७६३-१८२३ ई० )

१७६३ ई० में भारतवर्ष की दशा—अब हम पच्छिम में अमेरिका से पूरब में भारतवर्ष की ओर ध्यान देते हैं। भारतवर्ष में भी ये बीस वर्ष कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं रहे। इस सम्बन्ध में दो बातें ध्यान में रखनी चाहिए। पहली बात तो यह थी कि सारे भारतवर्ष में इस समय अराजकता फैली हुई थी। राज्यों की सीमाएँ बराबर बदलती रहती थीं और फिर देश की भी कोई निश्चित सीमा नहीं थी। कुछ साहसी सरदारों ने या तो नये राज्य स्थापित किये या पुराने राज्यों पर अधिकार जमा लिये थे। मुगल सम्राट भी कभी किसी सरदार की संरक्षता में रहता था और कभी किसी की। दूसरी बात यह थी कि सप्तवर्षी युद्ध के समाप्त हो जाने के बाद ईस्ट-इंडिया कम्पनी की स्थिति बड़ी अनिश्चित सी थी। कर्नाटक का नवाब और हैदराबाद का निज़ाम उसके मित्र थे। पूरबी तट पर तथा बम्बई और मदरास के आस-पास कई प्रदेश भी अब उसके अधिकार में थे। बंगाल में तो उसकी स्थिति और भी विचित्र थी कलकत्ते के आस पास के कई जिलों को छोड़कर सारे प्रान्त का शासन नवाब के हाथ

में था। किन्तु वह तो कम्पनी के हाथ में कठ-पुतली मात्र था। देश से जितना भी हो सके धन खींच लेना उसका उद्देश्य था। उधर नवाब से जितना धन और विशेषाधिकार प्राप्त हो सके वह कम्पनी के गुमाश्ते अपने लिए और कम्पनी के लिए प्राप्त करने में न चूकते थे।

क्लाइव के सुधार (१७६५-६७ ई०)—बंगाल में ऐसी परिस्थिति में कठिनाइयों का उपस्थित होना अनिवार्य था। मीर जाफर के उत्तराधिकारी नवाब का कम्पनी से झगड़ा हो गया। पटना में उसने कई युरोपियनों को मार डाला और अपने पड़ोसी नवाब अवध के पास भाग गया। १७६४ ई० में दोनों नवाब बक्सर की लड़ाई में हार गये। अब अँगरेजों के लिए यह आवश्यक हो गया कि वे अपनी स्थिति सुव्यवस्थित कर लें। युद्ध के ६ महीने बाद क्लाइव बंगाल का गवर्नर हो गया और १७६५ से १७६७ ई० के थोड़े ही समय में उसने बहुत से परिवर्तन कर दिये। उसने मुग़ल सम्राट से बंगाल और बिहार की अर्थ व्यवस्था (दीवानी) प्राप्त कर ली और इस प्रकार ईस्ट इंडिया कम्पनी उस प्रदेश की वस्तुतः शासक हो गयी। दूसरे उसने अवध के नवाब से सन्धि कर ली। इस सन्धि से उसका यह आशय था कि पच्छिम से मराठों और अफ़ग़ानों के आक्रमणों के रोकने के लिए नवाब का प्रदेश बंगाल और बिहार के बीच में आ जाय। तीसरे उसने सब अफसरों के वेतन बढ़ाने का प्रयत्न किया और उन्हें निजी व्यापार करने से रोक दिया। इसी सुधार से उन सब सुधारों का सूत्रपात हुआ जिनके कारण भारतवर्ष के अँगरेज अफसर अपनी कार्यक्षमता और ईमानदारी के लिए संसार भर में प्रसिद्ध हो गये हैं। क्लाइव अब इंगलैंड लौट गया और वहाँ पार्लियामेन्ट में उस पर अनीति, अत्याचार और कलुषिता का अभियोग लगाया गया। आख़िरकार रोग और क्षोभ के कारण उसने १७७४ ई० में आत्महत्या कर ली।

१७७३ ई० का रेग्युलेटिंग ऐक्ट—आरम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी का उद्देश्य था व्यापार न कि देश विजय करना; इसलिए अँगरेज सरकार ने समय समय पर चार्टर (आज्ञा-पत्र) बदल देने के अतिरिक्त कम्पनी के मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। किन्तु जब कम्पनी का भारतीय प्रदेशों के राज्य पर अधिकार हो गया तो सरकार के लिए इन प्रदेशों की उचित शासन व्यवस्था का उत्तरदायित्व ग्रहण करना अनिवार्य हो गया। फिर क्लाइव के जाने के बाद जो दुरावस्था हुई उसने तो उन्हें हस्तक्षेप करने को बाध्य कर दिया। इसलिए १७७३ ई० में एक रेग्युलेटिंग ऐक्ट पास किया गया जिसके अनुसार चार सदस्यों की एक सभा और एक गवर्नर जनरल की नियुक्ति हुई जिनका काम भारत में कम्पनी के अधिकृत प्रदेशों की देख-रेख करना था। इस प्रकार एक केन्द्रीय शासन-व्यवस्था स्थापित हो गयी; किन्तु और बहुत सी बातों में यह ऐक्ट असन्तोषजनक रहा। गवर्नर जनरल के लिए काउन्सिल सब से बड़ी बाधक थी और जज जो उसी ऐक्ट के अनुसार नियुक्त हुए थे इन दोनों के कार्यों में हस्तक्षेप कर सकते थे।

**गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्ज ( १७७४-८५ ई० )**—अब वारन हेस्टिंग्ज सबसे पहला गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। काउन्सिल के सदस्यों का विरोध तथा बम्बई और मद्रास की अयोग्य सरकारों के बाधाएँ डालते रहने के कारण उसको हर दम परेशान रहना पड़ता था; फिर भी उसने बहुत काम कर लिया और बहुत कुछ व्यवस्था कर दी। शासन की सुविधा के लिए उसने बंगाल को जिलों में विभाजित किया, उसके भूमिकर की उचित व्यवस्था की और शासन चलाने के लिए सिविल सर्विस की नियुक्ति का प्रबन्ध किया।

**१७७८-८२ ई० के बीच भारत की अवस्था**—वारन हेस्टिंग्ज ने अपने कौशल और साहस से भारतवर्ष में बड़े कठिन समय पर ऍगरेजी राज्य की रक्षा की। सराटोगा की पराजय के बाद फ्रान्सीसियों द्वारा अमेरिकन उपनिवेशियों का साथ देने से पच्छिम की तरह पूरब में भी ऍगरेजों की हालत नाजुक हो गयी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रान्सीसी एजेन्टों ने मराठों से गुप्त मन्त्रणा आरम्भ कर दी और वारन हेस्टिंग्ज को उनके विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा। फिर दक्खिन भारत में फ्रान्सीसियों के सूफ्रॉ जैसा एडमिरल और हैदरअली जैसे मित्र मिल गये थे जिनके कारण ऍगरेजी राज्य बड़ी मुश्किल से छिन्न भिन्न होते-होते बचा। हैदरअली ने मैसूर के सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया था। वह पढ़ा लिखा न होने पर भी बड़ा योग्य व्यक्ति था। फ्रान्सीसियों के साथ मिल कर उसने १७८० ई० में कर्नाटक पर आक्रमण किया और तीन सप्ताह में ऍगरेजों की सारी शक्ति अस्तव्यस्त कर दी; परन्तु हेस्टिंग्ज भी ठीक समय पर काम आया। सूचना पाने के चौबीस घंटे के भीतर उसने युद्ध की तैयारी कर ली और वान्देवाश के विजेता आयरकूट को सेनानायक बनाकर दक्खिन भेज दिया। १७८१ ई० में बड़ी घमासान की लड़ाई के बाद कूट ने पोर्टोनोवो ले लिया और अपने से १० गुनी सेना पर विजय पायी। अगले वर्ष हैदरअली मर गया। उधर समुद्र पर सूफ्रॉ को हुएज जैसा प्रतिस्पर्द्धी मिल गया। हुएज खूब डट कर लड़ने वाला योद्धा तो था, परन्तु सूफ्रॉ से लड़ाई की चालों में हेटा पड़ता था। मगर उसे एक बड़ा लाभ यह था कि जहाँ उसके सहकारी ऑफिसर बड़े निस्वार्थी और श्रद्धालु थे सूफ्रॉ के सहायक बड़े ईर्षा करने वाले और उसकी अवज्ञा करते थे। एक वर्ष में पाँच समुद्री युद्ध होने पर भी सूफ्रॉ की एक में भी विजय न हो सकी। इस प्रकार ऍगरेजों के भारतीय राज्य की रक्षा हो गयी और मराठों तथा हैदरअली के पुत्र टीपू से वरसाई की सन्धि के बाद ही सन्धि हो गयी।

**हेस्टिंग्ज के विरुद्ध अभियोग**—परन्तु वारन हेस्टिंग्ज का काम केवल युद्ध लड़ना और शासन व्यवस्था करना ही नहीं था। उसे ईस्ट इंडिया कम्पनी के हिस्सेदारों के लिए मुनाफा भी प्राप्त करना पड़ता था। उसका खर्च इतना बढ़ गया था कि उसे कई ऐसे कार्य करने पड़े जिनके लिए उस पर इंग्लैंड पहुँचने पर अभियोग लगाये

गये। उसके मुक़दमे का विस्तृत विवेचन यहाँ नहीं किया जा सकता क्योंकि ७ साल में इसकी १४५ पेशियाँ हुई थीं। अन्त में वह मुक्त कर दिया गया किन्तु उस समय के सर्वश्रेष्ठ वक्ता बर्क और सर्वश्रेष्ठ इतिहासकार मेकाले ने उसे अभियोगी ठहराया। आधुनिक छानबीन से पता चला है कि कुछ अभियोगों के सम्बन्ध में तो वह बिलकुल निरपराध था। जालसाजी के अभियोग पर नन्दकुमार को फाँसी दिये जाने में उसका कोई हाथ न था और न ही उसने अवध की बेगमों से अनीति-पूर्वक रुपया लेने की आज्ञा दी थी। बात यह थी कि बेगमें राज्य का रुपया लेकर चली गयी थीं, और लौटाने के लिए मन्त्रियों पर थोड़ा सा दबाव डालने की आवश्यकता थी।

अन्य विषयों में हेस्टिंग्ज़ का व्यवहार बुद्धिमत्तापूर्ण न रहा हो यह सम्भव है। जैसे उसने रुहेलों के दमन के लिए अवध के नवाब को अँगरेज़ी सेना किराये पर दे दी; अथवा बनारस के राजा पर युद्ध का व्यय न देने के कारण बड़ा कठोर जुर्माना ठोंक दिया। क्लाइव और हेस्टिंग्ज के प्रत्येक कार्य को न्यायसंगत करार देना असम्भव है; किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि भारतवर्ष में अँगरेजी राज्य की स्थापना का श्रेय अगर क्लाइव को है तो उसे सुव्यवस्थित और सुदृढ़ बनाने का वारेन हेस्टिंग्ज को। इस प्रकार वारन हेस्टिंग्ज उन गवर्नर जनरलों और वायसरायों की श्रेणी का सर्व प्रथम प्रतिनिधि है जिसकी शासन-व्यवस्था आज संसार प्रसिद्ध हो रही है।

पिट का इंडिया ऐक्ट ( १७८४ ई० )—वारन हेस्टिंग्ज के इंग्लैण्ड चले जाने के बाद चालीस वर्ष का भारतवर्ष का इतिहास दिया जाना जरूरी है। लार्ड नार्थ का १७७३ ई० का रेग्युलेटिंग ऐक्ट सफल न रहा इसलिए वारन हेस्टिंग्ज़ के जाने से कुछ ही समय पहले छोटे पिट ने १७८४ ई० में एक ऐक्ट द्वारा अँगरेजों के भारतीय राज्य की फिर से व्यवस्था की। इस ऐक्ट में गवर्नर जनरल के अधिकार बढ़ा दिये गये और अब एक लंडन स्थित बोर्ड ऑव कन्ट्रोल के आधिपत्य में वह भारतीय अँगरेजी साम्राज्य की नीति का संचालन करने लगा। इस समय में राजा अपने मन्त्रियों की सम्मति से गवर्नर जनरल और बोर्ड ऑव कन्ट्रोल का निर्वाचन और नियुक्ति करता था। गवर्नर जनरल एक उच्च कुल का व्यक्ति होता है और ग्रेट ब्रिटेन से आता है। इसलिए अब ब्रिटिश सरकार अँगरेज़ों की भारतीय शासन की नीति की उत्तरदायी हो गयी। अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति और व्यापार-विधान में ईस्ट इंडिया कम्पनी स्वतन्त्र थी, यद्यपि उच्च पदों की नियुक्ति सरकार की स्वीकृति से ही होती थी।

गवर्नर जनरल मार्क्विस ऑव कार्नवालिस ( १७८४-९४ ई० )—नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत यार्कटाउन का संरक्षक मार्क्विस ऑव कार्नवालिस गवर्नर जनरल बनाया गया। उसके शासन की तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। उसने अपने व्यक्तिगत आचरण और आदर्श से शासन व्यवस्था की बहुत सी बुराइयाँ दूर कर उसे पहले से अधिक पवित्र बना दिया। दूसरे, उसने बंगाल में इस्तमरारी बन्दोबस्त किया, जिसके

द्वारा जमींदार भूमि के स्वामी हो गये और सरकार को साल ब साल निश्चित मालगुजारी देने लगे। तीसरे, यद्यपि वह ग्रेट ब्रिटेन से शान्ति बनाये रखने की भावनाएँ लेकर आया था, किन्तु उसे मैसूर के नवाब टीपू साहब से युद्ध करना पड़ा। बड़ी कौशलपूर्ण मुहिम के बाद वह सफल हुआ और उसने शत्रु को सन्धि करने तथा अपने राज्य का आधा भाग देने पर विवश किया।

मार्क्विस ऑव वेल्ज़ली ( १७६८-१८०५ ई० )—कुछ समय बाद रिचर्ड वेल्ज़ली जिसे मार्क्विस ऑव वेल्ज़ली भी कहते हैं गवर्नर जनरल नियुक्त हुआ। वह ड्यूक ऑव वेलिंगटन नामक महान योद्धा का बड़ा भाई था और ईटन का सुयोग्य छात्र रह चुका था। केवल ३५ वर्ष की छोटी अवस्था में ही उसे इतना ऊँचा पद मिल गया था। १७६७ में भारतवर्ष की परिस्थिति इतनी विषम हो गयी थी कि यहाँ उसे अपनी सारी योग्यता का उपयोग करना पड़ा। इस समय फ्रान्सीसियों की महत्त्वाकांक्षाएँ पुनः जाग्रत हो रही थीं। देशी राजाओं की सेनाओं में सैन्य-शिक्षण-कार्य करके फ्रान्सीसी अफसरों ने अपना प्रभाव बहुत बढ़ा लिया था और देशी सेनाओं को बहुत सुसंगठित कर दिया था। टीपू साहब स्वयम् बड़ा अध्यवसायी शासक तथा वीर सैनिक था। उसने अँगरेज़ों के विनाश के उद्देश्य से फ्रान्स से सन्धि कर ली। वेल्ज़ली के मदरास पहुँचने के तीन सप्ताह बाद नेपोलियन ने मिस्र देश पर आक्रमण की तैयारी कर दी। यदि कहीं वह इस मुहिम में सफल हो जाता तो उसका भारतवर्ष की ओर बढ़ना सम्भाव्य था।

दक्खिन भारत में वेल्ज़ली की नीति—वेल्ज़ली की नीति के परिणामों पर यहाँ केवल संक्षेप में ही विचार किया जा सकता है। पहले वेल्ज़ली ने निजाम हैदराबाद को अपने यहाँ से फ्रान्सीसी अफ़सरों को निकाल देने पर राजी किया और अपने राज्य के एक प्रदेश देने के बदले में उसके राज्य की रक्षा के लिए एक अँगरेजी सेना रखने का प्रबन्ध किया। फिर उसने टीपू पर आक्रमण किया। बेयर्ड ने बड़े कौशल से श्रीरंगपट्टम पर आक्रमण कर लड़ाई जीत ली। इसमें टीपू की मृत्यु हो गयी। मैसूर का अधिकांश भाग कम्पनी ने ले लिया, थोड़ा सा हिस्सा निजाम को दे दिया और शेष का अधिकारी बनाकर मैसूर के पुराने हिन्दू वंशज को, जिससे हैदरअली ने राज्य छीन लिया था, गद्दी पर बैठा दिया। इसके बाद दक्खिन भारत के और भी कई प्रदेश अँगरेजी राज्य में मिला लिये गये। इसका फल यह हुआ कि अधिकांश कर्नाटक पर अङ्गरेज़ों का अधिकार हो गया और इस प्रकार दक्खिन में अँगरेज़ों का राज्य बहुत बढ़ गया।

उत्तर भारत में वेल्ज़ली की नीति—उत्तर भारत में भी वेल्ज़ली के कार्य ऐसे ही महत्त्वपूर्ण रहे। निजाम की भाँति ही उसने अवध के नवाब से सन्धि की जिसके फल स्वरूप कम्पनी को रुहेलखंड और आस-पास का सारा प्रदेश नवाब की रक्षा के लिए एक सेना रखने के बदले में मिल गया। इसके बाद सब में शक्तिशाली

मराठा सरदार सिन्धिया से युद्ध हुआ। सिन्धिया की सेना को फ्रान्सीसी अफसरों ने शिक्षा दी थी।

आर्थर वेल्ज़ली (१८०३ ई०)—भावी ड्यूक ऑफ वेलिंगटन ने असेई और अरगाँव की लड़ाइयों में विजय प्राप्त की और लेक ने लसवाड़ी की लड़ाई जीत कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार दिल्ली का मुग़ल सम्राट अँगरेज़ों के अधिकार में आ गया। इसके बाद दूसरे मराठा सरदार होलकर से युद्ध छिड़ गया। उसके विरुद्ध अँगरेज़ी सेना की एक भी पेश न चा सकी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के इस राज्य-विस्तार तथा युद्ध के काम से भयभीत होकर १८०५ ई० में वेल्ज़ली को इंग्लैंड वापिस बुला लिया गया। वेल्ज़ली के समय में राज्यव्यवस्था में भी महत्वपूर्ण सुधार हुए; परन्तु अँगरेज़ी राज्य के विस्तार के लिए ही उसका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सात वर्ष के अन्तर्गत उसने अँगरेजी राज्य का विस्तार दिल्ली से कलकत्ता और कलकत्ता से कन्या कुमारी तक कर दिया। अँगरेजों के शत्रुओं का या तो विनाश कर दिया या उनकी शक्ति को क्षीण कर दिया, फ्रान्स के लिए भारत का द्वार बन्द कर दिया और अँगरेजों को भारतवर्ष की सबसे बड़ी राजशक्ति बना दिया।

लार्ड हेस्टिंग्ज़—(१८१४-२३ ई०) वेल्ज़ली के जाने के दस वर्ष बाद तक भारतवर्ष में कोई विशेष घटना नहीं हुई। अँगरेजी सरकार इस बीच में निष्क्रिय रही और उसने किसी राज्याधिकार के झगड़े में हस्तक्षेप नहीं किया। किन्तु भारतवर्ष में फैली हुई अराजकतापूर्ण स्थिति ने अँगरेज़ों का हस्तक्षेप अनिवार्य कर दिया। इस समय मध्यभारत में लुटेरों के दल के दल लूट मार और हत्या करते, आग लगाते और बस्तियों को उजाड़ते फिरते थे। ये पिंडारी कहलाते थे। ब्रिटिश प्रदेश में आकर भी इन्होंने कई बार बड़ी हानि की। ऐसी स्थिति से गुज़र न होती देख कर आख़िर गवर्नर जनरल लॉर्ड हेस्टिंग्ज को अपनी शान्ति की नीति बदलनी पड़ी। लॉर्ड हेस्टिंग्ज को पहले नेपाल पर चढ़ाई करनी पड़ी। इसके परिणाम में अँगरेज़ों को कुछ प्रदेश मिल गया और नेपाल के साथ संतोषजनक सम्बन्ध स्थापित हो गया। १८१७ ई० में पिंडारियों से लड़ाई हुई जिसके कारण मराठों से भी युद्ध छिड़ गया। आख़िर मराठे और पिंडारी दोनों ही अधीन हो गये और पूना के पेशवा के राज्य के सहित अन्य बहुत सा देश भी अँगरेज़ी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार मध्य भारत की बहुत सी देशी रियासतों का राज्य छिन गया या वे छोटी-छोटी सी रह गयीं। मुग़ल राज्य के स्थान पर अब अँगरेजी राज-शक्ति की सुदृढ़ स्थापना का श्रेय वेल्ज़ली और हेस्टिंग्ज को है और नेपोलियन जिस पूरब के साम्राज्य का स्वप्न देखा करता था वह उसके वैरी अँगरेजों के हाथ में आगया।

आस्ट्रेलिया—अठारहवीं शती के अन्त और उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विकसित होने वाले ब्रिटेन के पूर्वी साम्राज्य में भारतवर्ष ही अकेला नहीं है। सन् १७६८ और १७७६ ई० के बीच कप्तान कुक की समुद्र यात्रा के परिणाम स्वरूप

ग्रेट ब्रिटेन को आस्ट्रेलिया में एक दूसरे साम्राज्य के स्थापित करने का अवसर मिल गया।

---

## अध्याय १५

## फ्रान्स की राज्यक्रान्ति और महायुद्ध

### (१७८६-१८०२ ई०)

**१७८६ ई० की फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के कारण**—अमेरिका और भारत वर्ष के हालात वर्णन करने के बाद हम फिर युरोप की घटनाओं की ओर ध्यान देंगे। अमेरिका के स्वाधीनता संग्राम को १० वर्ष भी न बीते होंगे कि ग्रेट ब्रिटेन को एक और महायुद्ध में भाग लेना पड़ा जो लगभग बीस वर्ष तक चलता रहा। १७८६ ई० में फ्रान्स की जगत-प्रसिद्ध राज्यक्रान्ति हुई। फ्रान्स की राजसत्ता काफ़ी समय में अयोग्य और स्वेच्छाचारी अधिकारियों के हाथ में रही थी, वहाँ के दरबार की फ़िज़ूलखर्ची और ओछापन सब पर प्रकट था और वहाँ का गणतन्त्र अपने अधिकारों पर सूम की तरह चिपका हुआ था। फिर वहाँ के कुलीन और सत्ताधारी अपने कर्त्तव्य को ही नहीं भूले हुए थे बल्कि बहुत से टेक्स भी नहीं देना चाहते थे। फ्रान्स का कर-विधान इतना दोष पूर्ण था कि गरीब किसान को अपनी गाढ़ी कमाई का केवल पाँचवाँ भाग भी मुश्किल से मिल पाता था। शासन में जनता का कोई हाथ न था। स्टेट्स जनरल की, जो किसी सीमा तक अँगरेजी पार्लियामेन्ट के अनुरूप संस्था थी, १६८४ ई० से कोई बैठक ही नहीं हुई थी।

१८वीं शती के अन्त में लोगों की भावनाओं ने उन्हें परिवर्तन के लिए तैयार कर दिया था। प्रतिभाशाली लेखक वोल्टेयर ने रोमन कैथलिक चर्च के बहुत से दोषों का खूब ख़ाका खींचा गया था। इसी प्रकार रूसो जैसे विमोहक दार्शनिक ने लोगों के हृदय में भूतकाल के उस कल्याणमय स्वर्णयुग के स्वप्न चित्र अंकित कर दिये थे जिसमें राजा, अमीर और पादरियों के न होने के कारण अत्याचार और दीनता का नाम निशान तक न था। सन् १७७८ में दोनों महान लेखकों की मृत्यु हुई। उसी वर्ष फ्रान्स की सरकार द्वारा जब जनता से अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम की सहायता के लिए अपील की गयी तो ऐसी परिस्थिति में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि फ्रान्स की सरकार द्वारा जब जनता से अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम की सहायता के लिए अपील की गयी तो ऐसी परिस्थिति में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि फ्रांस के लोगों ने अपने लिए भी स्वतन्त्रता की माँग उपस्थित की। आर्थिक कठिनाइयों के कारण राजा को सन् १७८६ ई० मे स्टेट्स जनरल का अधिवेशन करना पड़ा।

क्रान्ति की प्रगति—फ्रान्स हृदय से राजभक्त था। अगर उस समय देश की सत्ता किसी महान् राजा के हाथ में होती तो वह उचित सुधारों द्वारा देश को बचा सकता था। लुई १६श सद्भावनापूर्ण और अच्छे स्वभाव का होते हुए भी बड़ी डाँवाडोल प्रकृति का मनुष्य था और उसकी रानी आँत्वानेत रूपवती अवश्य थी; परन्तु न तो वह लोकप्रिय थी और न वाक्चातुर्य्य में पटु। फिर राजा के स्थान में न तो कोई सुधार की योजना थी और न वह दमन करना चाहता था। वह तो कुछ ऐसी ढील छोड़े हुए था कि परिस्थिति चाहे जो रूप धारण कर सकती थी। इसलिए बरसाई में स्टेट्स जनरल का अधिवेशन होने के बाद घटना चक्र वेग से चलने लगा। पहले अवसरों पर स्टेट्स जनरल के तीनों अंग अमीर, पादरियों और प्रजा के प्रतिनिधि अलग अलग वोट देते थे, किन्तु उस बार प्रजा के प्रतिनिधि इस बात पर अड़ गये कि तीनों वर्गों को एक ही हाउस में बैठ कर वोट देना होगा। अपनी दृढ़ता द्वारा वे इस लक्ष्य के प्राप्त करने में सफल भी हुए। फिर १४ जुलाई को पेरिस निवासियों ने वेस्टील पर, जो पेरिस का सुदृढ़तम दुर्ग था अधिकार कर लिया। सारे युरोप में वेस्टील का छिन जाना फ्रान्स के अबाधित राज्यसत्ता के पतन का द्योतक माना गया क्योंकि जनसाधारण की दृष्टि में वेस्टील का दुर्ग अजेय समझा जाता था। लोगों की धारणा थी कि उसके कैदखाने में ऐसे कैदी मरे पड़े थे जिन पर अभियोग चलाया जाने को था। परन्तु वास्तव में उसकी रक्षा के लिए केवल १२० सिपाही रहते थे जो प्रायः बूढ़े थे और उसकी तोपों में से केवल एक ही चल सकती थी। फिर यही बात वहाँ के कैदियों की थी। सात में से ४ जालसाज और दो पागल थे। एक को उसी के कुटुम्बियों की प्रार्थना पर रखा गया था। अक्टूबर में अकाल के डर से फ्रान्स की स्त्रियाँ बारसाई जाकर राजा, राज-परिवार और स्टेट्स जनरल को पेरिस लिवा लायीं क्योंकि उन्होंने सोचा कि इस प्रकार उनके भोजन की व्यवस्था ठीक रहेगी। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि फ्रान्सीसी सरकार धीरे-धीरे पेरिस की प्रजा के प्रभाव में आती गयी। सन् १७९० का निराकरण हुआ; राज्य कर, नियम-विधान और जल और स्थल सेना में सभी में सुधार हुए। परन्तु राजा का मत अनिश्चित रहा। कभी तो वह सुधारवादियों का पक्ष लेता और कभी उनका विरोध करता था। आखिर जून सन् १७९१ ई० में वह पेरिस से भाग गया और फ्रान्स की पूर्वी सीमा पर जा पहुँचा। पर वह वारेन में पकड़ गया और विदेसियों की शरण में जाने की आशंका से देशद्रोही समझा जाने लगा।

१७९२ ई० में आस्ट्रिया और प्रशिया ने युद्ध की घोषणा की और फ्रान्स पर आक्रमण कर दिया। अगस्त में पेरिस के गुंडों ने लुई १६ श के तूईलरी महल पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच प्रशियों ने फ्रान्स के सिंहद्वार वर्दू पर चढ़ाई की और इस अफवाह के फैल जाने से कि वह शीघ्र ही हाथ से निकल जायगा लोगों में बड़ी हलचल मच गयी। इस गड़बड़ी के समय में सितम्बर का वह भीषण हत्याकांड

हुआ जिसमें सैकड़ों आदमी, जो क्रान्ति के विरोध के सन्देह में कैद किये गये थे, बड़ी निर्दयता के साथ मार डाले गये। सितम्बर के अन्त में कनवेन्शन नाम की एक एसेम्बली की बैठक हुई। इसमें फ्रान्स का राज्य प्रजातन्त्र घोषित कर दिया गया। कुछ महीने बाद नवम्बर सन् १७९३ ई० में राजा को फाँसी दे दी गयी।

मेरी आँत्वानेत को अक्टूबर में फाँसी दी गयी। लुई १६वाँ के पुत्र दाईयों ६ महीने तक अंधेरी काल कोठरी में बन्द रह कर १७९५ ई० में मर गया। राजा लुई को फाँसी देने के बाद इस कनवेन्शन के उग्र दल ने नरम दल वालों को दबा लिया और जून सन् १७९३ से जुलाई १७९४ ई० तक जो "विभीषिका कांड" हुआ उसके अन्तिम सात सप्ताहों में अकेले पेरिस में ही १४०० मनुष्य तलवार की घाट उतार दिये गये। इसके बाद उग्र दल पराजित हो गया और शासनाधिकार फिर नरम दल वालों के हाथ में आगया। आख़िर १७९५ ई० के अन्त में कनवेन्शन एसेम्बली को तोड़ कर शासन की बागडोर दो एसेम्बिलियों और एक डायरेक्टरी के हाथ में पहुँची जिसने १७९९ ई० तक राज्य किया। इसके बाद १७९९ ई० में अक्टूबर महीने में नेपोलियन ने मिस्र से लौट कर डायरेक्टरी का अन्त कर दिया और वह फ़र्स्ट कौन्सल के नाम से सबसे बड़ा शासक बन गया। १८०४ ई० में नेपोलियन को फ्रान्स का सम्राट निर्वाचित किया गया।

**फ्रान्स की राज्यक्रान्ति पर ब्रिटिश जनमत**—फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का युरोप के प्रत्येक राज्य पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। स्वतन्त्रता, समानता भ्रातृत्व की भावनाएँ सारे युरोप की जनता में लोकप्रिय हो रही थीं; परन्तु सारे युरोप के मुकुटधारी इससे आशंकित हो उठे। पहले तो ग्रेट ब्रिटेन में इस राज्यक्रान्ति के प्रति सहानुभूति की भावना थी। अर्ल ऑव चेथम के पुत्र प्रधान-मन्त्री पिट (१७८३-१८०१ ई०) की भी इस ओर कृपा दृष्टि थी और इससे ब्रिटेन की नीति पर कोई बुरा प्रभाव पड़े, उसे ऐसी कोई आशंका नहीं थी। कवि वर्ड्सवर्थ और कोलरिज ने इस क्रान्ति को सौख्य और स्वतन्त्रता के नवयुग का प्रतीक माना। अग्रगामी पादरियों ने इसके पक्ष में भाषण दिये और प्रगतिशील राजनीतिज्ञों ने इसके नेताओं के साथ पत्र-व्यवहार कर अपने देश में भी क्रान्तिकारी संस्थाएँ स्थापित कीं। ह्विग दल के लोग समझते थे कि यह क्रान्ति इंग्लैंड के सन् १६८८ वाले विप्लव की भाँति ही थी। प्रधान ह्विग नेता फाक्स ने बड़े उत्साह के साथ फ्रान्स की राज्यक्रान्ति पर अपनी सहमति प्रदान की और बेस्टील के पतन को संसार की सब से बड़ी और सर्वश्रेष्ठ घटना बतलाया।

**मत परिवर्तन के कारण**—किन्तु क्रान्ति की हिंसात्मक प्रवृत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ-साथ लोगों के मतों में परिवर्तन शुरू हुआ। बर्क ने, जो सब से बड़ा ह्विग नेता था, अपनी पार्टी के अन्य सभासदों के मत के विरुद्ध पहले ही इसे सन्देह की दृष्टि से देखा था। नवम्बर सन् १७९० में उसने 'फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति पर विचार' नामक अपनी पुस्तक का प्रकाशन किया, जिसमें उसने क्रान्तिकारियों के कार्य क्रान्ति,

उसका फलाफल और उसके अनेक पंथकों के आदर्शों के प्रति अपनी घृणा प्रकट की और पहले ही से यह घोषित कर दिया कि इसका अन्तिम परिणाम अराजकता होगी। ग्रेट ब्रिटेन में ही नहीं, बल्कि सारे युरोप में इस पुस्तक ने बड़ी सनसनी उत्पन्न कर दी और फिर सितम्बर के हत्याकांड जैसे अत्याचारों ने तो लोकमत को भयभीत कर दिया। फिर फ्रान्सीसी क्रान्तिकारियों का मत था कि अन्य देशों में भी क्रान्ति फैलनी चाहिए और इस उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने इंग्लैंड और अन्य देशों के क्रान्तिकारियों से भी गुप्तमन्त्रणा की। डंडी शेफ़ील्ड तथा अन्यत्र होने वाले विद्रोहों ने इस नयी लहर के विरुद्ध आशंका उत्पन्न कर दी। फिर १७९२ ई० में अन्य घटनाएँ हुईं जिन्होंने युद्ध को और भी निकट ला दिया। आख़िर फ्रान्स ने यह घोषणा कर दी कि अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले किसी भी देश की सहायता करना उसका धर्म होगा और इस प्रकार उन्होंने सारे युरोप के राजघरानों के विरुद्ध युद्ध छेड़ देने का इरादा प्रकट किया। उन्होंने आस्ट्रिया अधिकृत नीदरलैंड पर अधिकार कर लिया और यह घोषित कर दिया कि शेल्ट नदी सब देश वालों के व्यापार के लिए खुली हुई है। युरोप के प्रायः सभी राष्ट्रों के बीच एक सन्धि के अनुसार यह नदी बहुत समय पहले से डच गवर्नमेन्ट की आज्ञानुसार केवल हालैंड और ग्रेट ब्रिटेन के व्यापार के लिए ही खुली रखी गयी थी और इस प्रकार इस नदी को मुक्त घोषित करना सन्धि की शर्तों का खुला विरोध था। शैल्ड का मुहाना डच राज्य में होने के कारण १६४८ ई० से ही डच सरकार उस पर अपना अधिकार किये हुए थी और विदेशियों को उसमें होकर व्यापार करने से रोकती रही। यह इसलिए किया गया था कि ऐन्टवर्प के बन्दर का व्यापार न बढ़ कर डच बन्दर ऐम्स्टरडम के व्यापार की उन्नति हो। इसलिए फ्रान्स ने हालैंड पर आक्रमण करने की धमकी दी। पहले की भाँति इस बार भी ग्रेट ब्रिटेन ने यह अनुभव किया कि उसकी स्वतन्त्रता हालैंड के स्वतन्त्र रहने पर निर्भर है। इसके बाद ही सन् १७९३ ई० के आरम्भ में लुई १६वें को फाँसी हुई और फ़रवरी में फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध-घोषणा हो गयी। पिट ने यथा सम्भव शान्ति बनाये रखने का प्रयत्न किया; किन्तु फ्रान्स में उग्र दल ने शान्ति असम्भव कर दी।

### §१—फ्रान्स विरोधी दल की असफलता
### (१७९३-९६ ई०)

फ्रान्स के विरुद्ध महान गुट्ट—फ्रान्स का विरोध करने में ग्रेट ब्रिटेन अकेला न था। आस्ट्रिया और प्रशिया ने पिछले वर्ष ही फ्रान्स के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया था। उसके साथ हालैंड और फिर कुछ समय बाद स्पेन और सार्डिनिया भी मिल गये थे। सदा की भाँति इस बार भी इंग्लैंड ने इस महान गुट्ट के राष्ट्रों की धन से खूब सहायता की। इसलिए ऐसी परिस्थिति में जब फ्रान्स की सेना में हुल्लड़-बाज़ों का मजमा हो, उसकी जल सेना का अनुशासन क्रान्ति के कारण नष्टप्रायः हो गया हो, जब देश में ऐसे उग्र नेताओं का दौर दौरा हो जो एक दूसरे के जान के

दुश्मन हों और जब देश के कई प्रान्तों में राज्य पक्ष वालों के विप्लव हो रहे हों, फ्रान्स के लिए इस बड़े संघ की सामरिक शक्ति का सफलता के साथ मुकाबला करना, इतिहास की एक अनहोनी घटना मालूम होती है। ग्रेट-ब्रिटेन; आस्ट्रिया और प्रशिया की सेनाएँ वेलजियम में केन्द्रित हो रही थीं और बारह मंजिल तय करने के बाद पेरिस पहुँच सकती थीं।

असफलता के कारण—युरोपीय शक्तियों के गुट्ट ने शायद ही कभी एक मत से काम लिया हो। मित्रराष्ट्र एक साथ फ्रान्स की राजधानी पर चढ़ जाने के बजाय अलग-अलग सीमान्त दुर्गों पर अधिकार करने में लगे हुए थे। सब राष्ट्र एक दूसरे से ईर्ष्या रखते थे। ऐसा कोई एक सेनानायक न था जो समस्त सेना का संचालन कर सकता। उधर फ्रान्स की सेना ने अपने देश पर आपत्ति आयी देखकर अपनी अपूर्व देशभक्ति और साहस का परिचय दिया और सब जगह विजय प्राप्त की। फ्रान्स की सेना में अच्छे से अच्छे जनरल मौजूद थे क्योंकि असफल होने वाले जनरलों को हटा कर उनकी जगह नये और योग्य व्यक्ति नियुक्त किये जाते थे। फिर फ्रान्स के नये शासन ने युद्ध की समस्त व्यस्था एक ही प्रतिभाशाली व्यक्ति कार्नो के हाथ में दे दी थी।

सन् १७९३-९६ की सैनिक कार्रवाइयाँ—यद्यपि सन् १७९३ के ग्रीष्म में फ्रान्स की भूमि पर ८ विदेशी सेनाएँ मौजूद थीं और लियों, तूलों और ब्रिटनी क्रान्ति के विरुद्ध हो रहे थे, फिर भी वर्ष के अन्त तक सब विद्रोह दबा और एक को छोड़ कर शेष सब विदेशी सेनाओं को मार कर भगा दिया गया। १७९४ ई० में फ्रान्सीसियों ने मित्रराष्ट्रों को वेलजियम से नहीं किन्तु हालैंड से भी निकाल दिया और राइन नदी को फ्रान्स की सीमा बना दिया। राइन नदी को फ्रान्स की उत्तरी पूरबी सीमा बनाने का प्रयत्न कई सौ बरस से जारी था और १७९४ ई० में पूरा हो पाया। इस वर्ष फ्रान्सीसी सेनाओं ने १६ घमासान की लड़ाइयाँ जीतीं; ११६ नगर और २२० किले सर किये और ९० हजार कैदी और ३८ सौ पोतें पकड़ी। दूसरे वर्ष फ्रान्सीसी सवारों की सेना ने बरफ में फँसे डच युद्धपोतों को पकड़ लिया। इसलिए हालैंड गुट्ट से अलग हो गया और १७९५ ई० में प्रशिया और स्पेन उसमें से निकल गये। १७९६ ई० में नेपोलियन का इटली पर प्रसिद्ध आक्रमण हुआ, जिसमें उसने पीडमोन्ट पर चढ़ाई करने और सार्डीनिया के राजा को युद्ध से हट जाने पर बाध्य करने के बाद आस्ट्रियनों को कई लड़ाइयों में बुरी तरह हराया और वियना से ६० मील तक जा पहुँचा। इस प्रकार १७९७ ई० में आस्ट्रियन सन्धि करने पर मजबूर हो गये।

अँगरेज़ सेना और ब्रिटिश राज्य का प्रबन्ध—इसमें कोई शक नहीं कि सन् १७९३ से ९६ ई० की लड़ाइयों में ग्रेट ब्रिटेन का कृत्य कुछ गौरवयुक्त न रहा मित्रराष्ट्रों का दोष था अवश्य, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु इंग्लैंड जो इस धर्मयुद्ध का अग्रणी बना था। कुली-कबाड़ियों की सेना लेकर लड़ाई कर रहा था। क्योंकि उसके

जनीतिज्ञों ने अमेरिकन युद्ध में कोई शिक्षा ग्रहण न की थी, इसलिए फ्रान्स के द्ध के आरम्भ में अफसर और सैनिक, सवार और पैदल सभी अशिक्षित थे और पख़ाना तो इतनी बुरी हालत में था कि इससे पहले ऐसा कभी न रहा था। युद्ध के बीच में रँगरूट न मिलने से परेशान होकर सरकार ने उन अफसरों की तरक्की करने की नीति का अनुसरण किया जो कुछ संख्या में रँगरूट भर्ती करा देते थे और गरम देशों में लड़ने के लिए लड़ाई में मँझी हुई सेनाएँ भेजने के बजाय छोकड़ों को भेजना शुरू कर दिया। सेना के साज-समाज आदि का प्रबन्ध तो और भी गड़बड़ था। नीदरलैंड में जाड़ों मे युद्ध करने वाले सैनिकों को भी लम्बे कोट और गरम देशों में युद्ध करने वालों को बूट तक न भेजे जा सके। कभी-कभी ऐसी सेनाएँ लड़ाई के मैदान पर भेज दी गयीं जिनके सैनिकों ने कभी गोली भी न चलायी थी और जिनके पास गोला-बारूद भी पर्याप्त न था। फिर न तो सेनाओं के ले जाने का समुचित प्रबन्ध था और न घायल सिपाहियों की मरहम-पट्टी के लिए अस्पताल ही थे।

१७९३-९५ ई० में अँगरेजों की सरगरमियाँ (१) युरोप में—परन्तु युरोप में विफलता का मूल कारण यह था कि अँगरेजों की छोटी सी सेना भी किसी एक स्थान पर केन्द्रित न हो कर जगह-जगह बँटी हुई थी। युद्ध के पहले वर्ष सन् १७९३ में युरोप में तीन जुदे-जुदे स्थानों पर लड़ाई हो रही थी और तीनों जगह अँगरेज़ों की हार हुई। हाउ ने फ्रान्सीसी राज पक्ष वालों की सहायता के लिए एक सेना टुलोन में उतारी, किन्तु उसे बहुत कुछ हानि उठाने के बाद हटना पड़ा। दूसरी सेना क्वेबर्न की खाड़ी में ब्रिटेन के राज-पक्षवालों की सहायता के लिए भेजी गयी, परन्तु वह बहुत देर से पहुँची। तीसरी सेना ड्यूक ऑव यार्क के नेतृत्व में बेलजियम भेजी गयी। ड्यूक ने डनकर्क पर घेरा डाला परन्तु असफल रहा। फिर वह आस्ट्रियनों के साथ कई लड़ाइयों में लड़ा जिनमें अँगरेज सैनिकों ने बड़ी वीरता दिखलायी। अगले वर्ष सब फ्रान्सीसी सेना अधिक संख्या में आ गयी तो ड्यूक को बेलजियम छोड़कर हालैंड की ओर हटना पड़ा। अन्त उसकी बची हुई सेना हनोवर आ गयी और १७९५ ई० में इंग्लैंड लौट आयी।

(२) पच्छिमी द्वीप-समूहों में—युरोप के बाद युद्ध का मुख्य केन्द्र पच्छिमी द्वीप समूह मे था। १७९३ ई० में युद्ध का श्रीगणेश आशापूर्ण परिस्थिति में हुआ। परन्तु फ्रान्सीसियों ने कुमक भेजकर लड़ाई में हारे हुए सभी स्थानों को ही नहीं ले लिया वरन् अँगरेजी द्वीपों के हबशी गुलामों में भी हलचल मचवा दी और कुसज्जित और कुमकहीन अँगरेजी सेना शीतज्वर और युद्ध की कठिनाइयों के कारण नष्ट हो गयी। आख़िर १७९६ ई० में अपने समय के सबसे योग्य सेनापति एबरक्रोम्बी ने अँगरेज़ी द्वीपों में शान्ति स्थापित की और कुछ फ्रान्सीसी द्वीपों को भी जीत लिया। १७९८ ई० में अँगरेजों ने प्रसिद्ध हबशी सरदार टूसो लूवरतूर से जो सेन डोमिंगो का स्वामी बन बैठा था, सन्धि कर ली। अँगरेजों के आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि इनको

मार्टिनीक और सेन्ट लूसिया मिल गये और इस सन्धि के कारण सेन्ट डोमिंगो का बन्दरगाह फ्रान्सीसी समुद्री डाकुओं का अड्डा बनने से बच गया। किन्तु यह सब लाभ हुआ एक लाख आदमी की आहुति देने पर जिन में से आधे लड़ाइयों में मारे गये और आधे जीवन भर के लिये बेकार हो गये। पूरब की ओर अँगरेज़ों को अधिक सफलता मिली। १७९६ ई० में अँगरेज़ों ने भारतवर्ष में फ्रान्स अधिकृत कई प्रदेश ले लिये और सन् १७९५ में केप ऑव गुडहोप के अलावा सुदूर पूरब में हालैंड के उपनिवेशों पर भी अधिकार कर लिया।

( ३ ) समुद्र पर— अँगरेज़ों के सामुद्रिक प्रभुत्व ने समुद्र पर उन्हें शत्रु का व्यापार नष्ट करने तथा उनके कई द्वीपों पर अधिकार करने योग्य बना दिया। परन्तु आरम्भ में समुद्र पर भी निराशा ही रही। सन् १७९४ ई० में लार्ड हाउ ने एटलान्टिक में एक लड़ाई जीती, परन्तु इसी बीच में फ्रान्स जाने वाले अनाज से लदे जहाज़ों का बेड़ा, जिसे बचाना फ्रान्सीसियों के लिए बहुत आवश्यक था, अक्षत निकल गया। युद्ध के शुरू में अँगरेज़ों ने फ्रान्सीसी बन्दरगाहों—विशेष कर ब्रैस्ट— का विरोध योग्यता पूर्वक नहीं किया और इसलिए १७९६ ई० में फ्रान्सीसियों ने इंग्लैंड पर धावा बोल दिया और उनका एक बेड़ा १५ हज़ार सेना के साथ ब्रैस्ट से आयरलैंड में बेन्ट्री खाड़ी में घुसने के उद्देश्य से रवाना हुआ। किन्तु एडमिरल और जनरल का जहाज़ बेड़े से अलग हो गया और खाड़ी में घुसते समय वायु उनके विरुद्ध थी, इसलिए फ्रान्सीसियों को बिना आयरलैंड में उतरे लौटना पड़ा। यदि कहीं वे उतर जाते तो आयरलैंड में एक सफल विद्रोह खड़ा हो जाता। भूमध्यसागर में भी अँगरेज़ों ने कई सुअवसर खो दिये। अँगरेजी बेड़ा जिनोआ के तट मार्ग का निरोध कर सकता था और इससे फ्रान्सीसियों की इटली पर आक्रमण करने की कठिनाइयाँ बढ़ जातीं; परन्तु १७९६ ई० में नेपोलियन की आश्चर्यजनक सफलता के कारण अँगरेजों को वह समुद्र ख़ाली करना पड़ा।

## §२—अँगरेज़ों का दलबन्दी से अलग होना और उनकी समुद्र पर विजय ( १७९७-९८ ई० )

ग्रेट ब्रिटेन की स्थिति—सन् १७९३ में फ्रान्स को कुचल देने का स्वर्ण अवसर हाथ से जाता रहा और चार वर्ष बाद १७९७ ई० में ग्रेट ब्रिटेन की स्थिति बहुत नाज़ुक हो गयी। इस समय सारा नीदरलैंड और डच समुद्री बेड़ा फ्रान्स के अधिकार में था और स्पेन से सन्धि करके उसके बेड़े पर भी फ्रान्स ने अधिकार जमा लिया था। ग्रेट ब्रिटेन का अब युरोप में कोई मित्र न रह गया था। स्काटलैंड भी असन्तुष्ट था और आयरलैंड तो विद्रोह करने की ताक में ही बैठा था। आर्थिक स्थिति का यह हाल था कि स्थायी वार्षिक आय फंड ( Consols ) में केवल ५० प्रतिशत ही दिया जा सकता था और बैंक ऑव इंग्लैंड से सब लोग अपनी-अपनी

पूँजी खींचे ले रहे थे। इससे भी अधिक आपत्तिजनक बात यह हुई कि जहाजियों ने विद्रोह कर दिया। उनको इस बात की बड़ी शिकायत थी कि एक तो उनको वेतन ही कम मिलता था, फिर बख्शी लोग उसमें से बेईमानी कर लेते थे। भोजन भी उनको कम मिलता था, अवकाश और छुट्टी भी कम थी और सबसे ऊपर अनुशासन बहुत कड़ा था। स्पिटहेड पर इन लोगों ने इन सब बातों के निराकरण के लिए अपनी माँगें पेश कीं और जब लार्ड हाउ ने उन्हें दूर करने का वचन दिया तो विद्रोह शान्त हुआ। नौरे में विद्रोहियों का नेता पार्कर बहुत क्रान्तिकारी विचारों का था। उसने नाविकों को भड़काया कि वे अपने अफ़सर स्वयम् मनोनीत कर लें। उसने विद्रोह का लाल झंडा खड़ा किया। अब गवर्नमेन्ट ने भी दृढ़ता दिखलायी। विद्रोह दबा दिया गया और उसके नेता को फाँसी हुई।

इस कठिनाई के समय सदा की भाँति जल सेना ने इस बार भी ग्रेट ब्रिटेन की रक्षा की। विद्रोह से पहले फरवरी महीने में जर्विस ने (जिसे बाद में लार्ड सेन्ट विन्सेन्ट की उपाधि मिली) सेन्ट विन्सेन्ट अन्तरीप के पास स्पेन के बेड़े को हराया। इस लड़ाई में नेल्सन ने बड़ी ख्याति प्राप्त की। स्पेनी बेड़े के दो डिविज़न लड़ने को आये थे और जर्विस उन दोनों को अलग रखने के प्रयत्न में था। नेल्सन ने अपने नायक की इस चाल को भाँप लिया और ठीक उस समय बिना आज्ञा मिले ही अपना जहाज आगे बढ़ा कर उस डिविज़न के अगले जहाजों पर हमला बोल दिया, जब वह दूसरे डिविजन से मिलने ही वाला था। अक्टूबर में जहाजियों के विद्रोह के बाद डंकन ने डच बेड़े को टेक्सेल में केम्परडाउन के आगे हरा दिया। डच बेड़ा और समुद्र तट के बीच में बिना किसी क्रम के अपने जहाज घुसा कर उसने खूब युद्ध किया और बड़ी प्रख्यात विजय प्राप्त की। विद्रोह के समय केवल दो ही जहाज ऐसे थे जो इसमें शामिल न हुए थे और इन्हीं दो जहाजों से डंकन डच बेड़े का निरोध किये रहा। विद्रोही जहाजों के आज्ञा न मानने पर भी वह उन्हें बराबर सिगनल देता रहा। डच बेड़ा इस धोके में आ गया और बन्दर के बाहर न निकल सका।

नेपोलियन की मिस्र पर चढ़ाई (१७९८ ई०)—परन्तु अँगरेजों की कठिनाइयाँ अभी दूर न हो पायी थीं। १७९८ ई० के आरम्भ में नेपोलियन को इसलिए ब्रेस्ट भेजा गया कि वह परिस्थिति देख कर यह बतलाये कि आयरलैंड पर आक्रमण हो सकता था या नहीं। अगर कहीं नेपोलियन का निर्णय इसके पक्ष में हुआ होता और वह १७९८ ई० के ग्रीष्म में ठीक उस समय आयरलैंड पहुँच जाता जब वहाँ विप्लव आरम्भ हुआ था तो उसका परिणाम इंग्लैंड के लिए बड़ा विघातक होता। परन्तु सौभाग्य से नेपोलियन ने आयरलैंड पर आक्रमण के विरुद्ध अपना निर्णय दिया। इस समय उसके मस्तिष्क में पूरब की दिग्विजय की धुन समायी थी इसलिए उसने मिस्र पर आक्रमण की योजना बनायी जिसमें सम्भवतः उसका अन्तिम उद्देश्य भारत की ओर बढ़ना रहा हो। फ्रान्स की सरकार ने यह योजना स्वीकार कर ली और गुप्त

प से इस मुहिम की तैयारियाँ शुरू हो गयीं। १७९८ ई० के ग्रीष्म में नेपोलियन ने लोन से बढ़कर माल्टा पर कब्जा कर लिया और मिस्र में जा पहुँचा। इसी समय

नेपोलियन का मिस्र पर आक्रमण
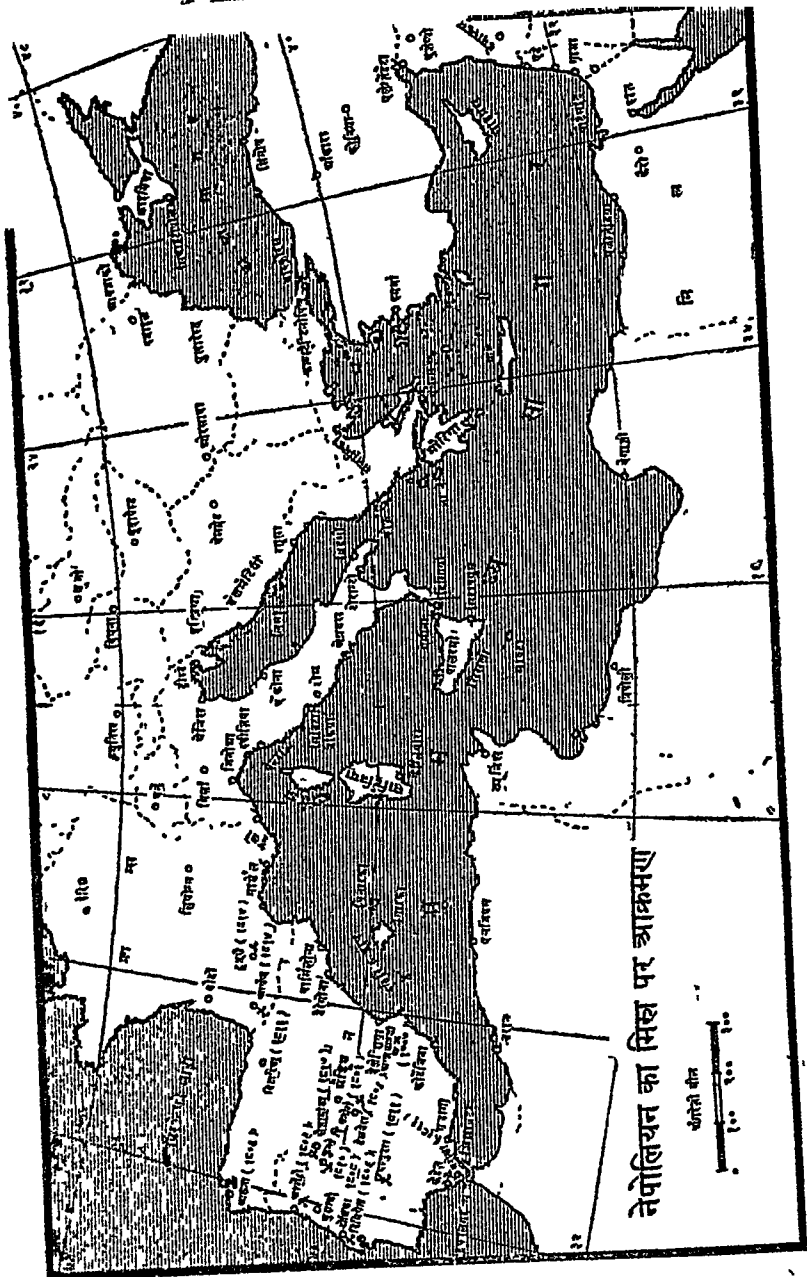
नेल्सन को भूमध्यसागर पर पुनः अधिकार करने को भेजा गया था और तूफान के कारण उसके फ्रिगेट (एक तीव्रगामी छोटा लड़ाई का जहाज जिस पर केवल एक ही

तोप चढ़ी होती थी ) जो इधर-उधर टोह लगाने पर नियुक्त थे न आ सकने के कारण नेपोलियन के सौभाग्य से वह पकड़े जाने से बच गया। नेलसन कुमक आने के इन्तज़ार में था। उसे यह बात सूझ गयी कि नेपोलियन मिस्र पर चढ़ाई करने गया है, इसलिए वह सार्डीनिया से एलेग्ज़ेंड्रिया की ओर चल पड़ा। कुछ ही समय बाद नेपोलियन भी माल्टा से उसी ओर रवाना हुआ; यद्यपि उसके जहाज पहले क्रीट जा पहुँचे। एक रात तो अँगरेजी और फ्रान्सीसी बेड़े एक दूसरे की राह काट कर निकल गये और तीन दिन तक यह दोनों बेड़े प्रायः सात मील की दूरी पर समानान्तर दिशा में चलते रहे। नेलसन के जहाज तेज थे इसलिए वह एलेग्जेंड्रिया पहले जा पहुँचा। फ्रान्सीसियों का वहाँ कोई चिन्ह न देख कर उसने सोचा कि नेपोलियन शायद मिस्र की ओर नहीं आया, इसलिए अपना आना निष्फल जान कर वह फिर सिसली की ओर
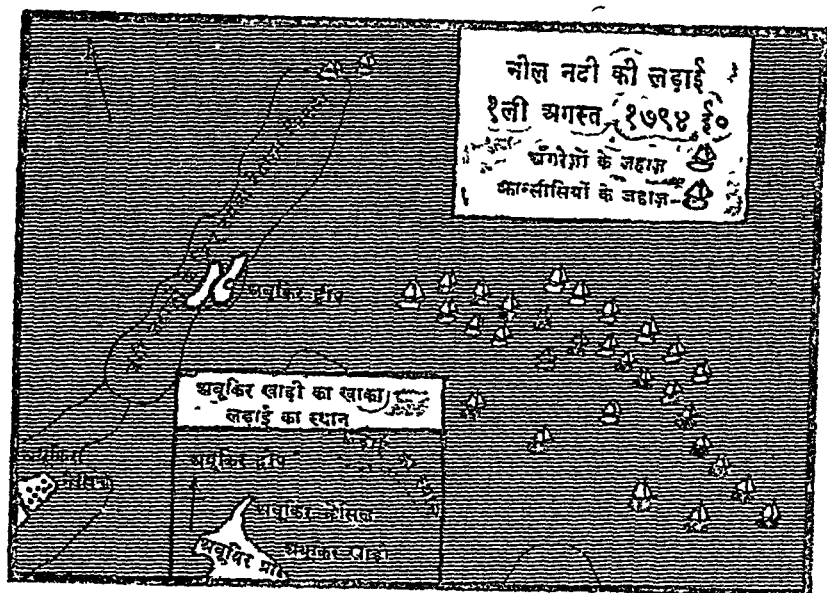
लौट पड़ा। इसी बीच में नेपोलियन का बेड़ा क्रीट के किनारे-किनारे चलता हुआ एलेग्जेंड्रिया जा पहुँचा फ्रान्सीसी सेना किनारे पर उतर पड़ी और ममलूकों से लड़ कर उन्होंने पिरामिडों की लड़ाई जीत ली और काहिरा पर अधिकार कर लिया।

जब नेलसन को नेपोलियन के मिस्र पहुँच जाने का समाचार मिला तब वह फिर एलेग्जेंड्रिया लौट पड़ा। पहली अगस्त को उसने नील नदी के मुहाने के पास अबुकिर की खाडी में नेपोलियन के बेड़े को लंगर डाले देखा। फ्रान्सीसी बेड़े ने दो बड़ की थीं। एक तो उन्होंने अपने जहाजों का लंगर किनारे के पास न डाला था और दूसरे उन्होंने ज़जीरों से अपने जहाज़ न बाँधे थे। नेलसन को विश्वास था कि उसके कप्तान कहीं न कहीं से घुसने की राह निकाल लेंगे और हुआ भी ऐसा ही। अँगरेजी बेड़े के नायकों को शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि वे न केवल फ्रान्सीसी जहाज़ों के

दोनों ओर आ जा सकते थे बल्कि वे उनके बीच में से भी निकल कर शत्रु के आमुख और केन्द्र तथा पृष्ठ भाग पर भी लड़ाई लड़ सकते थे। शाम के ६ बजे से लड़ाई शुरू हुई और रात भर चलती रहने के बाद दूसरे दिन सवेरे तक जारी रही। १० बजे रात को फ्रान्सीसियों का निशान वाला जहाज उड़ा दिया गया और युद्ध समाप्त होने के पूर्व १३ में से ११ फ्रान्सीसी जहाज़ या तो पकड़ लिए गये या डुबो दिये गये। यह बड़ी शानदार विजय हुई जिसमें सब अँगरेज कप्तानों ने भाइयों की भाँति लड़ कर कीर्ति प्राप्त की थी।

## §३ दूसरी दलबन्दी और उसकी विफलता
### ( सन् १७९९-१८०० ई० )

फ्रान्स के विरुद्ध दूसरा गुट्ट ( १८९९ ई० )—नील नदी की लड़ाई के बहुत गहरे परिणाम हुए। भारतवर्ष में टीपू साहब को अब फ्रान्सीसियों से मदद मिलनी बन्द हो गयी, अँगरेजों को भूमध्य सागर पर अधिकार हो गया और १७९९ ई० में फ्रान्स के विरुद्ध युरोपियन राष्ट्रों का एक और गुट्ट बन गया। फ्रान्सीसी गवर्नमेन्ट की उग्र और उद्धत वैदेशिक नीति ने रूस के जार को उत्तेजित कर दिया और आस्ट्रिया और तुर्की भी इस गुट्ट में शामिल हो गये। आरम्भ में तो परिस्थिति बड़ी अनुकूल दिखायी दी। इटली मे से फ्रान्सीसियों को भागना पड़ा फिर १७९८ ई० में अँगरेज़ों ने मिनारका लेकर माल्टा पर घेरा डाल दिया। उसी साल पश्चिमी द्वीप समूह में टूसँ ल' ओवरटूरे के साथ सन्धि हो जाने के कारण उधर से खाली होकर अँगरेज़ों ने यार्क के नेतृत्व में हालैण्ड पर एक और सेना भेजी। उधर लार्ड सेन्ट विन्सेन्ट ने फ्रान्सीसियों के बन्दरगाह ब्रेस्ट का बड़ी सफलता पूर्वक विरोध किया। पुरवाई हवा में, जब कि फ्रान्सीसी बेड़ा बन्दर में से बाहर निकल सकता था, सेन्टविन्सेन्ट ब्रेस्ट के बाहर उशान्त द्वीप को घेरे रहता था। ( एक सौ इक्कीस दिन के घेरे में केवल एक ही बार कुहरे के कारण उसके जहाज़ों को उशान्त वाले जहाज़ों से सिगनल नहीं मिला। ) इस समय की फ्रान्स की गवर्नमेन्ट बड़ी अयोग्य थी और इस बात की आशंका हो रही थी कि शीघ्रही उस का दिवाला निकल जायगा और अराजकता के कारण गृहयुद्ध शुरू हो जायगा। इस समय अँगरेज़ों का समुद्र पर आधिपत्य होने के कारण नेपोलियन की योजनाओं में विघ्न पड़ रहा था। उसने सीरिया पर आक्रमण किया लेकिन सिडनी स्मिथ के नेतृत्व में अँगरेज़ी जहाजों ने नेपोलियन का तोपखाना समुद्र पर जाते हुए पकड़ लिया और इस प्रकार जिन तोपों से नेपोलियन एकर पर गोलाबारी करना चाहता था उन्हीं ने उसके बचाव में काम दिया और अँगरेज जहाज़ियों की सहायता पाकर एकर ने नेपोलियन की घेरा डालनेवाली सेना का मुकाबला किया। फल यह हुआ कि इस नगर को न ले सकने के कारण नेपोलियन आगे न बढ़ सका और उसकी पूरबी दिग्विजय की योजनाएँ निष्फल हो गयीं। आख़िर उसे मिस्र से लौट जाना पड़ा।

मित्रराष्ट्रों की असफलता—लेकिन अब घटना-चक्र उलट गया और वर्ष के समाप्त होते-होते मित्र राष्ट्रों की पूरी तरह हार हुई। डच और रूसियों से सहायता मिलने की आशा पर अंगरेजी सेनाएँ हालैण्ड पर आक्रमण करने गयी थीं। रूसी सेना बड़ी निकम्मी साबित हुई और डच सेना तो आयी ही नहीं। अँगरेजों की फौज के पास न तो ठीक सामान और हथियार थे और न उनके खाने पीने का कोई ठीक प्रबन्ध था। इसके अलावा कभी तो उन्हें नहरों के पानी से भरे हुए प्रदेश में लड़ना पड़ता था और कभी रेतीले दुर्गों में। इसीलिए अँगरेज़ी सेना कुछ न कर सकी और आख़िर आत्म समर्पण कर इंग्लैण्ड लौट आयी। उधर रूसी और आस्ट्रियन सेना पर स्विटज़रलैंड में फ्रान्सीसियों की बड़ी मार्के की विजय हुई। इसके बाद आस्ट्रिया और रूस में झगड़ा हो गया और रूस गुट्ट से अलग हो गया। इसी समय सिडनी स्मिथ ने युरोप के समाचारों से भरे हुए अँगरेजी समाचार-पत्र नेपोलियन के पास भेजवा दिये। यह समाचार भेजे तो इसलिए गये थे कि इन्हें पढ़ कर नेपोलियन को बड़ी चिन्ता हो जायगी, लेकिन इसका फल यह हुआ कि उसने तुरन्त मिस्र से लौट आने की तैयारी कर दी और अँगरेज़ी जहाज़ों की नजर से बचता हुआ आख़िर एक दिन उसका जहाज़ अक्टूबर में फ्रान्स जा पहुँचा। नेपोलियन का बड़ा समारोह के साथ स्वागत हुआ और पुरानी फ्रान्सीसी गवर्नमेन्ट को हटाकर १७९९ ई० के बड़े दिन पर नेपोलियन ने फर्स्ट कौन्सल की उपाधि धारण कर फ्रान्स के राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

मारेंगो की लड़ाई और सशस्त्र तटस्थता (१८०० ई०)—फ्रान्स में शान्ति स्थापित कर नेपोलियन का ध्यान सब से पहले आस्ट्रियनों की ओर गया जो इस समय इटली में लड़ रहे थे। एल्प्स पहाड़ को पार कर वह आस्ट्रियन सेना के पीछे जा पहुँचा और जून १८०० ई० में मारेंगो की लड़ाई में उसने उसे बुरी तरह से हराया। इस प्रकार उत्तरी इटली नेपोलियन के अधिकार में आ गयी। दिसम्बर में होहिनलिन्डन पर फ्रान्सीसियों के एक दूसरे जनरल ने विजय प्राप्त की और सन् १८०१ के आरम्भ में आस्ट्रियनों को सन्धि कर लेने पर मजबूर होना पड़ा। अँगरेजों के खिलाफ नेपोलियन ने तटस्थ राज्यों की दुर्भावनाओं से लाभ उठाया। किसी देश को इस बात से इनकार नहीं था कि किसी तटस्थ राष्ट्र का जहाज़, जिस पर लड़ाई का निषिद्ध सामान लदा हो या जो किसी निषिद्ध बन्दरगाह में प्रवेश करने की चेष्टा करता हो, पकड़ा जा सकता था। लेकिन अँगरेजों ने लड़ाई के निषिद्ध सामान में खाने पीने की चीजें और जहाज़ों के सामान की भी गणना कर ली थी; यहाँ तक कि रूस की ख़ास निर्यात, सन का भी जो जहाज़ों के लिए रस्सी बनाने में बहुत काम आता था निषेध कर दिया था और उनका यह भी दावा था कि किसी भी निरुद्ध बन्दरगाह की ओर जाने वाले जहाज को वह पकड़ सकते थे, चाहे वह निरोध केवल नाम का ही क्यों न हो। अँगरेज़ों ने तटस्थ राष्ट्रों के जहाज़ों पर लदे हुए और उन्हीं के बेड़े की संरक्षित

में जाते हुए शत्रु देशों के माल वाले जहाजों को पकड़ लिया था। तटस्थ राष्ट्र अँगरेजों के इन दावों को स्वीकार नहीं करते थे और इसीलिए १८०० ई० के अन्त में रूस, डेनमार्क और स्वीडेन ने सशस्त्र तटस्थता की नीति का अवलम्बन किया।

## § ४—अँगरेजों की अलहदगी और आर्मियाँ की सन्धि

## ( १८०१-२ ई० )

ग्रेट ब्रिटेन की संकटाकीर्ण स्थिति—( १८०१ ई० )—सन् १७९७ की भाँति १८०१ ई० भी ग्रेट ब्रिटेन के लिए बहुत संकटाकीर्ण था, क्योंकि अब फिर युरोप में अँगरेजों का कोई मित्र न रह गया था। सशस्त्र तटस्थता के कारण लड़ाई हो जाने की काफी सम्भावना थी। इधर फरवरी के महीने में प्रधान मन्त्री पिट ने पद त्याग कर दिया और उसकी जगह एडिंग्टन एक बड़ा अयोग्य मन्त्री आया। परन्तु मार्च के अन्तिम और एप्रिल के प्रारम्भिक सप्ताह की घटनाओं ने परिस्थिति को बिलकुल बदल दिया। ऐबरक्रोम्बे, जिसे फ्रान्सीसी सेना पर आक्रमण करने के लिए मिस्र भेजा गया था, अपनी थोड़ी सी सेना के साथ मिस्र में पहुँच कर एलेग्जेंड्रिया पर बड़ी ओजपूर्ण विजय प्राप्त करने में समर्थ हुआ। इसका फल यह हुआ कि पाँच महीने बाद फ्रान्सीसी सेनाओं ने आत्मसमर्पण कर दिया। इस लड़ाई के दो दिन बाद रूस के ज़ार पाल की हत्या हो गयी और उसकी मृत्यु के साथ सशस्त्र तटस्थता नीति वाले देशों की मानो रीढ़ टूट गयी; क्योंकि नया ज़ार एलेग्जेंडर १म अँगरेजों के पक्ष में था और उसने उनसे सन्धि कर ली। इस बीच में इन तटस्थ राष्ट्रों के ऊपर कई संकट आये। अँगरेजों ने पच्छिमी द्वीप समूहों के डेनमार्क और स्वीडेन अधिकृत द्वीपों पर अधिकार कर लिया। फिर पहली एप्रिल को कोपेनहेगन की लड़ाई हुई। इस लड़ाई मे नेल्सन अँगरेजी बेड़े के कुछ जहाजों को लेकर कोपेनहेगन बन्दर के सामने घूम घुमाव के संकुचित जलमार्ग से होकर अपने जहाज घुमा ले गया। अँगरेजी बेड़े का कमान्डर-इन-चीफ पार्कर बाकी जहाजों के साथ बाहर रहा। तीन घंटे की लड़ाई के बाद भी जब उसने देखा कि डेनी तोपखाना बराबर आग उगल रहा है तो उसने लड़ाई बन्द कर देने का सिगनल दे दिया। नेल्सन ने सिगनल देख तो लिया परन्तु अपनी फूटी हुई आँख पर दूरबीन लगा कर यह कह दिया कि उसे लड़ाई बन्द करने का सिगनल दिखायी नहीं देता। उसने लड़ाई जारी रक्खा और थोड़ी देर में हमला करके न सिर्फ कोपेनहेगन के किले की तोपों को ही बन्द कर दिया बल्कि डेनी बेड़े को तहस नहस कर वहीं डुबाकर टंडा कर दिया। लड़ाई जीत लेने के बाद उसने डेनी गवर्नमेन्ट को सशस्त्र तटस्थता छोड़ देने पर मजबूर किया और इस प्रकार बाल्टिक समुद्र का रास्ता अँगरेजी बेड़े के आने जाने के लिए खुलवा दिया।

## फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का युद्ध (१७९३-१८०२ ई०)

[ १७९२ ई० में फ्रान्स की आस्ट्रिया और प्रशिया के विरुद्ध युद्ध घोषणा ]

| | राजनीतिक इतिहास | सैनिक कार्रवाइयाँ | |
|---|---|---|---|
| पहली दलबन्दी | १७९३ ई० लुई १६श को फाँसी | फ्रान्सीसी नीदरलैंड से निकाले गये<br>डनकर्क का घेरा | तुलोन छोड़ दिया गया |
| | पहली दलबन्दी | | |
| | १७९४ ई० | मित्रराष्ट्रों का नीदरलैंड से हटना<br>फ्रान्सीसियों का कब्ज़ा | १ली जून की विजय<br>पच्छिमी द्वीपसमूह पर अधिकार |
| | १७९५ ई० प्रशिया और स्पेन दल से अलग। फ्रान्स में डाइरेक्टरी की स्थापना | | केप ऑव गुडहोप पर क़ब्ज़ा (वि)<br>क्वेबर्न खाड़ी की मुहिम (प) |
| | १७९६ ई० | नेपोलियन इटली में | बैंट्री खाड़ी की मुहिम<br>सीलोन पर क़ब्ज़ा (वि) |
| संकट का समय | १७९७ ई० आस्ट्रिया का फ्रान्स से सुलह | | सेन्ट विन्सेन्ट (वि)<br>जहाज़ियों का बलवा |
| | १७९८ ई० आयरलैंड में विद्रोह<br>वेल्जली भारतवर्ष का गवर्नर जनरल | नेपोलियन मिस्र में | कैम्परडाउन (वि)<br>नील नदी की लड़ाई (वि) |
| दूसरी दलबन्दी | १७९९ ई० दूसरा युद्ध; नेपोलियन फ़र्स्ट कौंसिल बना | अँगरेज़ों की हालैंड पर चढ़ाई | श्रीरंगपट्टम पर कब्ज़ा (वि)<br>अरकाट की रक्षा (वि) |
| | १८०० ई० आयरलैंड से ऐक्य का ऐक्ट; रूस युद्ध से अलग हुआ। रूस ने सशस्त्र तटस्थों का दल बनाया | मारेंगो (प)<br>होहिनलिंडन (प) | |
| | १८०१ ई० आस्ट्रिया की फ्रान्स से सुलह। एलेग्जेन्डर १म ज़ार बना। एडिंग्टन प्रधान मन्त्री बना | | कोपेनहेगन (वि)<br>एलेग्ज़ेंड्रिया (वि) |
| | १८०२ ई० आमियाँ की सन्धि | | ट्रिनिडाड पर कब्ज़ा (वि) |

१८०२ ई० में आमियाँ की सन्धि—इन सब विजयों के बाद भी इंगलैंड की स्थिति अच्छी नहीं थी। उस पर ऋण का भारी बोझ लदा हुआ था और फिर उसका प्रधान मन्त्री युद्ध नीति का बड़ा विरोधी था। इसलिए इंगलैंड सन्धि करने के लिए

तैयार था। नेपोलियन भी राजी हो गया और १८०१ ई० का अन्त होते होते सन्धि-पत्र की प्रारम्भिक शर्तें तय होकर आखिर १८०२ ई० में आमियाँ की सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। इस सन्धि से दोनों पक्ष प्रसन्न तो थे, परन्तु गौरवान्वित कोई न था; क्योंकि इसकी शर्तों के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन ने सीलोन और ट्रिनिडाड को छोड़ कर फ्रान्स से जीते हुए सब प्रदेश वापिस कर दिये। फ्रान्स के पास वह प्रदेश जिसे अब बेल्जियम कहते हैं बना रहा और राइन नदी उसकी सीमान्त हो गयी।

लड़ाई की प्रगति पर कुछ सम्मतियाँ—इस युद्ध की सारी प्रगति में पिट और उसके सहकारी डुंडाज़ का हाथ रहा। मेकाले की राय में इस युद्ध के संचालन में पिट की नीति निरी ढकोसले की थी और डुंडाज तो लड़ाई की बातों से इतना अनभिज्ञ था कि उसे अपने अज्ञान का भी कोई चेत न था। यह आलोचनाएँ अवश्य ही कुछ कठोर हैं; परन्तु इस युद्ध के विवरण पढ़ने पर यह असम्भव है कि लोगों की यह धारणा न हो कि हमारे नीतिज्ञ प्रायः उन स्वर्ण अवसरों से उचित लाभ उठाने में असमर्थ रहे जो उनके सामने आये तथा उन्हें अपने निर्दिष्ट उद्देश्य का भी कोई स्पष्ट और क्रमपूर्ण ध्यान नहीं था। इसलिए बहुत थोड़ी और कुसज्जित सेनाएँ भेज कर वे अपने जनरलों के रास्ते में बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित कर देते थे। यही कारण है कि इस युद्ध का बहुत सा विवरण निराशाजनक है। फिर भी पच्छिमी द्वीपसमूहों में नीदरलैण्ड में और विशेष रूप से मिस्र में, हमारे सैनिक बड़ी बहादुरी से लड़े और हमारे कई जनरलों ने, जिनमें से एबरक्रोम्बी विशेष उल्लेखनीय है, बड़ी कुशलता दिखाई। अँगरेजी जल सेना ने तो इन तीन युद्धों में अमर कीर्ति प्राप्त कर ली।

---

# अध्याय १६

## नेपोलियन के ज़माने के युद्ध

### ( १८०३-१५ ई० )

लड़ाई फिर छिड़ने के कारण ( १८०३ ई० )—आमियाँ की सन्धि स्थायी न रह सकी, क्योंकि फ्रान्स की नयी व्यवस्था से नेपोलियन की महत्वाकांक्षाओं की तुष्टि न हो सकी और उसकी उग्र नीति ने युद्ध को अवश्यम्भावी बना दिया। फर्स्ट कौन्सल ने इस समय पीडमान्ट और ऐल्बा द्वीप को फ्रान्स के राज्य में मिला लिया था। फिर जर्मन रियासतों के झगड़े में उसने मध्यस्थ बन कर उनकी सीमाओं को इस प्रकार व्यवस्थित किया कि यह फ्रान्सीसी राज्य के हित साधन में अनुकूल रही। स्विटज़रलैंड में उसने तीस हज़ार सेना भेज कर देश का एक नया शासन-विधान बना दिया। हालैंड को तो उसने एक प्रकार से फ्रान्स के राज्य के अन्तर्गत कर दिया और इस तरह पर उत्तरी सागर में अँगरेजों के प्रभुत्व पर एक बार फिर चोट की। नेपोलियन

की महत्त्वाकांक्षाएँ युरोप तक ही परिमित न थीं, मिस्र में गये हुए एक फ्रान्सीसी करनल की रिपोर्ट ने ग्रेट ब्रिटेन में बड़ी उत्तेजना फैलाई। उसकी राय थी कि ६ हजार फ्रान्सीसी सेना मिस्र पर फिर अधिकार कर लेने के लिए काफ़ी होगी। फ्रान्स के सरकारी अखबार में इस रिपोट के प्रकाशित होने से यह स्पष्ट था कि नेपोलियन का दाँत अब भी मिस्र पर था यद्यपि उस समय ग्रेट ब्रिटेन को इस बात का आभास नहीं था, परन्तु अब यह बात निश्चित रूप से मालूम है कि गुडहोप अन्तरीप, भारतवर्ष और आस्ट्रेलिया पर भी अधिकार कर लेने की योजनाएँ बनायी गयी थीं। नेपोलियन भी इस सन्धि से असन्तुष्ट था क्योंकि उसकी शर्तों के विरुद्ध ग्रेट ब्रिटेन बराबर माल्टा पर अधिकार जमाये रहा और अँगरेजी समाचार-पत्र उसके विरुद्ध प्रचार करते रहे। आखिरकार सन् १८०३ ई० में लड़ाई छिड़ गयी। ब्रिटेन के लिए तो यह सौभाग्य की ही बात हुई क्योंकि इस समय नेपोलियन एक बहुत बड़ा जहाज़ी बेड़ा तैयार कर रहा था जिसके बन जाने के लिए अगर काफ़ी समय मिल जाता तो अँगरेज़ों की समुद्र पर प्रभुता जरूर संकट में पड़ जाती।

## § नेपोलियन और इंग्लैण्ड पर आक्रमण

### ( १८०३-०५ ई० )

यह युद्ध नेपोलियन के जमाने का युद्ध कहलाता है। मई सन् १८०३ ई० से अक्टूबर १८०५ ई० तक युद्ध के शुरू के २६ महीनों में नेपोलियन के इंग्लैंड पर आक्रमण करने के प्रयत्न प्रमुख रहे। अपनी इस महान योजना को कार्यान्वित करने के लिए नेपोलियन ने बुलोइन के आस-पास लगभग एक लाख सेना इकट्ठी की। इसी सेना के सिपाहियों ने युरोप में आगे चल कर बड़ी अद्भुत विजयें प्राप्त कीं। इस सेना को इंग्लिश चैनेल के पार उतारने के लिए उसने सपाट-धरातल वाली दो हज़ार नावें बनवायीं। परन्तु इंग्लिश चैनेल में अँगरेज़ों के हर तरह के जहाज हर समय घूमते रहने के कारण उसे इस बात का अनुभव हो गया कि ३० मील चैनेल पार करने में इन नावों के दल की रक्षा के लिए एक जहाजी बेड़े की भी बहुत आवश्यकता थी। फ्रान्स के बड़े-बड़े जंगी जहाज ब्रेस्ट और टुलोन के बन्दरगाहों में और छोटे जहाज राजफोर्ट और फेरोल ( इस समय फेरोल को नेपोलियन ने स्पेन से ले लिया था ) के बन्दरों में पड़े हुए थे और इनके बाहर अँगरेजी जहाज़ों का बेड़ा बड़ा सतर्कता से निगरानी कर रहा था। कार्नवालिस द्वारा ब्रेस्ट का निरोध बड़ा आश्चर्यजनक था और फेरोल और राजफोर्ट पर भी अँगरेज़ कमांडर कुछ कम सतर्क न थे। टुलोन पर नेल्सन का घेरा इतना कड़ा न हो सका लेकिन अपने फ्रिगेटों द्वारा वह इस बन्दर पर बड़ी कड़ी निगरानी करता था और इस सारे संकटपूर्ण जमाने में उसके बेड़े के जहाज बराबर समुद्र में ही फेरी लगाते रहते थे। दो वर्ष में केवल दस दिन को छोड़ कर वह कभी अपने जहाज़ विक्ट्री पर से बाहर न जा सका। नेपोलियन की बुलोइन

स्थित सेना ने फ्रान्सीसी बन्दरगाहों के बाहर निकल कर कभी इन अँगरेजी जहाज़ों का सामना न कर पाया।

विलेनव और नेलसन—अब नेपोलियन के सामने यह समस्या थी कि फ्रान्सीसी बेड़ा किस प्रकार अँगरेजी जहाज़ों की आँख बचाकर इतने काफ़ी समय तक चैनेल पर कब्ज़ा कर सके कि उसकी नौका दल सेना को लेकर पार हो जाय। नेपोलियन के दिमाग में सैकड़ों योजनाएँ आती थीं परन्तु अँगरेज़ी एडमिराल्टी के प्रधान लार्ड बरहम और अँगरेज़ जल सेना के ऐडमिरलों की सतर्कता और सहकार्यता के कारण यह कभी सफल न हो सकीं। आखिर नेपोलियन ने १८०५ ई० में स्पेन से सन्धि कर उसका जहाजी बेड़ा ब्रिटेन के विरुद्ध आक्रमण करने के लिए प्राप्त कर लिया। अब यह योजना बनी कि फ्रान्सीसी और स्पेन बेड़े के सब जहाज़ एक बार समुद्र में निकल कर वेस्ट इंडीज के पास जमा हों और फिर वहाँ से युरोप की ओर चल कर विपक्षी नौ सेना को तहस-नहस कर डालें। ब्रेस्ट वाला बेड़ा तो बाहर न निकल सका; परन्तु विलेनव के नेतृत्व में टुलोन वाला बेड़ा मार्च महीने में खुले समुद्र में आ गया और कैडिज पहुँच कर स्पेनी बेड़े को साथ लेता हुआ १४ मई को मार्टिनीक जा पहुँचा। नेलसन ने जिसको मिस्र, नेपल्स या सिसली पर आक्रमण की रक्षा के लिए विशेष रूप से नियुक्त किया गया था, यह ख़याल किया कि टुलोन वाला फ्रान्सीसी बेड़ा शायद पूरब की ओर जा रहा है। इसलिए वह सार्डिनिया और ट्यूनिस तट के समुद्र की बड़ी सतर्कता से निगरानी करता रहा। जब उसे यह ख़बर लगी कि विलेनव पच्छिम की ओर गया है तो उसमें वेस्ट इंडीज पहुँचने के ठीक ८ दिन पहले वह जिब्राल्टर जा पहुँचा। अब उसे ख़बर लगी कि विलेनव किस ओर गया है इसलिए उसने फिर उसका पीछा किया।

लेकिन जब ४ जून को नेलसन बारबडोज पहुँचा और शत्रु केवल १०० मील ही रह गया था, तब उसे फिर एक अँगरेज जनरल ने ग़लत सूचना देकर उत्तर की ओर मार्टिनीक जाने के बजाय दक्खिन में ट्रिनिडाड भेज दिया। विलेनव ने नेलसन के आगमन की सूचना पाकर फ्रान्स लौट जाने का निश्चय किया। कई दिन बाद नेलसन फिर उसके पीछे रवाना हुआ और एक तीव्रगामी सम्वादवाहक नौका द्वारा उसने यह सूचना लार्ड बरहम को भेज दी। फिनिस्टेर अन्तरीप के पास विलेनव के लौटते समय कैल्डर की अध्यक्षता में अँगरेजी जहाजों का बेड़ा उस पर आक्रमण करे यह योजना निश्चित हुई। २२ जुलाई को कैल्डर के छोटे से बेड़े ने विलेनव के जहाज़ों को जा पकड़ा और कुहरे में ही आक्रमण कर उसके दो जहाजों को पकड़ लिया। इस लड़ाई का परिणाम अनिश्चित रहा क्योंकि दूसरे दिन कैल्डर का बेड़ा विलेनव को न पकड़ पाया और वह फ़ेरोल के पास कोरुना के बन्दर में जा पहुँचा। इसी बीच में नेलसन भी अपने बेड़े के साथ स्पेन के दक्खिन पहुँचा और विलेनव की कोई ख़बर न पाकर ब्रेस्ट के बाहर कार्नवालिस के बेड़े से जा मिला।

विलेनव के कोरुना पहुँच जाने से इंग्लैंड की कठिनाइयों का ख़ात्मा नहीं हुआ। अगस्त में विलेनव कोरुना बन्दर से निकल कर ब्रेस्ट के बेड़े से मिलने के लिए उत्तर जाने की बजाय दक्खिन की ओर चल दिया और उसने कैडिज़ में प्रवेश किया। थोड़े ही समय बाद वहाँ उसका अँगरेज़ी बेड़े ने निरोध कर दिया। अब नेपोलियन को इंग्लैंड पर आक्रमण की अपनी सारी योजना छोड़ देनी पड़ी। इस समय पिट फिर प्रधान मन्त्री हो गया था और अब की बार उसने फ्रान्स के विरुद्ध रूस, आस्ट्रिया और स्वीडेन को मिलाकर एक नया और तीसरा गुट बनाया था। यह देखकर नेपोलियन ने बोलोइन से अपनी सेना हटा कर आस्ट्रियाँ से लड़ने भेजी। इसी बीच में नेल्सन, जो थोड़े ही दिनों छुट्टी मनाकर इंग्लैंड से लौटा था, विलनेव की
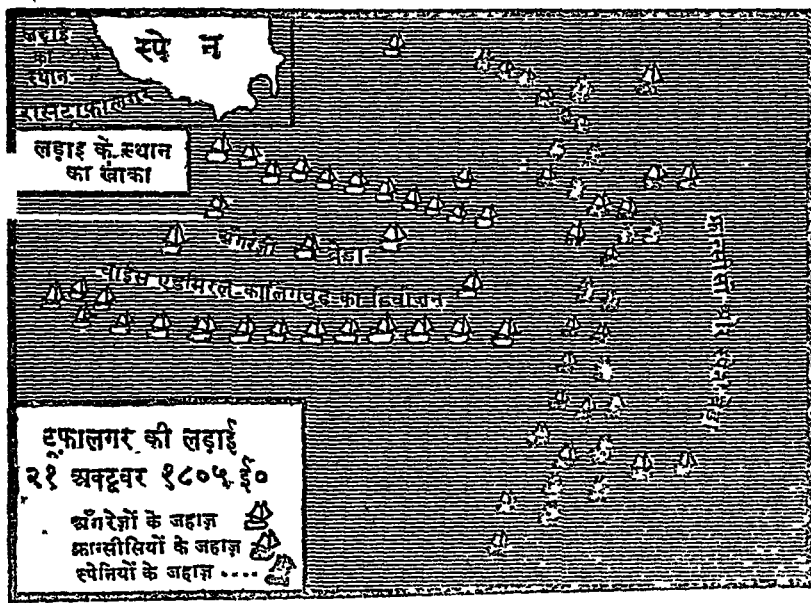
गतिविधि पर कड़ा निगाह रखे रहा। अब अँगरेज़ भूमध्य सागर में फ्रान्स की बस्तियों पर आक्रमण करने लगे। उसके विचार में विलनेव यह सब कुछ बैठे बैठे न देख सकता था। इसलिए जब नेपोलियन ने भी उसे मजबूर किया तो नेपल्स पर अँगरेजों का आक्रमण रोकने के लिए वह अपना जहाजी बेड़ा लेकर कैडिज के बन्दरगाह से बाहर निकल आया। नेल्सन तो यह चाहता था, चुनांचे उस ने तुरन्त फ्रान्सीसी बेड़े पर आक्रमण किया और ट्राफालगर अन्तरीप के सामने २१ अक्टूबर को ट्राफालगर की जगत्प्रसिद्ध लड़ाई हुई।

ट्राफालगर की लड़ाई—फ्रान्सीसी और स्पेनियों के लड़ाई के जहाज़ों का बेड़ा जिसमें ३३ जहाज़ थे जब कैडिज़ छोड़ कर बाहर निकला तो नेल्सन ने उसे देख लिया। ये जहाज़ लगभग पाँच मील की लम्बाई में वक्राकार फैले हुए थे। नेल्सन

ने पहले अपने बेड़े के २३ जहाजों को दो टोलियों में विभक्त कर शत्रु के बेड़े के मध्य और पृष्ठ भाग पर आक्रमण करना चाहा। जहाजों की एक टोली कालिंगवुड की कमान में थी और उसे पृष्ठ भाग पर आक्रमण करने का हुकुम था। दूसरे का नायक स्वयम् नेलसन था जिसे मध्य भाग पर आक्रमण कर शत्रु के अग्र भाग के जहाज़ों को काट देना था। दोपहर के करीब लड़ाई शुरू हुई। कालिंगवुड का जहाज रायल सावरिन अपने दस्ते से बहुत आगे बढ गया और १५ मिनट तक शत्रु के जहाजों से अकेला लड़ता रहा। इसी समय नेलसन ने प्रसिद्ध सिगनल खड़ा किया कि इंग्लैंड को आशा है कि प्रत्येक सैनिक कर्त्तव्य पालन करेगा। अब नेलसन के दस्ते ने भी आक्रमण किया और नेलसन का जहाज विक्ट्री सब से आगे था। उसकी तोपों की पहली ही बाढ ने शत्रु की २० तोपें बेकार कर दीं और लगभग ४०० सैनिक निहत हुए। दोनों ओर से ख़ूब डटकर लड़ाई हुई; परन्तु अँगरेजों के तोपख़ाने की श्रेष्ठता ने लड़ाई का फ़ैसला उनके अनुकूल कर दिया और शत्रु के ३३ जहाजों में से अँगरेजों ने १६ जहाज पकड लिये। लड़ाई के बीच में जब अँगरेजों की विजय होने में कुछ ही देर रह गयी थी कि नेलसन पीठ मे गोली खाकर मारा गया। लार्ड सेन्ट विन्सेन्ट का यह वाक्य अमर सत्य है कि नेलसन तो एक ही था।

## *नेपोलियन की शक्ति का विकास

## ( १८०५-८ ई० )

नेपोलियन की शक्ति में उन्नति—ग्रेट ब्रिटेन में निस्सन्देह ही नेपोलियन को समुद्र की लड़ाई मे परास्त कर दिया और फिर इस युद्ध के समाप्त होने तक युरोप की किसी दूसरी शक्ति ने इंग्लैंड की समुद्र पर सर्वसागरिक प्रभुता के विरुद्ध सिर नहीं उठाया। परन्तु स्थल पर इंग्लैंड नेपोलियन की विजयोन्नति को न रोक सका। ट्राफालगर की लड़ाई को हफ्ते बाद ( दिसम्बर २, सन् १८०५ को ) नेपोलियन ने आस्ट्रियनों और रूसियों को आस्तरलित्स पर हराया। इस हार से तीसरी दलबन्दी की कमर टूट गयी और आस्ट्रिया को सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। आस्तरलित्स की लड़ाई के समय पिट बाथ नगर में था। एक दिन जब वह पटनी के यहाँ गया और उसके घर में युरोप का नकशा टँगा देखा तो उसके मुँह से निकल गया "इसे बन्द करके रख दो अब इसकी १० वर्ष तक ज़रूरत न पड़ेगी।" इस हार से पिट का दिल टूट गया और वह ६ सप्ताह में ही इस संसार से चल बसा। पिट के मरने के साथ ही तीसरे गुट्ट का संगठन भी टूट गया और सन् १८०६ ई० के अन्त में जेना की लड़ाई के बाद प्रशिया का भी पतन हो गया। १० बरस तक तटस्थ रहने के बाद पिट ने बड़ी चालाकी से प्रशिया को फ्रान्स के विरुद्ध लड़ने को खड़ा किया था। १८०७ ई० में नेपोलियन ने फ्रेडलैंड पर रूसी फौजों को पराजित किया। रूसियों को शिकायत थी कि ग्रेट ब्रिटेन ने उनको धन से सहायता करने मे बड़ी

आनाकानी की इसलिए अँगरेज़ों से असन्तुष्ट होकर ज़ार ने टिलसिट पर नेपोलियन से सन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार प्रशिया का बँटवारा हो गया और यह निश्चित हुआ कि रूस और फ्रान्स के मतानुसार जर्मनी का पुनर्संगठन किया जाय। इस सन्धि की गुप्त शर्तों के अनुसार यह भी निश्चय हुआ कि ग्रेट ब्रिटेन के खिलाफ़ रूस नेपोलियन का साथ देगा। १८०७ ई० के हेमन्त में ग्रेट ब्रिटेन के एक मात्र मित्र पोर्तुगाली राज-परिवार ब्रज़ील भाग गया। आख़िर सन् १८०८ ई० में स्पेन के सज्जन परन्तु दुर्बल बादशाह चार्ल्स और उनके कायर पुत्र फर्डिनेंड के झगड़े का नाजायज़ फ़ायदा उठाकर नेपोलियन ने दोनों को बेयोन भेज दिया। चार्ल्स को उसने अवश्य ही डरा धमका कर इस बात पर राजी कर लिया कि वह अपना राज छोड़ दे और राजकुमार से यह मनवा लिया कि स्पेन के राज्य पर उसका कोई अधिकार नहीं रहा। नेपोलियन ने अपने भाई जोज़फ को स्पेन का बादशाह बनाकर मेड्रिड भेज दिया।

१८०८ ई० में नेपोलियन की स्थिति—अब तो सारे युरोप में नेपोलियन का बोलबाला था। फ्रान्स के साम्राज्य में फ्रान्स बेलजियम, राइन तक का प्रदेश और पीडमान्ट और टस्कनी शामिल थे। इटली के बादशाह के नाते नेपोलियन की लम्बार्डी और वेनीशिया पर सीधी हुकूमत थी। राइन के संघ (कानफ़िडरेशन) का संरक्षक होने के कारण उसके अधिकार में आस्ट्रिया और प्रशिया को छोड़ कर सब जर्मन रियासतों की नीति और सेनाएँ थीं। उसके भाइयों में से लुई हालैंड का बादशाह था, जेरोम वेस्टफेलिया का; जोज़फ स्पेन का और उसका बहनोई नेपेल्स का। रूस उसका मित्र था; प्रशिया का राज्य-विस्तार अब आधा ही रह गया था और आस्ट्रिया हार पर हार खाने के बाद चुपचाप बैठ गया था।

नेपोलियन का कान्टिनेन्टल सिस्टम और ग्रेट ब्रिटेन—अब अकेला ग्रेट ब्रिटेन ही नेपोलियन से लोहा लेने के लिए बच रहा था। अगर ग्रेट ब्रिटेन को पराजित नहीं किया जा सकता था तो कम से कम उसके यहाँ आवश्यक चीजों का आना बन्द करके उसे भूखों मारा जा सकता था। अगर नेपोलियन अपने शत्रु के हृदय पर आघात नहीं पहुँचा सकता तो कम से कम उसका पेट जरूर काट सकता था। अर्थात् अगर नेपोलियन ग्रेट ब्रिटेन पर आक्रमण करने में असमर्थ था तो उसके व्यापार को, जिस पर उसका जीवन और उसकी समृद्धि निर्भर थी, अवश्य मटियामेट कर सकता था। अगर ग्रेट ब्रिटेन का माल उसके जहाजों द्वारा समुद्र पार के देशों में जाने से नहीं रोका जा सकता था तो भी "साउंड से लेकर हेलेसपोन्ट तक सारा युरोप उसका बहिष्कार अवश्य कर सकता था।" अस्तु १८०६ ई० के अन्त में नेपोलियन ने बर्लिन से एक आज्ञापत्र प्रकाशित किया जिसके अनुसार ब्रिटिश द्वीपों का निरोध घोषित कर दिया गया। इस डिक्री के अनुसार ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड अथवा उनके किसी उपनिवेश से आने वाले जहाज को फ्रान्स या उसके मित्रराष्ट्रों के बन्दरगाहों में न आने दिया जाता और समुद्र या स्थल पर अँगरेज़ों के यहाँ से चले हुए किसी भी

माल को जब्त कर लिया जाता। इस कान्टिनेन्टल सिस्टम की डिक्रियों को आस्ट्रिया और प्रशिया तथा रूस और नेपोलियन के अधिकार के सभी देशों को मानना पड़ा।
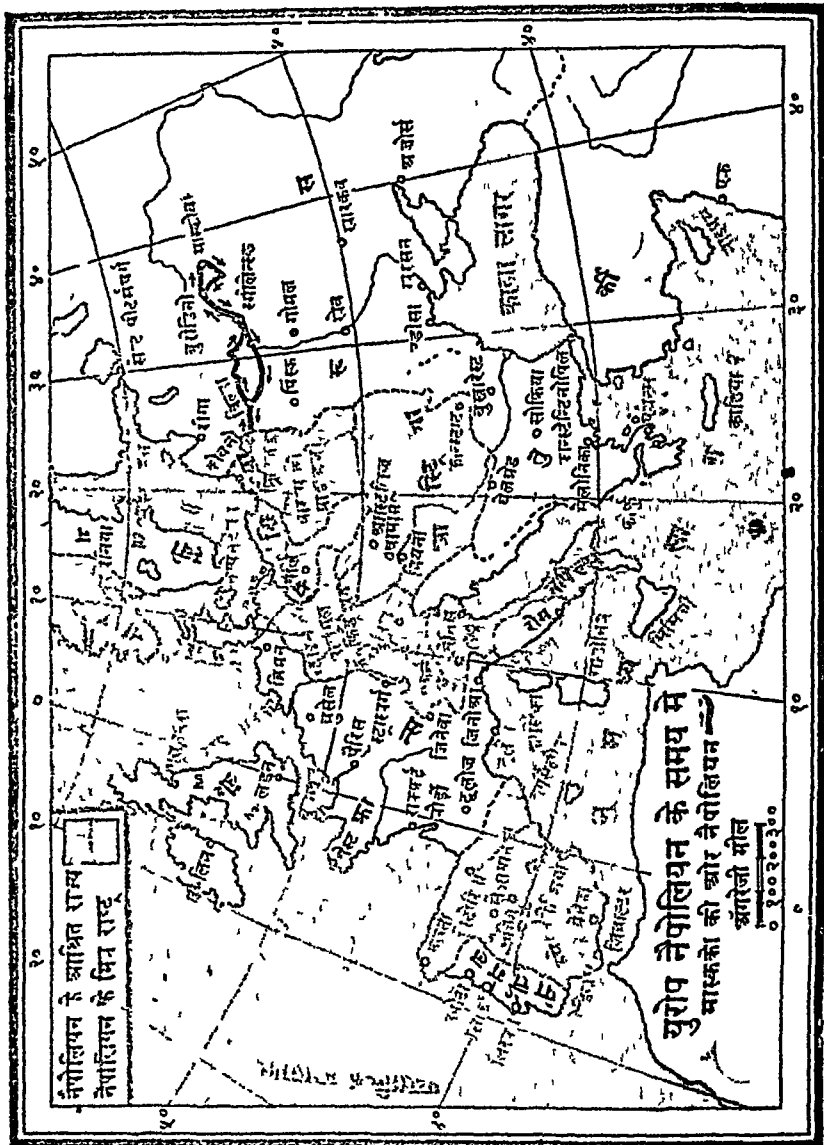
कान्टिनेन्टल सिस्टम का संचालन—इस सिस्टम के कृतकार्य होने के लिए यह आवश्यक था कि सारे युरोप को मान्य हो। किसी एक जगह भी इसकी अस्वीकृति होने पर उस देश में होकर अँगरेजों का माल घुस सकता था और फिर छिपा चोरी से उसके सारे युरोप में फैजाने की आशका थी। इसी आशंका

का अनुभव करके नेपोलियन ने स्पेन और पोर्तुगाल के समुद्र में कान्टिनेन्टल सिस्टम की नीति निर्धारित की। फिर भी कई ऐसे प्रदेश थे जिसमे होकर अँगरेजी माल नेपोलियन की आज्ञाओं के विरुद्ध भी युरोप में भेजा जा सकता था। ग्रेट ब्रिटेन ने हेलीगोलैंड पर अधिकार करके जर्मनी द्वारा अपना युरोप मे भेजने के लिए इसे एक बड़ा सुगम अड्डा बना लिया। कहा जाता है कि १८०६ ७ ई० के जाड़ों में बर्लिन आज्ञापत्र के विरुद्ध हामबुर्ग के फ्रान्सीसी कौंसिल ने इंग्लैंड से मँगाकर फ्रान्सीसी सेना के लिए जाड़ों की वर्दी के कपड़े और जूते दिये थे। नेपोलियन के अपने ही भाई लुई के शासन में डच गवर्नमेन्ट कान्टिनेन्टल सिस्टम का कड़ाई से उपयोग करने में ज़रा भी सतर्क न थी और उसके बन्दरों में होकर अँगरेज़ी माल का व्यापार छुपा छिपी बराबर चलता रहा। आख़िर नेपोलियन ने १८१० ई० में हालैण्ड पर अधिकार करके इस ढिलाई को ख़तम करने की चेष्टा की। ग्रेट ब्रिटेन ने भी नेपोलियन की इन आज्ञाओं का उचित उत्तर देने में ढील न की। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने अपने "आरडर्स इन-काउन्सिल" द्वारा उन सब बन्दरगाहों का विरोध घोषित किया जहाँ ब्रिटिश जहाजों के जाने की मनाही थी और अन्य देशों के जहाज़ों को भी बिना पहले अँगरेज़ी बन्दरगाह में गये या बिना अँगरेजी आज्ञापत्र प्राप्त किये हुए उन बदरगाहों में जाने से रोक दिया। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि लड़ाई के अन्त के निकट तो अवश्य ही नेपोलियन की इस कार्रवाई से ग्रेट ब्रिटेन को बहुत क्षति उठानी पड़ी।

ग्रेट ब्रिटेन की सैनिक कार्रवाई—नेपोलियन की कौशलपूर्ण सफलताओं से विचलित न होकर ग्रेट ब्रिटेन ने नेपोलियन और उनके मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध कई मोर्चे लिये। सन् १८०३ और १८११ ई० के बीच में अँगरेजों ने फ्रान्स अधिकृत वेस्ट इंडीज द्वीपसमूहों में फ्रान्सीसियों से मारिशस और डचों से ईस्ट इंडीज के कई द्वीप छीन लिये। इसके बाद १८०७ ई० में ग्रेट ब्रिटेन ने इस बात की भनक पाते ही कि नेपोलियन डेनी फ़्लीट को छीन लेने की फिक्र में है तुरन्त कोपेनहेगेन पर चढ़ाई की और लड़ाई लड़ कर डेनों को अपना जहाजी बेडा दे देने के लिये मजबूर किया। उस समय अँगरेज़ो की इस कृति की बड़ी निन्दा की गयी परन्तु बाद में यह निश्चित हो गया कि यह कार्रवाई नामुनासिब नहीं थी। और जगह ग्रेट ब्रिटेन को ऐसी सफलता नहीं मिली। इसी वर्ष दक्खिनी अमेरिका में ब्रोनस एरिस जीतने तथा तुर्की के सुल्तान को दबाने के लिये कान्स्टेन्टिनोपल को सेनाएँ भेजी गयीं। परन्तु यह सब योजनाएँ असफल रहीं।

इसी प्रकार एन्टवर्प के जहाजों और वहाँ की गोदियों (docks) को ध्वन्स करने के लिये १८०६ ई० में वाल्शेरन को जो सेनाएँ भेजी गयीं उनकी भी यही दुर्दशा हुई। कहा जाता है कि अँगरेजी बेड़े और स्थल सेना के कमांडर आपस में लड़ गये और इस मुहिम की असफलता को एक दूसरे के सिर पर थोपने की कोशिश करते रहे।

**स्पेन और पोर्तुगल में ग्रेट ब्रिटेन का हस्तक्षेप ( १८०८ ई० )**—आखिरकार पोर्तुगल और स्पेन में नेपोलियन की अन्धाधुन्धी देख कर ग्रेट ब्रिटेन ने इस अवसर से लाभ उठाने की चेष्टा की और उसने इन दोनों देशों की हिमायत ली। स्पेन के सारे प्रान्त जोसेफ के विरोध में विप्लव करने के लिए तैयार थे। ग्रेट ब्रिटेन ने इनकी धन और लड़ाई के सामान से सहायता की। परिणाम यह हुआ कि स्पेनियों ने १८ हजार फ्रान्सीसियों को बेलान पर आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य कर दिया। पोर्तुगल में ग्रेट ब्रिटेन ने सर आर्थर वेल्जली की अध्यक्षता में एक सेना भेजी जिसने फ्रान्सीसियों को विमीरो में हरा कर उससे पोर्तुगल खाली करा लिया। इस मुहिम में 'कन्वेशन ऑव सिन्तरा' की शर्तों के अनुसार यह तय पाया था कि फ्रान्सीसी सेना को फ्रान्स वापिस भेज दिया जायगा। इस कन्वेनशन का इंग्लैंड में घोर विरोध हुआ।

**स्पेन पर नेपोलियन की चढ़ाई**—यह परिस्थिति देख कर नेपोलियन को स्वयम् स्पेन और पोर्तुगल पर आक्रमण करना पड़ा। एक बहुत बड़ी सेना ने स्पेन पर धावा बोला और मेड्रिड पर अधिकार कर लिया। इसी समय जब वह स्पेन के दक्खिन और लिस्बन पर चढ़ाई करने की फ़िकर में था अँगरेजों के नये कमांडर सर जान मूर ने उत्तर में नेपोलियन की रसद काट देने की चेष्टा की। नेपोलियन ने मूर पर आक्रमण करने का निश्चय किया और दोनों ओर से एक दूसरे से भिड़ने के लिए हिमाच्छादित पहाड़ी प्रदेश और गहरी घाटियों में होकर सेनाओं ने कार्य करना आरम्भ कर दिया। मार्शल सूल्त को अँगरेजी सेना का पीछा करने के लिए छोड़ कर नेपोलियन फ्रान्स लौट गया। आखिर मूर अपनी सेना सहित पीछे हटता हुआ कोरूना जा पहुँचा। यहाँ लड़ाई में वह मारा गया परन्तु अँगरेजी सेना जनवरी सन् १८०६ ई० में जहाजों पर सुरक्षित पहुँच गयी। मूर के इस साहसपूर्ण आक्रमण में बहुत से वीर योद्धाओं का संहार हुआ, परन्तु फ्रान्सीसी सेना को स्पेन के दक्खिन और केन्द्र से हट जाना पड़ा और इस प्रकार नेपोलियन की योजना असफल रही।

## ६३—पेनेन्सुलर युद्ध और नेपोलियन की हार
## ( १८०६-१४ ई० )

अँगरेजी सेना के स्पेन से भाग जाने के बाद नेपोलियन ने सोचा कि अब वहाँ का विप्लव समाप्त हो गया परन्तु शीघ्र ही उसका यह भ्रम जाता रहा। एप्रिल सन् १८०६ ई० में वेल्जली फिर स्पेन जा पहुँचा और इस प्रकार पैनेन्सुलर युद्ध का श्रीगणेश हुआ। वेल्जली को बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इंग्लैंड में वेल्जली की योग्यता तथा युद्ध छेड़ देने की दुश्चेष्टा पर बहुत कुछ मतभेद था। इसलिए उसे बड़ी सावधानी और सतर्कता से काम करना पड़ा। क्योंकि अगर कहीं बिना नितान्त आवश्यकता के वह ५०० सैनिक भी कटा देता तो उसे बरख़ास्त

कर दिये जाने का भय लगा हुआ था। उसके मातहत अँगरेज अफ़सरों को युद्ध का कोई अनुभव न था, सैनिक को छः छः महीने तक वेतन न मिलता था और इस पर भी बिना छोलदारियों के उन्हें चार लड़ाइयों में लड़ना पड़ा था। फिर अँगरेजों के मित्र-राष्ट्रों में पुर्तगाली सेना निकम्मी और अविश्वसनीय थी। यह सच है कि स्पेनियों ने फ्रान्सीसी सेना के विरुद्ध इतनी सफलता से गोरिल्ला युद्ध जारी किया था कि उस सेना में ३ लाख सैनिक होते हुए भी कभी किसी लड़ाई में वेल्जली के मुकाबले में ७० हजार से अधिक न जमा हो पाते थे। परन्तु खुले मैदान की लड़ाई के लिए तो स्पेनी सेना निकम्मी ही थी। सर्वश्रेष्ठ स्पेनी सैनिक के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि वे शत्रु पर उस समय गोली चलाते जब वह उनकी मार के बाहर होता और फिर तुरन्त भाग खड़े होते थे।

फिर यह प्रदेश बिलकुल पहाड़ी है जहाँ बड़ी बड़ी सेनाओं के लिए गोला बारूद तो दूर रहा खाने की रसद का भी प्रबन्ध करना बहुत मुश्किल था। छोटी छोटी टुकड़ियाँ वैसे ही किसी काम की नहीं थीं, क्योंकि उन्हें सहज ही घेर कर हराया जा सकता था। यहाँ की सड़कें नदियों के साथ साथ जाने के बजाय उनके आर पार गयी थीं। ऐसे स्थान में युद्ध-कौशल इसी बात में था कि शीघ्र से शीघ्र किसी निश्चित स्थान पर काफी बड़ी सेना जमा होकर बड़ा प्रबल और त्वरित आक्रमण कर निर्णायक चोट लगा सके। फ्रान्सीसी जनरलों को तो ऐसे प्रदेश में वेल्जली की अपेक्षा बहुत अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन्हें प्रायः नदियों की घाटियों में होकर आक्रमण करना पड़ता था और एक घाटी को पार कर दूसरी में जाने में कठिनाई होती थी। फिर वहाँ के निवासियों के विरोध के कारण उनका मार्च भी कम खतरे में न रहता था और फ्रान्सीसी सेनाएँ अपने केन्द्र से हट कर जितनी दूर जाती थीं, उतनी ही अधिक उन्हें सुरक्षित रखने की कठिनाइयाँ बढ जाती थीं। इधर अँगरेजी सेनाओं का जलमार्ग उनकी नौ सेना की संरक्षता में काफी सुरक्षित था। इस प्रकार अँगरेज अपनी सेनाओं को सहज ही सकुचित कर हटा सकते और जहाँ शत्रु से सबल पड़ते उस पर धावा बोल कर और उसके आवागमन के मार्ग को काट कर उसे पीछे हटने पर बाध्य कर सकते थे। मूर ने कोरूना की लड़ाई में और वैलिंगटन ने विटोरिया की मुहिम में इसी कौशल से लाभ उठाया और फ्रान्सीसियों को पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया।

युद्ध में फ्रान्सीसियों और अँगरेजों की चालें—इस पैनेन्सुलर युद्ध में अँगरेज सेनापति वेल्जली के मुकाबले में थे वे फ्रान्सीसी जनरल जिन्हें युद्ध-कौशल के महान आचार्य नेपोलियन से शिक्षा मिली थी तथा वे इस युद्ध में वह चालें चलते थे जिनका प्रयोग उनके आचार्य ने बड़ी दक्षता और सफलता से कर दिखाया था। संक्षेप में नेपोलियन की युक्ति इस समय यह थी कि आक्रमण के लिए पूर्वनिश्चित स्थान पर तोपखाने की मार केन्द्रित की जाय और तब निर्बल स्थान पर या तो एक दम रिसाला

धावा बोल दे या नौ, अठारह या वाटरलू की लड़ाई की भाँति चौबीस-चौबीस पैदल सैनिकों के यूथ हल्ला कर दें और इन यूथों से पहले फुर्तीले झपटानी दस्ते शत्रु का ध्यान बँटाने के लिए उस पर आक्रमण करते रहें। वेल्जली में भी इन चालों का समुचित उत्तर देने की प्रतिभा मौजूद थी। पहले शत्रु की अग्निवर्षा से अपनी सेना की
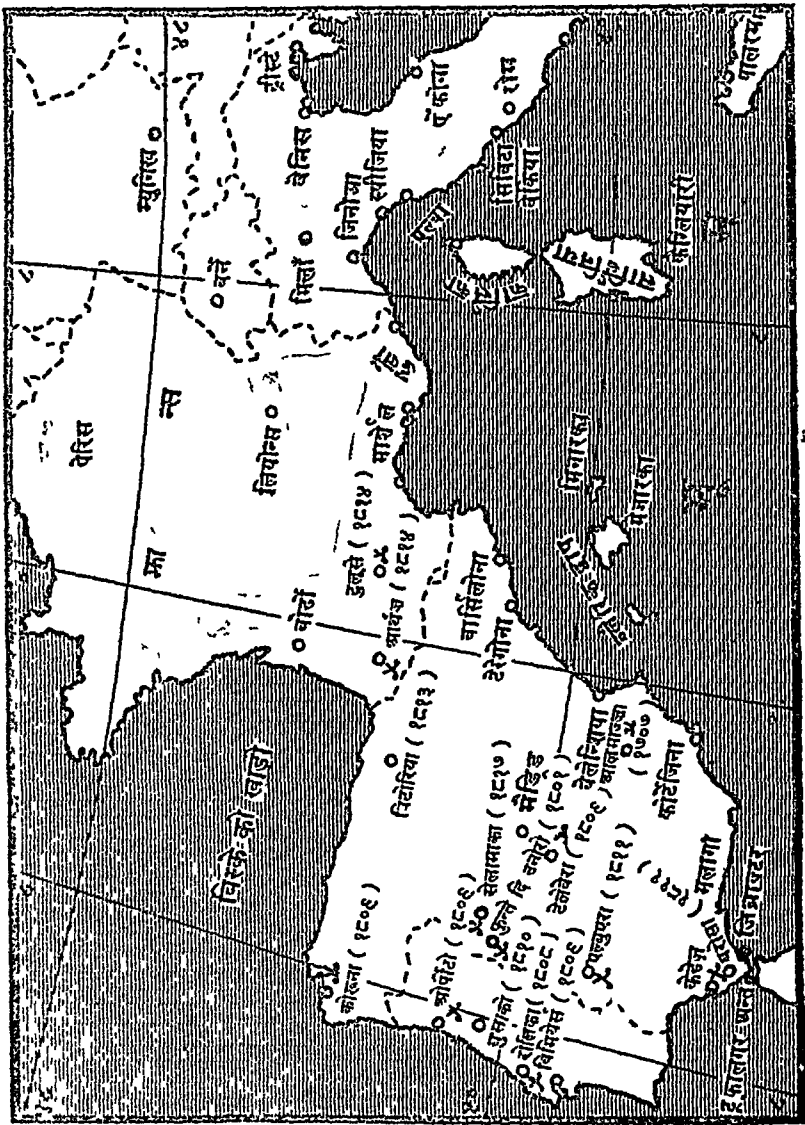
स्पेन और पोर्तुगाल में पेनिन्सुलर युद्ध की लड़ाइयाँ

रक्षा करने के लिए वह अन्तिम क्षण तक उसे किसी ऊँची दीवार या पहाड़ी की ओट में रखने की चेष्टा करता था। फिर जब गोलाबारी के बाद फ्रान्सीसी रिसाले का आक्रमण होता तो उसे रोकने के लिए वह अँगरेजी सेना का वर्गाकार व्यूह बना उसका मुकाबला

करता। जब इसके बाद फ्रान्सीसी पैदल सेना से लड़ने का अवसर आता तब वह अपनी सेना को पंक्तियों में सीधा खड़ा करके व्यूह बनाता था। इस व्यूह-रचना की व्यवस्था ठीक रखने पर कई लाभ थे। पहले तो इस व्यूह की सीधी पक्तियाँ शत्रु के यूथों के पार्श्व से मुड़कर उन्हें घेर सकती थीं और निकट से गोली बरसा कर उन्हें ऐसी भारी क्षति पहुँचा सकती थीं कि उसके उत्तर में शत्रु के सामने वाली पंक्ति से ही गोली चलायी जा सकती थी। अँगरेज़ी सेना की पंक्तियाँ एक दो फायर तो बहुत निकट से करती थीं—इतने निकट से कि शत्रु की सेना की आँख से आँख मिल जाती थी—और फिर इसके पहले कि शत्रु सेना अपने आप को संभाल सके वे संगीनें चढा कर उन पर धावा बोल देती थीं और फिर शत्रु के प्रत्याक्रमण की प्रतीक्षा में पीछे हट जाती थीं।

तलावरा की मुहिम (१८०६ ई०)—सन् १८०६ में पोर्तुगाल पहुँचते ही शत्रु ने वेल्ज़ली के कौशल का अनुभव कर लिया। शत्रु सेना संख्या में तो बहुत अधिक थी परन्तु थी बिलकुल असंगठित। साढ़े तीन दिन में ८० मील मार्च करके उसने डूरो नदी पार कर ली, फ्रान्सीसी जनरल सूल्त को ओपोर्तो से निकाल बाहर किया और उसे स्पेन में खदेड़ ले गया। तब स्पेनी सीमान्त पार कर और एक स्पेनी सेना की सहायता से उसने एक दूसरे फ्रान्सीसी जनरल की सेना पर टेगस की घाटी में आक्रमण किया। परन्तु यहाँ लगातार दो दिन लड़ने के बाद स्पेनी जनरल की अकर्मण्यता और फ्रान्सीसी कुमक आ जाने के कारण वह मेड्रिड पर न बढ़ कर उल्टे पोर्तुगल की सीमा में लौट आया। पोर्तुगल पहुँचने पर भी कुछ समय तक वेल्ज़ली को दबकर अपनी रक्षा में ही लगा रहना पड़ा। नेपोलियन ने इस समय स्पेन में बड़ी भारी कुमक भेज दी थी और स्पेन की सेनाओं को कई बार पराजित होना पड़ा था। सन् १८१० में फ्रान्सीसी सेना मसीना के नेतृत्व में पोर्तुगल में अँगरेज़ों को निकाल बाहर करने के लिए आगे बढ़ी।

टोरेसवेड्रस की दुर्गपंक्तियाँ (१८१०—११ ई०)—पोर्तुगल पर मसीना का आक्रमण युरोप के इतिहास में बड़े निर्णायक अवसर पर हुआ। अगर इस समय वेल्ज़ली की सेनाएँ पोर्तुगल से हटा दी गयी होतीं तो यह सम्भव था कि ग्रेट ब्रिटेन नेपोलियन की हार मान लेता। क्योंकि उस समय के प्रायः सभी गणनीय राजनीतिज्ञ अँगरेज़ों के स्पेन और पोर्तुगल में जाकर युद्ध में पड़ने के विरुद्ध थे। सारा राष्ट्र युरोप की लड़ाइयों में अँगरेजों की निरन्तर पराजयों के कारण हताश होकर थक गया और नेपोलियन को अजेय मानने लग गया था। फिर नेपोलियन द्वारा कान्टिनेन्टल सिस्टम की कड़ाई के कारण इंग्लैंड में बड़ा हाहाकार मचा हुआ था और लोग बिलकुल निराश हो गये थे। परन्तु वेल्ज़ली ने मसीना की फ्रान्सीसी सेना का मुक़ाबला करने के लिए एक नयी योजना बनायी। उसकी सेना का आधार था लिस्बन जो एक छोटे से प्रायद्वीप पर स्थित है और जिसे एक बड़ा भूभाग बाक़ी

के प्रदेश से जोड़ता है। पिछले ६ महीने से वेल्जली के इंजीनियर आसपास की रिआया की सहायता से इस सँकरे भूभाग की नाकाबन्दी करने में लगे हुए थे। यही स्थान टोरेसवेड्रूस की दुर्गपंक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। पहली दुर्गपंक्ति २६ मील लम्बी थी और बड़ी दक्षता से बनायी गयी थी। एक स्थान पर एक नदी का बाँध बाँधकर एक बड़ी झील निकाली गयी थी। दूसरे स्थान पर पहाड़ियों को काट-काट कर खूब ढालू कर दिया गया था। पहाड़ियों व दूरों को पेड़ काट काट कर पाट दिया गया था और जगह-जगह पर तोपें चढ़ाने के लिए बुर्जियाँ बना दी गयीं थीं। फिर इस प्रदेश की सारी प्रजा को यह आज्ञा दे दी गयी कि या तो वे सब खाद्य पदार्थ विनष्ट कर दें या अपने साथ पहाड़ों में या लिस्बन को ले जाँय और इस प्रदेश को खाली कर दें।

१८१० ई० में बुसाको पर मेसीना को हरा कर वेल्जली इन दुर्गपंक्तियों के पीछे हट गया। मेसीना को इन दुर्गपंक्तियों के सामने पहुँचने के केवल पाँच दिन पहले ही उनके अस्तित्व की सूचना मिली। जब वह पहली दुर्गपंक्ति के सामने पहुँचा तो उसे अभेद्य पाया। इस पर सारे प्रदेश में खाद्य सामग्री का अभाव था। एक महीने तक वह इन दुर्गपंक्तियों के बाहर पड़ा रहा। पाँच महीने और वह पोर्तुगल में रहा। रोग और भूख से उसकी सेना को बहुत कष्ट हुआ। अन्त में वह १८११ ई० में स्पेन लौट गया। उसकी सेना के २५ हजार आदमी नष्ट हो गये। अब वेल्जली और आगे बढ़ सकता था, परन्तु सन् १८११ में फोन्ते द उनोरो और एल्बुरा पर विजय प्राप्त करने के अलावा वह और कोई निर्णायक मोर्चा न ले सका।

नेपोलियन का रूस पर आक्रमण (१८१२ ई०)—१८१२ ई० के प्रारम्भ से नेपोलियन की शक्ति के ह्रास का श्रीगणेश हुआ। रूस धीरे धीरे नेपोलियन से अलग होता जा रहा था और उसकी कान्टिनेन्टल योजना से उसे इतना आघात पहुँचा था कि उसने इसे त्याग देने में ही अपना हित समझा। नेपोलियन की नीति की सफलता के लिए इस योजना का स्थायी रूप से दृढ़ रहना आवश्यक था। इसलिए उसने रूस पर आक्रमण करने का निश्चय किया। नेपोलियन की इस मुहिम जैसी दुर्घटनाएँ इतिहास में बहुत कम घटी हैं। इस रणयात्रा पर चलने से पहले ड्रेस्डेन में कितने ही बादशाह और शाहजादे उसकी अभ्यर्थना करने जमा हुए थे। छः लाख से अधिक सेना लेकर उसने रूस में प्रवेश किया था। बोरोडिनो के संघातक युद्ध के बाद वह रूस की प्राचीन राजधानी मास्को में जा पहुँचा; परन्तु नगर को खाली पाकर लोगों ने उसके बहुत बड़े भाग में आग लगा दी थी। कुछ समय ठहरने के बाद उसने फ्रान्स लौट जाने का निश्चय किया। मार्ग में उसे रूस के कठोर शिशिर और रूसी रिसालों के बड़े निर्दयतापूर्ण और निरन्तर आक्रमणों का सामना करना पड़ा। रूस की सीमा पार करते करते ६० हजार से अधिक सेना लड़ने योग्य अवस्था में न लौट सकी। नेपोलियन अपनी सेना

को आख़िरी मंज़िल पर छोड़ कर केवल तीन साथियों सहित एक किराये की गाड़ी में पेरिस लौटा।

वेलिंगटन का आक्रमण ( १८१२ ई० )—इसी बीच वेलिंगटन को स्पेन पर आक्रमण करने का अवसर मिल गया; क्योंकि रूस पर आक्रमण करने के लिए नेपोलियन ने अपनी बहुत सी सेना को वहाँ से हटा लिया था। स्पेन मे प्रवेश करने के दो प्रमुख मार्गों पर स्यूदाद रोडरिगो और बदाजोज दुर्ग थे। वेलिंगटन ने एक को ११ दिन में और दूसरे को १६ दिन में सर कर लिया। फिर सेलेमानका पर उसने फ़्रान्सीसी सेना की एक टुकड़ी पर, जिसे फ़्रान्सीसियों ने वेलिंगटन को पीछे लौटने का मार्ग रोकने लिए नियत किया था, इतने वेग से आक्रमण किया कि वह टुकड़ी और उसके बाद सारी फ़्रान्सीसी सेना अस्तव्यस्त हो गयी। इस विजय के परिणाम स्वरूप जोजेफ़ मेड्रिड से भाग गया और सूल्त एन्डालूसिया से हट गया। वेलिंगटन कुछ समय तक मेड्रिड पर अधिकार किये रहा और फिर उत्तर में बर्गोस की ओर बढ़ा। किन्तु अच्छा तोपख़ाना न होने के कारण वह उसे न ले सका और हजारों की संख्या में सेना कटा कर उसे पीछे लौटना पड़ा। फिर भी इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि स्पेन का दक्खिनी प्रदेश फ़्रान्सीसियों से मुक्त हो गया।

१८१२ ई० में रूस और स्पेन में ही यह महान घटनाएँ नहीं घटीं बल्कि इसी वर्ष परम प्रसिद्ध लार्ड कासलरी इंग्लैंड का वैदेशिक मन्त्री हुआ। इंग्लैंड की वैदेशिक नीति मार्च सन् १८१२ से जुलाई १८२२ ई० के बीच ( १० वर्ष तक ) संभालने का उत्तर दायित्व उसके ऊपर रहा। सन् १७१२ से १८१४ ई० तक वह फ्रान्स के विरुद्ध एक ऐसे सशक्त गुट्ट की रचना करने और उसे स्थिर बनाये रखने में व्यस्त रहा जिसमें ग्रेट ब्रिटेन, रूस, प्रशिया, स्वीडेन और बाद में आस्ट्रिया भी सम्मिलित हो गया। यह कासलरी की ही चेष्टाओं का फल था कि आख़िर नेपोलियन को पराजित होना पड़ा।

विक्टोरिया की मुहिम और पिरनीज़ का युद्ध ( १८१३ ई० )—१८१३ ई० में जर्मनी से युद्ध के कारण स्पेन और पोर्तुगाल की फ़्रान्सीसी सेना और भी कम रह गयी। इस प्रकार वेलिंगटन को अब आक्रमण करने का सुअवसर मिल गया। फ़्रान्सीसी सेना के दाहिने पार्श्व और पृष्ठ भाग के मुकाबले मे एक भारी सेना लगाकर उसने ६ सप्ताह में उसे सेलेमानका से विटोरिया में खदेड़ दिया और फिर उसे इस बुरी तरह से हराया कि उसे पीछे हट कर भाग जाने का भी रास्ता न मिला। आख़िर जोसेफ और उसकी शेष सेना को टेढ़े मेढ़े रास्तों में भागना पड़ा। इस समय वेलिंगटन ने जोजेफ की भागती हुई सेना का पीछा कर और वस्तुओं के अतिरिक्त कई बहुमूल्य स्पेनी कलाकारों के चित्र पकड़ लिये। जोजेफ़ इन्हें अपने साथ लिये जा रहा था। युद्ध के बाद वेलिंगटन ने यह चित्र स्पेन के बादशाह को वापिस देने चाहे परन्तु उसने उन्हें वेलिंगटन को ही दे डाला और अब वे एप्सले हाउस में मौजूद हैं। फिर पिरेनीज का युद्ध हुआ। नेपोलियन ने सूल्त को वेलिंगटन

के मुकाबले के लिए सेना की व्यवस्था करने भेजा। यद्यपि उसने बड़ी कुशल पूर्व युद्ध किया, किन्तु वह सेना सान सिबेस्टियन के आक्रमण तथा पेम्पेलुना की ... को न रोक सकी। वर्ष के अन्त तक वेलिंगटन ने फ्रान्सीसी सीमान्त पार कर लिया और वेयोन को जा घेरा। इसी बीच में मित्रराष्ट्र जर्मनी में नेपोलियन से युद्ध कर रहे थे। कई लड़ाइयों के बाद आख़िर लाइपजिग में पराजित होने के बाद नेपोलियन को फ्रान्स की सीमा में लौट जाना पड़ा।

फ्रान्स पर आक्रमण और नेपोलियन का राज्य त्याग (१८१४ ई० )—आख़िर सन् १८१४ में नेपोलियन का पतन हो गया। दक्खिनी-पच्छिमी फ्रान्स में सूल्त पूरब की ओर इसलिए हट गया कि अगर वेलिंगटन उत्तर की ओर बढ़ता तो वह उसके पार्श्व पर आक्रमण कर सकता और अगर वह उसका पीछा करता तो उसे अपना आधार समुद्र छोड़ कर भूखंड पर युद्ध करना पड़ता। वेलिंगटन ने सूल्त का पीछा किया और उसने आर्थेज तथा तुलूज की लड़ाइयों में विजय प्राप्त की। परन्तु तुलूज की लड़ाई से पूर्व ही युद्ध समाप्त हो चुका था। मित्रराष्ट्र पूरबी फ्रान्स पर चढ़ते हुए पेरिस की ओर बढ़ गये थे, और उन्होंने नेपोलियन को राज्य त्याग देने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार यह पेनिन्सुलर युद्ध अपरिमित महत्त्व का रहा। वेलिंगटन के अनुसार इस में नेपोलियन के ५ लाख सैनिक खेत रहे। नेपोलियन ने स्वयम् इसे ऐसा नासूर बताया था जिससे उसके धन और जन का बड़ा नाश हुआ। इससे अँगरेजी सेना का प्राबल्य और गौरव पुनः स्थापित हो गया और स्पेन को यह प्रदर्शित करने का अवसर मिल गया कि कोई स्वेच्छाचारी शासक; चाहे कितना ही प्रबल क्यों न हो, एक गर्वीले की स्वतन्त्रता नहीं कुचल सकता।

इस प्रकार २० वर्ष के निरन्तर युद्ध के बाद फ्रान्स को हराकर उसकी पुरानी सीमा तक पहुंचा दिया गया। फ्रान्स की सफलता और विफलता का कारण नेपोलियन की प्रतिभा मात्र नहीं है और न ही उनका कारण है वेलिंगटन का युद्ध कौशल। उसका मूल कारण महान् योद्धाओं में नहीं बल्कि महान् भावनाओं में निहित है। वे दोनों जनरल सन् १७६६ में उत्पन्न हुए। दोनों ने एक ही समय और फ्रान्स में ही शिक्षा प्राप्त की। वेलिंगटन ऐंजियर्स में और नेपोलियन ब्रिएँ में पढ़ता था। १७८५-८६ ई० में एक दो महीने के अन्तर से दोनों ही सेना में प्रविष्ट हुए और दोनों प्रायः एक ही समय लेफ्टिनेन्ट कर्नल बनाये गये। फिर दोनों का सामरिक जीवन भी एक ही दिन समाप्त हुआ। नेपोलियन और वेलिंगटन की कभी मुलाकात नहीं हुई। कहा जाता है कि वाटरलू की लड़ाई में वेलिंगटन ने अपनी दूरबीन से नेपोलियन को देखा था। युद्ध के प्रारम्भ से फ्रान्स स्वतन्त्रता का हिमायती था। अतः जहाँ कहीं भी फ्रान्सीसी सेनाओं ने आक्रमण किया उनका वहाँ की प्रजा ने मुक्तिदाता के समान स्वागत किया। इटली, हालैण्ड, जर्मनी आदि में यही हुआ। इस प्रकार इन देशों में सच्चे हृदय से उनका विरोध न हुआ। क्रान्ति की नवीन भावनाओं का युद्ध प्राचीन स्वेच्छा-

चारी शासन के प्रतिनिधि, राजा और युवराजों से हुआ और परिणाम में राजाओं की हार हुई। जैसे-जैसे समय गुजरता गया यह स्पष्ट हो गया कि फ्रान्स अपने ही उद्देश्यों का पालन नहीं कर रहा था। उसने युद्ध के समर्थन के लिये युद्ध किया और जिन देशों को उसने थोड़े समय के लिए भी स्वतन्त्र कर दिया उनमें अपने लिए हर प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त करने की कोशिश की तथा इसी प्रकार की अन्य बेहूदी बातें कीं। परिणाम यह हुआ कि लोगों में जो सहानुभूति उसके प्रति जागृति हुई थी वह बिलकुल जाती रही। नेपोलियन ने तो इस परिवर्तन को बिलकुल स्पष्ट कर दिया। वह स्वयम् स्वेच्छा चारी शासक था। अतः उसकी सेना शीघ्र ही मुक्तदाता के स्थान में युरोप भर को त्रास देने वाली हो गयी और इससे शीघ्र ही राष्ट्र-विरोधी भावनाओं का प्रादुर्भाव हुआ। यह भावनाएँ एकाएक न उमड़ सकीं क्योंकि नेपोलियन की सेना बहुत अधिक थी। किन्तु अन्त में स्वयम् नेपोलियन की जन्म दी हुई देशभक्ति की भावना उसी के विरुद्ध जाग्रत होने लगी और जर्मनी में तो उसका इतना उत्थान हुआ कि अन्त में उसी की विजय हुई। ऐसी परिस्थिति में जब कि सारे युरोप की जनता एक नृशंस शासक के विरुद्ध हो गयी थी नेपोलियन का अधःपतन अनिवार्य था। लाइपजिग की घमासान लड़ाई जिसमें नेपोलियन को पहली बार पराजित होना पड़ा वास्तव में 'राष्ट्रों' की लड़ाई कही जानी चाहिए। सत्य तो यह है कि राष्ट्रीय देश-भक्ति की भावना ने नेपोलियन का सर्वनाश किया।

इसी बात का समर्थन एक दूसरे ढंग से भी होता है। पहले तो फ्रान्स ने युरोप में जितने भी युद्ध लड़े वे सब बहुत थोड़े समय में समाप्त हो गये। आस्ट्रिया ही अकेला ऐसा देश था जिसने काफ़ी समय तक डट कर युद्ध किया। परन्तु उसे लाइपजिग की लड़ाई से पहले चार बार हार कर सन्धि करनी पड़ी थी। रिवोली, मारेंगो, होहिनलिंडन आस्तर्लित्ज और वाग्राम की लड़ाइयों की करारी हार ने उसकी शक्ति क्षीण कर दी थी। अन्य राष्ट्रों में से प्रशिया और रूस युद्ध में सम्मिलित तो हुए परन्तु बहुत थोड़े समय के लिए; और स्पेन और जर्मन रियासतों का तो कोई ठीक ही नहीं था। वे तो कभी इस तरफ जाती थीं और कभी उस तरफ। ग्रेट ब्रिटेन ही अकेला ऐसा देश था जो बराबर युद्ध में डटा रहा; परन्तु प्रारम्भ में उसे आक्रमण का कोई निश्चित मार्ग न सूझा। समुद्र पर फ्रान्सीसियों को हरा कर और उनके उपनिवेशों को छीन कर भी युद्ध का अन्त न हो सका; परन्तु जब ग्रेट ब्रिटेन ने पोर्चुगल और स्पेन में राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत कर युद्ध का पोषण किया तभी से नेपोलियन का अधः पतन शुरू हो गया। पेनेन्सुलर युद्ध ही पहला युद्ध था जिसमें उसको कई साल तक विरोधी शक्तियों का सामना करना पड़ा और वह इस युद्ध का अन्त कुछ तो इस कारण न कर सका कि स्पेनी लोग राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित हो कर गुरिल्ला युद्ध लड़ रहे थे और कुछ इस कारण से कि वह उनकी समर्थक प्रबल सामुद्रिक शक्ति इंग्लैण्ड पर भरपूर चोट न

लगा सका। कान्स्टेन्टिनोपिल, क्रिस्चेनिया, स्टाकहम और सेन्ट पीटर्सबर्ग को छोड़ कर उसकी सेनाएँ हर यूरोपीय राज्य की राजधानी में पहुँच गयी थीं; परन्तु वे लंडन तक न पहुँच सकीं। इस प्रकार स्पेन के इस दीर्घ-कालीन युद्ध के कारण युरोप के अन्य राज्यों को अपनी शक्ति बटोरने और उसकी व्यवस्था करने के लिए काफ़ी समय मिल गया।

ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से युद्ध ( १८१२-१४ ई० )—जिस समय वेलिंगटन स्पेन और पोर्तुगल में युद्ध कर रहा था ग्रेट ब्रिटेन को एक नयी परिस्थिति का सामना करना पड़ा। कान्टिनेन्टल सिस्टम और अँगरेजों द्वारा उसके प्रतिकार से संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और अन्य तटस्थ देशों की परिस्थिति बड़ी असहनीय हो गयी थी। यदि किसी तटस्थ देश का जहाज किसी अँगरेजी बन्दरगाह की ओर जाता या वहाँ से आता तो फ्रान्सीसी उसे पकड़ लेते और यदि उनसे बच जाता तो ब्रिटिश उस पर अधिकार कर लेते थे। इसके अतिरिक्त अँगरेज़ों ने संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका के व्यापारी जहाजों की तलाशी ली और एक बार तो उन्होंने उन अँगरेज़ मल्लाहों के पकड़ने के विचार से जो अँगरेजी नौ-सेना से भाग कर अमेरिकन जहाजों पर नौकरी कर लेते, एक अमेरिकन युद्ध के जहाज़ को भी न छोड़ा। इस तरह के झगड़ों के कारण आख़िर १८१२ ई० में लड़ाई छिड़ गयी। प्रारम्भ में यद्यपि एक बार कैप्टन ब्रोक ने अमेरिका के फ्रिगेट 'चिसापेक' को १५ मिनट में आत्म समर्पण करने पर मजबूर कर अँगरेजों के सामुद्रिक प्रभुत्व की मर्यादा रख ली, परन्तु अमेरिकन फ्रिगेटों ने अँगरेज़ी जहाज़ों को तोड़-फोड़ कर बहुत बार विजय प्राप्त की और संयुक्त राज्य अमेरिका के गैर-सरकारी लड़ाई के जहाजों ने कुछ ही महीनों में अँगरेजों के ५०० व्यापारी जहाज पकड़ लिए। परन्तु केनेडा के सीमान्त पर संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थल सेनाओं के आक्रमण असफल रहे। फ्रान्सीसी अँगरेज दोनों जातियों के केनेडा निवासियों ने इस आक्रमण के विरुद्ध अँगरेजी सेना का साथ दिया और बड़े साहस और दृढ़ता के साथ लड़े। आख़िर सन् १८१४ ई० में नेपोलियन के राज्य-परित्याग कर देने के बाद ग्रेट ब्रिटेन एक बड़ा जहाज़ी बेड़ा और बहुत मंजे हुए सैनिक अमेरिका में भेजने में समर्थ हुआ। इन्होंने वाशिंगटन पर अधिकार कर लिया पर इनका आक्रमण असफल रहा। आखिर वर्ष समाप्त होते-होते दोनों देशों में सन्धि हो गयी।

## § ४—१८१५ के सौ दिन

वियना की काँग्रेस ( १८१५ ई० )—राज परित्याग के बाद नेपोलियन को टस्कनी के पास ऐल्बा के छोटे से द्वीप का स्वतन्त्र शासक बना दिया गया। इसी बीच में बूर्बो वंश का लुई १६ वें का पोता १८वाँ लुई फ्रान्स की गद्दी पर बैठा दिया गया और वियना में युरोपीय राष्ट्रों की एक बहुत बड़ी काँग्रेस जमा हुई जिसमें लार्ड केसिलरे ग्रेट ब्रिटेन का प्रतिनिधि होकर गया। इस काँग्रेस की कार्रवाई खतम भी

न हो पायी थी कि अकस्मात नेपोलियन के फ्रान्स लौट आने का समाचार मिला। ब्रिटिश निरीक्षक जहाज़ की क्षणिक अनुपस्थिति ने नेपोलियन को ऐल्बा से भाग निकलने का अवसर दे दिया और वह ८०० सैनिकों के साथ फ्रान्स जा पहुँचा। पुराने सैनिकों ने बड़े उत्साह के साथ उसका स्वागत किया और रास्ते में कहीं एक भी गोली चलाये बिना वह २० मार्च सन् १८१५ को पेरिस जा पहुँचा। इसी समय से वह युग आरम्भ होता है जिसे इतिहास में "सन् १८१५ के १०० दिन" कहा गया है। नेपोलियन के पेरिस पहुँचते ही लुई १८वें को भाग जाना पड़ा। नेपोलियन ने फ्रान्स का शासन फिर अपने हाथ में लेते हुए इस बात की घोषणा की कि वह युरोप के अन्य राज्यों के साथ शान्ति की नीति बरतेगा और फ्रान्स में उदार नीति-पोषक संस्थाएँ स्थापित कर देगा। परन्तु मित्र-राष्ट्रों ने नेपोलियन के वादों का कोई विश्वास नहीं किया। वियना की काँग्रेस ने नेपोलियन का बहिष्कार कर दिया और उसे सारे संसार की शान्ति भंग करने वाला शत्रु घोषित किया। ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रिया, रूस और प्रशिया इत्यादि प्रत्येक प्रबल शक्ति ने डेढ़-डेढ़ लाख सेना देने का निश्चय किया और धन की सहायता यथापूर्व ग्रेट ब्रिटेन के ज़िम्मे रही।

नेपोलियन की लड़ाई की योजना—मित्र-राष्ट्रों ने यह योजना की कि वे सब मिलकर पैरिस पर आक्रमण करें परन्तु जून के महीने तक केवल अँगरेज और प्रशियन सेनाएँ ही तैयार हो पायी थीं। बेल्जियम में वेलिंगटन की अध्यक्षता में ८५ हजार सेना थी जिसमें से एक तिहाई अँगरेज़ी, एक तिहाई जर्मन और एक तिहाई डच और बेल्जियन थे। अँगरेज़ी सेना के सिपाही तो इसके पूर्व युद्ध में गये ही न थे। प्रशिया के जनरल ब्लूखर की सेना में १ लाख २४ हज़ार सिपाही थे। वेलिंगटन और ब्लूखर दोनों एक दूसरे से सहयोग कर रहे थे और उनकी सेनाएँ फ्रान्स की सीमा से कुछ दूर पर कम से कम १०० मील की दूरी पर फैली हुई थीं। नेपोलियन का विचार था कि वह मित्र-राष्ट्रों की इस सेना के केन्द्र पर एकाएक आक्रमण कर दे और इस प्रकार अपनी सेना को वेलिंगटन और ब्लूखैर की सेनाओं के बीच में डाल दे और इन दोनों सेनाओं के आधार अलग-अलग ( एक का पेरिस की ओर और दूसरी का पश्चिम की ओर ) होने के कारण वह इन सेनाओं को एक-एक करके हरा दे। इसलिए १२ जून को पेरिस से चलकर नेपोलियन शार्लिराय होता हुआ सरहद प्रदेश में जा पहुँचा और १५ जून की शाम तक लिगनी में पड़ी हुई प्रशियन सेना के सामने था। इसी समय उसका कमाण्डर करीब ७ मील पश्चिम क्वात्रेब्रा पर था जहाँ वेलिंगटन की थोड़ी सी सेना मौजूद थी।

लिगनी और क्वात्रेब्रा की लड़ाइयाँ—नेपोलियन सेना का यह कूच ऐसी तेज़ी और ऐसे अच्छे सहयोग के साथ हुआ था कि वेलिंगटन को भी उसकी प्रशंसा करनी पड़ी; क्योंकि मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं को उसने अचानक जा घेरा और उसकी व्यूह-रचना को बेकार कर दिया। परन्तु सौभाग्य से नेपोलियन और वे

दोनों १६ तारीख़ के सवेरे आगे न बढ़े और इस से फायदा उठा कर ब्लूखर और वेलिंगटन दोनों को अपनी-अपनी सेनाओं का बड़ा हिस्सा एकत्रित करने का समय मिल गया। मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं को नेपोलियन के इस प्रकार अचानक आ पहुँचने का कोई शान गुमान भी नहीं था यहाँ तक कि वेलिंगटन तो १५ तरीख की शाम को ब्रुसेल्ज में रिचमंड की डचेज की नाच-पार्टी में शामिल था। १६ तारीख को तीसरे पहर दो लड़ाइयाँ हुईं। नेपोलियन ने लिगनी पर प्रशियन सेना को हरा दिया और पहले तो नेइ ने भी क्वात्रेब्रा पर वेलिंगटन की सैन्य पंक्तियों को अस्त-व्यस्त कर डाला, परन्तु अँगरेजी सेना की दृढ़ता और नेइ के दाहिने पार्श्व वाली सेना के उसके बिना जाने हुए नेपोलियन की तरफ हट जाने के कारण उसे आख़िर पीछे हटना पड़ा।
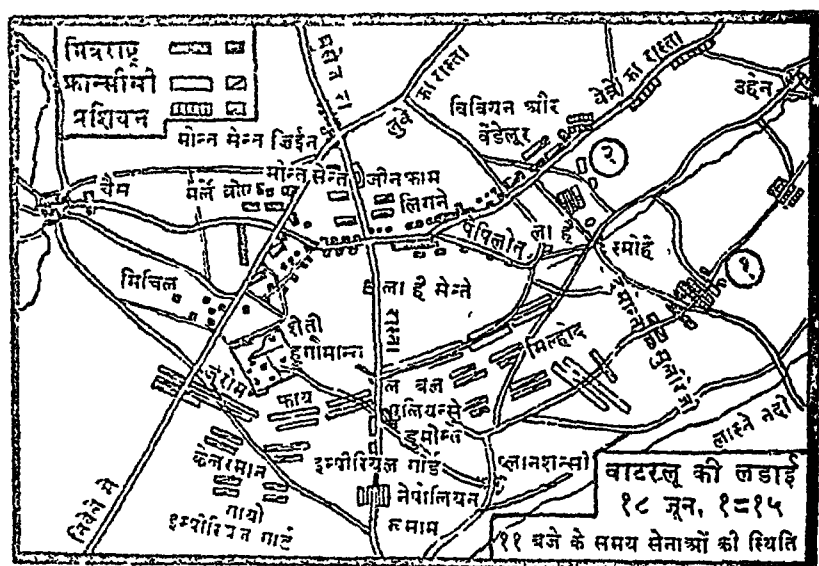
(१) ४½ बजे शाम का प्लांनोत के आधिपत्य में प्रशियनों का बढ़ना।
(२) ७ बजे शाम को ब्लूखर का बढ़ना

१७ जून १८१५ ई०—इन दोनों लड़ाइयों के बाद १७ जून का सारा दिन दोनों सेनाओं को इधर-उधर प्रयाण करने में बीत गया। सवेरे ही प्रशियन सेना पीछे हट गयी। नेपोलियन का अनुमान था कि प्रशियन सेना पराजित होकर अपने आधार नामूर की तरफ पीछे हटेगी; लेकिन यह सेना वेलिंगटन के निकट रहने के विचार से उत्तर की ओर हटी थी। दस बजे के करीब वेलिंगटन भी उत्तर की ओर पीछे हटने लगा। कई दिनों की कड़ी दौड़ धूप और कठिन कूच करने के बाद नेपोलियन भी बहुत थक गया, इसलिए दो बजे के करीब ब्लूचे-प्रशियन सेना के और नेपोलियन वेलिंगटन के पीछे चल पड़ा। रात होते होते वेलिंगटन ने वाटरलू के पास मोर्चा जमाया और नेपोलियन की सेना भी आनी शुरू हो गयी। प्रशियन सेना इस समय १६ मील दूर वाव्र पर पहुँच चुकी थी और ब्लूचे जिसे उसका पता उसी समय लग

गया था कुछ मील दक्खिन की ओर था। रात में ब्लूखर के पास से खबर आ गयी कि प्रशियन सेना सहायता के लिए पहुँच जायगी, इसलिए वेलिंगटन ने डट कर मुक़ाबला करने का निश्चय कर लिया।

वाटरलू की लड़ाई ( १८ जून )—१८ तारीख़ को वाटरलू की लड़ाई शुरू हुई। मैदान काफ़ी ऊँचा नीचा था और इस समय यहाँ हरे हरे खेत लहरा रहे थे। लड़ाई के पूर्व बारिश हो जाने से ख़ूब कीचड़ हो गयी थी। वेलिंगटन की सेना एक ढाल पर और नेपोलियन की दूसरे ढाल पर थी और दोनों के बीच में क़रीब एक मील उथली घाटी पड़ती थी। हर सेना के पार्श्वों के बीच में क़रीब ३ मील का अन्तर था। वेलिंगटन ने अपनी सेना को फ्रान्सीसी सेना वाले ढाल से हटा कर इस तरह पर व्यवस्थित किया कि वह वहाँ से दिखायी न पड़ती थी। उसके अग्र भाग के दाहिनी ओर ह्यूगोमोन्त की बगिया और खलियान पड़ता था जिस पर गार्ड का कब्ज़ा था और उसके केन्द्र के सामने शार्लिराय और ब्रुसेल्ज की सड़क दोनों सेनाओं के बीच से गुजरती थी। इस सड़क के एक ओर लाहेसेन्ते का खलियान था जिसकी रक्षा जर्मन सेना के हाथ में थी।

११ बजते ही लड़ाई शुरू हुई और ह्यूगोमान्त पर फ्रान्सीसी सेना ने आक्रमण किया। १२०० गार्दों ने १० हजार फ्रान्सीसी सेना के कई आक्रमण निष्फल कर दिये। इसके बाद क़रीब १½ बजे तोपखाने से गोलाबारी शुरू हुई जिससे प्रकट हो गया कि वेलिंगटन के बायें पार्श्व और केन्द्र के बायें तरफ़ द अर्लो की प्रसिद्ध पैदल सेना का आक्रमण होगा। लेकिन नेपोलियन की पदाति सेना और खास कर पिक्टन के ब्रिगेड ने अपनी गोलाबारी से फ्रान्सीसी पैदल सेना के अग्र भाग को छिन्न भिन्न कर दिया और उस पर संगीनों से हमला किया। तब अँगरेजी रिसाले ने फ्रान्सीसी पैदल सेना को रौंद डाला, यद्यपि उनका इस

| | राजनीतिक इतिहास | सैनिक कार्रवाइयाँ | |
|---|---|---|---|
| १८०३ | इंग्लैंड की फ्रान्स से युद्ध घोषणा | | असाई ( वि ) |
| १८०४ | पिट का प्रधान मन्त्री होना, नेपोलियन का सम्राट होना, स्पेन की इंग्लैंड पर युद्ध घोषणा | | |
| १८०५ | तीसरा गुट्ट | आस्टलिज ( प ), आन्तज़िरब की हार | ट्राफालगर (वि); केप कोलोनी पर आधिपत्य ( वि ) |
| १८०६ | पिट की मृत्यु और 'होली रोमन साम्राज्य' का अन्त | जेना ( प ); प्रुशा की हार | बर्लिन की डिक्रीज |

| | | |
|---|---|---|
| १८०७—टिल्सिट की सन्धि नेपोलियन का पोर्तुगल पर आधिपत्य | फ्रीडलैंड ( प ); रूस की हार | काउन्सिल में आर्डर्स |
| १८०८—जार्जेफ का स्पेन का राजा होना पैनेनसुलर वार का प्रारम्भ | | विमिरो ( वि ) |
| १८०९—आस्ट्रिया की नेपोलियन पर युद्ध घोषणा और वर्ष के अन्त में सन्धि करना | वागरम (प) वालचरन यक्सवेढीशन (प) | कोरना (वि) टौलवर ( वि ) |
| १८१०— | | पुसेको (वि) टोरीस वेडरास की रेखायें |
| १८११— | | अलबुयेरा (वि) फ्रुम नटस डी आनरो (वि |
| १८१२—रूस का फ्रान्स पर युद्ध घोषणा और युनाइटेड स्टेटस की इंग्लैंड पर युद्ध घोषणा | नेपोलियन का रूस पर आक्रमण | बेडेजोज (वि) सलेमानका ( वि ) |
| १८१३—चौथा गुट्ट। प्रशा और आस्ट्रिया का फ्रान्स पर युद्ध घोषणा | लाइपजिक ( वि ) | विटोरिया (वि) |
| १८१४—नेपोलियन का राज्य त्याग वियना का कांग्रेस | | आर्थेज़ ( वि ) ( वि ) |
| १८१५—'दी हंड्रेथडेज', पेरिस की सन्धि | लिंगनी (प) क्वार्टिब्रास वाटर लू ( वि ) | |

हमले में बड़ा गहरा नुकसान हुआ। ४ बजे के क़रीब फ्रान्सीसियों ने फिर आक्रमण शुरू किया और इस बार वेलिंगटन के दाहिने केन्द्र पर अँगरेज और हनोवरियन रेजिमेन्टों ने फ्रान्सीसी रिसाले के जोरदार आक्रमण को रोकने के लिए बड़ी दृढ़ व्यूह-रचना की, फिर भी उन पर फ्रान्सीसी तोपख़ाने और फ्रान्सीसी झपटानी सेना की मार पड़ी। लाहेसेन्ते पर बड़े जोर का आक्रमण हुआ और गोला और बारूद न होने के कारण इसके संरक्षकों को ६॥ बजे आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। यही लड़ाई का सब से कठिन समय था। अगर इस समय नेपोलियन ने नयी कुमक भेज दी होती तो वेलिंगटन का केन्द्र टूट जाता, परन्तु इसी बीच में प्रशियन सेना आ पहुँची। यद्यपि यह दोपहर के बजाय ४½ बजे पहुँच पायी। ग्रूचे इससे कई मील दूर था। इसलिए वह इसे न रोक सका और इस सेना ने नेपोलियन के दाहिने पार्श्व प्लन्शिनोय पर अधिकार कर लिया। जब तक प्लन्शिनोय को फ्रान्सीसियों ने फिर न छीन लिया वेलिंगटन ने नेपोलियन के दाहिने केन्द्र पर अपने गार्ड को हमला करने की आज्ञा न दी। अब इस समय सवा सात बज गये थे और इस समय तक प्रशियन सेना की

एक टुकड़ी अँगरेज़ी सेना के बायें पार्श्व से जा मिली थी। साथ ही अँगरेज़ी सेना के दाहिने पार्श्व और केन्द्र पर भी सेना पहुँच गयी थी। फ्रान्सीसी गार्ड का आक्रमण बड़ी सफलता के साथ तोड़ दिया गया और प्रशियन सेना ने हारी हुई फ्रान्सीसी फौज का पीछा करना शुरू किया। अब नेपोलियन के लिए कोई आशा न रही थी। २२ जून को उसने राज त्याग दिया और आखिर एक अँगरेज़ी लड़ाई के जहाज़ के कमाण्डर को आत्मसमर्पण कर दिया। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने उसे बन्दी बना कर सेन्ट हेलेना भेज दिया जहाँ ६ बरस बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

पेरिस की सन्धि ( १८१५ ई० )—आखिर वियना की काँग्रेस, जो नेपोलियन के ऐल्बा से भाग आने के पूर्व आरम्भ हुई थी, वाटरलू की लड़ाई के बाद पेरिस की सन्धि के साथ समाप्त हो गयी। अँगरेज़ मन्त्री के प्रभाव से फ्रान्स के साथ दोषपूर्ण व्यवहार नहीं किया गया और बहुत सी जटिल समस्याओं का अन्तिम समाधान कर दिया गया। ग्रेट ब्रिटेन को हेलिगोलैंड, माल्टा, गुडहोप अन्तरीप, मारिशस लंका डमरारा, एसेकुइबो, बीडिस, ट्रिनीडाड, सेन्ट लूसिया और टुबैगो मिले। फ्रान्स की सीमा प्रायः वही रही जो राज्यक्रान्ति के पहले थी। बेल्जियम या आस्ट्रिया अधिकृत नीदरलैंड को हालैंड में मिला दिया गया। स्वीडेन को नार्वे दे दिया गया और रूस को फिनलैंड और वारसा राज्य का अधिकांश भाग मिला। प्रशिया को १७७२ ई० में प्राप्त पोलैंड यथा टान और पोज़ेन प्रान्तों के भाग मिले। आस्ट्रिया को इटली में लम्बार्डी और वेनीशिया मिले और मध्य युरोप में गैलीशिया, मालमेटिया इत्यादि। इटली बहुत से छोटे छोटे राज्यों में विभक्त कर दिया गया। हैनोवर राज्य भी बढा दिया गया जर्मनी में ३४ राज्यों का एक संघ बनाया गया जिसका सभापतित्व आस्ट्रिया को दिया गया।

---

# सत्रहवाँ अध्याय

## इंग्लैंड की घटनाएँ

( १७६०—१८१५ ई० )

युद्ध की विशेषताएँ—अब हम जार्ज तृतीय के राज्यारोहण से लेकर वाटरलू के युद्ध तक ग्रेटब्रिटेन में होने वाली घटनाओं का वर्णन करेंगे। इस की दो प्रधान विशेषताएँ हैं व्यापार और उद्योग धन्धों का विकास ( जिसका वर्णन हम आगे करेंगे ) और महायुद्धों का सिलसिला जिसका वृत्तान्त हम अभी दे चुके हैं। ५५ बरस के इस युग में ग्रेट ब्रिटेन निरन्तर युद्ध में प्रवृत्त रहा और केवल दो बार ही सन् १७६३ से १७७५ ई० तक १२ बरस और सन् १७८३ से १७९३ ई० तक १० बरस उसे थोड़े-थोड़े समय के लिए शान्ति मिली। परन्तु इन युगों में भी यहाँ का लोकमत पहले तो

अमेरिका के विप्लव और विरोध से त्रस्त रहा और बाद में फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के आतंक से। इसलिये इस युग में इंग्लैंड में कोई विशेष महत्वपूर्ण घटनाएँ नहीं हुई और जहाँ तक वैधानिक उन्नति का सम्बन्ध है उसमें तो इस सारे युग में कोई परिवर्तन ही न हो सका। इसलिए जार्ज तृतीय के राज्यकाल के पहले अंश की अगर कोई महत्वपूर्ण घटना कही जा सकती है तो वह है जार्ज तृतीय की ह्विग प्रभुत्व से मुक्ति पाने की चेष्टा और आखिरी भाग में छोटे पिट का व्यक्तित्व और उसकी शासन व्यवस्था का परिचय।

जार्ज तृतीय का चरित्र—जार्ज द्वितीय का पौत्र जार्ज तृतीय बड़ा लोकप्रिय शासक था। इस लोकप्रियता का कई कारणों से वह अधिकारी भी था। वह बड़ा सज्जन था और अपने परिवार से बड़ा स्नेह रखता था। सरल प्रकृति, धार्मिक और वीर हृदय होते हुए कला और साहित्य में भी उसकी अभिरुचि थी। उसका पुस्तकालय खूब बड़ा था और विंसर महल में जो बहुत से चित्र अब तक टंगे हुए हैं उसी ने खरीदे थे। उसके पास रत्नों और छोटी छोटी छवियों का बड़ा अच्छा संग्रह था। इंग्लैंड के पब्लिक स्कूलों से उसे बड़ा अनुराग था। शिकार का वह बहुत शौकीन था और कृषि कार्य में भी उसकी खूब अभिरुचि थी। इन सब बातों से पता चलता है कि वह अपने समय के अँगरेजों की रुचि और उनके शौक से कितना परिचित था। उसकी शिक्षा बहुत साधारण हुई थी और उसकी जर्मन माता ने उसे कुछ ऐसे एकान्त वातावरण में पाला था कि वह अपने सिवाय किसी दूसरे के दृष्टिकोण से सहमत न हो सकता था। यही कारण था कि वह अपनी बात का पक्ष करने वाला और बड़ा अज्ञानी था। इसी लिए यह बड़े दुःख की बात है कि ऐसी अच्छी प्रकृति का राजा भी अपने जीवन में कुछ ऐसे विधानों का ऐसी कटुता से विरोध करे जिन्हें सारा संसार अच्छा समझता हो तथा ऐसी बात का पक्ष ले जिन्हें सभी लोग बुरा समझें। अमेरिकन उपनिवेशों के इंग्लैंड के हाथ से निकल जाने, आयरलैंड को सन्तुष्ट न रहने देने, पार्लियामेन्ट के सुधारों में विलम्ब होने और गुलामों के व्यापार को जारी रखने का बहुत कुछ उत्तरदायित्व उसी के सिरे पर है। परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उसके विचार उस समय के सामान्य अँगरेजों के अनुकूल थे और यह सब दोष उसी का न था बल्कि उसकी और उसकी प्रजा दोनों का था।

जार्ज तृतीय की शक्ति-लोलुपता—जार्ज ने राजगद्दी पाने पर इस बात का निश्चय कर लिया था कि वह देश पर शासन करेगा। उसकी जर्मन माता उससे सदा यही कहा करती थी कि राजा होकर रहो। अस्तु वह पूर्ण रूप से राजा होने पर तुला हुआ था। ऐसे प्रयत्न के लिए यह समय भी उपयुक्त था। उसके पूर्वज के राजकाल में बोलिंगब्रुक के समान कई प्रसिद्ध व्यक्तियों ने यह तर्क-वितर्क किया था कि राजा को उसके खोये हुए अधिकार मिलने चाहिये। जार्ज टोरी दल की सहायता पर पूरा भरोसा कर सकता था क्योंकि अब यह लोग हनोवर वंश के राज्य के पूरे हिमायती हो गये

थे। इसलिये कुछ लोगों को पदों के लालच से, दूसरों को पेन्शन मिलने की आशा पर और बहुतों को गुप्त रूप से धन देकर उसने बहुत से वोटरों को अपने पक्ष में करने की चेष्टा की—यहाँ तक कि हाउस ऑव लार्ड्स में भी उसने 'राजमित्रों का एक दल खड़ा किया जो उसकी इच्छा के अनुकूल चलने वाले थे। जार्ज अपनी इच्छानुसार किसी भी दल में से मन्त्री चुन सकता था तथा जब चाहे उन्हें पदच्युत कर सकता था। परन्तु यह तो उसी समय सम्भव था जब यह मन्त्री कामन्स सभा का बहुमत प्राप्त न कर सके।

जार्ज ३य के मन्त्रिमंडल—पिट और न्युकैसिल—अपने राज्यकाल के शुरू शुरू में जार्ज तृतीय को ह्विग दल पर बहुत कुछ निर्भर रहना पड़ा क्योंकि उनके पारिवारिक सम्बन्ध और शासन के दीर्घ अनुभव के कारण इनकी सहायता उसके लिए बहुत आवश्यक थी। चूँकि ह्विग नेताओं में मतभेद था इसलिए जार्ज को अपनी इच्छा के अनुकूल मन्त्रि मंडल बदलने में कोई दिक्कत न हुई। इसका प्रमाण यह है कि अपने राज्य के १० बरसों में उसने ७ मन्त्रि मडल बनाये। राजगद्दी पाने के एक साल के भीतर ही उस मन्त्रिमंडल का खात्मा हो गया जिसने बड़ी योग्यता के साथ सप्त-वर्षीय युद्ध चलाया था। पिट ने इसलिए पद त्याग कर दिया कि उसके सहकारी स्पेन से युद्ध करने में सहमत न थे। फिर न्युकैसिल के मार्ग में भी ऐसी अड़चनें डाली गयीं कि उसने भी छै ही महीने बाद पिट का अनुकरण किया। इसके बाद लार्ड ब्यूट, जो राजा का शिक्षक रह चुका था, मन्त्री बना, लेकिन यह भी सप्तवर्षी युद्ध के बाद होने वाली पेरिस की सन्धि कराके अलग हट गया। उसे शासन करने का न तो अनुभव ही था और न योग्यता ही, इसलिए उसने परोक्ष में रहकर अपना प्रभाव बनाये रखने की चेष्टा की। ब्यूट इंग्लैंड में बिलकुल लोकप्रिय न था क्योंकि एक तो वह स्काट था और दूसरे जर्मन वंश की राजमाता के पक्ष का था। उसके शासन मे घूस खूब चलती थी। उसे तो अपनी रक्षा के लिए भी सैनिक रखने पड़े थे।

जार्ज ग्रेनविल (१७६३—६५ ई०)—१७६३ ई० में जार्ज ग्रेनविल प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ। यह बड़ा मेहनती और दिखावा करने वाला पुरुष था। इसी के मन्त्रित्वकाल में एक स्टाम्प ऐक्ट पास किया गया जिसके सम्बन्ध की दुर्भाग्य-पूर्ण घटनाओं का वर्णन किया जा चुका है। परन्तु उस समय इस ऐक्ट से देश का राजनीतिक वातावरण इतना विक्षुब्ध नहीं हुआ जितना कि उस वारन्ट के निकालने से हुआ था जिसमें 'नार्थ ब्रिटेन' के नाम के पत्र के ४५ वें अंक के मुद्रक, प्रकाशक और लेखकों की गिरफ्तारी का हुकुम दिया गया था। इस पत्र ने पार्लियामेन्ट खुलने के अवसर पर राजा के भाषण पर कुछ कटु समालोचना प्रकाशित की थी। वह भाषण वास्तव में राजा ने तो पढ कर तो सुनाया था परन्तु यह निश्चित् रूप से नहीं कहा जा सकता कि वह स्वयं लिखा हुआ भी था। इस आलोचना का लेखक

विल्कस नाम का पार्लियामेन्ट का एक सदस्य था। इंग्लैंड का सारा लोकमत उसके पक्ष में था क्योंकि वह इस प्रकार के बिना नाम के वारन्टों को अवैध समझता था। परिणाम यह हुआ कि गवर्नमेन्ट की बड़ी निन्दा हुई और ग्रेनविल के चिड़चिड़ेपन और बकवास से असन्तुष्ट होकर राजा भी उससे अप्रसन्न हो गया। इसलिए १७६५ ई० में उसे इस्तीफा देना पड़ा।

चैटहम—( १७६६-६८ ई० )—नया प्रधान मन्त्री पिट जो अब अर्ल ऑव चैटहम हो गया था, जार्ज तृतीय के मिज़ाज के अनुकूल था। पिट सभी दलों का विरोधी था और उसने राजा की इच्छानुसार शासन करने की घोषणा की थी। किन्तु रोग ने उसे असमर्थ बना दिया और उसी समय ख़ज़ाने के चान्सलर टाउन्सहैंड ने मूर्खतापूर्ण कर लगा कर अमेरिका से झगड़ा खड़ा कर दिया। चैटहम का मन्त्रि-मंडल विभिन्न दलों के राजनीतिज्ञों से बना था, और १७६८ ई० में उसके पद से अलग होने पर वह बिना पतवार की नाव के समान छिन्न-भिन्न हो गया।

ग्रेफ्टन ( १७६८-७० ई० ) चैटहम के बाद ड्यूक ऑव ग्रेफ़्टन ३२ वर्ष की आयु में प्रधान मन्त्री हुआ। वह बड़ी 'शिथिल' प्रकृति का था और उसकी प्रवृत्ति केबिनेट की अपेक्षा घुड़दौड़ के मैदान के उपयुक्त थी। ग्रेफ़्टन के मन्त्रित्व-काल में हाउस ऑव कामन्स ने विल्कस को एक अख़बार में पत्र लिखने के लिए कामन्स सभा से निकाल दिया। दोनों सभाओं की राय में यह लेख मानहानि सूचक था। परन्तु मिडिलसेक्स काउन्टी उसे बार-बार निर्वाचित करती रही और हाउस ऑव कामन्स उसे बार-बार निर्वासित। चौथे अवसर पर हाउस ऑव कामन्स ने उसके विपक्षी को निर्वाचित घोषित कर दिया। इस अवैध कृत्य का परिणाम वह विद्रोह हुआ जिसका नायक विल्कस बना। ग्रेफ़्टन मन्त्रिमंडल पर कठोर आक्रमण हुए। अन्त में चैटहम ने भी उसकी वैदेशिक नीति के लिए मन्त्रिमंडल की आलोचना की। आख़िर १७७० में ग्रेफ़्टन ने पद त्याग कर दिया।

जार्ज तृतीय और लार्ड नार्थ ( १७७०-८२ ई० )—अन्त में राजा को अपनी इच्छा के अनुकूल मन्त्री मिल गया और अगले बारह वर्षों में (१७७०-८२ ई०) वह एक प्रकार से स्वयम् मन्त्री रहा। इन १२ बरसों में लार्ड नार्थ नाम के लिए प्रधान मन्त्री था। वह प्रसन्नचित, सरल प्रकृति तथा बड़ा चतुर व्यक्ति था। शासन कार्य और नीति निर्धारण सब राजा के हाथ में था। अमेरिकन उपनिवेशों के प्रति इस समय की सरकार की नीति ही विशेष रूप से उल्लेखनीय विषय है। दोनों सभाओं में इस मन्त्रिमंडल का बहुमत था, सारा राष्ट्र उसकी नीति का समर्थन था, टोरी दल उसका उत्साही सहायक था और केवल ह्विग दल ही विरोध पक्ष में था। ऐसी अवस्था में मन्त्रिमंडल की स्थिति बहुत अरसे तक सुरक्षित रही। जार्ज तृतीय की बढ़ती हुई शक्ति आशंका उत्पन्न करने लगी और ११८० ई० में हाउस ऑव कामन्स में राजा की शक्ति कम करने का प्रस्ताव पास हुआ। उसी वर्ष एक

ज़बरदस्त प्रोटेस्टेन्ट विद्रोह हुआ। इसका कारण यह था कि पार्लियामेन्ट में रोमन कैथलिकों के विरुद्ध कुछ नियम हटा दिये गये थे। इस विद्रोह का मुखिया लार्ड जार्ज गार्डन था। चैरिंगक्रास चौराहे के पूरब चार दिन तक सारे लंडन पर गुंडों का आतंक रहा। न्युगेट जेल को तोड़ कर ३०० कैदी छुड़ा दिये गये, रोमन कैथलिक चैपल जला दिये गये और एक शराब ख़ाने को लूटकर विप्लवकारियों ने ख़ूब शराब पी। आख़िर राजा ने बिना विद्रोह ऐक्ट की घोषणा किये ही सेना से गोली चलवा कर विद्रोहियों को तितर-बितर कर देने की आज्ञा दी। स्काटलैण्ड के लिए भी एक ऐसे ही बिल के प्रस्ताव पर इतनी हलचल मची कि उसे छोड़ देना पड़ा। अन्त में १७८२ ई० में यार्कटाउन में हार स्वीकार कर लेने तथा मिनारका के हाथ से निकल जाने पर लार्ड नार्थ ने पद त्याग देने का हठ किया। राजा को उसके इस प्रकार पद त्याग करने पर बहुत क्षोभ हुआ।

ह्विग नेता शैलबर्न ( १७८२ ई० )—१७८२ ई० में लॉर्डनार्थ के पद त्याग करने के साथ ह्विग दल फिर शक्तिशाली हो गया। इस समय तक बहुत से पुराने नीतिज्ञ न्यूकैसिल, ग्रेनविल, चैटहम आदि की मृत्यु हो चुकी थी। लार्ड राकिंगहम अभी जीवित था। शैलबर्न, फ़ाक्स और बर्क अन्य प्रमुख ह्विग थे। इनमें शैलबर्न बहुत योग्य तथा दूरदर्शी व्यक्ति था, किन्तु उस पर किसी को विश्वास न था। सत्य तो यह है कि यद्यपि उसका आचरण सदा आदर्श रहा; किन्तु उसके लिए सदा व्यवस्था की आवश्यकता होती थी। अतः उसके विषय में बराबर ग़लतफ़हमी की सम्भावना बनी रही।

जेम्स फाक्स—चार्ल्स जेम्स फ़ाक्स में गुण और दोषों का अपूर्व समन्वय था। वह बहुत उदार सहायक तथा प्रिय-मित्र कहा जाता है। वह होमर का अनन्य भक्त और बड़ा साहित्य-प्रेमी था। प्रत्येक कार्य में वह बड़ा फ़ुर्तीला था और अभ्यास से वह एक अनुपम वादी हो गया था। फिर भी उसने २४ वर्ष की आयु तक जुए में सारी सम्पत्ति गँवा दी थी और उस युग में प्रत्येक उच्छृंखल रीति का नेता बन गया था। उसकी राजनीति भी बड़ी विभिन्न थी। प्रारम्भ में वह टोरी था, अमेरिकन युद्ध में वह ह्विग, और फ्रान्स की राज्य क्रान्ति में समर्थन रूप में गरमदल का हो गया था। उसे लिबरलदल का संस्थापक कहा जा सकता है। क्योंकि उसने प्राचीन ह्विग दल और नवीन ह्विग दल, ( जो पार्लियामेन्ट में सुधार चाहते थे ) के बीच का अन्तराल पूरा कर दिया। वह अपने मत का समर्थन दृढ़ता से करता था। नीतिज्ञ की हैसियत से यह राजा अथवा राष्ट्र किसी का विश्वास-पात्र न बन सका और सन् १७७४ से १८०६ ई० में अपनी मृत्यु पर्यन्त केवल २० महीने मन्त्री रहा।

एडमंड बर्क—एडमंड बर्क को बेकन के अतिरिक्त अँगरेज़ी राजनीतिक का सब से बड़ा विचारक कहा जाता है। वह जन्म से आयरी था। डबलिन विश्वविद्यालय में उसकी शिक्षा हुई थी। ३६ वर्ष की अवस्था में यह लार्ड राकिंगहम का सेक्रेटरी हो

गया और पार्लियामेन्ट का ह्विग सदस्य। वह दल-नीति में बड़ा दृढ़ था और एक महान लेखक और वक्ता था। उसके भाषणों का बहुत प्रभाव पड़ता था। ये भाषण बहुत लम्बे होते थे और चूँकि बर्क के भाषण करने का ढंग बहुत आकर्षक न था, इसलिए पार्लियामेन्ट के बहुत से सदस्य उन्हें सुनते ही न थे। उसका ज्ञान आश्चर्य-जनक उन्नत था और उसके मत की सत्यता का भविष्य ने समर्थन किया है। वह अमेरिकन उपनिवेशों के साथ समझौता के पक्ष में था। उसने रोमन कैथलिकों के स्वाधीनताधिकार का समर्थन किया तथा डिसेन्टों के साथ पूर्ण सहिष्णुता के बर्ताव की अपील की। यह पिनलकोड तथा ऋण विषयक नियमों में सुधार करना चाहता था। उसने गुलामों के व्यापार का विरोध किया। किन्तु उस समय की ब्रिटिश शासन व्यवस्था का बड़ा समर्थक था और वोट तथा निर्वाचनाधिकार में किसी प्रकार की तबदीली या उन्नति का विरोधी था। यह क्रान्तिपूर्ण सुधार का विरोधी था जैसा कि उसके फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के प्रति विचारों से स्पष्ट है।

सेमुअल जॉन्सन ने एक बार बर्क के (मन्त्रिमंडल) में स्थान न प्राप्त कर सकने पर आश्चर्य प्रकट किया था। बर्क का सम्बन्ध किसी शासक परिवार से न था और आयरी होने के कारण अँगरेज स्वभवतः उसका विश्वास न करते थे। फिर उसका विवेचन प्रायः कल्पनामय होता था कि वह अनिश्चसनीय हो जाता था। वारन हेस्टिंग्ज के विषय में उसके विवेचन के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक है।

ह्विग मन्त्रि-मंडल (१७८२-८३ ई०)—१७८२ ई० में लार्ड नार्थ के पद-त्याग करने पर, ह्विग पार्टी का जोर बढ गया और थोड़े समय के लिए यह दल राज-कार्य चलाने लगा। दो ही बरसों में एक के बाद दूसरा मंत्रिमन्डल नियुक्त हुआ। लार्ड राकिंगहम प्रथम प्रधान मन्त्री बना। उसके मन्त्रि-मंडल में दो कार्य उल्लेखनीय हुए। एक तो इसने आयरलैंड को एक स्वतन्त्र पार्लियामेन्ट बनाने की स्वीकृति दे दी और दूसरे बर्क के प्रभाव से उसने राजनीतिक अनाचार तथा राजा का प्रभाव कम करने के लिए एक बिल पास किया जिसके अनुसार कर्मचारियों की संख्या तथा पेन्शन कम की गयी और मालगुजारी के कर्मचारियों को निर्वाचन अधिकार से वंचित किया गया। सारे देश के वोट देने वालों की संख्या का छठवाँ अंश ये लोग हो गये थे और बराबर राजा की इच्छा के अनुकूल वोट देने आ रहे थे।

लार्ड शैलबर्न और फाक्स और लार्ड नार्थ का मेल—अगला प्रधान मन्त्री लार्ड शैलबर्न हुआ। उसने सन्धि करके अमेरिकन युद्ध का अन्त कर दिया। फ़ाक्स और लार्ड के मिल जाने के कारण उसका पतन हुआ क्योंकि ये दोनों उससे घृणा करते थे। राजा को ऐसा मन्त्रिमडल स्वीकृत करना पड़ा जिसमें पोर्टलैण्ड के नाम मात्र के नेतृत्व में फाक्स और नार्थ का प्रभुत्व रहा। लोकमत इनके विरुद्ध था। राजा फाक्स और नार्थ दोनों का प्रबल विरोधी था। इस मन्त्रि-मंडल ने भारतवर्ष की गवनमेन्ट की व्यवस्था के लिए एक बिल उपस्थित किया जिसके अनुसार चार वर्ष

तक भारतवर्ष का शासन ऐसे कमिश्नरों के हाथ में रहता, जो सब फाक्स के समर्थक होते। बहुतों की राय में यह मेल बड़ी भद्दी घटना रही क्योंकि इसी फाक्स ने लार्ड नार्थ पर जब वह प्रधान मन्त्री था बड़ा प्रबल आक्षेप किया था। चूँकि लार्ड नार्थ बड़ी ढीला-ढाला प्रकृति का था इसलिए दोनों में मेल हो गया। फिर भी यह संयुक्त मन्त्रि मंडल बहुत दिनों तक न टिक सका; क्योंकि इस बिल के सम्बन्ध में लोगों का विचार था कि उसके द्वारा भारतवर्ष का राज्याधिकार इंग्लैंड के राजा की जगह फ़ाक्स के हाथ में आ जाता। राजा ने सुअवसर देखकर, 'राजमित्रों' को बिल के विरुद्ध वोट देने का सन्देश भेजा और यह बिल रद्द होगया। आख़िर १७८३ ई० के दिसम्बर में ८ महीने के बाद ही यह मन्त्रि-मंडल भी पदच्युत कर दिया गया।

पिट का मन्त्रिमंडल ( १७८३-१८०१ ई० )—जार्ज का नया प्रधान मन्त्री अर्ल ऑफ चैटहम का २४ साल का युवक पुत्र छोटा पिट हुआ। बचपन से ही उसका पालन पोषण राजनीतिक वातावरण में हुआ था। घर पर तथा केम्ब्रिज में शिक्षा ग्रहण कर १७८० ई० में उसने पार्लियामेन्ट में प्रवेश करते ही विशेष स्थान प्राप्त कर लिया। लार्ड राकिंगहम के मन्त्रि मंडल में एक साधारण पद ले कर वह लार्ड शेलबर्न के मन्त्रिमंडल में ख़ज़ाने का मन्त्री हो गया था। १७८३ ई० में वह प्रधान मन्त्री हो गया। तब से सत्रह वर्ष तक वह राजा और राष्ट्र दोनों का विश्वास-पात्र रह कर शासन करता रहा।

पद ग्रहण कर लेने पर मन्त्रि मंडल के निर्माण में पिट को बड़ी कठिनाई हुई। हाउस ऑव कामन्स में उसका अल्पमत होने के कारण उसका शासन हास्यास्पद समझा जाता था, किन्तु विरोध पक्ष में फ़ाक्स और लार्ड नार्थ आदि ने एक भूल की। पिट ने हाउस ऑव कामन्स में अपनी हारों के बाद भी कार्य न छोड़ा। आख़िर उसके साहस और विरोध पक्ष की उद्दंडता के कारण उसे बहुत सहायता मिलने लगी। और जब एप्रिल में उसने पार्लियामेन्ट भंग कर दी और फ़ाक्स के दल के १६० सदस्य निर्वाचित न हो सके तो फिर उसका बहुमत हो गया। वेस्टमिन्स्टर का चुनाव सब से मार्के का रहा। इसमें फ़ाक्स स्वयम् खड़ा हुआ था। ४० दिन तक बराबर वोट पड़ते रहे। फ़ाक्स का प्रतिद्वन्द्वी लार्ड हुड अपने समर्थक बहुत से मल्लाहों और नौ सैनिकों को लंडन लाया। इनमें और फ़ाक्स के हिमायतियों में अक्सर झगड़े हुए। सबसे मजेदार बात तो यह थी कि राजा जार्ज लार्ड हुड के और प्रिन्स ऑव वेल्स फ़ाक्स के पक्ष में थे। आख़िर डेवनशायर की सुन्दरी डचेज की कोशिश से फ़ाक्स की विजय हुई।

पिट और राजा जार्ज—पिट के पद ग्रहण करने के साथ राजा के व्यक्तिगत शासन का अन्त हो गया, यद्यपि राजा का प्रभाव बहुत सी बातों में अब भी बहुत अधिक था। एक कारण तो यह था कि अब राजा को विश्वासपात्र मन्त्री मिल गया था। फिर वह पिट से झगड़ा भी नहीं कर सकता था, क्योंकि ऐसा करने से उसे फिर

ह्विग विरोधी पक्ष का आश्रय लेना पड़ता। इधर राजा का स्वास्थ्य भी क्षीण होने लगा था। एक बार तो १७८८ ई० में मानसिक पीड़ा ने उसे असमर्थ कर दिया। फिर आँखों की ज्योति क्षीण होने लगी जिससे १८०५ ई० में उसे अपने आप को राजकार्य से स्वयम् हटाना पड़ा। १८११ ई० में पागलपन के कारण उसे पूर्ण विरति मिल गयी। प्रिन्स ऑव वेल्स रीजेन्ट रहा किन्तु सारी शक्ति मन्त्रियों के हाथ में थी।

पिट की नीति ( १७८३-९३ ई० )—अपने शासन के प्रथम दस बरसों अर्थात् सन् १७८३ से १७९३ ई० के बीच फ्रान्स के साथ युद्ध छिड़ने के पूर्व तक पिट इंग्लैंड के लिए बहुत कुछ उपयोगी काम कर सका। अर्थ-नीति में एक वालपोल ही उसके बराबर था। व्यवसायिक क्रान्ति के कारण यह बड़ी समृद्धि का युग था, फिर भी पिट को राष्ट्र की अर्थ-नीति बहुत दोषपूर्ण प्रतीत हुई। उसने कुछ चीजों पर कर कम कर के तथा कुछ पर बढा कर चोरी से छिपा कर माल निकाल ले जाने तथा रोक रखने का निवारण किया। पिट ने फ्रान्स के साथ एक व्यापारिक सन्धि की, जिससे इस देश का माल भेजने तथा वहाँ का माल मँगाने के व्यापार को बड़ा प्रोत्साहन मिला। अपनी शासन व्यवस्था में खूब किफायत करके उसने राष्ट्रीय ऋण को भी कम करने का प्रयत्न किया।

यदि उसका इतना अधिक विरोध न होता तो पिट और भी बड़े सुधार कर जाता। उसने पार्लियामेन्ट में सुधार करने के लिए एक बिल उपस्थित किया जिसके अनुसार कुछ छोटे 'बरों' का निर्वाचन अधिकार छिन जाता; किन्तु इसमें उसकी हार हुई। उसने ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड में पूर्ण व्यापारिक स्वतन्त्रता स्थापित करने का प्रताव किया; किन्तु फ़ाक्स ने इसका इतना घोर विरोध किया कि उसे प्रस्ताव लौटा लेना पड़ा। यह बात स्मरणीय है कि उस ज़माने के पार्लियामेन्ट के सदस्य बहुत अधिक स्वतन्त्र होते थे। उन पर न तो उनके निर्वाचकों का बहुत दबाव पड़ पाता था और न अपने दल के अनुशासन का। इसीलिए वे प्रायः हर ऐसे मामले के विरुद्ध वोट दे दिया करते थे जो उनकी समझ में अहितकर होता। सन् १७८५-८६ में पिट के तीन बड़े आवश्यक प्रस्ताव स्वीकृत न हो सके और उसे अपने ही समर्थकों से शिकायत रही। वारन हेस्टिंग्स पर अभियोग वाले मुक़दमें में उस पर निर्बलता और और परस्पर विरोधी मत रखने का दोष लगाया जाता है क्योंकि उसने रुहेला युद्ध के विषय में तो हेस्टिंग्ज़ का पक्ष लिया तथा और सब अभियोगों के विषय में उसका विरोध किया। यह विचार भी निर्मूल है कि डंडास के प्रभाव में आकर, जो हेस्टिंग्ज़ की योग्यता के कारण उससे घृणा करता था, उसने हेस्टिंग्ज़ का विरोध किया। उसने एक रेग्युलेटिंग ऐक्ट द्वारा भारतवर्ष में अँगरेज़ी सरकार की शासन व्यवस्था १८५७ ई० तक के लिए दृढ़ बना दी। कार्नवालिस और वेल्ज़ली को गवर्नर जनरल नियुक्त करने का श्रेय भी उसी को था।

पिट पर फ्रान्स के युद्ध का प्रभाव ( १७९३-१८०१ ई० )—पिट के शासन

के उत्तरार्द्ध काल में फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के कारण युद्ध छिड़ा रहा। अँगरेज़ी राजनीति पर फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के प्रारम्भिक प्रभाव का निर्देश पहले किया जा चुका है। जब १७९३ ई० में युद्ध का आरम्भ हुआ था तो सुधार सम्बन्धी सभी प्रयत्न बन्द हो गये और सुधार की जगह कठोरता से काम लिया जाने लगा। पिट के समर्थकों का कहना था कि तूफान के समय भी कहीं मकान की मरम्मत हो सकती है। हेबियस कोर्पस एक्ट निरन्तर ८ वर्ष के लिए स्थगित होता रहा जिससे बिना अभियोग पर विचार किये कोई भी मनुष्य अनिश्चित समय तक जेल में रक्खा जा सकता। राजनीतिक सभाओं के विरोध के लिए, राजनीतिक संस्थाओं के दमन के लिए तथा विदेश के राजनीतिक शरणागतों के बहिष्कार के लिए बिल पास हो गये। किन्तु इंग्लैण्ड में क्रान्ति की आशंका से भयभीत जनता के लिए ऐसे विधानों की आवश्यकता न थी। सन् १७९३ में ह्विग विरोध-पक्ष बर्क के सहित पिट की ओर हो गया और अब विरोध पक्ष केवल फ़ाक्स तथा उसके थोड़े से साथियों तक सीमित रह गया। इसी बीच में पिट को धन की बहुत कमी के कारण भारी कर लगाने पड़े और राष्ट्रीय ऋण दिन रात चौगुना बढ़ने लगा।

पिट के दमन सम्बन्धी विधानों का तो समर्थन किया जा सकता है, किन्तु उसके इस युग के शासन के अन्य कार्य्यों के प्रति उसे क्षमा करना कठिन है। युद्ध के सम्बन्ध में उसकी शासन व्यवस्था बहुत निन्दनीय थी; फिर यह भी नहीं कहा जा सकता कि आयरलैण्ड के प्रति उसकी नीति सफल थी। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड की एकता १८०० ई० में सम्पादित हो सकी और जब राजा ने रोमन कैथलिकों की स्वतन्त्रता स्वीकार नहीं की तो आत्मसम्मान की प्रेरणा से पिट को पद-त्याग करना पड़ा।

एडिंगटन मन्त्रि-मंडल ( १८०१-४ ई० )—पिट का उत्तराधिकारी हुआ एडिंगटन जो उसी का एक अनुयायी था। उसने १८०२ ई० में आमियाँ की सन्धि की थी और १८०३ ई० में फिर युद्ध प्रारम्भ होने पर उसका संचालन किया। किन्तु वह इस पद के योग्य ही न था। जब शासन-व्यवस्था न सँभल सकी तो फिर पिट को बुलाया गया। १८०४ ई० में पिट ने फिर मन्त्रीपद ग्रहण किया और सन् १८०५ में ट्रफालगर की विजय तक जीवित रहा। किन्तु इसके ६ सप्ताह के बाद ही आस्तर्लित्स की विजय ने नेपोलियन को युरोप का प्रभु बना दिया। इस विजय के कारण और निकटतम सहकारी डन्डास पर अर्थ विषयक गड़बड़ी करने का अभियोग लगाये जाने पर उसका दुर्बल-स्वास्थ्य और भी क्षीण हो गया और जनवरी में उसकी मृत्यु हो गयी।

अपने सहकारियों तथा सहपक्षियों के प्रति पिट का व्यवहार उदासीन तथा संयत था और किसी भी मुलाकाती के लिए यह प्रायः असम्भव सा था कि वह उसे बातों में लगा ले या उससे खुल कर बातचीत कर ले। फिर भी हाउस ऑव कामन्स

की व्यवस्था छोटे पिट से अधिक कुशलता से बहुत थोड़े मन्त्री कर सके हैं। उसकी प्रमुखता सारी सभा में निवादरहित थी। यद्यपि उसके भाषणों में उसके जैसा उत्साह न था फिर भी वह कुशल वक्ता था और उसके शब्दाधिकार को तो फ़ाक्स ने भी स्वीकार किया था।

कहा जाता है कि पिट योग्य व्यक्तियों से ईर्ष्या रखता और साधारण पुरुषों की कैबिनट में अकेला प्रतिभाशाली व्यक्ति रहना चाहता था। यहाँ तक कि दूसरी बार के मन्त्रित्वकाल में तो उसकी केबिनट में ऐसे मामूली आदमी भरे हुए थे कि लोगों के विचार में सारे मन्त्रिमंडल में या तो विलियम था या पिट। फिर उसका शासन त्रुटियों से भी नितान्त मुक्त न था और न ही वह हर तरह से आदर्श मन्त्री था। किन्तु लार्ड रोज़बरी के मत में ऐसे दानवों का भी कहीं अस्तित्व नहीं है। पूर्ण रूप से आदर्श न होते हुए भी पिट की गणना सबसे बड़े प्रधान मन्त्रियों में होगी। अपने पिता की भाँति सद्भावनापूर्ण और शील ईमानदार तथा अलुब्ध होने के कारण उसने लोक जीवन के नैतिक धरातल के उत्थान का सफल प्रयत्न किया। उसके सुदृढ़ साहस और आत्म विश्वास ही ने ग्रेट ब्रिटेन को फ्रान्स की राज्य क्रान्ति और नेपोलियन की सार्वभौमिक राज्य लिप्सा के तूफ़ान का सामना करने योग्य बनाया। फ्रान्सीसियों का तो वह परम शत्रु था और उनकी सारी योजनाओं के विरोध का केन्द्र। १७९३ ई० में फ्रान्सीसी एसेम्बली ने उसे मानव जाति का शत्रु घोषित कर पिट की योग्यता की प्रशंसा ही की थी। पिट ने अपने अन्तिम भाषण में कहा था कि "इंग्लैंड ने अपने उद्योग से अपनी रक्षा की है। मेरा विश्वास है कि वह अपने उदाहरण से सारे युरोप की रक्षा करेगा।" इस आशा से पूर्ण होने का जितना श्रेय नेलसन और वेलिंगटन को है, उतना ही पिट को।

ग्रेनविल का मन्त्रि मंडल (१८०६-७ ई०) पिट के बाद जो मन्त्रिमंडल बना उसमें 'ह्विग दल के समस्त कौशल' का प्रतिनिधित्व था। इसमें फाक्स और शेरिडन भी सम्मिलित थे। एडिंगटन जैसे कुछ टोरी भी उसमें मौजूद थे। जार्ज ग्रेनविल का कनिष्ठ पुत्र लार्ड ग्रेनविल इसका प्रधान हुआ। फ़ाक्स ने नेपोलियन से सुलह करने की कोशिश की; किन्तु उसे शीघ्र ही यह स्वीकार करना पड़ा कि नेपालियन की सद्भावना में उसका विश्वास व्यर्थ था। इसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। मन्त्रियों ने गुलामी के व्यापार को बन्द कर देने के लिए एक बिल बनाया। अन्त में रोमन कैथलिकों की स्वतन्त्रता के प्रश्न पर राजा से विरोध हो जाने पर उन्होंने पद-त्याग कर दिया।

टोरी मन्त्रि-मंडल (१८०७-१५) ड्यूक ऑव पोर्टलैण्ड स्पेन्सर पर्सिवल और लार्ड लिवरपूल—इसके बाद दो टोरी मन्त्रि मंडल बने। पहला सन् १८०७ में ड्यूक ऑव पोर्टलैंड का और दूसरा सन् १८०९ में स्पेन्सर पर्सिवल का। आख़िर १८१२ ई० में एक टोरी लार्ड लिवरपूल का प्रधानमन्त्री हुआ और पन्द्रह

वर्ष तक बना रहा। किन्तु १८१५ ई० तक के इतिहास का मुख्य विषय नेपोलियन का युद्ध है। उस युद्ध के युग में किसी प्रकार के सुधार असम्भव थे।

कला और साहित्य—( १७१४-१८१५ ई० ) इस युग की अन्य बातों पर विचार करने का अवकाश नहीं है। १७६० ई० में तो कला में होगर्थ प्रमुख चित्रकार था। १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में रेनाल्ड, गेन्सबरा और रोमनी प्रसिद्ध नाम हैं। १७४५ तक साहित्य में पोप विशेष उल्लेखनीय है। जार्ज तृतीय के शासन के पूर्वार्द्ध से सेमुअल जान्सन, गिबन, गोल्ड स्मिथ, बर्क और बर्न्स प्रधान हैं। वर्ड्सवर्थ और स्कॉट की अधिकांश कविताएँ फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के समय में लिखी गयी थीं, तथा बायरन की नेपोलियन के युद्धों के बीच। जेन आस्टिन और स्कॉट के उपन्यास पहले पहल सन् १८११ तथा १८१४ में प्रकाशित हुए।

---

# अध्याय १७

## आयरलैंड का इतिहास

( १६८६-१८१५ )

आयरलैण्ड के पिनल लाज या दंड विधान( १६६७-१७२७ ई० )—अब हमें १६८८ ई० के आन्दोलन से लेकर १८१५ ई० तक के अयरलैण्ड के इतिहास का विवेचन करना है। इसका इतिहास उसी युग के स्काटलैण्ड के इतिहास के नितान्त विपरीत है। १६६० ई० में बोइन के युद्ध में जेम्स की पराजय तथा १६६१ ई० मे लिमरिक पर उसके रोमन कैथलिक मित्रों के आत्मसमर्पण का वर्णन हो चुका है। लिमरिक मे अधीनता स्वीकार करने के उपलक्ष में रोमन कैथलिकों को दो बचन दिये गये थे। प्रथम जो सैनिक फ्रान्स जाना चाहते वे जा सकते थे। दूसरे रोमन कैथलिकों को आयरलैण्ड में वे ही सुविधाएँ मिलतीं जो उन्हें चार्ल्स द्वितीय के शासन में मिली थीं। किन्तु इस दूसरे बचन का पालन नहीं किया गया। इसके विपरीत सन् १६६२-१७२७ ई० के बीच में आयरी पार्लियामेन्ट ने, जिसमें अँगरेजी पार्लियामेन्ट के एक ऐक्ट के अनुसार केवल प्रोटेस्टेन्ट ही बैठ सकते थे, उस रोमन कैथलिक प्रजा के विरुद्ध बड़े बड़े नियम बनाये जो सारे देश की जन-संख्या की ८० प्रतिशत थे। ये 'पिनल लाज' या दड-विधान कहलाते हैं। इनके अनुसार किसी रोमन कैथलिक को वोट का अधिकार न था और न ही कोई राजपद उसे मिल सकता था। न वह यूनीवर्सिटी में शिक्षा ग्रहण कर सकता था। न स्कूल खोलने का उसे अधिकार था। न वह प्रोटेस्टेन्ट के साथ विवाह कर सकता था। न उसे भूमि खरीदने तथा ५ पाउंड से अधिक मूल्य का घोड़ा रखने का अधिकार था। फिर कोई प्रोटेस्टेन्ट

रोमन कैथलिक के साथ न तो भूमि बेच सकता था और न उसे वसीयत कर सकता था। कैथलिक की मृत्यु पर उसकी भूमि को उसके पुत्रों में बराबर बराबर विभाजित कर दिया जाता। यदि ज्येष्ठ पुत्र प्रोटेस्टेन्ट होता तो सब भूमि उसे मिल जाती। सारे कैथलिक बिशपों और डीकनों को निर्वासित कर दिया गया। कैथलिक पादरियों का नाम रजिस्ट्री किया जाता। कैथलिक गिरजाघरों में घंटा रखने की आज्ञा थी। उनके पवित्र कूपों की तीर्थ-यात्रा तक निषिद्ध थी।

आयरलैंड की राजनीतिक स्थिति—देश की शासन व्यवस्था में कैथलिकों का कोई हाथ न होने के कारण यहाँ की राजनीतिक स्थिति में बड़े सुधार की आवश्यकता थी। १७९५ ई० में पोइनिंग ऐक्ट के अनुसार आयरी पार्लियामेन्ट में पास होने वाले सभी नियमों के लिए इंग्लैण्ड की प्रिवी कौन्सिल की अनुमति की आवश्यकता होती थी। जार्ज प्रथम के राज्यकाल में इंग्लैण्ड की पार्लियामेन्ट ने यह नियम पास किया कि उनके स्वीकृत किये हुए विधानों को आयरलैंड को मानना होगा। आयरलैंड पर शासन करनेवाले अधिकारियों पर आयरी पार्लियामेन्ट का कोई नियन्त्रण न था। इंग्लैण्ड की सरकार ही इनकी नियुक्ति तथा देख-रेख करती थी। फिर सबसे बड़े पदाधिकारी ज्यादातर अँगरेज़ ही होते थे। अँगरेज वायसराय अपना अधिकांश समय इंग्लैण्ड में व्यतीत करते थे। प्रोटेस्टेन्ट बिशप भी सब अँगरेज होते थे और उनमें से कुछ तो कभी भी आयरलैण्ड नहीं जाते थे। १८वीं शती में केवल एक ही आयरलैंड निवासी को लार्ड-चान्सलर बनाया गया। अँगरेज़ वायसराय और अँगरेज़ बिशप सब प्रोटेस्टेन्ट होते थे।

आयरी पार्लियामेन्ट—आयरी पार्लियामेन्ट में भी बड़े सुधारों की आवश्यकता थी। हाउस ऑव लार्ड्स के आधे सदस्य प्रोटेस्टेन्ट बिशप होते थे। दो तिहाई से अधिक हाउस ऑव कामन्स के सदस्यों को व्यक्ति विशेष नामजद करते थे। तीन कुटुम्बों के हिस्से में लगभग ६० सदस्यों के मनोनीत करने का अधिकार था। कोई रोमन कैथलिक न वोट दे सकता था और न किसी हाउस में बैठ सकता था। अठारहवीं शती के मध्य तक आयरी पार्लियामेन्ट के बैठने की कोई निश्चित अवधि भी न थी और एक ही पार्लियामेन्ट तीस वर्ष तक काम करती रही।

आयरलैंड की आर्थिक स्थिति—आयरलैंन्ड की आर्थिक स्थिति तो राजनीतिक स्थिति से भी बुरी थी। आयरलैण्ड में चरागाह बहुत हैं। एक समय यहाँ के ढोर और यहाँ का ऊन युरोप भर में सर्वोत्तम समझे जाते थे। इस देश में कल-कारखानों की उन्नति भी खूब हो सकती थी; किन्तु अँगरेज़ कृषकों और शिल्प निर्माताओं का स्वार्थ इसमें बाधक था। चार्ल्स द्वितीय के शासन में अँगरेज पार्लियामेन्ट ने गाय, बैल, भेड़ और सुअरों को इंग्लैण्ड में आने से रोक दिया था। विलियम तृतीय के शासनकाल में आयरलैण्ड से ऊन के बने सामान का बाहर जाना रोक दिया गया और आयरलैण्ड के कच्चे ऊन का व्यापार इंग्लैण्ड तक ही सीमित कर दिया गया, जहाँ

ऊन पर बहुत अधिक आयात कर लिया जाता था। इस प्रकार आयरलैण्ड के धन्धों का नाश किया गया। किन्तु आयरलैंड की विपत्तियों का अन्त यहीं तक नहीं हो जाता जेम्स द्वितीय को सहायता देने के कारण यहाँ बहुत सी भूमि ज़ब्त कर ली गयी थी और आन्दोलन के बाद लगभग दो तिहाई अँगरेज़ों के वंशधरों के अधिकार में थीं। इनमें बहुत से इंग्लैंड में ही रहते थे और अपनी भूमि 'बिचवनियों' को उठा देते थे जो छोटे छोटे कृषकों को बड़े ऊँचे मुनाफ़े पर भूमि जोतने बोने को देते थे। आयरी किसानों की बड़ी दुर्दशा थी। उन्हें बिचवनियो को लगान देना पड़ता था और प्रोटेस्टेन्ट तथा रोमन कैथलिक पादरियों को कर। इसके बाद किसी किसी किसान के पास तो खाने को आलू के छिलके भी नहीं रह जाते थे।

आयरलैंड निवासियों का देशान्तरगमन—१८वीं शती के पूर्व तो आयरलैंड की यही दशा थी। इन सब कारणों से सारे आयरलैंड निवासियों की जो दुर्दशा और दुर्गति हो रही थी उससे सारा देश बड़ी अधोगति को पहुँचा हुआ था। उत्साही और योग्य आयरलैंड निवासी अपना देश छोड़ कर बाहर रोजगार की खोज में चल दिये थे। उदाहरणार्थ स्पेन पाँच आयरी रेजिमेंटों की सेना थी और कहा जाता है कि एक सौ बरसों के अन्दर लगभग २½ लाख आयरलैंड के लोग फ्रान्स के आयरी ब्रिगेड में भर्ती हुए थे। इसी आयरी ब्रिगेड ने आलमान्ज़ा और फोन्तिनोय पर अँगरेज़ों को बुरी तरह हराया था। यहाँ तक कि डेटिंजन के युद्ध में जार्ज द्वितीय को कहना पड़ा था, कि, "ऐसे क़ानून पर लानत है जो मुझे ऐसे सैनिकों से वंचित रखता है।" आयरलैंड ने आस्ट्रिया को कई श्रेष्ठ सेनानायक दिये। रूस के फील्ड-मार्शल आयरी थे और भारतवर्ष के वान्देवाश के युद्ध में आयरकूट का विरोधी जनरल भी आयरी नस्ल का था।

पीनल विधान में शिथिलता (१७७८-८२ ई०)—१८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्थिति कुछ सुधरने लगी। पहले तो रोमन कैथलिकों के विरुद्ध उन कठिन नियमों का पालन करना ही मुश्किल हो गया और १७५० ई० के पूर्व ही ये सब विधान ढकोसले मात्र रह गये। अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम से रोमन कैथलिकों को कुछ और सुविधाएँ मिलीं। ब्रिटिश सरकार ने आयरलैंड की पार्लियामेन्ट को रोमन कैथलिकों के भूमि ख़रीद में निषेधक नियम तोड़ देने के लिए उत्साहित किया। युद्ध के बाद तो उन्हें और सुविधाएँ मिलीं।

व्यापारिक विधान का निराकरण (१७८० ई०)—अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम के और भी कई महत्वपूर्ण परिणाम हुए। अब इंग्लैंड के सभी आश्रित देशों के सम्बन्ध का प्रश्न उठा। आयरलैंड को भी अब अपनी मांगें पेश करने का अवसर मिला। इन्हें सहज ही ठुकरा देना भी अब असम्भव हो गया। युद्ध के पिछले बरसों में ग्रेट ब्रिटेन को हर तरफ़ से मजबूर होकर आयरलैंड से अधिकांश सेना हटानी पड़ी। देश पर फ्रान्स के आक्रमण की आशंका बहुत प्रबल हो उठी

और एक समय तो हर घन्टे इस आक्रमण की प्रतीक्षा रही। शीघ्र ही आयरलैंड के निवासियों ने अपने देश की रक्षा के लिए वालन्टियर संघ की योजना बनायी। सभी धनी मानी इस योजना में सम्मिलित हुए और ड्यूक ऑव लीन्स्टर डबलिन के वालन्टियरों का नायक बना। देश के व्यवसायों को प्रोत्साहन देने के लिए इन वालन्टियरों की वर्दी भी आयरलैंड के बने कपड़े की रखी गयी। इसकी आर्थिक सहायता के लिए बहुत त्याग किये गये। इस आन्दोलन से सरकार से कोई लगाव न था इसलिए वह इसे सन्देह की दृष्टि से देखती थी। अपनी शक्ति का अनुभव कर लेने पर ये वालन्टियर भी क्रामवेल के आइरन साइड्स की भाँति देश की राजनीति में दखल देने लगे और स्वतन्त्र पार्लियामेन्ट या आयरी धन्धों पर लगाये हुए नियन्त्रणों के निराकरण की माँग पेश करने लगे। फिर आयरलैंड को हेनरी ग्रेटन जैसा अपूर्व योग्यता तथा चरित्र का पार्लियामेन्टरी नेता मिल गया जिसने आयरी पार्लियामेन्ट में इस आन्दोलन का संचालन बड़ी दक्षता से किया। अब इस आन्दोलन का निरोध करना ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की शक्ति से बाहर की बात थी। आख़िर सन् १७८० में आयरी व्यापार और धन्धों के नियन्त्रण तोड़ दिये गये और दो वर्ष बाद उसे वैधानिक स्वतन्त्रता मिल गयी। पोइनिंग ऐक्ट रद्द हो गया। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को अब आयरलैंड पर नियम विधान करने का अधिकार न रहा।

हेनरी ग्रेटन—इस प्रकार सन् १७७८ और १७८२ ई० के बीच में आयरलैण्ड की कई प्रमुख शिकायतें दूर हो गयीं डबलिन कैसिल के कर्मचारियों के विचार में इतने सुधार बहुत पर्याप्त थे। इसलिए अब और कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता न थी। परन्तु नरमदल के सुधारक अभी अधिक परिवर्तन चाहते थे। हेनरी ग्रेटन आयरलैण्ड का सबसे बड़ा और प्रभावशाली वक्ता उनका नेता था। ग्रेटन का जन्म १७३६ ई० में हुआ। युवावस्था में ग्रेटन चाँदनी रात में बाहर जाकर अपने आप ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर बातें किया करता था। डबलिन के ट्रिनिटी कालिज में शिक्षा पाकर सन् १७७५ में वह आयरी हाउस ऑव कामन का सदस्य नामजद कर दिया गया। शीघ्र ही वह आयरी पार्लियामेन्ट का सबसे प्रमुख सदस्य और उसकी स्वतन्त्रता का सब से प्रबल हिमायती बन गया। पार्लियामेन्ट ने भी उसकी सेवाओं के उपलक्ष में ५० हजार पौंड भेंट देकर अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया। वह कैथलिकों की पूर्ण स्वतंत्रता का समर्थक था और कहा करता था कि जब तक आयरलैण्ड के रोमन कैथलिकों पर प्रतिबंध लगे रहेंगे वहाँ के प्रोटेस्टेन्ट भी स्वतन्त्र नहीं रह सकते। आयरलैण्ड के पार्लियामेन्ट की व्यवस्था के दोषों के सुधारों का उसने दृढ़तापूर्वक समर्थन किया था। परन्तु वह जनतन्त्र शासन अथवा सर्वसाधारण के निर्वाचनाधिकार दिये जाने के पक्ष का विरोधी था और उसे इन बातों में विश्वास नहीं था। इस सम्बन्ध में उसके ये वाक्य "मैं प्रजातन्त्र सम्बन्धी स्वतन्त्रता की अनियंत्रित आत्मा पर व्यवस्थित स्वतंत्रता का नियंत्रण स्थापित करना चाहता हूँ" चिरस्मरणीय

रहेंगे। ग्रेट ब्रिटेन के साथ यह आयरलैण्ड के सम्बन्ध को बनाये रखने की आवश्यकता को समझता था और उसका विचार था कि आयरलैण्ड को युद्ध के समय ग्रेट ब्रिटेन की पूरी-पूरी सहायता करनी चाहिये। उसकी भाषणशक्ति के विषय में किसी को सदेह नहीं है। कहा जाता है कि चैटहम के अतिरिक्त अन्य किसी अँगरेजी वक्ता में राष्ट्र को उत्साहित करने की इतनी क्षमता न थी तथा न बर्क के अतिरिक्त किसी अँगरेजी वक्ता में अपने भाषण में राजनीतिक ज्ञान के प्रभूत सूत्रों के गुम्फन की इतनी शक्ति।

फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति का प्रभाव—अमेरिका के स्वतन्त्रता-संग्राम की भाँति फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति का भी आयरलैंड पर बहुत प्रभाव पड़ा। क्रान्तिवादियों ने मनुष्य की समानता की घोषणा की थी तथा धार्मिक विभेद का नाश कर दिया था और पुरानी ज़मींदारी प्रथा को हटाकर जनतान्त्रिक सिद्धान्त पर आश्रित राज्य-व्यवस्था करने की चेष्टा की थी। स्वतन्त्रता के उपासक रोमन कैथलिक तथा पार्लियामेन्टरी सुधार के समर्थक प्रेस्बिटेरियन दोनों दलों ने इस क्रान्ति के आन्दोलन का स्वागत किया और इसे पार्लियामेन्ट के लिए स्वर्णयुग का प्रभात समझा। इसीलिए आयरलैण्ड में बैस्टील के पतन का वार्षिक अधिवेशन बड़े समारोह और उत्साह के साथ मनाया गया। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति के परिणाम स्वरूप आयरलैण्ड में एक उग्र दल का उदय हुआ जिसका नेता बुल्फटोन था। ग्रेटन की इस दल के साथ बहुत कम सहानुभूति थी। बुल्फटोन ने 'युनाइटेड आयरिशमैन' नाम की एक संस्था स्थापित की जिसके सभासदों की संख्या बहुत बढ़ी और यह संस्था बहुत लोकप्रिय हो गयी। इस संस्था के तीन मुख्य उद्देश्य थे। 'आयरलैण्ड की पतित गवर्नमेन्ट के अनियमित शासन का दमन करना, आयरलैण्ड की राजनीतिक परतन्त्रता के प्रमुख कारण इंग्लैण्ड से सम्बन्ध विच्छेद करना तथा अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए निरन्तर प्रयत्न करना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सब आयरलैण्ड निवासियों को एक करना, विगत झगड़ों-बखेड़ों को भुला देना और प्रोटेस्टेन्ट, कैथलिक और प्रेस्बिटेरियन आदि उपभेदों को हटाकर केवल एक आयरि निवासी नाम का प्रचार करना इसके प्रमुख साधन थे। पिट का विचार था कि आयरलैण्ड को कुछ न कुछ सुविधाएँ अवश्य देनी चाहिये इसलिये उसने वहाँ के अफसरों की राय न मान कर अपने प्रभाव से आयरी पार्लियामेन्ट में एक बिल पास करा दिया जिसके अनुसार रोमन कैथलिकों को निर्वाचन का अधिकार दे दिया गया—यद्यपि उन्हें अब भी पार्लियामेन्ट में बैठने की आज्ञा नहीं मिली थी। यह उन अधूरी व्यवस्थाओं में से थी जिसके कारण आगे चल कर बहुत से आन्दोलन हुए और अनेकानेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं।

फिट्ज़ विलियम वाली घटना (१७९५ ई०)—१७९५ ई० में एक ऐसी घटना हुई जिसका आयरलैण्ड के इतिहास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। फ्रान्स के साथ युद्ध के समय बहुत से ह्विग पिट के दल में सम्मिलित हो गये थे। एक ह्विग-लार्ड फिट्ज़ विलियम आयरलैण्ड का वायसराय बना दिया गया। वह ग्रेटन से सहमत और

रोमन कैथलिकों को पूर्ण स्वतन्त्रता तथा पार्लियामेन्ट में बैठने के अधिकार देने के पक्ष में था शीघ्र ही उसने आयरी पार्लियामेन्ट के सामने आना यह प्रस्ताव उपस्थित करने की घोषणा कर दी। इंग्लैंड छोड़ने के पूर्व पिट का आदेश उसे यह आज्ञा नहीं देता था। आयरलैण्ड में भी कट्टर प्रोटेस्टेन्टों और कर्मचारियों ने फिट्ज विलियम की नीति का विरोध किया। अन्त में पिट के मन्त्रिमंडल ने इसे अस्वीकृत किया और फिट्ज विलियम को वापिस बुला लिया गया।

फिट्ज विलियम का प्रस्ताव और उसका वापिस बुलाया जाना आयरलैण्ड के इतिहास में एक सघातक परिवर्तन सूचक घटना है। इसके परिणाम स्वरूप 'युनाइटेड आयरिशमैन' दल ने एक गुप्त संस्था का रूप धारण कर लिया। सब रोमन कैथलिक इसमें शामिल हो गये और आयरलैण्ड और ब्रिटेन से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद इसका उद्देश्य हो गया। फ्रान्सीसियों के साथ उनकी गुप्त मन्त्रणा का परिणाम यह हुआ कि १७९६ ई० मे होश ने 'वेन्ट्री वे' पर आक्रमण कर दिया परन्तु सौभाग्य से यह असफल रहा। अपने विरोधियों के प्रति 'युनाइटेड आयरिशमैन' दल के अत्याचारों का परिणाम यह हुआ कि प्रोटेस्टेन्ट भी बदला लेने के लिए उत्तेजित हो उठे और उन्होंने 'आरेंजमैन' नाम की एक संस्था बनायी जिसका प्रमुख उद्देश्य हुआ रोमन कैथलिकों के साथ प्रतिहिंसा के भावों से प्रेरित होकर अत्याचार करना। अन्त में आयरलैण्ड की स्थिति इतनी भयंकर हो गयी कि १८९७ ई० में अल्स्टर के निशस्त्रीकरण की आज्ञा दे दी गयी। इस समय के वेल्श और जर्मन सैनिक अपने अत्याचारों के लिए सबसे अधिक बदनाम हैं। ये लोग घरों में घुस जाते और लोगों को उनके पास छिपे हुए हथियार को दे देने के लिए तंग करते थे। अल्स्टर में ही हथियार छीन लेने के कारण प्रजा में धर पकड़ और अत्याचारों के कारण खलबली नहीं मची बल्कि टिपरेरी के शैरिफ टामस फिजजैरल्ड ने इन दुष्कृत्यों के कारण बड़ा नाम पैदा किया। राईट नाम के एक शिक्षक को 'युनाइटेड आयरिशमैन' दल का मन्त्री होने के शक पर उसने कोड़े लगवा कर गोली से मरवा दिया। जब राईट को कोड़े लगाये जा रहे थे तो एक अफसर के पूछने पर उसे फ्रान्सीसी भाषा में लिखा हुआ राईट की जेब से निकला एक कागज दिखला कर कहा गया कि उस कागज में जो बातें लिखी हैं उनके कारण ही उसे यह दण्ड दिया गया है। यह बतलाये जाने पर भी कि उस कागज में कोई आपत्तिजनक बात नहीं लिखी थी फिजजैरल्ड ने इस पर कोई ध्यान न दिया और राईट के १०० कोड़े और लगवा कर उसे जेलखाने में बन्द कर दिया।

आयरलैंड का विद्रोह (१७९८ ई०)—आखिर १७९८ ई० में आयरलैण्ड में विद्रोह हो गया। विद्रोही नेताओं के स्पष्ट उद्देश्य थे कैथलिकों की स्वतन्त्रता और पार्लियामेन्ट का सुधार। किसान भी इस विद्रोह में अपनी शिकायतें लेकर शामिल हुए थे। उन्हें 'दशमांश' कर देना बहुत अखरता था और उन्हें यह विश्वास

दिलाया गया था कि आयरलैण्ड की राष्ट्रीयता के उदय होने तथा ग्रेट ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद करने का समय आ गया था। उनकी यह भावना थी कि प्रोटेस्टेन्ट उनके अस्तित्व को मिटाकर धर्म का नाश कर देंगे। किन्तु यह विद्रोह कुछ प्रबल न हो सका। अल्स्टर में सब लोगों के हथियार छीन लिये गये थे और वहाँ मार्शल ला जारी था। कैथलिक नेता तो विद्रोह शुरू होने के पहले ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। इसके अतिरिक्त यद्यपि फ्रान्सीसी सेना उनकी सहायता के लिए आयी तो अवश्य, परन्तु वह बहुत देर से आयी और इसलिए उसे लौट जाना पड़ा। इस प्रकार विद्रोह का प्रभाव केवल विकलो और वेक्सफर्ड के प्रान्तों पर ही पड़ा और विद्रोही 'न्यू रास विनिगर' पहाड़ी पर पराजित हुए। इस प्रकार एक महीने के भीतर ही विद्रोह शान्त हो गया।

सन् १८०० की एकता—विद्रोह के बाद पिट ने इस बात का अनुभव किया कि आयरलैंड और ग्रेट ब्रिटेन का सम्बन्ध बनाये रखने तथा आयरलैंड में प्रोटेस्टेन्टों और कैथलिकों के मेल स्थापित करने का एकमात्र साधन एकता है। आयरलैण्ड का लोकमत इस एकता के विरुद्ध था; परन्तु लोगों को पियर या लार्ड बनाने के वायदे करके तथा 'पाकेट बराओं' के स्वामियों को बहुत सा धन देकर विरोध पक्ष के एक भाग को सरकार की तरफ मिला लिया गया।

यद्यपि कोई वचन नहीं दिया गया था, फिर भी रोमन कैथलिकों को यह संकेत कर दिया गया था कि एकता के बाद उन्हें स्वतन्त्रता मिल जायगी। इस प्रकार ग्रेटन के विरोध करने पर भी आयरी पार्लियामेन्ट में १८०० ई० का 'यूनियन ऐक्ट' पास हो गया। इसके अनुसार चार आयरी बिशप और सब आयरी पियरों द्वारा जन्म भर के लिए निर्वाचित १८ पियर्स हाउस ऑव लार्ड्स में तथा आयरलैण्ड के १०० सदस्य हाउस ऑव कॉमन्स में रहे। आयरलैण्ड की व्यवस्था और कार्यकारिणी अपनी ही रही। अवश्य ही इन पर अँगरेजी मन्त्रिमंडल का शासन रहा। यह भी निश्चय हुआ कि आयरलैण्ड और ग्रेट ब्रिटेन के व्यापार सम्बन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता रहे और 'युनाइटेड किंगडम' को आयरलैण्ड अपनी आय का $\frac{2}{17}$ वॉ भाग कर के रूप में दे।

इस प्रकार १८ वर्ष के बाद आयरलैण्ड की स्वतन्त्र पार्लियामेन्ट का अन्त हो गया। इसमें कई योग्य वक्ता और नीतिज्ञ थे। इसने कई उपयोगी नियम बनाये थे और इसकी कठिनाइयों को देखते हुए यह नितान्त असफल भी न रही थी। किन्तु कैथलिक स्वतन्त्रता के संकेत का परिणाम कुछ भी न निकला। जार्ज तृतीय को यह विश्वास था कि कैथलिकों को स्वतन्त्रता देना उस शपथ के विरुद्ध है जो उसने अपने राज्याभिषेक के समय ली थी। इसलिए राजा से मतभेद होने के कारण पिट ने १८०१ ई० में पद त्याग कर दिया। इस युग के अन्त तक कैथलिकों को स्वतन्त्रता न मिली। आयरलैण्ड की भूमि की समस्या भी अभी हल न हुई थी और आयरलैण्ड अभी तक असन्तुष्ट राष्ट्र बना हुआ था।

# अध्याय १८

## व्यवसायिक क्रान्ति और सामाजिक उन्नति

( सन् १७५०-१६०० ई० )

वैज्ञानिक उन्नति—इंग्लैंड के इतिहास में जिस प्रकार सत्रहवीं शती राजा और पार्लियामेन्ट की कशमकश के लिए महत्त्वपूर्ण है और अठारहवीं शती की प्रमुख घटनाएँ ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स के युद्धों में केन्द्रित हैं, उसी प्रकार सन् १८०० ई० के बाद का युग विज्ञान की उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण है। उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए वैज्ञानिक आविष्कारों के उपयोग ने हमारी जीवन प्रणाली में बड़ी क्रान्ति उपस्थित कर दी है। एक प्रमुख राजनीतिज्ञ का कहना है कि पिछले सौ वर्षों में सभ्य मनुष्यों के जीवन क्रम में जो अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं वे न तो राजनीतिज्ञों के उद्योग से हुए हैं और न राजनीतिक संस्थाओं के कारण। ये सब परिवर्तन तो उन लोगों के स्तुत्य परिश्रम के कारण हुए हैं जिन्होंने वैज्ञानिक आविष्कार उपस्थित किये अथवा जिन्होंने इन आविष्कारों का उपयोग व्यवसायिक उन्नति के लिए किया। इन वैज्ञानिक परिवर्तनों का श्रीगणेश अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में होता है और राजनीतिक इतिहास के आधार पर भी सन् १८१५ इन दो युगों को अलग अलग करता है।

### §१ – सन् १८१५ के पूर्व की व्यावसायिक क्रान्ति

( १ ) कृषि व्यवसाय में—वैज्ञानिक आविष्कारों से प्रभावित होने वाले उद्योग-धन्धों में सबसे पहले कृषि का नम्बर आता है। अठारहवीं शती तक जुताऊ ज़मीन को सनातन से प्रचलित रीति के अनुसार दो साल जोतने बोने के बाद एक साल तक इसलिए ख़ाली छोड़ दिया जाता था कि उसकी उर्वरा शक्ति बनी रहे। इसलिए सबसे पहली तलाश यह हुई कि किसी प्रकार एक साल तक परती छोड़ने की लाभहीन प्रथा को रोकने का उपाय किया जाय। खोज से पता चला कि अगर दो फ़सल काट लेने के बाद मूली शलजम चुकन्दर, शकरकन्द आदि कन्द मूलों की काश्त कर दी जाय तो न केवल इससे जमीन ही अधिक उपजाऊ हो जायगी बल्कि जाड़ों के लिये मवेशियों और भेड़ों का चारा भी प्राप्त हो जायगा। इससे पहले इंग्लैंड आदि देशों से गर्भ वाले पशुओं को छोड़ कर बाकी गोरुओं को जाड़ा आने के पहले ही मार दिया जाता था। इस प्रकार इस नयी खोज से पृथ्वी के लिए ख़ूब खाद मिल गयी और उसकी उर्वरा शक्ति भी बढ़ गयी। कहावत है कि जार्ज प्रथम के मन्त्री "टर्निप टाउन्सेंड" ने सबसे पहले इस खोज का महत्त्व पहचाना और उसने अपनी नारफ़क की
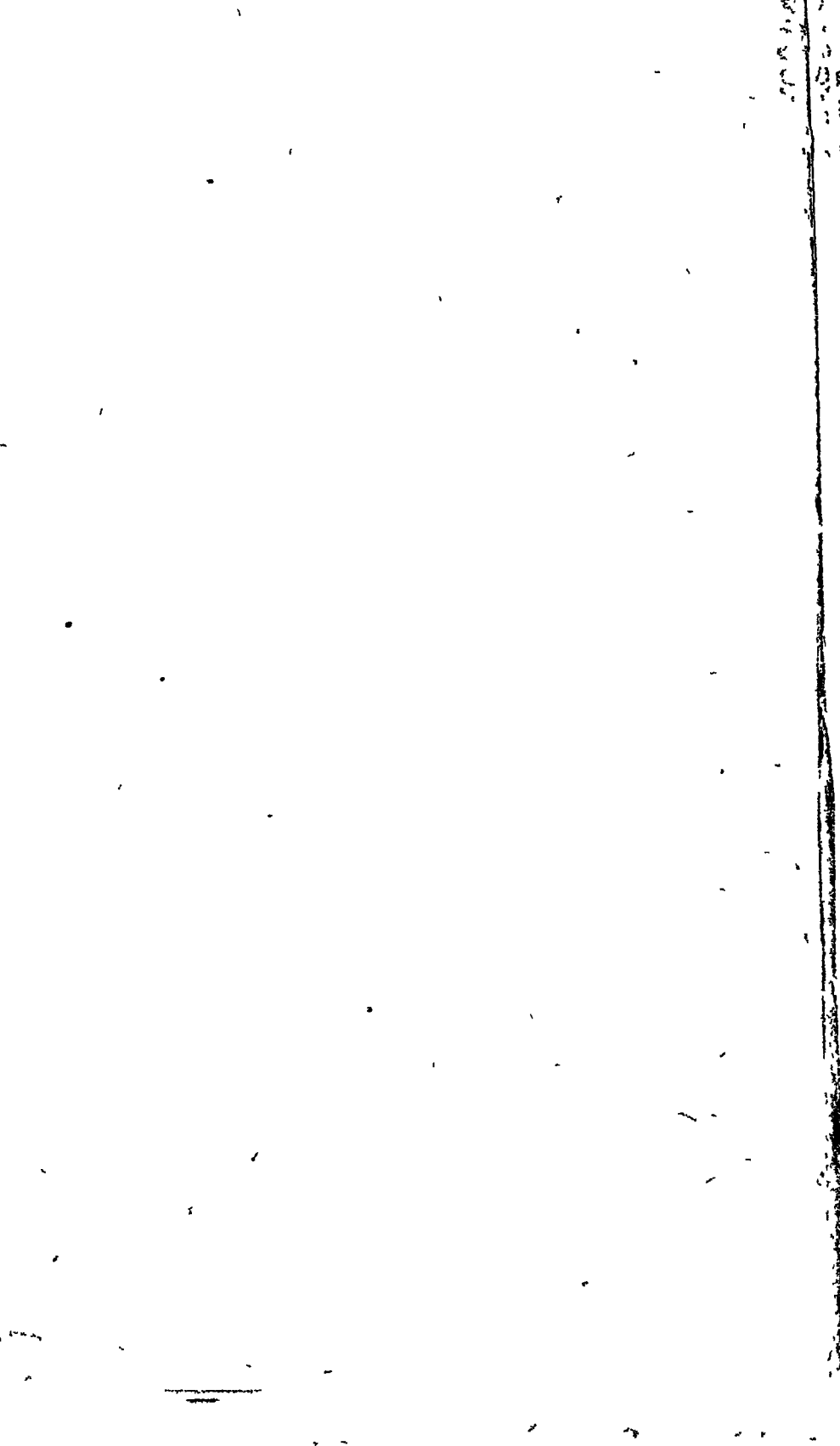
ज़मीन्दारी में फसलों के चतुर्वर्षी चक्र की योजना की। इसके अनुसार पहली फ़सल गेहूँ की फिर चुकन्दर या शकरकन्द की, उसके बाद जौ की, और उसके बाद दूब और अन्य घासों की उगायी जाती थी। इस तरह पर एक ही खेत में निरन्तर अनाज की दो फ़सलें नहीं बोयी जा सकती थीं। धीरे-धीरे अठारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में सारे इंग्लैंड में फ़सलों के तीनवर्षी या पंचवर्षी चक्र की प्रथा चल गयी।

इसके बाद पशु प्रजनन की वैज्ञानिक रीति से इतना परिवर्तन हुआ कि सन् १८०० तक अठारहवीं शती के पूर्वार्द्ध की अपेक्षा भेड़ों का वज़न तीन गुना और अन्य गोरुओं का कम से कम दुगुना हो गया। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विसेस्टरशायर नस्ल की भेड़ें उत्पन्न करने वाले वेक्वेल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् १७२५ में इसका जन्म हुआ और १७६४ ई० में इसकी मृत्यु हुई। इसके "टू पेनी" नामक सांड और 'टू पाउडर" नामक भेड़े को देखने के लिए सारे संसार के लोग जमा होते थे। रूस के राजकुमार, फ्रान्स और जर्मनी के ड्यूक और इंग्लैंड के प्रतिष्ठित व्यक्ति सब उसके यहाँ बड़े चाव से भोजन करते थे। धीरे धीरे भूमि के लिए नयी-नयी खादें और गोरुओं के लिए नये-नये खाद्य मालूम हो गये और अठारहवीं शती के अन्त में पशु प्रजनन में प्रोत्साहन देने वाला स्मिथफ़ील्ड क्लब और सरकारी कृषिविभाग, बोर्ड ऑव ऐग्रिकल्चर की स्थापना हुई। इससे पता चलता है कि इस समय कृषि की उन्नति में सर्वसाधारण का कितना अधिक अनुराग था, यहाँ तक कि राजा जार्ज तृतीय ने विन्स में एक मॉडल फार्म खोला और कृषि सम्बन्धी पत्रों में वह स्वयम् लेख भी लिखने लगा।

इस युग में केवल यही परिवर्तन नहीं हुए। कई भूस्वामियों ने बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के सफल प्रयत्न किये। कई फ़ाउन्टियों में छोटे छोटे फ़ार्मों के स्थान पर बड़े-बड़े फ़ार्म स्थापित हो गये और इन सब के अतिरिक्त पार्लिया-मेन्ट द्वारा कई ऐक्ट पास करके कम से कम सत्तर लाख एकड़ खुले खेतों के चारों तरफ़ मेड़ें डाल कर बाड़े बाँध दिये गये। अब लोग भूमि की उन्नति में न सिर्फ़ अधिक धन ही व्यय करने लगे बल्कि मेडों और बाड़ों से घिरे हुए खेतों की भूमि को अधिक से अधिक उपजाऊ बनाने के लिए नयी-नयी योजनाएँ चल पड़ीं और देश में कम से कम पाँच गुनी फसल होने लगी। परन्तु इन परिवर्तनों के कारण इंग्लैंड के बहुत से भागों में छोटे-छोटे किसान और भूमियों का ह्रास हो गया। खेतों के चारों ओर बाड़े बँध जाने से अब लोगों को उनमें अपने मवेशी और भेड़ें चराने का मौक़ा न मिलता था और जमीन का मूल्य बढ़ जाने से खेत बेच देने के लालच के कारण उनके पास भूमि भी न रह गयी थी। इसलिए बहुतों ने तो मजदूरी करना शुरू कर दिया और उन्नीसवीं शती के पूर्व-भाग में इन लोगों की दशा शोचनीय होती चली गयी।

(२) सूत के व्यवसाय में—कृषि के बाद और दूसरे उद्योग धन्धों की उन्नति

शुरू हुई और इसी युग में कताई और बुनाई दोनों क्रियाओं में नये-नये आविष्कार हो जाने से सूत के व्यवसाय में बड़ी आश्चर्य जनक उन्नति हुई। १७३८ ई० में जौन के ने एक ढरकी का आविष्कार किया जो बिना हाथ लगाये आप ही आप मशीन से करघे के दोनों ओर फेंकी जा सकती थी। कपड़ा बिनने के व्यवसाय में यही सबसे पहला आविष्कार हुआ। जौन के की, उड़ती ढरकी का उपयोग जैसे जैसे बढ़ता गया वैसे ही जुलाहों के पास काते हुए सूत की कमी होने से ऐसे आविष्कार की आवश्यकता महसूस होने लगी जिसके द्वारा कताई में उन्नति हो जाय। अब तक एक आदमी चरखे पर कातते समय एक ही तकुए पर कता हुआ धागा लपेट सकता था। १७६४ ई० में एक ऐसा चरखा आविष्कृत किया गया जिसमें एक पहिए के घुमाने से सोलह तकुए एक साथ घूमते थे। इसमें आविष्कारक हारग्रीव्स ने अपनी पत्नी के नाम पर इस चरखे को 'स्पिनिंग जैनी' नाम दिया। फिर पाँच साल बाद १७६९ ई० में आर्कराइट ने एक ऐसे चरखे का आविष्कार किया जो पानी की शक्ति द्वारा चलता था और जिसमें बेलनों के घूमने से कताई होती थी। सब से आखिर में क्रॉम्पटन ने अपने "म्यूल" (खच्चर) नामी चरखे में इन दोनों आविष्कारों को मिला दिया। इन सब उन्नतियों का परिणाम यह निकला कि इस शती के अन्त तक कई सौ तकुओं वाली एक कतने वाली मशीन के लिए एक ही आदमी पर्याप्त हो गया। कताई में इतनी उन्नति हो जाने के कारण अब यह भी आवश्यक हुआ कि बुनाई में भी ऐसे ही उन्नति हो; चुनांचे १७८५ ई० में कार्टराइट नाम के एक पादरी कवि ने एक उन्नत बुनने वाली मशीन बनाने का प्रयत्न किया। और आखिर तीन वर्ष के निरन्तर प्रयत्न के बाद "पावरलूम" (शक्ति-करघा) बनाने में सफल हुआ। इन नये आविष्कारों से कैसा आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ इसका अनुमान करने के लिए थोड़े से आँकड़े देना आवश्यक है। इंग्लैंड में सन् १७८५ ई० में लगभग ४० हजार आदमी सूत के व्यवसाय में काम करते थे। १८३१ ई० में इनकी संख्या २० गुनी अर्थात् ८ लाख से भी ऊपर हो गयी थी। इसी प्रकार जहाँ १७५० में ३० लाख पौंड रुई बाहर के देशों से इंग्लैंड में आयी, वहाँ सन् १८१५ में उसकी आयात १ करोड़ पौंड हो गयी १९१३ ई० में २० करोड़ पौंड और १९३० में १२० करोड़ पौंड तक जा पहुँची।

(२) लोहे के व्यवसाय में—सूत के व्यवसाय की इस आश्चर्यजनक उन्नति से किसी भी भाँति कम लोहे के व्यवसाय में उन्नति नहीं हुई। अब तक लोहे की भट्टियों में लोहा गलाने के लिए लकड़ी का कोयला काम में आता था। जंगलों के कट जाने से जब कोयला मिलना मुश्किल हो गया और इसका मूल्य भी अधिक बढ गया तो सन् १७६० ई० में एक नयी तरह की भट्टी का आविष्कार हुआ जिसमें लकड़ी के कोयले की जगह पत्थर का कोयला और जला हुआ 'कोक' काम आने लगा। इस नये आविष्कार ने लोहे के कारखाने वालों के उपयोग के लिए इंग्लैंड के कोयले की खदानों की अपरमित निधि उपस्थित कर दी। इसके बाद और नये नये

आविष्कार हुए और हेनरी कोर्ट ने लोहे को गला कर ढालने और उसकी छड़ और चद्दरें बनाने की नयी-नयी प्रक्रियाओं का आविष्कार किया। इस व्यवसाय की इंग्लैंड में इतनी अभूतपूर्व उन्नति हुई कि इस शती का अन्त होते-होते देश भर में अनेक बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो गये। इस प्रकार 'लोह-युग' का प्रसार हुआ। १७७६ ई० में सबसे पहला लोहे का पुल बना और १७६० ई० में सबसे पहले लोहे का जहाज़।

( ४ ) भाप की शक्ति में—रुई और लोहे के बने हुए सामान के अतिरिक्त अन्न और भी वस्तुओं की रचना विधि में उन्नति होने लगी। जोशिया वैजवुड के प्रयत्नों से पकाई हुई मिट्टी की सुन्दर वस्तुएँ बनने लगीं। परन्तु इन सब आविष्कारों से अधिक महत्त्वपूर्ण और चमत्कारक आविष्कार हुआ भाप की शक्ति का जिसने सारे संसार की काया पलट कर दी। यों तो भाप की शक्ति का ज्ञान लोगों को बहुत पहले ही से था; परन्तु यह गौरव १७६६ ई० में सबसे पहले ग्रीनक के औज़ार बनाने वाले वॉट को ही प्राप्त हुआ कि उसने पहला भाप की शक्ति से चलने वाला एँजिन बना डाला। सबसे पहले भाप के एँजिन की गति ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर केवल लम्ब दशा में हो सकती थी इसलिए कुओं से पानी खींचने में उसका उपयोग होने लगा। बाद में चक्राकार से समानान्तर गति का आविष्कार हुआ और तब भाप की शक्ति से अनेक कल-कारखाने चलने लगे। कुछ बरसों बाद और भी उन्नति हुई और १८१२ ई० (अर्थात् नेपोलियन के रूस पर धावा बोलने के वर्ष) हेनरी बेल का बनाया हुआ सबसे पहला अँगरेजी स्टीमर 'कमेट' क्लाइड नदी से निकल कर युरोप के समुद्रों पर प्रकट हुआ। दो वर्ष बाद सन् १८१४ ई० में स्टिफेन्सन ने सबसे पहला रेल का एँजिन बनाया। फिर वाटरलू की लड़ाई के वर्ष (१८१५ ई०) में हमफ्री डेवी ने खदानों में काम करने वालों के लिए रक्षक लैम्प (सेफ्टी लैम्प) का आविष्कार किया। इस आविष्कार से खदानों के भीतर जाकर काम करने में बड़ी सुविधाएँ हो गयीं, उधर भाप की शक्ति से चलायी जाने वाली मशीनों की संख्या और उनकी विभिन्नताओं में दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी।

( ५ ) आवागमन के मार्ग और नहरें—रेलवे और स्टीमर १८१५ ई० के बाद बने; परन्तु आवागमन के साधनों में इनके आविष्कार से पहले ही बहुत कुछ उन्नतियाँ हो गयी थीं। नहरों के निर्माता चीनी लोग हैं, परन्तु इंग्लैंड में सबसे पहली नहर सन् १७५६ में बनी। ड्यूक ऑव ब्रिजवाटर के लिए वोर्सली की कोयले की खदानों से मैनचेस्टर तक ब्रिंडेल ने एक नहर खुदवायी जिसके बन जाने से मैनचेस्टर में पत्थर के कोयले का दाम आधा रह गया। इस नहर की सुविधाओं को देख कर और भी कई नहरें बनीं; यहाँ तक कि अठारहवीं शती का अन्त होते होते लंडन, ब्रिस्टल, लिवरपूल और हल में होकर नहरें निकल गयीं और फोर्थ और क्लाइड में भी नहरें बन गयीं। उन्नीसवीं शती का आरम्भ होते-होते डरहम में दक्खिन इंग्लैंड में कोई ऐसा नगर न रहा जो पानी के रास्ते से पन्द्रह मील से अधिक दूर पड़ता हो।

**आवागमन के मार्ग और सड़कें**—१८वीं शती के आरम्भ में इंग्लैंड की सड़कें बहुत ख़राब हालत में थीं। उत्तर प्रदेशों की एक बहुत महत्त्वपूर्ण सड़क में एक एक फुट गहरे गड्ढे थे। ससेक्स की सड़कें ऐसी टूटी फूटी थीं कि जाड़ों की वर्षा के बाद उन पर कीचड़ के कारण गुजरना असम्भव था। स्कॉटलैंड की सड़कों पर तो किसी प्रकार की गाड़ी न चल सकती थी। १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में इंग्लैंड की सड़कों की दशा बहुत कुछ सुधर गयी और १८१५ ई० से कुछ ही समय पहले जान मैकेडम ने पक्की सड़क बनाने की अपनी नयी आविष्कृत विधि की सूचना पार्लियामेन्ट को दी। इंग्लैंड में घोड़ा गाड़ी (स्टेज-कोच) तो १६४० ई० से चलते थे; परन्तु सन् १७८४ में पामर ने नयी डाक और मुसाफिर गाड़ियों का सिलसिला चलाया। ये गाड़ियाँ काफ़ी तेज़ थीं और नियमानुसार समय पर चलती थीं।

**व्यावसायिक क्रान्ति**—इस प्रकार खेती करने की नयी नयी रीतियों, व्यवसायों के कारखाने चलाने के लिए नये नये और चमत्कारपूर्ण आविष्कारों तथा आवागमन के नवीन और उन्नत साधनों आदि ने मिलकर इस समय इंग्लैंड की उन्नति में ऐसा अभूतपूर्व और कुतूहलोत्पादक चमत्कार उत्पन्न कर दिया कि उन्नति और आविष्कारों के इस युग को ही "व्यावसायिक क्रान्ति का युग" कहा जाता है। परन्तु इस सारी उन्नति के साथ इस महायुद्ध के कारण इंग्लैंड के वाणिज्य-व्यापार का जो उल्लेखनीय विकास हुआ उसे नहीं भुलाया जा सकता। एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक का कहना है कि 'युद्ध से व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है और व्यापार वृद्धि से युद्ध को।' यह बात उस युग के इंग्लैंड के सम्बन्ध में तो अक्षरशः सत्य है। इस युद्ध में इंग्लैंड की आयात और निर्यात दोनों ही की उन्नति हुई और जहाजी व्यापार में तो इतनी वृद्धि हुई कि १६वीं शती से इंग्लैण्ड का बड़ा प्रमुख व्यवसाय जहाज़-रानी हो गया। सन् १७६३ और १८१५ ई० के बीच इंग्लैण्ड के समुद्री व्यापार में बड़ी असाधारण वृधि हुई। दुनिया भर के देशों का माल ले जाने और वहाँ से माल लाने का अँगरेजी जहाजों को एकप्रकार का एकाधिकार सा प्राप्त हो गया था। इसका कारण यह था कि उस समय और किसी राष्ट्र के जहाज़ों पर माल लादना ख़तरे से ख़ाली न था। इस प्रकार युद्ध के कारण युरोप के अन्य देशों के व्यवसाय बन्द हो जाने से इंग्लैंड के व्यवसायियों को अपने देश के व्यवसाय और व्यापार की उन्नति करने का बड़ा असाधारण स्वर्ण अवसर मिला। दूसरे देशों की स्पर्द्धा न रह जाने के कारण इंग्लैंड के कृषकों को उनकी पैदावार के भी खूब दाम मिलने लगे और इस प्रकार इस युद्ध के ज़माने में इंग्लैंड को युरोप के अन्य देशों पर नेतृत्व प्राप्त हो गया जो आगे चल कर बहुत बरसों तक उसे सारे युरोप में अग्रगामी बनाये रहा।

## §७—वैज्ञानिक उन्नति

**आवागमन के साधन-रेल**—अब हम सन् १८१५ से लेकर २०वीं शती के आरम्भ तक दूसरे युग का वर्णन करेंगे। पिछले युग में नहरें और पक्की सड़कें बन

जाने से जो परिवर्तन उपस्थित हुए थे वे इस युग में भाप के ऐंजिन के विकास और बिजली की शक्ति के आविष्कार से आवागमन के साधनों में उपस्थित होने वाली क्रान्ति के सामने फीके पड़ जाते हैं। सबसे पहले रेल का आविष्कार हुआ। सन् १८१४ में स्टिफेन्सन ने गतिशील ऐंजिन का आविष्कार किया, परन्तु वह कोयला ढोने के काम आता और केवल तीन मील प्रति घंटा की गति से चल सकता था। रेल बनाने का सबसे पहला प्रस्ताव सन् १८१८ में पार्लियामेन्ट में उपस्थित हुआ चूँकि यह रेल-मार्ग एक ड्यूक महोदय की लोमड़ियों की माँदों के पास से गुजरता था, इसलिए अस्वीकृत कर दिया गया। आखिर सन् १८२१ में स्टाकटन और डार्लिंग्टन रेल बनाने की स्वीकृति मिली और ४ वर्ष बाद यह यातायात के लिये खुल गयी। १८२७ ई० में स्काटलैण्ड में सबसे पहली रेल का ऐंजिन पटरी पर चलने लगा। परन्तु लिवरपूल और मैनचेस्टर रेलमार्ग के बनने तक सर्वसाधारण का ध्यान उन कठिनाइयों की ओर आकृष्ट नहीं हुआ जो रेल मार्ग बनाने के समय उपस्थित होती थीं। फिर जब चार विभिन्न प्रकार के ऐंजिनों की दौड़ में स्टिफेन्सन के 'राकेट' ने ३५ मील प्रति घंटा की चाल से बाज़ी मार ली और जब १८२९ ई० में प्रधान मन्त्री ड्यूक ऑव वेलिंगटन की उपस्थिति में यह नया रेल मार्ग खुल गया तब लोगों को इस रेल की उपयोगिता समझ में आने लगी। इस पहली रेल के चलते समय एक शोक-प्रद दुर्घटना हो गयी। हस्किसन नाम का एक भूतपूर्व मन्त्री भी इस समय वहाँ उपस्थित था। उसका ड्यूक ऑव वेलिंगटन से किसी बात पर झगड़ा हो गया था, इसलिए उससे सुलह करने की नियत से वह उससे बात करने के लिए रेल की पटरियों के उस पार आने लगा। इतने ही में रेल का ऐंजिन उधर से आ गया और उसके नीचे दब जाने से हस्किसन को बड़ी चोट आयी। १५ बरस बाद सन् १८४४ में ग्रेट ब्रिटेन में रेल कम्पिनियों की बाढ़ सी आ गयी। अनेकों कम्पिनियाँ और सैकड़ों मील रेल की सड़कें बन गयीं। यहाँ तक कि चेटहम और डोवर तथा मिडलैंड और हाईलैंड रेल-मार्गों को छोड़ कर १८५० ई० तक अन्य सब बड़ी-बड़ी रेलें बन गयी थीं।

इस सम्बन्ध में दो चार बातें और विचारणीय हैं। सन् १८४२ ई० में महारानी विक्टोरिया ने अपनी प्रथम रेल-यात्रा की। १८४६ ई० में 'चीप ट्रेन ऐक्ट' पास हुआ जिसके अनुसार यह नियम बना दिया गया कि प्रत्येक लाइन पर एक गाड़ी हर रोज आये और जाये और १ पेनी प्रति मील किराया निश्चित हुआ। इस प्रकार रेलवे कम्पनियों को तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए अधिक सुविधा का प्रबन्ध करना पड़ा; परन्तु उन्हें यह भी अनुभव हो गया कि इसी दर्जे के यात्रियों से उन्हें सबसे अधिक आय होती है। १८७१ ई० में मिडलैण्ड रेलवे ने सभी गाड़ियों पर तीसरे दर्जे के यात्रियों को बैठने की आज्ञा निकाल दी। अन्य रेल कम्पिनियों ने भी इसका शीघ्र ही अनुकरण किया। १८४५ ई० में इंग्लैण्ड में २,४४१ मील का रेल-मार्ग था। सन् १९३१ ई० तक १० हजार मील का रेल मार्ग बन गया।

भाप के जहाज़—भाप के जहाज़ों का आविष्कार भी रेलों के आविष्कार से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि स्टीमर जहाज़ रेल के एँजिन से पहले बन चुका था, किन्तु उसके प्रयोग में आने में काफ़ी समय लगा। १८३८ ई० में 'ग्रेट वेस्टर्न' नामक स्टीमर जहाज ने पहली बार एटलान्टिक महासागर को १४ दिन में पार किया। दो वर्ष में 'रायल मेल स्टीम पेकेट', 'पेनेन्सुलर' और 'ओरियन्टल' तथा 'क्यूनार्ड' कम्पनियाँ चलने लगीं। भाप की शक्ति के कारण जहाज़रानी में प्रति वर्ष उन्नति होने लगी। सन् १८४१ में युनाइटेड किंगडम के सारे व्यापारी जहाजों के टन-भार का केवल ३०वाँ भाग ही भाप से चलने वाले जहाजों का था। १८७१ ई० में स्वेज़ नहर के खुलने तक चाय के व्यापार के लिए चीन की यात्रा बादबानों से चलने वाले जहाजों द्वारा ही जल्दी होती थी। आख़िर उन्नति होते-होते १८८३ ई० में भाप से चलने वाले जहाजों का टन-भार साधारण समुद्री जहाज़ों के टन-भार के बराबर हो गया और रानी विक्टोरिया के राज्य के अन्त तक तो यह उससे चार गुना बढ गया।

यातायात की इन सुविधाओं का अनुभव कुछ उदाहरणों के आधार पर भली भाँति किया जा सकता है। १८वीं शती के प्रारम्भ में लंदन से एडिनबरा तक की यात्रा में १० दिन से लेकर तीन हफ्ते तक लग जाते थे। अब रेल द्वारा यह यात्रा ८ घंटे की रह गयी है। १८०४ ई० में ड्यूकऑफ वेलिंगटन को भारतवर्ष से लौटने में छः महीने लगे थे। अब लंदन से बम्बई रेल अथवा जहाज़ द्वारा १५ दिन में पहुँचा जा सकता है। इसी प्रकार आज दिन शाम को कलकत्ते में जो कोई महत्त्वपूर्ण घटना हुई तो उसका समाचार उसी दिन (दोपहर) लण्डन में मालूम हो जाता है। स्वतन्त्रता संग्राम के समय अमेरिका पहुँचने में लगभग ६ सप्ताह लगते थे। अब यह केवल ५ दिन की यात्रा है। संक्षेप में २०वीं शती का आरम्भ होते-होते संसार के सुदूर प्रदेशों में पहुँचने में अब उतना समय लगता है जितना १०० वर्ष पूर्व युरोप के एक देश से दूसरे देश में जाने में लगता था।

डाकखाना—इसी प्रकार डाक के आने-जाने के साधनों में उन्नति होने के कारण आवाजाई के साधनों में बड़ी आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। चार्ल्स प्रथम के शासन-काल में स्थापित पत्र-संवाहन पर सरकार का एकाधिकार था। फिर १८वीं शती के अन्त की ओर पामर ने मेल-कोचों के उपयोग में पत्र-संवाहन में और भी अधिक शीघ्रता उपस्थित कर दी। फिर भी रानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के समय तक डाक लाने ले जाने में बहुत खर्च होता था और विलम्ब होना भी स्वाभाविक था। कोई उस समय लण्डन में विंडसर को पत्र भेजने में ५ पेन्स लगते थे; लण्डन से कैम्ब्रिज को ८ पेन्स और लण्डन से डरहम को १ शिलिंग। शाम के ७ बजे बाद कोई पत्र न भेजा जा सकता था और उसके मिलने में भी बहुत देर हो जाती थी। इन सब सुधारों का श्रेय रोलैंडहिल को है। उसने सिद्ध कर दिया कि पत्र ले जाने के व्यय पर दूरी का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिए उसके प्रयत्नों से १८४० ई० में पेनी-टिकट

पर पत्र ले जाने का प्रयोग आरम्भ हुआ। उस समय के पोस्टमास्टर जनरल ने इसका विरोध किया। उसने सोचा कि अब पोस्ट ऑफ़िस को ४ करोड़ २० लाख के स्थान पर ८४ करोड़ पत्र भेजने पड़ेंगे और इतनी अधिक संख्या के पत्रों को जमा कर रखने से डाकख़ाने की दीवारें फट जाँयगी। परन्तु ४० वर्ष बाद डाक से जाने वाले पत्रों की संख्या इसकी तीन गुनी हो गयी। इसका कुछ अनुमान इससे भी किया जा सकता है कि सन् १६३१ में ख़र्च होने वाले टिकटों का भार ४०० टन से कुछ ही कम था। इसी बात को व्यक्त करने के लिए यह कहना अधिक आकर्षक होगा कि जहाँ रानी विक्टोरिया के राज्यकाल में हर मनुष्य के पास साल में चार पत्र आने-जाने का औसत पड़ता था वहाँ अब १४० का औसत है। फिर अब तो स्टीमर और वायुयान से पत्र भेजने में और भी सुविधा हो गयी है।

तार और टेलीफोन—तार और टेलीफोन से भी यातायात की क्रान्तिपूर्ण उन्नति में सहायता मिली। सन् १८४४ में सब से पहली तार की लाइन पेडिंग्टन से स्लफ तक बनी और स्लफ में तार द्वारा ख़बर पहुँच जाने पर एक कत्ल करने वाले की गिरफ़्तारी से तार ख़बर की सम्भवनीय उपयोगिता का जन साधारण को सबसे पहला आभास मिला। एक बार इंग्लैण्ड में तार की लाइन पड़ जाने पर, विदेशों को तार ख़बर भेजने के लिए समुद्रस्थ तार ( केबिल ) डालने के प्रयत्न शुरू हुए। आख़िर सन् १८५१ में कैले तक केबिल पड़ गया और कई बार असफल रहने के बाद अन्त में १८६६ ई० में ४३ सौ टन का केबिल एटलान्टिक के आरपार भी पड़ गया। अब तो संसार के सभी देश केबिल द्वारा मिले हुए हैं और युरोप से उत्तरी अमेरिका को ही १६ केबिल-लाइनें जाती हैं। १८७६ ई० में टेलीफोन का आविष्कार हुआ और तब से इसका उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

समाचारपत्र—समाचारपत्रों के प्रकाशन से भी आवाजाई के साधनों में बहुत उन्नति हुई है। पहला समाचार जेम्स प्रथम के शासन में प्रकाशित हुआ था; किन्तु लण्डन का सबसे पहला दैनिक रानी एन के शासन में निकला। इसका कलेवर भरने के लिए डीफ़ो और स्विफ्ट जैसे योग्य व्यक्तियों ने पत्रकार बनकर अपने कलम उठाये। १८वीं शती में पत्रों का प्रभाव और व्यवहार बढ़ा। किन्तु सन् १८१५ में पत्रों पर भारी कर लगा हुआ था। एक प्रति पर ४ पेन्स का टिकट लगता था। इसके अतिरिक्त समाचारपत्र छापने के काग़ज़ पर भी टेक्स था। फिर लाभ का १० प्रतिशत इनकमटेक्स में चला जाता था और विज्ञापनों पर विशेष टैक्स अलग देना पड़ता था। हाल ही में छपाई के लिए भाप का प्रयोग शुरू हुआ था। अभी छपाई के साधन धीमे और अधिक कीमती थे इसीलिए एक पत्र का मूल्य ७ पेन्स था और लण्डन में केवल ६ दैनिक पत्र प्रकाशित होते थे।

वे सब कर धीरे-धीरे उठा लिये गये। भाप और बिजली की शक्ति से छपाई का कार्य भी शीघ्रता से होने लगा। मीलों लम्बे काग़ज छप कर अब तो एक घंटे में

हज़ारों लाखों समाचारपत्र तैयार हो जाते हैं। अब तो पेरिस तथा बर्लिन के लिए कई समाचारपत्र एजेन्सियों के निजी तार लग गये हैं, तथा सारे संसार में उनके विशेष सम्वाददाता मौजूद हैं। पत्र-सम्पादकों का लोकमत और सार्वजनिक मामलों पर भारी प्रभाव पड़ा है। टाइम्स का सम्पादक डिलेन इसका एक अच्छा उदाहरण है।

उन्नीसवीं शती के आविष्कार—१८वीं शती की कृषि और रुई के व्यवसाय सम्बन्धी उन्नतियों और परिवर्त्तनों का वर्णन किया जा चुका है। १९वीं शती में भाप और बिजली द्वारा चलने वाली नयी-नयी कलों के आविष्कार तथा पुरानी कलों में अनेकानेक उन्नतियों द्वारा प्रत्येक व्यवसाय और उद्योग-धन्धे में जो आश्चर्यजनक उन्नति हुई उसके विस्तृत वर्णन करने के लिए एक पूरी पुस्तक ही लिख जायगी। इसलिए उन सब आविष्कारों और नयी-नयी खोजों का यहाँ उल्लेख मात्र ही काफ़ी होगा जिन के द्वारा ज्ञान-प्राप्ति की प्रवृत्ति और हमारी अभिरुचि बढ़ी, जिनसे हमारे ज्ञान की अभिवृद्धि और हमारे समय की किफायत हुई। ऐसे आविष्कारों में फ़ोटोग्राफी, स्पेक्ट्रास्कोप ( वर्ण-विश्लेषक यन्त्र ) और टाईप राईटर का नाम सबसे पहले आता है।

इसी प्रकार रानी विक्टोरिया के राज्यारोहण से कुछ वर्ष पहले या कुछ वर्ष बाद गैस और फिर बाद में बिजली के उपयोग और मिट्टी के तेल के लैम्पों में जलाने के नयी तरह के बर्नर तथा दियासलाइयों के आविष्कार से हमारे जीवन की सुविधा सामग्रियों में कितना अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ है यह भी विचारणीय हैं। वैद्यक सम्बन्धी कुतूहलोत्पादक आविष्कार तो और भी अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनकी सहायता से केवल हमारा जीवन अधिक सुखी और आनन्दपूर्ण ही नहीं हो गया है बल्कि हम बहुत से रोगों की कष्टदायी यातनाओं से भी मुक्त हो गये हैं। इन आविष्कारों में सन् १८४८ की मूर्च्छित करने वाली या सम्वेदना नाशक औषधियाँ जिनकी सहायता से बिना कष्ट के शल्यक्रिया हो सकती है और १८६५ ई० में आविष्कृत कीटाणुनाशक औषधियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन औषधियों के आविष्कार से अब चीर-फाड़ के मरीजों की मृत्यु-संख्या ४५ प्रतिशत से घट कर १२ प्रतिशत रह गयी है और अब डाक्टरों को शरीर के किसी भी अवयव की शल्य-चिकित्सा करना बड़ा सहज हो गया है। इसी प्रकार शक्ति की अनित्यता के सिद्धान्त ने वैज्ञानिक विचार धारा में विप्लवकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। सन् १८५८ में डारविन का 'ओरिजिन ऑव स्पिसीज़' प्रकाशित हुई जिसमें यह विचार प्रतिपादित किया गया है कि हर जीवधारी के विकास में प्रकृति अपना आदर्श चुन लेती है। इस नयी विचार-धारा ने मानवी विकास के सब से उत्तम नमूनों के प्रत्येक विभाग में नयी नयी प्रगतियों को जन्म दिया।

## § ३—उन्नीसवीं शती मे सामाजिक उन्नति

वैज्ञानिक उन्नति के परिणाम-जन-संख्या की वृद्धि—वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रभाव से व्यापार और व्यवसायों की उन्नति के बाद इसके कुछ विशिष्ट परिणामों

पर विचार करना आवश्यक हो गया है। जन-संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि का प्रश्न इन सब में प्रमुख है। उद्योग-धन्धों और विभिन्न व्यवसायों की आश्चर्यपूर्ण उन्नति बहुत कुछ इसी व्यावसायिक क्रान्ति के कारण हुई। इसके पहले इस विकास की प्रगति बहुत धीमी थी। १५७० ई० में इंग्लैंड और वेल्स की जन संख्या का अनुमान ४२ लाख ५७ हज़ार था, जिसे दुगुनी होने में प्रायः २०० वर्ष लग गये। किन्तु १८वीं शती का अन्त होते-होते यह जन संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ने लगी, यहाँ तक कि 'यूनाईटेड किंगडम' की जन-संख्या सन् १७८९ ई० में १ करोड़ ४० लाख से बढ़कर १९११ ई० में ४ करोड़ ६० लाख हो गयी। और इस युग में इंग्लैण्ड और वेल्स की जन-संख्या तो बढ़ कर चौगुनी के लगभग जा पहुँची। जन-संख्या की यह वृद्धि यहीं तक सीमित नहीं रही बल्कि अब तो इंग्लैंड के जन-संख्या केन्द्र उन्नीसवीं शती में उत्तर की ओर हटने लगे। पुराने ज़माने में ब्रिस्टल और नारफ़ाक की गणना लंडन के बाद होती थी; परन्तु अब तो लिवरपूल और मैनचेस्टर की जन-संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि होने लगी।

कोयले और लोहे की खदानों की स्थिति तथा रुई के व्यापार के लिए लङ्काशायर की जलवायु अधिक उपयोगी होने के कारण उत्तर का प्रदेश व्यापार और उन्नति का केन्द्र हो चला। साथ ही एक और नयी बात यह देखने में आयी कि जनता का रुझान गाँवों से नगरों में बसने की ओर अधिक होने लगा। इस प्रवृत्ति का प्रधान कारण यह था कि कारख़ानों की वृद्धि और उनके उन्नत साधनों ने अब एक नयी परिस्थिति उत्पन्न करा दी थी और अब प्राचीन गृह-व्यवसाय-प्रणाली की जगह जिसमें हर एक व्यवसायी अपने ही घर पर अपने ही उपादानों से अपना व्यवसाय चलाता था अब फैक्ट्री ( या कारख़ाना ) प्रणाली का उदय हो रहा था जिसमें एक ही व्यवसाय के बहुत बड़े पैमाने पर स्थापित हो जाने के कारण बहुत से व्यवसायियों को एक निश्चित स्थान पर काम करने के लिए जमा होना पड़ता था। १९वीं शती के मध्य तक बहुत से व्यापार गृह-व्यवसाय-प्रणाली के अनुसार चलते थे, अथवा उन्हें छोटे-छोटे मालिक चला रहे थे; परन्तु भाप और बिजली की शक्ति से चलने वाली कला के विकास के साथ उनका विनाश अनिवार्य हो गया। आज इंग्लैंड और वेल्स के ८० प्रतिशत निवासी नगरों में रह रहे हैं; और इन नगरों की अवस्था भी अब पहले से बहुत अच्छी हो गयी है। पुराने ज़माने में म्युनिस्पल कारपोरेशन, जिनके हाथ में इन नगरों का प्रबन्ध था, बड़े निकम्मे और कलुषित थे। उन दिनों नगरों में मकानों की बड़ी कमी थी और वे बड़े भौंडे और बेढंगे बने थे। जब विक्टोरिया इंग्लैंड की रानी हुई उस वर्ष मैनचैस्टर की प्रायः दशमांश और लिवरपूल की सप्तमांश जन संख्या तहख़ानों में रहती थी और बेन्थलग्रीन नामक क़स्बे में जिसकी आबादी काफ़ी घनी थी, एक भी गन्दा नाला न था। धीरे-धीरे नगरों और क़स्बों की स्थिति में उन्नति

हुई और १८३५ ई० के 'म्युनिसिपल कारपोरेशन ऐक्ट' के पास हो जाने से नगरों के शासन-प्रबन्ध-सुधार में बहुत कुछ सहायता मिली। १९वीं शती के मध्य के बाद तथा बीसवीं शती में म्युनिस्पैलिटियों ने नगरों और कस्बों में गैस, पानी और स्नानगृह आदि अत्यावश्यक सुविधाओं का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया और मकान बनवाने की समस्या को भी हल करना शुरू किया।

सम्पत्ति की वृद्धि—इस प्रकार उन्नीसवीं शती में इंग्लैंड की जन संख्या की ही वृद्धि नहीं हुई वरन् उससे भी अधिक उसकी सम्पत्ति की वृद्धि हुई। १९वीं शती के आरम्भ में युनाइटेड किंगडम की समस्त सम्पत्ति २ अरब पौंड आँकी गयी थी। इस शती के अन्त तक वह बढ़ कर १५ अरब पौंड हो गयी। इस युग में बड़े-बड़े कारखानों के मालिकों (व्यवसाय महारथियों) के अतिरिक्त मध्यम श्रेणी तथा निम्न श्रेणी के लोगों की भी खूब समृद्धि बढ़ी। फैक्ट्री-प्रणाली की अभिवृद्धि से मज़-दूरों को नियत कार्य, और अधिक मजदूरी ही न मिलने लगी बल्कि उनकी व्यवस्था उन्नत हो जाने से मजदूरों की संख्या भी पहले से बहुत अधिक बढ़ गयी और उसकी शक्ति का अपव्यय भी कम होने लगा। साथ ही आवाजाई की सुगमता, तरह-तरह के बने हुए माल के बाहुल्य और उसके अभूतपूर्व सस्तेपन के कारण अब जन-साधारण को वह सुविधाएँ नसीब हो गयीं जो पहले बहुत थोड़े भाग्यशाली पुरुषों का सौभाग्य समझी जाती थीं।

नयी व्यवस्था के दोष और उनका निराकरण—इन नयी परिस्थितियों के साथ साथ नये-नये दोषों का भी उदय हुआ और ये दोष यहाँ तक बढ़े कि १८३२ ई० के सुधार बिल के जमाने से इंग्लैंड की पार्लियामेन्ट बराबर इन्हीं के निराकरण में व्यस्त रही है। नयी फैक्ट्री व्यवस्था में दोषों का होना अनिवार्य था। कस्बों और छोटे छोटे नगरों की हालत का वर्णन हम कर चुके हैं। नयी फैक्ट्री-प्रणाली के कारण अब बड़ी कुत्सित परिस्थितियाँ उपस्थित हो गयीं। कारख़ाने बड़े गन्दे और अस्वास्थ्यकर थे। काम के घन्टों की चरमावधि नियत न थी। आस-पास की सफ़ाई और कारखानों के भीतर साफ़ और शुद्ध हवा और काफी रोशनी का कोई प्रबन्ध न था। खतरनाक मशीनों से रक्षा की कोई योजना न थी। इसी प्रकार सरकारी गोला बारूद आदि बनाने के जान-जोखिम के कारखानों में काम करने वालों के लिए भी कोई सुविधा न थी। सबसे भयानक दोष बच्चों से कारखानों में काम लेना था। छोटी अवस्था में ही हजारों बच्चे कारखानों में भेज दिये जाते थे। दान से चलने वाली संस्थाएँ; और ग़रीब और अपाहिज माता-पिता भूक की चिन्ता से हजार बच्चों को कार-ख़ानों की ऐसी शोचनीय दशा में अधिक घन्टों तक काम करने के लिए भेज देते थे। आख़िर १८४० ई० में एक समिति नियुक्त हुई जिसने पता लगाया कि सात और नौ वर्ष की अवस्था के बीच के लड़के-लड़कियाँ रुई के पेचों को छोड़ कर और सब कार-खानों और खदानों में १२ घन्टे काम करते थे। कभी-कभी चार ही वर्ष के लड़के

लड़कियों से काम लेना शुरू कर दिया जाता था और १२ के स्थान पर सोलह या अठारह घन्टे तक लगातार काम लिया जाता था। खानों में इन लोगों को अंधेरे में और ऐसे गीले और गन्दे स्थानों में काम करना पड़ता था जहाँ बत्ती भी नहीं जलती थी। इनको दिन भर किवाड़ खोलने या बन्द करने पड़ते थे या ज़ंजीरों को कमर में बाँध कर घुटनों के बल कोयले से भरी हुई भारी-भारी गाड़ियाँ खींचनी पड़ती थीं।

कामघरों के नियम—धीरे धीरे पार्लियामेन्ट में कामघरों के सुधार सम्बन्धी विधान पेश हुए और पार्लियामेन्ट के बहुत कुछ विरोध करने पर भी एक और विधान स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार क़ानून द्वारा सुधार हुआ। कामघरों के लिए लगभग ४० नियम बने। १८३३ ई० का ऐक्ट प्रथम प्रभावशाली विधान था जो रुई और ऊन आदि के कारख़ानों पर लगाया गया था। इसके अनुसार ६ वर्ष से कम आयु के बालक मिलों में नहीं लिए जा सकते थे, और ६ से १३ वर्ष के बालकों को निश्चित् घन्टों के अतिरिक्त २ घन्टे स्कूल में पढ़ने के लिए जाने को मिलने आवश्यक थे। १३ से १८ वर्ष के युवकों के लिए काम के ६८ घन्टे प्रति सप्ताह नियत थे। फिर १८४२ ई० में एक और कानून पास हुआ जिसके अनुसार दस वर्ष से कम के बालकों और स्त्रियों से खानों के भीतर काम नहीं लिया जा सकता था। १८४७ ई० में लार्ड शाफ़्टसबरी के प्रभाव से १८ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों तथा स्त्रियों के काम के दस घन्टे नियत कर दिये गये। इस विधान के प्रभाव से ही बहुत से व्यवसायों में पुरुषों को भी दस घन्टे रोज काम करने की सुविधा मिल गयी।

१६वीं शती के मध्य से इस सम्बन्ध में राज्य का हस्तक्षेप बढ़ता ही रहा है। अन्य दोषों के निराकरण के लिए भी नियम बनते रहे हैं और उन नियमों का प्रयोजन यह रहा है कि वह कारखाने वालों पर इस बात पर दबाव डाले कि कारखानों के भीतर काफ़ी सफाई रहे और उनमें साफ हवा और रोशनी का अच्छा प्रबन्ध हो। साथ ही खानों के व्यवसाय जैसे जोखिम के कारख़ानों के सम्बन्ध में बहुत विस्तारपूर्ण और कड़े नियम बने, तथा यह देखने के लिए बहुत से निरीक्षक नियुक्त किये गये कि इन नियमों का पालन किया जाता है या नहीं। अब तो कारख़ाने और फैक्ट्रियाँ ही नहीं वरन् होटल तथा दुकानें तक राज्य के निरीक्षण में हैं। १८६७ ई० के आरम्भ से श्रमियों के सम्बन्ध में कई हानिपूरक ऐक्ट पास किये गये हैं जिनके द्वारा मजदूर रखने वाले कारख़ाने वालों को बाध्य किया गया है कि वे श्रमियों और नौकरों को काम करते समय की अचानक आपत्तियों से सुरक्षित करें।

देशव्यापी अज्ञान अन्धकार—स्कॉटलैंड में १६९६ ई० से शिक्षा की व्यवस्था होने के कारण लोग कुछ पढ़े लिखे थे, किन्तु इंग्लैंड और वेल्स में तो लोगों में शिक्षा का अभाव उतना ही शोचनीय था जितना कि उनकी आर्थिक स्थिति और उनके काम करने का कारख़ानों का वातावरण। १८४० ई० के कमीशन को ऐसे-ऐसे लोग मिले जिन्होंने लंडन अथवा अमेरिका का नाम तक न सुना था और ईसा अथवा

ईश्वर का नाम तो गालियों या शपथों के कारण जानते थे। १३-१४ वर्ष के लड़के-लड़कियों में आधे पढ़े और तीन चौथाई लिख नहीं सकते थे। फिर भी शिक्षा के प्रसार के लिए कुछ न कुछ कार्य हो चुका था। १८वीं शती के अन्त तक अधिकांश काउन्टियों और जिले में रविवार को पढ़ाने वाले स्कूल खोले जा चुके थे। उन्नीसवीं शती के आरम्भ में स्कूल बनवाने और चलाने के लिए दो संस्थाएँ खोली गयीं और १८३३ ई० में राज्य ने शिक्षा की ओर ध्यान दिया और १० हजार पौंड वार्षिक इनमें से प्रत्येक संस्था की सहायता देना स्वीकार किया। इसी वर्ष एक फैक्ट्री ऐक्ट के अनुसार रुई के मिलों में काम करने वालों के बच्चों की दो घन्टे की शिक्षा का प्रबन्ध हुआ। धीरे-धीरे जनसाधारण की सहायता से स्कूलों की संख्या बढ़ने लगी।

शिक्षा प्रसार—१८७० ई० में शिक्षा प्रसार के नवयुग का प्रभात हुआ। इस वर्ष प्रारम्भिक शिक्षा बिल पास हुआ। इसके अनुसार १३ (बाद में १४) वर्ष तक के बालकों की शिक्षा अनिवार्य हो गयी। उन ज़िलों में शिक्षा प्रसार के निरीक्षण के लिए स्कूल के बोर्ड बने जहाँ जनता ने कोई स्कूल नहीं खोले थे यहाँ टैक्स देने वाले ऐसा चाहते थे। पहले तो माता पिता को अपने बच्चों की शिक्षा के लिए कुछ न कुछ व्यय करना पड़ता था; किन्तु २० वर्ष बाद १८९१ ई० में निःशुल्क शिक्षा मिलने लगी। १९०२ ई० में एक और महत्त्वपूर्ण शिक्षा ऐक्ट पास हुआ। इसके अनुसार शिक्षा का सामान्य नियन्त्रण काउन्टी कौन्सिल तथा बड़े नगरों में बरा-कौन्सिल के सुपुर्द किया गया और उसकी देख भाल बोर्ड ऑफ एजूकेशन के सुपुर्द हुई। शिक्षा बोर्डों का प्रबन्ध हुआ। इंग्लैंड और वेल्स के सभी प्रदेशों में माध्यमिक स्कूल खोले गये। इन स्कूलों की उन्नति तथा इनके द्वारा जो शिक्षा प्रसार हुआ वह २०वीं शती में शिक्षा सम्बन्धी उन्नति का सब से बड़ा चमत्कार है। फिर इस ऐक्ट में काउन्टी और बरा-कौन्सिलों पर टेक्निकल स्कूलों की सहायता का उत्तरदायित्व रक्खा। और मिकैनिक्स इन्स्टीट्यूट तथा पोलीटेकनिक्स की उन्नति में बहुत कुछ सहयोग दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि अब इंग्लैंड की प्रजा लगभग ८० लाख विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध कर रही है और इसके लिए प्रति वर्ष ९ करोड़ पौंड से अधिक धन टैक्सों के रूप में देती है।

स्कॉटलैंड में शिक्षा-प्रसार—शिक्षा का प्रबन्ध बहुत पहले से होने पर भी स्कॉटलैंड में भी सुधारों की आवश्यकता थी। सन् १८७२ में एक नियम द्वारा पैरिश के स्कूलों का अधिकार निर्वाचित स्कूल बोर्डों को दे दिया और इन स्कूलों का खर्च चुंगी से चलने लगा। १८८२ ई० में माध्यमिक शिक्षा के लिए अच्छा प्रबन्ध हुआ। फिर कुछ वर्ष बाद प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क कर दी गयी। १९१८ ई० के शिक्षा-विधान के अनुसार स्कूल बोर्ड तोड़ दिये गये और सारे देश को बड़े-बड़े शिक्षा-केन्द्रों में विभक्त कर उन्हें ऐसे शिक्षाधिकारियों के अधीन कर दिया गया जो लोकल-गवर्नमेन्ट के निर्वाचकों द्वारा निर्वाचित किये जाते थे। १९२९ ई० में 'लोकल-गवर्नमेन्ट ऐक्ट'

ने एक और परिवर्तन उपस्थित किया। अब शिक्षाधिकार एडिनबरा, ग्लास्गो, डंडी और एबरडीन की काउन्टी कौन्सिलों के हाथ में है। प्रत्येक अधिकारी वर्ग की एक शिक्षा-कमिटी और पैरेश या कई पैरेशों में एक सहायक स्कूल-प्रबन्धक कमिटी हैं।

बेकारी—व्यापार और व्यवसायों की नयी व्यवस्था ने बहुत से लोगों के लिए जहाँ धन्धा स्थायी कर दिया है वहाँ बहुतों को उससे वंचित भी कर दिया तथा बहुतों की जीविका को सन्दिग्ध भी बना दिया है। गोदियों में काम करने वाले श्रमियों की भाँति बहुत से लोग अस्थायी कामों में लगे हुए हैं, जहाँ उनकी जीवन वृत्ति बहुत अनिश्चित् है। फिर बहुत से लोग मौसमी व्यापारों में लगे हुए हैं जिनकी जीविका मकान बनाने वाले राज-मज़दूरों की भाँति मौसम पर ही निर्भर रहती है। बड़े नगरों में, काम सीखने के स्थान पर लड़के स्कूल छोड़ते ही तात्कालिक मजदूरी मिलने के कारण ऐसे व्यवसायों में गिर पड़ते हैं, जिनमें भविष्य में उन्नति की कोई सम्भावना नहीं होती फिर एक व्यापार विशेष में कुशलता प्राप्त कर लेने वाले लोग एक नयी मशीन आविष्कृत हो जाने के कारण कुछ काम के नहीं रहते। ऐसी परिस्थिति में अगर १८ वीं शती में श्रमियों ने अपना भविष्य अन्धकारमय देखकर हार्ग्रीव्स के घर हमला बोल कर उसकी मशीनें तोड़ डालीं तथा जौन के को इतना तंग किया कि उसे पेरिस भाग जाना पड़ा तो यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कही जा सकती। कहा जाता है कि व्यापार की गति चक्र की भाँति है। समृद्धि के वर्षों के बाद अवनति के दिन आते हैं और जैसे बढ़ती के दिनों में बहुत से श्रमियों को काम मिल जाता है वैसे ही घाटे के समय बहुत से मज़दूर बेकाम हो जाते हैं। नेपोलियन से युद्ध के पूर्व और पश्चात् का तथा रानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के बाद निरन्तर पाँच वर्ष तक १८वीं शती में अवनति का सबसे बुरा समय था। १८६१ ई० में अमेरिका के गृह युद्ध के कारण तो रुई का अकाल पड़ गया जिसका लंकाशायर के व्यवसाय पर भयंकर प्रभाव पड़ा। हाल के युग की बेकारी का प्रसंग आगे आयेगा।

एलिज़ेबेथ के समय का दारिद्र-विधान—इन सब बातों के परिणाम स्वरूप गरीबी की नयी तथा उलझी हुई समस्याएँ उपस्थित हुईं जिनको इंग्लैंड की सरकार अभी तक नहीं सुलझा पायी है। इंग्लैंड के दारिद्र-विधान (पुअर लॉ) पास हुआ जिसके अनुसार प्रत्येक पैरेश को अपने-अपने ग़रीबों पर निगाह रखनी पड़ती थी और इस काम के लिये प्रत्येक पैरेश में निरीक्षक नियुक्त किये गये। गरीबों को सहायता, बालकों की व्यवसाय-शिक्षा और समर्थों की कार्य नियुक्ति तथा धूर्तों और हृष्ट पुष्ट भिखारियों को दंड देना तथा शिक्षणालय भेजना इनका प्रमुख कार्य था। किन्तु १८ वीं शती में कुछ भयंकर भूलें हो गयीं। पहले तो १७८२ ई० में एक नियम पास हुआ कि ऐसे समर्थों के लिये जो सहायता के लिए प्रार्थी हों घर के पास ही काम मिलना चाहिए इसके परिणाम स्वरूप बहुत सा अनावश्यक कार्य बढ़ाना पड़ा। फिर १७९५ ई० में महायुद्ध के समय बर्कशायर के मजिस्ट्रेटों ने यह आज्ञा दी कि कारखाने के बाहर

निवेदकों को अनाज के भाव और उसके बच्चों की संख्या के हिसाब से सहायता मिलनी चाहिये। स्वयम् निवेदकों ने इसे अपना निरादर नहीं समझा और विधान के विधायकों ने निवेदक की गरीबी की जाँच नहीं की और न उससे किसी प्रकार का प्रमाण माँगा। नतीजा यह हुआ कि यह नीति हानिकारक साबित हुई। लोग स्वतन्त्र श्रम-जीवी मजदूर के स्थान में गरीब कहलाना पसन्द करते। कुछ स्थानों में तो मजदूरी तक कम कर दी गयी क्योंकि मजदूर बाहरी सहायता से यह कमी पूरी कर लेता था। ग़रीबों और बेकारों की सहायता का यह विधान बड़ा मँहगा पड़ा और ऐसी सहायता का ख़र्च दिनदूना रात चौगुना बढ़ने लगा। बहुत जगह जमीन परती छोड़ी जाने लगी क्योंकि लगान बहुत अधिक था और उसे देने के बाद कृषक को कुछ बचत नहीं होती थी।

**१८३४ ई० का दारिद्र-विधान**—१८३४ ई० के कमीशन ने एक नयी व्यवस्था सामने रक्खी जो स्वीकृत कर ली गयी। १५ हजार पैरिशों के ६४३ समूह बनाये गये जो यूनियन या संघ कहलाये। लोकल गवर्नमेन्ट बोर्ड के अधीन प्रत्येक संघ "पुअर लॉ कमीशन" की संरक्षता में 'बोर्ड ऑव गार्जियन्स' द्वारा नियन्त्रित था। ये अभिभावक संघ के प्रदेशों में से सार्वजनिक निर्वाचन द्वारा नियुक्त होते थे। इसके अधिकारी सहायतार्थ निवेदकों की परिस्थिति की जाँच करते थे। कारखाने में श्रमजीवियों के अलावा रोगी, वृद्ध, विधवा अथवा बालकों को सहायता दी जा सकती थी। समर्थ व्यक्तियों की कामघरों के नियमानुसार जाँच होती थी और उनको कामघरों में भर्ती होने पर सहायता दी जा सकती थी।

**१९२९ ई० का पुअर लॉ ऐक्ट**—इसमें सन्देह नहीं कि इस व्यवस्था से बहुत से दोष दूर हो गये; किन्तु १९२९ ई० के एक कमीशन ने यह निर्णय किया कि यह व्यवस्था फिर भी पूर्णतः सन्तोषजनक नहीं। साधारण व्यक्तियों के दान और राज्य की सहायता को मिलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था लोकल गवर्नमेन्ट बोर्ड को जिसका नाम अब 'बोर्ड ऑव हैल्थ' हो गया है निरीक्षण का अधिकार न था। बोर्ड ऑव गार्जियन्स कभी अयोग्य ठहरता तो कभी विकृत। उसके निर्वाचन में भी लोकाभिरुचि न थी। कामघरों की जाँच की भी प्रायः उपेक्षा की जाती थी, कामघरों में बाल वृद्ध, असमर्थ रोगी और लुंज सभी प्रकार के लोग भरे थे। आख़िर १९२९ ई० में एक 'लोकल गवर्नमेन्ट ऐक्ट' पास हो गया था। इसके अनुसार 'पुअर लॉ गार्जियनों की संस्था तोड़ कर "लोक-सहायक-सभा" के हाथ में पुअर लॉ की व्यवस्था सौंप दी गयी। इस सभा का निर्वाचन काउन्टी कौन्सिलों तथा बरा-कौन्सिलों द्वारा होता था तथा इसके प्रति उसे उत्तरदायी रहना पड़ता था।

**स्काटलैण्ड का पुअर लॉ**—स्कॉटलैण्ड के पुअर लॉ का इतिहास कुछ भिन्न है। १५७९ ई० के ऐक्ट के अनुसार प्रत्येक पैरिश अपने गरीबों की देखभाल करता था; किन्तु समर्थों को कोई सहायता नहीं दी जाती थी और गरीबखाने भी न थे।

इनके चलाने के लिए सहायक कोष अनिवार्य कर से नहीं वरन् संकलित दान से जाता था। इसलिए स्काटलैंड में स्थानीय अधिकारियों की कृपणता ही इन दोषों का मुख्य कारण थी। १८४५ ई० में एक नियम-पास हुआ जिसने गरीबखानों की स्थापना का समर्थन किया और उनके व्यय के लिए अनिवार्य कर नियत किया। सन् १९०९ ई० में 'पुअर लॉ कमीशन' ने स्काटलैंड की व्यवस्था में गम्भीर दोष देखे। कोई-कोई पैरिश तो बहुत बड़े थे और कोई बहुत छोटे। फिर समर्थों को कामघरों से बाहरी सहायता के निषेध के कारण बहुत कठिनाइयाँ होती थीं। आखिर १९२९ ई० के 'लोकल गवर्नमेन्ट ऐक्ट' पुअर लॉ व्यवस्था में बड़े परिवर्तन किये। पैरिस लोकल कौन्सिलें टूट गयीं और काउन्टी कौन्सिलें तथा बरा कौन्सिलें 'पुअर लॉ' विधान के अन्तर्गत प्रबन्ध करने की अधिकारिणी हो गयीं। इंग्लैण्ड की भाँति प्रत्येक काउन्टी और बरा-कौन्सिल की एक-एक दीन सभा भी बनी।

**राज्य के हस्तक्षेप का विकास**—ऊपर के संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि राज्य ने नागरिकों के जीवन-नियन्त्रण का बहुत कुछ प्रयत्न किया है। बालकों की शिक्षा, दीन दुखियों की सहायता तथा श्रमजीवियों और मजदूरों की रक्षा का भार इसने अपने हाथ में लिया। भोजन-व्यवस्था और लोक स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम बनाये गये। स्वामियों और सेवकों के विरोध में राज्य मध्यस्थ रहा। फिर भी यह न समझना चाहिये कि ये सब उन्नतियाँ और सुविधाएँ राज्य की ही दी हुई हैं। कारखानेदार और स्वामी अधिक सहृदय होने लगे। जनसाधारण के दान से जनता के कष्ट दूर करने में बहुत सहायता मिली और शिक्षा प्रसार में तो बहुत कुछ सहायता संकलित दान से ही मिलती रही है।

**व्यवसाय संघ या ट्रेड यूनियन**—स्वयंभू मजदूरों ने भी सहकारी तथा व्यवसाय संघों द्वारा अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया है। इंग्लैण्ड में तो १४वीं शती में भी मजदूर सभाएँ बन गयी थीं किन्तु वे वर्तमान व्यवसाय संघों की भाँति नहीं थीं, जिनका निरन्तर प्रयोजन है मजदूरों की जीवन-दशा सुधारना तथा उनकी स्थिति को हर प्रकार उन्नत करना। यद्यपि इस प्रकार का सबसे पहला टोपी वालों का संघ चार्ल्स द्वितीय के समय का बतलाया जाता है, परन्तु व्यवसाय संघ मुख्यतः पिछले २०० वर्षों की सृष्टि हैं। सबसे पहले टैक्सटाइल व्यापार में इनका विकास हुआ। किन्तु १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध में इंजीनियरों की एक (एमलगमेटेड सोसाइटी) या संयुक्त सभा बन गयी जिसने १८५१ ई० में बहुत सी इंजीनियर सभाओं को संगठित किया। इसका उद्देश्य था अपने बीमार और बेकार सदस्यों को पेन्शन और वेतन देना। उन्नीसवीं शती के अन्त में राजनीति में भाग लेने लगीं और मजदूर दल या 'लेबर पार्टी' की नींव पड़ी। अब ऐसे ११०० व्यवसाय संघ हैं। जिनकी सदस्य-संख्या ५ लाख से ऊपर है।

इन ट्रेड यूनियों या व्यवसाय संघों को कानून के लिहाज से अनेकों सङ्कट-

पूर्ण परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ा है। सन् १८०० से एक 'कम्बीनेशन ऐक्ट' पास हुआ, जिसके अनुसार हड़ताल की योजना करने वाला तथा व्यापार संघ में सम्मिलित होने वाला श्रमजीवी दन्डनीय ठहराया गया। परन्तु इस विधान को व्यवहार में लाने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और आख़िर सन् १८२५ में यह विधान रद्द कर दिया गया। किन्तु 'कॉमन लॉ' के अनुसार हड़ताल को अब भी षड्यन्त्र ( अर्थात् ग़ैर कानूनी काम करने की ) अथवा अवैधानिक साधनों द्वारा किये हुए वैधानिक कार्य करने की संस्था ठहराया जाता है। फिर व्यवसाय संघ क़ानून की रक्षा का भी अधिकारी नहीं हो सकता था। सन् १८७५ का 'कम्बिनेशन ऐक्ट' १८०० ई० के ऐक्ट के ठीक विपरीत था। इससे हड़ताल तथा शान्तिपूर्ण पिकेटिंग करने को न्यायसंगत ठहराया और सन १९०६ के ट्रेड डिस्प्यूट्स ( व्यवसाय-विपत्ति ) ऐक्ट द्वारा व्यवसाय संघों को और भी सुविधाएँ मिल गयीं और संघ ( ट्रेड यूनियन ) को विशिष्ट स्थिति प्राप्त हो गयी। अब संघ-संस्था के विरुद्ध न्यायालय में कोई अभियोग नहीं लगाया जा सकता और किसी हड़ताल के ज़माने में यदि संघ के पदाधिकारियों से कोई ग़ैर कानूनी काम करने पड़े तो उन पर उसका कोई आर्थिक उत्तरदायित्व नहीं होगा। सन् १९२७ के नये व्यवसाय विपत्ति ( ट्रेड डिस्प्यूट्स ) और व्यवसाय संघ ( ट्रेड यूनियन ) ऐक्टों ने और बहुत से सुधारों के अतिरिक्त राजनीतिक और व्यवसायिक क्षेत्रों में हड़ताल को क़ानूनी करार दे दिया है।

---

# अध्याय २०

## राजनीति और दलबन्दी

### ( १८१५-३८ ई० )

**व्यवसायिक क्रान्ति का राजनीति पर प्रभाव**—क्रान्ति का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र पर राष्ट्रीय जीवन के अन्य पहलुओं से कुछ कम न हुआ। बड़े बड़े नगरों के विकास तथा मध्यम वर्ग की संख्या और महत्त्व की वृद्धि ने ऐसी निर्वाचन-पद्धति का जारी रहना असम्भव कर दिया जिसमें जनता के अधिकांश भाग को वोट का अधिकार न रहे और जिसमें हाउस ऑव लार्ड्स के सदस्य अपने पाकेट बराओं पर प्रभाव द्वारा हाउस ऑव कामन्स के अधिकारी सदस्यों को नियुक्त करते रहे। ऐसी दशा में पार्लियामेन्ट में सुधार होना अनिवार्य था और यह कुछ कम आश्चर्यजनक बात नहीं है कि यह सुधार १७३२ ई० तक रुका रहा। फ्रान्स की राज्यक्रान्ति का अँगरेज जनता के विचार पर यह प्रभाव पड़ा कि सुधार की भावनाएँ क्रान्ति की द्योतक समझी जाने लगीं जिनके परिणाम स्वरूप नेपोलियन के समय का सा अनियत दैनिक शासन प्रस्तुत हो जाता है। इसके अतिरिक्त १८१५ ई० तक ग्रेट ब्रिटेन की

सारी शक्तियाँ महायुद्ध में व्यस्त रहीं और युद्ध समाप्त होने के बाद सबसे पहले देश का ध्यान राजनीतिक सुधारों के बजाय अन्य विषयों की ओर गया। अन्त में जब सुधार के लिए आन्दोलन शुरू हुआ तो वह एकदम सफल न हो सका।

**जार्ज चतुर्थ**—वाटरलू के युद्ध के बाद सत्रह बरस तक अँगरेज़ी शासन व्यवस्था यथावत् बनी रही। जार्ज तृतीय का ज्येष्ठ पुत्र सन् १८११ ई० के बाद से राज-प्रतिनिधि और फिर १८२० ई० के बाद से राजा जार्ज चतुर्थ हो गया, किन्तु उसका व्यक्तिगत जीवन इतना भ्रष्ट था कि समस्त राष्ट्र उसको घृणा की दृष्टि से देखता था। इसके फलस्वरूप राजसत्ता की शक्ति और उसका प्रभाव अत्यन्त क्षीण हो गया। शासन व्यवस्था थोड़े से ज़मीन्दार सत्ताधारियों के अधिकार में रही और १८२७ ई० तक पहले टोरी दल का लार्ड लिवरपूल और बाद में ड्यूक ऑव वेलिंगटन शक्तिशाली हुए। आखिर किसी प्रकार १८३० ई० में ह्विग मन्त्रिमंडल, जिसने पार्लियामेन्ट में सुधार करने की प्रतिज्ञा थी, स्थापित हुआ।

## ६—संकट का ज़माना

## ( १८१५-२२ ई० )

**आपत्ति के कारण ( १८१५-२२ ई० )**—इस सत्रह वर्ष के युग के पहले सात बरस तो जनता के लिए नेपोलियन के ज़माने के युद्धों से भी अधिक अशान्ति-पूर्ण थे। जिन लोगों का विचार था कि शान्ति का समय ही उत्कर्ष का समय होता है वे बहुत निराश हुए। समुद्री व्यापार पर अब ब्रिटिश जहाज वालों का एकाधिकार होने के बजाय उनके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी उत्पन्न हो गये थे। ब्रिटिश कारख़ाने वालों के यहाँ के बने हुए माल के लिए विदेश और स्वदेश दोनों जगह की माँग में बहुत कमी हो गयी क्योंकि अब लड़ाई के गोला-बारूद आदि सामान की आवश्यकता न रही थी और विदेशी राष्ट्र भी अपने कारबार में उन्नति करने लगे थे। फिर अँगरेज़ी किसानों ने देखा कि अनाज का मूल्य क़रीब क़रीब आधा रह गया। इसके अतिरिक्त और भारी-भारी करों तथा बुरी फ़सलों ने जले पर नमक छिड़क दिया। फलानुसार, ( विशेषकर १८१६ ईसवीं में ) प्रत्येक व्यापार में अवनति हुई। बहुत स्थानों की मिलें बन्द हो गयीं। लोहे की भट्टियों का काम रुक गया और वे ख़ाली छोड़ दी गयीं। खेती-बारी का धन्धा चौपट हो गया। कारीगर, मज़दूर, सिपाही और नाविक सब बेकार हो गये। अब हाथ का कार्य मशीनों द्वारा होने के कारण बेकारी और भी अधिक बढ़ गयी। अनाज का भाव सस्ता हो जाने के कारण गरीबों को कुछ लाभ न हुआ क्योंकि इसके साथ-साथ रोटियों के दाम में कोई कमी नहीं हुई थी।

**ग्रेट ब्रिटेन में उपद्रव**—इस व्यापक अशान्ति के कारण ख़ूब उपद्रव हुए। एक उपद्रवकर्त्ता के नाम पर तो मिडलैंड के उपद्रव 'लडायट' कहलाये। इन काउन्टियों में दंगे फ़िसाद ने मशीनों के विनाश का रूप धारण कर लिया.

लीस्टरशायर के किसी गाँव में नेड लड नाम का एक मूर्ख था। एक दिन जब लोगों ने तंग करने के लिए उसका पीछा किया तो वह एक घर में घुस पड़ा जहाँ उसने कई मशीनें तोड़ डालीं। इस प्रकार जब उपद्रवों के समय मशीनें तोड़ी जाने लगीं तो तोड़ने वाला लड कहलाया। लंडन के एक जनसमूह ने, जिसका नेता सार्वजनिक निर्वाचन-अधिकार तथा वार्षिक निर्वाचित पार्लियामेन्ट चाहता था, स्पॉ फील्ड से टावर पर अधिकार करने की चेष्टा की और लंडन नगर तक जा पहुँचा और जब तक वह पकड़ाया जाय उसने बहुत सा नुकसान कर दिया। कहा जाता है कि डरबी में अठारह सवारों ने पाँच सौ उपद्रवियों को भगा दिया। इस छोटे से उपद्रव को भी विप्लव बना दिया गया। मैनचेस्टर में १८१६ ई० में सुधार कराने के निमित्त सरकार पर दबाव डालने के लिए ५ हजार आदमियों की एक सभा हुई। न्यायाध्यक्षों ने ऐसी सभा को गैर कानूनी करार दिया और उसके नेताओं को गिरफ़्तार करने का प्रयत्न किया। आखिर वालन्टियर सवारों को इन्हें गिरफ्तार करने की आज्ञा दे दी गयी। इस आज्ञा का पालन करने के लिए सिपाहियों को जनता पर गोली चलानी पड़ी। १२ आदमी मारे गये और सैकड़ों घायल हुए। यह मैनचेस्टर का हत्याकांड या पीटरलू की लड़ाई कहलाती है। एक वर्ष बाद १८२० ई० में केटो स्ट्रीट नामक षडयन्त्र रचा गया। केटो स्ट्रीट में लन्डन के कुछ आदमियों की यह गुप्त योजना थी कि ग्रूवनर स्ट्रीट के भोज में सम्मिलित होने वाले सब मन्त्रि-मंडल के सदस्यों को मार डाला जाय; परन्तु इसके पहले कि इस योजना को कार्य रूप में परिणत किया जाय इसका भेद खुल गया। स्कॉटलैंड में भी इस समय बड़ा असन्तोष फैला हुआ था। आखिर १८२० ई० में ग्लास्गो में देशव्यापी हड़ताल हो गयी। इसी समय स्टर्लिंग-शायर में बोनीम्यूर पर सवार वालन्टियरों को एक सशस्त्र विद्रोहियों के दल से युद्ध करना पड़ा।

**कार्न लॉ और दमन नीति**—इस कठिन परिस्थिति में टोरी गवर्नमेन्ट ने दो उपचारों का आश्रय लिया। खेती को प्रोत्साहित करने के लिए एक विधान बनाया गया। जिसके अनुसार जब तक ८० शिलिंग प्रति क्वार्टर अनाज का दाम न हो उसका आयात रोक दिया जाता। इस विधान से रोटी की कीमत तथा उसके साथ ग़रीबों की मुसीबत भी बढ़ गयी। फिर आन्दोलन और उपद्रव रोकने के लिए दमन नीति का अवलम्बन किया गया। दल नेताओं पर मुकदमा चलाया जाता और यदि वे मुजरिम सिद्ध होते तो उन्हें फाँसी दे दी जाती। हेबिअस कोरपस ऐक्ट स्थगित कर दिया गया और इस प्रकार बिना जाँच किये ही लोग जेल में रक्खे जाने लगे। अन्त में १८१६ ई० में पार्लियामेन्ट ने पट-विधान या प्रतिबन्धक ऐक्ट पास किये। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वह है जिसके अनुसार पत्रों में विज्ञापनों पर कर के रूप में भारी टिकट लगाना पड़ता था। लार्ड मेयर अथवा काउन्टी के लार्ड लैफ्टिनेन्ट की अनुमति बिना लोक सभाएँ ग़ैर कानूनी ठहरायी गयीं।

यह दमन नीति सफल होते हुए भी लोकप्रिय न हो सकी। इसके अतिरिक्त जार्ज चतुर्थ के राज्यारोहण के समय (१८२० ई० में) शासन की अपकीर्ति इस लिए और भी बढ़ गयी कि उसने राजा की इच्छा से रानी कैरोलीन के विरुद्ध इस लिए तलाक बिल पास करने का प्रयत्न किया कि राजा जार्ज कुछ समय तक उससे अलग रहा था। लोकमत रानी के पक्ष में था। जब हाउस ऑव लार्ड्स के राजपक्ष का बहुमत घटते-घटते ६ ही रह गया तो बिल का परित्याग कर दिया गया। यद्यपि १८११ ई० में रानी की मृत्यु हो जाने से अधिक उलझनें उत्पन्न न हो पायीं फिर भी गवर्नमेन्ट की बड़ी बदनामी हुई।

## §२—सुधारों का आरम्भ
## (१८२२-२७ ई०)

**लार्ड लिवरपूल के मन्त्रिमंडल से परिवर्तन और लार्ड केनिंग—** १८२२ ई० में एक नया मन्त्रिमंडल स्थापित हुआ, यद्यपि उसका नेता लार्ड लिवरपूल ही रहा। कट्टर-टोरी मन्त्रियों में एडिंगटन राजकार्य से विरक्त हो गया और राष्ट्र सचिव तथा हाउस ऑव कामन्स के नेता लार्ड कासलरी ने आत्म-हत्या कर ली। इस प्रकार केबिनेट का प्रधान केनिंग हुआ। उसने यौवन काल ही से अपनी असामान्य प्रतिभा का परिचय दिया था। ईटन में उसने एक पत्र का इतनी योग्यता से सम्पादन किया था कि लंडन के एक प्रकाशक ने उसके कापीरॉइट के लिए ५० पाउंड दिये। जब वह आक्सफर्ड में पढ़ता था तभी उसका 'फ़ॉक्स' से परिचय हो गया और बड़े बड़े ह्विग घरानों में बुलाया जाता था। फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति ने उसे टोरी बना दिया और १७९६ ई० में वह पिट के मन्त्रिमंडल में वैदेशिक सहायक मन्त्री हो गया। इसी समय उसने 'एन्टी जैकोबिन' नामक साप्ताहिक में कई उत्कृष्ट लेख लिखकर राज्य-क्रान्ति के हिमायतियों की खूब पोल खोली। १८०१ ई० में पिट के पद त्याग के समय केनिंग ने भी केबिनेट छोड़ दी, किन्तु १८०४ से १८०६ ई० तक वह पिट के दूसरे मन्त्रिमंडल में फिर नियुक्त हो गया। १८०७ ई० के पोर्टलैंड मन्त्रिमडल में वह वैदेशिक मन्त्री हो गया। स्पेन और पोर्तुगल में होकर वह फ्रान्स पर आक्रमण करने की नीति का समर्थक था। मतभेद के कारण १८०६ ई० में केनिंग और कासलरी में द्वन्द्वयुद्ध हुआ, किन्तु किसी को अधिक चोट न आयी। वाल्शेरेम पर चढ़ाई की जाय या न की जाय इस बात पर दोनों में झगड़ा हुआ था। दोनों मन्त्रियों के पहली बार के फायर ख़ाली गये, परन्तु दूसरे फ़ायर में कैनिंग की जाँघ में गोली लगी और कासिलरे के कोट के बटन पर। थोड़े दिन बाद पर्सिवल के प्रधान मन्त्री होने पर कैनिंग ने पद त्याग कर दिया। युद्ध समाप्त होने पर वह चार वर्ष लिवरपूल मन्त्रिमंडल में काम कर चुका था। राजनीति में वह नरम टोरी विचारों का था। १८२२ ई० में हाउस ऑव कामन्स का नेता तथा वैदेशिक मन्त्री हो गया। दो अन्य मर्यादित (माडरेट) टोरियों ने प्रमुख पद ग्रहण

किये। हस्किसन, बोर्ड ऑव ट्रेड का प्रेसिडेन्ट ( प्रधान ) हो गया और एडिंगटन के स्थान पर पील गृह सचिव बना।

सन् १८२२-२७ ई० के सुधार—मन्त्रिमंडल के पुनर्संगठन के परिणाम स्वरूप कानून विधान स्तब्धता का युग समाप्त हो गया। अगले पाँच बरसों में बहुत से उपयोगी सुधार हुए। केनिंग ने वैदेशिक मामलों में उदार नीति की प्रतिष्ठा की। १८१५ ई० के अनाज विधान ( कार्न लाज ) को कुछ नरम करने के प्रस्ताव किये गये, परन्तु इनपर बहुत अर्से बाद अमल हो सका। हस्किसन १८०० ई० के कम्बिनेशन ऐक्ट' को रद्द करने में सफल हुआ। इसी प्रकार 'नेविगेशन ला' भी, मनसूख कर दिये गये क्योंकि इनसे अब इंग्लैंड की जहाजरानी का संरक्षण न हो पाया था। हस्किसन अपने समय का स्वतन्त्र व्यापार-नीति का बड़ा समर्थक समझा जाता था, किन्तु वास्तव में वह बड़ा मर्यादित ( माडरेट ) संरक्षकतावादी था। उसने कच्चे माल पर से बहुत से कर हटा दिये। विदेश की बनी हुई चीजों पर बहुत से कर कम कर दिये परन्तु साथ-साथ अँगरेज़ी माल की रक्षा का ध्यान रक्खा और बाहर से आनेवाले माल पर १५ से ३० प्रतिशत कर लगाया। साथ-साथ उसने उपनिवेश को समृद्ध-शाली बनाने के लिए इंग्लैंड से उपनिवेशों में जाने वाले लोगों को प्रोत्साहन दिया, उपनिवेशों से आनेवाले अन्न पर अनाज-विधानों को कुछ ढीला कर दिया तथा विदेशों को इसके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करने की आज्ञा दे दी।

इसी बीच में पील ने दंड-विधान की नयी आवृत्ति की और उसके नियमों की कठोरता में कमी कर दी। १९वीं शती के आरम्भ में किसी दुकानदार की पाँच शिलिंग की चीज़ चुरा लेने या जेब काटने या भेड़ चुराने, या खरहा चुराने पर फाँसी दी जा सकती थी। फाँसी के दंड के अपराधों की संख्या कम करने का श्रेय पील को है। अब ऐसे १६० अपराधों के स्थान पर केवल हत्या, षडयन्त्र और देशद्रोही आदि अपराधों पर ही फाँसी की सजा दी जा सकती है। लोगों में क्रूरता और पाशविकता की जगह दया भाव बढ़ने लगा। बेजबान पशुओं पर अत्याचार और शिकारगाहों की रक्षा के लिए स्प्रिंगदार बन्दूकों तथा चोरी से जाने वाले लोगों को फँसाने के लिए गुप्त तहख़ानों का प्रयोग बन्द करने के प्रयत्न किये गये। ( जमीन्दार शिकार सम्बन्धी रखने के लिए इनका बहुत प्रयोग करते थे। ) प्राचीन समय के शिकार सम्बन्धी कानून बड़े कड़े थे। १८१६ ई० में भी एक ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार किसी ऐसे मनुष्य को जिसके पास से रात के समय किसी खुली जगह पर ख़रगोश या अन्य जानवर फँसाकर पकड़ने का जाल था और कोई चीज़ बरामद हो, सात बरस के लिए काले पानी का दंड नियत किया गया था।

## §३ कैथलिक स्वतन्त्रता और सुधार बिल
### ( सन् १८२७–३२ ई० )

ड्यूक ऑव वेलिंगटन—लार्ड लिवरपूल के पदत्याग करने के ६ महीने

बाद केनिंग कुछ समय के लिए प्रधान मन्त्री बन कर परलोक सिधारा। अब राजनीतिक सुधार करने का समय आ गया था। अगले पाँच वर्ष रोमन कैथलिकों को पार्लियामेन्ट में बैठने और सरकारी पद ग्रहण करने का अधिकार दिलाने तथा हाउस ऑव कामन्स में विविध सुधार करने में लग गये। ड्यूक ऑव वेलिंगटन के मन्त्रित्व-काल में कैथलिकों को यह स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। १८२३ ई० में ड्यूक प्रधान मन्त्री हो गया, और पील उसका प्रमुख सहायक रहा। कैथलिक स्वातन्त्र्य के प्रश्न पर लार्ड लिवरपूल की केबिनेट में बड़ा मतभेद था। केनिंग उसके पक्ष में था और पील उस के विरुद्ध। किन्तु आयरलैंड में ओ'कानेल की सफलता से ड्यूक और पील दोनों को यह अनुभव होने लगा कि अब सुधार को अधिक रोकना सम्भव नहीं। ५ घंटे के बाद-विवाद और मन्त्रियों की अनुनय विनय के बाद जार्ज चतुर्थ ने इस बिल को पेश करने की आज्ञा दे दी और वह स्वीकृत हो गया। अब कैथलिकों को भी वह सब अधिकार मिल गये जो प्रोटेस्टेन्टों को प्राप्त थे। केवल एक अपवाद था कि वे लार्ड हाई चान्सलर, आयरलैंड के लार्ड लेफ़्टिनेन्ट तथा राज्याधिकारी नहीं हो सकते थे। हाउस ऑव कामन्स का प्रतिनिधित्व पाने से यहूदी १८५८ तक वंचित रहे।

कैथलिकों को स्वतन्त्रता दिलाने में वेलिंगटन के हाथ से उग्र टोरियों की सहायता जाती रही और ह्विगों का भी सहयोग न मिल सका। साथ ही वह सैनिक प्रवृत्ति और बड़ी दबंग तबियत का आदमी था और उसका व्यवहार और तौर तरीका भी बड़ा स्वच्छन्द था। प्रधान मन्त्री के पद के लिए न तो उसका स्वभाव ही उपयुक्त था और न उसका व्यवहार। इसलिए उसे पदत्याग करना पड़ा।

**विलियम चतुर्थ और लार्ड ग्रे का मन्त्रिमंडल (१८३० ई०)**—जार्ज चतुर्थ की मृत्यु के बाद शीघ्र ही वेलिंगटन मन्त्रिमंडल का पतन हो गया। विलियम चतुर्थ राज्य का अधिकारी हुआ। वह उदार तथा लोकप्रिय शासक था। वेलिंगटन के मन्त्रि मंडल के स्थान पर ह्विग मन्त्रि-मंडल स्थापित हुआ। १७८३ ई० के अभागे संयुक्त मन्त्रि-मंडल के बाद यह पहला ह्विग मन्त्रि-मंडल था जिसका नेता लार्ड ग्रे था। लार्ड ग्रे उच्च विचार का सम्भ्रान्त ह्विग था। पार्लियामेन्ट के सुधारों में उसकी हार्दिक रुचि थी। वह भाषण भी अच्छा करता था, परन्तु उसके शुष्क स्वभाव के कारण उसके भाषणों से सर्वसाधारण में कोई उत्साह न जागरित होता था। उसके प्रमुख लेफ़्टिनेन्ट थे लॉर्ड चान्सलर लॉर्ड ब्रूम, तथा हाउस ऑव कामन्स का नेता लार्ड आल्थार्प और लॉर्ड मेल्बोर्न, लॉर्ड जान रसल, तथा लॉर्ड पामर्स्टन ये लोग बाद में बारी-बारी से प्रधान मन्त्री हुए।

**सुधार बिल पर जद्दोजहद—(१८३१-३२ ई०)** ह्विग दल बहुत पहले से पार्लियामेन्ट के सुधारों के पक्ष में था। लॉर्ड ग्रे की गवर्नमेन्ट ने रिफार्म बिल का पास करना अपना प्रथम और प्रमुख ध्येय बना रक्खा था। सुधार का पक्ष भी अब बहुत प्रबल हो गया था। फिर टोरी दल का विरोध बड़ा भीषण था और बहुत दिनों तक

चलता रहा। हाउस ऑव कामन्स मे बड़े उत्तेजनापूर्ण वातावरणों में एक वोट से गवर्नमेन्ट की सुधार बिल की दूसरी रीडिंग' में विजय रही (१८३१ ई०); किन्तु कमिटी में उसके विविध अंशों के विवेचन में गवर्नमेन्ट हार गयी। उस पर गवर्नमेन्ट पार्लियामेन्ट भंग कर दी और निर्वाचन में सुधार के पक्ष में बहुमत प्राप्त कर लिया। नये हाउस ऑव कामन्स ने सुधार बिल पास कर दिया, परन्तु हाउस ऑफ़ लार्ड्स ने उसे अस्वीकृत किया। एक तीसरा बिल जब फिर हाउस ऑफ लार्ड्स के सामने पहुंचा तो उसने उसमें बहुत सी काट छाँट कर उसे खडित कर डाला।

अब लोकमत का विरोध और रोष बहुत प्रबल हो उठा। लंडन में जनसमूह ने वेलिंगटन के घर की खिड़कियाँ तोड़ डालीं और जब वह लंडन नगर में होकर जा रहा था उसे घोड़े पर से खींच कर गिरा लेने का प्रयत्न किया। वेलिंगटन के लोगों ने कर न देने तथा २० हजार की संख्या में लंडन पर चढ़ आने की धमकी दी। ब्रिस्टल के लोगों ने मेन्शन हाउस आदि स्थानों को जला दिया। स्काटलैण्ड में शान्ति स्थापित करने के लिए अतिरिक्त सेना भेजनी पड़ी। मन्त्री-मंडल ने पद-त्याग कर परिस्थिति को और भी कठिन बना दिया। ड्यूक ऑव वेलिंगटन ने मन्त्रि-मंडल बनाने का असफल प्रयत्न किया। परन्तु लार्ड ग्रे फिर शक्तिशाली हो गया और तीसरा बिल पुनः हाउस ऑव लार्ड्स को भेजा गया। ड्यूक ने गृहयुद्ध की आशंका तथा आवश्यकता पड़ने पर राजा के नये पियर नियुक्त करने के लिये सहमत हो जाने पर उसके विरोध से अपना हाथ खींच लिया और उसके अनुयायियों ने वोट नहीं दिया। आखिर सुधार बिल पास हो गया, राजा की स्वीकृति प्राप्त हो गयी और जून १८३२ ई० में वह कानून बन गया।

---

# अध्याय २१

## राजनीति और दलबन्दी (२)

### (१८३२-६७ई०)

### § १ सन् १८३२ के बाद का ब्रिटिश शासन विधान

**सुधार बिल की शर्तें**—उत्साही लिबरलों के लिए सुधार बिल समस्त मानवी विपत्तियों से छुटकारा पाने के लिए रामबाण की तरह था। कहा जाता है कि खेल के मैदानों में भी बालक चिल्लाते फिरते थे कि सुधार बिल पास हो गया। टोरियों के लिये सुधार बिल का पास हो जाना मानो ग्रेट ब्रिटेन का अधःपतन हो जाने के बराबर था। ड्यूक ऑव वेलिंगटन का मत था कि ६ सप्ताह के भीतर लार्ड ग्रे को मन्त्री-पद से अलग होना पड़ेगा और इसके बाद कोई भद्र पुरुष राजनीति में हाथ न डालेगा। अब हम लोगों को इस सुधार बिल के विधान बड़े

साधारण प्रतीत होते हैं परन्तु उस परिस्थिति में यह कितना उन्नत था यह बात उसके कुछ नियमों के वर्णन से ही मालूम हो जायगी। इसके अनुसार ऐसे 'बरा' जिनकी जनसंख्या २ हजार से कम थी पार्लियामेन्ट में सदस्य भेजने के अधिकार से वंचित कर दिये गये। इनमें से ५५ 'बरों' से दो सदस्य प्रति बरा के हिसाब से जाते थे और एक से केवल एक। 'वेमथ' और 'मेलकाम्ब' नामी बरों से ४ सदस्यों के स्थान में अब दो ही भेजे जा सकते थे। फिर ३० 'बरा' जिनकी जन संख्या ४ हजार से कम थी अब दो सदस्य प्रति बरा के स्थान में एक ही भेज सकते थे। इस प्रकार इन १४३ सदस्यों का निर्वाचन-अधिकार अब इस प्रकार बाँट दिया गया था कि इंग्लैण्ड और वेल्स की काउन्टियों को ६५, इग्लैंड के बरों को ६५, स्कॉटलैंड को ८ और आयरलैंड को ५ सदस्य भेजने का अधिकार था। पार्लियामेन्ट के सदस्यों की सख्या अब भी ज्यों की त्यों ६५८ ही रही। काउन्टियों में कापीहोल्डरों ( कापीहोल्डर के अधिकार भी स्वतन्त्र भू-स्वामियों के समान ही होते थे। वे भूमि के मालिक न होते परन्तु उनकी राजी बिना वे अपनी अधिकृत भूमि से वंचित नहीं किये जा सकते थे ) और १० पाउंड प्रति वर्ष लगान देने वाले लम्बे पट्टेदारों को या ५० पाउंड प्रति वर्ष लगान देने वाले साधारण काश्तकारों को वोटाधिकार दिया गया। 'बरो' में १० पाउंड प्रति वर्ष लगान देने वाले मकान मालिक को भी निर्वाचन अधिकार मिला।

किन्तु फिर भी इस बिल के अनुसार समस्त जन-सख्या से प्रत्येक २४ मनुष्यों में से केवल एक मनुष्य ही को वोट देने का अधिकार था। इसके परिणाम स्वरूप इंग्लैंड के निर्वाचको की सूची में ४ लाख ५५ हजार निर्वाचक बढ़ गये और निर्वाचक संख्या पहले से तिगुनी से भी अधिक हो गयी।

१८६७, १८८४, १९१८ और १९२९ ई० के सुधार बिल—१८३२ ई० के सुधार बिल ने कुलीन भूस्वामियों के अधिकृत एकाधिकार की जड़ काट दी और मध्यम श्रेणी के लोगों को निर्वाचन का अधिकार देकर राजनीति का आकर्षण केन्द्र ही बदल दिया। फिर एक बार सुधार बिल पास होने पर अन्य सुधार बिलों का अनुगमन अनिवार्य सा हो गया। १८६७ ई० में दूसरा सुधार बिल पास हुआ, जिसने निर्वाचन अधिकार और बढ़ा दिया और कस्बों और नगरों के ऊँची श्रेणी के कारीगरों को वोट का अधिकार मिल जाने से निर्वाचकों का औसत प्रति १२ में एक हो गया। १८८४ ई० में किसानी करने वाले मजदूरों को भी अधिकार मिल जाने से और शहरों और कस्बों के रहने वाले सभी नागरिकों को वोट का अधिकार प्राप्त हो गया। इस बिल से निर्वाचकों का औसत सात में एक का हो गया। १९१८ तथा १९२८ ई० में स्त्रियों को भी वोट का अधिकार मिला और इस प्रकार अब प्रति ३ में २ नागरिक वोट के अधिकारी हो गये हैं। वस्तुतः नाबालिग, विदेशी, सजा भोगा हुआ अभियुक्त, पागल, तथा पियर छोड़ कर इंग्लैंड के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को वोट का अधिकार मिल गया है।

१८३२ ई० के बाद राजनीति में परिवर्तन—ड्यूक ऑव वेलिंगटन की यह

भविष्यवाणी बिलकुल असत्य निकली कि अब भले मानुष राजनीति में भाग न लेंगे। यद्यपि १८३२ ई० के बाद सदस्य निर्वाचन क्षेत्र बढ़ गया था और अब व्यापारी तथा वकील पहले से अधिक निर्वाचित होकर आते थे, फिर भी 'पब्लिक स्कूल' वर्ग के पुराने शासक-परिवारों का १९वीं शताब्दी में भी बहुत प्रभाव था। सन् १८६५ वाले हाउस कॉमन्स के एक चौथाई सदस्य ३१ परिवारों में से थे और १९०० ई० में इतने ही सदस्यों ने ईटन या हैरो में शिक्षा पायी थी।

शासन विधायकों की प्रकृति में कुछ परिवर्तन न होते हुए भी शासन विधान गुणों में बहुत अधिक परिवर्तन आ गया था। निश्चेष्ट स्थिरता का युग अब समाप्त हो गया था। प्रत्येक प्रतिस्पर्द्धी दल के कार्यक्रम में नये नये उन्नत विधानों की आशाएँ मौजूद थीं। निर्वाचन-क्षेत्र का विस्तार हो जाने के कारण सभी विधानों का लक्ष्य मज़दूर वर्ग का कल्याण करना था। अब तो राजनीति की रीति भी बदल गयी थी। पार्लियामेन्ट के विवादों में समाचार पत्रों के रिपोर्ट देने वालों को भी जाने की आज्ञा मिल गयी थी। पार्लियामेन्ट अधिवेशन भी लम्बे होने लगे थे। सदस्यों की उपस्थिति भी अधिक नियमित होती जाती थी। लोकमत प्रदर्शन करने के लिए जनता की सभाएँ भी अधिक होने लगी थीं ऐसी जन साधारण की एक सभा में सब से पहले केनिंग ने भाषण दिया था। फिर भी उच्च पदाधिकारी मन्त्रियों के जनता में बोलने का विरोध बना रहा; यहाँ तक कि १८८६ ई० में भी रानी विक्टोरिया ने ग्लैडस्टन को अपने निर्वाचन-क्षेत्र से बाहर सभाओं में भाषण देने पर असहमति प्रकट की थी।

**शासन विधान का व्यावहारिक उपयोग**—सन् १७१४ से १८३२ ई० तक के शासन विधान के प्रयोग का विवरण हम पहले दे चुके हैं। अब सन् १८३२ से उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक इस नये शासन विधान का कुछ विवरण देना आवश्यक है। सुधार बिल के बाद राजा के प्रभुत्व के महत्व का अनुमान करना कठिन है। वैदेशिक नीति-निर्धारण में फिर भी उसका बहुत प्रभाव रहा। वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में रानी विक्टोरिया का असाधारण ज्ञान और अनुभव तथा यूरोपीय शासकों से उनका पारिवारिक सम्बन्ध बहुत मूल्यवान् सहायक सिद्ध हुए। रानी विक्टोरिया की यह भी आशा थी कि प्रत्येक वैदेशिक मामले में उनकी सम्मति ली जाय तथा विदेशों के सम्बन्ध का सब पत्र-व्यवहार उन्हें दिखाया जाय। इसी प्रकार एडवर्ड सप्तम का व्यक्तिगत व्यवहार ग्रेट ब्रिटेन के आपत्तिजनक परिस्थिति से निकालने और युरोप के कई देशों से मैत्री की सन्धियाँ कराने में सहायक हुआ था। गृह नीति में भी अपनी स्वतन्त्रता तथा निष्पक्षता के कारण स्पष्ट समालोचक होने में समर्थ है और मन्त्रियों को दलबन्दी के पक्षपात से प्रभावित होने से रोकता रहता है। उच्च पदों की नियुक्ति में भी उसका मत महत्वपूर्ण होता है।

संकट के समय राज सत्ता की सहायता और परामर्श की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। १८६१ ई० में रानी विक्टोरिया ने एक पत्र में थोड़ा सा परिवर्तन

कराके शायद अँगरेज़ों को अमेरिका के साथ युद्ध करने से बचा लिया। इसी प्रकार गदर के बाद भारतवासियों के प्रति जो घोषणा की गयी वह उसी की प्रेरणा से थी। फिर अँगरेजी विधान के अनुसार प्रधान मन्त्री की नियुक्ति राजा के ही हाथ में है। १८५२ ई० की ऐबर्डीन मन्त्रिमंडल की भाँति कभी-कभी राज-सत्ता को मन्त्रियों को सहयोग करने के लिए प्रेरित करना तथा १८६६ ई० में आयरी चर्च के मामले की तरह विरोधी दलों में मध्यस्थ का कार्य करना पड़ता था। राज-सत्ता के इन सब कार्यों के सम्बन्ध में रानी विक्टोरिया के पत्रों से बड़ा प्रकाश पड़ता है। किन्तु राज-सत्ता का सबसे बड़ा प्रभाव साम्राज्य पर होता है। राजा साम्राज्य की ओर से सारी प्रजा की भावना की अभिव्यक्ति कर सकता है और राज-सत्ता ही सारे साम्राज्य को राजभक्ति के कोमल बन्धन में बाँधे रख सकती है। १६१३ ई० में वेस्टमिन्स्टर विधान के अनुसार साम्राज्य के विविध अंगों की एक मात्र ग्रन्थि राज सत्ता ही रह गयी है।

पार्लियामेन्ट और केबिनेट प्रणाली—१८३१ ई० के बाद भी हाउस ऑव लार्ड्स काफी शक्तिशाली रहा; परन्तु अब इसकी दूसरे हाउस से कोई समानता न रही फिर भी इसने हाउस ऑव कामन्स द्वारा भेजे हुए कई बिल अस्वीकृत कर दिये परन्तु अधिकाँश रूप में वह उन बिलों को स्वीकार करता रहा जिनकी राष्ट्र को आवश्यकता थी। शासन विधान बनाने में हाउस ऑव कामन्स का ही प्रधानत्व रहा है और वहीं बिलों पर विस्तारपूर्वक वाद विवाद किया जाता है। इसी हाउस के बहुमत के ऊपर मन्त्रिमंडल का अस्तित्व निर्भर करता है। इस समय केबिनट प्रणाली का भी पूर्ण विकास हुआ है। दो तीन संयुक्त प्रधान मन्त्री के सभापतित्व में बैठती और प्रधान-मन्त्री अपने मन्त्रि मंडल के सदस्य चुनता तथा उन्हें पदच्युत करता रहा है। अब मन्त्रि-मंडल सामूहिक रूप से प्रत्येक सदस्य के आचरण के लिए उत्तरदायी है। इसके गुप्त अधिवेशन होते हैं और १६१४ ई० के महायुद्ध तक बैठने के पहले केबिनेट के मन्त्रियों को भी कोई कार्यक्रम नहीं भेजा जाता था और न ही उसकी कार्यवाही का कोई लेखा रखा जाता था। केवल प्रधानमन्त्री एक नोट राजा को भेजता था। लार्ड क्रिवथ १८६२-६५ और १६०५-१६ ई० के केबिनट में मन्त्री रहा था। उसका कहना है कि किसी बहुत-ही विशिष्ट परिस्थिति को छोड़ कर केबिनेट के बैठकों में कभी किसी विषय का वोट लेकर न होता था और यह बात प्रधानमन्त्री के जिम्मे छोड़ दी गयी थी कि वह अपने सहकारी के विचारों और उनकी सम्मतियों को किस प्रकार प्रकट करे। इसी प्रकार मन्त्री: के सिवाय और किसी मन्त्री को मंडल की बैठकों में मन्त्रियों की सम्मतियों या विचारों का लेखा रखना आचार के विरुद्ध समझा जाता था। इन बैठकों के अवसर पर कोई मन्त्री सूखे बिस्कुट और पानी के सिवाय न तो और कोई चीज ही खा सकता था न शराब या चाय पी सकता था। पिट के समय से यही प्रथा चली आ रही थी। किन्तु महायुद्ध के समय में इस अव्यावहारिक प्रणाली का परित्याग

कर दिया गया। अब केबिनेट के सदस्यों को कार्यक्रम की सूची तथा बैठक के बाद विवरण का लेखा भेजा जाने लगा है। उन्नीसवीं शती के विकास के साथ-साथ कानून-विधान व्यय तथा करों पर विचार करने के लिए अब केबिनट पार्लियामेन्ट का अधिकाधिक समय तथा शक्ति लेने लगी है।

## *लार्ड ग्रे तथा लार्ड मैल्बोर्न के ह्विग मन्त्रिमंडल

## (१८३०-४१ ई०)

सन् १८३२ से १८६७ की राजनीति के लक्षण—इंगलैंड के राजनीतिक इतिहास में सन् १८१५ के "वाटर लू" के युद्ध और १८३२ ई० में पार्लियामेन्ट के अन्तर्गत १७ वर्षों तक के इस पहले युग और सन् १८३२-१८६७ के द्वितीय सुधार विधान के बीच के ३५ वर्ष के काल को कभी-कभी १० पौंड वाले गृहस्थ का युग भी कहते हैं क्योंकि उसी के वोट पर तत्कालीन शासन व्यवस्था आश्रित थी। इस युग की दल-नीति बहुत उलझी हुई थी और दलों के सिद्धान्त बड़े सहज परिवर्तनशील और अस्थिर थे। इस युग के राजनीतिज्ञ कभी एक ओर रहते थे और कभी दूसरी ओर। दृष्टान्त के लिए लार्ड स्टैनली, लार्ड ग्रे की सन् १८३० वाली ह्विग केबिनेट पर एक उच्च पद पर रहा, फिर जब वह अर्ल ऑव डर्बी हो गया तो उसने तीन केबिनेट बनाये। इसी प्रकार उसका पुत्र १८७४ ई० वाले डिज्रायली के कंजर्वेटिव केबिनेट में वैदेशिक सैक्रेटरी था, फिर १० बरस बाद ग्लेडस्टन की लिबरल गवर्नमेन्ट में औपनिवेशिक सेक्रेटरी हो गया। लार्ड मेल्बोर्न सन् १८२८ में वेलिंगटन के टोरी मन्त्रि-मडल में था। कुछ वर्ष बाद वह ह्विग मन्त्रि मडल का प्रधान मन्त्री हो गया। इसी प्रकार मेकाले के कथनानुसार ग्लेडस्टन पर उसके राजनीतिक जीवन के आरम्भकाल में अपरिवर्तनशील कट्टर टोरियों की बड़ी बड़ी आशाएँ थीं, परन्तु वह आखिर बड़ा प्रगतिशील लिबरल हो गया। पील टोरियों का प्रमुख नेता था। फिर भी उसके मुख्य विधान वही थे जिनका टोरी दल बड़े जोरों से विरोधी रहा था। मेकाले ने कहा था कि जहाँ अँगरेजी राज-नीति के अन्ततम पहलू एक दूसरे से एक विशाल अन्तराल द्वारा विभाजित हैं, वहाँ उनके बीच एक सीमान्त भी है जहाँ दोनों बिलकुल मिले जुले से मालूम होते हैं। इन बरसों में बहुत से नीतिज्ञ इसी सीमान्त रेखा के निकट थे और आसानी से उसे पार कर जाते थे। दोनों दलों के उग्र टोरियों तथा रेडिकलों में कोई भी समानता न थी; किन्तु उनका कोई अधिक प्रभाव भी न था।

पील मन्त्रिमंडल की विशेषताएँ—१८४१ ई० में पील एक बड़े दल का नेता था। अब उसके सामने यह कठिनाई थी कि अपने अनेकों योग्यतम सहायकों में से किसे पद से वंचित किया जाय। उसका मन्त्रि-मडल बहुत सशक्त था। इसमें नेपोलियन के समय के युद्धों का कमांडर-इन-चीफ़ ड्यूक ऑव वेलिंगटन

और शान्तिप्रिय वैदेशिक मन्त्री लार्ड एबर्डीन जैसे दो भूतपूर्व और उपनिवेशों का मन्त्री लार्ड स्टेनली और 'बोर्ड ऑव ट्रेड' का उच्च पदाधिकारी ग्लेडस्टन, दो भावी प्रधान मन्त्री शामिल थे। इनके अतिरिक्त गृह सचिव ग्रैहम तथा लार्ड चान्सलर लार्ड लिंगहर्स्ट पील के निकटतम मित्र थे। इन कुशल नीतिज्ञों के मंडल में पील प्रमुख था। अपने राजनीतिक अनुयाइयों के समय व्यवहार में कर्कश तथा संकोचशील होते हुए भी वह एक गम्भीर तथा विचारशील वक्ता था और पार्लियामेन्ट की व्यवस्था करने में उसके कौशल ने उसे इस सभा का सर्वश्रेष्ठ सदस्य बना दिया था। वह बड़ा अध्यवसायी, कुशाग्र बुद्धि तथा अनुभवी पुरुष था। यही कारण था कि आठ घन्टे तक हाउस ऑव कामन्स के वाद-विवाद में शरीक रहने, देश देशान्तरों से आये हुए पत्रों का उत्तर लिखाने और उन पर उचित कार्रवाई के लिए परामर्श और आज्ञा देने के बाद वह राज्य के प्रत्येक विभाग की देख-रेख रखता था। यह कार्य इंग्लैंड के अन्य किसी भी प्रधान मन्त्री ने नहीं कर पाया। ग्लेडस्टन के शब्दों में पील का मन्त्रिमंडल एक पूर्ण व्यवस्थित शासन था। और कोब्डन के शब्दों में न तो तुर्की के सुलतान को इतने अधिकार थे और न रूस के जार को।

१९वीं शताब्दी के चार पाँच महान् शासनों में पील की कनजर्वेटिव गवर्नमेन्ट की भी गणना थी। उस समय की परिस्थिति के लिए बड़ी दक्षता की आवश्यकता थी। वैदेशिक समस्या उस समय बड़ी जटिल हो गयी थी। चीन से युद्ध छिड़ गया था, अफ़गानिस्तान में युद्ध की सम्भावना थी, फ्रान्स से सन्धि टूटने की आशंका थी और संयुक्तराज्य में सीमान्त सम्बन्धी विरोध बढ़ता जा रहा था। फिर देश का व्यापार बड़ा मन्द हो रहा था, गरीबों की बड़ी मुसीबत थी और बेकारी के कारण १० प्रतिशत लोग भिखमंगे हो रहे थे। जहाँ तहाँ उपद्रव हो जाते थे और प्रजा में अराजकता फैली हुई थी। इन सब का परिणाम यह हुआ कि पिछले पाँच बरस से बहुत कम लगान वसूल हो पाता था। वैदेशिक नीति की कठिनाइयों का विवेचन पहले किया जा चुका है। गृह नीति में पील का प्रथम उद्देश्य था राष्ट्रीय अर्थ नीति की पुनर्व्यवस्था करना। उसने प्रत्येक पौंड की आय पर ७ पेन्स का इनकम-टैक्स लगाया। इससे घाटे का ही उपचार न हुआ, वरन् इससे चुंगी का भार भी कम हो गया। हस्किसन की नीति का अनुकरण कर उसने लगभग ६०० वस्तुओं पर महसूल तोड़ दिये और १ हज़ार चीजों पर चुंगी कम कर दी। इससे कारख़ाने वालों को कच्चा माल सस्ता मिलने लगा। बैंक और प्रजा का आवश्यक व्यय कम हो गया। पील के अर्थ सम्बन्धी सुधार यहीं समाप्त नहीं हो जाते। सन् १८४४ के केन्द्रीय चार्टर एक्ट द्वारा उसने देश की बैंक व्यवस्था में सुधार किया और नोटों का निकालना नियन्त्रित कर दिया।

**लार्ड ग्रे के मन्त्रि-मंडल के सुधार ( १८३०-३४ ई० )**—सन् १८३० से १८४१ ई० तक ११ वर्ष ह्विगों या लिबरलों के हाथ में शक्ति रही। लार्ड ग्रे के

नेतृत्व में उनमें बहुत समय तक पदों से बहिष्कृत रहे हुए दल का सा एक नवीन उत्साह भरा हुआ था। १८३२ ई० में उन्होंने हाउस ऑव कामन्स की निर्वाचन प्रणाली का सुधार किया। १८३२ ई० में 'पुअर लॉ' दारिद्र-विधान पद्धति की पूर्ण रूप से पुनर्व्यवस्था की। ब्रिटिश उपनिवेशों में गुलामी की प्रथा का अन्त कर दिया। उन्होंने प्रथम प्रभावशाली 'फैक्ट्री लॉ' पास किया जिसके द्वारा रुई के पेचों में काम करनेवाले श्रमियों की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो गयीं और शिक्षा के लिए राज्य की ओर से पहली बार सहायता देने की व्यवस्था की गयी। किन्तु आयरलैंड की नीति के विषय में मतभेद के परिणाम स्वरूप पहले लार्ड स्टेनली और फिर लार्ड आल्थर्प ने पदत्याग कर दिया। लार्ड आल्थर्प के पदत्याग करने पर लार्ड ग्रे ने भी जो अब सत्तर वर्ष का था राजकार्य से विरति लेने का हठ किया।

लार्ड मेल्बोर्न का मन्त्रिमडल (१८३४, १८३५-४१ ई०)—१८३४ ई० में लार्ड मेल्बोर्न प्रधान मन्त्री हुआ, लार्ड पामर्स्टन वैदेशिक मन्त्री रहा तथा लार्ड जान रसल हाउस का नेता हो गया। लार्ड ब्रूहम को शीघ्र ही चान्सलर पद से च्युत कर दिया गया। यह मेल्बोर्न मंत्रिमंडल लगभग सात वर्ष तक लगातार शक्तिशाली रहा। फिर भी दो बार कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं। पहले ही साल १८३४ ई० में विलियम चतुर्थ ने इस मन्त्रिमंडल को भंग कर दिया, क्योंकि वह उसकी नीति से सहमत नहीं था। इंग्लैंड के वैधानिक इतिहास में यह अन्तिम अवसर था जब राजा ने अपने निजी अधिकार का इस प्रकार उपयोग किया और इसलिए यह घटना काफी महत्व रखती है। पील को रोम से मन्त्रिमडल बनाने के लिए बुलाया गया और शीघ्र ही पार्लियामेन्ट भंग कर दी गयी। किन्तु इस नव निर्वाचित हाउस ऑव कामन्स में अपने दल को अल्प संख्या में देखकर पील ने पद त्याग कर दिया और मेल्बोर्न फिर प्रधान मन्त्री बना।

१८६९ ई० की दूसरी कठिनाई का कारण 'बेडचेम्बर क्वेश्चन' कहलाता है। मेल्बोर्न ने जमैका के मामले पर हाउस ऑव कामन्स में हार जाने के कारण पद त्याग कर दिया। रानी विक्टोरिया ने अब पील को मन्त्री पद दिया; किन्तु उसने और वेलिंगटन ने राज-भवन में ह्विग परिचारिकाओं को निकाल कर टोरी परिचारिकाएँ रखने पर जोर दिया। वैधानिक दृष्टि से पील ठीक भी था; किन्तु एक बीस इक्कीस बरस की युवती रानी के साथ व्यवहार करने में उसने चातुर्यहीनता तथा अदूरदर्शिता का परिचय दिया। रानी ने परिचारिकाएँ बदलने से इन्कार कर दिया। अब मेल्बोर्न के हाथ पुनः शक्ति आ गयी जिससे रानी सन्तुष्ट हुई। हाउस ऑव कामन्स में कई अवसरों पर उसका पक्ष बहुत निर्बल होते हुए भी दो वर्ष तक मेल्बोर्न काम चलाता रहा। १५४१ ई० में वह एक वोट से हार गया और उसने पार्लियामेन्ट भंग कर दी। नव निर्वाचित हाउस ऑव कामन्स में अब की बार टोरियों का बहुमत निश्चित था इसलिए लार्ड मेल्बोर्न ने राजकार्य से हमेशा के लिए विरति ग्रहण कर ली।

लार्ड मेल्बोर्न के नेतृत्व में ह्विग दल का सुधार-उत्साह जाता रहा। १८३५ ई० में म्यूनिसपल कारपोरेशन एक्ट अवश्य पास हुआ तथा १८३६ ई० में पेनी पोस्टेज भी लगा; किन्तु कनाडा के सम्बन्ध में मन्त्रिमंडल की नीति अनुदार रही और वह १८३९ ई० में विद्रोह को न रोक सका। जमैका के प्लान्टरों के प्रति भी इसकी नीति असन्तोषपूर्ण थी क्योंकि वे अपनी जमीन्दारी के गुलामों की स्वतन्त्रता का विरोध करते थे। आयरलैंड में इसका शासन प्रबन्ध ज़रूर सफल रहा और 'हाउस ऑव कामन्स' के आयरी दल का नेता ओ कोनल उसका सहायक रहा; परन्तु मन्त्रि-मंडल के विरोधियों का यह कहना था कि वह आयरलैंड में शान्ति स्थापित करने तथा वहाँ के किसानों पर अनाचारों का दमन करने में असफल रहा।

**लार्ड मेल्बोर्न का चरित्र और प्रभाव**—सब बातों पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि लार्ड मेल्बोर्न का इतने दिनों मन्त्री पद पर रहना राष्ट्र के लिए लाभप्रद रहा। सुधार दल के लिए वह प्रोत्साहक नेता सिद्ध न हुआ। उसने बड़ी बेदिली से १८३२ ई० के सुधार बिल का अनुमोदन किया था परन्तु यह उसकी भविष्यवाणी थी कि इसका परित्याग पार्लियामेन्ट के लिए हानिकर होगा। वह 'अनाज विधान' में किसी परिवर्तन के पक्ष में न था। उदारचेता तथा सुसंस्कृत व्यक्ति होते हुए भी वह लार्ड ग्रे के मन्त्रिमंडल के सुधारों को पर्याप्त समझता और अपने दल के प्रगतिशील सदस्यों के मन्तव्यों को प्रायः यह कहकर टाल दिया करता था कि अभी इनको छेड़ने का उपयुक्त समय नहीं आया है। इसी प्रकार मन्त्रि-मंडल की एक बैठक में उसने अपने साथियों से कहा कि इस बात की कोई चिन्ता नहीं है कि हम सब क्या सम्मति देते हैं परन्तु यह बहुत आवश्यक है कि हम सब एक ही बात कहें। उसकी सहृदयता, सूक्ष्मबुद्धि, विनोद-प्रियता तथा साधु प्रकृति के कारण वह युवती रानी विक्टोरिया का बड़ा योग्य अभिभावक सिद्ध हुआ और उसके इन सद्गुणों से उसे बड़ा समझदार परामर्शदाता बना दिया। रानी विक्टोरिया के शासन के प्रारम्भिक दिनों में वह उसके सेक्रेटरी का भी कार्य करता तथा प्रायः ६-६ घन्टे उसी के साथ बिताता। ड्यूक ऑव वेलिंगटन के शब्दों में लार्ड मोलबोर्न ने ही रानी को एक महान देश की नियति का नियन्त्रण सिखाया। प्रिन्स एलबर्ट के साथ विवाह हो जाने पर रानी को लार्ड मेल्बोर्न की आवश्यकता न रही और १८४१ ई० से प्रिन्स एलबर्ट रानी का सेक्रेटरी और निजी सलाहकार हो गया।

## §३—सर रावर्ट पील का कनजर्वेटिव मन्त्रिमंडल

## (१८४१-४६ ई०)

**पील का चरित्र**—१८४२ ई० में ह्विगदल के पतन के साथ टोरियों का उदय हुआ। अब की बार सर राबर्ट पील स्थायी मन्त्रिमंडल बनाने में सफल हुआ। वह एक धनी व्यवसायी का लड़का और छोटे पिट की भाँति जन्म से ही राजनीति में

भाग लेने का अधिकारी हो गया था। जब वह हैरो में पढ़ता था तभी से उसे हाउस ऑव कामन्स में जाकर वाद-विवाद सुनाने का शौक हो गया था। १८०६ ई० में उसके पिता ने उसके लिए आयरलैंड में एक 'राटनबरा' खरीद दिया और उसी बरा का प्रतिनिधि होकर उसने पार्लियामेन्ट में प्रवेश किया। यहाँ उसने शीघ्र ही बड़ा नाम पैदा किया। पील की जीवन-नियति भी छोटे पिट की भाँति राजनीति थी। उसने पार्लियामेन्ट में शीघ्र ही अपना स्थान कर लिया। पिट के बाद उसका भाषण सर्वोत्तम प्रथम भाषण कहा जाता है एक ही वर्ष में वह अन्डर सेक्रेटरी ऑव स्टेट हो गया। १८१२ ई० में लार्ड लिवरपूल ने उसे आयरलैंड का चीफ़ सेक्रेटरी बना दिया १० बरस बाद वह होम सेक्रेटरी हो गया और उसने 'पीनल ला' का सुधार किया। १८२८ ई० में ड्यूक ऑव वेलिंगटन के मन्त्रिमंडल में वह हाउस ऑव कामन्स का नेता हो गया। १८३०-४१ तक ह्विगों के विकास के जमाने में उसने बड़े अध्यवसाय के साथ टोरी दल की शक्ति का पुनरुत्थान किया। टोरियों को वह कनज़र्वेटिव दल कहा करता था। उसने ह्विग विधानों में महत्वपूर्ण संशोधन कराये और ग्लैडस्टन और डिज़रायली जैसे प्रतिभाशाली नवयुवकों को अपने नेतृत्व में आगे बढ़ाया।

**आयरलैण्ड की समस्या**—अपने से पहले वाले अन्य प्रधान मन्त्रियों की भाँति पील को भी आयरलैण्ड की समस्या के सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि पील ने किस प्रकार से उस आन्दोलन को दबा दिया जो आयरलैंड की एकता के रद्द करा देने के लिए उठाया गया था। इस समय ओकानल गवर्नमेन्ट के विरोधी दल में था और वही इस एकता-विरोधी आन्दोलन का विधाता था। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि पील आयरलैंड में सुधारों का विरोधी था। उसने मेनूथ के रोमन कैथलिक कालिज के लिए गवर्नमेन्ट से धन की सहायता दिलायी और आयरलैण्ड में कृषि-योग्य भूमि सम्बन्धी जाँच के लिए 'डेवन कमीशन' नियत किया। किन्तु इस कमीशन की जाँच के अनुसार कोई सुधार होने के पूर्व ही आयरलैंड में ऐसा भीषण अकाल पड़ा जिसके कारण पील के मन्त्रिमंडल का ही पतन नहीं हुआ बल्कि उसका सारा दल तितर-बितर हो गया।

**अनाज विधान विरोधी ( ऐन्टी कार्न ला ) लीग**—इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि नेपोलियन के साथ युद्ध समाप्त हो जाने के बाद एक विधान बनाया गया जिसके अनुसार जब तक देश में पैदा हुए अनाज का भाव ८० शिलिंग प्रति कार्टर तक न पहुँच जाय विदेश अनाज की आमद बन्द कर दी जाय। इसके बाद सन् १८२६ में एक ऐसा नियम बना दिया गया जिसके अनुसार विदेशी अनाज पर ली जाने वाली चुंगी देशी अनाज के भाव के अनुसार घटती बढ़ती रहती। परन्तु यह देखकर कि इन विधानों के होते हुए भी टोरी का मूल्य बराबर बढ़ता ही जाता है लोकमत धीरे धीरे इनके विरुद्ध हो गया। फिर इस समय इंगलैंड की जन-

संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि स्वदेश में इतने मनुष्यों के लिए सस्ता अनाज उत्पन्न कर लेना असम्भव हो गया और इसीलिए फ़सल अच्छी न होने के कारण जनता में बड़ा कष्ट फैल जाता। आख़िर सन् १८३८ में मेनचेस्टर के कई व्यापारियों ने मिल कर एक अनाज-विधान विरोधी लीग स्थापित की। सौभाग्य से कोब्डन और ब्राईट दो बड़े प्रभावशाली वक्ता इस लीग में शामिल हो गये। कोब्डन का पिता ससेक्स में एक साधारण कृषक था और वह लंकाशायर में सूती कपड़ों पर ठप्पे से छपाई का काम करता था। ब्राइट का पिता लंकाशायर के एक सूती कारखाने में जुलाहा था। कोब्डन अपनी बात को इतने स्पष्ट शब्दों में कह देता था कि वह मूर्ख और बुद्धू तक के घट में उतर जाती और ब्राईट में यह अद्भुत कौशल था कि वह अपने प्रतिद्वन्दी के तर्कों की धज्जियाँ उड़ा देता था। अस्तु ये दोनों सज्जन इंग्लैण्ड भर में सभाएँ और स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्तों का प्रचार करते घूमते रहे। साथ ही उन्होंने लोगों को अनाज विधान को रद्द कराने का आन्दोलन करने के लिये उत्साहित किया। सन् १८४१ में कोब्डन हाउस ऑव कामन्स का सदस्य निर्वाचित हुआ और ब्राईट १८४३ ई० में। इन दोनों के पार्लियामेन्ट में पहुँच जाने से स्वतन्त्र व्यापार के समर्थक दल को बड़ा प्रोत्साहन मिला।

आयरलैण्ड में अकाल (१८४६ ई०)—पील एक ऐसे दल का नेता था जो अनाज विधानों को यथावत रखने के पक्ष में था। सन् १८४४ में उसने इन विधानों का परिष्कार किया जिससे उसके दल के सदस्य असन्तुष्ट हो गये। फिर भी वह धीरे-धीरे इस निर्णय पर पहुँच गया था कि राष्ट्र के कल्याण के लिये इनका रद्द कर देना ही आवश्यक था। शीघ्र ही एक ऐसी घटना हुई जिसके कारण इस कर विधान का तुरन्त उच्छेद करना पड़ा। १८४५ ई० में एक बीमारी के कारण आयरलैंड में दो साल बराबर आलू की फसल मारी गयी और चूंकि आयरलैण्ड की आधी से अधिक जनता के लिए आलू बड़ा आवश्यक भोजन है, इसलिए देशव्यापी अकाल की आशका से आयरलैण्ड में त्राहि-त्राहि मच गयी। इधर जुलाई में अति वर्षा के कारण इंग्लैण्ड की अनाज की पैदावार कम हुई और बाहर से अनाज मँगाने में चुंगी की अड़चन सवार थी। ऐसी विषम परिस्थिति में पील ने अनाज विधानों को कुछ समय के लिये स्थगित करने और बाद में बिल्कुल मनसूख कर देने का निर्णय किया; परन्तु उसके अधिकांश सहकारी उससे सहमत न हुए और इसलिए उसने पद त्याग कर दिया अब ह्विग पार्टी के नेता लार्ड जान रसल को नया मन्त्रिमंडल बनाने का आदेश मिला; परन्तु वह भी इन अनाज विधानों को रद्द कर देने के पक्ष में था। इसलिए उसके पद स्वीकार न करने पर पील को फिर बुलाना पड़ा।

लार्ड स्टेनली को छोड़कर पील के और सब टोरी सहकारी मन्त्रिमंडल में शामिल हो गये। टोरियों के विचार में कोब्डन और उसके साथियों का प्रधानत्व हो इससे यह कहीं अच्छा था कि पील मन्त्रिमंडल अनाज विधान का उन्मूलन कर दे।

विरोधी दल द्वारा अत्यधिक सुधार हो जाने की आशंका से उन्होंने पील का समर्थन करना उचित समझा। परन्तु टोरियों के एक विशिष्ट दल ने जो संरक्षण का घोर समर्थक था इसका बड़े जोरों से विरोध किया। इस सेक्शन के नेता थे लार्ड जार्ज बेन्टिक और बेञ्जमिन डिजरायली। डिजरायली ने अपने तीखे परन्तु तेजस्वी व्याख्यानों में पील के मन्त्रिमंडल को 'व्यवस्थित मक्कारी' बतलाया और पील की योग्यता के सम्बन्ध में भी सन्देह प्रकट दिया। उसने कहा कि जिस प्रकार गाड़ी के पीछे खड़ा होने वाला अर्दली कोचवान नहीं होता उसी प्रकार पील को भी साधारण से अधिक ऊँचे दरजे के राजनीतिज्ञ होने का महत्व नहीं दिया जा सकता। फिर भी पील ने पार्लियामेन्ट से यह बात मनवा ली कि अनाज विधानों को रद्द कर दिया जाय परन्तु आयरलैण्ड में उपद्रव रोकने के लिए दमन ( कुअशन ) ऐक्ट पास कराने की चेष्टा में वह सफल न हो सका और उसे पद त्याग करने पर मजबूर होना पड़ा। अनाज-विधान रद्द कराने के प्रस्ताव के साथ साथ पील ने इस बात का उद्योग किया था कि आयरलैण्ड का प्रत्येक निवासी सुगमता से जीवन निर्वाह कर सके। उसने इस बात की भी चेष्टा की थी कि कारखाने वालों को कच्चा माल सस्ते दामों पर मिल सके और किसानों को बीज कम दामों पर इन बातों से यह स्पष्ट है कि उसका यह उद्देश्य न था कि अनाज विधानों को एकबारगी रद्द कर दिया जाय।

**पील के विरुद्ध आक्षेप**—कहा जाता है कि पील ने दो बार अपने दल की नीति के विरुद्ध काम किया। पहली बार जब सन् १८२६ में कैथलिक उद्धार के अवसर पर उसने दबकर अपनी अनुमति दे दी और दूसरी बार जब उसने अनाज-विधानों को रद्द कर दिया। इस सम्बन्ध में बड़ा मतभेद रहा है और सम्भव है रहे भी' परन्तु इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि अपने विचार बदल देने में पील ने सत्य का अवलम्बन लिया था। वह उस समय के दोनों राजनीतिक दलों की विचारधाराओं के सीमान्त पर था और इसीलिये उसे कनजर्वेटिव में परम उदार तथा लिबरलों में परले दरजे का कनजर्वेटिव कहा गया है। ऐसा मालूम होता है कि कनजर्वेटिव दल का नेता होते हुए भी वह अपने दल की भावनाओं का पूर्ण रूप से प्रतिनिधि न था और उसके विचार भूस्वामियों की जगह उसी मध्यम श्रेणी के लोगों से अधिक मिलते जुलते थे जिसमें उसका जन्म हुआ था। वास्तव में यह बात बड़ी प्रशंसनीय है कि वह इतना साहसी और उदारचेता था कि अपने मतों पर पुनर्विचार करने में तथा सन्तुष्ट हो जाने पर अपने उस विचार को बदल देने को तैयार रहता और इसी नीति के अनुसार कार्य करता था। हाँ यह दोष उसमें जरूर माना जा सकता है कि अपना मत गुपचुप बदल लेता था और अपने दल को इस परिवर्तन की कोई सूचना देना आवश्यक न समझता था।

---

## ६४—लार्ड जान रसल और लार्ड एबर्डीन का मन्त्रिमंडल
## ( १८४६-५५ ई० )

लार्ड जान रसल ( १८४६-५२ ई० ) संरक्षता सिद्धान्त का अन्त करके पील ने टोरी दल में फूट डाल दी। वेन्टिक, स्टेनली और डिजरायली का दल संरक्षतावादी रहा और ड्यूक ऑव वेलिंगटन, लार्ड एबर्डीन तथा ग्लेडस्टन पील के विश्वस्त समर्थक। टोरी दल में इस फूट के कारण ह्विग फिर शक्तिशाली हो गये और १८४६ में उनका नेता जान रसल प्रधानमन्त्री बना। सन् १८६२ तक रसल मन्त्री रहा। मन्त्रिमंडल में भी पुराने ह्विग मन्त्रिमंडलों की भाँति पियरों और उनके सम्बन्धियों की भरमार थी अन्तर केवल इतना था कि इसमें उग्र लिबरल सम्मिलित न थे। इस मन्त्रिमंडल का सबसे पहला काम यह हुआ कि आयरलैंड की संकटाकीर्ण अवस्था को सुधारा जाय और अकाल के कारण जो अव्यवस्था वहाँ फैल रही थी उसे ठीक किया जाय।

सन् १८४८ का चार्टिस्ट आन्दोलन—इस मन्त्रिमंडल के सामने दूसरी कठिनाई उपस्थित हुई वह थी चार्टिस्ट आन्दोलन। इस आन्दोलन के कार्यकर्ताओं से 'प्रजा के लिए एक चार्टर बनाया जिसमें राज्य से ६ सुविधाएँ तलब की गयीं। सब पुरुषों को वोट का अधिकार हो, बैलट ( गुप्त ) वोट देने की प्रथा चलायी जाय, पार्लियामेन्ट का चुनाव वार्षिक हो, पार्लियामेन्ट के सदस्यों को वेतन मिले, पार्लियामेन्ट की सदस्यता के लिए सम्पत्ति का होना अनिवार्य न हो तथा सब निर्वाचन क्षेत्र बराबर बराबर हों—ये इस आन्दोलन की छः प्रमुख माँगें थीं। सन् १८३८ में यह आन्दोलन देश व्यापी हो चुका था और उस समय कई घोर उपद्रव भी हुए थे। इसके बाद यह कुछ दब सा गया; परन्तु १० बरस बाद सन् १८४८ में इसका फिर बड़ा ज़ोर हुआ क्योंकि इस समय सारे युरोप में विप्लव हो रहे थे। इसका नेता था फियर्गस ओकोनर। यह आयरलैण्ड निवासी बड़ा भारी भरकम आदमी और बड़ा प्रबल और प्रभावशाली समूह वक्ता था। उसके वाक्य तीर की तरह उन सच्चे श्रमियों के हृदय में उतर जाते 'जिनकी गरीबी के कारण हजामत तक न बन पाती थी, जिनके हाथों में भारी-भारी औज़ार चलाते-चलाते छाले पड़ गये थे तथा जो फटे पुराने कपड़ों में ही जाड़ा बिता देते थे।' हाउस ऑव कामन्स में पेश करने के लिए ओकोनर में ५५ लाख आदमियों के हस्ताक्षर कराके एक वृहत प्रार्थनापत्र तैयार किया जिसे वह स्वयम् बड़े समारोह के साथ ले जाता। ड्यूक ऑव वेलिंगटन ने पार्लियामेंट के चारों ओर सेना की ऐसी अच्छी व्यवस्था कर दी कि जिसमें किसी प्रकार की गड़बड़ी होने की आशंका न रही और उसने अपर और मध्य श्रेणी के १ लाख ७० हज़ार स्पेशल कानिस्टेबिल भी भर्ती किये जिनसे आवश्यकता पड़ने पर व्यवस्था कायम रखने का काम लिया जाना निश्चित हुआ। एक दिन जब बरसात हो रही थी यह प्रार्थना-पत्र एक किराये की गाड़ी में रखकर हाउस ऑव कामन्स में पहुँचा दिया

गया परन्तु इसके साथ चलने वाले जुलूस को वेस्टमिनस्टर पुल से आगे बढ़ने की आज्ञा नहीं मिली। जाँच करने पर मालूम हुआ कि इस प्रार्थना-पत्र पर आधे से अधिक हस्ताक्षर जाली थे। इससे सारे आन्दोलन की बड़ी किरकिरी हुई और उनकी सारी मेहनत मिट्टी में मिल गयी। आगे चल कर वह इस आन्दोलन की प्रायः सभी बातें मान ली गयीं परन्तु इसको उस समय तो इतना धक्का पहुँचा कि यह एकदम दब गया। वास्तव में वह युरोप की क्रान्तियों के मुकाबले में यह आन्दोलन कुछ भी प्रभावशाली न था। इसके असफल होने का कारण यह भी था कि ब्रिटेन में लोग व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे और मन्त्रिमंडल को जनसाधारण का सहयोग प्राप्त था।

रसल का पदत्याग—१८५२ ई० में जान रसल के मन्त्रिमंडल का अन्त हो गया। इसका कारण यह हुआ कि रानी विक्टोरिया ने लार्ड पामर्स्टन की वैदेशिक नीति का घोर विरोध किया। फिर उसके ढंग इतने अव्यवस्थित थे कि आख़िर प्रधान मन्त्री रसल ने उसे १८५१ ई० में पदत्याग करने पर मजबूर किया। कई महीने बाद पामर्स्टन ने मिलीशिया बिल' में एक संशोधन पर रसल को हरा कर अपना बदला चुका लिया। हाउस ऑव कामन्स में इस हार के कारण सन् १८५२ में मन्त्रिमंडल को स्तीफ़ा देना पड़ा।

लार्ड एबर्डीन का संयुक्त मन्त्रिमंडल ( १८५२-५५ ई० ) लार्ड जान रसल के पद त्याग करने के बाद कुछ महीनों के लिए पील मन्त्रिमंडल का लार्ड स्टेनली जो अब लार्ड डर्बी हो गया था, प्रधानमन्त्री बना। उसने संरक्षता सिद्धान्त को पुनर्जीवन देने का कोई प्रयत्न नहीं किया इसी बीच में रानी विक्टोरिया ने ह्विग पार्टी और पील-दल को संयुक्त मन्त्रिमंडल बना लेने के लिए राज़ी कर लिया सन् १८५० में पील का देहान्त हो चुका था और १८५२ में ड्यूक ऑव वेलिंगटन भी चल बसा था। फिर भी इस मन्त्रिमंडल में पील के दो अनुयायी प्रमुख थे। इनमें लार्ड एबर्डीन प्रधान मन्त्री था और ग्लेडस्टन खज़ाने का चान्सलर। आख़िर जान रसल और लार्ड पामर्स्टन में भी समझौता हो गया और एक हाउस ऑव कामन्स का नेता और दूसरा गृह सचिव बन गया। लार्ड क्लैरेंडन को वैदेशिक मन्त्री का पद दिया गया। डिजरायली का कहना था कि इंग्लैण्ड में संयुक्त मन्त्रिमंडल लोकप्रिय नहीं होते; अस्तु यह मन्त्रिमंडल भी बिना कोई विशेष उल्लेखनीय काम किये थोड़े ही समय में छिन्न-भिन्न हो गया। आख़िर ग्लेडस्टन के जमाने में जो थोड़े से संरक्षक कर बाक़ी रह गये थे वह भी रद्द कर दिये गये और इंग्लैण्ड पूर्णरूप से स्वतन्त्र व्यापार का देश हो गया। वैदेशिक मामलों में संयुक्त मन्त्रिमंडल बड़ा निर्बल ऊँचा और उसकी अनिश्चय की नीति बड़ी हानिकारी सिद्ध हुई। आख़िर क्राइमिया युद्ध की अव्यवस्था के कारण १८५५ ई० में इसे पद त्याग करना पड़ा।

---

## § ५—लार्ड पामर्स्टन की एकाधिपतिता
## (१८५५-६५ ई०)

**लार्ड पामर्स्टन का मन्त्रिमंडल**—अगले दस बरसों (१८५५-६५ ई०) तक लार्ड पामर्स्टन वस्तुतः देश का डिक्टेटर या एकाधिपति रहा। दो अवसरों पर उसका शासन अल्पमत में रहा। आख़िर १८५७ ई० में हाँगकाँग के अँगरेजी एजेन्ट के दुष्कृत्यों का पक्ष लेने के कारण उसकी हाउस ऑव कामन्स में हार हो गयी। इस पर उसने पार्लियामेन्ट भंग कर दी और पुनः बड़े बहुमत के साथ मन्त्री हो गया। कुछ महीने बाद १८५६ ई० में दूसरे अवसर पर फ्रान्स के साथ कायरता का व्यवहार करने का दोष लगाया गया। ओर्सिनी नामक एक व्यक्ति ने इस देश के राजा नेपोलियन तृतीय की हत्या का प्रयत्न किया था। उसने लण्डन में अपना षड्यन्त्र रचा। फ्रान्स का सन्देह शान्त करने के लिये पामर्स्टन ने 'हत्या का षड्यन्त्र' सम्बन्धी बिल पेश किया जिसके अनुसार ऐसे षड्यन्त्रों को दंडनीय ठहराया गया और उसकी सज़ा फाँसी नियत की गयी। विरोध पक्ष ने इस बिल को फ्रान्स का आदेशप्रेरित ठहराया और उसे अस्वीकृत कर दिया। पामर्स्टन ने इस पर पद त्याग कर दिया। लार्ड डर्बी ने फिर मन्त्रिमंडल बनाया; परन्तु केवल १५ महीने बाद उसे पद त्याग करना पड़ा और १८५६ ई० में पामर्स्टन फिर प्रधान मन्त्री हो गया।

**गृह-नीति (१८५५-६५ ई०)**—इन दस बरसों में कई वैदेशिक बातों को छोड़ कर और कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। लार्ड जान रसल इस समय वैदेशिक नीति के चार्ज में था, ग्लेडस्टन लिबरल हो चला था और सन् १८५६ में ख़ज़ाने का चान्सलर हो गया था। देश की साम्पत्तिक व्यवस्था में उसने बड़ा कौशल दिखलाया और वार्षिक आयव्यय का अनुमान (बजट) पेश करते समय अपनी प्रबल विवादशक्ति का परिचय दिया। क्राइमियन युद्ध के समाप्त होने के बाद जिसमें ग्रेट ब्रिटेन फ्रान्स का मित्र रहा, इंग्लैण्ड नेपोलियन तृतीय की महत्वाकांक्षाओं से आशंकित हो उठा था इसलिये युद्ध की अफवाह के कारण १८५८ ई० में वालन्टियरों का एक दल बना जो ५० वर्ष के बाद टेरिटोरियल सेना में सम्मिलित कर लिया गया १८६१ ई० में रानी विक्टोरिया के पति प्रिन्स एल्बर्ट की मृत्यु हो गयी। यद्यपि वह ग्रेट ब्रिटेन में अधिक लोकप्रिय न था और रानी पर उसके प्रभाव के प्रति विरोध और ग़लतफ़हमियाँ होनी सम्भव थीं फिर भी उसने अपनी सारी शक्ति इंग्लैण्ड की सेवा में लगा दी थी। उसकी मृत्यु से देश को बड़ी हानि हुई; रानी विक्टोरिया को बड़ा सदमा पहुँचा और अगले दस वर्ष उसने नितान्त एकान्त में व्यतीत किये।

**लार्ड पामर्स्टन का चरित्र**—सन् १८१५ में लार्ड पामर्स्टन की ८१ वर्ष की अवस्था में मृत्यु हुई। इस समय वह पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। आयरलैण्ड का पियर होने के कारण वह ६० बरस से बराबर हाउस ऑव कामन्स का सदस्य चला आता था। सन् १८०७ ई० में उसे एक 'राटेनबरा' का प्रतिनिधि बनाकर इस शर्त

पर पार्लियामेन्ट में भेजा गया था कि वह कभी उस दरा में पैर न रखे। पामर्स्टन ने इस शर्त को अपने जीवन भर निभाया। अपने ६० वर्ष के राजनीतिक जीवन में पामर्स्टन ने १० मन्त्रिमण्डल बनते बिगड़ते देखे। प्रायः ५० वर्ष तक वह बराबर किसी न किसी मन्त्री पद पर रहा और १८३० ई० से या तो वैदेशिक मन्त्री या प्रधान मन्त्री की हैसियत से वह बराबर इस देश की वैदेशिक नीति का संचालन करता रहा। स्थूल शरीर परन्तु हँसमुख और सरल स्वभाव पामर्स्टन राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता में बड़ा पटु परन्तु अपने प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति बड़ा उदार और सहृदय था। घोड़े की सवारी का तो वह इतना शौकीन था कि इस व्यायाम को वह धार्मिक कृत्य की भाँति बड़ी संलग्नता और तत्परता के साथ निर्विघ्न पूरा करता था। बरफ पड़े या मेह बरसे, परन्तु यह अस्सी बरस का बूढ़ा अँगरेज जमीन्दार मन्त्री अपने बादामी घोड़े पर सवार लंडन से हैरो तक बराबर, बिना एक दिन का नागा किये। जाता हुआ मिलता। कौंन्सिल भवन में नीति-निपुण और शासन व्यवस्था में कुशल होने के साथ-साथ उसमें साहस, आत्मविश्वास और स्फुर बुद्धि आदि सभी सद्गुण मौजूद थे जिन पर उसके देश को गौरव हो सकता था। वह इतना प्रतिष्ठावान हो गया था कि उसके प्रतिद्वन्द्वी भी उसका लोहा मानते थे। इंग्लैंड की शासन व्यवस्था में उसकी नीति स्थितिपालक अवश्य थी; परन्तु वैदेशिक नीति में तो उसे पूर्ण क्रान्तिकारी कहा जाना चाहिए। सन् १८३२ ई० के सुधार-विधान स्वीकृत हो जाने के बाद उसे इंग्लैंड में और अधिक सुधारों की कोई आवश्यकता प्रतीत न होती थी और इसीलिए उसके मन्त्रित्वकाल में और कोई सुधार न हो सका। परन्तु अन्य सब देश के साथ जो ग्रेट ब्रिटेन की भाँति स्वतन्त्रता और स्वायत्तशासन के अधिकारी नहीं थे उसकी निष्कपट सहानुभूति थी, जिसे वही निर्भीकता से प्रकट भी कर देता था।

**१८६७ ई० का सुधारविधान**—पामर्स्टन के निधन के बाद पार्लियामेन्ट के सुधार में अब कोई रुकावट न रह गयी थी। अस्तु सुधार आन्दोलन ने अब बड़ा ज़ोर पकड़ा और जब इस आन्दोलन के समर्थकों के एक जुलूस को हाईट पार्क के फाटकों से बाहर निकलने की मनाही कर दी गयी तो वे चहारदीवारी फाँद कर बाहर निकल आये। आखिर नये प्रधान-मन्त्री लार्ड जान रसल ने एक सुधार बिल पास करने का प्रयत्न किया। ग्लेडस्टन के मन्तव्य से लार्ड रसल ने इस बिल द्वारा निर्वाचन अधिकार और अधिक विस्तृत करने चाहे, परन्तु इससे बहुत से ह्विग सदस्य अपने उदार नेताओं से नाराज हो गये और उन्होंने कनजर्वेटिव दल के साथ वोट देकर उसे स्तीफा दे देने के लिए मजबूर कर दिया। इन असन्तुष्ट ह्विगों को ब्राईट ने 'एडल्लाईट' नाम देकर इनका खूब मजाक उड़ाया। आख़िर लार्ड डर्बी का नया मन्त्रिमंडल बना। कनज़र्वेटिव नेताओं और उनमें भी विशेष रूप से डिजरायली का विचार था कि सुधार विधान अवश्य स्वीकृत होना चाहिए। लार्ड डर्बी इसके पक्ष में न था और वह इसे संशयास्पद समझता था। आख़िर १८६७ ई० में डिज़रायली ने नया 'रिफ़ार्म बिल'

पेश किया। इस विधान के स्वीकृत कराने में उसे अपने ही दल के लोगों को बहुत कुछ समझाना बुझाना पड़ा और विपक्षी नेता ग्लैडस्टन के कई संशोधन भी मानने पड़े।

## १६—घटनाओं का पर्यवेक्षण
## ( १८३२—६७ ई० )

अनाज विधानों को रद्द करने के समय के उपद्रवों और झगड़ों को छोड़कर सन् १८३२ ई० में लार्ड ग्रे के मन्त्रिमंडल के पतन से लेकर १८६७ ई० के सुधार विधान के पास होने तक ग्रेट ब्रिटेन की गृहनीति सामान्यतः शान्तिपूर्ण रही। इसका एक कारण तो यह था कि लिबरलों (ह्विग दल वालों) की प्रायः सभी सुधार योजनाएँ स्वीकृत हो चुकी थीं और अब न तो लिबरल और न कनजर्वेटिव ही को नया परिवर्तन होने देना चाहते थे। दूसरे इस युग के अन्त में ग्रेट ब्रिटेन का ध्यान वैदेशिक परिस्थितियों की ओर अधिक बँटा हुआ था। सबसे पहले तो १८४८ ई० के उपद्रव हुए जिनका वर्णन किया जा चुका है। फिर १८५४ ई० के कूटोपायों और मन्त्रणाओं के बाद क्राइमिया का युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध के समाप्त होते ही भारतवर्ष में सन् ५७ का ग़दर हुआ और १८५९ ई० में इतालवी एकता का युद्ध छिड़ा। सन् १८६१ में अमेरिका में गृह-युद्ध शुरू हुआ जिसके फल स्वरूप दक्खिनी रियासतों से कपास न आने के कारण लंकाशायर में घोर दुष्काल व्याप गया और बहुत से रुई के कारखाने बन्द हो गये। इसके बाद डेनमार्क के राजा का श्लेसविग और हॉल्सटाइन नामक डचियों को अपने राज्य में मिला लेने के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि सन् १८७१ ई० में आस्ट्रिया और प्रशिया ने डेनमार्क से युद्ध छेड़ दिया और उसे बुरी तरह हराया। फिर भी देश की शक्तियाँ दूसरी ही ओर लगी हुई थीं और इस युग के अन्तिम काल में व्यवसाय और निर्माणकार्य में बड़ी आश्चर्य-जनक और निर्विघ्न उन्नति हुई। इस उन्नति का प्रमाण थी हाईड पार्क वाली सन् १८५१ ई० की वह प्रदर्शिनी जिसमें सारे देश के व्यवसायियों और शिल्पियों ने बड़े उत्साह के साथ सहयोग किया।

साहित्य के क्षेत्र में टेनिसन और ब्राउनिंग, थैकरे और डिकिन्स तथा कार्लाइल और रस्किन की उत्कृष्ट रचनाएँ जनता के सामने आयीं और सन् १८५९ ई० में वैज्ञानिक अनुसन्धान और नयी विचारधारा के प्रवाह क्षेत्र में डारविन का 'प्राकृतिक चयन का सिद्धान्त' आश्चर्य-चकित संसार के समीप उपस्थित हुआ। यह सिद्धान्त नैसर्गिक विकास की घटनाओं पर अवलम्बित होने के कारण बड़ा कुतूहलोत्पादक सिद्ध हुआ और इसके सम्बन्ध में ख़ूब चर्चा चली।

हाई चर्च आन्दोलन—इस समय इंग्लैंड और स्काटलैंड दोनों देशों में चर्च सम्बन्धी विवादों ने बड़ा ज़ोर पकड़ रखा था। सन् १८३३ ई० में न्यूमन और केबल ने इंग्लैंड में हाई चर्च या आक्सफर्ड आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन का

उद्देश्य यह था कि चर्च ऑव इंग्लैंड की प्राचीन ईसाई युग से परम्परा स्थापित की जाय; कई प्राचीन तथा आधुनिक कालीन संस्कारों तथा धर्म-तत्वों का पुनरुद्धार किया जाय तथा चर्च को समय की आवश्यकतानुसार व्यवस्थित किया जाय। ब्राड चर्च और लो चर्च नामक विरोध पक्ष वालों का मत था कि हाई चर्च दल के चरम पन्थियों के मत पुनर्विधान के समय संस्थापित चर्च ऑव इंग्लैंड के सिद्धान्तों के बिलकुल खिलाफ़ पड़ते और चर्च ऑव रोम के पक्ष की ओर मिले मालूम होते थे। सन् १८४५ ई० में न्यूमन के कार्डिनल हो जाने से इस आक्षेप पर और रंग चढ़ गया क्योंकि उसने अब रोम के चर्च से सम्बन्ध तोड़ दिया था और उसका अनुकरण औरों ने भी किया। सन् १८५० से लेकर १८६५ ई० तक इन धार्मिक विवादों में जन-साधारण का ध्यान बहुत अधिक व्यस्त रहा। इससे चर्च ऑव इंग्लैंड को बहुत लाभ हुआ क्योंकि इन विचारों के कारण लोगों में खूब जोश फैला और यही कारण है कि इसी समय से चर्च ऑव इंग्लैंड की कार्य प्रणाली बहुमुखी ही नहीं बल्कि लोक-हितकारी भी रही।

स्काटलैण्ड का पार्थक्य (१८४३ ई०)—इस समय में स्काटलैंड में बड़ा धार्मिक आन्दोलन हुआ। १६८८ के आन्दोलन के बाद प्रेस्विटेरियन धर्म स्काटलैंड का राज्य धर्म निश्चित हो गया था। फिर भी समय-समय पर अनेक विरोध उत्पन्न होते रहते और विशेष कर सामान्य व्यक्तियों द्वारा नियुक्त किये हुए पादरियों की निर्वाचन प्रणाली के सम्बन्ध में। बहुत लोगों का यह मत था कि पादरियों की नियुक्ति का अधिकार कुछ व्यक्ति विशेषों के हाथ में रह कर पृथक्-पृथक धर्म संघों अथवा उनके प्रतिनिधियों के हाथ में होने चाहिए तथा उन्हें किसी नियुक्ति को रद करने का भी अधिकार होना चाहिए, परन्तु थोड़े से लोग इस संस्था में सम्मिलित नहीं हुए और उन्होंने अपना चर्च अलग रखा। यह प्रसंग पार्लियामेन्ट के सामने भी उपस्थित हुआ। गवर्नमेन्ट ने नियुक्ति भंग के अधिकार को स्वीकृत नहीं किया। इसका नतीजा यह हुआ कि सन् १८४३ ई० में स्काटलैंड के चर्च में विभेद हो गया और डाक्टर चामर्स के नेतृत्व में लोगों ने 'स्काटलैंड के चर्च' के नाम से एक नयी संस्था स्थापित कर ली। ६० वर्ष बाद सन् १९०० ई० में फ्री चर्च के बहुत से संयुक्त प्रेस्विटेरियन चर्च में सम्मिलित हो गये और 'संयुक्त फ्री चर्च' के नाम से प्रसिद्ध हुए। यह संयुक्त प्रेस्विटेरियन चर्च स्टेट चर्च से अलग एक दूसरा चर्च था। अन्ततोगत्वा बरसों के बाद चर्च के विषय में पार्लियामेन्ट में राजकीय हस्तक्षेप निवारक कई विधानों के पास हो जाने पर सन् १९२९ ई० में चर्च ऑव स्काटलैंड और संयुक्त फ्री चर्च, 'चर्च ऑव स्काटलैंड' के अन्तर्गत हो गये।

---

# अध्याय २२

## राजनीति और दलबन्दी ( ३ )

( १८६७—८८ ई० )

सन् १८१५ के बाद के राजनीतिक पर्यवेक्षण का तीसरा युग सन् १८६७ ( द्वितीय सुधार बिल ) से लेकर १८८६ ई० ( होमरूल बिल ) तक समाप्त होता है। सन् १८६७ के सुधार बिल ने एक युग का उद्घाटन किया। इस विधान के अनुसार सभी कर देने वाले गृहस्थों तथा १६ पाउंड प्रति वर्ष किराया देने वाले किरायेदारों को निर्वाचन अधिकार प्राप्त हो गये। अब काउन्टियों में १२ पौंड सालाना लगान देने वाले उन कृषकों को भी निर्वाचन अधिकार ( वोट ) मिल गया जो केवल भूमि को जोते हुए थे। साथ ही कस्बों और नगरों में रहने वाले व्यवसायी और कारीगर ( शिल्पी ) भी अब देश की राजनीति के निर्णायक हो गये। इसलिए राजनीतिक दलों को भी अपने नये भाग्य-विधाताओं की स्थिति के अनुकूल अपनी-अपनी राजनीति में परिवर्तन करना पड़ा। इस सब परिवर्तन का परिणाम यह निकला कि ह्विग दल की नीति निश्चय रूप से उदार हो गयी और उनकी सभाओं में अग्रगामी विचारकों की शक्ति बढ़ने लगी। अधिक उत्साही कनज़र्वेटिव अपने को टोरी लोक-तन्त्रवादी कहते और श्रमियों को मीठी मीठी बातों से अपनाने का प्रयत्न करते तथा उन्हें हर प्रकार की सान्त्वना देकर उनसे बड़े बड़े वायदे करते। फिर अब तो पुराने नेता भी नहीं रह गये थे। १८६५ ई० में लार्ड पामर्स्टन की मृत्यु हो गयी और सन् १८६६ में हाउस ऑव कामन्स में 'मिलीशिया' बिल पर हार जाने के बाद लार्ड जान रसल ने तथा १८६७ ई० का सुधार विधान स्वीकृत हो जाने के बाद डर्बी ने राजनीति से विरक्ति ले ली। लार्ड जार्ज बेन्टिक की सन् १८४२ में, सर राबर्ट पील की सन् १८५० में, ड्यूक ऑव वेलिंगटन की सन् १८५२ में तथा लार्ड एबर्डीन की १८६० ई० में मृत्यु हो चुकी थी। इसलिए अब बेंजामिन डिज़रायली और विलियम ईवर्ट ग्लेडस्टन के लिए प्रशस्त मार्ग खुला हुआ था।

**ग्लेडस्टन और डिज़रायली**—इंग्लैंड के इतिहास में एक ही समय शायद ही कभी दो इतने प्रतिभाशाली परन्तु विभिन्न प्रकृतियों के राजनीतिज्ञ हुए हैं। ग्लैड-स्टन एक उच्च स्काट कुल में उत्पन्न हुआ और ईटन और आक्सफ़र्ड में उस की शिक्षा-दीक्षा हुई। चर्च और राज्य के सम्बन्ध में हाई चर्च के सिद्धान्तों की विवेचना पर एक पुस्तक लिखने के कारण उसे बड़ी ख्याति मिली और वह अभी २३ बरस का भी न हुआ था कि उसे एक परम उग्र-विचारवादी टोरी सज्जन की जगह एक 'पाकेट-

वरा' से पार्लियामेन्ट में प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हो गया। कुछ ही समय बाद उसे पील से कनज़र्वेटिव मन्त्रिमंडल में एक मन्त्री का पद मिल गया और 'कार्न लाज' के रद्द होने के समय वह पील का समर्थक बन गया। धीरे-धीरे वह लिबरल बना और एबर्डीन और पामर्स्टन मन्त्रिमंडल में ख़जाने के चान्सलर की हैसियत से बजट पर उसने जो भाषण किये वे सदा प्रसिद्ध रहेंगे।

डिजरायली का दादा था इटालियन यहूदी और उसका पिता एक प्रमुख साहित्यिक। १५ बरस की अवस्था में ही उसने पढ़ना-लिखना बन्द कर १७ वर्ष की आयु में एक सालेस्टर के यहाँ नौकरी कर ली। २१ वर्ष की आयु में उसने 'विवियन ग्रे' नाम का अपना पहला उपन्यास प्रकाशित कराया जिसने उसे लंडन के समाज में प्रख्यात कर दिया। फिर उसके घुँघुराले लम्बे-लम्बे बाल, उँगलियों में कई कई छल्ले अँगूठियाँ और भड़कीली वास्कटें पहनने के शौक़ ने लंडन के फैशनेबिल समाज में उसका एक विशिष्ट स्थान बना दिया था। एक महिला ने जो एक भोज में उसके पास बैठी थी उसकी वेशभूषा का वर्णन करते हुए लिखा है 'डिजरायली साटन के अस्तर दार काली मखमल का कोट और बैंगनी रंग का पतलून पहने हुए था जिसकी बाहर की सीवन पर ऊपर से लेकर एँड़ी तक एक सुनहली पट्टी लगी हुई थी। उसकी वास्कट गहरे लाल रंग की थी और हाथों में सफेद दस्तानों के ऊपर वह कई चमकदार नगों की अँगूठियाँ पहने था।' चार बार पार्लियामेन्ट में प्रवेश करने के विफल प्रयत्न करने के बाद आख़िर वह १८३७ ई० में कामन्स सभा का सदस्य हो गया और जब उसने अपना पहला भाषण दिया तो लोगों ने उसका खूब मज़ाक बनाया। इस पर डिजरायली ने खीझकर कहा, 'आज तो मैं बैठा जाता हूँ परन्तु वह समय भी शीघ्र आयगा जब आप लोगों को मेरी बातें सुननी पड़ेंगी।' वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। सन् १८४६ में अनाज विधानों को रद्द करते समय उसकी श्रेष्ठता का पता चल गया और वह संरक्षतावादी दल का प्रमुख परामर्शदाता बन गया। कुछ समय तक तो उसके दल वालों का उस पर विश्वास न था, परन्तु सन् १८४६ से लेकर १८६६ ई० तक २० बरस के कनजर्वेटिव विरोध के जमाने में जो अद्भुत योग्यता डिजरायली ने प्रदर्शित की वह अब इतिहास प्रसिद्ध बात हो गयी है।

ग्लैडस्टन और डिजरायली के वाद-विवाद कई वर्ष तक इंग्लैंड की राजनीति की प्रमुख घटना रहे और सारे देश का अनुराग इन्हीं दोनों व्यक्तियों के विवादों पर केन्द्रित रहा। डिजरायली राज्य के कुलीनों का नेता था और ग्लैडस्टन प्रगतिशील लिबरलों का। दोनों व्यक्तियों में अपने-अपने समर्थकों को प्रोत्साहन देने और उन्हें दृढ़ रखने तथा अपने विरोधियों में अविश्वास उत्पन्न करने की अभूतपूर्व शक्ति थी। दोनों ही अपूर्व योग्यता रखते थे और राजनीति को छोड़ कर अन्य क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा के कारण प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। डिज़रायली उपन्यास लेखक था और कदाचित् अपने समय के राजनीतिक उपन्यास लेखकों में सबसे सफल और सिद्धहस्त

था। 'कुनिंग्सबी' और 'सिबिल' उसके दोनों राजनीतिक उपन्यास उसकी इस विद्वत्ता और प्रतिभा के उत्तम उदाहरण हैं। ग्लैडस्टन अद्भुत विभिन्न रुचि-सम्पन्न और अद्वितीय अनुरक्तिपूर्ण व्यक्ति था। कहा जाता है कि टामस कार्लायल के बाद उसके बराबर विभिन्न विषयों का पढ़ने वाला, बड़ी प्रचुरता से मिलने वाला और अपूर्व कौशल से वार्तालाप करने वाला दूसरा कोई न था। दृढ़ विश्वासी, महान् साहसी, मिष्ठ और ओजस्वी वक्ता ग्लैडस्टन अपने प्रवाहपूर्ण अभिभाषणों में अपनी भाषा और अपने शब्दों पर इतना नियन्त्रण रखता था कि उसके बराबर अपने श्रोताओं पर ऐसा अद्भुत प्रभाव डालने वाला वक्ता दूसरा कोई नहीं हुआ। इसके साथ-साथ वह असाधारण योग्यता का राजनीतिज्ञ था जिसका अध्यवसाय और विस्तीर्ण ज्ञान साधारण मनुष्यों की पहुँच से बाहर था। डिज़रायली बड़े चुने हुए शब्दों में ऐसी मीठी चुटकियाँ लेता था कि उसके श्रोता मुग्ध हो जाते थे। उसके व्यंगपूर्ण हृदयवेधी वाक्य और मनोरंजक चुटकुले सुनने वालों पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते थे। वह बड़ा कल्पनाशील व्यक्ति था और उसके निर्देश प्रायः सभी सत्य उतरे हैं। अपने दल के, सभी दल के सभी सदस्यों से वह अधिक सुदूरचेता और अनुभवी द्रष्टा था। एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ का कहना है कि अगर लोग इस बात से आकर्षित होते थे कि ग्लैड-स्टन किसी विशेष विषय पर क्या कहता है तो वे इस बात के प्रयत्न से प्रमुग्ध हो जाते थे कि डिज़रायली के उस विषय में क्या विचार हैं। ब्रिटेन की जनता डिजरायली के भावों को कभी पूर्णतः न समझ सकी और वह बिशप के शब्दों में 'अँगरेजी राज-नीति का रहस्यपूर्ण पुरुष' था और इसी रहस्यमयिता के कारण उसे इतनी प्रबल शक्ति प्राप्त हो गयी थी।

डिज़रायली का मन्त्रिमंडल—सन् १८६८ में लार्ड डर्बी के पदत्याग करने पर डिज़रायली प्रधान मन्त्री हो गया उसी वर्ष नया निर्वाचन हुआ और डिजरायली की आशा के विरुद्ध १८६७ ई० के सुधार विधान द्वारा अधिकार प्राप्त वोटरों ने लिबरल दल का खूब समर्थन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि हाउस ऑव कामन्स में लिबरलों का प्राधान्य हो गया और डिजरायली को पद त्याग करना पड़ा।

ग्लैडस्टन का मन्त्रिमंडल (१८६८-७४ ई०) अब अगले पाँच साल तक ग्लैडस्टन मन्त्रिमंडल का प्रधान रहा। इस मन्त्रिमंडल में तेजस्वी परन्तु निर्विवेकी लो खजाने का चान्सलर, कार्डवेल युद्ध सचिव और उग्रदल का नेता ब्राइट बोर्ड ऑव ट्रेड का प्रधान और लार्ड क्लैरेंडन वैदेशिक मन्त्री थे। ब्राइट ने १८७० ई० में इस्तीफा दे दिया और उसी वर्ष लार्ड क्लैरेंडन का देहान्त हो गया। उसके बाद लार्ड ग्रेनविल जो हाउस ऑव लार्ड्स में लिबरलों का नेता था वैदेशिक मन्त्री हो गया। इस मन्त्रिमंडल ने बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। सन् १८३० में लार्ड ग्रे के मन्त्रिमंडल के बाद सन् १८७० में प्रारम्भिक शिक्षा विधान पास हुआ जिसके

अनुसार १३ वर्ष तक की आयु के बालकों की शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी और जनता द्वारा निर्वाचित स्कूल बोर्ड स्थापित किये गये। आक्सफर्ड और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयों के फैलो और छात्रवृत्ति पाने वालों के लिए धार्मिक परीक्षा देने की व्यवस्था हटा दी गयी। व्यवसाय संघ या ट्रेड यूनियन वैधानिक संस्थाएँ बन गयीं और 'बैलट ऐक्ट' पास करके पार्लियामेन्ट के सदस्यों के गुप्त निर्वाचन की प्रथा स्वीकृत हो गयी।

सेना में सुधार—इसी बीच में सैन्य सचिव कार्डवेल ने ब्रिटिश सेना की व्यवस्था में क्रान्तिकारी सुधार उपस्थित कर दिये। अफ़सरी पद की नियुक्ति का विक्रय बन्द कर दिया गया। सैनिकों की भर्ती नियत समय के लिए होने लगी और १२ बरस सैनिक नौकरी पर्याप्त कर दी गयी। इस व्यवस्था के अनुसार सैनिकों को ३ बरस से लेकर ८ बरस तक सेना में काम करना पड़ता था और ४ बरस से लेकर ६ बरस तक रिज़र्व में रहना पड़ता था। इस व्यवस्था का यह परिणाम हुआ कि सेना में युवक सैनिकों की संख्या निश्चित हो गयी और आपत्तिकाल में देश की सेवा के लिए रक्षित सेना की पर्याप्त संख्या प्राप्त होने का सुप्रबन्ध हो गया। इसके बाद बटैलियनों को ग्रन्थिबद्ध करने की प्रथा (लिंक्ड बटैलियन सिस्टम) ग्रहण की गयी। इसके अनुसार अगर किसी बटैलियन का एक रेजिमेन्ट विदेश में रहता तो प्रायः उतनी ही संख्या का दूसरा रेजिमेन्ट ब्रिटेन में मौजूद होता। आयरलैंड की समस्याओं पर ग्लैडस्टन ने सबसे अधिक ध्यान दिया और 'आयरी चर्च ऐक्ट' और 'लैण्ड ऐक्ट' इसी समय विधान बन गये।

ग्लैडस्टन मन्त्रिमंडल की भर्त्सना—लोगों का यह विश्वास है कि सुधार करा लेने में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद सुधारकों का जोश घट जाता है और उनकी संख्या भी कम हो जाती है। ग्लैडस्टन के मन्त्रित्वकाल में वैधानिक सुधार का कार्य निरन्तर चलता रहा; इससे बहुत से लोग सशंकित हो उठे और वे अब अधिक सुधारों के पक्ष में न रहे वे अब शान्ति चाहने लगे। गवर्नमेन्ट के सुधार प्रस्तावों से मर्यादित पक्ष के लोग भयभीत होने लगे परन्तु उसके सुधार कार्यों ने लिबरल पार्टी के उग्र मतावलम्बियों को इसलिए सन्तुष्ट नहीं कर पाया कि इन पर पहले तो लार्ड सभा प्रतिबन्ध लगा देती थी और अगर वहाँ से भी किसी प्रकार निस्तारा हो जाता तो केबिनेट के ह्विग सदस्य उन पर लीप-पोत कर देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा ऐक्ट में धार्मिक विषय पर जो समझौता हुआ उससे नानकनफार्मिस्ट लोग असन्तुष्ट थे। इसी प्रकार के अन्य छोटे छोटे मामलों पर लोकमत बिगड़ उठा और मन्त्रिमंडल के पक्ष में बिलकुल न रह गया था। दियासलाइयों पर टैक्स लगाने के प्रस्ताव का ईस्ट लन्दन के दियासलाई के कारखानों में काम करने वालों ने यह कह कर बड़ा विरोध किया कि उनकी जीविका को इस टैक्स से बड़ी क्षति पहुँचेगी और एक बड़ा जुलूस निकाला। इसी प्रकार बियर बेचने वालों पर जब गवर्नमेन्ट ने लाइसेन्स लगाने के लिए 'लाइसेन्सिंग बिल' पेश किया तो उसका भी खूब विरोध हुआ। फिर लार्ड

ग्रैनविल की देख रेख में गवर्नमेन्ट की वैदेशिक नीति भी कुछ अधिक सजग नहीं थी और उसकी प्रगति भी बड़ी धीमी थी। इसी प्रकार सन् १८७० के फ्रान्सीसी-जर्मन युद्ध में ब्रिटेन की मध्यस्थता क्राइमन युद्ध के बाद की सन्धि तोड़ने पर भी ब्रिटेन की रूस-सम्बन्धी नीति, तथा 'अलाबामा' वाले मामले में हरजाने पर युनाइटेड स्टेटस ऑव अमेरिका के साथ ब्रिटेन की मन्त्रणाएँ यद्यपि विचारपूर्वक की गयीं फिर भी असफल ही रहीं।

कनज़र्वेटिव दल के नेता डिज़रायली ने इस देशव्यापी असन्तोष का पूरा-पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की। ग्लैडस्टन के समय की आयरलैंड की व्यवस्था के सम्बन्ध में उसका कहना था कि 'इस शासन ने लोगों को जायदाद की जब्तियों को वैधानिक बना दिया है, उनके तीर्थ स्थानों को अपवित्र करने के कलुषित कार्यों को धार्मिकता का जामा पहना दिया है और देश द्रोह के कार्यों को क्षमा प्रदान कर दी है' उसने देशवासियों को अपनी साम्राज्य-सम्बन्धी महत्ता को समझने के लिए प्रोत्साहित किया और यह बतलाया कि कनजर्वेटिव दल की नीति का लक्ष्य है अपनी संस्थाओं, तथा अपने साम्राज्य की रक्षा करना अपनी जनता की दशा को सुधारना।

डिज़रायली मन्त्रिमंडल ( १८७४-८० ई० )—सन् १८७४ में केबिनेट से मतभेद के कारण ग्लैडस्टन ने एकाएक बिना अपने साथियों की सलाह लिये पार्लियामेन्ट भंग कर दी। निर्वाचन में कनज़र्वेटिव विजयी हुए। ग्लैडस्टन ने पद त्याग कर दिया और डिजरायली प्रधान मन्त्री हो गया। पील के मन्त्रिमंडल के बाद अब पहली बार कानज़र्वेटिव के हाथ में वस्तुतः शक्ति आयी थी और लिबरलों और आयरियों की संयुक्त शक्ति पर उसका ५० का बहुमत था। उनके पक्ष में बहुमत इतना पर्याप्त तो था कि वे किसी भी डिवीजन के समय अचानक न हराये जा सकते थे, परन्तु यह इतना सबल नहीं था कि वे अपने सदस्यों की व्यक्तिगत विचार की स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित कर सकते। फिर डिज़रायली बड़ा योग्य नेता था। मैल्बोर्न को छोड़कर और कोई मन्त्री उससे अधिक महारानी का विश्वासपात्र न बन सका था। सन् १८७६ ई० में डिज़रायली अर्ल ऑव बेकन्सफ़ील्ड बनकर हाउस ऑव लार्ड्स का सदस्य हो गया। ग्लैडस्टन रानी को स्त्री न मानकर एक राजकीय विभाग की तरह उससे बर्ताव करता था; परन्तु डिजरायली रानी विक्टोरिया के साथ बड़ी सहानुभूति के साथ पेश आता था और यही कारण था कि डिजरायली की मृत्यु हो जाने पर भी रानी उसे अपने 'परम प्रिय मित्र' की भाँति याद करती रही। इस मन्त्रिमडल में पिछले प्रधान मन्त्री डर्बी का पुत्र लार्ड डर्बी वैदेशिक मन्त्री, लार्ड सालसबरी भारत मन्त्री, स्वायत्तशासन का कुशल जानकार क्रौस गृह मन्त्री, और सर स्टैफर्ड नार्थकोट चान्सलर ऑव एक्सचेकर थे।

लिबरल और आयरी दलों का विरोध—इस समय विरोध-पक्ष दुर्बल था

ऐसे समय सभा भवन में आ जाता था कि उसके उत्तराधिकारी प्रधानमन्त्री लार्ड हार्टिंगटन ( बाद में ड्यूक ऑव डेवनशायर ) बड़ी उलझन में पड़ जाता। फिर हार्टिंगटन के नेतृत्व में ह्विग और जोजेफ़ चेम्बरलेन के नेतृत्व में 'रैडिकल्स' से बहुधा मतभेद रहता था। इनमें चेम्बरलेन बड़ा रौबदार व्यक्ति था। आयरी दल की अड़चन डालने की नीति के कारण कनजर्वेटिव दल वालों को पार्लियामेन्ट का काम चलाने में इसका और भी बड़ी कठिनाई उपस्थित होती थी कि आयरी सदस्य आयरलैण्ड सम्बन्धी मामलों पर ध्यान आकृष्ट करने और अपने देश के लिये 'होमरूल' या स्वराज्य की माँग पेश करने की नियत से और सब कामों में अड़चन डालते रहना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझते हैं और फिजूल की छोटी छोटी बातों पर वाद विवाद करने में सारा समय नष्ट कर डालते थे। एक सदस्य के शब्दों में आयरी दल का मुख्य कार्य था सरकारी काम के समय अपनी नीति के अनुसार काम करना, सरकारी काम के समय को व्यर्थ गँवाने में सहायता देना, किसी भी बिल के पेश होते ही उसे रोक देने या गिरा देने की चेष्टा करना तथा जहाँ कहीं गवर्नमेन्ट की कमजोरी पाना उससे लाभ करना। इस नीति के अनुसार कभी-कभी तो एक ही सदस्य एक ही सेशन में ५०० बार तक भाषण करता था।

डिजरायली मन्त्रिमंडल की नीति—फिर भी कनजर्वेटिव गवर्नमेन्ट ने अपने देशवासियों की दशा में सुधार करने के अपने वचन का पालन किया और १८७५ ई० में दो महत्वपूर्ण ऐक्ट पास किये। पहला ऐक्ट था संयुक्त-विधान या 'कम्बिनेशन ऐक्ट' जिसके लिए एक लेबर नेता का कहना था कि श्रमजीवियों के लिए तो वह औद्योगिक स्वतन्त्रता का चार्टर या 'प्रमाणपत्र' था। दूसरा ऐक्ट था लोकस्वास्थ्य-विधान या सन् १८७५ ई० का 'पब्लिक हेल्थ ऐक्ट' जिसका आधुनिक रोग-नियन्त्रिक औषधियों की उन्नति में एक प्रधान स्थान है। इसके बाद १८७६ ई० में 'मर्चेन्ट शिपिंग' व्यापारी जहाजरानी के सम्बन्ध का ऐक्ट पास हुआ जिसके अनुसार 'बोर्ड ऑव ट्रेड' को जहाजों के निरीक्षण का अधिकार मिल गया। इसे व्यापारी जहाजों के मल्लाहों की रक्षा का 'चार्टर' कहा जा सकता है। 'आर्टिजन्स ड्वेलिंग' श्रमजीवियों की इम्प्रूवमेन्ट सम्बन्धी ऐक्ट ने स्थानीय सरकार को अस्वास्थ्यकर घरों को गिरा देने और उनके स्थान पर नयी इमारतें बनवाने का अधिकार दे दिया। किन्तु डिजरायली के शासन का महत्व प्रधानतः वैदेशिक नीति तथा साम्राज्य विषयों के सचालन के कारण है। अफ्रीका और भारतवर्ष में इस समय बड़ी महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं और सन् १८७६ ई० में लोकरुचि निकटपूर्व की घटनाओं की ओर खिंच गयी। तुर्कों द्वारा ईसाइयों पर किये गये अत्याचारों ने ग्लैडस्टन को विरक्ति में भी विचलित कर दिया। उधर सन् १८७८ ई० की बर्लिन की सन्धि को, जिसे डिजरायली ने इंग्लैंड के लिए बड़ी सम्मानपूर्ण बनाया, बहुत कुछ लोक सहमति मिली।

बेकन्सफ़ील्ड के पतन के कारण ( १८८० ई० )—बर्लिन की सन्धि के

दो वर्ष बाद सन् १८८० ई० में लार्ड बेकन्सफील्ड का मन्त्रिमंडल फिर देशव्यापी निर्वाचन में जनता के सामने उपस्थित हुआ किन्तु हार गया। उसकी हार के कई कारण थे। यदि ग्लैडस्टन की साम्राज्य-नीति बहुत शिथिल कही जा सकती थी तो बेकन्सफील्ड की बहुत दुस्साहसपूर्ण। इसके अतिरिक्त लिबरलों का संगठन अब अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में खूब व्यवस्थित था। कई साल से फसल अच्छी न होने तथा व्यापार की मन्दी से भी तत्कालीन सरकार की ख्याति को बड़ा आघात पहुँचा था। फिर सबसे ऊपर राजनीति में ग्लैडस्टन के प्रत्यागमन ने लिबरलों को बहुत उत्साहित कर दिया था। ७० वर्ष से अधिक आयु होने पर भी उसने आश्चर्यजनक शक्ति का परिचय दिया। जहाँ कहीं वह गया उसको विजय मिली। इस निर्वाचन में लिबरलों ने ५० के पिछले अल्पमत को १६६ के बहुमत में परिणित कर दिया। इस बहुमत में ७० आयरी नेशनलिस्ट सदस्य भी सम्मिलित थे।

ग्लैडस्टन का द्वितीय मन्त्रिमंडल (सन् १८८०-८५ ई०)—लार्ड बेकन्सफील्ड के पदत्याग करने पर रानी ने लार्ड हार्टिंग्टन को, जो नाम के लिए लिबरल नेता था, मन्त्रिमंडल बनाने के लिए आमन्त्रित किया। किन्तु यह स्पष्ट था कि ग्लैडस्टन के अतिरिक्त और कोई अब लिबरल दल का नेतृत्व नहीं कर सकता था। इसलिए लार्ड हार्टिंग्टन ने मन्त्रिमंडल बनाने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। तब ग्लैडस्टन को बुलाया गया और उसने अपना मन्त्रिमंडल बनाया। अगले पाँच वर्षों में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं और ग्लैडस्टन मन्त्रिमंडल को उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करना पड़ा। आयरलैंड की जनसाधारण का ध्यान बराबर आकृष्ट रहा। आयरलैंड के राष्ट्रीय नेता पार्नेल और उसके अनुयायियों की अडंगा नीति ने यह आवश्यक कर दिया कि हाउस ऑव कामन्स की कार्यवाही के नियमों में परिवर्तन किया जाय। फिर आयरलैण्ड के किसान विद्रोहों ने दमन भी आवश्यक कर दिया। सन् १८८२ ई० में डबलिन के निकट फीनिक्स पार्क में आयरी सेक्रेटरी लार्ड फ्रेड्रिक कैवेंडिश की हत्या हुई। उधर सन् १८८१ ई० में दक्खिनी आफ्रिका में पहला बूअर युद्ध छिड़ गया जिसमें मजूबा पहाड़ी पर अँगरेजों की करारी हार हुई। सन् १८८० ई० में पच्छिमी आफ्रिका में प्रदेश हरण की नीति प्रारम्भ हो गयी और युरोपियन जातियों में छीना झपटी होने लगी। सन् १८८२ ई० में मिस्र देश में अरबीपाशा का विद्रोह दबाने के लिए फ्रान्सीसियों के इनकार कर देने पर भी अँगरेजों ने स्कन्दरिया के ऊपर बम वर्षा की। सन् १८८५ ई० में खारतूम में घिर जाने पर बड़ी वीरता और अपूर्व साहस के साथ ३१७ दिन तक किले की रक्षा करने के बाद जनरल गार्डन की मृत्यु हो गयी। उधर भारतवर्ष में अफ़गानों के विरुद्ध रूस की नीति ने सन् १८८४ ई० में युद्ध की सी स्थिति उपस्थित कर दी। इतनी कठिनाइयों में भी शासन व्यवस्था का स्थिर बना रहना बड़ा कठिन था। फिर भी ग्लैडस्टन ने सन् १८८१ ई० में दूसरा आयरी भूमि-विधान पास करा दिया। फिर

रानी विक्टोरिया की सहायता से विपक्षी दल की अनुमति प्राप्त कर १८८४ ई० का सुधार-बिल पास करा दिया जिसके अनुसार किसानों तथा मज़दूरों को भी वोट का अधिकार मिल गया और 'निर्वाचन क्षेत्रों' की पुनर्व्यवस्था हो गयी।

इन आपत्तियों के समय भी ग्लैडस्टन की केबिनेट एकमत न थी। पुराने ढंग के ह्विग लिबरलों में से लार्ड हार्टिंग्टन इंडिया आफिस में और लार्ड ग्रेनविल वैदेशिक मन्त्री रहा। रेडिकल दल के प्रतिनिधि जॉन ब्राइट और जोजेफ चेम्बरलेन भी मन्त्रिमंडल में थे। पुराने ह्विगों और रेडिकलों के भावों में बहुत वैमनस्य था इसलिए उनका समन्वय कठिन था। पदत्याग की धमकियों की आशंका बराबर बनी रहती थी और ऐसे अनमिल और बेजोड़ मन्त्रिमंडल में एक मत उपस्थित करना बड़ा कठिन कार्य हो गया था। यही कारण था कि लार्ड हार्टिंग्टन को हर अवसर पर अपने रेडिकल साथियों का हठ मानना और उनसे समझौता करना पड़ता था। इस पर भी कहा जाता है कि एक महीने में केबिनेट के नौ सदस्य पदत्याग करने का विचार कर रहे थे और तीन ने तो, जिनमें जॉन ब्राइट भी शामिल था, वस्तुतः पद त्याग कर ही दिया था। यद्यपि सर स्टफ़र्ड नार्थकोट की अध्यक्षता में विपक्ष बहुत निर्बल हो रहा था फिर भी चार कनज़र्वेटिव जो अपने को चतुर्थदल कहते थे और जिनमें लार्ड रेन्डोल्फ़ चर्चिल तथा लार्ड बालफोर भी शामिल थे ( जो आगे चलकर बहुत प्रसिद्ध हुए ) गवर्नमेन्ट की नीति पर, कठोर आक्रमण करते रहे।

**आयरी होमरूल बिल**—आख़िर १८८५ में एक छोटे से प्रसंग पर ग्लैडस्टन हार गया और उसने पदत्याग कर दिया। मार्क्विस ऑव सालसबरी ने उसका पद ग्रहण किया, किन्तु वह थोड़े ही दिन मन्त्री रहा। १८८६ ई० के बड़े निर्वाचन में ग्लैडस्टन फिर सफल हो गया और उसने अपना तृतीय मन्त्रिमंडल बनाया। किन्तु इस बार भी आयरलैंड के प्रश्न ने ग्लैडस्टन का पतन करा दिया। अब ग्लैडस्टन यह विश्वास करने लगा था कि आयरी प्रश्न का एक मात्र हल होमरूल ही है जिसके अनुसार आयरलैंड को अपनी पार्लियामेन्ट का अधिकार मिल जायगा और केवल स्थल जल सेना, विदेशों से आने वाले और वहाँ के जाने वाले माल पर चुंगी और वैदेशिक नीति निर्धारण में ब्रिटिश राज्य का अधिकार रहेगा। उद्देश्य से उसने अपना आयरी होमरूल बिल उपस्थित किया किन्तु इसका परिणाम उसकी नीति और उसके समर्थक दल के लिए विघातक सिद्ध हुआ। लार्ड हार्टिंग्टन, चेम्बरलेन और ब्राइट, आदि उसके बहुत से समर्थकों ने उसका साथ छोड़ दिया। होमरूल के विरोधियों को भय था कि इस बिल के पास हो जाने पर प्रोटेस्टेन्ट तथा उत्तर आयरलैंड के अन्य प्रगतिशील निवासियों तथा राजपक्ष के अन्य मतावलम्बी प्रोटेस्टेन्टों को रोमन कैथोलिकों की धर्मान्धता की वेदी पर बलि दे दी जायगी। वे होमरूल को आयरलैंड और इंग्लैंड के पार्थक्य का प्रथम चरण समझते थे। यही कारण था कि हाउस ऑव कामन्स में वह बिल तीस वोट से रद्द हो गया। ग्लैडस्टन ने फिर निर्वाचन

की शरण ली परन्तु वह हार गया और लार्ड सालसबरी के हाथ में पुनः देश की बागडोर आ गयी।

---

# अध्याय २३

## राजनीति और दलबन्दी (४)

### ( १८८६-१९१४ ई० )

**लिबरल पार्टी का ह्रास**—सन् १७८६ से शुरू होकर १९१४ ई० तक इस युग का अगला चरण माना जाता है, परन्तु सबसे पहले इंग्लैण्ड के राजनीतिक दलों के भाग्य-निर्णय के विषय में भी एक शब्द कहना चाहिए। होमरूल बिल पास कराने की चेष्टा से कुछ समय के लिए लिबरल दल को अस्त-व्यस्त कर दिया, यह सत्य है, परन्तु १८९२ ई० में उनके हाथ में फिर राज्य-शक्ति आ गयी। इसी बीच में ग्लैडस्टन बराबर लिबरल दल का नेतृत्व करता रहा और आख़िर सन् १८९२ में उसने अपना चतुर्थ मन्त्रिमंडल निर्माण किया। चौथी बार १८१४ ई० में उसने अपना आयरी होमरूल बिल फिर पेश किया और इस बार फिर हार जाने पर उसने राजकार्य से विरक्ति ग्रहण कर ली। लॉर्ड रोज़बरी अब प्रधान मन्त्री हो गया; किन्तु १८९५ ई० में हार जाने पर उसने भी पद त्याग कर दिया। उसके मन्त्रित्वकाल में ही धन-सम्पत्ति या जायदाद के मूल्य के अनुपात से वर्तमान 'मृत्यु-कर' लगा। वह स्वयम् इस कर के पक्ष में न था और यही कारण था कि अपने दल में विरोध होने पर लार्ड रोज़बरी को मन्त्री पद से विरत होना पड़ा और सर हेनरी केम्पबेल बेनरमैन उसके स्थान पर प्रधान मन्त्री हुआ। १८९९ ई० के दक्खिनी आफ्रिका के युद्ध ने इस मतभेद को और आगे बढ़ा दिया और जब तक बोअर युद्ध का अन्त न हो गया लिबरल दल का पुनरुत्थान न हो सका।

**यूनियनिस्ट दल का विकास ( १८३६-९२ )**—इस समय आयरलैण्ड में होमरूल के विरोधियों में जो अपने को यूनियनिस्ट कहते थे, तीन दल शामिल थे। पहला दल था कनजर्वेटिव पार्टी का जिनका नेता लॉर्ड सालसबरी था। दूसरे दल में वे सब ह्विग शामिल थे जिनका नेता लार्ड हार्टिंग्टन था और तीसरा दल था रेडिकल या अग्रनीतिवादियों का जिनका नेता जोज़ेफ चेम्बरलेन था। हार्टिंग्टन और चेम्बरलेन के दल अपने को लिबरल यूनियनिस्ट कहते थे। पहले पहल तो कनजर्वेटिव तथा लिबरल यूनियनिस्टों में अधिक मेलजोल न था; इसीलिए १८८६ ई० में। लॉर्ड सालसबरी के मन्त्रिमंडल में सब मन्त्री कनजर्वेटिव ही थे। लॉर्ड रैन्डाल्फ चर्चिल, सर माइकेल हिक्सबीच, और आर्थर बाल्फ़ोर इसमें सम्मिलित थे किन्तु लॉर्ड रैन्डोल्फ चर्चिल ने, जो ख़ज़ाने का चान्सलर तथा हाउस ऑव कामन्स का नेता था और अपने

ओजस्वी भाषणों और सामाजिक सुधारों के आदर्शों के कारण लोकप्रिय था, १८८७ ई० में अकस्मात पद त्याग कर दिया, क्योंकि वह जल और स्थल सेना पर अधिक व्यय के पक्ष में न था। अब उसके पद पर गोशेन नियुक्त हुआ। वह बड़ा योग्य व्यक्ति था और लिबरल यूनियनिस्ट दल का था। उसके मन्त्रिमंडल की विशेष घटनाएँ हैं, काउन्टी काउन्सिल ऐक्ट, आफ्रिका के बँटवारे पर बहुत दिनों तक चलने वाली युरोपीय राज्यों की कशमकश तथा आयरलैण्ड में आर्थर बाल्फ़ोर का सफल शासन।

लॉर्ड साल्सबरी का दूसरा मन्त्रिमंडल ( १८९५-१९०२ ई० )—हम यह बात अभी पढ चुके हैं कि लॉर्ड साल्सबरी सन् १७८६ से १८९२ ई० तक मन्त्री रहा, और फिर ग्लैण्डस्टन उसके स्थान पर मन्त्री हुआ। पर १८९५ ई० में जब वह तीसरी बार प्रधान मन्त्री हुआ तो यूनियनिस्टों की सन्धि ने अब एक संयुक्त दल का रूप धारण कर लिया था। इस प्रकार एक ऐसे संयुक्त शासन मंडल की व्यवस्था हुई जिस में आर्थर बाल्फ़ोर, सर माइकेल हिक्सबीच, ड्यूक ऑव डेवनशायर ( लार्ड हार्टिंग्टन ) जोज़ेफ चेम्बरलेन, और गोशेन सम्मिलित थे। इस मंत्रिमंडल की प्रधान घटनाएँ हैं 'वर्कमैन कम्पेन्सेशन' या श्रमजीवियों को मुआविज़ा देने का ऐक्ट, जोजेफ चेम्बरलेन के समय की औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था, तथा दक्खिनी आफ्रिका का युद्ध।

लॉर्ड बाल्फोर का मन्त्रिमंडल ( १९०२-०५ ई० )—१९०२ ई० में लार्ड साल्सबरी के मन्त्री पद से विरत होने पर उसका भतीजा लॉर्ड आर्थर बाल्फोर प्रधान मन्त्री हो गया। इस मन्त्रिमंडल ने १९०२ का शिक्षा विधान पास किया; सन् १९०५ में फ्रान्स के साथ मित्रता स्थापित की तथा जापान के साथ सन्धि की। किन्तु इसी बीच में स्तवन्त्र व्यापार और संरक्षकता के पुराने प्रश्न पर कठिनाई उपस्थित हो गयी। सन् १९०३ में जोज़ेफ चेम्बरलेन ने समुद्र पर आने जाने वाले माल पर चुंगी की दर की नीति के सुधार के लिए एक प्रस्ताव उपस्थित किया। इसका उद्देश्य था अपने देश के कारोबार को प्रोत्साहित करना तथा साम्राज्य भर में रियायती चुंगी की पद्धति द्वारा इंग्लैण्ड और साम्राज्य की ग्रन्थियों को अधिक दृढ़ बनाना। इस प्रस्ताव के उपस्थित होते ही यूनियनिस्ट दल भंग हो गया। चेम्बरलेन ने स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी नीति का समर्थन करने के लिए मन्त्री-पद से विरति ले ली; ड्यूक ऑव डेवनशायर तथा अन्य मन्त्रियों ने इस नीति के प्रति बाल्फोर की सहानुभूति के कारण पद त्याग कर दिया। इस प्रकार यूनियनिस्ट दल के मतभेद तथा चुंगी-सुधार के विरोध के परिणाम स्वरूप १९०६ ई० में लिबरलों की बड़ी शानदार विजय हुई और यूनियनिस्ट शासन का, जो इतने दिनों से चला आ रहा था, अन्त हो गया।

लॉर्ड साल्सबरी—सन् १९०२ में लार्ड साल्सबरी ने तथा १९०६ ई० में जोज़ेफ चैम्बरलेन ने राजनीति से विरक्ति ले ली और इस प्रकार इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन से दो महान विभूतियाँ हट गयीं। सन् १८५४ में २४ वर्ष की आयु में लार्ड साल्सबरी लार्ड राबर्ट सेसिल की उपाधि से स्टैम्फ़ोर्ड की ओर से हाउस ऑव कामन्स

का सदस्य हुआ था। यह भी एक संयोग की बात है कि लार्ड साल्सबरी का पूर्वज रानी एलिजेबेथ का मन्त्री लार्ड बर्ल भी स्टेम्फ़ोर्ड की ओर से २७ बरस की आयु में कामन्स सभा का सदस्य हुआ और प्रायः ५० बरस तक लोकसेवा में लगा रहा। उसी के वंशज लार्ड साल्सबरी ने भी अपने जीवन के ४० बरस सार्वजनिक कामों में व्यतीत किये। वह कहा करता था कि १४ वर्ष तक हाउस ऑव कामन्स के सदस्य के रूप में वह प्रत्येक मनुष्य का विरोधी और प्रत्येक पुरुष उसका विरोधी रहा था। अपने मत की स्वतन्त्रता की निर्भीक अभिव्यक्ति द्वारा उसने शीघ्र ही बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली थी। क्वार्टरली रिव्यू में उसने कई श्रेष्ठ राजनीतिक लेख लिखे जो स्पष्टवादिता और साहित्यिक सुरुचि के विचार से अद्वितीय समझे जाते हैं। १८६६ ई० में उसने अपने पिता के स्थान पर हाउस ऑव लार्ड्स में प्रवेश किया। सन् १८५५ में डिज़रायली की गवर्नमेन्ट में वह भारत मन्त्री या वैदेशिक सेक्रेटरी ऑव स्टेट फार इंडिया के पद पर नियुक्त हुआ। १८७८ ई० में पूरबी देशों के प्रश्न सम्बन्धी घटना के समय वह वैदेशिक मन्त्री हो गया। उसने बड़े कौशल से परिस्थिति को हाथ में लिया और युरोप के राज्यों को एक 'सर्कुलर नोट' लिखने से उसे देशव्यापी ख्याति मिली। कहा जाता है कि जिस दिन वैदेशिक मन्त्री के पद पर उसकी नियुक्ति हुई ११ बजे रात को वह अपने पढ़ने लिखने के कमरे में ताला बन्द करके ३ बजे सवेरे तक इस 'नोट' के लिखने में व्यस्त रहा। अँगरेज़ी भाषा में उसके इस नोट की गणना उच्च कोटि की राजनीतिक सामग्री में की जाती है। थोड़े समय के लिये वह सन् १८८५ में, फिर १८८६ ई० से लेकर १८९२ ई० तक और पुनः सन् १८९५ से १९०२ ई० तक प्रधान मन्त्री और साथ ही साथ वैदेशिक मन्त्री भी रहा। सम्भवतः ग्रेट ब्रिटेन का युरोप में उसके मन्त्रित्व-काल की अपेक्षा इतना अधिक प्रभाव और कभी नहीं रहा। उसका एक सबसे बड़ा गुण यह था कि वह अपने प्रतिपक्षी की आवश्यकताओं का महत्त्व अनुभव कर सकता था तथा साथ ही अपने राष्ट्र की भी ज़रूरतों को खूब समझता था। यही कारण था कि वह आफ्रिका के बँटवारे की समस्या को उतनी कुशलता से बिना रक्तपात के सुलझा सका। उसकी अभिरुचि का क्षेत्र राजनीति से भी अधिक व्यापक था। कृषि की उन्नति करना तथा खुद खेती करने का उसे बड़ा शौक था और वह देहाती घरों की उन्नति करने में भी बड़ा मनोयोग देता था वैज्ञानिक अनुसन्धान की ओर भी उसका बड़ा अनुराग था और उसने अपनी एक निजी प्रयोगशाला बना रक्खी थी सन् १८८१ में लंडन भर में सबसे पहले नहीं तो दूसरे नम्बर पर उसके निजी घर में बिजली की रोशनी लगायी गई थी और उसने इसे अपनी निजी देख-रेख में लगवाया था। इसके लिये पास ही के एक लकड़ी चीरने के कारख़ाने से बिजली ली गयी थी और प्रारम्भ में अक्सर 'हेटफ़ील्ड में बिजली न आने पर मोमबत्तियों की सहायता ली जाया करती थी। इतिहास और क़ानून के अध्ययन का भी उसे खूब शौक था।

जोज़ेफ़ चेम्बरलेन—जोज़ेफ़ चेम्बरलेन ने व्यापार में प्रवेश करने के लिए

१६ वर्ष की आयु में ही स्कूल छोड़ दिया था। १८ वर्ष की आयु में वह बर्मिंगहम के एक पेच बनाने के कारखाने के प्रबन्ध में सहायता देने लगा और बीस वर्ष बाद खूब धन सम्पत्ति लेकर घर लौट आया। इसके बाद म्यूनिस्पैलिटी के मामलों में उसने पहले पहल ख्याति प्राप्ति की और सन् १८७३ से लेकर १८७६ ई० तक बर्मिंगहम का मेयर रहा। इस तीन ही वर्ष के थोड़े से समय में उसने इसे एक आदर्श नगर बना दिया जिसकी देखादेखी और सब नगरों ने भी उन्नति की। नगर की ओर से उसने जलाने के लिये गैस और जल के उत्पादन का बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया और गन्दे घने स्थलों को साफ़ कर मजदूरों के रहने के लिए साफ़ हवादार घर बनवाये। नागरिकों के लिए उसने एक चित्रशाला, एक निःशुल्क पुस्तकालय और एक नया पार्क बनवाया। फिर कई वर्ष बाद उसने बर्मिंगहम विश्वविद्यालय की स्थापना की। आखिर सन् १८७६ में ४१ वर्ष की आयु में उसने हाउस ऑव कामन्स में बर्मिंगहम के सदस्य की हैसियत से प्रवेश किया। यहाँ उसने खूब नाम पैदा किया और शीघ्र ही वह १८८८ ई० में लोकल गवर्नमेन्ट बोर्ड का प्रेसिडेन्ट हो गया। यद्यपि इस समय ह्विग पार्टी और यहाँ तक कि राजा भी उसे कुछ-कुछ खतरनाक रेडिकल या अग्र-विचारवादी समझते थे। फिर जब ग्लैडस्टन ने आयरलैंड का होमरूल बिल उपस्थित किया तो वह यूनियनिस्ट हो गया। १८९५ ई० में उसने औपनिवेशिक मन्त्री के रूप में लॉर्ड सालसबरी के मन्त्रिमंडल में प्रवेश किया और १९०३ ई० तक उस पद पर बना रहा। इन आठ वर्षों में उसने साम्राज्य के लिए, विशेष कर वेस्ट इंडीज और पच्छिमी आफ्रिका के विकास में तथा गरम देशों में फैलने वाले रोगों की खोज की व्यवस्था में बहुत कुछ काम किया। आस्ट्रेलियन कामनवेल्थ ऐक्ट पास कराने में वह ग्रेट ब्रिटेन का प्रमुख व्यक्ति था। परन्तु उसकी सबसे अधिक शक्ति दक्खिनी आफ्रिका के युद्ध का पथ प्रशस्त करने वाले विरोधों में ही व्याप्त रही और उसने युद्ध के बाद इस देश की परिस्थिति दृढ़ करने का बड़ा भारी काम किया। लार्ड सालसबरी के मन्त्रि-मंडल के अन्त की ओर उसने जर्मनी तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से एक सन्धि स्थापित कराने का प्रयत्न किया। अपने चेहरे के साफ कटाव, अपनी मधुर बोली और मर्मभेदी तथा प्रभावशाली भाषणों तथा आँख पर लगने वाले चश्मे और अपने सुव्यवस्थित फल के बागों के कारण जोजेफ चेम्बरलेन को सारे इंग्लैंड में ख्याति व्याप्त थी। जहाँ एक ओर उसके विपक्षियों की ओर से उस पर छिद्रान्वेषी आलोचनाओं की बौछार सी होती रहती थी वहाँ दूसरी ओर उसके समर्थक उसके प्रत्येक कार्य की खूब प्रशंसा और उसके विरुद्ध की गयी आलोचनाओं की खूब प्रत्यालोचना करते थे। कहा जाता है कि इस समय जितने अधिक कार्टून जोजेफ चेम्बरलेन में छपते इतने किसी अन्य प्रधान या मन्त्री के नहीं छपे। सन् १९०३ से लेकर १९०६ ई० तक उसके राजनीतिक जीवन के अन्तिम वर्ष चुंगी सुधार के झगड़े में ख़र्च हुए। अपने अन्तिम भाषण में किसी कवि की जो पंक्तियाँ उसने दुहराई थी वे बाद में भविष्यवाणी प्रमाणित हुईं।

इन पंक्तियों का सार था—'अगर हमें अपने प्रयत्नों का फल देखना नसीब न हो तो भी हमारा यह दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि हमारे देशवासी उसका लाभ उठायेंगे। १६३२ ई० में उसके पुत्र नेवाइल चेम्बरलेन ने चान्सलर ऑव एक्सचेकर के पद से अपने पिता की नीति का बड़ी योग्यता के साथ अनुसरण किया।

**लिबरलों का शक्तिशाली होना ( १६०६–१५ ई० )**—सन् १६०६ से १६१५ ई० तक लिबरलों के हाथ में देश की राजनीतिक शक्ति रही। कुछ समय तक सर हेनरी केम्पबेल बेनरमैन प्रधान मन्त्री रहा और १६०८ ई० से एस्क्विथ। १६०६ ई० की नवीन पार्लियामेन्ट की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि इस समय लगभग ५० सदस्यों के एक नवीन मज़दूर ( लेबर ) दल का उदय हुआ। आयरी लिबरल और कनज़र्वेटिव दलों को छोड़कर अब होमरूल समर्थक दल का पहले से ही लगभग ८० सदस्यों का एक स्वतन्त्र राजनीतिक दल बन गया था। अब एक और नये दल का विकास आरम्भ हो गया। वैधानिक क्षेत्र में तो इस समय का सबसे महत्वपूर्ण १६०६ ई० का व्यवसाय संकट विधान या ( ट्रेड डिस्प्यूट्स ) ऐक्ट, सन् १६११ का बुढ़ापे का ( ओल्ड एज ) "पेन्शन ऐक्ट" तथा राष्ट्रीय बीमा विधान ( नेशनल इन्श्योरेन्स ऐक्ट ) थे। हालडेन ने इसी समय सेना का पुनर्संगठन किया तथा हाउस ऑव कामन्स के हर एक सदस्य को ४०० पौंड वार्षिक वेतन देना भी नियत हुआ।

**सन् १६१२ का पार्लियामेन्ट ऐक्ट**—लिबरलों के प्रभुत्व के इन ६ वर्षों में तीन बड़े संकटपूर्ण अवसर उपस्थित हुए। सबसे पहला संकट १६०६ ई० में आया। हाउस ऑव लॉर्ड्स ने पहले भी कई लिबरल विधानों को ठुकरा दिया था और इस वर्ष के अन्त में उन्होंने बजट भी अस्वीकृत कर दिया। इसी कारण पार्लियामेन्ट में एकदम नयी और चिन्तापूर्ण परिस्थिति उपस्थित हो गयी। लिबरल और कनज़र्वेटिवों के बीच समझौते के प्रयत्न असफल रहे और दो निर्वाचनों के बाद हाउस ऑव कामन्स द्वारा वह "पार्लियामेन्ट बिल" पास हो गया जिसमें हाउस ऑव लार्ड्स के अधिकारों के सम्बन्ध में लिबरलों के नये प्रस्ताव थे। इस पर हाउस ऑव लार्ड्स ने उसमें बहुत कुछ संशोधन किये जिन्हें हाउस ऑव कामन्स ने स्वीकृत नहीं किया। आख़िर मन्त्रियों की सम्मति से राजा पियरों की संख्या इतनी काफी बना देने के लिए सहमत हो गया, जिससे यह बिल हाउस ऑव लार्ड्स में अपने असली रूप में पास हो सके। इस धमकी के परिणाम स्वरूप १७ के बहुमत से हाउस ऑव लार्ड्स में 'बिल' पास हो गया। इस पार्लियामेन्ट ऐक्ट के अनुसार हाउस ऑव लार्ड्स को धन सम्बन्धी किसी भी बिल को अस्वीकृत करने का अधिकार न रहा और यदि कोई अन्य बिल हाउस ऑव कामन्स के तीन निरन्तर अधिवेशनों में पास हो जाय तो हाउस ऑव लार्ड्स के स्वीकृत करने पर वह ऐक्ट बन जायगा यह विधान बन गया। हाँ एक ही शर्त यह रखी गयी कि हाउस ऑव कामन्स में बिल की दूसरी 'रीडिंग' के दो वर्ष बाद वह तीसरी रीडिंग में पास हो।

इसी पार्लियामेन्ट ऐक्ट के अनुसार होमरूल बिल पास करने के प्रयत्नों पर दूसरा संकट उपस्थित हुआ। यह बिल १९१३ ई० में हाउस ऑव कामन्स में दो बार पास हो चुका था, इसलिए १९१४ ई० में तीसरी बार पास होने पर वह विधान बन जाता। इसका परिणाम यह हुआ कि अल्स्टर की प्रोटेस्टेन्ट प्रजा ने सशस्त्र शक्ति से होमरूल बिल का प्रतिरोध करने की तैयारी की और आयरलैंड तथा इंग्लैंड में १९१४ ई० के ग्रीष्म में गृहयुद्ध की आशंका दिखायी देने लगी।

किन्तु तभी तीसरा संकट उपस्थित हुआ और महायुद्ध छिड़ गया। ११०७ ई० में इंग्लैंड, फ्रान्स और रूस में त्रिराष्ट्र सन्धि हुई थी जिसके बाद ही युरोप में कई एक दुर्घटनाएँ हुईं। आख़िर जुलाई १९१४ ई० में आस्ट्रिया के उत्तराधिकारी राजकुमार की हत्या के कारण महायुद्ध का श्रीगणेश हो गया और इस उलझन में कुछ समय के लिए आयरलैंड का प्रश्न खटाई में पड़ गया। एक वर्ष के बाद युद्ध के कारण एकान्त लिबरल शासन का भी अन्त हो गया।

स्थानीय शासन का विकास—१९वीं शती के अन्तिम वर्षों में स्थानीय शासन में बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। ट्यूडर राजाओं के समय से ही स्थानीय शासन व्यवस्था प्रायः न्यायाधीशों के हाथ में रहती थी और इनकी नियुक्ति हर एक काउन्टी का लार्ड लेफ्टिनेन्ट किया करता था। ये न्यायाधीश प्रायः स्थानीय सम्भ्रान्त नागरिकों में ही चुन लिये जाते थे। छोटे छोटे अपराधों का निर्णय करना भी इन्हीं न्यायाधीशों के ऊपर छोड़ दिया गया था और यही लोग होटल और सरायें खोलने की अनुमति के अधिकारी थे। किन्तु सन् १८८४ और १८९४ ई० के बीच में कई एक ऐसे नियम पास हुए जिनके द्वारा सड़क, पुल, मकान और लोकस्वास्थ्य जैसे विषय लोक निर्वाचित काउन्टी, काउन्टीबरों, देहाती तथा नागरिक प्रान्तों तथा पैरिश कौन्सिलों के अधिकार में छोड़ दिये गये। केवल इनका निरीक्षण केन्द्रीय व्यवस्था की बात रह गयी। इस संस्था को लोकल गवर्नमेंन्ट बोर्ड अथवा 'बोर्ड ऑव हैल्थ' कहने लगे थे। अब भविष्य में इस व्यवस्था का अभिप्राय यह हुआ कि काउन्टी कौन्सिलों के कार्यक्षेत्र को बढ़ाया जाय और इसी नीति के अनुसार १९०२ ई० में शिक्षा विभाग तथा १९२९ ई० में गरीबों का प्रबन्ध उनके अधिकार में कर दिया गया।

---

# अध्याय २४

## आयरलैंड का इतिहास

### ( १८१५-१९१४ ई० )

इंग्लैण्ड की दल नीति पर आयरलैण्ड का प्रभाव—जैसा कि हम अभी देख चुके हैं ग्लैडस्टन के आयरी होमरूल के कारण सारी १९वीं शती तथा २०वीं शती के आरम्भ में इंग्लैंड की दल-नीति पर आयरलैंड की राजनीतिक परिस्थिति का बहुत

गहरा प्रभाव पड़ा। १८२६ ई० में कैथलिकों की धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रश्न ने टोरीदल को बड़ा धक्का पहुँचाया और अनाज विधानो को रद्द कर देने के कारण आयरलैंड के अकाल ने तो १८४६ ई० में उसे बिलकुल ही नष्ट कर दिया। १८४४ ई० में आयरी सुधार के प्रश्न पर कैबिनेट के विरोध के कारण लार्ड ग्रे को विरक्त होना पड़ा, तथा १८८६ ई० में लिबरल दल छिन्न छिन्न हो गया। आयरलैंड को होमरूल देने की व्यवस्था ने आखिर १६१४ ई० में गृहयुद्ध तक की आशंका उपस्थित कर दी। सच तो यह है कि उस समय के भी अँगरेज़ी नीतिज्ञों की शक्ति इस ८५ वर्ष के लम्बे समय में आयरलैंड मे असन्तोष दूर करने तथा यहाँ होनेवाले उपद्रवों को शान्त कराने में ही व्यस्त रही और इस युग में यही वेश इंग्लैंड की सारी राजनीतिक व्यवस्थाओं का केन्द्र बना रहा।

डेनियल ओ' कोनल—वाटरलू के युद्ध के बाद तीस वर्ष तक डेनियल ओ' कोनल आयरलैण्ड के कैथलिकों का एक मात्र नेता रहा। लोक सभाओं में भाषण देने की क्षमता अद्वितीय थी। कहते हैं कि वह ऐसा प्रभावशाली वक्ता था कि वह जनता को अपनी इच्छानुकूल हँसा या रुला सकता था तथा उसमें इतना जोश भर सकता था कि वह अदमनीय हो जाती। साधारण दुर्बलताओं के साथ-साथ उसमें बहुत से गुण भी थे। वह विनोदवृत्ती, सदाशय तथा बड़ा मिलनसार था। प्रायः वैधानिक आन्दोलन तथा किसानों के उपद्रवों में भी वह कानून और विधान का पक्ष लेता था और वह किसी हालत में भी सशस्त्र विद्रोह पक्ष का समर्थन न करता था। राजसत्ता के प्रति तो उसकी अविरल श्रद्धा थी और विक्टोरिया रानी के शासन का तो वह विशेष रूप से परम भक्त था।

कैथलिक संघ ( १८२३-२६ )—यह तो पहले ही देख चुके हैं कि १८१५ ई० तक रोमन कैथलिकों को पार्लियामेन्ट में बैठने तथा बहुत से पद ग्रहण करने तक का अधिकार न था। ओ' कोनल ने सबसे पहले इसी शिकायत को दूर करने की चेष्टा की। १८२३ ई० में उसने आयरलैण्ड के पादरियों की सहायता से प्रत्येक पैरिश में एक 'कैथलिक ऐसोसियेशन स्थापित किया और सारे देश में उसकी उपशाखाएँ खोलीं। इस संघ द्वारा आयरलैंड में कैथलिक संगठित हो गये और उन्होंने अब उन्हीं प्रोटेस्टेन्टों को वोट देना आरम्भ किया जो कैथलिक स्वतन्त्रता के पक्ष में थे। समस्त देश में ऐसोशियेशन की सभाएँ होती थीं। ओ कोनल कैथलिक होते हुए भी काउन्टी क्लेयर से पार्लियामेन्ट के उम्मेदवार की हैसियत से खड़ा हुआ और उसे इतनी अधिक सहायता मिली कि उसका प्रतिपक्षी अन्त में बैठ गया और वह अविरोध निर्वाचित कर लिया गया। ओ' कोनल का निर्वाचन तो पूर्ण रूप से वैध था किन्तु रोमन कैथलिक होने के कारण वह पार्लियामेन्ट में नहीं बैठ सकता था। यह बड़ी भयंकर थी। वेलिंगटन के मन्त्रिमंडल ने यह देखकर कि अब आयरलैण्ड विद्रोह और गृहयुद्ध की सीमा पर पहुँच गया है दब जाने का विचार किया। इसलिए समस्या १८२६ ई०

में कैथलिक स्वतन्त्रता विधान पास हो गया। ओ' कोनल ने पार्लियामेन्ट में प्रवेश किया और १८३२ ई० के सुधार बिल के विवादों में बड़ा प्रमुख भाग लिया।

**ओ' कोनल का विधान-भंग आन्दोलन ( १८४१-४३ ई० )**—लार्ड ग्रे के मन्त्रिमंडल में ओ' कोनल ने प्रोटेस्टेन्ट चर्च के लिए रोमन कैथलिकों से दिलाये जाने वाले दशमांश कर के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया। किन्तु मेल्बोर्न के मन्त्रिमडल में आयरलैण्ड के मामलों पर शान्ति बनी रही; फिर १८४१ ई० में ग्रेटब्रिटेन में पील के प्रधानमन्त्री होने के कारण ओ' कोनल ने अपनी सारी शक्ति १८०० ई० की इंग्लैण्ड और आयरलैण्ड की एकता का विच्छेद प्राप्त करने में लगा दी। उस समय के आयरी दल की प्रधान माँग थी आयरी पार्लियामेन्ट के शासन द्वारा अनुशासित व्यवस्था जिसमें ब्रिटिश पार्लियामेन्ट और ब्रिटिश केबिनेट द्वारा नियुक्त वायसराय या चीफ सेक्रेटरी का कोई स्थान न था। ओ' कोनल ने समस्त आयरलैण्ड में विशाल सभाएँ करके भाषण दिये। कहा जाता है कि टारा पहाड़ी की सभा में तो लगभग ढाई लाख व्यक्ति थे। ये सभाएँ इतनी शान्तिपूर्ण और सुव्यवस्थित होती थीं कि इन हजारों सभाओं में कभी एक बार भी दंगा-फिसाद न हुआ। एक बार जब सभा समाप्त हो गयी और भीड़ अपने अपने घरों को लौटने लगी तो कुछ लोगों की असावधानी से एक रोटी बेचने वाली बुढिया का खोमचा गिर गया। इन सभाओं की एक विशेषता यह भी थी कि इनके समाप्त होने पर 'रानी विक्टोरिया की जय' बोली जाती थी। इस समय आन्दोलन बड़े वेग से बढ़ रहा था। ओ' कोनल के भाषण के लिए एक विशाल सभा की योजना हुई। इस आन्दोलन को बहुत प्रबल होते देखकर पील ने दमन-नीति का अनुसरण किया। नियत तिथि के एक दिन पूर्व पील ने एक घोषणा द्वारा उसे रोक दिया। ओ' कोनल दब गया और उसने सभा को स्थगित कर दिया।

भी पील ने उस पर उत्तेजक राजद्रोहपूर्ण भाषण देने का अभियोग लगाया और उसे सज़ा दिलाकर राजद्रोही ठहराया गया। बाद में हाउस ऑव लार्ड्स में जजों ने ओ' कोनल को दिये गये इस दंड को अन्यायपूर्ण बतलाया, फिर भी उसे मुक्त न किया गया। जेल में बन्द हो जाने के कारण ओ' कोनल की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। यंग आयरलैंड पार्टी के समान गरम दलों ने पील के सामने दब जाने के कारण उसका साथ छोड़ दिया। १८४७ ई० में हताश हो जाने से उसकी मृत्यु हो गयी।

**१८४६ ई० में आयरलैंड का अकाल और उसका प्रभाव**—परन्तु ओ' कोनल की मृत्यु के पूर्व ही १८४६ ई० में भूख से पीड़ित आयरलैंड निवासियों के देश में बड़ा घोर अकाल पड़ा। इस समय आयरलैंड की ऐसी हीन अवस्था थी कि कृषि-योग्य जमीन छोटे छोटे टुकड़ों में बाँट दी गयी थी और जीवन निर्वाह के साधन बने रहने पर भी कृषि की आय से लोगों को भर पेट भोजन मिलने के भी लाले पड़े थे। १८४४ ई० में उत्तरी अमेरिका में आलू के पौधों में कीड़ा लगा और अगले वर्ष यह रोग युरोप पहुँच गया। आयरलैंड के किसानों का आधार आलू ही था,

इसलिए जब उनकी आलू की फ़सल नष्ट हो गयी, तो प्रजा के भूखों मरने की नौबत आ गयी। इस समय भी आयरलैंड की नाज की पैदावार में कोई कमी न हुई थी, परन्तु वह तो सब विदेश चला गया था। ऐसी परिस्थिति में आयरलैंड निवासियों के मतानुसार ब्रिटिश सरकार को उनका अनाज बाहर नहीं भेजना चाहिये था और इस पर प्रजा से असन्तुष्टता होना ज़रूरी थी। उन्होंने इसे ब्रिटिश सरकार की अन्धाधुन्धी और अकर्मण्यता का कारण बतलाया; क्योंकि अगर ब्रिटिश सरकार चाहती तो अनाज का निर्यात उसी प्रकार इस समय भी बन्द कर सकती थी जैसा कि वह पहले भी कर चुकी थी इस अदूरदर्शिता का परिणाम यह हुआ कि १८४४ ई० और उसके बाद के वर्षों में बहुत से आयरी निवासी भूखे मर गये और बहुत से अमेरिका चले गये। अमेरिका जाने का यह सिलसिला बराबर जारी रहा और इसलिए आयरलैंड की जनसंख्या में कमी होने लगी। १८४१ ई० में आयरिस्थान की जनसंख्या ८० लाख थी। १९२६ ई० में घटते-घटते वह ४० लाख से भी कुछ अधिक रह गयी थी।

**अकाल के बाद क्रान्तियों का युग**—१८४८ ई० में 'यंग आयरलैंड' दल का सशस्त्र विद्रोह हुआ। स्मिथ ओ' ब्रायन उसका नेता था। उसकी हार हो जाने के बाद विद्रोह का शीघ्र अन्त हो गया। ११ वर्ष बाद १८५६ ई० में उग्र पक्ष वालों ने आयरलैंड की स्वतन्त्रता के लिए 'फेनियन सोसाइटी' नामक राजद्रोही संस्था का संचालन किया। इसका ध्येय आयरलैंड में प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करना था उसके अनुयाइयों ने कनाडा पर भी आक्रमण करने तथा इंग्लैंड में चेस्टर नामक दुर्ग को जीतने तक का प्रयत्न किया था।

**आयरलैंड के चर्च का उन्मूलन और नया भूमि विधान ( १८६९-७० ई० )**—१८६६ ई० में जब ग्लैडस्टन प्रधानमन्त्री हुआ तो आयरी प्रश्न एक ऐसी विषम स्थिति पर पहुँच गया था कि उसका निराकरण आवश्यक था। इसलिए उसने सबसे पहला काम यह किया कि आयरलैंड के प्रोटेस्टेन्ट चर्च का विच्छेद कर दिया। आयरलैंड की अधिकांश प्रजा रोमन कैथलिक थी, फिर भी प्रोटेस्टेन्ट चर्च वहाँ का व्यवस्थापित चर्च माना जाता था। उसका राज्य-सम्बन्ध टूट चला था, फिर भी अभी उसके लिए दान से प्राप्त धन का बहुत बड़ा अंश प्रोटेस्टेन्ट चर्च ही हज़म कर जाता था और बहुत थोड़ा अंश इहलौकिक कार्यों पर ख़र्च किया जाता। ग्लैडस्टन का दूसरा काम था आयरलैंड के कृषि योग्य भूमि के प्रश्न को हल आयरलैंड की कृषि विभाग की अवस्था इंग्लैंड से बहुत भिन्न थी। यहाँ के अधिकांश ज़मींदार विदेशी थे तथा आयरलैंड में रहते भी न थे। इसका परिणाम यह हुआ था कि खेतों की मेड़ें बनाना, खलिहानों की इमारतें खड़ी करना और फाटक इत्यादि लगाने का उत्तरदायित्व किसानों पर था न कि जमींन्दारों पर और वही लोग ये सब उन्नति करते रहते थे। फिर भी 'अल्स्टर' को छोड़कर अधिकतर किसान 'मौरूसी' न थे और किसी भी समय निकाले और बेदख़ल किये जा सकते थे। सबसे बड़ा अन्धेर यह था

कि उन्हें अपने इन सब सुधारों के उपलक्ष में मोआविजा तक नहीं मिलता था; बल्कि उलटा उन पर लगान बढ़ जाता था। १८७० ई० में जो भूमि-विधान पास किया गया उसके द्वारा इस प्रथा के उपचार का प्रयत्न किया गया। अब जमीन्दारों को उन अवधि समाप्त किसानों को मोआविजा देना पड़ता था जिन्होंने भूमि का मूल्य बढ़ाया होता तथा उन किसानों को भी जो भूमि-कर न देने के अलावा अन्य किसी कारण से बेदखल किये जाते।

पार्नेल—ग्लैडस्टन के उत्तराधिकारी डिज़रायली के शासन में आयरलैंड की राजनीति में एक नवीन शक्ति का उदय हुआ। १८७९ ई० में पार्नेल आयरी दल का नेता हो गया। उसकी माँ अमेरिकन थी और पिता आयरि प्रोटेस्टेन्ट जमीन्दार। इंग्लैंड में शिक्षा पाकर वह आयरलैण्ड की राजनीति में भाग लेने लगा और १८७५ ई० में उसने पार्लियामेन्ट में प्रवेश किया। वह इंग्लैण्ड से घृणा करता, सदा चुपचाप रहता और अपने दलवालों से भी सम्पर्क न रखता था। फिर भी अपनी योग्यता तथा प्रबल इच्छा शक्ति से वह आयरि दल का अनियन्त्रित नेता हो गया। उसकी नीति की व्याख्या संक्षेप में इस प्रकार की जा सकती है। उसने कई बार अमेरिका जाकर वहाँ के आयरि निवासियों से अपने दल की सहायता के लिये चन्दा इकट्ठा किया। पार्लियामेन्ट में जाने का उसका उद्देश्य यह था कि आयरलैण्ड को स्वराज्य या होमरूल दिलाया जाय। इसके अनुसार आयरलैण्ड और इंग्लैण्ड का सम्बन्ध तोड़े बिना आयरलैण्ड को अपने देश के लिए विधान बनाने तथा अपने देश पर शासन करने का पूरा पूरा अधिकार मिल जाता। अस्तु अँगरेज निर्वाचकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करने के लिए उसने आयरलैण्ड सम्बन्धी विषयों को छोड़ कर और सब विषयों के पार्लियामेन्ट में पेश होते ही बाधा डालने का प्रयत्न शुरू किया। सन् १८७० के 'लैंड ऐक्ट' से सन्तुष्ट न होने के कारण आयरि निवासियों ने अपने देश के भूमि सम्बन्धी नियमों और विधानों में सुधार प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् १८७१ ई० में एक 'लैण्ड लीग' भूमि संघ स्थापित किया था। इस संघ के साथ पार्नेल भी मिल गया और उसने भी उसी की नीति अपना ली। यह संघ पार्लियामेन्ट के काम में बाधा डालने के लिए हर प्रकार की नीति का अवलम्बन करता और जो कोई इस संघ के उद्देश्यों का विरोध करता या जो किसी बेदखल किये हुए किसान का खेत जोतने के लिए ले लेता उसका बहिष्कार कर दिया जाता—कोई उसका काम न करता, कोई उसे कोई वस्तु न देता तथा कोई उसके साथ किसी प्रकार का व्यवहार न रखता। पार्नेल ने इस नीति की व्याख्या करते हुए साफ-साफ कह दिया कि अगर कोई आयरी कृषक उस खेत को जोतने बोने की चेष्टा करेगा जिस पर से दूसरा आयरी बेदखल किया गया हो तो उसे कोढ़ी की भाँति त्याग देना धर्म हो जायगा। केप्टिन बायकाट नाम के एक व्यक्ति के विरुद्ध इस नीति का सबसे पहले प्रयोग हुआ और

इसलिये इस त्याग-नीति का नाम 'बायकाट' पड़ गया। इस नये 'बायकाट अस्त्र' के कारण सन् १८७७ से १८८० ई० तक बड़े उपद्रव हुए।

**सन् १८८१ का भूमि विधान**—इस प्रकार ग्लैडस्टन मन्त्रिमंडल (१८८०-८५ ई०) को आयरलैंड के इस नये नेता और उसके इस नये 'बायकाट अस्त्र' की पूरी झोक झेलनी पड़ी। सन् १८८१ ई० में ग्लैडस्टन ने दूसरा भूमि विधान उपस्थित किया जिसके अनुसार आयरी कृषकों की अधिकाराविध स्थिर, क्रय-विक्रय की स्वतन्त्रता और लगान देने में न्याय प्राप्त हो सके। इस बात की व्यवस्था का निर्णय करने के लिए 'लैंड कोर्ट' बनाये। परन्तु आयरी इससे भी सन्तुष्ट न हुए। अब स्थिति यहाँ तक पहुँची कि उन्होंने लगान देने से इनकार नहीं कर दिया बल्कि और लोगों को भी डरा धमका कर अथवा मारपीट कर लगान देने से रोकने की चेष्टा करने लगे। इस पर ग्लैडस्टन को विवश होकर एक नियामक 'कोअर्शन' ऐक्ट पास करना पड़ा जिसमें बड़े कठोर दंड की व्यवस्था की गयी। इस ऐक्ट के अनुसार पुलिस को बड़े असाधारण अधिकार देकर साधारण व्यवस्था स्थगित कर दी गयी। आख़िर पार्नेल और उसके प्रमुख साथियों को पकड़ कर जेलखाने में बन्द कर दिया गया।

**होमरूल बिल और आयरिस्थान की शासन व्यवस्था**—जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं ग्लेडस्टन को तो इस बात का विश्वास हो गया था कि आयरलैंड की व्यवस्था के लिये होमरूल बिल स्वीकृत कर लेना आवश्यक था; परन्तु उसका १८८६ ई० का होमरूल बिल तो हाउस ऑव कामन्स में ही पास न हो सका और सन् १८९३ ई० वाला बिल हाउस ऑव लार्ड्स में अस्वीकृत हो गया। इस प्रकार सन् १८९६ ई० तक जब आर्थर बाल्फोर आयरी मन्त्री था और उसके बाद सन् १८९५ से १९०५ ई० तक युनियनिस्ट गवर्नमेन्ट ने बड़ी दृढ़ता से दमन चक्र जारी रक्खा और कई बार उपद्रव होने पर भी आख़िर उन्होंने आयरलैंड में व्यवस्था और शान्ति स्थापित कर लेने में सफलता प्राप्त की। इस समय सन् १८९० ई० में आयरी दल में फूट फैली हुई थी और इसीलिए गवर्नमेंन्ट की दमन नीति सफल हुई। एक तलाक़ सम्बन्धी मुकदमे में फँस जाने के कारण पार्नेल के समर्थकों ने उसका साथ छोड़ दिया और सारा विरोध पक्ष छिन्न-भिन्न हो गया। यह परिस्थिति भी बहुत दिनों तक स्थिर न रह सकी। आयरी दलों में फिर मेल हो गया परन्तु इस बीच में बहुत काफ़ी सुधार हो चुके थे। रेलें बन गयीं और सन् १८९८ ई० से स्वायत्त शासन में प्रजा को बहुत बड़ा अधिकार मिल गया। कृषि-व्यवसाय की उन्नति के लिए भी खूब चेष्टा हुई। कृषकों की शिक्षा का प्रबन्ध हुआ और उन्हें संगठित होकर सहयोग समितियों द्वारा अपनी उन्नति का अवसर मिला। आयरि निवासियों का देशान्तरों में जाना जारी रहा और इसलिए 'आयरलैंड की जन-संख्या में कोई विशेष वृद्धि दृष्टिगोचर नहीं हुई। आख़िर सन् १९०३ ई० में एक ऐक्ट पास हुआ जिसके द्वारा किसानों

को अपनी भूमि ख़रीद लेने की बड़ी सुविधा मिली। गवर्नमेन्ट ने यह तय कर दिया कि जो किसान अपनी जोत की भूमि खरीदेगा उसे सरकार से कम सूद और साधारण किस्तों पर धन मिल जायगा तथा जो जमीन्दार अपनी जमीन बेचेगा उसे सरकार की तरफ़ से भी 'बोनस' मिलेगा। इसके बाद सन् १६०६ में एक और ऐक्ट पास किया गया जिसके अनुसार आयरलैंड में न रहने वाले विदेशी जमीन्दारों के लिए अपनी जमीन्दारी बेच देना अनिवार्य कर दिया गया। इन विधानों का फल यह हुआ कि आयरि किसान धीरे-धीरे अपनी भूमि का स्वामी बन गया और अँगरेज जमीन्दारों का आयरिस्थान की भूमि पर कोई अधिकार न रह गया। फिर सन् १६१४ ई० में आयरि होमरूल बिल पास कराने की चेष्टा में किस प्रकार गृहयुद्ध की सम्भावना उपस्थित हो गयी, इसका वर्णन आगे किया जा चुका है।

---

# अध्याय २५

## ग्रेट ब्रिटेन और युरोप

### ( १८१५-७८ ई० )

अब हम वाटरलू की लड़ाई के बाद से ग्रेट ब्रिटेन और अन्य यूरोपीय देशों के सम्बन्ध की विवेचना करेंगे। यह तो हम बतला ही चुके हैं कि नेपोलियन के हराने तथा वियना की कॉग्रेस में सन्धि सम्बन्धी कार्रवाई में ग्रेट-ब्रिटेन का बहुत बड़ा हाथ था और इसी कारण ग्रेट ब्रिटेन को युरोप के राष्ट्रों में प्रमुख स्थान मिल गया था। इसका फल यह हुआ कि अगले ५० वर्ष ( १८७८ ई० की बर्लिन की सन्धि ) तक हर एक ब्रिटिश वैदेशिक मन्त्री का ध्यान बराबर युरोप में उत्पन्न होने वाली सङ्कटमय परिस्थितियों की ओर ही व्यस्त रहा। इसलिए इस समय की ब्रिटिश नीति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि सन् १८७८ तक की युरोपीय देशों की राजनीति की क्रमोन्नति का दिग्दर्शन कराया जाय।

**यूरोप में स्वायत्त और राष्ट्रीय शासन पद्धतियों की विकास धारा**—उन्नीसवीं शती में युरोप में दो महत्त्वपूर्ण आन्दोलन खड़े हुए। सब से पहला आन्दोलन था स्वशासन या 'सैल्फ गवर्नमेन्ट' का। इस समय वाटरलू की लड़ाई के बाद युरोप के बहुत से राज्यों के शासक निरकुश तथा विपरीतवृत्ति हो रहे थे और अपने देशों की प्रजा की उदार आकांक्षाओं को भयावह तथा क्रान्तिकारी समझ कर उन पर अश्रद्धा ही नहीं बल्कि उनका विरोध तक करते थे। युरोप के बहुत से देशों में तो स्वतन्त्रता ( जिस अर्थ में वह इंग्लैंड में व्यापक है ) का नाम निशान तक न था। वहाँ की प्रजा को न बात करने की आजादी थी न लिखने की। जन साधारण अपनी सभाएँ तक न कर सकते थे, और चाहे जिसको बिना अपराध प्रमाणित किये पकड़

कर जेलख़ाने में ठूँस देना एक साधारण सी बात थी। ग्रेट-ब्रिटेन को छोड़ कर युरोप भर में फ्रान्स ही एक ऐसा देश था जहाँ पार्लियामेन्ट थी। इस समय लोगों में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त करने तथा अपने शासन की बागडोर अपने ही हाथ में अधिकाधिक लेने की आकांक्षा और चेष्टा ज़ोर पकड़ रही थी। और सन् १८३०-३२ तथा १८४८-५२ ई० में तो इन आकांक्षाओं के उद्रेक के कारण कई बार ऐसे आन्दोलन उठ खड़े हुए जो कभी सफल होते और कभी दबा दिये जाते थे। इसी स्वशासन के आन्दोलन के साथ-साथ जिस दूसरे आन्दोलन का विकास हो रहा था वह था राष्ट्रीयता की भावना का आन्दोलन। एक ही जाति के लोग जो एक ही भाषा बोलते हों तथा जिनकी एक ही संस्कृति और एक ही ऐतिहासिक परम्परा हो उन लोगों में एकता की भावना जागृत होने लगी और ये लोग विदेशी शासकों की अधीनता से मुक्त होने के लिए अधीर हो उठे। इसी जागृति के फल स्वरूप सन् १८३० में बेलजियम को स्वतन्त्रता मिली, १८५६ ई० में इटालियन स्वाधीनता का संग्राम हुआ, और १८७१ ई० में प्रशिया के नेतृत्व में जर्मनी भर में ऐक्य की स्थापना हुई।

पूरबी देशों की समस्या—इसी राष्ट्रीयता की भावना के विकास तथा तुर्की सरकार के अत्याचारों के कारण दक्खिन-पूरबी युरोप के तुर्की के सुलतान के विरुद्ध ईसाइयों का विद्रोह जागृत हुआ। इन विद्रोहों के फल स्वरूप सन् १८२६ में यूनान स्वतन्त्र हो गया, तथा १८७८ ई० में बर्लिन की सन्धि की शर्तों के अनुसार बालकन प्रदेशों को स्वतन्त्रता मिल गयी। इन विद्रोहों का सम्बन्ध है पूरबी देशों की उस समस्या से जो सन् १८१५ के बाद से बराबर युरोपी राजनीतिज्ञों के सामने उपस्थित रही और जो तुर्क साम्राज्य के ह्रास तथा युरोपीय राज्यों के परस्पर विरोधी स्वार्थों के कारण उत्पन्न हो गयी थी।

ग्रेट ब्रिटेन का दृष्टिकोण ( १८१५-७८ ई० )—अब प्रश्न यह है कि इन समस्याओं के प्रति ग्रेट-ब्रिटेन का क्या भाव था। वास्तव में परिस्थिति यह थी कि युरोप के दमन चक्र के प्रताड़ित सारे उदारचेता और व्यथित राष्ट्रवादी इंग्लैंड की ही तरफ़ सहानुभूति और सदुपदेश के लिए ताकते रहते थे। वे तो चाहते थे कि इंग्लैंड उनके पक्ष में न केवल मध्यस्थ ही बने बल्कि उनकी सहायता करने के लिए ससैन्य अग्रसर हो। ग्रेट ब्रिटेन के लोगों ने भी बहुत सहानुभूति प्रकट की और अँगरेज़ों के व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता के लिए अपनी धन-सम्पत्ति और जीवन तक को संकट में डाल दिया। ब्रिटेन की सरकार ने इन राष्ट्रों की प्रजा को बड़ी लाभप्रद मन्त्रणाएँ दीं और कई बार तो अन्य राज्यों के सहयोग से मध्यस्थ होकर बीच बिचाव करने की भी चेष्टा की। परन्तु सन् १८१५ के बाद से अकेले लॉर्ड पामर्स्टन को छोड़कर बाक़ी सब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की यही चेष्टा रही कि अपने देश में शान्ति रहे तथा युरोपीय राज्यों की उलझनों से; जिनके कारण युद्ध की आशंका हो सकती थी, दूर ही रहा जाय। यही कारण था कि जहाँ एक ओर अँगरेजों को बालकन

प्रायद्वीप के त्रसित ईसाइयों के प्रति बड़ी सहानुभूति थी वहाँ दूसरी ओर उन प्रदेशों में रूस की राजनीतिक चालें और कूटनीति उन्हें खूब परेशान किये हुए थी। अँगरेज़ों का विचार था कि रूस इन ईसाइयों की सहायता करने के लिए इसलिए तैयार है कि वे सब ग्रीक चर्च के हैं जिनका ज़ार अपने आप को त्राता और अधिष्ठाता समझता था। फिर ऐसा करने में रूस की नीति का एक बड़ा भारी परिणाम सिद्ध होता था। रूसी सरकार बहुत दिनों से कॉन्स्टैन्टीनोपेल पर घात लगाये हुए थी और इस बात के फिराक में थी कि अगर कॉन्स्टैन्टीनोपेल पर उसका अधिकार हो जाय तो पूरबी भूमध्य-सागर उसके संरक्षण में आ जायगा और भारतवर्ष तक पहुँचाने के लिए उसको रास्ता मिल जायगा। अँगरेज़ों को एक ओर तो रूस की तरफ से यह भय लगा हुआ था और दूसरी ओर वे तुर्कों की बहादुरी के बड़े प्रशंसक थे। इसलिए उन्हें विश्वास हो चला था कि अगर तुर्कों की सहायता की जाय तो उसके भावी पुनरुद्धार के साथ-साथ उनसे राज्य की भी बहुत कुछ समुन्नति सम्भव है।

### § १ शान्ति का ज़माना

ज़ार और मैटरनिक की दमन नीति ( १८१५-२३ ई० )—सन् १८१५ के बाद युरोपीय राजनीति के क्षेत्र में रूस का ज़ार एलेग्जेंडर प्रथम तथा आस्ट्रिया की नीति का अधिनायक मैटरनिक दो प्रमुख व्यक्ति थे। ज़ार बड़ा निष्ठावान, उदाराशायी और राजाओं के दैवी-अधिकार का पक्षपाती था। परन्तु मैटरनिक बड़ा पुरुष-वृत्ति था जो हर प्रकार की ऐसी वैधानिक योजनाओं का विरोध करता जिनका उद्देश्य देश की व्यवस्था में प्रजा का अधिकाधिक संसर्ग और अधिकार प्राप्त करना हो। अपनी इस द्वेषपूर्ण प्रकृति के कारण ही वह युरोप भर के राज्यों में ऐसी चेष्टा करता कि ऐसी राजनीतिक परिस्थितियाँ जहाँ कहीं भी उपस्थित हों उनका उन्मूलन कर दिया जाय। यह सम्भव हो सकता है कि आस्ट्रियन साम्राज्य के अर्थ की दृष्टि से उसकी यह नीति ठीक हो; परन्तु युरोप के राज्यों की स्थिति और उनकी नीति के महान् प्रश्नों के विचार से तो यह नीति बड़ी अदूरदर्शिता की थी। सन् १८१५ ई० तक इंग्लैंड में कासलरी वैदेशिक मन्त्री रहा और उसी के प्रयत्न से विविध काँग्रेसों में युरोपीय समस्याओं का शान्तिपूर्ण सुलझाव सम्भव हो सका। परन्तु कासलरी और उसका उत्तराधिकारी कैनिंग, जो सन् १८२२ से १८२७ ई० तक वैदेशिक मन्त्री रहा, दोनों ही इस बात के घोर विरोधी थे कि युरोपीय राज्य एक दूसरे के अतिरिक्त मामलों में हस्तक्षेप करें।

इस समय ग्रेट ब्रिटेन को जिस चीज़ की सबसे अधिक चाह थी वह थी शान्ति देशव्यापी युद्ध के बाद उसकी सेना भी इतनी कम हो गयी थी कि वह किसी उग्र नीति का अनुसरण नहीं कर सकता था। इसलिए जब सन् १८२१ में आस्ट्रियनों ने नेपल्स घेर लिया और १८२३ ई० में फ्रान्सीसियों ने स्पेन पर इसलिए आक्रमण किया कि इन दोनों देशों के उन निरंकुश और अयोग्य शासकों को सुरक्षित रखा जाय

जिनके कुशासन के कारण प्रजा ने विप्लव कर दिया था, तो ग्रेट ब्रिटेन उन्हें रोकने के लिए कुछ न कर सका।

**केनिंग की नीति ( १८२१-२७ ई० )**—अब केनिंग ने ब्रिटेन के पुराने मित्र पोर्तुगल की सहायता के लिए पहले एक जहाजी बेड़ा और फिर एक सेना भेजी जिसने इस राज्य को विपरीतवृत्ति और अनियत शासन के समर्थक दल के पंजे से छुड़ाया। इसी बीच केनिंग ने यह भी निश्चय किया कि वह अमेरिका स्थित स्पेनी उपनिवेश मेक्सिको, पेरू और चिली को, जो कुछ समय पहले से स्पेन के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे, स्वतन्त्र राज्य मान ले। उसने अपने इस निश्चय के समर्थन में यह दलील पेश की कि पुरानी दुनिया के राज्य की दुर्व्यवस्था और अनीति का बदला नयी दुनिया में उसके आश्रित साम्राज्य को स्वतन्त्र करके चुकाया जाय। इसीलिए केनिंग का यह निश्चित मत था कि अगर स्पेन में फ्रान्स का प्रभुत्व स्थापित होना है और अनियत शासन का बोल बाला रहना है तो यह सब केवल स्पेन में ही हो सकेगा; स्पेन के बाहर इन्डीज़ में यह व्यवस्था कदापि नहीं चल सकती।

**यूनान का स्वतन्त्रता संग्राम ( १८२१-२६ ई० )** वास्तव में केनिंग के वैदेशिक मन्त्रित्व का सारा ज़माना इन्हीं पुरबी देशों की समस्याओं में व्यतीत हुआ। सन् १८२१ ई० में यूनानियों ने तुर्क साम्राज्य के विरुद्ध स्वतन्त्रता संग्राम शुरू कर दिया जो कई साल तक जारी रहा ( १८२१-२६ ई० )। हम इस संग्राम का विस्तृत वर्णन नहीं कर सकते; फिर भी इतना बतला देना पर्याप्त होगा कि यूनान के प्राचीन वैभव और सुकृतियों का सुयश सब पर प्रकट था और युरोपीय संस्कृति के विकास पर इस देश की ऐतिहासिक परम्परा के प्रभाव के कारण ब्रिटेन का लोकमत यूनानियों के पक्ष में था और इसीलिए इंग्लैंड में उनके बहुत से समर्थक मौजूद थे। लार्ड काकरेन जो स्पेन के विरुद्ध चिली के स्वतन्त्रता संग्राम में बड़ी ख्याति प्राप्त कर चुका था और ब्राज़ील की ओर से पोर्चुगालियों से बड़ी वीरता से लड़ा था, १८२७ ई० में यूनानी नौ सेना का एडमिरल बना दिया गया। उधर सर रिचर्ड चर्च ने स्थल सेनाओं के साथ लड़ाई में बड़ी वीरता दिखाई। अँगरेज कवि लार्ड बायरन तो यूनानी सेना के साथ लड़ता हुआ मारा गया। संग्राम होने के एक साल के भीतर ही यूनानियों ने तुर्कों को मार भगाया, परन्तु यूनान में गृह-युद्ध शुरू हो गया और इस परिस्थिति का लाभ उठाकर तुर्कों ने मिस्र की सहायता से १८२४ में फिर यूनान पर दख़ल कर लिया। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के सामने अब एक कठिन परिस्थिति हो गयी। वास्तव में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट यूनानियों से सहानुभूति रखती थी परंतु साथ ही रूस की ओर से सशंक भी थी। क्योंकि उसे डर लगा हुआ था कि रूस के हस्तक्षेप के कारण कहीं तुर्की साम्राज्य ही छिन्न-भिन्न न हो जाय। आख़िर जब इस लड़ाई को छिड़े ६ वर्ष बीत गये और तुर्कों के सुलतान ने मिस्र के दुर्दमनीय शासक मुहम्मद अली से सहायता ली तो केनिंग के समझाने बुझाने पर रूस और फ्रान्स इस बात पर राज़ी

हो गये कि ब्रिटेन के साथ मिलकर तुर्कों पर इस बात का दबाव डाला जाय कि वह सुलह कर ले। चुनांचे इस शर्त पर युद्ध स्थगित कर दिये जाने का निश्चय हुआ कि यूनानियों को तुर्कों की संरक्षणता में स्वराज्य दिलाने का प्रयत्न किया जाय।
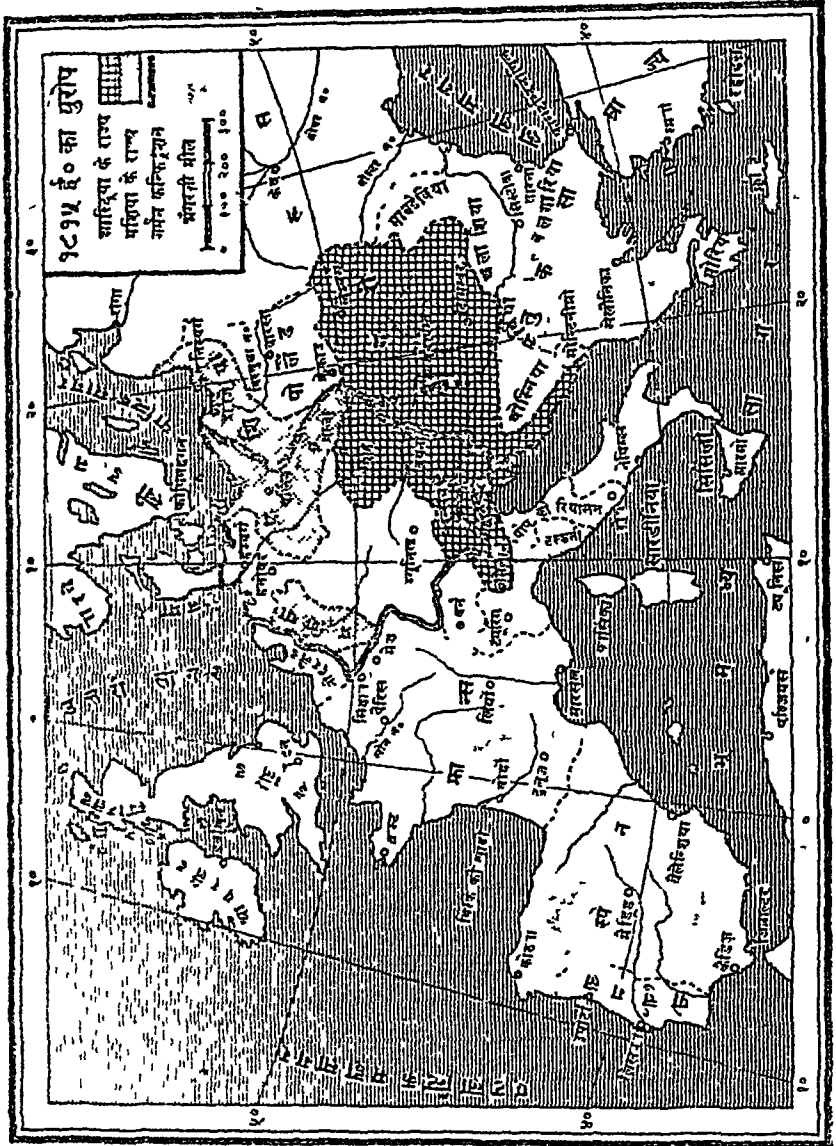
नवारिनो की लड़ाई (१८२७ ई०)—इस योजना के अनुसार सर एडवर्ड काडरिंग्टन की अध्यक्षता में रूसी, फ्रान्सीसी और अँगरेज़ी जहाजों का एक बेड़ा नवारिनो की खाड़ी में उपस्थित तुर्की और मिस्री नौ सेनाओं के बेड़े पर निगाह रखने तथा इस युद्ध को स्थगित कराने के लिए भेजा गया। तुर्की-मिस्री बेड़े के एडमिरल ने युद्ध

स्थगित करने की बात को न माना तो काडरिंग्टन को अपनी शक्ति प्रदर्शित करने के लिए अपने बेड़े को खाड़ी में घुस जाने को आज्ञा देनी पड़ी। इस पर एक तुर्की जहाज ने गोलाबारी शुरू कर दी और लड़ाई छिड़ गयी। कई घंटों की लड़ाई का परिणाम यह हुआ कि सारे तुर्की और मिस्री जहाज तबाह हो गये और इस प्रकार २० अक्टूबर १८२७ ई० को इस लड़ाई में हार जाने के कारण तुर्कों को यूनानियों की स्वतन्त्रता माननी पड़ी। कहा जाता है कि ड्यूक ऑव क्लेरेन्स ( बाद को राजा विलियम चतुर्थ ) ने काडरिंग्टन को एक निजी पत्र में लिखा था कि तुर्कों का सफाया कर दिया जाय; परन्तु ऐसा कोई पत्र नहीं मिला है इसलिए यह जनश्रुति विश्वास करने योग्य नहीं है। यह भी प्रसिद्ध है कि इस लड़ाई में अवसर मिलने पर फ्रान्सीसी नाविकों ने नेपोलियन की समय की हार का बदला चुकाने के लिए रूसी जहाजों पर तोपें दाग़ी थीं। परन्तु इस लड़ाई के पूर्व ही कैनिंग की मृत्यु हो गयी और ड्यूक ऑव वेलिंगटन प्रधान मन्त्री हुआ। वह कैनिंग की इस युद्ध सम्बन्धी नीति का विरोधी था और इस सारे युद्ध को दुर्घटना मात्र समझता था; क्योंकि वह यह नहीं पसन्द करता था कि तुर्की को इस प्रकार दबाकर कुचला जाय। इसलिए अब रूस को ही अकेले तुर्की के साथ लड़ाई करनी पड़ी। आख़िर १८२९ ई० की सन्धि के अनुसार तुर्की ने यूनान की स्वतन्त्रता मान ली। तीन वर्ष बाद इस में थोड़ा हेर-फेर कराने के बाद युरोप के प्रमुख राज्यों ने भी इस सन्धि को स्वीकार कर लिया। इस लड़ाई में रूस ने तुर्की साम्राज्य के कई प्रदेश दबा लिये।

**सन् १८३० के आन्दोलन**—सन् १८३० का वर्ष ब्रिटेन की वैदेशिक नीति के इतिहास में बड़ा महत्व रखता है। इस वर्ष कई एक क्रान्तियाँ हुईं और कई एक विद्रोह। इनका श्री गणेश हुआ फ्रान्स में। लुई १८ वें के उत्तराधिकारी चार्ल्स १०म को, जो बड़ा निरंकुश शासक था, गद्दी से उतार कर सन् १८२४ में लोकरुचि के सिद्धान्तों को मानने वाले उसके चचेरे भाई लुई फिलिप को सिंहासन पर बैठाल दिया गया। फ्रान्स से यह आन्दोलन बेलजियम की ओर बढ़ा और फिर इटली तथा जर्मन प्रदेशों की ओर। उधर पोलों ने रूस के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। इस समय लार्ड पामर्स्टन इंग्लैंड का वैदेशिक मन्त्री था। अगले पैंतीस वर्ष तक ( जब तक १८६५ ई० में उसका देहान्त नहीं हो गया ) वह या तो वैदेशिक मन्त्री रहा, या प्रधान मन्त्री। दोनों स्थितियों में ब्रिटेन की वैदेशिक नीति पर उसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। सन् १८४१ से १८४६ ई० तक वह किसी पद पर न था और सन् १८५२ से १८५५ ई० तक वह गृह-सचिव था; परन्तु वैदेशिक विभाग से इस अनुपस्थिति के कारण भी इंग्लैंड की वैदेशिक नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

**लार्ड पामर्स्टन की वैदेशिक नीति**—लार्ड पामर्स्टन की वैदेशिक नीति का सब से पहला उद्देश्य यह था कि ग्रेट ब्रिटेन का प्रभाव स्थिर ही न रहे बल्कि उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो और इंग्लैंड का सम्मान अक्षुण्य रहे। इस नीति के कारण सारे

देश में लॉर्ड पामर्स्टन की इतनी ख्याति थी और इसी के कारण वह इतना लोकप्रिय था। उसका दूसरा उद्देश्य था युरोपीय देशों की परिस्थिति को प्रगतिशील और उन्नत रखना। यही कारण था कि इंग्लैंड की भाँति वैधानिक शासन की स्थापना के उद्देश्य से चलाये हुए युरोप के विभिन्न देशों के सभी ऐसे आन्दोलनों के साथ उसकी सहानुभूति रहती थी जो अपने देशों में स्वतन्त्र संस्थाएँ स्थापित करना चाहते हों। उसका तीसरा उद्देश्य था तुर्क साम्राज्य को सुरक्षित रखना। पूरबी देशों की समस्या के प्रश्न पर वह इस नीति का प्रबल पक्षपाती था और उसका विश्वास था कि अगर तुर्की को दश वर्ष तक निरन्तर शान्ति प्राप्त हो सके तो वह शीघ्र ही एक सम्मानित राष्ट्र बन जाय। उसकी इस नीति का एक कारण यह भी था कि उसे तुर्की के सम्बन्ध में रूस की नियत पर बड़ा सन्देह था।

लॉर्ड पामर्स्टन अपनी नीति के व्यवहार में बड़ा स्वतन्त्र था और रूढ़ि और प्रचलित रीतियों की ज़रा भी परवाह न करता था। उसकी नीति में भभकी देना; बघारना तथा रौब जमाना ऐसी साधारण बातें थीं जिनके कारण दूसरे राष्ट्रों के भावों को क्या आघात पहुँचेगा इसका उसे कोई ध्यान न रहता था। वह निरन्तर काम में लगा रहता था और सब विदेशी राष्ट्रों को मांगे या बिना मांगे अपनी सलाह देने में कोताही न करता था। इससे कभी-कभी तो लोग उससे नाराज़ तक हो जाते थे। उधर सब यूरोपीय देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों से उसकी इतनी सहानुभूति थी कि युरोप के सभी शासक उसे ऐसी प्रेरणाओं का उत्तेजक समझते थे। उसकी यह प्रवृत्ति इतनी अधिक बढ़ गयी थी कि एक बार रानी विक्टोरिया और प्रिन्स कँनसर्ट को भी यही आशंका हो गयी थी। पामर्स्टन बिलियर्ड खेलने का बड़ा शौक़ीन था और धुप्पल का दाँव लगाने में तो इतना चतुर था कि उस के विपक्षी उससे सदा घबराये रहते थे। राजनीति में भी उसका यही हाल था। फिर चाहे जीत हो या हार इसमें सन्देह नहीं कि वह प्रायः अपने मन की ही करता था। फिर भी सन् १८३० से १८४१ ई० तक तो वैदेशिक मामलों में उसको सदा सफलता ही मिलती रही।

बेलजियम का स्वतन्त्र होना ( १८३० ई० )—पॉमर्स्टन की नीतिज्ञता के जाँच का सब से पहला अवसर नीदरलैंड की समस्या के समय उपस्थित हुआ। वाटरलू की लड़ाई के बाद सन् १८१५ की सन्धि के अनुसार बेलजियम को हालैंड के राज्य में शामिल कर दिया गया था। १८३० ई० में बेलजियनों ने स्वतन्त्र होकर हॉलैंड से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना चाहा। इस आन्दोलन से इंग्लैंड को एक आशंका यह थी कि बेलजियनों को फ्रान्स की सहानुभूति पर बहुत कुछ भरोसा था। ऐसी परिस्थिति में सम्भव था कि बेलजियम स्वतन्त्र हो जाने पर भी वास्तव में फ्रान्स का आश्रित बना रहे और इस प्रकार इंग्लैंड का पूरबी तट सुरक्षित न रह जाने के कारण ब्रिटेन के सामने फिर वही आपत्ति का मार्ग खुल जाय जिसकी रोक के लिए १८ वीं शती में उसने ऐसी दृढ़ता के साथ युद्ध किया था। इस विचार से बेलजियम और

हालैंड की एकता को स्थायी रखना असम्भव समझ कर पामर्स्टन ने ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की तरफ से बेलजियम की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली और आख़िर में फ्रान्स के सहयोग से डचों को भी उसका विरोध करने से रोका। परन्तु फ्रान्स को अपने साथ रखते हुए भी उसने इस बात का ध्यान रखा कि बेलजियम का राजा बूर्बों वंश का न हो अथवा फ्रान्स को बेलजियम की भूमि का तिल भर अंश भी न मिलने पाये। इसलिए सैक्सी कोबर्ग का लियोपोल्ड बेलजियम का राजा बनाया गया और यह चुनाव बड़ा महत्व-पूर्ण और सफल रहा। लियोपोल्ड बड़ा गम्भीर और दूरदर्शी था और उसने बेल-जियम पर बड़ी योग्यता से शासन किया। वह लुई फ़िलिप का दामाद और रानी विक्टोरिया का दूर के रिश्ते में चाचा लगता था। इस नाते भी युरोप की राजनीति में इसका चुनाव बड़ा मार्के का था।

**स्पेन और पोर्तुगल की समस्या**—इसके बाद पामर्स्टन का ध्यान स्पेन और पोर्तुगल की समस्याओं से व्यस्त रहा। संयोग से इस समय स्पेन में फ़र्डिनेंड ७म की पुत्री इसाबेला और पोर्तुगल में पेड्रो ४र्थ की पुत्री मेरिया ड'ग्लोरिया रानी थीं। मेरिया को इस शर्त पर राज्य मिला था कि वह अपने चचा मिगुइल से विवाह कर ले और इसाबेला के कारण उसके चचा डोन कार्लो का राज्याधिकार छिना जा चुका था। दोनों रानियों के सहायक थे सुधारवादी नरम दल के लोग। इनके विरोध पक्ष में थे दोनों रानियों के नृशंस चचा जिन्हें देश भर के प्राचीन पद्धति के पोषक प्रतिरोधी दलों की सहानुभूति मिली हुई थी। पामर्स्टन ने दोनों रानियों की सहायता की। चार्ल्स नेपियर ने रास सेन्ट विन्सेन्ट से कुछ दूर पर मिगुइल के जहाज़ी बेड़े को तहस-नहस कर डाला। रानी मेरिया लिस्बन पहुँची और मिगुइल ने राज्याधिकार को तिलांजलि दे पोर्तुगल का रहना भी त्याग दिया। इस प्रकार कुछ समय के लिए पोर्तुगल में शान्ति हो गयी। परन्तु स्पेन का झगड़ा चलता रहा। सन् १८३३ में स्पेनी पार्लियामेन्ट 'कोर्टेज़' ने इसाबेला को रानी बनाया और उसकी माता क्रिश्चीनिया को रीजेन्ट। डोन कार्लो को भाग कर पोर्तुगल में शरण लेनी पड़ी; परन्तु वह बराबर उपद्रव करता रहा। बास्क प्रान्त के साहसी निवासी उसके प्रबल सहायक थे। सन् १८३६ में 'कोर्टेज़' ने एक मत होकर उसके राज्याधिकार का विरोध किया और आख़िर १८३६ ई० में उसके सहायकों की हार हुई और १८४३ ई० से रानी इसाबेला का राज्य शुरू हुआ।

**तुर्की और मुहम्मद अली**—इसी बीच में मुहम्मद अली की कार्रवाइयों के कारण कई कठिनाइयाँ उपस्थित हो गयीं। मुहम्मद अली अलबानिया का निवासी था। सन् १८११ में वह मिस्र का स्वामी बन बैठा। यूनानियों के स्वतन्त्रता संग्राम में उसने तुर्की के सुलतान की सहायता की; किन्तु १८३१ ई० में सुलतान के आक्रमण की आशंका से उसने अपने पुत्र इब्राहीम को फ़िलिस्तीन और सीरिया पर आक्रमण करने भेजा। ये प्रदेश उस समय तुर्की के साम्राज्य में थे। कोनिया की लड़ाई में तुर्की की करारी हार हुई जिससे सुलतान को ये प्रदेश खिराज के बदले मुहम्मद

अली को देने पड़े। आख़िर तुर्की के सुलतान ने रूस का सहारा पकड़ा। यद्यपि मुहम्मद अली ने सीरिया ले लिया; परन्तु रूस के कारण उसे और आगे बढने का साहस न हुआ। सन् १८३३ में, जार की सहायता के बदले तुर्की ने उँकियर स्केलिसी की सन्धि की, जिसके अनुसार रूस के जंगी जहाज़ बास्फोरस और डारडेनेल्स में होकर जा सकते थे, परन्तु अन्य राष्ट्रों के जंगी जहाज इनमें होकर नहीं निकल सकते। लोगों का मत है कि इस सन्धि ने कॉन्स्टेन्टीनोपेल पर रूस के प्रभुत्व को अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

कई वर्ष बाद सन् १८३६ में सुलतान ने सीरिया लौटा लेना चाहा; किन्तु नेज़िब की लड़ाई में उसकी सेना हार गयी और मुहम्मद अली कॉन्स्टेन्टीनोपेल पर चढ़ाई करने को तैयार हुआ। पामर्स्टन ने, जो तुर्क साम्राज्य की रक्षा करने की नीति का समर्थक था, सुलतान की फिर सहायता की। अब लुई फिलिप ने इसलिए मुहम्मद अली का पक्ष लिया कि इस तरह वह मिस्र में फ्रान्स का प्रभाव जमा सकेगा। इसी-लिए उसने अँगरेजों के साथ सहयोग करने से इनकार कर दिया। पामर्स्टन ने अब रूस की ओर दृष्टि फेरी और ग्रेट ब्रिटेन, रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने एक संघ बनाया, जिसका उद्देश्य था मुहम्मद अली को आगे बढ़ने से रोकना। एडमिरल स्टफर्ड और नेपियर ने एकर पर बम बरसा कर सन् १८४० में उस पर अधिकार कर लिया। अब मुहम्मद अली को सीरिया छोड़ने और इन चारों शक्तियों की शर्तें मानने पर विवश होना पड़ा। अब वह केवल मिस्र का पाशा बना और १८४१ ई० से मिस्र का राज्य उसके कुटुम्ब को पीढ़ी दर पीढी प्राप्त हो गया। परन्तु इस सारी कार्रवाई में फ्रान्स का न कोई हाथ था और न कोई सलाह मशविरा। इसलिए फ्रान्सीसी बड़े कुपित हो उठे। लुई फ़िलिप युद्ध के लिए तैयार हो गया और उसने पेरिस के चारों ओर किलेबन्दी खड़ी करनी शुरू कर दी; परन्तु लड़ाई छिड़ने की नौबत न आयी। ग्रेट ब्रिटेन के लिए बड़े महत्व की बात यह हुई कि अगले वर्ष सन् १८४१ में युरोप की महान् शक्तियों और तुर्की के सुलतान ने यह दृढ़ निश्चय किया कि बास्फोरस और डारडेनेल्स में होकर किसी भी राष्ट्र के जंगी जहाजों को रास्ता न मिलने दें। इस प्रकार १८३३ ई० की उँकियार स्केलिसी की सन्धि का कोई महत्व न रह गया।

**लार्ड एबर्डीन की नीति (१८४१-४६ ई०)**—इसी समय इंग्लैंड में लार्ड मेलबोर्न की गवर्नमेन्ट की पराजय हुई और १८४१ ई० में लार्ड पील प्रधान मन्त्री हो गया। लार्ड पामर्स्टन भी वैदेशिक विभाग से अलग हो गया। उसका उत्तराधिकारी लार्ड एबर्डीन और फ्रान्स स्थित वैदेशिक मन्त्री गीजो दोनों ही शांतिप्रिय विचार के थे, इसलिए अगले पाँच वर्षों में फ्रान्स और ब्रिटेन के बीच फिर सद्भावना स्थापित हो गयी। इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के साथ अमेरिका के पच्छिमी तट की सीमा निर्धारित करने के प्रश्न को तय करने का श्रेय भी लार्ड एबर्डीन को ही मिलना चाहिए, यद्यपि यह समझौता कनाडा को अच्छा न लगा।

**स्पेन की रानी के विवाह की समस्या**—सन् १८४६ में लार्ड पामर्स्टन फिर वैदेशिक मन्त्री हो गया। इसी समय स्पेन की रानी इसाबेला के विवाह के प्रश्न पर फ्रान्स और ब्रिटेन का मैत्री सम्बन्ध टूट गया। इस समय स्पेन की रानी और उसकी छोटी बहन दोनों विवाह के योग्य थीं और युरोप भर के राज्य इनके विवाह के प्रश्न पर उलझ रहे थे। आखिर लुई फिलिप की व्यवस्था के अनुसार रानी इसाबेला का विवाह उसके चचेरे भाई फ्रान्सिस्को डि असीसी से और उसकी बहन का डुक डिमोन्टपेन्सिर, लुई फिलिप के पुत्र से हो गया। स्पेन की रानी के इस विवाह से ग्रेट ब्रिटन को बड़ी शंका हो गयी क्योंकि फ्रान्सिस्को की निर्बलता के कारण उन्हें भय था कि रानी के कोई सन्तान न होगी और अन्त में स्पेन का राज्य फ्रान्स के हाथ आ जायगा। रानी के कई सन्तान उत्पन्न हुईं परन्तु लुई फिलिप के प्रति ब्रिटेन का यह अविश्वास न जा सका।

**सन् १८४८ के विप्लव**—आख़िर सन् १८८४ की क्रान्तियों का श्री गणेश हुआ फ्रान्स में और इसके परिणाम स्वरूप लुई फिलिप को राज्य छोड़ना पड़ा। फ्रान्स में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित हुआ, परन्तु १० महीने की कशमकश के बाद नेपोलियन महान् का भतीजा लुई नेपोलियन चार वर्ष के लिए प्रेसिडेन्ट निर्वाचित हुआ। इस समय तो युरोप भर में विप्लवों की बाढ़ सी आ गयी और हर देश के सुधारवादी राष्ट्रियों ने क्रान्ति खड़ी कर दी थी। हंगरी और इटली की प्रजा आस्ट्रियन राज्य से बड़ी घृणा करती थी और इसलिए वहाँ के विप्लव बड़े भयानक हुए। जर्मनी की विभिन्न रियासतों मे भी क्रान्ति का रोग फैल गया। आखिर आस्ट्रिया के बादशाह को राज्य त्याग देना पड़ा और उसका मन्त्री मेटरनिक भी पदच्युत कर दिया गया। १८ वर्ष का युवक फ्रान्सिस जोजेफ अब आस्ट्रिया के सिंहासन पर पैठा; परन्तु उसे भी वियना से निकाल दिया गया। इसी प्रकार प्रशिया के राजकुमार को भाग कर इंग्लैंड में शरण लेनी पड़ी और इटली और हंगरी में युद्ध की खूब गरमागरमी रही। लार्ड पामर्स्टन की इन सब आन्दोलनों से पूरी सहानुभूति थी और वह हर देश के नेता को सलाह देता रहता था। पर डाक से उसके पास युरोप के विभिन्न देशों के मन्त्रियों के पत्र आते रहते थे जिनमें वे इंग्लैंड से सहायता की प्रार्थना करते; परन्तु पामर्स्टन को उन्हें किसी प्रकार दिलासा देकर ही टालना पड़ता था। फिर भी एक बार उसे वुलविच शस्त्रागार से सिसली के राष्ट्रीय विप्लवकारियों की सहायता के लिए अस्त्र शस्त्र भिजवाने को विवश होना पड़ा। आख़िर प्रतिस्पर्द्धी शक्तियों की विजय हुई और रूसियों की सहायता से आस्ट्रिया ने हंगरी पर विजय प्राप्त कर ली। अब हंगरी पर आस्ट्रिया के एक रक्षित प्रान्त की भाँति राज्य होने लगा। हंगरी के देशभक्त राजनीतिज्ञों को बड़ी कड़ी सज़ाएँ दी गयीं, राजनीतिक बन्दियों के साथ बड़ी कड़ाई का व्यवहार किया गया, स्त्रियों को हन्टरों से पिटवाया गया और प्रजा के अधिकार और उनकी धन-सम्पत्ति तक ज़ब्त कर ली गयी। जर्मनी में तो थोड़े ही दिनों बाद विप्लव शान्त हो गया।

पामर्स्टन का पतन ( १८५१ ई० )—इस बीच में लार्ड पामर्स्टन की वैदेशिक नीति से रानी विक्टोरिया बहुत क्षुभित हो गयी थी। इसका एक कारण यह भी था कि पामर्स्टन अपने को इतना स्वतन्त्र समझने लगा था कि प्रधान मन्त्री या रानी के बिना सलाह मशविरे के वह विदेशों से मन्त्रणा करने को तैयार हो जाता था। रानी ने इसकी शिकायत भी की परन्तु पामर्स्टन ने इस पर कोई ध्यान न दिया। आख़िर जब सन् १८५१ ई० में रानी विक्टोरिया और प्रधान मन्त्री की इच्छाओं के विरुद्ध पामर्स्टन ने लुई नेपोलियन के सेना की सहायता से अपने ७० प्रतिपक्षियों को जेल में बन्द कराके और षड्यन्त्र रचकर अपने आप को फ्रान्स का प्रेसीडेन्ट निर्वाचित करा लेने का समर्थन किया तो उसे वैदेशिक मन्त्री के पद से निकाल देना ही उचित समझा गया।

## §२ क्रीमिया का युद्ध
## ( १८५४—५६ ई० )

यों तो सारी उन्नीसवीं शती पूरबी देशों की उलझनों में ही बीती परन्तु नेपोलियन के ज़माने के युद्धों के बाद सन् १८५४ ई० में इन पूरबी देशों की समस्याओं के कारण जो बड़ा युरोपीय युद्ध उपस्थित हुआ उससे ग्रेट ब्रिटेन भी तटस्थ न रह सका। क्रीमिया के युद्ध के कारणों को समझने के लिए पहले इसमें सम्मिलित होने वाली सारी शक्तियों की परिस्थिति भली भाँति जान लेनी चाहिए। इनमें रूस का नम्बर सब से पहले है। रूस के ज़ार निकोलस प्रथम को यह पूरी उम्मेद थी कि तुर्क साम्राज्य शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जायगा। इसलिए ऐसी घटना होने के पहले ही वह ग्रेट ब्रिटेन से कुछ समझौता कर लेना चाहता था। इसी अभिप्राय से उसने अँगरेज़ी राजदूत से कहा कि हम लोगों को इस मृतप्राय रोगी की अन्त्येष्टि क्रिया के लिए तैयार हो जाना चाहिए। इस समझौते में वह ग्रेट ब्रिटेन को मिस्र और क्रीट पर अधिकार कर लेने देने के लिए राजी था।

परन्तु ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने यह स्वीकृत नहीं किया कि तुर्की मरणासन्न राज्य है। बल्कि अँगरेजों का विचार था कि रूस सरकार ही तुर्क साम्राज्य को हड़प जाने की नियत से प्रेरित मालूम पड़ती थी। यहाँ तक कि अब इस मन्सूबे को पूरा करने के लिए वह तुर्की पर आक्रमण करने में भी कोई हिचक न रखती। किन्तु उस समय का ब्रिटिश मन्त्रिमंडल ह्विग और पीलपक्षियों का संयुक्त कैबिनेट था और उसके सदस्यों में एक मत न था। प्रधान मन्त्री लार्ड एबर्डीन शान्तिप्रिय दल का नेता था, और गृह सचिव लार्ड पामर्स्टन युद्धप्रिय दल का। इसलिए ग्रेट ब्रिटेन की नीति अनिर्णीत, अनिश्चित तथा ढीलीढाली रही। फिर युद्ध के पूर्व की बातचीत के समय कॉन्सटेन्टीपोल में रूस और ब्रिटेन दोनों के एजेन्ट युद्धप्रिय थे। प्रिन्स मैन्शिकाफ रूस के हित साधन पर तुला हुआ था और लार्ड स्टफर्ड डि रेडीक्लफ रूस की कार्रवाइयों से सशंकित होने के कारण उन्हें रोकने के लिए युद्ध छेड़ देने के पक्ष में था।

तीसरे फ्रान्स में सन् १८४८ ई० के आन्दोलन के बाद नेपोलियन तृतीय ने दूसरी दिसम्बर सन् १८५१ ई० को एकाएक १८० डिप्टियों को पकड़ कर एसेम्बली को भंग कर दिया। और पेरिस पर घेरा डाल कर सारे फ्रान्स का स्वामी बन बैठा।
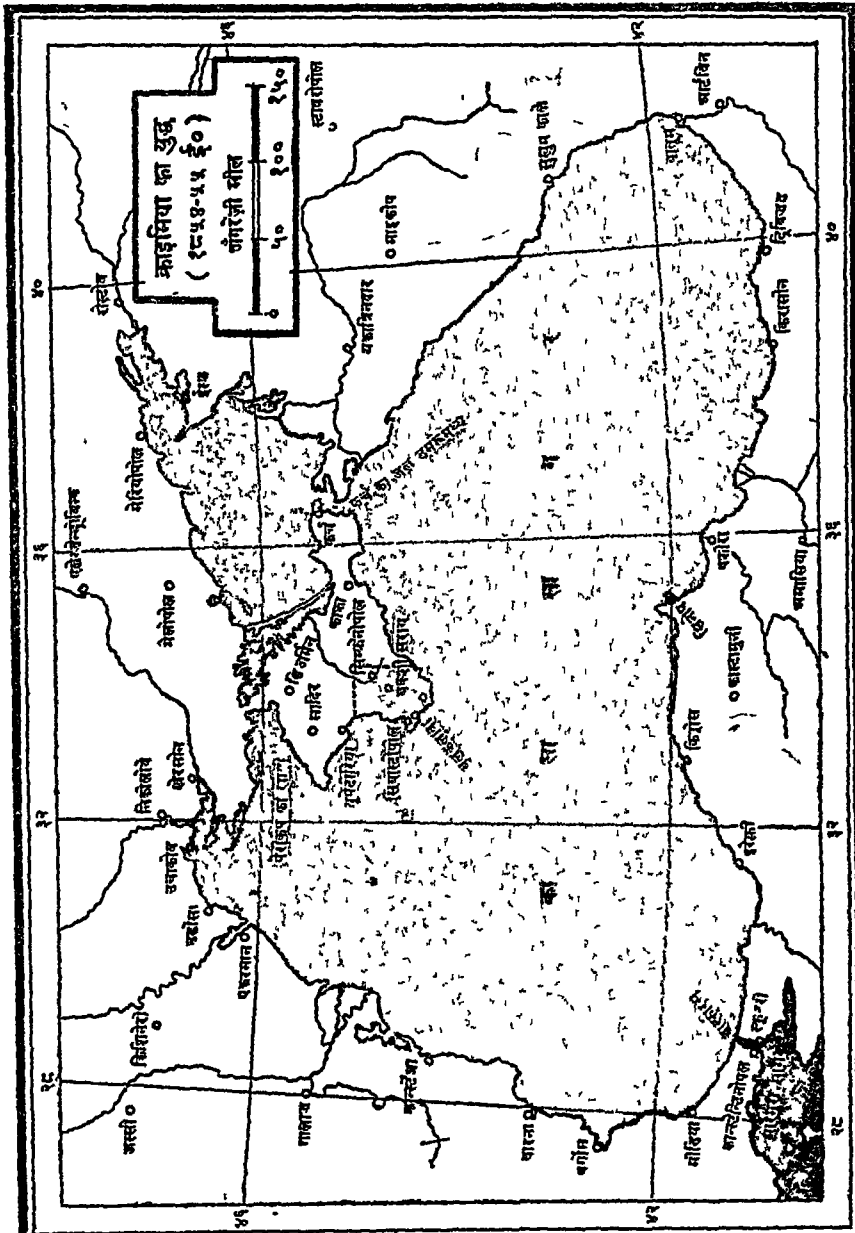
नेपोलियन महान का भतीजा होने के नाते वह युद्ध में गौरव प्राप्त करने के लिए बड़ा उत्सुक था। फिर फ्रान्सीसियों का अपने देश की स्थिति की ओर से ध्यान हटाने के

लिए भी उसका ऐसा सोचना अनुपयुक्त न था। अस्तु पूर्वी देशों की समस्याओं में उसने यह अवसर देखा कि वह शीघ्र ही युरोप का भाग्य-निर्णायक बन सकेगा।

ईसाइयों का पवित्र तीर्थ यरूशलम तुर्क साम्राज्य में स्थित है। यरूशलम के तीर्थों की कुंजी तथा बैतलहम की वेदी के ऊपर का स्वर्ण नक्षत्र जिसके अधिकार में रहे इस विषय में रोमन और यूनानी चर्चों के पादरियों में झगड़ा हो गया। फ्रान्स ने रोमन चर्च का और रूस ने यूनानी चर्च का पक्ष लिया। यह झगड़ा तो किसी प्रकार तय हो गया, परन्तु सन्धि की बातचीत में रूस ने तुर्की के सुलतान की ईसाई प्रजा की संरक्षकता का अपना पुराना दावा पेश किया। मैंचनिकाफ़ अपनी माँग पर दृढ़ था, किन्तु वृद्ध स्टफ़र्ड डि रैडक्लिफ की सलाह से सुलतान ने उसे अस्वीकृत कर दिया। उसे भय था कि जार की इस माँग को स्वीकृत कर लेने से युरोप के तुर्की साम्राज्य पर रूस का बहुत बड़ा अधिकार हो जाता। इस सम्बन्ध में बड़ी जटिल मन्त्रणाएँ चलती रहीं; परन्तु दुर्भाग्य से ब्रिटिश कैबिनेट ने रूसी गवर्नमेंट के सामने अपना मत स्पष्ट न किया और इसलिए जार को यह पता न चला कि इस माँग पर दृढ़ता से जमे रहने का परिणाम यह होगा कि इंग्लैण्ड और रूस में युद्ध छिड़ जायगा। अस्तु तुर्की को दबाने के लिए रूसी सरकार ने डैन्यूब नदी के तटवर्ती तुर्की प्रदेशों को घेर लिया और नवम्बर १८१५ ई० में काले समुद्र के किनारे उत्तरी एनेटोलिया के नगर सिनोप पर एक तुर्की जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया। इस कार्रवाई से ग्रेट ब्रिटेन में बड़ी उत्तेजना फैली। लुई नेपोलियन तो युद्ध के लिए तैयार ही था; ब्रिटिश कैबिनेट भी उसी गर्त में फँस गया। आखिर रूस को अन्तिम चेतावनी देने के बाद मार्च १८५४ ई० में युद्ध की घोषणा कर दी गयी। ग्रेट ब्रिटेन फ्रान्स और तुर्की तथा पीडमान्ट और सार्डीनिया के शासकों ने मिलकर रूस के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। प्रशिया और आस्ट्रिया बहुत कुछ आनाकानी करने के बाद निष्पक्ष रहे। सार्डीनिया के मन्त्री कावूर ने इंग्लैण्ड और फ्रान्स का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए ही अपने देश को इस युद्ध में डाला था। उसे आशा थी कि इटैलियन राष्ट्र की उन्नति सम्बन्धी अपनी योजनाओं को पूरा करने से उसे इंग्लैण्ड और फ्रान्स की सहानुभूति से बहुत कुछ मदद मिलेगी।

क्रीमिया का युद्ध ( १८५४ ई० )—इस युद्ध का प्रधान युद्धक्षेत्र क्रीमिया में होने के कारण यह क्रीमिया का युद्ध कहलाता है। मित्र राष्ट्रों का मूल उद्देश्य था रूसियों का डैन्यूब प्रदेशों से निकाल देना। इसमें तो शीघ्र ही सफलता हो गयी, परन्तु तुर्क साम्राज्य के भविष्य में सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक समझा गया कि रूस को इतना अशक्त कर दिया जाय कि यह फिर तुर्क साम्राज्य पर कुदृष्टि न डाल सके। इस विचार से मित्रराष्ट्रों ने क्रीमिया में रूस अधिकृत सेवेस्टोपोल के प्रसिद्ध किले को, जो रूसी साम्राज्य के पूर्वी विभाग का एक प्रकार से सबसे प्रमुख अंग था, ले लेने की योजना बनायी।

एक प्रकार से क्रीमिया के युद्ध का इतिहास भूलों का इतिहास है। कहा जाता है कि यह बात इसी युद्ध के विषय में लागू नहीं है बल्कि सभी युद्धों के प्रबन्ध में सत्य प्रतीत होती है। वास्तव में सबसे कम भूलें करने वाला पक्ष ही अन्त में विजयी होता है। सन् १८१५ के बाद युरोप में बड़ा युद्ध न होने के कारण युरोपीय शक्तियाँ युद्ध की कला कुछ भूल सी गयीं। सितम्बर सन् १८५४ में लार्ड रागलान और मार्शल सेन्ट आरनौड की अध्यक्षता में ब्रिटिश और फ्रान्सीसी सेनाएँ क्रीमिया में उतरीं और आलमा नदी में घुसकर प्रिन्स मैचनिकाफ़ की गोलियों की बौछार में उसके ढालू किनारों पर चढ़ गयीं। इस लड़ाई में मित्र राष्ट्रों की भारी विजय हुई। इसमें शक नहीं कि मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने बड़े साहस का प्रदर्शन किया, परन्तु इससे उनका युद्ध-कला की विशेषज्ञता का कोई परिचय नहीं मिलता। अँगरेज़ी सेना का सेनापति लार्ड रागलान शत्रु की सेना के निकट ही बिलकुल खुली हुई जगह पर था और फ्रान्सीसी सेना तो न मालूम कहाँ बहक गयी थी जो शत्रु के बाएँ बाजू पर आक्रमण करने के समय पहुँच ही न सकी। इस जीत के बाद मित्र राष्ट्र आगे बढ़ जाते तो सेवेस्टोपोल ले लेना कोई मुश्किल बात न थी पर फ्रान्सीसी कमाण्डर सख्त बीमार था और इस कारण विलम्ब हुआ। इस बीच में रूसियों को सेवेस्टोपोल के क़िले की मरम्मत कर लेने का अवकाश मिल गया और खाड़ी में अपने जहाज़ी बेड़े को डुबा कर उन्होंने वहाँ जहाजी आक्रमण से अपनी रक्षा का प्रबन्ध कर लिया। मित्र राष्ट्रों के कमाण्डर सेवेस्टोपोल के पार्श्वों के पास बड़ी कठिनाई से पहुच सके और उन्होंने यह अनुभव कर लिया कि धावा बोल कर क़िला सर कर लेना असम्भव है। इसलिए उन्होंने घेरा डालने का निश्चय किया।

बलाक्लवा और इनकरमान की लड़ाइयाँ—अँगरेज़ी सेनाओं का आधार उनकी खाइयों के छः मील की दूरी पर बलाक्लवा में था। सेवेस्टोपोल के बाहर वाली रूसी सेना ने इसे धावा करके छीन लेने का निश्चय किया। २५ अक्टूबर को बलाक्लवा की लड़ाई हुई। इस लड़ाई में तीन घटनाएँ बड़े मार्के की हुईं। सवेरे ही रूसियों ने तुर्की सेना को पीछे हटा दिया और कालिन कैम्पबेल की अध्यक्षता में अँगरेज़ी पैदल सेना का एक ही रेजिमेन्ट बलाक्लवा का मार्ग अवरोध किये रहा। रूसी सवारों के कई दस्तों ने अँगरेजी सेना के पार्श्व से घूम कर बलाक्लवा पहुँचने की कोशिश की; लेकिन कैम्पबेल ने बड़ी फुर्ती से अपनी सेना का रुख बदल दिया और रूसी सवारों को हार कर लौटना पड़ा। इसके बाद अँगरेज़ी सवारों के 'हैवी ब्रिगेड' दस्तों ने सुसंगठित रूसी अश्व सेना पर धावा बोल दिया और यद्यपि रूसी सवारों की संख्या इनसे तिगुनी थी, फिर भी इन्होंने आठ मिनट में उसकी पङ्क्तियों को तोड़ डाला और उन्हें पीछे हटने पर बाध्य किया। तीसरी मुठभेड़ में ब्रिटिश सेनापति के आदेश को ठीक ठीक न समझ सकने के कारण 'लाईट ब्रिगेड' के ६०० सवारों ने रूसी सेना पर एक घाटी में होकर आक्रमण किया। इस समय इनके ऊपर चारों तरफ से तोपों

के गोलों की वर्षा हो रही थी फिर भी बड़ी वीरता से लड़ते हुए यह लोग रूसियों के तोपखाने तक जा पहुँचे और थोड़ी देर तक उसका मुँह बन्द कर देने में समर्थ हुए। इस प्रकार अँगरेज़ी सेना ने बलाक्लवा की तो रक्षा कर ली, परन्तु वहाँ से अँगरेज़ी खाइयों में जाने वाली जो एक ही पक्की सड़क थी उस पर रूसियों का अधिकार रहा और इसलिए अँगरेजी सेना की खाइयों तक रसद और गोला बारूद पहुँचना असम्भव हो गया। इस लड़ाई को हुए अभी पन्द्रह दिन भी न हुए थे कि रूसियों ने सेवेस्टोपोल पर घेरा डालने वाली अँगरेजी सेना के दाहने पार्श्व इनकरमान पर आक्रमण किया। कोहरे के अन्धेरे में बड़ी घमासान की लड़ाई हुई, जिसमें १५ नवम्बर १८५५ ई० को रूसियों को पीछे हटना पड़ा।

अब ब्रिटिश और फ्रान्सीसी सेनाओं को क्रीमिया के जाड़े में युद्ध करना पड़ा। यहाँ नवम्बर के मध्य में ही खूब जाड़ा पड़ना शुरू हो गया था। फिर वर्षा और तुषार के साथ एक भीषण तूफान आया जिसने अँगरेज़ी सेना के शिविर नष्ट कर दिये और बलाक्लवा से खाइयों तक एकमात्र कच्चा रास्ता जो अँगरेज़ों के हाथ में था खाड़ियों के आने योग्य न रह गया। सब से बड़ी आफत यह हुई कि अँगरेज़ी सेनाओं के लिए कपड़े, रसद और गोला-बारूद आदि सामान के लदे हुए २१ ब्रिटिश जहाज तूफान में नष्ट हो गये। इसीलिए अगले चार महीनों तक इस सेना को दारुण कष्ट सहना पड़ा। इधर तो घोर शीत पड़ती थी उधर कपड़े और भोजन का अभाव था। फिर रसद लादने के सभी जानवर नष्ट हो गये थे और सैनिकों को रसद पाने के लिए ख़ुद ख़च्चर बनना पड़ता था। सेना के अस्पतालों की भी बड़ी दुर्दशा थी। बीमारों और घायलों के लिए दवा-दारू और मरहम-पट्टी का समुचित प्रबन्ध न था। इस पर भी हैजा पेचिश और ज्वर आदि रोगों का प्रकोप होने से रोगियों की संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि अस्पतालों में उनके लिए जगह न रही और सेना बहुत अधिक क्षीण हो गयी।

समाचारपत्रों के सम्वाददाताओं द्वारा सेना की दशा के ये समाचार इंग्लैंड पहुँचे। इन्हें पढ़ और सुन कर सारा देश उत्तेजित हो उठा और यह अनुभव करने लगा कि ऐसी स्थिति को संभालने वाला लार्ड पामर्स्टन ही एक मात्र राजनीतिज्ञ है। अस्तु जनवरी सन् १८५५ में लार्ड ऐबर्डीन ने त्यागपत्र दे दिया और लार्ड पामर्स्टन प्रधान मन्त्री बन गया। परन्तु मन्त्रिमंडल में यह सब परिवर्तन होने के पहले ही सेना की दशा सुधारने के प्रयत्न शुरू हो गये थे। क्रीमिया को नयी सेना और रसद भेजी गयी और कुमारी फ़्लोरेन्स नाइटिंगेल ने अस्पतालों में रोगियों के उपचार की ऐसी प्रशंसनीय व्यवस्था की कि उसका नाम सदा के लिए इतिहास में अमर हो गया। जिस समय कुमारी नाइटिंगेल स्कूटारी पहुँची। अँगरेज़ी सैनिक अस्पताल में १० हज़ार से भी अधिक रोगी मौजूद थे। इन अस्पतालों की सफ़ाई, रोगियों की सेवा सुश्रूषा, और उनको ठीक समय पर भोजन और औषधि आदि देने की व्यवस्था में उसने ऐसी

तन्मयता से दिन रात काम किया कि वह स्वयम् बीमार पड़ गयी। परन्तु उसने अपनी अवस्था की कोई परवाह न करते हुए रोगियों की सेवा-सुश्रूषा जारी रखी और इन्हीं सेवाओं के कारण उसकी कीर्त्ति अमर हो गयी। उपचारिकाओं की शिक्षा के लिए उसने सेन्ट टॉमस और किंग्स कालेज अस्पतालों में नयी व्यवस्था की और रेड क्रास सोसाइटी के संस्थापन में भी बड़ा सुयोग दिया।

सेवेस्टोपोल का पतन ( सितम्बर १८५५ ई० )—लार्ड पामर्स्टन के प्रधान मन्त्री हो जाने से सारे देश में एक नयी स्फूर्ति उत्पन्न हो गयी थी। इधर जाड़े में रूसी सेना की दशा भी अँगरेजी सेना से कुछ अधिक अच्छी न थी इसलिए कोई आक्रमण भी न हो सका। इधर फ़रवरी १८५५ में ज़ार निकोला की मृत्यु हो गयी और एलेग्जैण्डर द्वितीय रूस का शासक हो गया। सन्धि की बातचीत आरम्भ हुई परन्तु इसका कुछ परिणाम न निकला। मित्रराष्ट्रों ने बड़े उत्साह के साथ युद्ध शुरू कर दिया। फ्रान्स की सेना १ लाख थी, ब्रिटिश सेना ४० हज़ार और सार्डीनिया की १५ हजार। इस संयुक्त सेना ने सेवेस्टोपोल पर आक्रमण किया। पहले तो वे असफल रहे परन्तु सितम्बर में फ्रान्सीसियों और अँगरेज़ों ने मालाकाफ़ और रेडाँ दो प्रमुख किलों पर बड़े जोर के आक्रमण किये। रेडाँ पर ब्रिटिश आक्रमण असफल रहा; किन्तु फ्रान्सीसियों ने मालाकाफ़ ले लिया और उसी रात को रूसी सेवेस्टोपोल छोड़ कर चल दिये ( सितम्बर १८५५ ई० )।

पेरिस की सन्धि—सेवेस्टोपोल के पतन के साथ ही युद्ध समाप्त हो गया। वास्तव में १८५६ ई० के आरम्भ में पेरिस में युरोपीय शक्तियों की एक कॉंग्रेस हुई और मार्च के अन्त में सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। उसकी प्रधान शर्तें ये थीं :—

१—तुर्की का सुलतान युरोप के सार्वजनिक विधान तथा शान्ति संघ का सदस्य बनाया जाय तथा सब राष्ट्र उसकी स्वतन्त्रता और राज्य-विस्तार को स्वीकार करते हुए उसकी रक्षा करने का बचन दें।

२—सुलतान अपनी प्रजा के प्रति शुभेच्छा प्रकट करते हुए राष्ट्रों को यह वचन दे कि वह प्रजा की दशा सुधारने में धर्म या जाति-भेद का कोई विचार न करेगा। सब राष्ट्रों ने तुर्की के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का निश्चय किया।

३—काला सागर निश्पक्ष क्षेत्र निश्चित किया गया तथा उसके चारों ओर के किले और बन्दरों में प्रत्येक राष्ट्र के व्यापारी जहाज़ जा सकेंगे परन्तु जंगी जहाज़ नहीं। यह भी मान लिया गया कि उसके किनारे रूस या तुर्की अपने शस्त्रागार स्थापित नहीं कर सकेंगे।

४—डैन्यूब नदी में प्रत्येक राष्ट्र के जहाज़ जा सकेंगे और रूस को बिसरेबिया का कुछ प्रदेश मालडेविया को देकर नदी के किनारे से हट जाना पड़ेगा।

५—मालडेविया और वालाशिया सुलतान के आधिपत्य में स्वतन्त्र हो गये।

रूस ने उनकी रक्षा करने के एकाधिकार का परित्याग किया तथा यह अधिकार सब संयुक्त राष्ट्रों को मिल गया।

## § ३. ब्रिटिश कूटनीति और युद्धों का ज़माना
## (१८५७-७१ ई०)

क्रीमिया का युद्ध तो भविष्य की विश्वव्यापी युद्ध-शृंखला की भूमिका मात्र था। इसके समाप्त होते ही ग्रेट ब्रिटेन को ईरान और चीन से लड़ना तथा भारत में १८५७ ई० के ग़दर का दमन करना पड़ा। फिर फ्रान्स के साथ जो कशमकश चल रही थी वह भी चिन्ताओं से ख़ाली न थी। नेपोलियन ३य से सन्धि हो जाने के बाद भी पामर्स्टन को सतर्क रहना पड़ गया क्योंकि उसका कहना था कि हम लोग तो ऐसे घोड़े पर सवारी करना चाहते हैं जो हमें अपने पुट्ठों पर हाथ भी रखने नहीं देता। इसीलिए नेपोलियन तृतीय की ओर से ग्रेट ब्रिटेन को यह आशंका हो गयी थी कि वह इग्लैंड पर आक्रमण करने की फिकर में है और अपने चचा की ट्रफ़ालगर और वाटरलू की हार का बदला लेने की तैयारी कर रहा है।

इटली का स्वतन्त्रता संग्राम (१८५६ ई०)—उधर १८५६ ई० में ब्रिटिश-राजनीति को इटली के स्वतन्त्रता सग्राम का सामना करना पड़ा। नेपोलियन के पतन के बाद और इससे सैकड़ों बरस पहले भी इटली की केवल भौगोलिक स्थिति समझी जाती थी। इसके उत्तरी प्रदेशों पर सार्डीनिया के राजा तथा आस्ट्रिया के सम्राट् का अधिकार था। मध्यप्रदेश पोप, ड्यूक ऑव टस्कनी तथा अन्य तीन ड्यूकों के शासन में थे और दक्खिनी प्रदेश तथा सिसली पर नेपिल्स का राजा शासन करता था। सन् १८५६ ई० में पीडमॉन्ड के शासक तथा सार्डीनिया के राजा विक्टर इमेनुअल की अध्यक्षता में इटली के संगठन का आन्दोलन अब और अधिक न रोका जा सकता था। फिर भी अनेकों कठिनाइयाँ थीं। आठ राज्यों में एकता स्थापित करना सहल न था। उधर आस्ट्रियनों को निकालना भी कठिन काम था और फिर इटली में पोप के अस्तित्व ने तो इटली की एकता की समस्या को और भी उलझा दिया था।

ये सब कठिनाइयाँ उपस्थित होते हुए भी इटली का राष्ट्रीय दल इस बात में बड़ा भाग्यशाली था कि उसे बड़े योग्य नेताओं का सुयोग प्राप्त था। विक्टर इमेनुएल की अन्तर्दृष्टि उसके मन्त्री कावूर की प्रतिमा और गेरीबाल्डी की वीरता ने आख़िर इटली में एकता स्थापित कर ही तो दी। फिर भी यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स की सहायता बिना इस आन्दोलन का सफल होना सम्भव नहीं था। क्योंकि यद्यपि बाद में वह पोप के पक्ष में हो गया तो भी सन् १८५६ ई० में नेपोलियन तृतीय ने आस्ट्रिया की सेनाओं को लोम्बार्डी से निकाल दिया। उधर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के प्रधान मन्त्री लार्ड पामर्स्टन तथा वैदेशिक मन्त्री लार्ड जान रसल ने इटेलियनों को बड़ी नैतिक सहायता दी और उस समय अन्य युरोपीय शक्तियों को हस्तक्षेप करने से रोका। जब गेरीबाल्डी ने एक हज़ार लालकुर्ती वाली सेना

होकर सन् १८६० ई० में सिसली और नेपल्स जीतने का प्रयत्न किया। अन्ततोगत्वा वेनिस और रोम नगरों को छोड़ समस्त इटली एक हो गया। परन्तु जब सन् १८६६ ई० में आस्ट्रिया प्रशिया के साथ युद्ध में व्यस्त था तो वेनिस भी सर कर लिया गया और जब सन् १८७० ई० में फ्रान्स और जर्मनी के युद्ध के कारण फ्रान्सीसी सेना रोम से हटा ली गयी तो रोम भी इटली के राज्य में सम्मिलित हो गया।

**अमेरिका में गृह-युद्ध ( १८६१–६५ ई० )**—इटली के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद ही शीघ्र अमेरिका का गृह-युद्ध आरम्भ हो गया। यह युद्ध अमेरिका की उत्तरी और दक्खिनी रियासतों में इसलिए हुआ कि इस बात का निर्णय हो जाय कि दक्खिनी रियासतों को संघ से पृथक होने तथा गुलामों का व्यापार जारी रखने का अधिकार है या नहीं। चार वर्ष के कठिन युद्ध के बाद अन्त में उत्तरी रियासतों की विजय हुई। इस लड़ाई में लड़कर या बीमार होकर लगभग १० लाख आदमी मारे गये। शुरू शुरू में तो इसी बात पर लड़ाई हुई कि दक्खिनी रियासतों को संघ से अलग हो जाने का अधिकार है या नहीं। उस समय दक्खिनी रियासतों में सारा काम गुलाम करते थे और वहाँ का कृषि-व्यवसाय तो बिलकुल गुलामों की मेहनत पर ही निर्भर था। ग्रेट ब्रिटेन की सहानुभूति दक्खिनी रियासतों की ओर एक तो इसलिए थी कि वे निर्बल पड़ती थीं और दूसरे इसलिए भी कि वे बड़ी वीरता से लड़ीं। परन्तु सबसे मुख्य कारण यह था कि उत्तरी रियासतों ने दक्खिन के बन्दरगाहों को अवरुद्ध कर लंकाशायर को रुई जाना बन्द कर दिया जिससे वहाँ बड़ी हलचल मची थी।

**ट्रेन्ट जहाज़ की घटना**—फिर भी ब्रिटिश गवर्नमेन्ट निष्पक्ष बनी रही। यद्यपि दो अवसर ऐसे आये जब उत्तरी रियासतों से युद्ध होते होते बचा। एक बार तो उत्तरी राज्यों के जंगी जहाजों ने ब्रिटिश राज्य के जहाज़ ट्रेन्ट को रोक कर उस पर से दक्खिनी रियासतों के दो एजेन्टों को उतार लिया। वह लोग सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से युरोप जा रहे थे। इस घटना से सारा राष्ट्र विक्षुब्ध हो उठा और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने कनाडा को गार्ड भेजे तथा उत्तर राज्यों को एक पत्र भेज कर उनसे यह कहा कि दक्खिनी राज्यों के उन एजेन्टों को सकुशल लौटा दें और इस अपमान के लिए ब्रिटिश गवर्नमेन्ट से क्षमा माँगें। प्रिन्स एलबर्ट की राय से रानी विक्टोरिया ने मन्त्रिमंडल को सलाह दी कि इस पत्र की भाषा ऐसी शिष्ट और विनम्र होनी चाहिये कि उत्तरी रियासतों को बिना असम्मानित हुए उसके मान लेने में कोई अड़चन न मालूम हो। आखिर ऐसा ही पत्र लिखा गया और उत्तरी रियासतों ने भी ब्रिटेन की बात मान ली। इस प्रकार युद्ध टल गया।

**अल्बामा जहाज़**—इसके बाद एक और घटना हुई; परन्तु इस बार ग़लती ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की थी। बर्किनहेड की गोदी में उस समय दक्खिनी रियासतों के लिए एक जंगी जहाज़ बन रहा था। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट को इस बात की सूचना दी गयी किन्तु वह इसकी उपेक्षा करती रही। अल्बामा के कमाण्डर को यह निर्देश दिया गया

था कि वह किसी कानून का उल्लघन कर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट को इस बात का अवसर न दे कि वह जहाज को जब्त करले। आखिर सन् १८६२ में वह अल्बामा जहाज़ पूरा तैयार न हो पाया था कि इस बात की जाँच करने के बहाने कि वह ठीक हुआ है या नहीं बर्किनहैड की गोदी से चल कर मर्सी से होता हुआ मुहलफ़ा खाड़ी में जा पहुँचा और वहाँ उस पर जो काम बाकी रह गया था पूरा कर दिया गया। एक दिन उसके कमाण्डर को यह खबर लगी कि ३१ जुलाई को उसे पकड़ लिया जायगा, इसलिए वह तुरन्त अँगरेजी तट छोड़ कर आजोर टापुओं पर जा पहुँचा और वहाँ तोपें, गोला बारूद और रसद का सामान लाद कर २४ अगस्त तक यात्रा के लिये तैयार हो गया। अब कमाण्डर सीमी ने उसका नामकरण किया, नाविकों को बाक़ायदा नियुक्ति के परवाने दिये और उस पर कनफिड्रेट का झंडा लगा दिया गया। दो वर्ष तक उत्तरी रियासतों के व्यापारी जहाजों को उसने बड़ी क्षति पहुँचायी और ६५ जहाज़ पकड़ लिये तथा ४० करोड़ डालर का माल बरबाद कर दिया। आखिर जून १८६४ ई० में यह जहाज फ्रान्सीसी बन्दर चेरबुर्ग में रसद के लिए पहुँचा। इसी समय यूनाइटेड स्टेट्स का भी एक स्टीमर वहाँ पहुँचा और दोनों जहाज़ों में लड़ाई छिड़ गयी और अल्बामा डुबो दिया गया। इस पर इन राज्यों ने अपनी क्षति पूर्ति करानी चाही। कुछ समय की लिखा पढ़ी और तनातनी के बाद आख़िर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने मजबूर होकर १८७२ ई० में ३० लाख पौंड से अधिक हरजाना देना स्वीकार करके मामला तय किया।

**पोलैण्ड की समस्या और बिस्मार्क ( १८६३ ई० )**—अभी अमेरिका में गृह-युद्ध हो ही रहा था कि युरोपीय राजनीतिक क्षितिज पर एक और राजनीतिज्ञ का का उदय हुआ। इस व्यक्ति का नाम था बिस्मार्क। वाटरलू की लड़ाई के बाद से प्रशिया की नीति में न तो साहस था और न कार्यक्षमता। इसलिये लार्ड पामर्स्टन ने एक बार यहाँ तक कह दिया कि प्रशिया को तो बिलकुल हेय समझना चाहिए। सन् १८६२ ई० में बिस्मार्क प्रशिया के राज्य का प्रधान मन्त्री हो गया और उसने शीघ्र ही पामर्स्टन की यह धारणा ग़लत साबित कर दी। वह युद्ध और मारकाट की नीति का समर्थक था और अपने देश की आवश्यकताओं को भली भाँति जानता था। इसलिये उसने यह दृढ़ निश्चय कर रखा था कि उनकी पूर्ति करने के लिए वह किसी भी प्रयत्न को उठा न रखेगा। ऐसे दृढ़व्रती नीतिज्ञ के मुकाबले में इंग्लैण्ड का प्रधान मन्त्री पामर्स्टन ज़रा भी न जँच पाता; क्योंकि पहले तो वह स्वयम् ८० वर्ष का बूढ़ा हो चुका था, फिर अपने विरोधी मन्त्रिमंडल की ढिलमिल नीति के कारण शान्तिप्रिय भी बनता जा रहा था और तीसरे इंग्लैंड की सेना भी संख्या में बहुत कम होने के कारण कुछ अधिक सशक्त न रह गयी थी और क्रीमिया के युद्ध के समय तो उसके युद्ध-कौशल की सारी कलई खुल चुकी थी। सन् १८६३ ई० में रूसियों की दुर्व्यवस्था से तंग आकर पोलों ने विद्रोह खड़ा किया और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की सहानुभूति अपने पक्ष में प्राप्त कर ली। इसलिए ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने रूस की गवर्नमेन्ट के पास तीन

बार शिकायत के पत्र भेजे जिनमें पोलों के प्रति किये हुए अत्याचारों की भर्त्सना की गयी थी। इस पर बिस्मार्क को यह भय हुआ कि अगर रूसियों के विरुद्ध पोलों का यह विप्लव सफल हो गया तो प्रूसी पोलैंड में भी ऐसी ही उथल पुथल पैदा हो जायगी। इसलिये उसने प्रशिया के पच्छिमी सीमान्त पर सेनाएँ भेज दीं जिनको यह आदेश था कि आवश्यकता पड़ने पर रूसियों की मदद करें। इस प्रकार ब्रिटिश गवनमेन्ट की शिकायतों का रूस पर कोई प्रभाव न पड़ा और पोलैंड के बलवे को बड़ी क्रूरता के साथ कुचल दिया गया। अँगरेजों के इस हस्तक्षेप से पोलों को कोई लाभ न हुआ, अवश्य ही रूस इससे बहुत ही विक्षुब्ध हो गया।

श्लेसविक हाल्स्टीन जागीरों की समस्या (१८६३-६४ ई०)—१८६३ ई० में श्लेसविक हाल्स्टीन की रियासतों की समस्या उठ खड़ी हुई। पामर्स्टन का कहना था कि युरोप भर में तीन ही व्यक्ति इस समस्या को समझते थे। इनमें से एक था प्रिन्स एलबर्ट, जिसकी मृत्यु हो चुकी थी। दूसरा था एक डेनी राजनीतिज्ञ, जो पागल हो गया और तीसरा खुद पामर्स्टन जो इसे भूल गया। इसलिए इसका समझना ही एक कठिन समस्या हो गयी थी। पिछले चार सौ वर्ष से डेनमार्क का राजा ही इन दोनों रियासतों का शासक होता चला आया था। परन्तु हाल्स्टीन जर्मनी का प्रदेश था और सन् १८१५ ई० में वियना का कांग्रेस के बाद जर्मन संघ ('कनफिड्रेशन') में सम्मिलित कर दिया गया था। सन् १७६७ ई० से डेनमार्क के शासकों की बराबर यह नीति रही कि इन दोनों डचियों को हर तरह से डेनमार्क का आश्रित प्रान्त बना दिया जाय और १८४६ ई० में क्रिश्चियन अष्टम ने यह आज्ञा-पत्र निकाला कि इन दोनों डचियों के शासकों के दायाधिकार के सम्बन्ध में डेनमार्क का ही विधान लागू होगा। इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि यह दोनों डची डेनमार्क के राज्य का ही अंग समझी जायँगी। इस पर इन दोनों डचियों के शासक बिगड़ उठे और प्रशिया के राजा फ्रेड्रिक विलियम चतुर्थ ने जर्मन संघ के अधिष्ठाता की हैसियत से उनका पक्ष लिया। आस्ट्रिया ने भी प्रशिया का साथ दिया और जब इन दोनों राज्यों की शिकायतों पर डेनमार्क की गवर्नमेन्ट ने कोई ध्यान न दिया तो मार्च १८४८ ई० में लड़ाई छिड़ गयी और आस्ट्रिया और प्रशिया की सेनाएँ हाल्स्टीन पर अधिकार करने के लिए आगे बढ़ीं। अँगरेजों की सहानुभूति इसलिए डेनमार्क के पक्ष में थी कि इनके विचार में इस छोटी सी रियासत को दो बड़ी बड़ी रियासतें डरा धमका कर दबा देना चाहती थीं। इसी समय लार्ड पामर्स्टन की एक अविवेकपूर्ण वक्तृता से डेनी की यह भावना हो गयी कि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट उनका पक्ष लेगी और लड़ाई हो जाने पर सम्भव है उनकी सहायता भी करे। इस भ्रान्ति को बिस्मार्क की कार्रवाइयों ने और भी समर्थन किया। वह तो यह चाहता ही था कि डेनमार्क से लड़ाई हो जाय तो यह दोनों रियासतें उसके हाथ से छीन ली जाँय। आख़िर डेनमार्क लड़ाई के लिए तैयार हो गया और इसका नतीजा यह हुआ कि आस्ट्रियन और प्रशियन सेनाओं ने इन दोनों रिया-

सतों को विध्वंस कर डाला। इंग्लैंड से कोई सहायता न मिली इसलिए डेनमार्क को न सिर्फ इन दोनों रियासतों ही से हाथ धोना पड़ा बल्कि १८६४ ई० में हार कर हर-जाना देने के लिए भी मजबूर होना पड़ा।

इसके बाद शीघ्र ही १८६५ ई० में लार्ड पामर्स्टन की मृत्यु हो गयी। विरोध पक्ष का कहना था कि उसकी वैदेशिक नीति ऐसी हस्तक्षेप और प्रमादपूर्ण थी कि उससे व्यर्थ की उलझनें प्रस्तुत हो जातीं। फिर भी यह स्मरण रखना चाहिए कि यह लार्ड पामर्स्टन की ही योग्यता और कौशल का दम था कि बेलजियम और इटली के स्वतन्त्र राज्य खड़े हो गये और क्रीमिया के युद्ध के अन्त में ग्रेट-ब्रिटेन को सफलता प्राप्त हो सकी। यह जरूर है कि अपने जीवन के अन्तिम समय में उसे बिस्मार्क जैसे सशक्त और सुदृढ़ नीतिश के मुकाबले में हार माननी पड़ी।

**आस्ट्रिया-प्रशिया का सात सप्ताह का युद्ध ( १८८६ ई० )**—लार्ड पामर्स्टन की मृत्यु के बाद पाँच ही वर्षों में युरोप में प्रशियनों का प्रभुत्व हो गया। बिस्मार्क की नीति का प्रमुख उद्देश्य था आस्ट्रिया को जर्मनी से निकाल कर प्रशिया को प्रधान शक्ति बना देना। प्रशिया आस्ट्रिया के बीच १८८६ ई० की लड़ाई का सबसे प्रमुख कारण था डेनमार्क से जीती हुई श्लेसविक और हालस्टीन की डचियों का बँटवारा। यद्यपि सन् १८६५ में गैस्टीन की सन्धि में यह तय हुआ था कि हालस्टीन आस्ट्रिया के अधिकार में रहे और श्लेसविक प्रशिया के; परन्तु इन दोनों राष्ट्रों की लड़ाई थी जर्मनी के ऊपर अधिकार की, क्योंकि इस समय जर्मनी की प्रजा जर्मन प्रशिया को ही अपना नेता बनाना चाहती थी। इस बीच में दोनों राष्ट्र चुपके-चुपके लड़ाई की तैयारी कर रहे थे और जर्मन डाइट के जून सन् १८६६ के इजलास में आस्ट्रिया ने गैस्टीन की सन्धि की शर्तों की अवज्ञा करते हुए सारा मामला बंड ( जर्मनी की प्राचीन जागीरदारों की कौन्सिल ) के निर्णय पर छोड़ दिया और हालस्टीन की डची के भविष्य का निर्णय करने के लिए उसी के जमीन्दारों और जागीरदारों की सलाह मानने का वचन दिया। इसको प्रशिया ने अपनी मानहानि समझा और आस्ट्रिया के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। प्रशिया की सेना ने बोहीमिया पर आक्रमण कर दिया। आस्ट्रिया की सैन्य मंडली तो यह समझ रही थी कि उस पर साइलीशिया की तरफ़ के आक्रमण होगा इसलिए उसने अपनी सेना उसी तरफ़ जमा कर रखी थी। प्रशिया की सेनाएँ बराबर आगे बढ़ती गयीं और सडोवा, कुनीग्रास के बीच में आस्ट्रिया की सेना पर जा धमकीं। ३ जुलाई १८६६ ई० की लड़ाई में आस्ट्रियन सेना की करारी हार हुई। इस के बाद प्रशियन सेना बराबर वियना तक बढ़ती चली गयी, यहाँ तक कि २० अगस्त को प्राहा की सन्धि हो गयी। इस लड़ाई का फल यह हुआ कि प्रशिया को श्लेसविक और हालस्टीन की डची और हनोवर का राज्य मिल गया और आस्ट्रिया का जर्मनी के ऊपर से सदा के लिए प्रभुत्व जाता रहा।

**सन् १८७०-७१ का फ्रान्सीसी-जर्मन युद्ध**—प्रशिया की इस सफलता के

कारण नेपोलियन तृतीय को बड़ी चिन्ता हो गयी। उधर बिस्मार्क ने यह सोचा कि जर्मन की एकता उसी समय सम्भव हो सकती है जब उसके पुराने शत्रु फ्रान्स को युद्ध में परास्त कर दिया जाय। ऐसी परिस्थिति में फ्रान्स और जर्मनी के बीच लड़ाई हो जाना आवश्यक प्रतीत होने लगा था। १८६७ ई० में प्रशिया ने लग्ज़ैम्बुर्ग की डची पर अधिकार कर लिया और अब फ्रान्स के साथ युद्ध ठन जाने में कोई कसर न रह गयी। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने लंडन में सब बड़ी शक्तियों की एक कॉंग्रेस बुलायी जिसमें इस झगड़े का यह फैसला किया गया कि लग्ज़ैम्बुर्ग हालैंड के बादशाह के अधिकार में रहे। इस प्रकार लड़ाई कुछ समय के लिए टल गयी किन्तु दोनों प्रदेशों में सेनाओं की तैयारी जारी रही। १८७० ई० में स्पेन की गवर्नमेन्ट ने प्रशिया के बादशाह विलियम के एक सम्बन्धी लिओपोल्ड को स्पेन के ख़ाली सिंहासन का शासक चुना। इसे फ्रान्सीसी गवर्नमेन्ट ने अपनी बड़ी हतक समझा। विलियम प्रथम की सलाह से लिओपोल्ड ने स्पेन का राजा होना स्वीकार नहीं किया परन्तु फ्रान्स को इतने से ही सन्तोष न हुआ और उसने प्रशिया से इस बात की प्रतिज्ञा करानी चाही कि वह भविष्य में कभी लिओपोल्ड के इस अधिकार का समर्थन न करे। प्रशिया के बादशाह ने ऐसी प्रतिज्ञा करने से इनकार कर दिया तो १६ जुलाई १८७० ई० को नेपोलियन तृतीय फ्रान्स के बादशाह ने युद्ध की घोषणा कर दी। बिस्मार्क ने यह सारी कार्रवाई ऐसी चालाकी से की कि युद्ध छेड़ने का सारा भार फ्रान्स पर आ पड़ा। फ्रान्स यह नहीं समझता था कि दक्खिनी जर्मन रियासतें भी प्रशिया और उत्तरी रियासतों का साथ देंगी। आख़िर जुलाई के अन्त में दोनों देशों की सेनाएँ सीमान्त की ओर बढ़ीं। नेपोलियन को अपनी सेना की व्यवस्था करने में १५ दिन की देर लग गयी और उसे यह जान कर भी कुछ कम असन्तोष न हुआ कि फ्रान्सीसी सेना की स्थिति सन्तोष-जनक न थी। जर्मन सेना सुव्यवस्थित और संख्या में अधिक थी। इसका परिणाम यह हुआ कि बर्लिन पर आक्रमण करने के बजाय फ्रान्सीसी सेना राइन नदी को भी पार न कर सकी और उसे आल्सेस लॉरेन में ही लड़ना पड़ा। २री अगस्त को एक साधारण मुठभेड़ में सारब्रुकैन पर फ्रान्सीसी सेना को सफलता मिली परन्तु विजिनबर्ग, वॉर्थ और स्पीकेन की लड़ाइयों में जर्मन विजयी हुए। यद्यपि दोनों ही ओर खूब संहार हुआ परन्तु जर्मन बाढ़ का रोकना सम्भव न हो सका। १८ अगस्त को ग्रेवलॉट की लड़ाई हुई जिसमें खुद बादशाह विलियम अपनी सेना की कमान पर था। इस लड़ाई में भी जर्मनी की विजय हुई और फ्रान्स के सेनापति वेज़ेन को मेज के किले में शरण लेनी पड़ी। बादशाह नेपोलियन और सेनापति मैकमोहन वेजेन को छुटकारा दिलाने के प्रयास में सिडान पर घिर गये और बुरी तरह से हारे। प्रायः २री सितम्बर को नेपोलियन और उसकी ६० हज़ार सेना ने आत्मसमर्पण कर दिया और उसे बन्दी बनाकर जर्मनी भेज दिया गया। १६वीं सितम्बर को प्रशियन सेना पेरिस के क़रीब जा पहुंची और वहाँ घेरा डाल दिया गया। बड़ी सख्त गोलाबारी के बाद २७ सितम्बर

को स्ट्रासवर्ग का आत्मसमर्पण हुआ और २८ अक्टूबर को वेजेन ने मेज का समर्पण कर दिया। इसके बाद वर्दू और थिनोविले के किले भी बारी-बारी से आत्मसमर्पण कर गये। फ्रान्सीसियों ने पेरिस को बचाने के लिये बड़े असाधारण प्रयत्न किये; परन्तु उन्हें बराबर हार पर हार खानी पड़ी। आख़िर अनेकों बार छापे मार कर बाहर निकलने में विफल होकर और भोजन की कमी हो जाने के कारण २६ जनवरी सन् १८७१ को पेरिस का पतन हो गया। मई सन् १८७१ में फ्रैंकफ़र्ट की सन्धि हुई जिसमें फ्रान्स को २० करोड़ पौंड हरजाने के साथ आल्सेस और लॉरेन के प्रदेश जर्मनी को देने पड़े।

इन फ्रान्सीसी जर्मन के युद्ध के परिणाम बड़े गहरे निकले। इसके बाद फ्रान्स में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित हुआ जो अब तक चला जाता है। जर्मनी में इसका फल यह निकला कि उत्तर और दक्खिन की रियासतें एक हो गयीं और प्रशिया का राजा जर्मनी का सम्राट बन गया। इसी बीच में इस युद्ध से लाभ उठा कर इटली की सेनाओं ने (फ्रान्सीसी सेना के हार जाने पर) रोम पर अधिकार कर लिया और इटली का भी एक संयुक्त राज्य बन गया। इस युद्ध का एक प्रमुख परिणाम यह भी हुआ कि पूरबी देशों का प्रश्न फिर उपस्थित हो गया क्रीमिया के युद्ध के बाद १८५० ई० में जो पैरिस सन्धि हुई थी उसकी शर्तों के अनुसार वेलाकिया और मालडेविया दो अलग-अलग रियासतें ठहरायी गयी थीं। सन् १८५८ में यह दोनों रियासतें एक हो गयीं और इनका नाम रूमानिया पड़ा। इन्होंने प्रिन्स कूजा को अपना शासक चुन लिया। १८६६ ई० में प्रिन्स कूजा को सिंहासन से उतार दिया गया और उसकी जगह होहिंज्ोलर्न वंश का प्रिन्स चार्ल्स रूमानिया का बादशाह हो गया। इस विप्लव के प्रमुख अंग थे ब्राहियानो और रोजेटी जो रुमानिया के बड़े लोकप्रिय और प्रसिद्ध मन्त्री हुए हैं। बिस्मार्क इंगलैंड और रूस को लड़ाये रखना चाहता था इसलिए उसकी सलाह से रूस ने १८७१ ई० में पेरिस की सन्धि की उस शर्त की अवज्ञा की जिसके अनुसार काले सागर में अपनी नौसेना न रखने की उसने प्रतिज्ञा की थी।

इन दोनों (श्लैसविक हालस्टीन के आस्ट्रो-प्रशी और फ्रान्सीसी-जर्मन) युद्धों में ग्रेट ब्रिटेन ने कोई भाग नहीं लिया था। इससे युरोपीय राष्ट्रों की यह धारणा हो गयी थी कि ब्रिटेन अब युरोप की समस्याओं में कोई हस्तक्षेप करने की इच्छा नहीं रखता। फिर भी पूरबी देशों की समस्या इस अनुमान से परे थी और रूस को पेरिस की सन्धि की शर्तें भंग करते देख ब्रिटेन को भी कम से कम इसके विरुद्ध शिकायत करने के लिए तो अग्रसर होना ही पड़ा। परन्तु चूँकि यह कोरी शिकायत ही थी और इसके पीछे कोई शक्ति प्रदर्शन नहीं हुआ इसलिए रूस ने इसकी कोई परवाह नहीं की। आख़िर १८७१ ई० में लंडन में युरोपीय प्रमुख शक्तियों की एक कान्फ्रेन्स हुई जिसने रूस के इस अधिकार को स्वीकृत कर पेरिस की सन्धि की इस शर्त को जिसने काला सागर निष्पक्ष क्षेत्र निश्चित किया गया था रद्द कर दिया।

---

# अध्याय २६

## ग्रेट ब्रिटेन की विश्वव्यापी राजनीति

### §१. ग्रेट ब्रिटेन और तुर्क साम्राज्य

### ( १८७६–१९१४ ई० )

बलगारिया पर अत्याचार ( १८७६ ई० )—हम अभी पढ़ चुके हैं कि सन् १८६१ ई० की फ्रान्सीसी जर्मन लड़ाई से लाभ उठाकर रूस ने पेरिस की सन्धि की इस शर्त की अवज्ञा कर दी-कि काले सागर में रूसी जल सेना नहीं रह सकेगी। इस प्रकार अगर एक ओर रूस ने पेरिस की सन्धि की एक शर्त भंग की-तो दूसरी ओर तुर्की के सुलतान ने उसकी दूसरी शर्त की अवहेलना की। हम यह भी पढ़ चुके हैं कि नवारिनों की लड़ाई में किस प्रकार तुर्की और मिस्री नौसेनाओं की हार से यूनानियों को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। सुलतान महमूद द्वितीय के राज्यकाल के अन्त में एलजियर्स पर फ्रान्सीसियों का अधिकार हो गया, यूनान स्वतन्त्र हो गया, मिस्र से सुलतान का आधिपत्य जाता रहा और अलबानिया, अरब, सर्बिया और वालाकिया आदि तुर्क साम्राज्य के सारे प्रमुख प्रदेश धीरे-धीरे स्वतन्त्रता के राजमार्ग पर चलने लगे। १८५६ ई० में पेरिस की सन्धि के अनुसार तुर्क साम्राज्य लड़खड़ाता हुआ रह गया और ब्रिटेन के प्रभाव में आकर सुलतान मजीद को 'हत्ती हुमायूँ' नाम की राजाज्ञा निकाल कर सारी प्रजा को समानाधिकार देने का ढोंग रचना पड़ा। सुलतान ने अपने राज्य की व्यवस्था में भी बहुत कुछ सुधार करने की आशाएँ दिलायीं और इस प्रकार युरोपीय देशों से क़र्ज़ लेने का एक साधन प्राप्त कर लिया। यह क़र्ज़ सुलतान की फ़िज़ूलखर्चियों और राज्य की दुर्व्यवस्था के कारण निरन्तर बढ़ता गया। इसी परिस्थिति से लाभ उठा कर १८६६ ई० में रुमानिया का स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गया और इसी वर्ष क्रीट के राष्ट्रीयों ने विप्लव कर दिया। फिर १८७० ई० के बाद एक तरफ़ तो रूस के आक्रमण की धमकी रही और दूसरी ओर देश की सम्पत्ति पर विदेशी अधिकार हो जाने के कारण सर्ब और बलगारियों के विप्लवों को बड़ी कठिनाई से दबाया जा सका। इस प्रकार बाल्कन रियासतों में निरन्तर झगड़ा चलता रहा। बलगारियों के विप्लव को बड़ी क्रूरता के साथ कुचल दिया गया। १८७५ ई० में हर्जिगोविना की प्रजा ने भी विद्रोह किया और सर्बिया और मॉन्टिनिगरों ने तो तुर्की के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। वर्ष के समाप्त होते-होते सर्वियों की बुरी तरह हार हुई और बलगारियों के ऊपर तो तुर्कियों ने प्रतिहिंसा की भावना से उत्तेजित होकर ऐसे भीषण अत्याचार किये कि हज़ारों आदमियों का ख़ून कर दिया गया और स्त्रियों और बच्चों तक को कोई पनाह नहीं मिली।

ब्रिटेन की नीति—इन अत्याचारों के समाचार सुनकर ग्लैडस्टन को भी अपने अवकाश से विरत होना पड़ा और उसने अनेक भाषणों तथा विज्ञप्तियों में ब्रिटिश राष्ट्र से इस बात की अपील की कि तुर्क साम्राज्य की ईसाई प्रजा को सुलतान के हाथ से मुक्ति दिलाने की चेष्टा होनी चाहिए, तथा जिन अधिकारियों ने बलगारिया में ऐसे घृणित अत्याचार किये हैं उनको उस प्रदेश से निकाल बाहर करना चाहिए। परन्तु इस समय लार्ड बेकन्स्फील्ड प्रधान मन्त्री था जो रूस की राजनीतिक चालों से बड़ा सशंक रहता था और इसलिए तुर्क साम्राज्य को बनाये रखने की ब्रिटेन की प्राचीन नीति का समर्थक था। इस प्रकार एक ओर तो ब्रिटिश राष्ट्र तुर्कों द्वारा किये हुए अत्याचारों के कारण त्रस्त था तो दूसरी ओर रूस की कूटनीति के कटु अनुभवों से बड़ा संदिग्ध। आख़िर कान्स्टेन्टिनोपेल में युरोपीय राज्यों की एक कान्फ्रेन्स हुई जिसमें तुर्क साम्राज्य के अन्तर्गत ईसाई प्रजा की सुव्यवस्था के लिए सिफारिश की गयी। परन्तु सुलतान अब्दुल हमीद ने सारे साम्राज्य में पार्लियामेन्ट्री गवर्नमेन्ट स्थापित करने की घोषणा करके एक प्रकार से इस कान्फ्रेन्स का ख़ात्मा कर दिया। इस प्रकार जब रूस ने देखा कि युरोपीय राज्यों की अब कोई चाल नहीं चल सकती तो उसने १८७७ ई० में तुर्कों के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। पहले तो आरमीनिया और बलगारिया में रूसियों को विजय प्राप्त हुई परन्तु फिर तुर्क भी सँभल गये और उन्होंने आक्रमणकारियों को विफल करने की जान तोड़ कर चेष्टा की। कार्स और अर्जरूम कई महीने तक घिरे रहे और प्लेवना के मुहासरे में तो रूसी और रूमानी सेनाओं के जान तोड़ कोशिश करने पर भी उस्मान पाशा छः महीने तक बड़े साहस, अपूर्व वीरता और अद्भुत कौशल के साथ उसकी रक्षा करता रहा।

बर्लिन की सन्धि—आख़िर बाल्कन के उत्तर में तुर्कों का यह अजेय गढ़ भी फतह हो गया और जनवरी १८७८ ई० में एड्रियानोपेल पर भी रूसियों का अधिकार हो गया। अब तुर्कों को सन्धि करने के लिए मजबूर होना पड़ा। परन्तु इस सन्धि की शर्तें तुर्कों के लिए बहुत कठोर थीं क्योंकि रूस कान्स्टेन्टिनोपेल पर भी अधिकार करना चाहता था और यह बात साम्राज्यवादी ब्रिटेन के हित के विरुद्ध थी कि युरोप की अन्य शक्तियों की सलाह बिना पूरबी देशों की समस्याओं का इस प्रकार निपटारा हो जाय। अस्तु ब्रिटेन और रूस के बीच युद्ध छिड़ जाने में अब कोई कसर न रह गयी थी। कान्स्टेन्टिनोपेल के पास सेन स्टफानी में अँगरेज़ी जंगी बेड़ा जा पहुँचा और माल्टा में हिन्दुस्तानी फ़ौजें जा उतरीं। तब कहीं रूस इस बात पर राज़ी हुआ कि सन्धि की शर्तें एक अन्तर्राष्ट्रीय काँग्रेस द्वारा तय की जाँय। आख़िर सन् १८७८ में बर्लिन में युरोपीय शक्तियों की एक काँग्रेस बैठी जिसका प्रधान प्रिन्स बिस्मार्क का बनाया गया और लार्ड बेकन्सफ़ील्ड और लार्ड सालसबरी ब्रिटेन के प्रतिनिध होकर पहुँचे। बड़ी संकटापन्न मन्त्रणाओं के बाद आख़िर सन्धि हो गयी जिसकी शर्तों के अनुसार रूमानिया, सर्बिया और मान्टिनिग्री स्वतन्त्र राज्य बना दिये गये, और बोस्निया

और हर्ज़िगोविना आस्ट्रिया की व्यवस्था में कर दिये गये; यद्यपि उन पर अधिकार तुर्कों का ही रहा। रूस को रूमानी बेसारेबिया और एशिया माइनर में एक बन्दरगाह और क़िला मिल पाया। बलगारिया से मेसिडोनिया का प्रदेश तुर्कों को दिलाया गया और पूरबी रूमीलिया पर भी उसे तुर्क साम्राज्य का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। यहाँ के ईसाई गवर्नर की नियुक्ति सुलतान के हाथ में थी परन्तु उसका अन्तिम निर्णय युरोपीय शक्तियों के हाथ में रहा। इस प्रकार साम्राज्य-रक्षा के दृष्टिकोण से बाल्कन में राष्ट्रीय विकास का जो गला घोट दिया गया उसका निराकरण अब तक भी सन्तोष-प्रद नहीं हो सका है। तुर्क साम्राज्य को जीवित रखने के बदले में सुलतान ने फिर इस बात का विश्वास दिलाया कि वह राज्य-व्यवस्था में सुधार कर देगा, परन्तु डिज़्रायली को विश्वास न हुआ और उसने काँग्रेस समाप्त होने के पहले ही सुलतान से गुप्त मन्त्रणा करके साइप्रस द्वीप पर अधिकार प्राप्त कर लिया। सुलतान की बराबर यही नीति रही कि एक शक्ति को दूसरी के विरुद्ध भड़काता रहता और एक बाल्कन प्रदेश को दूसरे की गर्दन पर छुरी फेरने के लिए उकसाता। यह सन्धि ग्रेट-ब्रिटेन के लिए बड़े मार्के की कही जाती है क्योंकि बेकन्सफ़ील्ड का कहना था कि उसने ब्रिटिश सम्मान की रक्षा के लिए ही यह सन्धि करायी थी।

युरोपीय राजनीतिज्ञों की धारणा थी कि बर्लिन की सन्धि से बाल्कन राज्यों की समस्याओं का सुलझाव स्थायी हो सकेगा परन्तु यह उनकी दुराशा मात्र रही क्योंकि राष्ट्रीय भावनाओं की कशमकश में शीघ्र ही झगड़ा आरम्भ हो गया। सन् १८८५ ई० में पूरबी रूमीलिया बलगारियों में सम्मिलित हो गया। अब की बार ब्रिटेन इस ऐक्य के पक्ष में रहा यद्यपि सात वर्ष पहले इसी ग्रेट ब्रिटेन ने इसका घोर विरोध किया था। आख़िर मेसिडोनिया के चेटियों बलाकों, आर्नोटों, यूनानियों, सर्वियों और बलगारियों ने अपने-अपने राष्ट्रीय विकास के लिए होने वाले निरन्तर गोरिला युद्ध से इस बात की आशंका उत्पन्न कर दी कि इन के कारण पहले इन राष्ट्रों में युद्ध छिड़ जायगा और फिर बाल्कन युद्ध की ज्वालाएँ इन राष्ट्रों के समर्थक युरोपीय राष्ट्रों में फैलकर सारे युरोप को युद्धाग्नि में फँसा देंगी। इसलिए अब सारे युरोप को यह चिन्ता हुई कि इन लड़ाइयों को रोका जाय और आख़िर युरोपीय राष्ट्रों ने बीच-बिचाव और समझौते का रास्ता निकाल ही लिया। तुर्की इस हस्तक्षेप से ज़रूर क्षुब्ध हो उठा और इस अपमान के प्रतिकार का रास्ता ढूँढ़ने लगा। परन्तु जब सन् १९०८ ई० बादशाह एडवर्ड और रूस के ज़ार, की रेवल में मुलाकात हुई तो 'तुर्की युवकों' का आन्दोलन शुरू हुआ, जिसने सुलतान अब्दुल हमीद और उसकी गवर्नमेन्ट को अधिकारच्युत कर दिया। इसी वर्ष आस्ट्रिया ने बोस्निया और हर्जिगोविना को अपने राज्य में मिला लिया। यद्यपि रूस और सर्विया इस कार्रवाई से उत्तेजित मालूम पड़े; परन्तु किसी युरोपीय शक्ति ने हस्तक्षेप नहीं किया। इसी वर्ष बलगरिया ने भी अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी।

सन् १९१२-१३ में बाल्कन प्रदेशों में नयी आपत्तियाँ उपस्थित हुईं। पहले सर्बिया, फिर बलगारिया और फिर यूनान और मान्टिनिग्रो तुर्की के विरोध में एक हो गये। किन्तु कान्स्टेन्टिनोपेल के आसपास के प्रान्त को छोड़कर और सब प्रदेशों से तुर्कों को निकाल देने के बाद भी उनमें आपस में झगड़ा हो गया। बलगारिया की राज्य लोलुपता के कारण समस्त बाल्कन शक्तियाँ उसके विरुद्ध एक हो गयीं और इसका परिणाम यह हुआ कि सन् १९१३ ई० की बुखारेस्ट की सन्धि में उसे पहले से भी कम प्रदेश मिले। तुर्की ने एड्रियानोपेल पर फिर अधिकार कर लिया। सन् १९१४ ई० में एक वर्ष बाद बाल्कन राज्यों के झगड़ों के कारण ही संसार-प्रसिद्ध महायुद्ध उपस्थित हुआ।

युरोपीय राज्यों की राजनीति—सन् १८७८ ई० तक तो युरोप के नीतिज्ञों की दृष्टि अपने-अपने देशों तथा आस-पास के देशों की समस्याओं तक ही केन्द्रित रही परन्तु इसके बाद एशिया और आफ्रिका की परिस्थितियों की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित होने लगा था। इस परिवर्तन के कारण समझने के लिए हमको पिछली बातों की ओर ध्यान देना होगा। इस समय (१८७८ ई०) तक और उसके बाद की पीढ़ी के लिए भी युरोपीय देशों में ऐसी बहुत कम समस्याएँ बाकी रह गयी थीं जिनका सुलझाव उनके लिए अत्यन्त आवश्यक हो। अब इटली को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी थी; प्रशिया ने आस्ट्रिया और फ्रान्स से युद्ध करके अपनी स्थिति सुदृढ़ और अपना स्थान प्रधान बना लिया था और इस समय तुर्क साम्राज्य की समस्या भी बहुत अधिक भयावह नहीं रही थी। फिर उधर सन् १८७८ के पूर्व युरोप के बाहर अन्य देशीय राज्यधिकार का महत्व भी युरोपीय राज्यों ने अनुभव नहीं कर पाया था। इंग्लैंड में तो खुले व्यापार का प्रबल समर्थक कॉबडेन भारतीय साम्राज्य के उत्तरदायित्व को बड़ी निराशापूर्ण दृष्टि से देखता था। सन् १८४२ में तो डिजरायली का भी यही विचार था कि युरोपीय राज्यों के उपनिवेश कुछ ही वर्षों में स्वतन्त्र हो जायेंगे और ऐसी परिस्थिति में प्रारम्भ में तो वे युरोप के गले में बन्धन मात्र ही रहेंगे। बाद में डिजरायली के यह विचार अवश्य बदल गये; परन्तु हमको तो यहाँ उसके शुरू के विचारों का ही उल्लेख करना पर्याप्त है। उधर सन् १८६६ तक बिस्मार्क का यह कहना था कि जर्मनी को उपनिवेश नहीं चाहिए, क्योंकि इनसे आर्थिक और राजनीतिक लाभ तो अवश्य था परन्तु उनकी उन्नति में खतरा भी था। परन्तु जब १८९७ ई० में ग्रेट ब्रिटेन में रानी विक्टोरिया की डाइमंड जुबली हुई और उस समय युरोप और अन्य देशों के शासक तथा उनके प्रतिनिधि उपस्थित हुए तो जोजेफ चेम्बरलेन के उपनिवेशिक मन्त्री पद का दायित्व और महत्व देखकर, लार्ड रोजबरी के साम्राज्य भावोत्पादक व्याख्यान सुनकर, रुडियर्ड किपलिंग के साम्राज्य भावोद्दीपक ग्रन्थ पढ़ कर तथा सिसिल रहोड्स जैसे साम्राज्य निर्माताओं के साम्राज्यवर्द्धी स्वप्नों का ज्ञान प्राप्त करके, अँगरेज़ों के मन

में अपने साम्राज्य की वृद्धि के प्रति गौरवान्वित भावों का होना स्वाभाविक ही था। फिर १६वीं शती के वैज्ञानिक आविष्कारों और यातायात के साधनों की सुगमता से दूर देशों और उनके निवासियों के सम्बन्ध में ज्ञान-प्राप्ति के सहज और सरल उपायों ने उनकी उस भावना को और भी जाग्रत कर दिया। अब प्रत्येक अँगरेज यह समझने लगा और उसका यह विश्वास हो गया कि उसके साम्राज्य विस्तार और प्रभुत्व के निरन्तर विकास में ही संसार भर की भावी शान्ति और समृद्धि की सम्भावना निहित है। अब तो युरोप के सभी राष्ट्र धीरे धीरे इस परिवर्द्धन की आवश्यकता का अनुभव करने लगे। १६वीं शती में युरोपीय जातियों से उत्पन्न लोगों की सख्या १ करोड़ ७० लाख से बढ़ कर ५ करोड़ १० लाख से अधिक हो गयी थी। इसलिए इस बराबर बढ़ने वाली जन संख्या और अपने देश के उन्नत व्यवसायों द्वारा उत्पन्न किये हुए माल की खपत के लिए उनको नये-नये प्रदेशों पर आधिपत्य की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। इस समय एशिया और आफ्रिका की जातियों में यह चैतन्यता मौजूद न थी और युरोप की जातियों की तुलना में उनकी जाग्रति और उन्नति भी बहुत कम हुई थी। इस लिए यह दोनों महाद्वीप युरोपीय जातियों के लिए अधिक उपयुक्त कार्य-क्षेत्र मालूम हुए। इसलिए सारे युरोप की प्रतिस्पर्द्धा का क्षेत्र युरोप से हट कर इन दोनों महाद्वीपों में आ गया।

## §२. ग्रेट ब्रिटेन और मिस्र का राज्य

इस्माइल पाशा ( १८६३-७६ ई० )—हम यह वर्णन कर चुके हैं कि १८वीं शती के उत्तरार्द्ध में किस प्रकार ब्रिटिश गवर्नर की तुर्क साम्राज्य के बनाये रखने की नीति के कारण तुर्कों का राज्य युरोप में बना रहा और रूस तथा अन्य बाल्कन प्रदेशों के आक्रमणों से उसको कम से कम हानि उठानी पड़ी। यह भी बताया जा चुका है कि १८११ ई० में अलबानिया निवासी मोहम्मद अली मिस्र का एक मात्र स्वामी बन बैठा था, यद्यपि वह नाम के लिये तुर्क साम्राज्य के आधिपत्य को मानता था। फिर १८६३ ई० में उसका नाती इस्माइल पाशा उसका उत्तराधिकारी हुआ और किस प्रकार सुल्तान ने उससे बहुत सा ख़िराज लेकर उसे और उसकी सन्तान को सदा के लिए मिस्र का ख़रीद बना दिया। इस्माइल के शासन में उच्छृंखलताओं और अत्याचारों का दौरदौरा था। इस्माइल ने अपना राज्य बड़ी शान से शुरू किया। वह बड़ा शाहख़र्च था। अपने शाही ठाठबाट की वृद्धि में पाश्चात्य देशों के उद्योग और व्यवसायों से प्राप्त सारी सुविधाओं का उपयोग करना चाहता था। उसे इस बात का ज़रा भी ध्यान न था कि वह किस प्रकार हाथ रोक कर व्यय करें तथा कौन सा खर्च आवश्यक समझे। उसने बहुत से सुधार शुरू कर दिये। सारे देश में सड़कें बनवायीं और पुल और आकाश दिये खड़े कराये। रेल और तारघर बनवाये तथा डाक द्वारा पत्रों को आने-जाने के व्यवस्था की। उसने स्वेज, पोर्ट सईद और एलेग्जेन्ड्रिया के बन्दरगाहों की मरम्मत तथा उन्नति करायी और देश में विद्या का प्रचार करने के लिए स्कूल खोलने

की व्यवस्था की। न्याय की व्यवस्था के लिए उसने नयी कचहरियाँ भी खोलीं। इन सब बातों से उसके सोलह वर्ष के शासन में मिस्र का ऋण ३० लाख पौंड से बढ़ कर १ करोड़ पौंड हो गया। उसके राज्य में प्रजा से धन प्राप्त करने के लिए हर प्रकार की ज्यादती होने लगी और मिस्र के किसान संसार भर में सबसे गरीब और दुखी हो गये। परन्तु उसका यह सारा व्यय फ़िज़ूलखर्ची नहीं कहा जा सकता। अपने देश की उन्नति के लिए जो खर्चा उसने किया था वह बहुत कुछ बुद्धिमत्ता-पूर्ण किया गया। उसने स्वेज़ नहर कम्पनी के बहुत से हिस्से खरीद कर इस नहर के बनाने में बहुत बड़ी सहायता दी। उसकी फिजूलखर्ची की कभी-कभी तो इन्तहा जरूर हो जाती थी। जैसे मिस्र की मलका के कपड़ों पर ही एक फ्रान्सीसी दुकानदार का बिल १ लाख ५० पौंड था।

इधर उसने अपना राज्य बढ़ाने की भी चेष्टा की और इन सब बातों के लिए व्यय किये हुए धन के कारण जब कर्जदारों की ओर से बहुत तकाजा हुआ तो उसने मजबूर हो स्वेज़ नहर कम्पनी के अपने सारे हिस्से बेच डाले। उसमें से ग्रेट ब्रिटेन ने १ लाख ७७ हज़ार हिस्सों को ४० लाख पौंड में खरीद लिया। इस ख़रीदारी से स्वेज नहर की व्यवस्था में इंग्लैंड का बहुत बड़ा हाथ हो गया और धीरे धीरे ग्रेट-ब्रिटेन को यह अनुभव होने लगा कि चाहे शान्ति का समय हो अथवा युद्ध का, उसके पूरबी साम्राज्य की रक्षा के लिए स्वेज़ नहर पर अधिकार बनाये रहना नितान्त आवश्यक हो गया था। स्वेज़ नहर १८६९ ई० में बनकर तैयार हो गयी थी और इसके बन जाने के साथ इंग्लैंड के साम्राज्य-की परिस्थिति में महान परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था। इसके कारण ग्रेट ब्रिटेन के लिए अब यह भी आवश्यक हो गया कि वह मिस्र के साथ अपनी घनिष्टता स्थापित कर ले। फिर मिस्र की भौगोलिक स्थिति ने जो एक प्रकार से पूरब और पच्छिम के बीच सिंहद्वार है, ब्रिटिश साम्राज्य के लिए उसे बड़े महत्त्व का स्थान बना दिया और इस सिंहद्वार के खुले रहने पर ब्रिटिश साम्राज्य के पूरबी देशों की सुरक्षा और सुव्यवस्था को केन्द्रित कर दिया। इस समय मिस्र की साम्पत्तिक अवस्था इतनी ख़राब हो गयी थी कि १८७६ ई० में इस्माइल पाशा ने इस राजऋण को अदा करने से इनकार कर दिया। अँगरेज़ों और फ्रान्सीसियों ने ही मिस्र को सब से अधिक कर्ज दिया था। फ्रान्सीसी सरकार इसलिए मिस्र के मामले में हस्तक्षेप कर अपने देशवासियों की धन-सम्पत्ति की रक्षा करना चाहती थी। आख़िर अँगरेज़ों ने भी थोड़े से संकोच के बाद फ्रान्स के साथ सहयोग किया और १८७९ ई० में मिस्र की साम्पत्तिक व्यवस्था ब्रिटेन और फ्रान्स द्वारा नियत किये हुए दो अधिकारियों के हाथ में रख दी गयी। और जब फ्रान्सीसी और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के दबाव डालने पर भी इस्माइल ने राज्य त्याग करने से इनकार कर दिया तो इन दोनों राज्यों के कहने से तुर्की सुलतान ने उसे पदच्युत कर उसके सबसे बड़े बेटे तवफ़ीक़ पाशा को खदीव बना दिया। परन्तु मिस्र की साम्पत्तिक व्यवस्था पर इंग्लैंड और फ्रान्स का

अधिकार हो जाने का फल यह हुआ कि मिस्र की शासनव्यवस्था तथा उसकी शासन पद्धति पर भी इन्हीं दोनों देशों का अधिकार बढ़ता गया।

**अराबी पाशा का आन्दोलन ( १८८१-'८२ ई० )**—यह दोअमली बहुत दिनों तक न चल सकी। १८८० ई० में एक ऋणमोचन विधान पास करने की व्यवस्था की गयी; परन्तु इस बीच में मिस्र में एक ज़बर्दस्त आन्दोलन उठ खड़ा हुआ जिसमें विदेशियों (युरोपियों) तथा उन तुर्कियों का भी विरोध किया गया जो उस के साथी थे। मिस्र मिस्रवालों के लिए है यह इस आन्दोलन का उद्देश्य था। इस समय मिस्र की सेना में भी बड़ा असन्तोष फैला हुआ था। बहुत दिनों से उन्हें वेतन भी न मिला था। अराबी पाशा के तत्वावधान में सेना ने बलवा कर दिया और राज्य पर अधिकार करके मिस्र के ख़दीव से इस बात का आग्रह किया कि राज्य के मन्त्रियों को तुरन्त निकाल दिया जाय और सेना की संख्या बढ़ा दी जाय। आख़िर मई सन् १८९२ ई० में ब्रिटिश और फ्रान्सीसी जंगी जहाज़ अलेग्जान्ड्रिया जा पहुँचे जहाँ अराबी की सेना शहर की क़िलाबन्दी करने में लगी हुई थी। ११ जून को अलेग्जान्ड्रिया में बलवाइयों ने विप्लव कर दिया और लगभग पचास युरोपीयों को मार डाला। ब्रिटिश एडमिरल ने किलेबन्दी रोकने की आज्ञा दी; परन्तु अराबी ने इसकी अवहेलना की। ब्रिटिश वैदेशिक मन्त्री लार्ड ग्रेनविल ने तब आज्ञा दी कि ब्रिटिश और फ्रान्सीसी बेड़े मिलकर अलेग्ज़ान्ड्रिया पर गोलाबारी करें; परन्तु बिस्मार्क की कूटनीति के डर से फ्रान्सीसियों ने मिस्र में लड़ना उचित न समझा। इसलिए फ्रेंच बेड़ा तो चला गया परन्तु अँगरेजी जहाजों ने अलेग्ज़ान्ड्रिया पर बम वर्षा कर दी। अब अराबी की सेना यकायक अलेग्ज़ान्ड्रिया छोड़ कर चल दी और मिस्री विप्लवकारियों ने शहर को लूट कर आग लगा दी। ब्रिटिश एडमिरल सीमोर तीन दिन तक कुछ न कर सका। आख़िर इंग्लैंड से वुल्ज़ले सेना लेकर रवाना हुआ और इधर भारतीय सेना भी जा पहुँची। स्वेज़ नहर के स्माइलिया बन्दर पर अँगरेज़ी सेनाओं ने लंगर डाला। पचीस दिन में रेगिस्तान को तय करके अराबी की सेना को जा घेरा, १२ सितम्बर १८८१ ई० को तल्लल कबीर में उसकी करारी हार हुई। अँगरेजी सेना ने कायरा पर अधिकार कर लिया और अराबी को सीलोन में निर्वासित करके भेज दिया। आख़िर क़ॉन्सटेन्टिनोपेल में युरोप की महान शक्तियों की एक कान्फ्रेन्स बैठी परन्तु उसका कोई नतीजा न निकला। युद्ध के बाद ख़दीव की शक्ति का पुनः संगठन करने और मिस्र में सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए लार्ड डफ़रिन को वहाँ भेजा गया परन्तु ब्रिटिश गवर्नमेन्ट का कोई भी प्रयत्न सफल न हो सका।

**मेहदी का उदय और सुडान की समस्या**—अराबी का विद्रोह शान्त होते ही दूसरी आपत्ति उठ खड़ी हुई। मिस्र के खलीफा का राज्य सुडान पर भी था जो वादी हालफ़ा के दक्खिन तक फैला हुआ था और फ्रान्स और जर्मनी के क्षेत्रफल के बराबर था। अराबी के विप्लव और उसके साथ युद्ध का फल यह हुआ कि मिस्र का अधि-

पत्य सुडान पर निर्बल पड़ गया। इधर खदीव इस्माईल के राज्य में सुडान की बड़ी अव्यवस्था रही और देश का बहुत बड़ा भाग_गुलामों का शिकार करने वालों को पट्टे पर उठा दिया गया। इसी समय सुडान में मुहम्मद अहमद नाम का एक नया 'मेहदी' उठ खड़ा हुआ। मुसलमानों का विश्वास है कि भविष्य में एक मेहदी ( वह पैगम्बर जिसका मार्ग ईश्वर प्रदर्शित करे ) उत्पन्न होगा और उस समय सारा संसार मुसलमान हो जायगा। मुहम्मद अहमद १५ वर्ष तक आबा द्वीप में एकान्तवास करता रहा था। १८८१ ई० में उसने सारे सुडान में अपने दूत भेज कर यह विज्ञापन करा दिया कि सुडान में तुर्कों का राज्य ध्वंस करने के लिये मेहदी का अवतार हो गया। सुडान के गवर्नर जनरल ने जब इस प्रचार को दबाने की चेष्टा की तो बलवा हो गया और मेहदी के झंडे के नीचे हजारों दरवेश ( मेहदी के अनुयायी ). जमा हो गये। हिक्स पाशा नाम के एक अँगरेज सेनापति की अध्यक्षता में मिस्र की गवर्नमेन्ट ने एक सेना भेजी। यह सेना बिलकुल नये रँगरूटों की थी और इसके मार्ग प्रदर्शकों की गलती से यह तीन दिन-तीन रात भूखी प्यासी रेगिस्तान में भटकती हुई दरवेशों की सेना के निकट जा पहुँची थी। नवम्बर १८८३ ई० में अलउवेद के पास इसकी पराजय हुई। अब यह स्पष्ट हो गया कि कम से कम कुछ समय के लिए सुडान से मिस्री सेना हटा ली जाय। परन्तु मिस्र की गवर्नमेन्ट इसके लिए तैयार न थी, इसलिये ब्रिटिश गवर्नमेन्ट को फिर हस्तक्षेप करना पड़ा। स्वाकिन के पास एक दूसरी मिस्री सेना की पराजय हुई और १८८४ ई० में बरकत पाशा को भी बुरी तरह पराजित होना पड़ा।

जनरल गर्डन और खारतूम का अवरोध—इस समय सुडान में करीब ५० हज़ार मिस्री सेना मौजूद थी। इसलिए जब ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने मिस्र पर इस बात का दबाव डाला कि वहाँ से सेना हटा ली जाय तो एक प्रश्न यह उपस्थित हुआ कि इतनी बड़ी सेना को कैसे हटाया जाय और दूसरे सेना के हट जाने पर सुडान की शासन व्यवस्था किस प्रकार की जाय। इस पर ग्लैडस्टन मन्त्रिमंडल ने जनरल गर्डन को जनवरी १८८४ ई० में अँगरेज़ प्रतिनिधि की हैसियत से खारतूम में इसलिए भेजा कि वह सुडान से मिस्री सेना के हटाये जाने के कार्य की उचित देख-रेख करे और जहाँ तक हो सके वहाँ की शासन-व्यवस्था का भी समुचित प्रबन्ध कर दे। गर्डन बड़ा साहसी, उत्साही और आत्मविश्वासी वीर था। साथ ही वह बड़ा जल्दबाज़ और भावुक भी था। चीन में टेपिंग विप्लव के समय वह चीनी सरकार की तरफ़ से एक ऐसी सेना का सेनापति रह चुका था जिसने दो साल में क़रीब ३३ लड़ाईयों में विजय प्राप्त की थी। शत्रु पर आक्रमण करने के समय भी वह एक साधारण बेत के सिवाय कोई हथियार न लेता था जिससे उसकी सेना को यह विश्वास हो गया था कि इस बेत में कोई जादू की शक्ति है जो उसकी रक्षा करती और उसे विजय प्राप्त कराती है। परन्तु इन्हीं सब गुणों के कारण उसे इस मोहिम पर भेजना गलती रही। गर्डन फरवरी १८८४ ई० में खारतूम पहुँचा और वहाँ की स्थिति देखकर उसने सुडान की राजधानी

से सेना हटा लेने के बजाय वहाँ की शासन व्यवस्था के उन्नत करने की सलाह दी। इस ध्येय को सामने रखते हुए उसने ब्रिटिश गवर्नमेन्ट से इस बात की प्रार्थना की कि अँगरेज़ और हिन्दुस्तानी सेनाओं की सहायता से उसे मेहदी को परास्त करने की आज्ञा दी जाय। इस लिखा-पढ़ी में ख़ारतूम से सेनाएँ हटाने का सुअवसर हाथ से निकल गया। ख़ारतूम के चारों तरफ़ के क़बीले मेहदी के पक्ष में उठ खड़े हुए और इस प्रकार गर्डन ख़ारतूम में घिर गया। फिर भी उसने मेहदी की सेना का मुक़ाबला जारी रखा। कई बार तो किले के बाहर निकल उन पर आक्रमण करने में भी सफल हुआ। परन्तु उसने अपने सिर पर बड़ा असम्भव काम ले रखा था। वह ऐसी परिस्थिति में था कि न तो वह अपनी घिरी हुई सेना को मेहदी के हाथ में पड़ने देना चाहता था और न इतना सशक्त ही था कि शत्रु की सेना को ख़ारतूम के चारों ओर से भगा सके।

अस्तु गर्डन की सहायता तथा उसे खारतूम के घेरे में से बचाने के लिए कुमुक भेजने की बड़ी आवश्यकता थी। परन्तु इस समय की ब्रिटिश गवर्नमेन्ट बड़ी निकम्मी थी और वह कोई पक्का निश्चय न कर सकती थी। पाँच महीने तक ग्लैड-स्टन मन्त्रिमंडल हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा। आख़िर अक्टूबर १८८४ ई० में लार्ड वुल्ज़ले को सेना लेकर भेजा गया। इसने भी स्वाकिन से बर्बर की ओर शीघ्रता से बढ़ने के बजाय नील नदी में होकर धारा के विरुद्ध जाने का लम्बा और टेढ़ा मेढ़ा रास्ता पकड़ा। ब्रिटिश सेना की एक टुकड़ी रेगिस्तान को पार करती हुई और १८८५ ई० में अबूतिलिया पर दरवेशों की सेना को हराती हुई नील नदी के किनारे मुतम्मा पर जा पहुँची। यहाँ गर्डन की सेना के कई जहाज़ खड़े मिले। और जब यह टुकड़ी उन स्टीमरों पर बैठ कर खारतूम के करीब पहुँची तो उन्हें यह सूचना मिली कि ३१७ दिन तक बड़ी वीरता और कौशल के साथ किले की रक्षा करते हुए जनरल गर्डन (२६ जनवरी को) मारा गया और किले ने कुमुक न पहुँच सकने के कारण मजबूर होकर आत्मसमर्पण कर दिया। तब यह जहाज शत्रु की गोलाबारी सहन करते हुए बड़ी कठिनाई से फिर मुतम्मा पहुँचे। जनरल गर्डन के इस प्रकार निस्सहाय मारे जाने से ब्रिटेन में शोक और लज्जा की जो लहर दौड़ गयी उसके उद्रेक का अन्दाज लगाना कठिन है। परन्तु अब कोई उपाय न रह गया था। खारतूम के आत्मसमर्पण का यह परिणाम निकला कि वादी हालफ़ा के दक्खिन तक सारा सुडान और खारतूम के किले में घिरी हुई सारी सेना मेहदी के हाथ पकड़ी गयी।

मिश्र का राज्य (१८८२-१९१० ई०)—इस बीच में मिस्र में भी एक विचित्र स्थिति उपस्थित हो गयी। अराबी का विप्लव तो अँगरेज़ी सेनाओं की सहायता से दबा दिया गया, परन्तु अब समस्या यह थी कि मिस्र की शासन व्यवस्था के लिए क्या किया जाय। यह तो स्पष्ट ही था कि ब्रिटेन मिस्र को अपने आधिपत्य में लेने के

लिए इस कारण तैयार न था कि ऐसा करने से उसे अपनी प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ती और युरोपीय शक्तियों के सामने झूठा बनना पड़ता। फिर ग्रेट ब्रिटेन मिस्र को छोड़ भी नहीं सकता था, क्योंकि ऐसा करना उसके भारतीय तथा सुदूरपूरब के साम्राज्य के लिए आपत्तिजनक होता। उधर खुदीव भी बिना बाहरी सहायता के शासन न कर सकता था। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया कि देश के सुधार के लिए ही नहीं बल्कि उसे अराजकता से बचाने के लिए भी किसी बाहरी शक्ति के वरद हस्त की उसे नितान्त आवश्यकता थी। ऐसी परिस्थिति में वहाँ तुर्कों का राज्य स्थापित करने से तो स्थिति को और भी अबतर करना होता और किसी दूसरी युरोपीय शक्ति के आ जाने से और बड़ी उलझनें पैदा हो जातीं। अस्तु परिणाम यह हुआ कि ग्रेट ब्रिटेन ने उतने समय के लिए मिस्र पर अपना राज्याधिकार रखना स्वीकार किया जब तक मिस्र स्वयम् अपनी व्यवस्था करने योग्य हो जाय। यद्यपि इंग्लैंड में कुछ लोगों का विचार था कि यह अधिकार-हस्तक्षेप बहुत शीघ्र ही हट जायगा परन्तु वास्तव में यह चालीस बरस तक रहा और इस बीच में मिस्र की बड़ी अभूतपूर्व उन्नति हुई। सन् १९१४ ई० के महायुद्ध तक मिस्र पर तुर्की साम्राज्य का नाम के लिए अधिकार माना जाता, तुर्की को वार्षिक खिराज दिया जाता, मिस्र में तुर्की का झंडा फहराया जाता और मिस्रियों को तुर्की प्रजा कहा जाता। इसी प्रकार कहने के लिए तो ख़दीव और उसके मन्त्रियों पर शासन की जिम्मेदारी थी और वही सारी व्यवस्था कर भी रहे थे, परन्तु वास्तव में मिस्र में शान्ति और सुव्यवस्था थी अँगरेज़ी सेना की बदौलत और मिस्र की गवर्नमेन्ट का साम्पत्तिक आधार था अँगरेज़ी ख़ज़ाना। और यह सब इसलिए था कि वास्तव में देश का शासन था ब्रिटिश कोन्सल जनरल लार्ड क्रोमर के हाथ में।

लार्ड क्रोमर—इस प्रकार वर्त्तमान मिस्र के निर्माता लार्ड क्रोमर के अधिष्ठान में मिस्र के मन्त्रियों के अनुशासकों के रूप में ब्रिटिश अफसरों के तत्त्वावधान में सारे राज्य की पुनर्व्यवस्था शुरू हुई और मिस्री शासन के तीन प्रमुख दोष दूर करने के प्रयत्न होने लगे। इनमें सबसे पहले तो गैंडे की खाल के बने हुए 'कूरबाश' या हन्टर से पीटे जाने का अमानुषिक दंड बन्द किया गया, फिर 'कोर्वी' या बेगार रोक दी गयी और इसके बाद 'घूसख़ोरी' के निराकरण का प्रबन्ध किया गया। मिस्र के शासक अनेक प्रकार की सुविधाओं का विक्रय करके तथा अनेकों रीतियों से घूस ले कर अपनी जेबें भरते और देश के शासन को कलुषित तथा निकम्मा बनाते रहे। अब इन सब को उचित पारिश्रमिक देने की व्यवस्था कर इस दोष के भी रोक थाम करने की चेष्टा की गयी। उधर अँगरेज़ इंजिनियरों के कौशल से नील नदी के बाँधों की मरम्मत की गयी और इस प्रकार इस नदी से अनेकों नहरें निकाल कर खेतों की आबपाशी की बड़ी सुन्दर व्यवस्था कर दी गयी। मिस्र की सारी समृद्धि नील नदी के जल से आसपास के खेती की सिंचाई पर निर्भर है और इस की सुव्यवस्था हो जाने से वहाँ की भूमि की उपज दुगुनी तिगुनी बढ़ कर कृषकों की खुशहाली से देश की आर्थिक

अवस्था में बड़ी अपूर्व उन्नति हो गयी। आस्वान, ऐस्युत, कायरी और ज़िफता के बाँध नयी शती इंजिनियरी के कौशल के अद्भुत नमूने हैं। लार्ड क्रोमर को जिस समय मिस्र का कौन्सल जनरल बनाया गया था उस समय देश की स्थिति बड़ी हीन हो गयी थी; परन्तु १६०७ ई० में उसके पदत्याग के बाद यही देश धनधान्यपूर्ण, सुखी और ख़ुशहाल हो गया था और यहाँ की प्रजा पर संसार भर के सब देशों की तुलना में टैक्सों का भार हलका था। फिर भी लार्ड क्रोमर को बड़ी असुविधाओं, अड़चनों और विरोधों का सामना करना पड़ा था। युरोपीय शक्तियाँ, तुर्की का सुलतान और मिस्र के समाचार-पत्र उसके शासन के बड़े कट्टर विरोधी रहे।

सुडान की पुनर्विजय (१८६८ ई०) ख़ारतूम में जनरल गर्डन के उद्धार में असफल होने पर ११ वर्ष तक सुडान में मेंहदी का अत्याचार व्यापक रहा और इस बीच में बड़ी अराजकता और दुर्व्यवस्था फैली रही। मिस्र के अँगरेज़ों के हाथ में आ-जाने से मिस्री सेना भी सुव्यवस्थित और सुसंगठित हो गयी थी। उधर मेंहदी की मृत्यु हो गयी और अब्दुल्ला उसका उत्तराधिकारी बना। फिर सुडान को फिर से जीत लेना इसलिए भी परमावश्यक हो गया कि नील नदी सुडान में होकर बहती थी और इसलिए सुडान पर अधिकार किये बिना नील नदी के पानी का सदुपयोग और फलतः मिस्र की समृद्धि सम्भव नहीं थी। उधर सन् १८८१ में सुडान को छोड़ देने की भूल और उसके बाद १८८५ ई० की लज्जापूर्ण पराजय का भी प्रतिकार आवश्यक हो गया था। इसलिए जब तक मिस्र की सेना सुसंगठित और सुव्यवस्थित हो वादी हाल्फा के सीमान्त पर अधिकार बनाये रहना और मिस्र को दरवेशों के आक्रमण से बचाये रहना ही अँगरेज़ी सेना का काम रह गया था। आख़िर सन् १८८६ में दर-वेशों पर पहली विजय प्राप्त हुई और फिर १८६१ ई० में उस्मान दीना को परास्त कर लाल समुद्र के तट-प्रदेश पर अधिकार कर लिया गया। १८६२ ई० में किचनर मिस्री सेना का सरदार नियुक्त हुआ और चार वर्ष के अथक परिश्रम और सुव्यवस्थित तैयारी के बाद उसने दक्खिन की ओर अपनी सेना का कूच बोला। कई लड़ाइयों में विजय प्राप्त करने के बाद किचनर की योजना में सब से अभूतपूर्व रचना, रेगिस्तान में होती हुई अबूहामिद तक तैयार रेल की सड़क से बड़ी भारी सहायता मिली। अब दरवेश सेना को अथरा नदी के मोर्चे से हटने पर मजबूर होना पड़ा और किचनर की २२ हज़ार अँगरेज़ी मिस्री सेना ने ४० हज़ार दरवेश सेना को उमदुर्मान पर बड़ी करारी हार दी। इसके बाद ख़ारतूम पर अधिकार कर लिया गया और भागे हुए ख़दीव को खदेड़कर समाप्त कर दिया गया। इस समय सुडान की जन संख्या ८० लाख से घट कर केवल ४५ लाख रह गयी थी और सारा देश दरवेशों के आतंक से त्रस्त था। आख़िर १८६६ ई० में सुडान पर ब्रिटेन और मिस्र का संयुक्त शासन हो गया।

यूरोपीय राज्यों का असन्तोष और लार्ड क्रोमर की कठिनाइयाँ—परन्तु ब्रिटेन के मिश्र पर इस प्रकार अधिकार कर लेने और मिस्र की शासन-व्यवस्था में

निरन्तर हस्तक्षेप करने की नीति से युरोप के अन्य राष्ट्रों को सन्तोष न हो सका और वे अँगरेज़ों के कहने पर विश्वास न कर सके कि मिस्र में इस प्रकार बने रहने पर भी ब्रिटेन की नीयत साफ़ हो सकती है। फ्रान्स का भाव विशेष रूप से निरन्तर विरोध

पूर्वी और पच्छिमी आफ्रिका
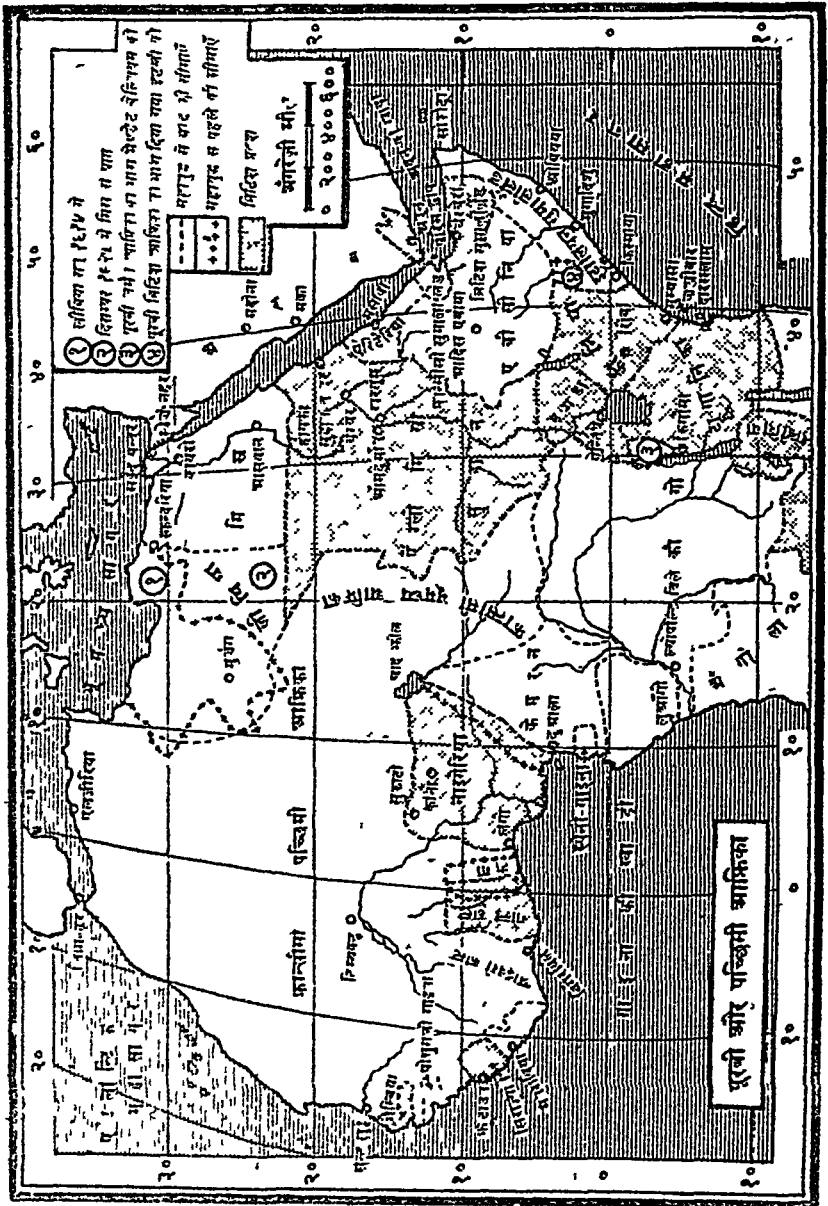
कर रहा। फिर १८९८ ई० में फशोडा पर फ्रान्सीसी मेजर मार्चंड के अधिकार कर लेने और लार्ड किचनर के भी वहाँ पहुँच जाने से परिस्थिति बड़ी गम्भीर हो गयी थी।

फ्रान्स की आकांक्षा थी कि वह लाल सागर पर स्थिति अपने आफ्रिकी राज्य की सीमा को पच्छिमी आफ्रिका के प्रदेश से मिला दे और इसलिए फ्रान्स ने फ्रान्सीसी कांगो से मेजर मार्चंड को सेना के साथ पूरब की मुहिम पर भेजा और दूसरी सेना पच्छिम की ओर रवाना की। जब मेजर मार्चंड फ़शोडा पर जो खारतूम से ४५० मील दक्खिन की ओर है, पहुँचा तो लार्ड किचनर भी वहाँ आ गया था। आख़िर दो महीने की नीतिपूर्ण लिखा-पढ़ी के बाद फ्रान्सीसियों ने फ़शोडा से अपनी सेना हटा ली। इस समय मिस्र की साम्पत्तिक व्यवस्था पर कुछ अंशों में अन्य युरोपीय राज्यों की भी देख रेख रहती थी, इसलिए फ्रान्सीसी विरोध के कारण लार्ड क्रोमर को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। आख़िर १६०४ ई० में ब्रिटेन और फ्रान्स में एक समझौता हो गया जिसके कारण इन दोनों देशों में मिस्र के ऊपर कोई वैमनस्य न रह गया। मिस्र की साम्पत्तिक व्यवस्था पर से अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण हटा लिया गया और यह तय हो गया कि मिस्र पर ब्रिटेन का आधिपत्य रहने तथा और सब बातों के सम्बन्ध में भी एक अवधि निश्चित कर दी जाय। मिस्र की समृद्धि के लिए यह सब कुछ करने पर भी ब्रिटेन को मिस्र के निवासियों की न तो सहानुभूति ही प्राप्त हो सकी और न उनकी राजनिष्ठा। बल्कि इस समृद्धि का उन पर उल्टा प्रभाव पड़ा। क्योंकि ऐसे सुव्यवस्थित शासन में रहते हुए अब मिस्रवासी पुराने ज़माने की सारी दुर्व्यवस्था और कष्टों को भूल गये और उनमें विदेशी और विधर्मी शासन के हस्तक्षेप के प्रति अशान्ति और देशव्यापी विक्षोभ यहाँ तक बढ़ गया कि २५ वर्ष की निरत सेवा के बाद जब लार्ड क्रोमर को मिस्र से हटना पड़ा तो उसे कायरों की आम सड़कों पर से गुजरने के लिए अँगरेज़ी सेना की संरक्षता की आवश्यकता पड़ी। सन् १६१४ के महा-युद्ध के बाद तो इस अशान्ति ने इतना ज़ोर पकड़ा कि इसके वर्णन के लिए हमें बाद की होने वाली कई प्रमुख घटनाओं का उल्लेख कर देना आवश्यक होगा।

## § ३.—आफ्रिका में युरोपीय राज्यों की नोच-खसोट

१८वीं शती के अन्त तक आफ्रिका के अन्तर्देश का युरोप निवासियों को बहुत कम ज्ञान हो पाया था। यद्यपि नील नदी की घाटी में ईसाई सम्वत् से कई हजार वर्ष पहले प्राचीन मानवीय सभ्यता का उदय हुआ फिर भी अभी मुश्किल से सौ वर्ष पहले तक संसार को आफ्रिका का बहुत ही साधारण ज्ञान था। यों तो भूमध्यसागर के उत्तर-पूरबी तट पर रहने वाले यूनानियों को और उनके बाद रोमनों को उत्तर-पूरबी मिस्र और उसके आस-पास के कुछ थोड़े से प्रदेश का कुछ ज्ञान था, फिर भी महा-द्वीप के अन्य प्रदेशों का न तो उस समय किसी को पता लगाने का विचार था और न किसी प्रकार की जानकारी प्राप्त थी। १८वीं शती में गिनी तट के कई प्रदेशों का कुछ हाल मालूम हो गया और इटालियन मल्लाहों ने उत्तर-पच्छिमी तट बुजडर तक रास्ता देख लिया था। आख़िर क़ुतबनुमा (ध्रुव-दर्शक यन्त्र) की इजाद से युरोपीय

नाविक समुद्र में दूर-दूर जाने का साहस करने लगे और आफ्रिका के उत्तर-पच्छिम कोने से समुद्र के किनारे-किनारे गुडहोप अन्तरीप तक वास्को डि गामा की प्रसिद्ध यात्रा द्वारा इधर का रास्ता खुल गया। इसके बाद प्रायः तीन सौ वर्ष तक आफ्रीका के भीतरी प्रदेशों में जाने का कोई प्रयत्न नहीं हुआ और पुर्तगालियों डचों और अँगरेज़ों ने किनारे पर के प्रदेशों पर अधिकार करने पर ही सन्तोष किया। डच होटन्टोट प्रदेश में जम गये और अँगरेज़ गायना और केपकोस्ट ( अन्तरीप तट ) पर अधिकार जमा बैठे। १७७० ई० में जेम्स ब्रूस ने ब्लू नील का अबाई उद्गम ढूँढ़ निकाला और अबीसीनिया की यात्रा की। इस साहसी यात्री की कारगुज़ारियों से आकृष्ट होकर १७८८ में एक आफ्रिका एसोसियेशन स्थापित हुआ जिसने नाइजर के बेसिन की खोज के लिए काफ़ी प्रयत्न किया। उस समय आफ्रिका के तट प्रदेश अथवा अन्तर्देश के निवासियों के सम्बन्ध की जो कुछ भी ख़बर युरोपीय प्रदेशों में पहुँचती थी यह प्रायः उन नाविकों या व्यापारियों द्वारा मिलती थी जो गुलामों का व्यापार करते थे। इस प्रकार १८०५ ई० में कुचुआना धार्मिक क़बीले का हाल मालूम हुआ और मरक्को एलजीरिया और सहारा के प्रदेशों का वर्णन बहुत से फ्रान्सीसी यात्रियों ने बताया। सन् १८४० से दक्खिनी आफ्रिका के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी वहाँ के मिशनरियों द्वारा प्राप्त हुई जिनमें मुफ़ात का नाम सबसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार मंगोपार्क और अन्य लोगों ने नाइजर नदी का पथ खोज निकाला। नील नदी पर तथा एबीसीनिया में कई महत्वपूर्ण यात्राओं के वर्णन ने १९वीं शती के उत्तरार्द्ध में लिविंगस्टन और स्टेनली आदि की मध्य आफ्रिका की यात्राओं के लिए भूमि तैयार कर दी। इसके पहले मध्य आफ्रिका के विषय में लोगों का ज्ञान और भी भ्रान्तिमूलक था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि आफ्रिका का अन्तर्प्रदेश बिलकुल रेगिस्तान है जहाँ जाकर सब नदियाँ विलोप हो जाती हैं।

लिविंगस्टन की यात्राओं ने आफ्रिका के नक़शे का रंग ही पलट दिया। इससे पहले युरोप निवासी, उत्तर पच्छिमी आफ्रिका में के थोड़े से प्रदेश ( सेनिगल और गेम्बिया के बीच का प्रदेश, काँगो नदी के मुहाने के दक्खिन का पच्छिमी तट का इलाका, आरेंज नदी के दक्खिन में अन्तरीप प्रान्त, ज़म्बेज़ी नदी के ऊपर का प्रदेश तथा नील नदी के उत्तर के मिस्र और सुडान देशों ) से ही परिचित थे। लिविंगस्टन ने ज़म्बज़ी नदी के एक छोर से दूसरे छोर तक यात्रा की, सबसे पहले विक्टोरिया प्रपात के दर्शन किये और उसी ने न्यासा और टाँगानिका झीलों के ठीक-ठीक आकार का पता लगाया। लिविंगस्टन बड़े साधारण कुल में उत्पन्न हुआ था। उसका न कोई ज़बरदस्त सहायक था न उसे किसी बड़े आदमी का आश्रय प्राप्त था। उनमें साहस और उत्साह अगम्य था और इसी के सहारे उसने बड़ी साधारण स्थिति में होते हुए भी संसार में अपना नाम उज्ज्वल और इतिहास के पृष्ठों में अमर कर दिया। जिस समय इस स्काटिस्तान वासी असाधारण कीर्ति-प्राप्त पुरुष ने प्राण त्यागे तो सारे

देश में शोक छा गया और उसके देशवासियों ने सम्मान के साथ उसके शव को वेस्टमिन्स्टर के बड़े गिरजे में स्थान देकर अपनी कृतज्ञता प्रगट की। लार्ड कर्जन के शब्दों में तो लिविंगस्टन की आत्मा सारे मध्य आफ्रिका के ऊपर मँडराती रहती है।

इसी प्रकार स्टेनली ने प्रायः ३ वर्ष तक पूरबी तट के जञ्जीबार से पच्छिमी तट पर बोमा तक की यात्रा की और इस बीच में विक्टोरिया और टँगानिका झीलों की परिक्रमा करता हुआ काँगो नदी के साथ एटलांटिक महासागर में जा पहुँचा। लिविंग्स्टन का विश्वास था कि अपर काँगो नदी के बेसिन में ही नील नदी का उद्गम स्थान है, परन्तु बाद में स्पीक ने विक्टोरिया झील के दक्खिनी भाग का पता लगाया और उसने ही पहले पहल नील का उद्गम बतलाने में सफलता प्राप्त की।

**आफ्रिका में नोच-खसोट का श्रीगणेश**—इस प्रकार लिविंगस्टन और स्टैनली आदि कई प्रमुख यात्रियों की साहसिक यात्राओं के वर्णन ने सारे युरोप में एक प्रकार की हलचल पैदा कर दी। अब तो हर जाति और देश के युरोपीय आफ्रिका में इसी प्रकार की खोज और साहसिक यात्राओं की प्रेरणा से उत्साहित होकर वहाँ जाने के लिए तैयार होने लगे। यह अवश्य है कि ये सब वहाँ एक ही अभिप्राय लेकर नहीं जा रहे थे। किसी-किसी को तो ऐसी साहसिक यात्राओं के प्रति उमंग ही उधर खींचे लिये जा रही थी तो किसी किसी को लिविंग्स्टन की भाँति इन यात्राओं के लिए ऐसा उत्साह उत्पन्न हो गया था जैसा धर्म-प्रसार-कार्य के लिए। फिर कुछ लोग सोना, चाँदी, हीरा जवाहिरात की खोज में थे; तो कुछ लोग अपने देश की व्यापार-वृद्धि के उद्देश्य से जा रहे थे। उधर कुछ लोगों में यह भावना भी जाग्रत हो रही थी कि वे इस महाद्वीप में जाकर अपने देश के प्रभुत्व और उसकी कीर्ति के अनुरूप ही वहाँ भी दिग्विजय प्राप्त करें। इस प्रकार आफ्रिका पर प्रभुत्व प्राप्त करने की यह लालसा व्यक्तियों तक ही सीमित न रहकर बहुत दूर तक अधिक प्रसार कर गयी। अब तो युरोपीय राज्य भी इसी भावना से प्रेरित मालूम होने लगे और इस महाद्वीप में अपने-अपने-प्रभाव क्षेत्र स्थापित करने तथा साम्राज्य बढ़ाने की वांछनीय प्रवृत्ति में लीन हो गये। आख़िर इस प्रवृत्ति के सम्बन्ध में लार्ड सालसबरी को मजबूर होकर ही यह कहना पड़ा कि सन् १८८० में जब वह वैदेशिक मन्त्री था तो कोई आफ्रिका को पूछता तक न था; परन्तु जब १८८५ ई० में वह दुबारा वैदेशिक विभाग में आया तो सारे युरोप के राष्ट्र आफ्रिका की तिक्का-बोटी करने में जूझे हुए थे। उसे तो इस अनोखी प्रवृत्ति का कोई कारण समझ में नहीं आया परन्तु यह प्रवृत्ति उसके सामने थी और सभ्यता तथा ईसाइयत के प्रसार के नाम पर यह बहुत शक्तिशाली हुई जा रही थी। आफ्रिका पर युरोपीय लोगों के इस आक्रमण और देश-विभाजन के लिए नोच-खसोट की निन्दा करना तो बहुत सहल है परन्तु इसमें कोई भी शक नहीं कि शुरू-शुरू में काली जातियों ने उनका बड़ी सहृदयता से स्वागत किया था। उस समय की परिस्थिति से आफ्रिका पर आफ्रिकनों के ही अधिकार को जारी रहने का तात्पर्य यही

हो सकता था कि वहाँ की जातियाँ हमेशा के लिये अज्ञान और अविद्या के अन्धकार में फँसी रहतीं तथा दासता, अत्याचार और नृशंस संहार के साथ दारुण यातनाएँ ही इनके भाग्य की विधायक बनी रहती।

अवश्य ही आफ्रिका के प्रदेशों के विभाजन की कशमकश में युरोपीय राज्यों में बहुत दिनों तक विभिन्न, विस्तृत और बड़ी जटिल मन्त्रणाएँ चलतीं रहीं। इनमें अँगरेजों की तरफ से लार्ड सालसबरी ब्रिटिश नीति का प्रतिनिधि रहा। १८८८ ई० में उपनिवेश मन्त्री के नाम लिखे हुए लार्ड सालसबरी के एक पत्र से उस समय की राजनीति का अच्छा दिग्दर्शन हो जाता है। उसमें लिखा था, "अब हम पोर्तुगल से मन्त्रणा करने का विचार कर रहे हैं। ज़म्बेजी के सम्बन्ध में अब मेरी आशाएँ गिरती जा रही हैं। ऐसी नदी को सारे युरोप के राष्ट्रों के लिए राज्य मार्ग बना देने में क्या लाभ जिसमें घुटनों तक भी पानी नहीं रहता। क्या आप सोफ़ाला सीमा अथवा नगामी झील के लिये बहुत चिन्तित हैं? इन पर इस समय बिस्मार्क का दाँत है। मुझे आशा है आपने अभी 'सैवेज' द्वीपों पर अधिकार नहीं किया है। ऐसा करने से बर्लिन के पड़ोस में बड़ी अमानुषिक भावना फैल जाने की आशंका है। यह तो स्पष्ट ही जर्मनी के प्रभाव क्षेत्र में हैं।" लार्ड सालसबरी के प्रभाव के कारण ही युरोपीय राज्यों में बहुत कुछ मनमुटाव पैदा हो जाने पर भी इस प्रदेश विभाजन के प्रश्न पर खुल्लमखुल्ला युद्ध न छिड़ पाया। मई १८६० ई० में पूरबी आफ्रिका के सम्बन्ध में जर्मनी के साथ बड़ी टेढ़ी समस्या का सामना आ पड़ा जिसमें लार्ड सालसबरी ने जञ्जीबार और वोतू पर ब्रिटिश आधिपत्य के बदले में जर्मनी को हेलिगोलैंड देने का प्रस्ताव किया। जर्मनी ने इस प्रस्ताव को इसलिए स्वीकार कर लिया क्योंकि जर्मन सम्राट और प्रिन्स बिस्मार्क दोनों की राय में उनकी नौ सेना के लिए हैलिगोलैंड पर अधिकार प्राप्त किये बिना कील नहर का बनाना बिलकुल असम्भव था।

इस सारी कशमकश के फल स्वरूप फ्रान्स को उत्तर पच्छिमी आफ्रिका में ऐल्जियर्स से काँगो नदी तक का प्रदेश मिला, जिसका क्षेत्रफल फ्रान्स से कम से कम बीस गुना है। इस प्रदेश का बहुत बड़ा भाग रेगिस्तानी है। सन् १६११ ई० में फ्रान्स को मरक्को पर अपना पूर्ण आधिपत्य प्राप्त करने के बदले में काँगो का कुछ प्रदेश जर्मनी को देना पड़ा। जर्मनी को पूरबी और पच्छिम तटों पर लगभग १० लाख वर्गमील का प्रदेश हाथ आया और इटली को लालसागर और उसके आस-पास का प्रदेश मिला। बेलजियम के बादशाह लियोपोल्ड ने १८८० ई० में फ्री स्टेट पर अपना अधिकार कर लिया था और पोर्तुगल का राज्य आफ्रिका के पूरबी और पच्छिमी दोनों तटों पर फैला था।

ग्रेट ब्रिटेन का आफ्रिकी साम्राज्य—ग्रेट ब्रिटेन भी अन्य युरोपीय राष्ट्रों से पीछे नहीं था। सन् १८७६ ई० से १८८६ ई० तक दस वर्ष में ही ग्रेट ब्रिटेन के आफ्रिकी साम्राज्य का क्षेत्रफल युरोप के एक तिहाई भाग के बराबर

था जो लगभग १२ लाख वर्गमील होता है। फिर अगर इसमें मिस्री सुडान के प्रोटेक्ट्रट ( रक्षित ) और 'मैण्डेट्री' ( मियन्त्रित ) प्रदेशों को भी शामिल करलें तो इस साम्राज्य का क्षेत्रफल ३६ लाख वर्गमील हो जाता है। इसमें पच्छिमी तट पर गाम्बिया और सिराल्योने की क्राउन कालोनी, गोल्ड कोस्ट कालोनी, आशान्ती और लागोस आदि शामिल हैं। इन सब में नाइजीरिया बहुत बड़ा प्रदेश है। सर जार्ज गोल्डी के अध्यवसाय के फलस्वरूप एक ब्रिटिश कम्पनी ने नाइजीरिया का प्रदेश बसाया, जो १६०० ई० में ब्रिटिश रक्षित संदेश और १६१४ ई० में नाइजीरिया का उपनिवेश और रक्षित प्रदेश कहलाने लगा। दक्खिनी आफ्रिका यूनियन में गुडहोप अन्तरीप, नेटाल, आरेञ्ज फ्री स्टेट और ट्रान्सवाल प्रदेश सम्मिलित हैं। न्यासालैंड १८६१ ई० में, ज़ञ्जीबार १८६० ई० में यूगेण्डा और ब्रिटिश सोमालीलैंड १८८४ ई० में अँगरेजों के रक्षित प्रदेश बने। मध्य और पूरबी आफ्रिका में कीनिया का बड़ा उपनिवेश ईस्ट आफ्रिका कम्पनी ने बसाया था। यह सब ब्रिटिश आफ्रिका के साम्राज्य में शामिल हैं। यूगेण्डा और नाइजीरिया तो कई छोटी-छोटी लड़ाइयों के बाद ब्रिटेन के अधिकार में आये परन्तु आशान्ती पर अधिकार करने में इसी नाम की जाति के साथ घोर युद्ध करना पड़ा। फिर १६१४ ई० तक तो मिस्र पर तुर्क साम्राज्य के नाम पर अँगरेज़ ही वास्तव में राज्य कर रहे थे। इनको छोड़कर मॉरिशस, सकोत्रा और इनके आस पास के कुछ और द्वीप अँगरेज़ों के अधिकार में रहे।

## ※ ३. सुदूर पूरब में अँगरेज़ी उपनिवेश

सुदूर पूरब के देश—धीरे-धीरे युरोपीय राज्यों की राज्य लालसा आफ्रिका से बढ़ कर सुदूर पूरब की ओर जा पहुँची। १८वीं शती के अन्त में ब्रिटेन ने पेनॉंग ले लिया था और वॉटरलू के युद्ध के दस वर्ष बाद मलक्का और सिंगापुर पर उसका अधिकार हो गया था। इन्हीं तीनों का नाम बाद में 'स्टेट्स सेटलमेन्ट' पड़ा। फिर १८वीं शती की पहली सप्तदशी में ब्रिटेन ने मलाया राज्य पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया और १८६६ ई० में यह ब्रिटेन का रक्षित राज्य हो गया। १८८८ ई० में उत्तरी बोर्निया और सरावक पर भी ब्रिटेन ने संरक्षिता प्राप्त कर ली सरावक का राजा ब्रुक स्कूल से भाग कर ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना में भरती हुआ और सात वर्ष तक भारतवर्ष में रहा। जब वह छुट्टी के बाद इंग्लैंड से अपनी नौकरी पर हाज़िर होने के लिए भारतवर्ष लौट रहा था तो उसके जहाज़ को पहुँचने में विलम्ब होने के कारण उसे नौकरी से हटा दिया गया। कई वर्ष बाद उसे अपने पिता की रियासत दायाधिकार में प्राप्त हुई और उसने एक मस्तूलदार जहाज़ खरीद कर १८३८ ई० में बोर्निया की यात्रा की। यहाँ पहुँच कर उसने सुलतान की सहायता की और यहाँ के अधिकारियों पर बड़ा प्रभाव जमा लिया। बोर्नियो के तट पर रहने वाले लोग ज़बरदस्त समुद्री डाकू थे। यह लोग बड़े असभ्य थे और मनुष्यों को मार कर उनके सिरों

को लटका रखना उनको बहुत प्रिय था। फिर जिस मनुष्य के यहाँ सब से अधिक मृतक सिरों की संख्या हो वही उनका नेता बनता था। ब्रुक ने बोर्नियो पहुँच कर इन समुद्री डाकुओं पर विजय-प्राप्त करने में ब्रिटिश नौ-सेना की बहुत सहायता की। आख़िर सन् १८४१ ई० में उसे सरावक का गवर्नर बना दिया गया और उसने इस अमानुषीक प्रथा को बन्द करने में बड़ा साहस और तन्मयता दिखायी।

इस समय प्रशान्त महासागर में ऐसे बहुत से द्वीप थे जिनका कोई अधिकारी न था। चुनांचे इन पर अधिकार के लिए फ्रान्स, जर्मन और ग्रेट-ब्रिटेन में बड़ी प्रतियोगिता उत्पन्न हो गयी। सन् १८८४ ई० में ब्रिटेन ने फ़िजी द्वीपों पर अधिकार कर लिया और १८वीं शती के अन्त तक वह और भी कई दीपों का अधिपति बन बैठा। फिजी में अँगरेजों के पहुँचते ही बड़े ज़ोरों से चेचक का रोग फैला जिसमें वहाँ की एक तिहाई जन संख्या नष्ट हो गयी।

ग्रेट ब्रिटेन और चीन के युद्ध—१६वीं शती के अन्त तक साम्राज्य-प्रसार की यह प्रवृत्ति सुदूर पूरब के देशों से आगे बढ़ कर चीन में प्रविष्ट हुई। सोलहवीं शती में सब से पहले पुर्तगाली व्यापारी चीन पहुँचे और उन्होंने मचाओ बन्दर पर अपना अधिकार कर लिया। पोर्तगालियों की लुटेरी प्रवृत्ति से तंग आकर चीन के सम्राट ने उन्हें और किसी बन्दरगाह में घुसने और व्यापार करने की आज्ञा न दी। १७वीं शती में डच और अँगरेज भी चीन आ पहुँचे। १७५७ ई० में चीन केसम्राट ने चीन का सबसे दक्खिनी बन्दरगाह काण्टुङ्ग ( कैन्टन ) युरोपीय व्यापार के लिए खोल दिया। परन्तु यहाँ किसी युरोपीय को बसने की आज्ञा न मिली। मचाओं से युरोपीय व्यापारी काण्टुङ आते और व्यापारी लेनदेन के बाद फिर वहीं लौट जाते। यह लोग चीन का रेशम और चाय ख़रीद कर अपने देशों में भेजने के लिए ले जाते थे। धीरे धीरे यह लोग अपने देश की चीजें भी लाकर काण्टुङ में बेचने लगे। इन चीजों में अफीम मुख्य थी। ब्रिटेन ने अन्य युरोपीय राज्यों से पहले पहुँच कर उन सब पर बाजी मार ली थी। ससार में चीन की सभ्यता सबसे प्राचीन मानी जाती है। उस समय के चीनी युरोपीय राष्ट्रों को बहुत तुच्छ समझते थे। चीन वासियों का विचार था कि सारे संसार के राष्ट्र उनके सम्राट् के अधीन हैं। ऐसी परिस्थिति में चीनी अफसरों का व्यवहार उच्छृंखल होना कोई अनहोनी बात न थी। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का अफ़ीम के व्यापार पर एकाधिकार होने से अँगरेज़ों को इस व्यापार में दुगुना मुनाफा होता था। आख़िर चीन में अफीम का आयात इतना बढ़ा कि १८३० ई० से चीन के निर्यात का पलड़ा हलका रहने लगा। चीन में इससे बड़ी खलबली मची और १८३८ ई० में चीन के सम्राट् ने अफीम के व्यापार को बन्द करने की चेष्टा की। अँगरेज़ व्यापारियों की अफ़ीम जब्त कर उनसे जमानत माँगी और भविष्य में बेचने के लिए अफ़ीम लाने की मनाही कर दी गयी।

सन् १८४० ई० में जब कई चीनी छोटे अफसरों की सम्मति से अफ़ीम का गुप्त

व्यापार करने वाले कई अँगरेजों के साथ चीनी कमिश्नरों ने कड़ाई का व्यवहार किया तो अँगरेज़ों ने चीन के साथ युद्ध छेड़ दिया। अँगरेज़ हाङकाङ में भाग आये और उन्होंने काङतुङ का रास्ता बन्द कर दिया। इसके बाद उत्तरी तट की तरफ बढ़ कर चीन के पाँच बन्दरगाह छीन लिए और अपने जहाज़ लेकर याङचे नदी में घुस गये और काङतुङ पर दख़ल कर लिया। १८४१ ई० में सन्धि हो गयी, जिसके अनुसार हाङकाङ पर अँगरेजों का कब्ज़ा हो गया।

इस युद्ध से चीनी सरकार को मालूम हो गया कि युरोपीय राष्ट्र अब कितने सबल हो गये थे। इसमें जहाँ एक ओर थी युरोपीय राष्ट्रों की अपने व्यापार की वृद्धि करने पर तुली हुई दुर्निवार शक्ति जो सब के बराबरी का दावा करती, वहाँ दूसरी ओर था चीन के प्राचीन साम्राज्य जिसे अपनी निर्बलता का कोई मान न था, जो युरोपीय राष्ट्रों में बराबरी का दावा स्वीकार करने को तैयार न था और जो यह समझे हुए था कि वह अपनी शक्ति से अफ़ीम का आयात बन्द कर सकेगा।

चीनी सरकार ने जो अफ़ीम ज़ब्त कर ली थी उसके मूल्य के अतिरिक्त उसे हरज़ाना भी देना पड़ा। इसके अलावा काङतुङ से शंघाई तक युरोपीय व्यापार के लिए पाँच बन्दरगाह और खोल देने पड़े और अँगरेज़ व्यापारियों को उनमें रहने तथा खुला व्यापार करने का अधिकार भी देना पड़ा। इसी के साथ चीन के सम्राट ने विदेशों से आये हुए माल पर चुंगी नियत करने का अपना अधिकार छोड़ दिया और अँगरेज़ों की यह शर्त भी मान ली कि भविष्य में अँगरेज व्यापारियों की सलाह से ही विदेशी माल पर चुंगी नियत की जायगी। परन्तु इस सन्धि की शर्तों में अफ़ीम के व्यापार की रोक के सम्बन्ध में कोई शर्त न थी, इसलिए उसका व्यापार लुके-छिपे यथावत् चलता रहा। इस समय से हाङकाङ के व्यापार की इतनी उन्नति हुई है कि अब उसका बन्दरगाह संसार-प्रसिद्ध बन्दरों में छठे नम्बर का समझा जाता है।

इस सन्धि को हुए अभी १५ वर्ष भी न गुजरे थे कि काङतुङ के चीनी गवर्नर की ज़्यादती से अँगरेज़ों को फिर लड़ाई छेड़ देनी पड़ी। इस बार फ्रान्स भी अँगरेज़ों के साथ था, क्योंकि फ्रान्सीसियों को अपने मिशनरियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की बड़ी शिकायत थी। अँगरेज़ी और फ्रान्सीसी सेनाओं ने काङतुङ पर १८५७ ई० में अधिकार कर लिया और चीनी गवर्नर को कैद कर कलकत्ता भेज दिया। अब फिर सन्धि की बातचीत शुरू हुई और जून १८५८ ई० में टीङसीङ में दूसरी सन्धि पर हस्ताक्षर हो गये। इस सन्धि में पहली सन्धि की शर्तों को दुहरा कर कुछ और बातें बढ़ा दी गयीं। इनमें एक आवश्यक शर्त यह थी कि दोनों राज्यों के राजदूत नियुक्त होंगे और चीनी राजदूत युरोपीय राज्यों में तथा वहाँ के राजदूत पीपिङ में रहेंगे। युरोपीय राजदूतों को अपने देश की प्रथा के विरुद्ध ज़मीन पर गिरकर चीनी सम्राट् का अभिवादन न करना पड़ेगा, युरोपीय मिशनरी और ईसाई धर्म में दीक्षित चीनियों की रक्षा की जायगी, अँगरेज़ी प्रजा को चीन आने-जाने तथा व्यापार करने की स्वतन्त्रता रहेगी तथा ५ बन्दरगाह अँगरेज़ों के खुले व्यापार के लिए

और खोल दिये जायँगे। फ्रान्स, रूस और यूनाइटेड स्टेट्स ऑव अमेरिका के साथ भी इसी प्रकार की सन्धियाँ हुईं। अगले वर्ष १८४२ ई० की सन्धि की शर्तों के अनुसार चुंगी की दर की जाँच शुरू हुई तो इस बार अँगरेजों की धींगाधींगी से अफ़ीम
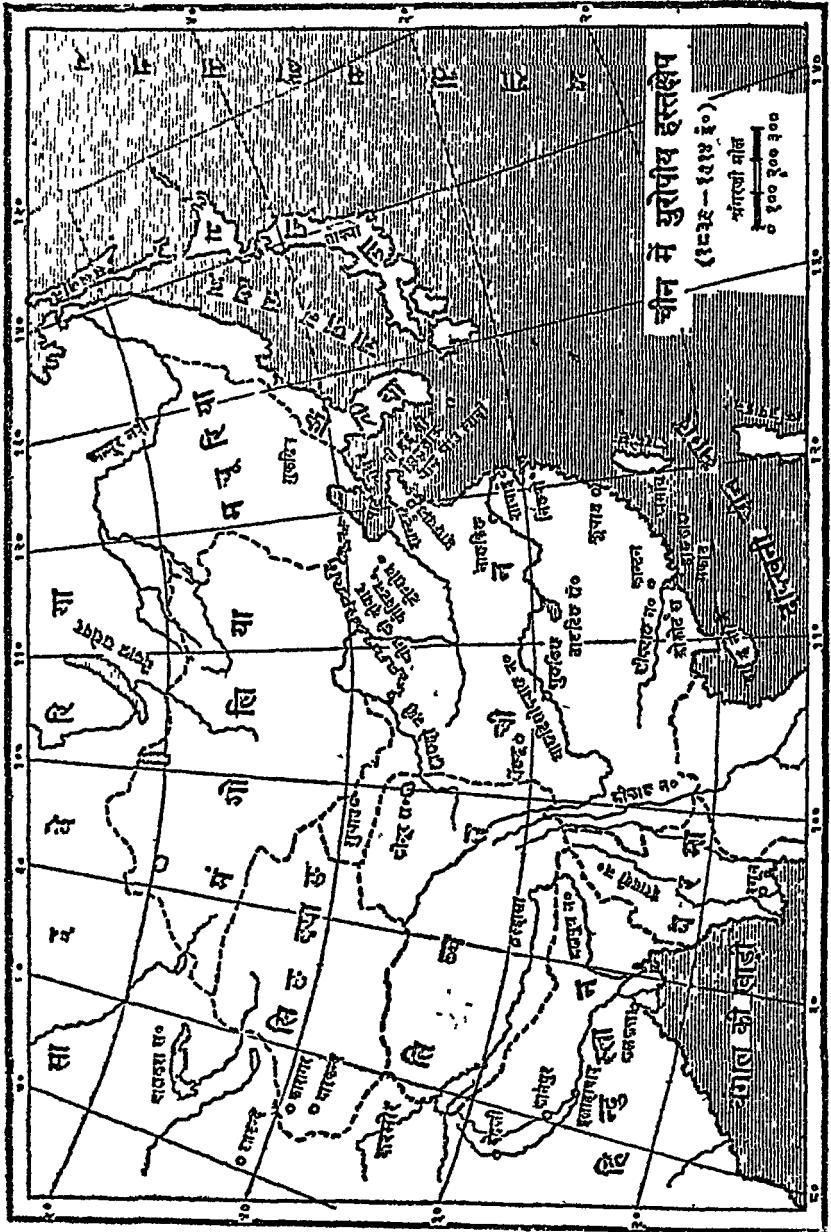
को भी, आयात में शामिल कर दिया गया और चुंगी वसूल करने के लिए युरोपीय अफसरों की नियुक्ति की गयी। यह बातें सन्धि की शर्तों के प्रतिकूल थीं इसलिए

पीपिङ सरकार ने दूसरी सन्धि को साल भर के भीतर ( सन्धि की शर्तों के अनुसार ) प्रामाणिक मान लेने से एक तरह से इनकार कर दिया और पीपिङ में सम्राट् के हस्ताक्षरों के बजाय टीङसीङ में वहीं चीनी कमिश्निरों से हस्ताक्षर करा देने को कहा। इस पर १८५६ ई० में अँगरेज़ और फ़्रान्सीसी अफ़सर गनबोट लेकर पीहो नदी के मुहाने पर जा पहुँचे और ज़बरदस्ती करने लगे। इस पर लड़ाई छिड़ गयी और अँगरेज़ी और फ़्रान्सीसी सेना की बड़ी करारी हार होने के कारण उन्हें लौटना पड़ा। अब फिर अँगरेज़ी और फ़्रान्सीसी सेनाओं ने टापू के किलों पर आक्रमण कर उन्हें १८६० ई० में सर कर लिया और टीङसीङ पर मित्रराष्ट्रों का अधिकार हो गया। सितम्बर १८६० ई० में अँगरेज़ी और फ़्रान्सीसी सेनाओं ने पीपिङ पर धावा बोला और वहाँ के प्रसिद्ध ग्रीष्म राजमहल को तहस-नहस कर डाला। चीनी सम्राट अपने भाई राजकुमार कुङ को युद्ध का भार सौंप उत्तर की ओर भाग गया। अक्टूबर में पीकिङ फ़तह हो गया और इस बार की सन्धि से अँगरेजों को भारी हरज़ाने के साथ हाङकाङ के सामने का थोड़ा सा तट-प्रदेश भी मिल गया। अब युरोपीय राजदूतों को पीकिङ में रहने की भी आज्ञा मिल गयी।

सन १९०१ की बॉक्सर घटना—इस प्रकार चीन में धीरे-धीरे और युरोपीय शक्तियों का भी प्रवेश होने लगा। मञ्चू राज-वंश के अन्तिम सम्राट का १८७५ ई० में देहान्त हुआ। इस सम्राट ने न तो कोई लड़का छोड़ा और न किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाया। ऐसी परिस्थिति में चीन का नया सम्राट काङसू हुआ जिसका ३३ वर्ष का दीर्घ राज्यकाल चीन के लिए बड़ा अशुभ रहा। सबसे पहले अँगरेज दूतावास के एक अफ़सर के मारे जाने पर झगड़ा हो गया। आखिर उसको रफा दफा करने में चीन को कई नये बन्दरगाह खोलने पड़े और अँगरेज़ों को कई व्यापारिक सुविधाएँ देनी पड़ीं। इसके बाद टाङकिङ और अनाम के आधिपत्य के सम्बन्ध में फ़्रान्सीसियों से युद्ध हो गया जिसका नतीजा यह हुआ कि इन दोनों प्रदेशों पर फ़्रान्स का अधिकार हो गया और इस युद्ध में चीनी नौ-सेना का बहुत बड़ा अंश तहस-नहस हो गया। इसी बीच १८७६ ई० में कोरिया ने जापान और अन्य युरोपीय जातियों के साथ कई सन्धियाँ की जिनका एक आशय यह भी हुआ कि उस पर अब चीन का आधिपत्य न रहा। इस पर चीनी सरकार बहुत नाराज़ हुई क्योंकि इस समय तक कोरिया चीन का रक्षित प्रान्त माना जाता था। इसके बाद हिन्द-चीन में फ़्रान्सीसियों और बरमा में अँगरेज़ों से लड़ाइयाँ छिड़ गयीं और चीन को इन प्रदेशों से भी हाथ धोना पड़ा। रूसियों ने अपनी साइबेरिया के रेल-पथ को प्रशान्त महासागर तक पहुँचा देने का निश्चय किया और पोर्ट आर्थर पर अधिकार कर लिया। फिर उन्होंने उत्तरी चीन के प्रदेशों पर धीरे-धीरे अधिकार जमाना शुरू किया। इस प्रकार मञ्चूरिया का प्रान्त भी ख़तरे में आ गया। मञ्चूरिया में रूसी ख़तरे के कारण जापन को कोरिया की ओर अधिक ध्यान देना और उसकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध

करना आवश्यक हो गया। इस पर १८६४ ई० में चीन और जापान का युद्ध छिड़ गया जिसमें चीनियों की नौ और स्थल दोनों सेनाओं की बड़ी करारी हार हुई। सन्धि होने पर जापान का फ़ारमोसा द्वीप पर अधिकार हो गया। इसके बाद १८६७ ई० में दो जर्मन मिश्नरियों के मारे जाने का बहाना लेकर जर्मनी ने क्याउ चाउ प्रदेश पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया। इसी समय अँगरेज़ों ने शाङटुङ प्रान्त के पुरब में वी हाई वी के बन्दरगाह का चीनी सरकार से पट्टा लिखा लिया (१८६८ ई०)। फिर युरोपीयों ने चीन के विभिन्न प्रदेशों में खानें खोदने और रेलें बनाने की भी रियायतें प्राप्त कर लीं और इस प्रकार चीन की सारी साम्पत्तिक व्यवस्था को अपने शिकजे में जकड़ लिया। युरोपीयों की इस अर्थलोलुपता और प्रदेशहरण नीति की प्रतिक्रिया होनी अवश्यम्भावी थी और अगर चीनियों को अपने देश पर विदेशियों को इस प्रकार सर्वेसर्वा होते देख कर क्षोभ हो तो कोई अनहोनी बात नहीं थी। अस्तु चीन में 'न हो चाह' (बॉक्सर्स) नाम की एक गुप्त संस्था स्थापित हुई जिसका उद्देश्य था अपने देश पर अधिकार किये हुए विदेशियों को निकाल देना या उनका विनाश कर देना। यह संस्था पीकिङ में बड़ी शक्तिशाली हो गयी और उन्होंने युरोपीय दूतावासों को घेर लिया। इस पर युरोपीय शक्तियों की एक संयुक्त सेना ने १६०१ ई० में पीकिङ को जा घेरा और चीनी सेनाओं को हरा कर चीनी सरकार से ६ करोड़ ४० लाख पौंड हरजाना वसूल किया।

सन् १६०८ ई० में अभागे चीनी सम्राट् काङसू का देहान्त हो गया और १६११ ई० में चीन के सैनिक दल ने विप्लव खड़ा कर माञ्चू वंश का अन्त कर दिया। १६१२ ई० में चीन में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित हो गया। इसके बाद भी चीन की अराजकता का अन्त न हुआ और किसी न किसी प्रान्त में बराबर उपद्रव होता रहा। उधर विविध सेनानायकों की प्रतिद्वन्द्विता में अपना-अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए निरन्तर युद्ध होने से चीन में सुव्यवस्थित शासन का विनाश हो गया और जापान ने इससे खूब फायदा उठाना शुरू कर दिया।

---

# अध्याय २७

## ब्रिटेन और भारतवर्ष (२)

### (१८२३-१६१४ ई०)

१४ वें अध्याय में १६ वीं शती के आरम्भ काल में भारतवर्ष में फैली हुई अराजकता के जमाने में ईस्ट इंडिया कम्पनी किस प्रकार प्रदेश पर प्रदेश अपने राज्य में मिलाती जा रही थी इसका कुछ दिग्दर्शन हम करा चुके हैं। इस समय तक हैदराबाद और मैसूर में ब्रिटिश प्रभुता स्थापित हो चुकी थी, तामिलनाड और रुहेलखंड

पर अँगरेज़ों का दख़ल हो गया था और गायकवाड़ और पेशवा ब्रिटिश रक्षा में आ चुके थे। १८०३ ई० के दूसरे मराठा युद्ध में सिन्धिया और भोंसले की शक्ति टूट गयी थी और देहली, आगरा और बुन्देलखंड उत्तर में तथा असीरगढ़ और बुरहानपुर मध्य भारत में अँगरेज़ों के हाथ आ चुके थे। इसके बाद होल्कर से युद्ध हुआ (१८०४-५ ई० ) जिस के परिणाम स्वरूप मराठे राज्य बिलकुल शक्तिहीन हो गये। अँगरेज़ों ने ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और सिन्ध से सन्धियाँ कर रणजीतसिंह को पंजाब में जकड़ सा दिया। उधर भारतीय समुद्र पर अँगरेजों का एकाधिपत्य हो गया क्योंकि उन्होंने पोर्त्तुगल; हालैंड और फ्रान्स के सब उपनिवेशों को आक्रमण कर विजय कर लिया। इसके बाद नैपाल और तीसरे मराठा युद्धों ने प्रायः भारतवर्ष पर अँगरेज़ों की धाक ही नहीं जमा दी बल्कि सारा देश एक प्रकार से उनके हाथ आ गया, और दक्खिन में कन्या कुमारी से लेकर उत्तर में सिन्ध की सीमा से होता हुआ सतलज नदी के किनारे का सारा देश ब्रिटिश आधिपत्य में बैठ गया। इस प्रदेश के बहुत बड़े भाग पर अँगरेज़ों का सीधा राज था; और थोड़े से भाग पर देशी राजे थे जो सब अँगरेजों के रक्षित थे। इस प्रकार इस समय अँगरेज़ों को अगर किसी ओर से खटका था तो उत्तर-पच्छिम की सरहद्द पर अफ़ग़ानिस्तान से, उत्तर-पच्छिम में पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह से और पूरब में बंगाल की सीमा पर बरमियों से।

पहला बरमा युद्ध (१८२४-२६ ई० )—१८वीं शती के मध्य में बरमी स्वतन्त्र हुए और मणिपुर और आसाम जीत कर कछार पर आक्रमण करने लगे। इससे चटगाँव का इलाका सकट में पड़ता देखकर आसाम और कछार में अँगरेज़ी सेनाएँ भेजी गयीं। चटगाँव में बरमा के सेनापति महाबन्दुला की सेना घुस आयी। इधर अँगरेज़ी सेना ने रंगून पर अधिकार कर लिया, इसलिए महाबन्दुला उधर लौटा। समुद्र की ओर से अँगरेजों ने तनासिरम प्रान्त ले लिया और महाबन्दुला को दोनाबू पर हरा कर प्रोम पर दख़ल कर बरमा की राजधानी आवा पर जा धमके। तब १८२६ ई० में सन्धि हो गयी और आसाम, कछार आराकान और तनासिरम पर अँगरेज़ों का अधिकार हो गया। इसके साथ अँगरेज़ों को हरजाने में भी अच्छी रकम हाथ लगी।

पहला अफगान युद्ध—१९वीं शती के आरम्भ में नेपोलियन के पतन के बाद फ्रान्स और इंग्लैण्ड की पुरानी कशमकश जब ख़तम हुई तो रूस के साथ नयी स्पर्द्धा शुरू हो गयी। रूसियों ने १५वीं शती के मंगोलों को अपने देश से निकाल दिया और वे यूराल से पूरब की ओर बढ़ने लगे। १७वीं शती के मध्य तक बैकाल भील तक उनका साम्राज्य फैल गया। फिर १९वीं शत के शुरू से वे कोह काफ के रास्ते ईरान को दबाने लगे और मध्य एशिया तक पहुँचने की चेष्टा करने लगे। इस तरह १९वीं शती के आरम्भ में रूस साम्राज्य तथा ब्रिटिश साम्राज्य की सीमा के बीच २ हजार मील का अन्तर था। धीरे-धीरे दोनों साम्राज्यों के विकास की सीमा के साथ वे सीमाएँ निकट होती गयीं; यहाँ तक कि शती के अन्त में तो एक स्थान पर उनके

बीच केवल ११ मील का अन्तर रह गया। अँगरेजी और रूसी साम्राज्यों के बीच उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान पड़ता था जिसको कायम रखना एक प्रकार इन दोनों साम्राज्यों में शान्ति रखने के लिए अवश्यक था। इसलिए अफ़गानिस्तान के साथ मैत्री का सम्बन्ध रखना जरूरी हुआ। इस समय अफ़गानिस्तान में काफ़ी अराजकता फैली हुई थी। शाहशुजा और शाहमहमूद में गद्दी के लिए झगड़ा चल रहा था। शाहशुजा अफगानिस्तान से निकाले जाने पर पहले रणजीतसिंह की शरण में आया और फिर अँगरेज़ों के आश्रय में रहने लगा। उधर रणजीतसिंह बराबर पंजाब के पश्चिम की तरफ अपना राज्य बढ़ाता चला जा रहा था और खैबर दर्रे तक सारे प्रदेश पर अधिकार कर चुका था। दोस्तमुहम्मद इस समय अफगानिस्तान का शासक बन बैठा था। इस तरह १८३७ ई० में परिस्थिति गम्भीर हो गयी थी। रूस की प्रेरणा से ईरान के शाह ने उत्तर-पश्चिमी अफगानिस्तान में हिरात पर आक्रमण किया और जब यह आक्रमण असफल रहा तो रूसी एजेन्ट दोस्तमुहम्मद से गुप्त मन्त्रणा करने लगे। इस पर भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल लार्ड आकलैण्ड ने दोस्तमुहम्मद को गद्दी से उतारने का निश्चय किया और शाहशुजा को अफगानिस्तान पर चढ़ाई करने जाने दिया। परन्तु वह वहाँ से हार कर लौटा। रणजीतसिंह को समझा बुझाकर पंजाब और सिन्ध में होकर दो तरफ़ से अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई करने की योजना बनी। अँगरेजी सेना शाहशुजा को साथ लिये सतलज नदी के बायें होकर सिन्ध में घुसी और दर्रा बोलन को पार कर उसने ग़ज़नी और कन्दहार पर अधिकार कर लिया। दोस्तमुम्मद काबुल से भाग गया और शाहशुजा को १८३९ ई० में काबुल की गद्दी पर बैठा दिया गया। दो वर्ष तक एक प्रकार से शान्ति रही, यद्यपि अफगानों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ अँगरेज़ों की सेना और उनके रसद सामान पर बराबर छापे मारती रहती थीं।

१८४१ ई०-में काबुल के ब्रिटिश एजेन्ट की हत्या कर दी गयी। सेना की रसद का सामान अफ़गानों ने छीन लिया और काबुल की ब्रिटिश सेना चारों ओर से घिर गयी। दो महीने के प्रतिरोध के बाद इसे दोस्तमुहम्मद के ज्येष्ठ पुत्र से सन्धि की बातचीत करनी पड़ी। उसने अँगरेजी सेना को सुरक्षित लौट जाने देने का बचन इस शर्त पर दिया कि दोस्तमुहम्मद को छोड़ दिया जाय। अभी यह बातचीत चल ही रही थी कि मैकनाटन और अकबरखाँ की मुलाकात में मैकनाटन मारा गया। आखिर जनवरी १८४२ ई० में १६ हज़ार अँगरेज़ी सेना सन्धि हो जाने के बाद घोर शिशिर में भारत की ओर चल पड़ी; परन्तु इसमें से केवल एक व्यक्ति डाक्टर ब्राइडन जलालाबाद पहुँच सका। बाकी लोग जाड़े की ठिठरन और अफगानों की बन्दूकों का शिकार बने। इतने भीषण विनाश का बदला लेना अब आवश्यक हो गया। भारत से काबुल के लिए दो सेनाएँ चलीं—एक जनरल नॉट के नेतृत्व में कन्धार से और दूसरी पोलक के नेतृत्व में खैबर से। उन्होंने काबुल पहुँच कर वहाँ का बाज़ार जला दिया, और ओल में छोड़े हुए अपने सब कैदियों को छुड़ाकर लौट आये। अँगरेज़ी सेना के अटक पार कर लेने

पर दोस्तमुहम्मद को छोड़ दिया गया। अँगरेज़ों ने दोस्तमुहम्मद को गद्दी से हटाने में तथा अफ़गानिस्तान में हस्तक्षेप करने में बड़ी भूल की। इस लड़ाई में अँगरेज़ों की खूब हेटी हुई और उनकी सेना के अजेय होने की सारी धाक मिट्टी में मिल गयी।

सिन्ध पर दख़ल (१८४३ ई०)—पिछले अफगान युद्ध के अवसर पर अँगरेज़ों ने इस बात का अनुभव कर लिया कि उत्तर-पच्छिमी सीमान्त को सुरक्षित रखने की कुंजी है सिन्धु नदी की निचली घाटी या सिन्ध प्रान्त। फिर अँगरेज़ों को सिक्खों और रणजीतसिंह का भी भय लगा हुआ था। इसलिए सर चार्ल्स नेपियर ने आश्रित सेना के ख़र्च की अदायगी के बहाने सिन्ध पर दबाव डाला और उनका इलाका जब्त करना शुरू किया। इस पर जनता बिगड़ गयी और उन्होंने रेजिडेन्सी को घेर लिया। मियानी पर नेपियर की ३ हजार सेना ने अमीरों की ३० हज़ार सेना को बुरी तरह हराया और हैदराबाद को घेर कर लूटा। सिन्ध पर अँगरेजी दखल हो गया। यद्यपि यह सारी कार्रवाई ज़बरदस्ती और धींगाधींगी ही कही जायगी परन्तु सुशासन के नाम पर इस दुष्टता को भी बड़ा लाभप्रद और न्यायोचित कार्य बतलाया गया।

सिक्खों से युद्ध (१८४६, ४८, ४६ ई०)—अगला युद्ध पंजाब केसरी रणजीतसिंह की मृत्यु के कारण हुआ। रणजीतसिंह का व्यवहार अँगरेजी सरकार से अच्छा रहा था। सन् १८३६ ई० में उसकी मृत्यु के बाद कोई सशक्त उत्तराधिकारी न था। इसलिए पंजाब में एक तरह की अशान्ति और अराजकता का युग उपस्थित हो गया। अन्त में एक सैनिक सभा का राज्य पर प्रभुत्व हो गया। उधर ब्रिटिश सरकार ने पंजाब पर अपना शिकंजा कसना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार युद्ध अनिवार्य हो गया। पंजाब के निवासी अधिकतर सिक्ख थे। रणजीतसिंह ने इन्हीं सिक्खों की ८० हजार सेना तैयार की थी, जिनके धार्मिक उत्साह और दृढ़ता के कारण उन्हें क्रामवेल के प्रसिद्ध 'लौहदल' से तुलना की जा सकती है। यही कारण था कि दोनों सिक्ख युद्ध अँगरेज़ों के लिए भारतवर्ष की विजय के समस्त युद्धों में अत्यन्त कठिन और दुर्जेय साबित हुए। इस समय पंजाब में सिक्ख सेना का दौर-दौरा था। सतलज के पूरब ओर के सिक्ख सरदार अँगरेजों की रक्षा में थे और पच्छिम तरफ के सरकार जो अब तक रणजीतसिंह की प्रतिभा से दबे हुए थे अब अपनी रक्षा इसी में समझने लगे कि सिक्ख सेना का विनाश हो। आखिर सिक्खों ने युद्ध का निश्चय किया और उनकी सेना ने अँगरेजी इलाके पर आक्रमण कर दिया। फीरोजशहर की लड़ाई बड़े घमासान की हुई जिसमें अँगरेजों की विजय तो हुई परन्तु उनको बड़ी क्षति उठानी पड़ी। इस प्रकार १८४५ ई० के पहले युद्ध में अँगरेज़ों ने तीन सप्ताह में चार मोर्चों पर विजय प्राप्त की। इस युद्ध के अन्त में जो सन्धि हुई उससे अँगरेजों को सन्तोष न हुआ। सतलज और ब्यास नदियों के बीच के प्रदेश पर अँगरेजों का दख़ल हो गया और डेढ़ करोड़ रुपया उन्हें हरजाने का मिला। पंजाब में अँगरेज़ी सेना रख ली

गयी और एक अँगरेजी सेना रख ली गयी और एक अँगरेज रेज़िडेन्ट को दरबार का मुखिया बना दिया गया। १८४७ ई० में लार्ड डलहौजी गवर्नर-जनरल होकर आया और १८४८ ई० के शुरू में मुलतान में बलवा हो गया। जब अँगरेजों ने बलवा दबाने के लिए पंजाब दरबार पर ज़ोर डाला तो शेरसिंह ने सिक्खों की तरफ़ से युद्ध घोषणा कर दी। लाहौर से लार्ड गफ़ शेरसिंह के विरुद्ध सेना लेकर बढ़ा, परन्तु जनवरी १८४६ ई० में शेरसिंह ने चिलियाँवाला पर उसे बड़ी करारी हार दी। इस लड़ाई में अँगरेजी सेना के २४०० सैनिक खेत रहे, चार तोपखाने सिक्खों ने पकड़ लिये और तीन रेजिमेन्टों के झंडे छीन लिये। इसके बाद गफ़ ने गुजरात पर फिर सिक्ख सेना को आ पकड़ा और उसे बुरी तरह हरा दिया! लड़ाई के शुरू में दो घंटे तक अँगरेज़ी तोपखाना आग उगलता रहा और सिक्ख सेना मानो भाड में गिर गयी। इसके बाद पदाति सेना का आक्रमण हुआ और सिक्खों के मोर्चे टूट गये तथा वे पीछे मुड़ कर भागे। इन दोनों युद्धों में लार्ड गफ़ कमांडर-इन-चीफ़ था। उसकी वीरता और दृढ़ता के विषय में सन्देह नहीं, किन्तु उसके सेना और युद्ध संचालन नीति और गतिविधि के विषय में बहुत आक्षेप हुए। लार्ड गफ़ बड़ा साहसी योद्धा था और प्रायः शत्रु की सेना पर सामने से सीधा हमला कर संगीनों की नोक पर लड़ाई जीतने का प्रयत्न करता था। उसकी इस नीति से सेना की बड़ी क्षति होती जो बाजुओं पर आक्रमण करने या पहले तोपखाने की मार से बचायी जा सकती थी।

गुजरात की लड़ाई में विजय प्राप्त होने से अँगरेज़ पंजाब के स्वामी बन गये और सारा देश अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। अब हेनरी और जान लारेन्स जैसे योग्य शासकों को उसका शासन सौंपा गया। उन्होंने शान्ति और सुशासन का युग प्रस्तुत किया जिससे प्रजा में बड़ा सन्तोष उत्पन्न हो गया। इसीलिए १८५७ ई० के विद्रोह में पंजाब में न सिर्फ़ निष्क्रिय शान्ति रही बल्कि सिक्ख सेना ने विप्लव को दबाने में बड़ा सक्रिय सहयोग दिया।

लार्ड डलहौजी का शासन (१८४८-५६ ई०)—दूसरे सिक्ख युद्ध के समय लार्ड डलहौजी गवर्नर-जनरल था अतः पंजाब पर अँगरेजी दखल करने का उत्तरदायित्व उसी पर है। किन्तु उसके आठ वर्ष के शासन में (१८४६-५६ ई०) और भी कई प्रदेश ब्रिटिश शासन में सम्मिलित किये गये।

पहले बरमा युद्ध के बाद से अराकान और तनासिरम प्रान्तों पर अँगरेजों का अधिकार था। अब डलहौजी ने सोचा कि यदि इनके बीच का पेगू प्रान्त और मिल जाय तो बंगाल की खाड़ी का पूरा तट प्रदेश अँगरेज़ों के अधीन हो जाय। इस जबरदस्ती के लिये एक बहाना भी मिल गया। बरमा की सरकार ने इस समय दो अँगरेज कप्तानों पर जुरमाना किया। इस पर भारत के गवर्नर जनरल ने हरजाना मांगा और जंगी जहाज़ रंगून भेजे। इनके नायक के अपमान के बहाने बरमा का एक बड़ा जहाज़ जब्त कर लिया और एक लाख पौंड हरजाना माँगा गया।

यों अँगरेज व्यापारियों पर आक्रमणों तथा अँगरेजी झंडे के अपमान के कारण सन् १८५२ में बरमा में फिर युद्ध हुआ और दक्खिनी या लोअर बरमा अँगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। इसी समय अवध का शासन निकम्मा बतला कर डलहौजी ने अवध को भी सन् १८५६ में अँग्रेज़ी राज्य में मिला लिया और इस प्रकार सारे भारतवर्ष को अँगरेज़ी राज्य में कर लेने की डाइरेक्टरों की नीति का पालन किया। डलहौजी के मतानुसार अँगरेजों का शासन देशी राजाओं के शासन से कहीं श्रेष्ठ था, इसलिये कई छोटी-छोटी रियासतों में उसने लड़का गोद लेने की प्रथा को अस्वीकृत कर दिया और नागपुर तथा झाँसी के शासकों की मृत्यु के बाद उसके राज्य पर दख़ल कर लिया।

**ब्रिटिश शासन में सामाजिक उन्नति ( १८२३-५६ ई० )**—अब तक हमने भारतवर्ष में अँगरेजी शक्ति के विकास का ही उल्लेख किया है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सारे देश के शासक बनकर अँगरेज़ देश के सुधार की ओर से उदासीन रहे। इस बीच अँगरेजों ने भारत के प्रान्तों की नयी शासन व्यवस्था में भी खूब सरगरमी दिखायी। मद्रास और बम्बई के अहातों में तथा उत्तर भारत में नया बन्दोबस्त किया गया, शिक्षा और कानून की भी व्यवस्था हुई और सामाजिक सुधार भी हुए। बेन्टिंक ने सती की कुप्रथा को बन्द किया, ठगों का दमन किया, शिक्षित भारतवासियों को शासन में भाग लेने के लिए उत्साहित किया और देश की साम्पत्तिक व्यवस्था में भी सुधार किये तथा प्रेस की स्वतन्त्रता की व्यवस्था की। डलहौज़ी ने प्रान्तों और जिलों में शासन की पुनर्व्यवस्था की; नहरें खुदवायीं, रेल और तार चलाये, सस्ते महसूल पर पत्र आदि भेजने का प्रबन्ध किया और शिक्षा का भी प्रचार किया।

**भारतवर्ष में असन्तोष और स्वाधीनता युद्ध—( १८५७ ई० )**—लार्ड डलहौजी की ज़ब्ती और जबरदस्ती दख़ल जमाने की नीति भी १८५७ ई० के स्वाधीनता युद्ध का एक कारण बन गयी। पच्छिमी देशों के वैज्ञानिक चमत्कारों ने अँगरेजों के हाथ में नये यन्त्र और नवीन साधन उपस्थित कर दिये और उनकी राजनीति ने तो सारे देश को विस्मित तथा सशंकित कर दिया। अँगरेजों ने अब यह कहना शुरू किया कि भारतवासी समझने लगे कि दुनिया उलट-पुलट हो रही है। उनके लिए तार जादू है, रेल के कारण जाति-व्यवस्था को क्षति पहुँचती है क्योंकि सब जाति के लोगों को ही डिब्बे में यात्रा करनी पड़ती है और सारी अँगरेजी योजनाओं का उद्देश्य हिन्दू धर्म का नाश समझा जाता है। फिर देशी राज्यों को ज़ब्त करने की नीति ने देश भर में असन्तोष और अविश्वास उत्पन्न कर दिया था उधर लार्ड डलहौजी का उत्तराधिकारी लार्ड कैनिंग अवध की विचित्र भूमि व्यवस्था से परिचित न था। अँगरेज कर्मचारियों ने नयी भूमि-व्यवस्था द्वारा वहाँ के जमीन्दारों से विद्वेष उत्पन्न कर लिया था। इसलिए अवध के ताल्लुकेदार इस स्वाधीनता के युद्ध में

अँगरेजों के विरुद्ध थे। किन्तु इस युद्ध के और भी कारण थे। इस समय देशी सेना अँगरेज़ी सेना से आठ गुनी थी। वह समझती थी कि अँगरेजों की सफलता उसी के कारण हुई है। फिर अफगान, क्रीमिया और सिक्ख युद्धों ने ब्रिटिश सेना की अजेयता की धाक को ठंडा कर दिया था। उधर लोगों में इस प्राचीन भविष्यवाणी का प्रभाव भी कम न था कि प्लासी के युद्ध के १०० वर्ष बाद अँगरेज़ी शासन का अन्त हो जायगा। फिर नये एनफील्ड राइफलों के प्रयोग से कम्पनी की सेना में भी उत्तेजना फैली हुई थी। इन राइफलों के कारतूसों की टोपी को दाँत से काटना पड़ता था। लोगों में यह बात बिजली की तरह फैल गयी कि इन कारतूसों में गाय और सुअर की चर्बी लगायी गयी थी और इसने देश में अशान्ति और विद्रोह की सुलगती हुई चिनगारियों को और भी भड़का दिया। सम्भव है इस कथा में कुछ भी सत्य का आधार न हो परन्तु सैनिकों ने इस पर विश्वास कर लिया और अँगरेजी राज्य के विरुद्ध आन्दोलन करने वालों को इस बात का एक प्रमाण मिल गया कि अँगरेज भारतवासियों के पवित्र धर्म को दूषित करने के आयोजन में लगे हैं। इस प्रकार राजनीतिक असन्तोष के साथ-साथ धर्म के नाम पर भी हिन्दू मुसलमान अँगरेजों के विरुद्ध एक हो गये।

विप्लव का आरम्भ (१८५७ ई०)—१० मई सन् १८५७ को मेरठ से इस विप्लव का श्रीगणेश हुआ। मेरठ के रिसाले के कुछ सिपाहियों को इन कारतूसों के न छूने के अपराध में बड़ी कड़ी सजाएँ दी गयीं। इस पर उनके साथी बिगड़ खड़े हुए और उन्होंने अपने अँगरेज अफसरों को गोली मार दी और देहली की ओर चल दिये। वहाँ की देशी सेना से मिल कर उन्होंने मुगल बादशाह बहादुरशाह को भारत का सम्राट् घोषित कर दिया। तीन सप्ताह में यह विद्रोह अवध और गंगा के सारे मैदान में फैल गया। अँगरेजों की स्थिति अब बड़ी नाजुक हो गयी थी क्योंकि विद्रोहियों ने देहली पर अधिकार कर लिया और उन्होंने कानपुर और लखनऊ की ब्रिटिश सेनाओं को भी घेर रक्खा था।

कानपुर का हत्याकांड (जुलाई १८५७ ई०)—यह भारतीय स्वाधीनता का विफल युद्ध अँगरेजी इतिहास की सबसे भीषण घटना है। कहा जाता है कि अँगरेज अफसरों को देशी सेना के सिपाहियों पर इतना विश्वास था कि उन्होंने अपनी रक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं किया और इस कोताही का परिणाम यह हुआ कि विप्लवकारी सिपाहियों ने अँगरेज़ अफसरों को गोली से उड़ा दिया और अनेक अँगरेज़ स्त्रियाँ और बच्चे निर्दयतापूर्वक मारे गये। किन्तु कानपुर के हत्याकांड के सामने ये सब घटनाएँ फीकी पड़ जाती हैं। लगभग ढाई सौ अँगरेज़ सैनिकों तथा उससे दूने स्त्रियों और बच्चों ने एक कच्ची दीवार से घिरे हुए मैदान में शरण ली। ग्रीष्म की कड़ी धूप में वे १८ दिन तक अपनी रक्षा करते रहे। अन्त में सुरक्षित रूप से इलाहाबाद पहुँचा देने का वचन देने पर उन्होंने अपने को नाना साहब के समर्पण कर दिया और नाना साहब ने उन्हें पहुँचाने के लिए नावों का प्रबन्ध कर दिया। इसी समय

नील के अत्याचारों से पीड़ित जनता ने बदला लेने की नियत से उनकी नावों पर धावा बोल दिया और नाव पर बैठे अँगरेज़ों को मौत के घाट उतार दिया। जब नाना को यह हाल मालूम हुआ तो उसने बचे हुए स्त्रियों और बच्चों को नजरबन्द करा दिया और पुरुषों को गोली से मरवा दिया। इसी समय जनरल हैवलाक गाँवों को जलाता और प्रजा को मारता हुआ इलाहाबाद से कानपुर की तरफ़ बढ़ा। रास्ते में उसने फ़तहपुर को लूट कर उजाड़ दिया और नाना की सेना को हरा दिया। फ़तहपुर की घटना से चिढ़ कर नाना साहब के सिपाहियों ने उसकी आज्ञा के बिना बीबीघर में कैद हुई अँगरेज़ स्त्रियों को मरवा कर पड़ोस के कुएँ में फेंकवा दिया। आख़िर हैवलाक ने नाना की सेना को हरा दिया और कानपुर पर अधिकार कर लिया। १५ दिन बाद नाना साहब ने २१० बन्दियों की हत्या का हुक्म दे दिया।

**अँगरेज़ी दृढ़ता**—इस समय अँगरेज़ों ने बड़े साहस, पराक्रम दृढ़ता का परिचय दिया। देहली में लेफ़्टिनेन्ट विलोबी ने ८ सैनिकों की सहायता से दिल्ली के बारूदखाने की रक्षा की और अन्त में उसे आग लगा कर इसलिए उड़ा दिया कि शत्रु के हाथ न पड़ जाय। पंजाब में एडवर्ड स, चेम्बरलेन और निकलसन की सहायता से जान लारेंस ने बड़ी दृढ़ता से वहाँ के सैनिकों में फैलते हुए विद्रोह को रोका। सिर्फ़ ४ हजार अँगरेज़ी सेना ने देहली पर चढ़ाई कर दी और हजारों की संख्या वाली देशी सेना को हराकर शहरपनाह से केवल पौन मील की दूरी पर स्थित पहाड़ियों पर अधिकार कर लिया। इस समय देहली में ३० हज़ार से भी अधिक सेना मौजूद थी। इस सेना ने बहुत बार अँगरेज़ी सेना पर छापे मारे परन्तु उसे बराबर हार कर लौटना पड़ा। हैवलाक ने १५०० सैनिकों के साथ कानपुर की रक्षा के लिए जुलाई में १२६ मील की यात्रा की और चार मोर्चों पर युद्ध किया। इसी तरह लखनऊ की अँगरेज़ी सेना और अन्य अँगरेज़ रेजिडेन्सी में चले गये। हेनरी लारेंस जिसकी सेना में केवल १ हजार अँगरेज़ और ७ हज़ार हिन्दुस्तानी सिपाही थे मारा गया। ८७ दिन तक बड़ी वीरता से शत्रु का सामना किया गया और एक मील के घेरे में बनी रेजिडेन्सी के मकानों की कई गुनी देशी सेना के १५० गज की दूरी पर स्थित तोपखाने की गोलाबारी और सिर्फ़ १५ गज़ दूर पर जमी हुई सेना के मोर्चों की चोट से रक्षा की गयी। विप्लवकारियों ने कई बार रेज़िडेन्सी पर हमला बोल कर उसे लेना चाहा अथवा कई बार सुरंग से उसे उड़ा देने की कोशिश की, परन्तु सब विफल हुईं।

अँगरेज़ों की दृढ़ता के सामने हमें उन देशी सैनिकों की कारगुजारी को भी न भूल जाना चाहिए जिन्होंने विप्लव में कोई भाग नहीं लिया। बम्बई और मद्रास की सेना पर विप्लवकारियों के प्रचार का कोई प्रभाव न पड़ा। इसी प्रकार प्रायः सभी रजवाड़े इस विप्लव से अलग रहे। पटियाला के राजा ने अँगरेज़ों की बड़ी सहायता की और पंजाब और देहली के रास्ते को सुरक्षित रक्खा। लखनऊ की रेजिडेन्सी के भीतर और दिल्ली के आस पास की पहाड़ियों पर स्थित देशी सेना वीरता से लड़ी।

गाइड नामी पैदल और रिसाला उत्तर भारत की झुलसती हुई गरमी के दिनों में २१ दिन तक निरन्तर २७ मील प्रति घंटा के हिसाब से कूच करता रहा। देहली के मुहासरे में जब प्रायः सभी अँगरेज अफ़सर मारे गये या घायल हो गये और आधी सेना भी कट गयी, तब इन्हीं सैनिकों की वीरता और साहस ने विजय प्राप्त करायी। गोरखों ने भी अँगरेजों की खूब सहायता की और वे बड़ी बहादुरी से लड़े। बहुत से विप्लवकारी रेजिमेन्टों के सैनिकों ने अँगरेज अफसरों की जान बचायी और उन्हें भाग निकलने में मदद दी। फिर हिन्दुस्तानी नौकरों के सम्बन्ध की ऐसी बहुत सी कहानियाँ कही जाती हैं जिनमें उन्होंने अपनी जान जोखिम में डालकर अँगरेज स्त्रियों और बच्चों की रक्षा की।

**देहली और लखनऊ पर फिर दखल ( सितम्बर-नवम्बर १८५७ ई० )**—सितम्बर के अन्त तक इस विप्लव का जोर समाप्त हो गया। अब पंजाब से निकलसन ने आकर देहली का अवरोध करने वाली सेना का हाथ बटाया और १४ सितम्बर को उसने देहली को फ़तह कर लिया, यद्यपि वह स्वयम् घायल होकर मर गया। पाँच दिन तक सड़कों और गलियों में लड़ाई और मारकाट मची रही; तब कहीं विद्रोह देहली से निकाले जा सके। हैवलाक, कानपुर की रक्षा करने के लिए देर से पहुँचा, किन्तु वह और आउटरम रास्ते भर लड़ते-भिड़ते लखनऊ जा पहुँचे और रेजिडेन्सी में घुस जाने के कारण घिर गये। तब तक ब्रिटेन से कुमुक आ पहुची और नवम्बर सन् १८५७ में कालिन केम्बेल भी लखनऊ जा पहुँचा। उसने वहाँ पहुँच कर घिरी हुई सेना को संकट से छुड़ाया। फिर भी इस विप्लव को पूर्णतः शान्त करने में काफ़ी समय लग गया। १८५८ ई० तक लखनऊ नगर पर पूरा अधिकार न हो सका। उसी वर्ष सर ह्यू रोज ने मध्य भारत में विप्लव को शान्त किया। आख़िर सन् १८५९ ई० में विप्लव का अन्त हुआ। विद्रोहियों को प्राण दंड दिया गया क्योंकि विप्लव की संकटपूर्ण घटनाओं और कानपुर के हत्याकांड के कारण अब अँगरेज भी काफ़ी क्रूर हो गये थे। प्रतिहिंसा की भावना के कारण प्रतिक्रिया में कठोरता होना स्वभाविक था; फिर भी लार्ड कैनिंग की करुण प्रकृति का काफ़ी प्रभाव पड़ा।

**विप्लव का परिणाम**—भारतीय स्वतन्त्रता का यह विफल युद्ध भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण और दुखद घटना है। इसके फल स्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन का अन्त हो गया और इंग्लैंड की रानी विक्टोरिया की सरकार ने भारतवर्ष के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। नवम्बर सन् १८५८ की घोषणा द्वारा भारत अँगरेजी साम्राज्य में मिला लिया गया और लार्ड केनिंग को भारतवर्ष का पहला वाइसराय बनाया गया। भारतमन्त्री भी इंग्लैंड केबिनेट का एक सचिव बनाया गया और उसकी सहायता के लिए 'इंडिया काउन्सिल' नियुक्त की गयी। कुछ वर्ष बाद रानी विक्टोरिया ने भारतवर्ष का सम्राज्ञी का पद ग्रहण किया इसके बाद भारत में आपस के युद्धों और अराजकताओं का युग समाप्त हो गया और

देश भर में शान्ति और सुशासन का ऐसा प्रबन्ध किया गया कि एक छोर से दूसरे छोर तक लड़ाई झगड़े का कहीं नाम न रहा। फिर भारतीय राज्यों के सम्बन्ध में भी इस विप्लव का ब्रिटिश नीति पर गहरा प्रभाव पड़ा। अगले सुधारों में देश के निवासियों की भावनाओं का ध्यान रखना आवश्यक हो गया। लार्ड डलहौज़ी की देशी राज्यों पर
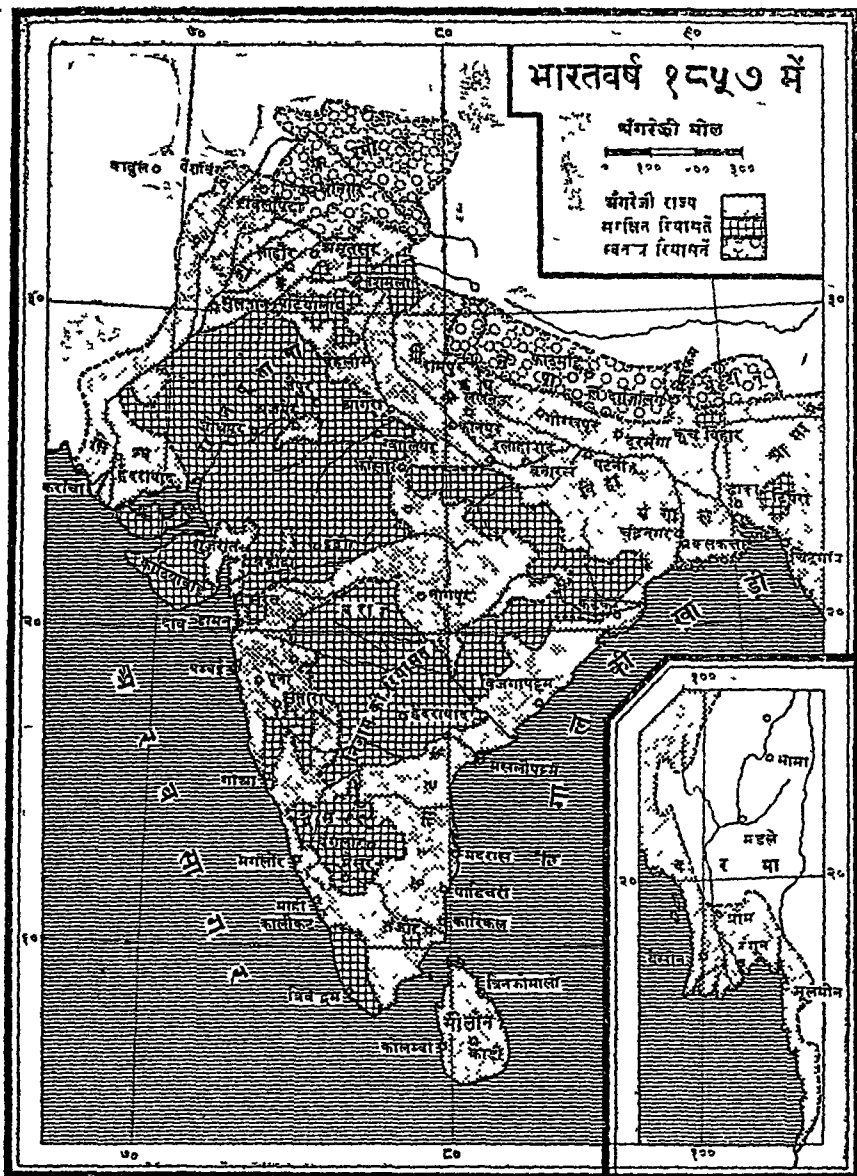
दख़ल करने की नीति का परित्याग कर दिया गया। अँगरेजी सेना की संख्या बढ़ायी गयी और तोपख़ाना बिलकुल अँगरेजी सेना के अधिकार में रखा गया तथा हथियार रखने के सम्बन्ध में कड़ा क़ानून बनाकर सारी प्रजा से हथियार छीन लिये गये।

द्वितीय अफ़ग़ान युद्ध ( १८७८-८० ई० )—सन् १८५७ ई० के बाद और उससे पहले भी भारत की अँगरेज सरकार को रूसी राज्य की योजनाओं की ओर से बराबर सन्देह रहता था। इस समय ( १८६४-६८ ई० ) तक रूसियों ने भारतवर्ष के उत्तर पश्चिमी सीमान्त के पास ताशकन्द, समरकन्द और बुख़ारा जीत कर अफ़ग़ा-निस्तान से अपनी सीमा मिला दी। इस पर रूस इंग्लैंड के बीच प्रभाव क्षेत्र बन गये और रूस ने आमू नदी को अपनी सीमा मान लिया। परन्तु रूसियों की नीति में बहुत अधिक परिवर्तन न हुआ और जब १८७८ ई० में बर्लिन की सन्धि हो रही थी रूस का एक जनरल काबुल की ओर कूच कर रहा था। काबुल में रूसी षड्यन्त्रों का फल यह हुआ कि लार्ड लिटन को दूसरा युद्ध लड़ना पड़ा। अफ़ग़ानिस्तान का अमीर शेर-अली तुर्किस्तान भाग गया और उसके बेटे नये अमीर ने एक ब्रिटिश रेज़िडेन्ट रखना स्वीकार कर लिया। अफ़ग़ानिस्तान ने अँगरेजों की बिना आज्ञा किसी युरोपीय शक्ति के साथ व्यवहार न रखना भी स्वीकार कर लिया। गन्दमक की इस सन्धि से बिलो-चिस्तान पर भी अँगरेज़ों का अधिकार हो गया; किन्तु कुछ ही महीनों में अफ़ग़ानिस्तान का रेजिडेन्ट मार डाला गया और फिर युद्ध अनिवार्य हो गया। लार्ड राबर्ट्स काबुल से कन्दहार पहुँचा। लार्ड राबर्ट्स और स्टिवर्ट दोनों अफ़ग़ानिस्तान में घिर गये थे इसलिए लार्ड लिटन ने इसी में नीतिमत्ता देखी कि याकूब ख़ाँ को नज़रबन्द कर अब्दुर्रहमान नामक एक शहजादे को अफ़ग़ानिस्तान का अमीर बनाया जाय। उसके उत्तराधिकारियों ने भी अँगरेज़ी सरकार से सम्बन्ध बनाये रक्खा। अँगरेज़ी सरकार उसे रूसी आक्रमण से बचाने के लिए सेना और धन आदि की सहायता देती रही।

अँगरेज़-रूसी सन्धि—( १९०७ ई० ) अफ़ग़ान युद्ध के कुछ काल बाद भी रूस की ओर से ब्रिटिश भारत को सन्देह बना रहा। १८६४ ई० में तो ऐसा प्रतीत होता था कि आपत्ति निकट आ रही है। १८८४ ई० में रूसी अफ़ग़ान सीमा से १६० मील पर थे और बराबर आगे बढ रहे थे। इसलिए लार्ड डफरिन ने कोइटा में अँगरेज़ी सेना जमा की, परन्तु अमीर ने रूसियों की सीमा पंजदेह तक मान ली और यों युद्ध छिड़ने की नौबत न आयी।

इस समय जर्मनी भी व्यवसाय में बहुत आगे बढ़ रहा था और अँगरेज़ों की तरह अपना साम्राज्य खड़ा करना चाहता था। उसने बर्लिन से लेकर बगदाद तक रेल बनाने की योजना सोची। तब अँगरेज़ों को जर्मनी का भय होने लगा और उन्होंने फ्रान्स और रूस से मैत्री करना तय किया। रूसियों की ओर से ईरान द्वारा भारतवर्ष पर आक्रमण होने का सन्देह हुआ था और अफ़ग़ानिस्तान की सीमा तक उनके रेल-विस्तार से यह सन्देह और बढ़ गया था। किन्तु १९०७ ई० की इंग्लैंड और रूस की सन्धि ने इस परिस्थिति को शान्त कर दिया। रूस ने स्वीकार किया कि वह अफ़ग़ानिस्तान को अपने प्रभाव क्षेत्र से परे रखेगा और वचन दिया कि अमीर काबुल से ग्रेट ब्रिटेन के द्वारा ही बातचीत करेगा। इसी सन्धि से उत्तरी ईरान पर रूस का

और दक्खिनी ईरान पर अँगरेज़ों का प्रभाव स्वीकार किया गया। उत्तरी-पूरबी सीमा पर परिस्थिति और भी सुरक्षित थी। रूस और ग्रेट-ब्रिटेन दोनों ने तिब्बत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का निर्णय कर लिया और उस पर अधिकार न करने का वचन दिया। ग्रेटब्रिटेन ने उत्तरी ईरान में रूस के विशेषाधिकार को स्वीकृत किया और रूस ने दक्खिन-पूरब में ब्रिटेन के अधिकारों को। इस प्रकार ईरान में अँगरेज़ों और रूसियों के अलग-अलग प्रभावक्षेत्र निश्चित हो गये।

भारतवर्ष के सीमान्तों का विस्तार ( १८५७ ई० के बाद )—अब तक भारतवर्ष के शासकों को देश की रक्षा के विचार से प्रायः उत्तर-पच्छिमी और उत्तर-पूरबी सीमान्तों की सुव्यवस्था का ही ध्यान रखना पड़ता था, परन्तु युरोपीयों के आने के बाद से समुद्र की ओर से भी इस देश पर आक्रमण होने का एक नया रास्ता खुल गया था। इसलिए ब्रिटिश सरकार को अब देश के सभी सीमान्तों की नाकाबन्दी करना आवश्यक होगया। भारत की रक्षा के विचार से बंगाल की खाड़ी के पूरबी तट पर एवं ईरान की खाड़ी में उत्तर-पच्छिम की ओर भी अँगरेजों ने आधिपत्य प्राप्त कर लिया था। फिर भारतवर्ष में व्यापार को सुरक्षित रखने के लिए ब्रिटेन ने ईरान की खाड़ी को समुद्री डाकुओं के उत्पात से सुरक्षित कर दिया और तट-प्रदेशों के क़बीलों और उनके सरदारों से सन्धि कर ख़ुश्की ओर से भी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध कर दिया। इसी नीति के अनुसार लाल सागर के मुहाने पर पेरिम द्वीप और अदन के बन्दरगाह पर अँगरेज़ों ने अधिकार जमा लिया और स्वेज नहर खुल जाने पर उसके अधिकांश हिस्से ख़रीद कर इस नहर के प्रबन्ध में भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। उधर विप्लव शान्त हो जाने के बाद भी अँगरेज़ी राज्य की भारतीय सीमाएँ बराबर बढ़ती रहीं। दूसरे अफ़ग़ान युद्ध में कुर्रम दून, कोइटा, पेशीन और सिबी आदि ब्रिटिश बिलोचिस्तान ( दक्खिनी पूरबी अफ़ग़ानिस्तान ) के इलाके ब्रिटिश राज्य में मिला दिये गये। फिर १८८५ ई० में बरमा के राजा के फ्रान्सीसियों और जर्मनों से सन्धियाँ करने के कारण ब्रिटिश सरकार को वहाँ भी हस्तक्षेप करना पड़ा। अँगरेज़ी बेड़े ने इरावती के रास्ते से बढ़कर उत्तरी बरमा पर दख़ल कर लिया, परन्तु वहाँ कई साल तक गोरिला युद्ध चलता रहा। धीरे-धीरे उत्तर-पच्छिम सीमान्त की भी अनेक पठान जातियाँ अँगरेज़ों की रक्षा में आ गयीं और उनके प्रदेश पर अँगरेज़ी सरकार का आधिपत्य हो गया। १८९४ ई० में अफ़ग़ानिस्तान ने भी इन क़बीलों पर अँगरेजी आधिपत्य स्वीकार कर लिया। कहा जाता है कि लूटमार और हत्या करना और मिलकर पड़ोस के मैदान पर धावा मारना इनका परम्परागत व्यवसाय है, परन्तु फिर भी इन कबीलों को अपना शासन करने के लिए काफ़ी स्वतन्त्रता दे दी गयी। कट्टर मुसलमानी फकीरों के नेतृत्व में इनके धावों को रोकने के लिए अँगरेज़ों को कई हमले करने पड़े। उनके खतरनाक आक्रमणों के कारण चितराल, तीरह, अक़ाखेल तथा मोहमन्द की लड़ाइयाँ हुईं।

**भारतवर्ष की सामाजिक उन्नति**—स्वाधीनता के इस विफल युद्ध के बाद अँगरेज नीतिज्ञों का ध्यान भारत की प्रजा की भलाई की ओर भी झुका रहा। इनमें अँगरेज़ी शासन के अधीन प्रजा के साथ साथ देशी रियासतों की उस प्रजा की भी गिनती है जिस पर अँगरेज़ी सरकार के आधिपत्य में देशी नरेशों का राज्य है। भारत-वर्ष के शासन के लिए अँगरेज़ों ने जो व्यवस्था की और उसे चलाने के लिए हाकिमों का जैसा कार्यपटु और ईमानदार दल तैयार किया उसकी समता संसार के बहुत कम देशों में मिलती है। इन कर्मचारियों ने देश भर शान्तिपूर्ण व्यवस्था स्थापित की और प्लेग और अकाल के विरुद्ध युद्ध किया। इन्होंने व्यापार की सुविधा के लिए रेलें बनवायीं, नहरें जारी कीं और पक्की सड़कों का जाल सा बिछवा दिया। फिर समृद्धि और उन्नति के विचार से देश भर में चिकित्सालयों का प्रबन्ध किया गया और शिक्षा प्रसार के लिए स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय स्थापित हुए।

**भारातीय असन्तोष**—पूरब की जागृति का प्रभाव भारत पर भी पड़ा। १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध में जापान की कायापलट हो गयी और सन् १९०५ के युद्ध में रूस पर उसकी विजय ने, सन् १९०८ ई० में तुर्कों की राज्यक्रान्ति ने तथा सन् १९१२ ई० की चीन की क्रान्ति ने भारत को भी अछूता नहीं छोड़ा। ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों को पश्चिमी शिक्षा देकर इतना जाग्रत अवश्य कर दिया कि वे अब अपने देश में अपना ही शासन चाहने लगे। उनकी ऐसी चेष्टा करना स्वभाविक ही है। इसके परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में असन्तोष बढ़ने लगा। अँगरेज़ों ने इस उत्तरोत्तर जाग्रत होने वाली भावना का अनुभव किया और भारतवासियों को वे सब बड़े-बड़े पद दिये जाने लगे जिन पर अभी तक अँगरेज़ ही नियुक्त किये जाते थे। सन् १८९२ ई० में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने 'इंडियन काउन्सिल्स ऐक्ट' पास किया जिसके अनुसार बड़े प्रान्तों की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी और उनमें आधे सभासद गैर सरकारी होने लगे। ये सदस्य वार्षिक बजट पर अपने विचार प्रकट करने लगे और उन्हें शासन सम्बन्धी प्रश्न पूछने का भी अधिकार दिया गया। लार्ड कर्जन के जमाने में बंगाल अहाते को तोड़ कर दो प्रान्त कर दिये गये। इस पर स्वदेशी आन्दोलन शुरू हुआ जिसके संचालक अब पूर्ण स्वधीनता माँगने लगे। तब इस आन्दोलन को क्रान्तिकारी और राजद्रोही बता कर इसका दमन किया गया। आख़िरकार दमन से ही काम चलता न देख कर मिन्टो मार्ले सुधारों की योजना बनी।

लार्ड कर्ज़न के बाद लार्ड मिन्टो भारतवर्ष का वाइसराय हुआ और उसके समय में स्वदेशी और ॲंगरेजी माल के बायकाट के साथ कांग्रेस में भी दो दल हो गये। इसी समय बंगाल में विप्लवकारियों ने बम से ॲंगरेज अफ़सरों को मारने की चेष्टा की। आख़िर १९०९ ई० में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने मिन्टो-मार्ले सुधार का एक कानून पास किया जिसके अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के

सदस्यों की संख्या बढ़ा कर उसमें गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्य भी बढ़ा दिये गये। अब इन सदस्यों को प्रस्ताव पेश करने, प्रश्न पूछने तथा बजट पर बहस करने का अधिकार दिया गया। शासन सभाओं में भी भारतीय सदस्य रखना तय हुआ। लंडन में भारत-मन्त्री की काउन्सिल में भी दो हिन्दुस्तानी सदस्य रक्खे गये। सन् १९१० ई० में सम्राट् एडवर्ड ७म का देहान्त हो गया और नये सम्राट् जार्ज पंचम ने भारतवर्ष में आकर अपना अभिषेक करवाया। इस समय देहली को भारतवर्ष की राजधानी बनाया गया और बंगाल के दो सूबे फिर एक कर बिहार-उड़ीसा और आसाम के नये प्रान्त बना दिये गये। फिर भी देश में अशान्ति बनी रही क्योंकि इस समय तक ब्रिटेन ने यह निश्चय न कर पाया था कि भविष्य में ब्रिटेन और हिन्दुस्तान में क्या सम्बन्ध रहेगा।

---

# अध्याय २८

## ब्रिटिश कामनवेल्थ के स्वतन्त्र उपनिवेश

### §१. डोमीनियन ऑव कनाडा

अब हम ब्रिटिश साम्राज्य-विस्तार के इतिहास के सबसे अभूतपूर्व और उज्ज्वल पहलू पर विचार करेंगे। हम देख चुके हैं कि अँगरेज़ अमेरिका, आफ्रिका और सुदूर पूरब के अनेक द्वीपों और प्रदेशों पर अपना अधिकार जमा कर वहीं बस गये और उन्होंने उन आदिम निवासियों को हटाकर उनकी भूमि पर कब्जा कर लिया तथा उनसे दासों की भाँति अपना काम कराया। शुरू में तो इन अधिकृत प्रदेशों पर इंग्लैंड के राजा की ही हुकूमत चलती रही; परन्तु समय के परिवर्तन और युरोप में स्वायत्त शासन की नयी विचार-धारा के साथ ग्रेट ब्रिटेन के सामने एक कठिन समस्या यह उपस्थित हुई कि किस प्रकार उपनिवेशों को शासन का सारा अधिकार देने पर भी उसके साथ इंग्लैंड का सम्बन्ध अविच्छिन्न रक्खा जाय? अर्थात् उपनिवेशों का मातृभूमि के साथ कैसा सम्बन्ध जोड़ा जाय कि वे ब्रिटिश राज्य की छत्रच्छाया में रहते हुए भी अपने देश के शासन में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रह सकें। उस समय में अँगरेज़ी नीतिज्ञों को तो यह दोनों लक्ष्य असंगत प्रतीत होते थे परन्तु घटनाओं ने इन्हें सम्भव कर दिया। आखिर कनाडा में यह समस्या हल हो गयी और इस पेचीदा प्रश्न का सुलझाव निकल आया।

कनाडा का पूर्व इतिहास—१५३४ ई० में जैकी कार्टियर नाम का एक फ्रान्सीसी नाविक क्वेबेक प्रान्त के निकट जा उतरा और उसने उस प्रदेश पर अपने राजा फ्रान्सिस १म के नाम पर अधिकार कर लिया। उस स्थान को वहाँ के आदिम निवासी लाल इंडियन अपनी भाषा में 'कनथ' (गाँव) कहते थे। कार्टियर ने

इस सारे प्रदेश का नाम इसी बिना पर कनाडा रख दिया। सेन्ट लारेन्स खाड़ी और मोन्ट्रियल नगर का नामकरण भी उसी ने किया। इसके बाद सन् १६०८ में एक दूसरा फ्रान्सीसी नाविक यहाँ के अधिवासियों में ईसाई धर्म का प्रचार करने और कनाडा
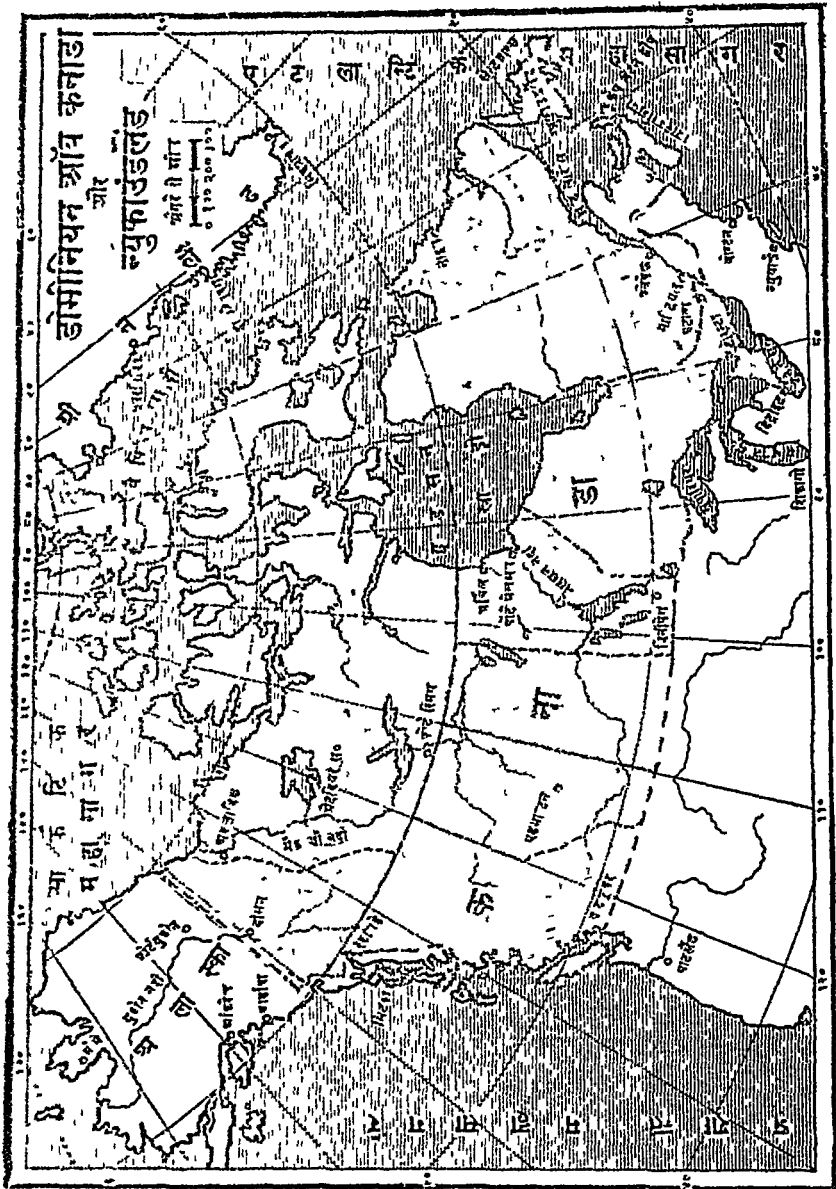
वासियों के साथ अपने देश का व्यापार बढ़ाने के निमित्त पहुँचा और उसने क्वेबेक नगर बसाया। सन् १७६३ ई० तक इस सारे प्रदेश में जो पूरब में अकादिया ( नोवा स्कोशिया ), पच्छिम में सुपीरियर झील और मिसीसिपी नन्दी के दक्खिन मेक्सिको की

खाड़ी तक फैला हुआ है, फ्रान्स अपना अधिकार जताता रहा। परन्तु इस प्रदेश पर फ्रान्स का एकाधिकार नहीं रहा और १६७० ई० में राजा चार्ल्स २य को चार्टर के अनुसार 'हडसन-बे कम्पनी' को हडसन खाड़ी में गिरने वाली नदियों द्वारा सिंचित प्रदेश पर व्यापार करने का अधिकार मिला। इसलिए उत्तरी अमेरिका पर आधिपत्य प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड और फ्रान्स में मुद्दत तक घोर युद्ध चलता रहा। आख़िर १७१३ ई० में उतरेख़्त की सन्धि से (पृ० ३२३) ब्रिटेन को नोवास्कोशिया और न्यू फ़ाउन्डलैंड मिले और सन् १७६३ की पेरिस की सन्धि से (पृ० ३५४) केप ब्रिटेन, कनाडा के अतिरिक्त मिसीसिपी के पूरब का सारा प्रदेश, केप ब्रिटेन द्वीप और सेन्ट लारेन्स नदी का तट प्राप्त हुए। अँगरेज़ों ने इन देशों में भी उसी प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित की जैसी उस समय इंग्लैंड में थी; परन्तु बरसों तक बड़ी कशमकश चलती रही। १७७४ ई० के क्यूबेक ऐक्ट (पृ० ३६०) द्वारा क्वेबेक प्रान्त में कई प्रदेश जोड़ दिये गये और वहाँ का शासन एक गवर्नर को सुपुर्द किया गया जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश पार्लियामेन्ट करती और जिसकी सहायता के लिए एक मनोनीति काउन्सिल होती थी। साथ ही कनाडा निवासी फ्रान्सीसियों को धार्मिक स्वतन्त्रता दे दी गयी और उन्हें अपने रीति-रिवाज और नियम-विधान पालन करने का पूर्ण अधिकार मिल गया। इसके बाद सन् १७६१ के एक ऐक्ट द्वारा कनाडा को उत्तरी और दक्खिनी दो भागों में विभक्त कर दिया गया। दोनों प्रान्तों में ब्रिटिश मन्त्रिमंडल द्वारा मनोनीत एक गवर्नर रहता जिसकी सलाह मशविरा के लिए एक व्यवस्थापिका सभा भी थी। इसके कुछ सदस्यों को गवर्नर नामजद करता और बाक़ी निर्वाचित होते। यह व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं थी और उस ज़माने की व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचित और मनोनीत दलों में बराबर झगड़ा होता रहता था। सन् १८१५ के बाद इस शासन व्यवस्था के प्रति असन्तोष और भी गहरा हो गया; क्योंकि इस समय की व्यवस्थापिका सभा का मन्त्रिमंडल की अर्थनीति पर कोई अधिकार न था और व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य यह अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। परिस्थिति के गम्भीर हो जाने का एक कारण और भी था। उत्तरी कनाडा में ऊँचे पदों पर कुछ प्रमुख वंशों का ही एकाधिकार था और दक्खिनी कनाडा में फ्रान्सीसी और ब्रिटिश औपनिवेशियों में निरन्तर विरोध रहता था। रानी विक्टोरिया के राज्यारोहण के वर्ष, सन् १८३७ में, इस असन्तोष ने बहुत भीषण रूप धारण किया—यहाँ तक कि जब रानी विक्टोरिया की राजगद्दी के उत्सव में ईश्वर को धन्यवाद देने की प्रार्थना गायी जाने लगी तो दक्खिनी कनाडा की बहुत सी प्रजा गिरजों में से उठ गयी। दोनों प्रान्तों में विद्रोह हुए, जो आसानी से दबा दिये गये परन्तु देश में घोर अशान्ति बनी रही और ऐसा प्रतीत होने लगा कि इंग्लैंड के लिए हर उपनिवेश आयरलैंड की भाँति कन्टक बन जायगा।

स्वशासन की स्थापना—आख़िर सन् १८३८ में लार्ड डरहम को परिस्थिति

सुधारने के निमित्त पूर्ण अधिकार देकर भेजा गया। चैथम के बाद लार्ड डरहम ही पहला अँगरेज नीतिज्ञ था जो साम्राज्य की अन्तर्निहित सम्भावनाओं को समझता था। कनाडा में काफी समय तक रहकर उसने जो रिपोर्ट प्रकाशित की वह ब्रिटिश राष्ट्र की औपनिवेशिक नीति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण प्रसंग है। इस रिपोर्ट में लार्ड डरहम ने इस बात की सिफारिश की थी कि कनाडा के दोनों प्रान्तों को एक कर दिया जाय और वहाँ की निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा को देश की शासन व्यवस्था के सब अधिकार सौंप दिये जायँ। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने कनाडा के दोनों प्रान्तों को संयुक्त कर दिया और सन् १८४१ में इनकी शासन व्यवस्था के लिए एक नया विधान बनाया। कनाडा में उत्तरदायी शासन स्थापित होने में बहुत अधिक समय नहीं लगा क्योंकि जब लार्ड एलगिन कनाडा का गवर्नर बनाया गया तो उसने वहाँ वही वैधानिक स्थिति ग्रहण कर ली, जो इंग्लैंड के राज्य में थी। अर्थात् उसने लोक सभा के बहुमत पर आश्रित मन्त्रिमंडल को देश के शासन का दायित्व सौंप दिया और केवल मन्त्रणा देने तथा संकट के समय मन्त्रियों के कामों में हस्तक्षेप करने का अधिकार अपने हाथ में रक्खा। इस प्रकार लार्ड एलगिन के सात वर्ष के शासन-काल में कनाडा में औपनिवेशिक स्वराज्य की जड़ जम गयी और शीघ्र ही अन्य उपनिवेशों ने भी उसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली।

**कनाडा में औपनिवेशिक स्वराज्य का विकास**—लार्ड डरहम की योजना के अनुसार अपर और लोअर कनाडा एक तो हो गये, परन्तु राजनीतिक मामलों का यह ऐक्य तुरन्त सफल न हो सका—यद्यपि परोक्ष रीति पर इसी के द्वारा सन् १८६७ के संघ की नींव पड़ी। इस असफलता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उत्तरी कनाडा के अधिकांश निवासी उन लोगों में से थे जो अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद संयुक्त राज्य को छोड़ कर यहाँ आ बसे थे और जो इंग्लैंड की संस्थाओं को ही सर्वश्रेष्ठ समझते थे। उधर दक्खिनी कनाडा के अधिकांश निवासी फ्रान्सीसी कनाडी में थे। फिर इन दोनों प्रान्तों की जन-संख्या में अन्तर होते हुए भी कनाडा की संयुक्त पार्लियामेन्ट में दोनों प्रान्तों को बराबर-बराबर संख्या में सदस्य भेजने का अधिकार मिला था। उत्तरी कनाडा ने शीघ्र ही उन्नति की और उसके आधार पर उसने अपने सदस्यों की संख्या बढ़ानी चाही तथा और भी सुविधाएँ माँगी; परन्तु दक्खिनी कनाडियों ने उनकी इस माँग का निरन्तर घोर विरोध किया। इस वैमनस्य के परिणाम स्वरूप व्यवस्थापिका सभा में घोर विरोध होता और प्रायः बहुत सा आवश्यक वैधानिक काम रुक जाता। सन् १८६४ में पूरब के तट प्रदेशों तथा पच्छिम और उत्तर के विशाल प्रान्तों में संघ स्थापना के पूर्व यही परिस्थिति थी। आखिर १ली जुलाई सन् १८६७ में कनाडा उपनिवेश संघ बना जिसमें ओन्टेरियो और क्वेबेक, नोवास्कोशिया और न्यू ब्रन्सविक से सम्मिलित कर दिये गये। इन पिछले दोनों प्रदेशों को सब में सम्मिलित होने में कुछ देर लगी। सन् १८७० में कनाडा ने 'हडसन बे कम्पनी' का

विशाल प्रदेश खरीद लिया और उसमें से मनिटोबा प्रान्त बनाया। एक वर्ष बाद ब्रिटिश कोलम्बिया भी संघ में मिला लिया गया। १९०५ ई० में एलबर्टा और ससकेचवान भी उपनिवेश बन गये। अब कनाडा एक संघ राज्य है जिसके हर प्रान्त में अलग-अलग व्यवस्थापिका सभाएँ हैं। कनाडा की शासन व्यवस्था इंग्लैण्ड के राजा के अधिकार में है। इंग्लैण्ड के राजा के नाम पर कनाडा का शासन-सूत्र वहाँ के गवर्नर जनरल के हाथ में है और यह गवर्नर जनरल विभिन्न विभागों के शासक-मंडल द्वारा शासन चलाता है। इस मंडल के शासनकर्ता कनाडा की कामन्स सभा के प्रति उत्तरदायी हैं। कनाडा के पार्लियामेन्ट का इजलास ऑटोवा में है और इसकी दो सभाएँ हैं जिनमें से एक को सिनेट और दूसरी को हाउस ऑव कामन्स कहते हैं। गवर्नर-जनरल अपने मन्त्रिमंडल की राय से सिनेट के सदस्यों को मनोनीत करता है। हाउस ऑव कामन्स के सदस्यों का निर्वाचन हर पाँचवें वर्ष होता है। हर प्रान्त के सदस्य उसकी जन-संख्या के अनुपात से निर्वाचित होते हैं और इनके निर्वाचन का प्रायः वही क्रम है जो इंग्लैण्ड में प्रचलित है। हर प्रान्त का एक लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर होता है जिसकी नियुक्ति गवर्नर जनरल अपनी काउन्सिल की सलाह से करता है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका से सीमा सम्बन्धी झगड़े—हम यह बतला चुके हैं कि सन् १७७५ तथा १८१२ ई० में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका कनाडा को जीतने तथा उसे ब्रिटेन से पृथक करने में असफल रहा। परन्तु बहुत से कनाडा निवासियों की धारणा है कि अँगरेज़ों की दुर्बलता के कारण ही कनाडा की सीमाओं की काट-छाँट होती रही है। इन सीमाओं के विषय में तीन बार महत्वपूर्ण झगड़े हुए। पहला झगड़ा पूरब के सीमान्त के विषय में हुआ और १८४२ ई० की एशबर्टन सन्धि द्वारा न्यूब्रन्सविक और क्वेबेक के बीच एक पट्टी पर संयुक्त राष्ट्र का अधिकार स्वीकृत किया गया। दूसरा झगड़ा सुदूर पच्छिम की सीमा से सम्बन्ध रखता है जिसके कारण १८४६ ई० की सन्धि द्वारा संयुक्त राष्ट्रों को औरगन प्रदेश मिला तथा कोलम्बिया और वेनकूवर अँगरेज़ों के अधिकार में रहे। तीसरे झगड़े का सम्बन्ध अलास्का की सीमा से था। इसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने रूस से खरीद लिया था। सन् ११०३ ई० में इस विषय में मध्यस्थता की शरण ली गयी और निर्णय अमेरिका के पक्ष में हुआ। इसके अनुसार यूकान प्रदेश का पार्श्ववर्ती समुद्र और यह प्रदेश संयुक्त राष्ट्र अमेरिका को मिल गये। यहाँ सोने की खानें मिली हैं।

## § २—डोमीनियन ऑव न्युफ़ाउन्डलैण्ड

पुराना इतिहास—उत्तरी अमेरिका में सेन्ट लारेन्स की खाड़ी के मुहाने पर जो त्रिभुजाकार द्वीप है वही न्यूफ़ाउन्डलैंड कहलाता है। यहाँ के आदिम निवासियों के सम्बन्ध में बहुत अधिक हाल नहीं मालूम हो सका है। यह लोग कद में खूब लम्बे और गोरे रंग के थे। जंगली जानवरों और विशेष रूप से मछलियों का शिकार करते

थे और लाल गेरू से अपना शरीर पोतते थे। पत्थर के कुल्हाड़े, लकड़ी के बर्तन और अभरक का इस्तेमाल करते थे।

सन् १४९७ ई० में, कदाचित् हेनरी सप्तम के शासनकाल में जॉन के बोट ने न्यूफ़ाउंडलैंड की खोज की थी। सन् १५०० में एक पुर्तगाली नाविक इधर आ निकला और उसके साल दो साल बाद ही से यहाँ पुर्तगालियों और फ्रान्सीसियों ने मछली का शिकार करना शुरू कर मछलियों का व्यापार स्थापित कर दिया। १५७८ ई० में प्रायः ४०० जहाज इस व्यापार में लगे थे और इनमें से ५० ॲंगरेजों के थे। सन् १५५८ ई० में सर हम्फ्रे गिलबर्ट ने रानी एलिजबेथ की ओर से इस पर अधिकार किया परन्तु जब वह लौट कर इंग्लैंड जा रहा था तो तूफान में फँस कर डूब गया। १७वीं १८वीं शतियों में ॲंगरेज और फ्रान्सीसी दोनों वहाँ बसने लगे और उनमें मछलियाँ पकड़ने के प्रदेश के अधिकार के लिए बराबर लड़ाइयाँ होती रहीं। सन् १७१३ ई० में उत्तरेख्त की सन्धि के अनुसार फ्रान्स ने अपने राजनीतिक अधिकारों को छोड़ दिया, यद्यपि उनके मछली मारने के कुछ अधिकार बने रहे। न्युफाउंडलैंड का प्रधान व्यापार मछली का है। इसी पर ॲंगरेज़ों और फ्रान्सीसियों में झगड़ा होता रहा है। १९०४ ई० के समझौते में कुछ धन और प्रदेश लेकर फ्रान्स ने उत्तरेख्त की सन्धि द्वारा प्राप्त विशेषाधिकारों को छोड़ दिया परन्तु मछलियाँ पकड़ने की ऋतु में सन्धि के अनुसार अपने-अपने समुद्र-क्षेत्र में ॲंगरेज़ों और फ्रान्सीसियों के मछली पकड़ने के अधिकार समान रहे परन्तु इधर फ्रान्स से समझौता हुआ ही था कि युनाइटेड स्टेट्स से झगड़ा छिड़ गया जो हेग की पंचायत में तय हुआ। इस उपनिवेश के चारों ओर के समुद्र में काड, हैरिंग और सालमन किस्म की बड़ी उपयोगी मछलियाँ खूब पायी जाती हैं। सील मछली के काँटे और उसकी खाल का खूब व्यापार होता है इनकी खालें इंग्लैंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका भेजी जाती हैं और चर्बी से सील का तेल निकालते हैं जो जलाने, मशीनों के ओंघने तथा साबुन बनाने के काम में आता है।

सन् १८५५ ई० में न्युफाउंडलैंड को स्वराज्य मिला। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा मनोनीति शासन समिति तथा प्रजा द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिका सभा की सहायता से यहाँ का शासन चलने लगा। यहाँ की व्यवस्था ब्रिटिश मन्त्रिमंडल द्वारा नियुक्त किये जाने वाले एक गवर्नर के अधीन है।

### §३. कॉमनवेल्थ ऑव आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड

आस्ट्रेलिया में प्रारम्भिक युरोपीय बस्तियाँ—आस्ट्रेलिया पृथ्वी के धरातल पर सब से बड़ा द्वीप है। यह क्षेत्रफल में युरोप का तीन चौथाई और ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड का २५ गुना है। यहाँ के आदिम निवासी न तो मलय थे और न ही हब्शी। इनका रंग भी बिलकुल काला नहीं था। वे तो न बुनना ही जानते थे और

न बरतन बनाना। उनके घर भी घास-फूस के बनते थे। आस्ट्रेलिया में युरोपीय पहले-पहल कब पहुँचे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। १६०६ ई० में एक स्पेनी नाविक डिटोरी उस खाड़ी में होकर पहली बार आस्ट्रेलिया के तट पर पहुँचा जो अब १८वीं शती के अन्त से उसके नाम से प्रसिद्ध है। कोलम्बस की भाँति उसे भी गुमान न था कि वह इतने बड़े प्रदेश की खोज करने वाला पहला युरोपीय है। उसी शती में डच सैनिकों ने आस्ट्रेलिया का पच्छिमी तट खोज निकाला और तसमानियाँ का पता लगाया। १७वीं शती के अन्त में एक अँगरेज़ समुद्री डाकू कप्तान डेम्पियर भी वहाँ जा पहुँचा। परन्तु सन् १७७० में कप्तान डेम्पियर द्वारा आस्ट्रेलिया का विस्तृत और उपजाऊ पूरबी तट प्रदेश और न्यूज़ीलैंड खोजने के पहले तक आस्ट्रेलिया के महत्व का किसी युरोपीय शक्ति को अनुमान नहीं था।

जेम्स कुक यार्कशायर के एक साधारण कृषक कुल में उत्पन्न हुआ था। बहुत साधारण शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसने ह्विटबी जहाज कम्पनी में नौकरी कर ली और कई साल बाद उसने सरकारी नौ सेना में न्यूफाउंडलैंड और सेन्ट लारेन्स की खाड़ी की पैमाइश के काम से बड़ी ख्याति प्राप्त की। १७६८ ई० में शुक्र तारे के राशि-प्रवेश को निरीक्षण करने वाले ज्योतिषियों को वहाँ पहुँचा देने के लिए आदेश मिलने पर उसने इधर की यात्रा की। प्रशान्त महासागर के बीचोबीच टहिटी द्वीप में पहुँच कर यह कार्य सम्पादित हुआ और कुक अपना जहाज़ लेकर इंग्लैंड को लौटने लगा तो उसने पहले-पहल न्यूजीलैंड की परिक्रमा लगायी और उसके चारों ओर के समुद्र तट का नक़शा बना लिया। इसके बाद आस्ट्रेलिया के पूरबी तट पर पहुँच उसने ग्रेट ब्रिटेन के नाम उस पर अधिकार कर लिया। उसका जहाज़ आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी के बीच की खाड़ी में होकर गुजरता हुआ जावा पहुँचा और वहाँ से गुडहोप अन्तरीप के रास्ते इंग्लैंड। सन् १७८८ में एक अँगरेज़ी सैन्यदल पोर्ट जैक्सन (सिडनी) पहुँचा और गवर्नर फ़िलिप द्वारा न्यूसाउथ वेल्स के उपनिवेश की नींव डाली गयी। इस समय संगीन जुर्म करने वाले अपराधी अँगरेज सिडनी भेजे जाते थे इसलिए उनकी कड़ी देख रेख होती थी। उस समय का दंड विधान बड़ा कठोर था और प्रायः साधारण दोषों के लिये भी देश-निकाले का दंड दिया जाता था। इसी प्रकार उस समय के वे राजनीतिज्ञ जिनके विचार उस समय की गवर्नमेन्ट की दृष्टि में उग्र और क्रान्तिकारी होते; यहाँ भेज दिये जाते थे। परन्तु कुछ समय बाद इन प्रदेशों की खोज करने और नये-नये उपनिवेश बनाने के विचार से ग्रेट ब्रिटेन से इतने अधिक लोग यहाँ आने लगे कि उनके सामने इन अपराधियों की कोई गिनती न रह गयी। इसी समय जॉन मैकार्थर ने इस बात का अनुभव किया कि इस प्रदेश की जलवायु ऊन के व्यवसाय के लिए बड़ी उपयुक्त होगी। इसलिए १७६७ ई० में उसने कैम्प में थोड़ी सी मेरिनो भेड़ें खरीदीं और उनके गल्ले रखने लगा। यह भेड़ें

स्पेन के बादशाह ने डच सरकार को भेंट स्वरूप भेजी थीं। इस प्रकार मैकार्थर अपने अध्यवसाय के कारण आस्ट्रेलिया के संसार-प्रसिद्ध ऊन व्यवसाय को स्थापित करने वाला पथ-प्रदर्शक हुआ। कुछ ही बरसों के साहसपूर्ण अध्यवसाय का परिणाम यह
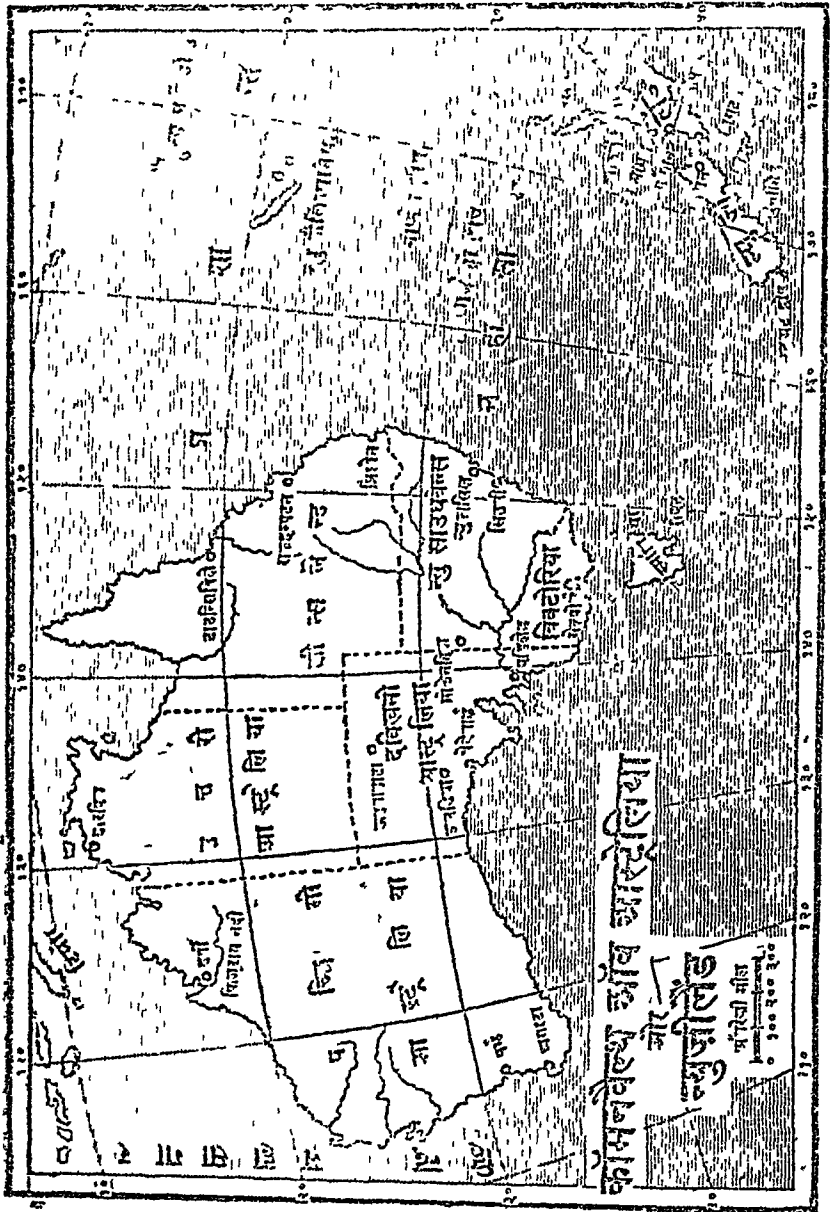
हुआ कि आस्ट्रेलिया में बड़ी बढ़िया मेरिनो ऊन तैयार होने लगी और यही आस्ट्रेलिया का प्रमुख व्यवसाय बन गया। इसी समय न्युसाउथ वेल्स के तट पर पत्थर का

कोयला भी निकल आया और दक्खिनी आस्ट्रेलिया में ताँबे की खानें प्राप्त हुईं। सन् १८१०-१२ में ब्ल्यू पर्वत पार कर पच्छिम के मैदान और मैक्वारी और लाकलान नदियों की घाटियों में भी बस्तियाँ बसने लगीं और भेड़ों के चरागाह और खेत और अनन्नास के बगीचे लगने लगे। १८५१ ई० में सोने की खानें मिलीं और उनके कारण तो सारे देश की एक प्रकार से कायापलट हो गयी। क्योंकि अब नये नये नगर बसे और इनके निवासियों के खाने के लिए चरागाहों के बीच-बीच खेती भी प्रारम्भ हुई। इस नये परिवर्तन से खेती करने वालों और भेड़ों के गल्ले रखने वालों में खूब तनातनी रहने लगी क्योंकि चरागाहों की सबसे अच्छी भूमि ही खेती के लिए भी परमोपयोगी थी। यह झगड़ा बढ़ते-बढ़ते यहाँ के राजनीतिक क्षेत्र तक जा पहुँचा और दोनों दलों को बड़ी आर्थिक हानि उठाकर यह समझ पड़ा कि खेती करने के उन्नत तरीकों को व्यवहार में लाने और कुछ आगे की सोचने से ही सूखा पड़ने की मुसीबत को कम किया जा सकेगा।

अब सोना निकालने की चेष्टाएँ बड़ा ज़ोर पकड़ रही थीं और इसीलिए इस बड़े द्वीप के अन्वेषण का कार्य बहुत शिथिल हो गया। आख़िर १८६२ ई० में दक्खिन से उत्तर पोर्ट डारविन तक एक नया रास्ता खुल गया। इस द्वीप में कभी किसी दूसरी युरोपीय शक्ति ने हस्तक्षेप नहीं किया इसलिए अँगरेज़ ही यहाँ बराबर सर्वेसर्वा रहे और यहाँ जो छोटी-मोटी लड़ाइयाँ हुईं वह इन्हीं नये बसने वाले अँगरेजों में होती रहीं।

आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों मे स्वराज्य—धीरे-धीरे न्युसाउथ वेल्स के मूल प्रदेशों में से अन्य उपनिवेश बन गये। तस्मानिया में पहली बस्ती १८०३ ई० में बसायी गयी और १८२५ ई० में एक लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर के शासन में यह एक अलग उपनिवेश बन गया। १८२९ ई० में न्युसाउथ वेल्स का पच्छिमी सीमान्त प्रदेश पच्छिमी आस्ट्रेलिया नाम का उपनिवेश बन गया। इसके बाद १८३६ ई० में दक्खिनी आस्ट्रेलिया उपनिवेश की स्थापना विलियम ४थ के राज्यकाल में हुई और एडिलेड इसकी राजधानी बनाया गया।

इसके बाद सन् १८५१ में मरे के दक्खिन का प्रदेश न्युसाउथ वेल्स से अलग कर दिया गया और उसका नाम रानी विक्टोरिया उपनिवेश रखा गया। १८५९ ई० में इसी प्रकार क्वीन्सलैण्ड उपनिवेश का निर्माण हुआ। १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में न्युसाउथ वेल्स और विक्टोरिया में सोने की खानें निकल आयीं। इससे यहाँ बसने के लिये हजारों लोग आने लगे। शीघ्र ही सब बस्तियों को स्वराज्य मिल गया। इस प्रकार १८६३ ई० में तस्मानिया को छोड़ कर सारा आस्ट्रेलिया पाँच प्रमुख उपनिवेशों में बँटा हुआ था। हर उपनिवेशों की राजधानियाँ समुद्र तट पर एक-एक प्रसिद्ध बन्दर गाह रहीं और इन सब में अपने-अपने उपनिवेश के व्यापार की उन्नति के लिये एक प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा चलती रहती थी। इधर चूँकि दक्खिनी आस्ट्रेलिया और विक्टोरिया की बस्तियों में कोई अपराधी नहीं बसा था इसलिए इन दोनों उपनिवेशों के

निवासी अपने को ऊँचा और अन्य चार पड़ोस के उपनिवेश निवासियों को हेठा समझते थे। दूसरे विक्टोरिया और दक्खिनी आस्ट्रेलिया निवासी खुले व्यापार के पक्ष में नहीं थे और न्युसाउथ वेल्स तथा क्वीन्सलैंड वाले इसके पक्ष में थे, इसलिए भी इनमें काफी चख रहती थी। आखिर १८८० ई० के करीब चीनियों के अधिवास के कारण नयी समस्याएँ उपस्थित हो गयीं; न्युकैलिडोनिया की अपराधियों की बस्ती पर फ्रान्सीसियों से झगड़ा हो गया, और क्वीन्सलैंड उपनिवेश के पूरबी न्युगिनी पर अधिकार कर लेने पर जर्मनी से भी तनातनी हो गयी। तब आस्ट्रेलिया के इन उपनिवेशों को अपनी निर्बलता और असहाय स्थिति का भान हुआ और उस समय से इनमें एकता प्राप्त करने की लहर जाग्रत हो गयी। आख़िर २० वर्ष के निरन्तर उद्योग के बाद १६०० ई० में एक संघ स्थापित हुआ जिसका नाम 'कामनवैल्थ ऑव आस्ट्रेलिया' हुआ।

अब आस्ट्रेलिया का शासन इंग्लैंड के राज्य द्वारा नियुक्त एक गवर्नरजनरल के अधिकार में है जो सिनेट और हाउस ऑव रेप्रेजेन्टेटिव्स नाम की पार्लियामेन्ट सभाओं की सहायता से शासन-कार्य चलाता है।

## § ४—न्यूज़ीलैंड उपनिवेश

न्यूज़ीलैंड उपनिवेश में दो बड़े-बड़े (उत्तरी और दक्खिनी) द्वीप और कई छोटे छोटे द्वीप शामिल हैं। आस्ट्रेलिया के पच्छिम और उत्तर-पच्छिम में १२०० मील चौड़ा तस्मान समुद्र इन द्वीपों को आस्ट्रेलिया से अलग करता है। १६वीं शती में ब्रिटिश व्यापारी तथा ह्वेल और सील पकड़ने वाले मछुए जब न्युज़ीलैंड के तट-प्रदेशों पर बसने लगे तो उस समय दक्खिनी द्वीपों में बहुत कम मनुष्य रहते थे और उत्तरी द्वीप में माउरी नाम के आदिम निवासियों की बस्तियाँ थीं। सम्भवतः माउरी कुक द्वीप से यहाँ भाग आये और यहीं बस गये थे। इस प्रदेश में उस समय कोई चौपाया नहीं था और न अनाज ही उत्पन्न होता था। माउरी अपने साथ काला मूस और एक प्रकार का कुत्ता लाये थे। ये दोनों जीव अब लुप्त हो चुके हैं। टारो और शकरकन्द भी उन्हीं की लायी हुई तरकारियाँ हैं।

ग्रेट ब्रिटेन ने सन् १८४० में न्युज़ीलैंड के दोनों द्वीपों को अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। शुरू-शुरू में यहाँ के मूल-निवासियों से खूब युद्ध हुए; परन्तु आखिर अँगरेज और ये दोनों इन प्रदेशों में रह कर ऐसे घुल मिल गये कि अब माउरी और अँगरेज़ निवासियों में बहुत कम अन्तर दिखायी देता है। माउरी अँगरेजी बोलते और अँगरेज़ी पहनावा पहनते हैं। अभी तक अँगरेज स्त्रियाँ माउरियों से विवाह नहीं करतीं, परन्तु माउरी स्त्रियों के साथ अनेक अँगरेज़ों ने विवाह कर लिये हैं और यह मिश्रित जाति सारे द्वीप में बसी हुई है। १८५५ ई० में इन प्रदेशों को स्वायत्त शासन का अधिकार प्राप्त हुआ और १६०७ ई० में न्यूज़ीलैण्ड को औपनि-

वेशिक स्वाराज्य मिल गया। यहाँ का शासन भी इंग्लैंड के राज्य द्वारा नियुक्त किये हुए एक गवर्नर-जनरल के हाथ में है जो दो पार्लियामेन्टरी सभाओं की सहायता से देश की व्यवस्था करता है।

## § ५—यूनियन ऑव साउथ आफ्रिका

प्रारम्भिक इतिहास—हम देख चुके हैं कि ध्रुव-दर्शक यन्त्र की ईजाद हो जाने से यूरोपीय नाविक किस प्रकार समुद्र में दूर-दूर जाने का साहस करने लगे थे। फिर मार्को पोलो और इब्नबतूता आदि विख्यात यात्रियों की यात्राओं के रोमांचकारी वर्णनों ने किस प्रकार युरोप के लोगों में एक विशेष कुतूहल उत्पन्न कर दिया था। इस समय स्पेन और पोर्तुगल देश बड़ी उन्नति पर थे। पोर्तुगल के एक राजकुमार ने तो दिक्सूचक और नक़्शों के प्रयोग से आफ्रिका के पच्छिम किनारे से धुर दक्खिन जाकर इस महाद्वीप की परिक्रमा करने की योजना पेश की थी। आख़िर पोर्तुगल के चतुर नाविक आफ्रिका के पच्छिमी तट पर हर वर्ष आगे बढते गये; यहाँ तक कि उनमें से एक दियाज़ धुर दक्खिन जाते-जाते एक ऐसी अन्तरीप के पास पहुँचा जहाँ तूफान और आँधी के कारण उसे १५ दिन तक खुले समुद्र में भटकना पड़ा। उसने इस अन्तरीप का नाम 'तूफानी अन्तरीप' रखा; पर पोर्तुगल के राजा ने उसे 'आशा अन्तरीप' कहा। इसके बाद ही पोर्तुगल निवासी वास्को डि गामा ने इस 'आशा अन्तरीप' को घूमकर उत्तर पूरब का रास्ता पकड़ा और आफ्रिका के पूरबी तट से होता हुआ आख़िर २५ मई, सन् १४९८ ई० को भारत के तट पर जा पहुँचा। अब तो युरोपीय यात्रियों के दल के दल यात्राओं के लिए टूट पड़े और जैसा हम देख चुके हैं आफ्रिका का 'चिप्पे-चिप्पे' भर भूमि के लिए नोच-खसोट करने लगे।

आशा अन्तरीप होकर भारतवर्ष जाने का रास्ता निकल आने से अब वेनिस की जगह पूरब के व्यापार के लिए युरोप के पच्छिमी प्रदेश अधिक महत्वपूर्ण हो गये और चूँकि सुदूर पूरब के देशों को जाने के लिए यह अन्तरीप बड़ा अच्छा नाक है इसलिए डच लोगों ने १६५२ ई० में इसे अपने पूरबी साम्राज्य का केन्द्र-स्थान बना दिया और इसी वर्ष उन्होंने दक्खिनी आफ्रिका में 'कैप कॉलोनी' या अन्तरीप उपनिवेश नाम की पहली युरोपीय बस्ती बसायी। इस समय होटेन्टोट बान्तू नाम की हब्शी जातियाँ इन प्रदेशों में बसी हुई थीं। इस अन्तरीप प्रदेश के इतिहास में यह बात बड़े मार्के की है कि पुर्तगालियों ने इसे सब से पहले खोज निकाला, डच लोगों ने यहाँ सबसे पहले युरोपीय बस्तियाँ बसायीं और अँगरेज़ों ने १८१४ ई० में इस पर अधिकार कर लिया। १७वीं शती में फ्रान्स से भागे हुए ह्युजिनो लोग यहाँ आ बसे और १८वीं शती के अन्त में जब फ्रान्स ने हालैंड पर कब्जा किया तो ब्रिटेन ने इस उपनिवेश पर अधिकार कर लिया और डच ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य का अन्त कर दिया। परन्तु १८०२ ई० में आमियाँ की सन्धि होने पर इसे छोड़ दिया। आख़िर १८१४ ई० में अँगरेज़ों ने इसे मोल ले लिया। डच या ओलन्देज़ों के

ज़माने में इसकी काफी उन्नति हुई—कृषि के लिए फसलें बोयी और बग़ीचे लगाये जाने लगे, परन्तु चेचक की बीमारी के कारण यहाँ की युरोपीय जनसंख्या अधिक न बढ़ सकी।

१९वीं शती में इस प्रदेश के इतिहास की प्रमुख घटना है यहाँ की जातियों का संघर्ष जिसमें कालों और गोरों, गोरों और कालों तथा कालों और कालों में खूब लड़ाइयाँ होती रहीं। सन् १८१२ से लेकर १८७७ ई० तक इस प्रदेश के पूरबी सीमान्त पर ६५ वर्ष में विभिन्न अवसरों पर काफिरों से ६ युद्ध हुए जिनमें ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की अनिश्चित नीति के कारण नये बसने वालों की बड़ी हानि पहुँची—यद्यपि उपनिवेश का विस्तार बढता ही गया।

इस समय जब पूरबी प्रदेशों में काले गोरों में घोर युद्ध छिड़ा हुआ था, पच्छिम की गोरी जातियाँ भी आपस में मारकाट पर तुली हुई थीं। १८१५ ई० के बाद दक्खिनी आफ्रिका के इतिहास को भली-भाँति समझने के लिए यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि हालैंड की तरह ग्रेट ब्रिटेन भी बहुत बरसों तक गुडहोप अन्तरीप को केवल भारत जानेवाले जहाज़ों के लिए ठहरने, कोयला-पानी गोश्त और तरकारी लेने तथा बीमारों की दवादारू कराने की सुविधा की जगह समझता रहा। इस समय ब्रिटेन आफ्रिका के दक्खिनी तट पर अपना एकाधिकार रखने पर तुला हुआ था; किन्तु महाद्वीप के अन्दर राज्य-विस्तार कर अपने उत्तरदायित्व को बढ़ाने का इच्छुक न था। उधर डच लोगों में जो बोअर कहलाते हैं अपनी नयी बस्तियाँ बसाने के बाद से कोई परिवर्तन नहीं आया था। १७वीं शती के प्यूरिटनों की भाँति उन पर बाइबिल के प्राचीन सिद्धान्तों का ही प्रभाव अधिक था। उनमें प्रबल आत्म-विश्वास था इसलिए वे अपने कार्यों को सदा ठीक समझते थे और उनका विश्वास था कि उनके समस्त निर्णयों में ईश्वर का हाथ है। यह लोग बड़े कट्टरपन्थी और स्वाधीन प्रकृति के थे, जो न केवल अँगरेज गवर्नरों की धाँधलियों से परेशान थे, बल्कि हजारों मील दूर बैठे हुए पार्लियामेन्ट के सदस्यों की अज्ञानता और उपयोगी सुधारों तक से हैरान होकर तंग आ गये थे। बोअर किसान बड़े खरे और ज़िद्दी स्वभाव के परन्तु सादा मिज़ाज के थे, जो हर नयी बात को सन्देह की दृष्टि से देखते तथा अपने अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में सदा सतर्क रहते थे। इसलिए १९वीं शती के अँगरेज़ों के प्रगतिशील विचारों, सरल सहानुभूतियों और अज्ञानता-पूर्ण भावुकताओं से उनका कोई मेल न खाता। और चूँकि अँगरेज़ों के राज्य में अब आदिम निवासियों के साथ भलमनसाहत का बर्ताव होने लगा, गुलामों को स्वतन्त्रता मिल जाने के कारण उनके मालिकों का बहुत नुकसान हुआ और सारे प्रदेश में अँगरेज़ी भाषा को राजकीय भाषा बना दिया गया, इसलिए इन सब बातों से डच लोगों में अशान्ति और असन्तोष की ऐसी लहर दौड़ गयी कि सन् १८६५ ई० में उन्होंने विद्रोह कर दिया।

गुलामी की प्रथा का अन्त ( १८३३ ई० )—आफ्रिका के निवासियों के साथ कैसा व्यवहार हो इस प्रश्न पर बोअरों और ब्रिटनों में पहले-पहल झगड़ा हुआ। हम पढ़ चुके हैं कि १६वीं शती में ब्रिटेन में मनुष्योचित सद्भावनाओं का उदय हुआ
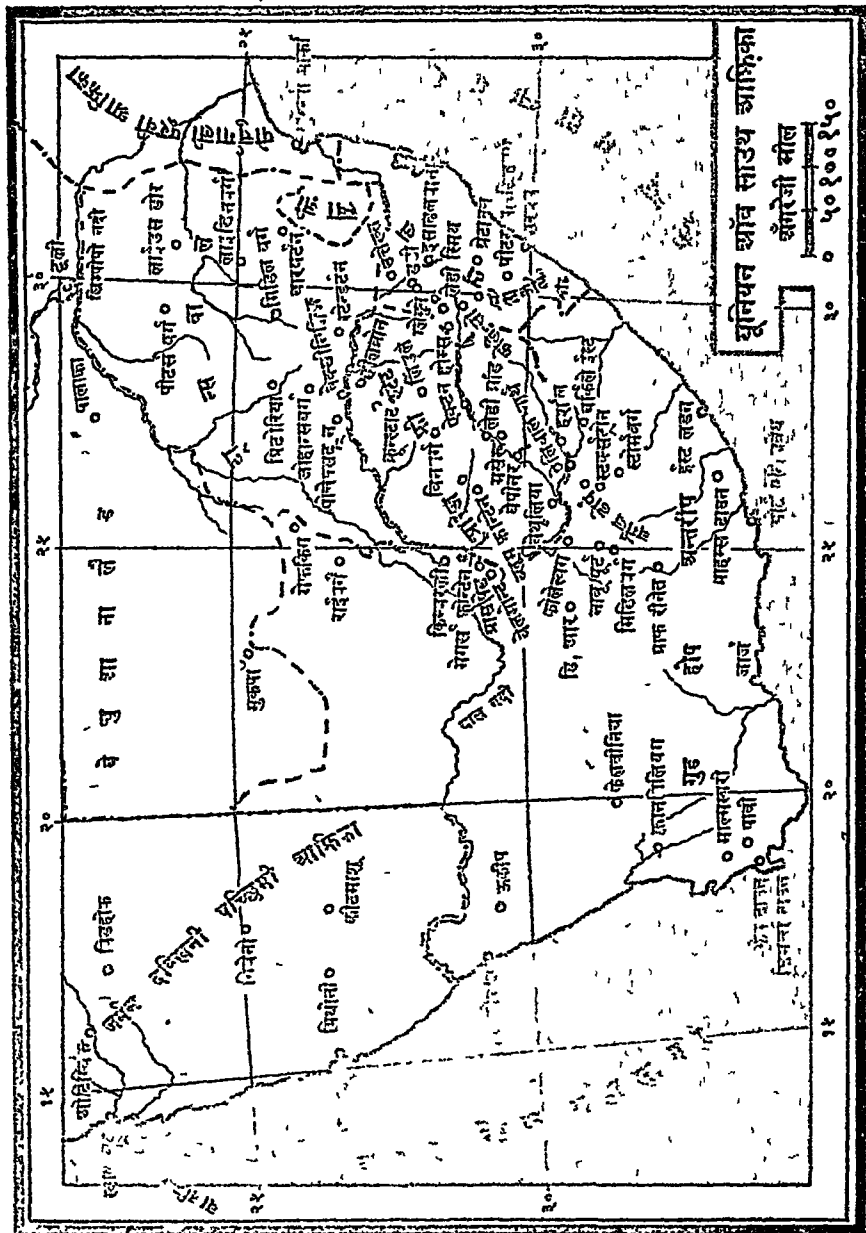
और वहाँ के निवासी सब मनुष्यों को समान ही नहीं समझने लगे बल्कि उत्पीड़ित और पतित जातियों की ओर उन्हें स्वाभाविक सम्वेदना और सहानुभूति उत्पन्न हो गयी। इसलिए गोरी और काली जातियों के सम्बन्ध पर भी इसका प्रभाव पड़ना स्वा-

भाविक था। धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश अधिकृत प्रदेशों में गुलामी की प्रथा का जारी रहना असम्भव हो जायगा। १८०७ ई० में ग्रेट-ब्रिटेन में विल्बरफोर्स के प्रमाण से गुलामों के व्यापार का निषेध कर दिया गया। सन् १८१४ में वियना की कॉंग्रेस में उसने अन्य देशों को भी ब्रिटेन के उदाहरण का अनुकरण करने के लिए राजी कर लिया और सन् १८३३ में ब्रिटिश उपनिवेशों में भी गुलामी की प्रथा बन्द कर दी गयी। वेस्ट इंडीज द्वीपों में बसने वाले अँगरेज़ (प्लान्टरो) खेती कराने वालों पर इस विधान का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। अब तक वे ईख के खेतों पर काम करने के लिए आफ्रिका से पकड़ कर ले गये हुए गुलामों पर निर्भर थे; क्योंकि १९वीं शती के आरम्भ होते होते ये सब बस्तियाँ हब्शी गुलामों से भरी पड़ी थीं और वहाँ युरोपीय मज़दूर भी काम की तलाश में काफी पहुँच चुके थे। गुलामी रोकने के कानून बनने से इन लोगों को बड़ी कठिनाई हो गयी, इसलिए इनकी हानि पूरी करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने २ करोड़ पौंड हरजाना देना स्वीकार किया। साथ ही साथ यह भी तय हुआ कि गुलामों को कुछ वर्षों तक अपने पुराने स्वामियों के यहाँ उम्मेदवारों के समान रहना पड़ेगा। परन्तु यह व्यवस्था असफल रही और १८३८ ई० में गुलामों को पूर्ण स्वतन्त्रता मिल गयी। हब्शियों को स्वतन्त्रता मिल जाने के कारण अब उन्होंने ईख के खेतों पर काम करना बन्द कर दिया और खेती कराने वाले युरोपीयों को अब मजदूर मिलने असम्भव हो गए और उनकी खेती को बड़ी हानि होने लगी। उधर हब्शियों ने ठेके पर आने वाले भारतीय कुलियों की आमद रोकनी चाही, बिना लगान के भूमि प्राप्त करने की माँग पेश की तथा युरोपीयों को मार भगाने की भी धमकी दी। आखिर १८६५ ई० में उन्होंने बलवा कर दिया। जमैका के गवर्नर ने मार्शल लॉ जारी कर दिया और बड़ी सख्ती से विप्लवकारियों को कुचल दिया। इस तथा अन्य प्रश्नों पर जमैका के खेती कराने वाले युरोपीयों और ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल में यहाँ तक झगड़ा बढ़ा कि १८३९ ई० में 'जमैका' का शासन-विधान स्थगित कर देना पड़ा।

अन्तरीप उपनिवेश में हब्शियों का प्रश्न—अन्तरीप उपनिवेशों में डच भी गुलामों से खेती कराते थे। ये लोग प्रायः मलाया या आफ्रिका से आये थे। १८३३ ई० के विधान का प्रभाव उन पर भी पड़ा। यद्यपि उन्हें हरजाने का रुपया भी मिला। किन्तु गुलामों के मूल्य का केवल एक तिहाई। इससे भी अधिक नाराजगी उनको इस बात से हुई कि १८२८ ई० में केप कॉलोनी के मूल निवासियों को वही राजनीतिक अधिकार दे दिये गये थे जो युरोपीयों के थे। बोअर लोग मूल निवासियों को नीच समझते थे, और उनकी धारणा थी कि ये जातियाँ सदा गोरी जातियों की सेवा के ही लिए हैं। फिर इनकी संख्या भी आफ्रिका में बसी हुई युरोपीय जातियों से कम से कम दस गुनी अधिक थी और ये अपने गोरे स्वामियों से लड़ती झगड़ती भी रहती थीं तथा उनके लिए एक कठिन समस्या बन गयी थीं। बोअरों का व्यवहार भी

उनके साथ अच्छा न था और उन्हें सदा उनकी ओर से आशंका रहती थी। इधर ग्रेट-ब्रिटेन के लोग समझते थे कि ये मूल निवासी शान्तिप्रिय लोग हैं जिन पर बोअरों ने बड़े अत्याचार किये हैं। इस धारणा का कारण थी दक्खिनी आफ्रिका के मिशनरियों की रिपोर्टें।

देश परित्याग या दि ग्रेट ट्रेक—( १८३६ ई० )—अँगरेज और बोअरों के दृष्टिकोण के इस अन्तर का परिणाम यह हुआ कि १८३६ ई० में बोअरों की एक बहुत बड़ी संख्या स्त्री-बच्चों, और साज सामीन सहित बैलगाड़ियों पर बैठ कर केप कॉलोनी छोड़ कर उत्तर की ओर आरेञ्ज नदी के उस पार और किसी शान्त प्रदेश की खोज में चल दी और उस प्रदेश में जा बसी जिसे अब नैटाल और ट्रान्सवाल कहा जाता है। इस पर वहाँ बोअरों और नैटाल निवासियों में कई बरस तक लड़ाई छिड़ी रही। दस वर्ष में कम से कम १० हज़ार बोअर ब्रिटिश प्रदेशों को छोड कर चले गये और उत्तर-पच्छिम के पहाड़ों के पार नैटाल जा पहुँचे। इन लोगों ने नैटाल ट्रान्सवाल और आरेञ्ज फ्री स्टेट नाम के प्रजातन्त्र राज्य स्थापित कर लिये; किन्तु जब बोअर नैटालियों को हराने के बाद उस प्रदेश के स्वामी बन गये और समुद्रतट पर पहुँचे तो ब्रिटिश गवर्नमेन्ट सशंकित हो उठी और केप कॉलोनी के गवर्नर ने सेना भेज कर अन्तर्देश और नैटाल बन्दर पर अधिकार करना चाहा; परन्तु काफिरों के आक्रमण के कारण यह सेना वापिस बुला ली गयी। इस पर बोअरों ने नैटाल को प्रजातन्त्र राज्य घोषित कर दिया। तब दो अँगरेज़ी जंगी जहाजों ने डरबन के बन्दरगाह को जा घेरा। बोअर लड़ते-लड़ते पीटरमारिज-बर्ग तक पीछे हट गये। अब शान्ति की बात चीत होने लगी और बोअरों ने ब्रिटिश आधिपत्य में नैटाल में बसना स्वीकार कर लिया। इस तरह नैटाल ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया ( १८४३ ई० ) और अगले वर्ष केप ऑव गुडहोप भी कालोनी में सम्मिलित हो गया। बोअरों ने इसका प्रतिरोध किया और असफल होने पर बहुत से नैटाल छोड़ कर उत्तर की ओर ड्राकेन्स-बर्ग पार कर ट्रान्सवाल में जा बसे। इसके परिणाम स्वरूप अँगरेजों और बोअरों में और भी अधिक जातीय विद्वेष फैल गया और अब उन लोगों की एक नयी शिकायत यह हो गयी कि डच उपनिवेशियों के अधिकार में समुद्र के किनारे कोई प्रदेश नहीं रह गया था। केप कालोनी में अँगरेज़ों और डच लोगों के बीच राज्य भाषा के प्रश्न पर झगड़ा बढ़ रहा था। क्योंकि पूरबी प्रदेशों के निवासी मुख्यतः अङ्गरेज़ी और पच्छिमी प्रदेशों के प्रमुखतः डच भाषा बोलते थे; परन्तु दक्खिनी आफ्रिका में अँगरेज़ों के तटवर्ती उपनिवेशों और डचों के अन्तर्देशी प्रजातन्त्र राज्यों में लड़ाई थी। अगले बीस वर्षों में नैटाल में विशेष रूप से ब्रिटिश जाति के नवागत जा पहुँचे और आरेञ्ज और वाल नदियों के बीच में बस गये। कुछ साल बाद ग्रेट ब्रिटेन ने इस प्रान्त को भी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया; किन्तु १८५४ ई० में उस देश में बोअरों की स्वाधीनता स्वीकृत कर ली गयी और वह प्रदेश आरेञ्ज फ्री स्टेट कहलाने लगा और ब्लोम-

फ्रान्टीन उसकी राजधानी हुई। अन्य बोअर वाल नदी से भी उत्तर चले गये और 'सांड नदी के कनवेनशन' द्वारा उनकी स्वाधीनता भी १८५२ ई० में स्वीकृत कर ली गयी। यह प्रदेश ट्रान्सवाल कहलाने लगा और उसकी राजधानी प्रिटोरिया हुई।

**वसूटोलैंड और किम्बरले पर अधिकार**—ट्रान्सवाल और आरेञ्ज फ्री स्टेट के बोअर अब अपने को ब्रिटिश हस्तक्षेप से स्वतन्त्र समझने लगे थे। वस्तुतः ब्रिटिश सरकार आरेञ्ज नदी के उस पार के प्रदेशों पर किसी उत्तरदायित्व की इच्छा नहीं रखती थी, किन्तु परिस्थितियों ने ब्रिटिश सीमा को आगे बढाये जाने के लिए मजबूर किया। आरेञ्ज फ्री स्टेट तथा वसूटुओं के वैमनस्य के कारण ब्रिटिश सरकार का १८३८ ई० में वसूटोलैंड को ब्रिटिश 'संरक्षित राज्य घोषित करना पड़ा। किम्बरले के पास, १८६७ ई० में हीरे की खानें मिलने से इस बखेड़े की जड़ और दृढ़ हो गयी और अब खेती बारी की जगह खानें खोदने में अधिक लाभ दिखायी देने लगा। परन्तु अब युरोप भर के लोग इधर झुक पड़े और डच आफ्रिकन्दरों को लाचार हो उन्हें स्थान देना पड़ा। शान्ति और व्यवस्था के विचार से तथा अपने प्रान्त के अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए ब्रिटिश सरकार ने सन् १८७१ ई० में किम्बरले के आस-पास के देश को अपने राज्य में मिला लिया। इससे दोनों 'बोअर' प्रजातन्त्र राज्यों को बड़ा क्षोभ हुआ क्योंकि उनके विचार से 'किम्बरले' पर उनका अगरेजों से अधिक अधिकार था।

**केप कॉलोनी की उन्नति ( १८१५–७२ ई० )**—इसी बीच में केप कॉलोनी में बहुत कुछ उन्नति हो चुकी थी। १८२० ई० के लगभग ब्रिटिश जाति के ५ हजार अल्बानी नवागत एलिजेबेथ बन्दर पर आकर उतरे और उसके पूरबी भाग में 'ग्रैहम्स-टाउन' के चारों ओर बस गये थे। इसी प्रदेश का नाम पूरबी प्रान्त हुआ। इसके बाद १८३४ ई० में काफिरों के साथ पहला युद्ध शुरू हुआ। साल भर में कीई नदी तक का प्रदेश इनसे छीन लिया गया; परन्तु १८४६-४८ ई० में दुबारा युद्ध हुआ और १८५०-३ ई० के युद्ध के बाद जो प्रदेश काफिरों से छीने गये उनका ब्रिटिश काफ्रेरिया नाम का एक नया उपनिवेश बना दिया गया। परन्तु अभी तक काफिरों की शक्ति छिन्न भिन्न न हुई थी क्योंकि १८५० ई० में इनके सब कबीलों ने मिलकर केप कॉलोनी पर आक्रमण कर दिया। तीन वर्ष की लड़ाई के बाद इन पर विजय प्राप्त हो सकी। इसके बाद १८५७ ई० में काफिरों ने बहकाने में आकर अपने सारे मवेशी मार डाले और खेतों को यों ही पड़ा छोड़ दिया। इसका फल यह हुआ कि भूख के मारे अनेकों काफिर कुटुम्ब इस प्रदेश को छोड़ कर चले गये और काफ्रेरिया को गोरों से बसाना पड़ा। १८७७ ई० में अन्तिम युद्ध हुआ जिसमें जुलू लोग भी शामिल थे। इस युद्ध में काफिरों की सारी शक्ति टूट गयी और उनका प्रदेश केप कॉलोनी के उपनिवेश में मिला दिया गया। इस प्रकार काफिरों के साथ इन युद्धों के कारण केप कॉलोनी का विस्तार आरेञ्ज नदी तक हो गया। इस उपनिवेश की उन्नति के साथ धीरे-धीरे ब्रिटिश

और डच दोनों अधिक राज्याधिकार चाहने लगे। १८७२ ई० में केप कॉलोनी को स्वायत्त शासन प्राप्त हो गया।

ट्रान्सवाल पर अधिकार ( १८७७ ई० )—हम देख चुके हैं कि १८५२ ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने ट्रान्सवाल को स्वाधीन मान लिया था; परन्तु इस बीच में काफ़िरों से निरन्तर युद्धों के कारण ख़जाना ख़ाली हो गया और वहाँ की सरकार पर बहुत सा ऋण चढ़ गया था। ऐसी परिस्थिति में यह आशंका हो चली थी कि यह प्रजातन्त्र टूट जायगा और सारे देश में अराजकता छा जायगी। इस दुर्घटना से बचने के लिए ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने सेना भेज कर १८७७ ई० में ट्रान्सवाल पर इसलिए अधिकार कर लिया कि इसकी दुर्बलता दक्खिनी आफ्रिका की समस्त युरोपीय जनता के लिए आशंकामय होती—विशेषकर इस कारण से कि सीमा पर मूल निवासियों से युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना थी और यदि कहीं इस युद्ध में मूल निवासी सफल हो जाते तो इसके परिणाम-स्वरूप अन्य उपनिवेशों में भी मूल-जातियों में अराजकता फैल जाती।

ज़ुलू युद्ध ( १८७६ ई० )—ट्रान्सवाल पर ब्रिटेन का आधिपत्य हो जाने के दो परिणाम हुए। पहले तो इससे सीमा प्रदेशों के ज़ुलू बहुत विक्षुब्ध हो उठे क्योंकि दक्खिनी आफ्रिका के अँगरेज़ हाई कमिश्नर ने यह नीति चलानी चाही कि ज़ूलूलैंड में स्वाधीन राज्य रहने से उसके सीमान्त पर ब्रिटिश प्रदेशो के हित को इसलिए आशंका रहती थी कि ज़ुलू ट्रान्सवाल पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। अब तक ऑगरेजों और ज़ूलुओं का सम्बन्ध अच्छा रहा था; किन्तु अब विरोध बढ़ चला था। इसके परिणाम स्वरूप १८७६ ई० में युद्ध हुआ। उनके नेता 'केटेवायो' ने ज़ुलुओं को खूब संगठित किया था तथा उसके पास ४० हज़ार योद्धा थे। इन्सँघल-वाना में अँगरेज़ बुरी तरह हारे और उनकी सेना का एक-एक आदमी मार डाला गया; परन्तु इसके बाद उलुन्दी में अँगरेज़ों की विजय हुई। 'केटेवायो' को पकड़ कर केपटाउन भेज दिया गया और ज़ूलुओं ने अधीनता स्वीकार कर ली।

प्रथम बोअर युद्ध ( १८८१ ई० )—ट्रान्सवाल को ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित करने का दूसरा परिणाम हुआ ट्रान्सवाल के बोअरों का विप्लव। इँग्लैंड में बहुत से लोग ट्रान्सवाल पर इस तरह अधिकार कर लेने के विरुद्ध थे। फिर भी यह सम्भव नहीं मालूम होता कि स्वायत्त-शासन प्रदान करने का स्पष्ट मत व्यक्त कर देने पर कोई हलचल मचती; किन्तु डिजरायली और ग्लैडस्टन मन्त्रि-मंडलों ने कुछ न किया और ब्रिटिश गवनमेन्ट के नाम पर बोअरों को स्वराज्य देने का वचन पूरा नहीं किया गया। बल्कि जो नये अफ़सर नियुक्त होकर आये उन्होंने नासमझी से कठोर नियम चलाने और बोअरों पर बड़ी कड़ाई से टैक्स लगाने शुरू कर दिये। इस पर १८८१ ई० में अकस्मात् बोअर भड़क उठे। ब्रिटिश कमांडर को वहाँ पहुँचे अभी पाँच ही महीने हुए थे कि उसे १२०० सेना के साथ ट्रान्सवाल में घिरे हुए अपने सैनिकों की

रक्षा का प्रयत्न करना पड़ा। वह बोअरों के युद्ध-कौशल से भी परिचित न था इसलिए 'लैंग्सनेक' पर दो आक्रमणों में उसे पीछे हटना पड़ा। आठ घंटे की सख्त चढ़ाई के बाद उसने लैंग्सनेक पर बोअरों के मोर्चे के सामने मजूबा की पहाड़ी पर अधिकार कर लिया, परन्तु बोअरों ने प्रत्याक्रमण किया। ब्रिटिश सेनापति कोला मारा गया और शेष सेना भी या तो मार डाली गयी अथवा बन्दी हो गयी।

बोअरों की स्वाधीनता ( १८८१ ई० )—मजूबा की लड़ाई में हार जाने के बाद भी ग्लैडस्टन मन्त्रिमंडल बोअरों के साथ समझौते की बातचीत कर रहा था। आख़िर सन्धि हो गयी और १८८१ ई० में बोअरों की स्वतन्त्रता भी स्वीकृत कर ली गयी, यद्यपि सीमान्तों, मूलनिवासियों और विदेशी मामलों पर ब्रिटिश प्रभुत्व बना रहा। १८८४ ई० में ब्रिटिश सरकार ने बोअरों की प्रार्थना स्वीकार कर ली और ट्रान्सवाल पर अपना अधिपत्य छोड़ दिया। तब यह प्रदेश दक्खिनी आफ्रिका का प्रजातन्त्र कहलाने लगा। किन्तु विदेशी शक्तियों के साथ सन्धियों को भंग करने का अधिकार ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने अब भी अपने हाथ में रक्खा, तथा सब युरोपीयों को वहाँ व्यापार करने और रहने की स्वतन्त्रता मिलने पर जोर दिया। इसी समझौते के अनुसार ट्रान्सवाल की सीमाएँ निश्चित कर दी गयीं।

पॉल क्रूगर—इसी समय दक्खिनी आफ्रिका के इतिहास में पॉल क्रूगर और सेसिल रोड्स दो महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का उदय हुआ। क्रूगर का जन्म केप कॉलोनी में १८२५ ई० में हुआ और होश सँभालते ही वह अपने देश के संग्राम में भाग लेने लगा। उसके बचपन के जमाने की बहुत सी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि एक बार उसने काफिर हरकारों से दौड़ने की शर्त लगायी। यह दौड़ सबेरे शुरू हुई, दोपहर में भी जारी रही और इसके बीच में उसने एक शेर का शिकार किया और शाम होते-होते अपने सब काफिर प्रतिस्पर्द्धियों को हरा दिया। पॉल क्रूगर ने १० वर्ष की आयु में अपने 'बोअर' माता-पिता के साथ देश परित्याग में भाग लिया और १८३९ ई० में जब उसकी आयु १३ वर्ष की थी तो वह जूलू राजा 'डिङ्गान' के विरुद्ध युद्ध में लड़ा। वह अधिक पढ़ा-लिखा न था, किन्तु वह बाइबिल से खूब परिचित था। १८८१ ई० में जब बोअरों ने इग्लैंड के विरुद्ध युद्ध छेड़ा तो उन्होंने पॉल क्रूगर को अपना नेता चुना। १८८३ ई० में वह ट्रान्सवाल प्रजातन्त्र का प्रेसिडेन्ट चुना गया और शताब्दी के अन्त तक दक्खिनी आफ्रिका के इस प्रजातन्त्र का प्रधान बना रहा। उइटलैंडरों की परिवेदनाओं के सम्बन्ध में जब ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने उसकी राय नहीं मानी तो आरेञ्ज फ्री स्टेट के प्रेसिडेन्ट के साथ साथ उसने १८९९ ई० में अन्तिम चेतावनी दी जिसका अर्थ हुआ युद्ध की घोषणा। इस पर नैटाल और केप कालोनी पर ब्रिटिश आक्रमण हुआ और सन् १८९९-१९०२ के युद्ध में अँगरेज़ी सेनाओं के प्रिटोरिया ले लेने पर क्रूगर युरोप चला गया और युरोपीय राज्यों से सहायता लेने की कोशिश में १९०४ ई० में स्विट्ज़रलैंड में मर गया।

सेसिल रोड्स—सेसिल रोड्स का जन्म एक अँगरेज़ पादरी के घर हुआ। बाल्यावस्था में वह स्वास्थ्य सुधार के लिए अपने भाई के पास आफ्रिका गया। फिर वह ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय में पढ़ने लगा। छुट्टियों में वह प्रतिवर्ष दक्खिनी आफ्रिका में रहता था। शीघ्र ही उसने किम्बरले की सोने और हीरे की खानों में काम करना आरम्भ कर दिया और वह बहुत धनी हो गया। अब वह राजनीति की ओर फिरा और बार्कले की ओर से हाउस ऑव एसेम्बली का सदस्य चुन लिया गया। इसी समय जनरल गर्डन ने उसे अपने साथ खार्तूम ले जाना चाहा, परन्तु यह सम्भव न हो सका। युद्ध के बाद ट्रान्सवाल और आरेञ्ज फ्री स्टेट के दोनों प्रदेश अँगरेज़ी राज्य में मिला लिये गये। १८६०-६६ ई० तक वह केप कॉलोनी का प्रधान मन्त्री था। रोड्स धनी होने के साथ-साथ बड़ा दानी भी था। उसने आयरि होमरूल पार्टी की सहायता के लिए पार्नेल को १० हज़ार पौंड दिये थे।

क्रूगर और रोड्स में अपने आदर्शों के कारण शीघ्र ही विरोध हो गया। क्रूगर आफ्रिका में बोअर साम्राज्य के स्वप्न देख रहा था और रोड्स केप से कैरो तक ब्रिटिश साम्राज्य स्थापना की कल्पना कर रहा था। इस प्रकार पश्चिम की ओर प्रजातन्त्र के दबाव के कारण ब्रिटिश सरकार ने 'बेचुआनालैंड' को १८८५ ई० में ब्रिटिश संरक्षित राज्य घोषित कर दिया और १८८७ में ज़ूलूलैंड के ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित हो जाने के कारण ट्रान्सवाल का पूरब की ओर का विकास भी रुक गया। उत्तर में रोड्स के प्रयत्न से १८८६ ई० में ब्रिटिश दक्खिनी आफ्रिकी कम्पनी की सृष्टि की गयी जिसने रोडेशिया कहलाने वाले प्रदेश पर अधिकार कर लिया। यह 'रोड्स' के प्रयत्नों का ही फल था कि ट्रान्सवाल प्रजातन्त्र अपना राज्य-विस्तार न कर सका।

स्वर्णक्षेत्रों की खोज और उईटलैंडर (१८८१ ई०)—इसी बीच १८८१ ई० में सोने की खानें निकल आने के कारण ट्रान्सवाल की आन्तरिक स्थिति पूर्णतः परिवर्तित हो गयी और युरोप के सभी देशों के लोग अब यहाँ आने लगे। कुछ ही वर्षों में नवागन्तुकों की संख्या बोअरो से अधिक हो गयी। जोहान्सबर्ग नगर बस गया। प्रेसिडेन्ट क्रूगर की नीति में समझौते के लिये कोई स्थान था ही नहीं। इसलिए उसने बहुत से बन्धन लगाये जिनसे खानों की उन्नति में बाधा पड़ने लगी। उधर उसने यह निश्चय किया कि इन खानों से निकलने वाले माल पर लगाये हुए कर का $\frac{5}{6}$ भाग ट्रान्सवाल प्रजातन्त्र के शासन सम्बन्धी व्यय के लिये लिया जाय। दूसरी तरफ़ उसने विविध विधानों द्वारा नवागन्तुकों को निर्वाचन तथा देश के शासन में प्रायः सभी राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर दिया। इस प्रकार परिस्थिति बहुत जटिल बन गयी थी। प्राचीन परिपाटी के समर्थक, रूढ़िवादी बोअरों तथा प्रगतिशील और स्वतन्त्र यूरोपीयों में जो उईटलैंडर कहलाते थे क्या सहानुभूति हो सकती थी। ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि बोअरों को इन नवागन्तुकों के आने से यह आशंका उत्पन्न हो कि वे उनके देश में उनकी राष्ट्रीयता के विरोधी थे और इसलिये उन्हें किसी

प्रकार के राजनीतिक अधिकार और अन्य सुविधाएँ न दी जाँय। दूसरी ओर यह भी असम्भव था कि बहुसंख्यक और शिक्षित युरोपीय जो आधी से अधिक भूमि तथा दस में ६ हिस्से सम्पत्ति के अधिकारी थे ऐसे विकृत शासन के नितान्त आधीन बने रहते जिसमें उनका कोई हाथ न था और जो उस समय बड़ा कलुषित हो रहा था।

जेम्सन का धावा ( १८६५ ई० )—आखिर १८६५ ई० में परिस्थिति जटिल होते-होते पराकाष्ठा पर पहुँच गयी और एक सशस्त्र विद्रोह की तैयारी होने लगी। केप कॉलोनी के प्रधान मन्त्री सेसिल रोड्स ने इस आन्दोलन का समर्थन किया। उसका मत था कि 'उईटलैंडरों' की स्थिति असहनीय हो गयी थी। इसके अतिरिक्त रोड्स की दक्खिनी आफ्रिका को एक करने की महान् योजना में क्रूगर की नीति बाधक भी हो रही थी। क्रूगर अपने व्यापारिक दृष्टिकोण से इस प्रजातन्त्र को अन्य प्रदेशों से पृथक करना चाहता था। इसलिए उसने डेलागोआ खाड़ी पर स्थित पुर्तगाली बन्दर को माल ले जाने वाली रेल को हर प्रकार की सुविधाएँ दीं। इससे केप कॉलोनी और नेटाल में काफी विरोध हुआ, किन्तु विद्रोह का आन्दोलन पूर्णतः विफल रहा। बोअर नेताओं में एकमत न हो सका और उन्होंने विद्रोह करने का विचार छोड़ दिया। उईट-लैंडर सुधार पार्टी और बोअर गवर्नमेन्ट के इस झगड़े में १८६५ ई० के अन्त में डाक्टर जेम्सन ने, जिसे सेसिल रोड्स ने साउथ आफ्रिका कम्पनी का कर्त्ता-धरता बना रक्खा था, ६०० घुड़सवार लेकर ट्रान्सवाल की पूरबी सीमा पर इसलिए आक्रमण किया कि प्रेसिडेन्ट क्रूगर ने उईटलैंडरों को दबाना चाहा था। परन्तु चार दिन बाद उसे अपनी सेना के साथ आत्मसमर्पण करना पड़ा। बोअर सेना का मोर्चा बहुत सुदृढ़ था और जेम्सन की सेना को न तो कुमुक मिली और न गोला बारूद।

जेम्सन के इस धावे का परिणाम अच्छा न हुआ। इसके कारण रोड्स ने प्रधान मन्त्रित्व का परित्याग कर दिया और सारे दक्खिनी आफ्रिका में डचों और अँगरेज़ों में विद्वेष फैल गया। अब प्रेसिडेन्ट क्रूगर को युद्ध के लिये तैयारियाँ करने को मजबूर होना पड़ा। जेम्सन का आक्रमण असफल होने पर जर्मन सम्राट् ने क्रूगर को बधाई का तार भेजा। इससे ग्रेट-ब्रिटेन में बहुत उत्तेजना फैली, किन्तु ब्रिटिश औपनिवेशिक मन्त्री चेम्बरलेन तथा केप कॉलोनी के ब्रिटिश हाई कमिश्नर कुछ न कुछ करने पर तुले हुए थे। इसलिए क्रूगर के साथ बातचीत का कोई फल न निकला और युद्ध अनिवार्य हो गया। १८६६ ई० के अक्टूबर मास में क्रूगर ने अल्टीमेटम दे दिया और शीघ्र ही युद्ध आरम्भ हो गया। आरेञ्ज फ्री स्टेट दक्खिनी आफ्रिका के प्रजातन्त्र के साथ थी। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन के सामने एक ऐसे संघर्षपूर्ण महायुद्ध की समस्या उपस्थित हो गयी जिसके परिणाम पर न केवल उईटलैण्डर सुधारक दल का भविष्य और सुविधाएँ निर्भर थीं बल्कि इसी युद्ध पर दक्खिनी आफ्रिका के सारे ब्रिटिश साम्राज्य की स्थिति केंद्रित थी।

सन् १८६६-१६०२ ई० का बोअर युद्ध—प्रेसिडेन्ट क्रूगर ने अपने अल्टी-

मैटम में यह बात स्पष्ट कर दी थी कि ट्रान्सवाल और आरेञ्ज फ्री स्टेट के प्रजातन्त्र ब्रिटेन के प्रभुत्व को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए उसने दो दिन की अवधि देकर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट से कहा कि ट्रान्सवाल की सीमाओं से ब्रिटिश सेना हटा ली जाय और कोई ब्रिटिश सेना उनके देश में कदम न रखे। अँगरेजों को यह कैसे मान्य हो सकता था; अस्तु लड़ाई छिड़ गयी और बोअर सेनाओं ने नेटाल पर आक्रमण कर दिया। उनकी सेनाओं के साज़-सामान और हथियारों के बाहुल्य से पता चल गया कि दोनों बोअर प्रजातन्त्रों ने बहुत पहले से ही गुप्त रूप से लड़ाई की तैयारी कर ली थी। अँगरेजों का प्रबन्ध अच्छा न था फिर इङ्गलैण्ड से इतनी दूर सेनाएं और लड़ाई का सामान भेजने की भी कठिनाई थी, इसलिए शुरू शुरू में बोअरों को खूब विजय प्राप्त हुई। फिर बोअर सब जन्म के लड़ाके थे। हृष्ट-पुष्ट और बलवान होने के साथ बड़े निपुण निशाना मारने वाले भी। फिर वह ऐसे प्रदेश में लड़ने जा रहे थे जिसकी भूमि के चिप्पे चिप्पे से वे खूब परिचित थे। बोअरों की सवार सेना के घोड़े बहुत अच्छे होने के कारण उन्हें व्यूह-रचना करने और शीघ्र ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने की भी बड़ी सुविधा थी। इसलिए अँगरेज़ी सेना को उनका सामना करने में बड़ी कठिनाई पेश आती थी। यही कारण था कि जब एक बोअर सेना ने नेटाल पर आक्रमण कर ब्रिटिश कमांडर सर जार्ज वाईट को लेडीस्मिथ में घेर लिया तो दूसरी ने किम्बरले पर घेरा डाल दिया तथा एक और सेना ने आरेञ्ज नदी को पार कर केप कॉलोनी पर आक्रमण कर दिया। १८६६ ई० के दिसम्बर में अँगरेज़ों के दुर्भाग्य से, छः दिन में अँगरेजी सेना को तीन बार हार कर पीछे हटना पड़ा। लेडीस्मिथ को घेरे में से छुडाने के लिए जो सेना भेजी गयी उसे टुगेला नदी पर हार कर पीछे हटना पड़ा। किम्बरले में शहर के बाहर जो बोअर सेना पड़ी हुई थी उस पर एक अँगरेजी सेना ने रात में छापा मारा; परन्तु उसकी भी करारी हार हुई। इसी प्रकार तीसरी सेना ने केप कॉलोनी के स्ट्रमबर्ग स्थान पर बोअरों के हाथ पराजय प्राप्त की।

बोअरों का गलत अनुमान—बोअरों ने जो आशाएँ बाँध रखी थीं वे सब गलत निकलीं। पहले तो उन्हें आशा थी कि केप कॉलोनी के डच उन्हें सहयोग देंगे। बहुतों ने उन्हें सहायता तो दी; किन्तु उनमें अधिकांश निष्पक्ष रहे। फिर उन्हें युरोपीय शक्तियों से सहायता की आशा थी। युरोपीय राज्यों की सहानुभूति अवश्य उनके साथ थी, किन्तु ब्रिटिश नौसेना के सामने किसी हिमायती ने सशस्त्र हस्तक्षेप का साहस न किया। इसी प्रकार पिछले युद्धों के अनुभवों के कारण बोअर अँगरेजों की युद्धक्षमता तथा अँगरेज़ी नीतिज्ञों के निश्चय को तुच्छ समझने लगे थे। किन्तु इस कठिन परिस्थिति में ग्रेट-ब्रिटेन को अपनी कठिन परीक्षा के महत्व का पूरा-पूरा ज्ञान था। इसलिए ग्रेट ब्रिटेन से सधी हुई सेना स्वयम्सेवक, मिलीशिया पैदल और घुड़सवार तथा हर प्रकार के सैनिक दल के दल दक्खिनी आफ्रिका में जमा होने लगे; उईट-

लैण्डर और दक्खिनी आफ्रिका के प्रदेश में बसने वाले अँगरेज ठट्ठ के ठट्ठ जमा होकर सेना में भर्ती होने लगे तथा हर प्रकार की सैनिक सेवा के लिए सहर्ष तैयार हो गये। कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैण्ड से भी सहायता मिली और वहाँ के स्वयम्सेवक दल अँगरेजी सेनाओं से सहयोग में लड़ने के लिए आ पहुँचे। १६०० ई० के अन्त तक दक्खिनी आफ्रिका में २॥ लाख से अधिक सेना जमा हो गयी। फिर लॉर्ड राबर्टस और लॉर्ड किचनर जैसे विश्वस्त सेना-नायक इन सेनाओं के नेतृत्व के लिए भेजे गये थे।

बोअरों की प्रारम्भिक विजयों से खलबली मच गयी थी शीघ्र ही उसके बादल छट गये। फरवरी १६०० ई० में लॉर्ड रोबर्ट्स ने किम्बरली को मुक्त किया और पार्डबर्ग पर मार्ग-रोधक बोअर सेना को घेर लिया। अगले दिन भारतीय सेनाओं की बहादुरी से लेडीस्मिथ भी मुक्त हो गया। इसके बाद लॉर्ड राबर्ट्स ने मार्च में ब्लोमफोन्टाइन तथा जून मे प्रिटोरिया भी ले लिया और नैटाल और आरेंज दोनों प्रजातन्त्र जिनकी ये राजधानियाँ थीं, ब्रिटिश साम्राज्य में सम्मिलित कर लिये गये। परन्तु इस पराजय के बाद भी बोअर दृढ़ता से जमे रहे और वे लॉर्ड राबर्ट्स की सेना के आने जाने के मार्गों पर छापे मारते और रसद सामान छीन कर सेनाओं के सम्वाहन में बाधा डालते रहे। बोअर गुरिल्ला युद्ध में ख़ूब अभ्यस्त थे। उनके सेनापति "बोथा" और "डी वेट" इतने सजग और फुर्तीले थे कि सर्वव्यापी से मालूम पड़ते थे। फिर आरेञ्ज फ्री स्टेट के भूतपूर्व सभापति 'स्टीन' ने तो बोअरों को अपने अथक जोश और कार्यशीलता से बड़ा प्रोत्साहन दिया। नवम्बर १६०० ई० में लॉर्ड राबर्ट्स दक्खिनी आफ्रिका से चला गया। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी लॉर्ड किचनर ने धीरे-धीरे बोअर-प्रतिरोध को दबा दिया। अन्त में मई, १६०२ ई० में बोअर नेताओं ने परामर्श करके अँगरेज़ों की शर्तें मान लीं और दोनों जातियों में सन्धि हो गयी। इसके अनुसार दोनों प्रजातन्त्र विधिपूर्वक ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिये गये; किन्तु स्कूलों तथा कचहरियों में डच भाषा स्वीकृत रही। मूल-वासियों को वोट देने का अधिकार प्रत्येक राज्य की इच्छा पर छोड़ दिया और परिस्थितियों के ठीक हो जाने पर उन्हें स्वायत्त शासन देने का वचन दिया गया।

युद्ध के बाद की ब्रिटिश नीति—इस युद्ध की सफलता से दक्खिनी आफ्रिका बच गया और इस ने उसकी भावी एकता भी सम्भव कर दी। युद्ध के बाद ग्रेट-ब्रिटेन ने बड़ी उदारता का परिचय दिया और बोअरों को उनके देश में पुनः बसाने में ५ लाख धन व्यय किया। फिर नये उपनिवेशों की सहायता के निमित्त अपनी जिम्मेदारी पर ४ करोड़ तक ऋण दिलाने का प्रबन्ध किया और लॉर्ड मिलनर को तीन वर्ष तक उनके पुनर्निर्माण का निरीक्षण सुपुर्द किया। इसके बाद प्रतिनिधि-शासन की स्थापना हुई और लड़ाई के केवल साढ़े चार वर्ष बाद, १६०६ ई० में बोअरों को पूर्ण स्वायत्त-शासन दे दिया गया। इसके अनुसार ट्रान्सवाल उपनिवेश में उत्तरदायी शासन की

स्थापना हुई। देश का शासन एक गवर्नर और अधिक से अधिक पाँच मन्त्रियों को सौंपा गया। गवर्नर की सहायता के लिए उसके द्वारा नियुक्त किये हुए १५ सदस्यों की व्यवस्थापिका काउन्सिल और युरोपीय प्रजा द्वारा निर्वाचित ६६ सभासदों की एक एसेम्बिली बनायी गयी और यह निश्चय किया गया कि चार वर्ष बाद इन्हीं सभाओं को अधिकार होगा कि वे काउन्सिल के सदस्यों को भी निर्वाचित कर सकें। आरम्भ में बहुत से राजनीतिज्ञ इस साहसपूर्ण प्रयोग का विरोध करते रहे, परन्तु उसकी सफलता ने उनके सारे सन्देह दूर कर दिये।

दक्खिनी आफ्रिका का यूनियन (१६०६ ई०)—इसी बीच में दक्खिनी आफ्रिका के प्रदेशों की एकता का आन्दोलन बड़े वेग से चलता रहा। युद्ध के बाद की आर्थिक स्थिति और चारों उपनिवेशों के प्रान्तीय झंझटों के कारण यह स्पष्ट हो गया था कि अलग-अलग शासन विधान रहने में न केवल आपदाओं का ही सामना रहेगा बल्कि फिजूलखर्ची भी बहुत अधिक होगी। इसीलिए केपकालोनी के पार्लियामेन्ट ने लार्ड मेल्बोर्न से एकता सम्बन्धी योजना बनायी जाने का परामर्श किया। सन् १६६८ ई० में इसकी सम्भावना पर विचार करने के लिए एक राष्ट्रीय समिति बैठी और १६०६ ई० में इनका कार्य समाप्त हुआ। सभी प्रश्नों में समझौते और सहिष्णुता की उदात्त भावना व्याप्त थी। लार्ड ग्लैडस्टन ने, जो पहला गवर्नर जनरल बनाया गया था, जनरल बोथा को प्रधान मन्त्री चुना और १६१० ई० में दक्खिनी आफ्रिका की नयी पार्लियामेन्ट का ड्यूक ऑव कनाट ने उद्घाटन किया।

ब्रिटिश उपनिवेश और उनका शासन--इन स्वतन्त्र उपनिवेशों का विस्तृत वर्णन और उनके शासन विधान तथा इंग्लैंड के साथ उनके सम्बन्ध के विषय में दो शब्द और कहते हैं। कनाडा, न्यूफाउण्डलैंड; आस्ट्रेलिया न्यूजीलैंड, और दक्खिनी आफ्रिका, प्रत्येक उपनिवेश में एक पार्लियामेन्ट होती है, जिसमें दो सभाएँ रहती हैं। इनमें से लोअर हाउस या लोक सभा पर मन्त्रिमंडल निर्भर करता है और इसी के हाथ में अर्थनीति रहती है। दूसरी को सिनेट अथवा काउन्सिल कहते हैं जिसमें मनोनीत अथवा निर्वाचित सदस्य होते हैं। प्रत्येक विधान इन दोनों समितियों में स्वीकृत होकर कानून बनता है। कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्खिनी आफ्रिका के प्रदेशों के अधिकार भिन्न-भिन्न हैं। आस्ट्रेलिया को बहुत कुछ स्वाधीनता है, कनाडा और आफ्रिका में इतनी नहीं है। प्रत्येक उपनिवेश में एक गवर्नर रहता है जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट् के अधिकार में रहती है। उसका उपनिवेश में वही स्थान है जो ग्रेटब्रिटेन में राजा का। वह अपने प्रधान मन्त्री को चुनता और विशेष अवसरों पर मन्त्रिमंडल को सम्मति देता है। व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा स्वीकृत व्यवस्थाओं को रद्द कर सकने का अधिकार उसे प्राप्त है यद्यपि वह ऐसा तभी करता है जब वे साम्राज्य के हितों की क्षति करते हों।

इन उपनिवेशों को इंग्लैण्ड के निकटतर लाने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। १८८७ ई० में पहली औपनिवेशिक कान्फ्रेन्स हुई और उसके बाद कई और उनमें विविध उपनिवेशों के प्रधान मन्त्री तथा भारतवर्ष के प्रतिनिधि उपस्थित थे। फिर यह निश्चय हुआ कि ये कान्फ्रेन्सें हर चौथे वर्ष हों और ब्रिटेन का प्रधानमन्त्री इसका सपद प्रेसिडेन्ट हो। पहली इम्पीरियल कान्फ्रेंस १६११ ई० में हुई।

सन् १६१४ का ब्रिटिश साम्राज्य—सन् १६१४ ई० में ब्रिटिश साम्राज्य की जन-संख्या लगभग ४२ करोड़ थी। एक करोड़ २५ लाख वर्गमील इसका क्षेत्रफल था। यह आकार में युरोप से तिगुना और ग्रेटब्रिटेन और आयरलैंड से ६० गुने से भी अधिक था। ससार भर की भूमि का ¼ वाँ भाग तथा ¼ भाग से भी अधिक जन-संख्या इसके अन्तर्गत थी। इस में लगभग १० हजार द्वीप और दो हज़ार नदियाँ थीं। इस साम्राज्य की बदौलत ही ग्रेटब्रिटेन बहुत समृद्ध हो गया है; किन्तु इसके साथ ही ग्रेटब्रिटेन का उत्तरदायित्व भी बहुत बढ़ गया है। व्यापार और साम्राज्य-रक्षा की समस्याओं के साथ-साथ साम्राज्य की अगोरी जातियों की समस्या भी बड़ा जटिल रूप धारण करती रही है और पिछले महायुद्ध के बाद तो इन समस्याओं का जो महत्त्वपूर्ण रूप बन गया है उसके वर्णन में स्वशासित डोमीनियनों का भी बहुत कुछ उल्लेख आवश्यक हो जाता है।

---

# अध्याय २६

## सशस्त्र शान्ति का जमाना

## ( १८७१–१६१४ ई० )

राष्ट्रीयता के विकास मे शान्ति तथा राजतन्त्र की हलचलें—हम देख चुके हैं कि जिस प्रकार सन् १८१५ से १८५४ ई० तक युरोप में प्रायः शान्ति रही उसी प्रकार सन् १८५४ से ७१ ई० तक का युग युद्ध का युग कहा जाना चाहिए। वास्तव में यह ज़माना भी पूर्ण रूप से शान्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यद्यपि सन् १८१५ से १८५४ ई० तक कोई युरोपीय युद्ध नहीं हुआ फिर भी इस बीच में कई युद्ध हुए और कई क्रान्तियों को दबाने के लिये कई बार सैनिक चढाइयाँ करनी पड़ीं। इन में सन् १८२६ ई० वाला यूनानी स्वतन्त्रता का युद्ध और सन् १८४८ वाली क्रांतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। यूनान के स्वतन्त्रता संग्राम में ग्रेटब्रिटेन ने किस प्रकार रूस और फ्रान्स की सहायता से तुर्की को दबाकर यूनानियों को स्वतन्त्रता दिलवायी इसका उल्लेख किया जा चुका है। इसी प्रकार युरोप के विभिन्न देशों में किस प्रकार सन् १८४८ की क्रान्ति को दबाने की चेष्टाएँ की गयीं तथा हंगरी और इटली और जर्मन रियासतें किस प्रकार आस्ट्रिया के चंगुल से मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टाओं में कुचली गयीं इसका भी दिग्दर्शन कराया जा चुका है। फिर १८७७ ई० का रूस-तुर्की युद्ध, १८६८ ई०

का स्पेनी-अमेरिका युद्ध, १८६६ ई० का दक्खिनी आफ्रिका वाला युद्ध, सन् १६०४-५ का रूसी-जापानी युद्ध और १६१२-१४ ई० का बाल्कन युद्ध, इस ४३ वर्ष के शान्ति के दूसरे युग में हुए। सन् १८७१ से १६१४ ई० तक के ४३ वर्ष के इस दूसरे युग में अधिकांश रूप में शान्ति ही रही। इस युग की अन्य महत्त्वपूर्ण बातें हैं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था और सहकारिता की चेष्टाएँ। हेग में रूस के जार की प्रेरणा से सन् १८६६ और १६०७ ई० में दो शान्ति सभाएँ हुईं। उनमें आशानुकूल सफलता नहीं हुई फिर भी वे युद्ध के नियम निर्धारित कर सकीं तथा हेग के कोर्ट ऑव आर्बिट्रेशन (पंचायत सभा) की स्थापना हुई जिसका उपयोग करना सब राष्ट्रों की इच्छा पर छोड़ दिया। सन् १८७५ में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय 'पोस्टल यूनियन' ने सारे सभ्य संसार के समस्त देशों में डाक महसूल की दर और तोल की इकाइयों की समानता स्थापित कर दी और किसी देश के पत्रों को दूसरे देश की रेलों और जहाजों द्वारा ले जाने का किराया भी निश्चित कर दिया। इस यूनियन की व्यापकता का अनुमान इस बात से लग सकता है कि इसके अन्तर्गत देशों के पत्रों की दैनिक संख्या का अनुमान ४० अरब है। फिर संसार भर में रेल पथ बन जाने के कारण आने जाने की कितनी अधिक सुविधा हो गयी है और साथ ही स्वास्थ्य आदि विषयों में संसार के भिन्न-भिन्न राज्यों की सहयोगिता तथा व्यापार और अर्थनैतिक सम्बन्धों की घनिष्ठता के कारण विश्व भर के देश एक दूसरे के कितने अधिक निकट आ गये हैं। किन्तु इन शान्ति प्रसारक बातों के समतुलन के लिए एक ओर थी प्रबल राष्ट्रीयता तो दूसरी ओर थी राज्यगत यथार्थवाद की शक्तियाँ जिनके अनुसार राज्य और उसके हितों की आराधना प्रत्येक व्यक्ति के हितों का लक्ष्य बन गयी और हर मनुष्य तथा हर देश की जनता को प्रभावित करने में ये शक्तियाँ धर्म के समान प्रबल हो गयीं। यही कारण है कि सन् १८७१ ई० के बाद का समय सशस्त्र शान्ति का जमाना कहलाता है। इस युग में छोटी बड़ी सभी शक्तियाँ इस आशंका से अपनी-अपनी सामरिक शक्ति बढ़ा रही थीं क्योंकि उनको भय था कि महत्वाकांक्षाओं और आदर्शों की विषमता के कारण युद्ध की बहुत निकट सम्भावना थी; क्योंकि हेग की पहली शान्ति सभा के सम्बन्ध में जर्मन विदेशी विभाग के डाइरेक्टर प्रिन्स बिस्मार्क का कहना था कि जितना बड़ा राज्य होगा उतना ही अधिक वह यह समझेगा कि उसका सब कुछ उसी तक परिमित है और यह कदापि उसका ध्येय नहीं है कि वह बाहरी परन्तु उच्च आकांक्षा की पूर्ति का साधन बने। क्योंकि किसी भी राज्य का सबसे महत्वपूर्ण ध्येय यही हो सकता है कि वह अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए भरसक चेष्टा करे और बड़े-बड़े राष्ट्रों के विचार में इन स्वार्थों का शान्ति स्थापना से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं हो सकता बल्कि इनका तो प्रमुख कर्तव्य यही हो सकता है कि विधिपूर्वक अधिक शक्तिशाली जत्था बनाकर अपने वैरी या प्रतिस्पर्द्धी का सत्यानाश कर दें।

जर्मनी का अभ्युदय और बिस्मार्क—युरोप भर में जर्मन साम्राज्य इस समय की सब से सुव्यवस्थित और प्रबल शक्ति था। जर्मनी के ३८ राज्यों में प्रशिया सब से

बड़ा था और उसका राजा होहेनजोलर्न घराने का था। उस वंश के एक व्यक्ति ने १४१५ में ब्रान्डेनबर्ग का निर्वाच्य प्रदेश प्राप्त कर लिया और १७वीं शती के आरम्भ में उसमें प्रशिया भी सम्मिलित कर लिया गया। अगले तीन सौ वर्षों में इस घराने का अधिकार बढ़ता ही चला आया और यह बुद्धि संग्राम तथा युद्ध का ही परिणाम होती रही। एक फ्रान्सीसी राजनीतिज्ञ के कथनानुसार युद्ध ही प्रशिया की सबसे प्रमुख कला रही है। फ्रेडरिक महान ने (१७४०-८६ ई०) साइलेशिया और पोलैंड का कुछ भाग ले लिया और नेपोलियन के जमाने के युद्धों के बाद इसे राइन का विशाल प्रदेश मिल गया। १८६२ ई० में बिस्मार्क प्रशिया का प्रधान मन्त्री हो गया और अपने शासन के प्रथम नौ वर्षों में उसने डेनमार्क, आस्ट्रिया और फ्रान्स से युद्ध किये। बिस्मार्क की 'रक्त और लौह' नीति के फल स्वरूप १८७१ ई० में जर्मनी ३८ राज्यों का संघ राष्ट्र बन गया। प्रशिया का राजा उसका शिरोमणि और जर्मन सम्राट कहलाया।

बिस्मार्क का जन्म १८१५ ई० में एक ऐसे कुल में हुआ जो राजनीति और युद्ध कौशल दोनों ही में काफी ख्याति पा चुका था। गोटिङ्गन विश्वविद्यालय में पढ़ते समय भी वह तलवार का धनी प्रसिद्ध था और कई बार द्वन्द्व युद्ध लड़ चुका था। १८४८ ई० के विप्लव के समय वह राजसत्ता का बड़ा जोरदार समर्थक था। १८५१ ई० में वह पुनः निर्धारित जर्मन डाइट का सभासद बना और इसी समय उसके प्रसिद्ध राजनीतिक जीवन का श्रीगणेश हुआ। बिस्मार्क बड़ा हठाग्रही था और प्रशिया की सर्वतोन्मुखी उन्नति के लिए उसके हृदय में जो जोश भरा हुआ था उसका परिचय इसी समय से मिलने लगा था। वह कहा करता था कि राष्ट्रों के जीवन-मरण के प्रश्न भाषण देने और मत प्रकट करने से हल नहीं होते; वे तो दृढ़प्रतिज्ञा, साहस और बलिदान के द्वारा हल किये जाते हैं। १८६२ ई० में प्रशिया की डाइट ने राजाज्ञा के अनुसार सेना के नये सगठन के निमित्त व्यय की अनुमति देने से इनकार कर दिया। इस पर बिस्मार्क ने जो इस समय वैदेशिक मन्त्री था डाइट को बन्द कर दिया और सेना के संगठन का कार्य डाइट की अनुमति बिना ही जारी रक्खा। बिस्मार्क के इस अनियामिक कार्य से देश भर में असन्तोष और रोष की लहर दौड़ गयी, परन्तु इसी समय श्लेसविग-हाल्स्टीन की जागीरों के झगड़े पर जो युद्ध हुआ उसमें विजय प्राप्त करने के कारण लोगों का विरोध कम होने लगा और वे इस बात को भूल गये कि चार वर्ष तक बिस्मार्क ने बिना बजट स्वीकृत कराये गवर्नमेन्ट का काम यथाविधि चलाया था, लोगों को विरोध सभाएँ करने से रोका तथा प्रेस की स्वतन्त्रता का भी गला घोटा था। १८६६ ई० में आस्ट्रिया को हराने और जर्मनी का संगठन कराने में बिस्मार्क का ही हाथ था और इन सब उलझनों को सुलझाने और जर्मनी को आशातीत सफलता प्रदान कराने से वह सारे देश की आँखों की पुतली बन गया। बिस्मार्क की ही अथक चेष्टाओं के परिणाम स्वरूप जर्मनी इस समय युरोप की सब से

प्रबल शक्ति बन गया था और उसका सब से पहला चान्सलर बिस्मार्क उस समय युरोप क्या सारे संसार में सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञ समझा जाता था। वह इस नव-निर्मित राज्य की सारी संस्थाओं को अधिक लोकोपयोगी, शासनात्मक और एकजातीय बनाकर सुदृढ़ कर देना और पास पड़ोस के राष्ट्रों से सन्धियाँ और मेल कर उसे बाहरी आक्रमण से सुरक्षित रखना चाहता था। बिस्मार्क ने जर्मनी में नया सिक्का चलाया, विधानों का संग्रह कराया और प्रशिया की रेलों को राष्ट्र की सम्पत्ति बनाया। सारे जर्मन राष्ट्र को स्वावलम्बित बनाने के लिए उसने जर्मनी का साम्पत्तिक नीति में बहुत से नये सुधार किये। सेना के सुसंगठन का प्रबन्ध किया। अपने देश के नव-स्थापित उद्योग-धन्धों को विदेशी स्पर्द्धा से बचाने के लिए रक्षित व्यापारी नीति चलायी और प्रजा पर सीधे टैक्सों का भार कम करके श्रमजीवियों की बीमे द्वारा रक्षा करके आकस्मिक दुर्घटनाओं और बुढ़ापे की बेकारी की चिन्ता से मुक्त किया।

१८७१ ई० के बाद बिस्मार्क समझता रहा कि जर्मनी को अब और राज्य-विस्तार की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जर्मनी को आल्सेस लारेन मिल गया था और उस की बहुत सी आन्तरिक समस्याएँ सुलझानी थीं। अपने निरन्तर बढ़ते हुए व्यापार और उद्योग धन्धों के विकास के लिए उसे शान्ति की आवश्यकता थी। बिस्मार्क इसीलिए युरोप भर में शान्ति चाहता था। उसकी यह नीति अवश्य थी कि फ्रान्स को 'आश्रयहीन तथा मित्रहीन' रखे और इसी उद्देश्य से वह ग्रेटब्रिटेन और रूस के साथ मित्रता का सम्बन्ध बनाये रहा। आस्ट्रिया से उसने १९०६ ई० में द्विराष्ट्र सन्धि कर ली और १८८२ ई० में जर्मनी और आस्ट्रिया को मिलाकर इटली के साथ त्रिराष्ट्र सन्धि करायी। ये सन्धियाँ थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ १९२४ ई० तक जारी रहीं। १८८४ ई० में बिस्मार्क ने जर्मनी को औपनिवेशिक राज्य बनाने की चेष्टा की। मध्य युरोप के राज्यों को मित्र बनाये रख कर उसकी यह सदा चेष्टा रही कि डेन्यूब या राइन नदी पर रूस और फ्रान्स की ओर से कोई आक्रमण न हो सके। १८१० ई० में बिस्मार्क ने युवक कैसर, विलियम द्वितीय से मतभेद होने के कारण पद त्याग कर दिया। बिस्मार्क लम्बे कद का सुडौल पुरुष, वार्तालाप में विनोदप्रिय और अत्यन्त शिष्ट था। जर्मन भाषा का पंडित होने के साथ साथ वह फ्रान्सीसी, अँगरेजी और रूसी भाषाएँ भी अच्छी बोल लेता था। वह कुशल वक्ता नहीं था फिर भी उसके ओज-पूर्ण भाषण बड़े प्रभावशाली होते थे। १८९८ ई० में उसका देहान्त हुआ।

फ्रान्स की स्थिति—१८७०-७१ ई० के बाद फ्रान्स की स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी थी। हार के कारण उसका उत्साह क्षीण हो चुका था। सन्धि की शर्तों के अनुसार 'आल्सेस लारेन' और थोड़ा सा 'राइन प्रदेश' फ्रान्स के हाथ से निकल गया था। फ्रान्स को हरजाने की भी बड़ी भारी रक़म जर्मनी को देनी पड़ी थी। फिर बिस्मार्क की नीति ने उसे अकेला छोड़ रक्खा था जिससे उसे निरन्तर जर्मनी के आक्रमण की आशंका रहती थी। किन्तु उसने शीघ्र ही अपना पुनरुद्धार कर लि-

और दो वर्ष में ही हरजाने की सारी रक़म चुका दी। फिर कुछ ही बरसों बाद आफ्रिका में उसने राज्य-विस्तार आरम्भ कर दिया। १८६३ ई० में उसे एक मित्र भी मिल गया और रूस और फ्रान्स की सन्धि हो गयी। इस प्रकार युरोप में दो दल हो गये। १८८२ ई० की त्रिराष्ट्र सन्धि वाले जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली एक ओर और १८६३ ई० की सन्धि के अनुसार फ्रान्स और रूस दूसरी ओर। किन्तु अगले कई वर्षों तक युद्ध की कोई आशंका न थी और ये दोनों दल एक दूसरे के सम्मुख होने की बजाय समकक्ष ही रहे।

ग्रेट-ब्रिटेन की स्थिति—अब हमको यह देखना है कि इन चालीस बरसों में ग्रेट ब्रिटेन की क्या स्थिति थी। आरम्भ में तो वह अपनी पुरानी नीति के अनुसार युरोपीय राजनीति से पृथक रहा। फ्रान्स और रूस के साथ कुछ कठिनाइयाँ अवश्य उपस्थित हुई, परन्तु आस्ट्रिया, जर्मनी या इटली के साथ उसकी कोई अनबन नहीं हुई। निकट पूर्वी प्रदेश कुस्तुन्तुनियाँ में मध्य पूर्व के अफ़ग़ानिस्तान में और भारतवर्ष तथा सुदूर पूर्व के चीन में, ग्रेट ब्रिटेन को रूस के अभिप्रायों की ओर से अब भी शंका बनी हुई थी। १८७७ ई० में रूस ने तुर्की पर आक्रमण किया था और उसकी राजधानी कान्स्टेन्टिनोपेल छीन लेने की तैयारी हो गयी थी। आखिर सन् १८७८ में बर्लिन की सन्धि हुई और रूस से युद्ध होते होते बच गया। फिर मिस्री सूडान के मामले पर फ्रान्स से समय-समय पर कठिनाइयाँ उपस्थित हो जाती थीं। जब सन् १८८२ में ब्रिटेन ने मिस्र पर स्थायी अधिकार कर लिया तथा १८६८ ई० में सुडान को फ़तह कर लिया तो यह दोनों ही घटनाएँ फ्रान्स को बहुत अखरीं; क्योंकि मिस्र पर तो नेपोलियन के समय से ही उसका दाँत था और सुडान पर अँगरेज़ों का अधिकार हो जाने से आफ्रिका में पूरब से पच्छिम तक अपना राज्य स्थापित करने का उसका स्वप्न भंग हो गया।

ब्रिटेन की नीति में परिवर्तन—परन्तु २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ब्रिटेन की नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ। अब तक जर्मनी के साथ उसका सम्बन्ध मित्रता का रहा था। सन् १८७६ ई० में जर्मनी और आस्ट्रिया की सन्धि के पूर्व बिस्मार्क ने ग्रेट ब्रिटेन के साथ पारस्परिक रक्षा सन्धि का प्रस्ताव लेकर ब्रिटेन के जर्मन दूत को प्रधान मन्त्री डिज़रायली के पास भेजा, परन्तु इस ओर से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिलने के कारण यह सन्धि न हो सकी। फिर सन् १८६८ और १६०१ ई० में ब्रिटेन के औपनिवेशिक मन्त्री चेम्बरलेन ने जर्मन के साथ मैत्री का प्रस्ताव किया; परन्तु इस बार भी कोई फल न निकला। १८६८ ई० में जर्मनी में एक 'नेवी लॉ' (नौ सेना विधान) स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार जर्मन नौ सेना में ३८ बड़े लड़ाई के जहाज़, क्रूज़र और तारपीडो-बोट विध्वंसक तथा डुबकनी किश्तियाँ आदि बनाने का आयोजन किया गया और यह निश्चय हुआ कि १६१६ ई० तक यह सारा प्रोग्राम पूरा हो जायगा। इस प्रकार जर्मनी की जल सेना का विकास बड़ी शीघ्रता से होने लगा जिसे देखकर ब्रिटेन के सामुद्रिक

प्रभुत्व के विषय में आशंका होने लगी। इसका सबसे प्रमुख कारण यह था कि ब्रिटेन को अपनी जनता की भोजन सामग्री और उद्योग-धन्धे चलाने के लिए कच्चे माल के लिए अपने साम्राज्य के देशों पर आश्रित रहना पड़ता है और इस प्रकार सात समुद्र पार के अपने साम्राज्य की रक्षा के लिए ब्रिटिश नौसेना ही सारे राष्ट्र के जीवन का आधार बन गयी। फिर जर्मनी भी अब परितृप्त राज्य न रह गया था। यह भी संसार की एक महान् शक्ति बनने का इच्छुक था। साथ ही युरोप के बाहर अन्य देशों में अपना राज्य स्थापित करने का जर्मनी को भी उतना ही अधिकार था जितना किसी अन्य राष्ट्र को। वह भी आफ्रिका में अपना साम्राज्य स्थापित कर चुका था तथा पूरब के देशों में एक प्रबल राष्ट्र का गौरव और स्थान प्राप्त कर चुका था इसलिए अन्य युरोपीय राष्ट्रों की ओर से जर्मनी की इस महत्त्वाकांक्षा पर प्रतिबन्ध लगाये जाने पर उसका असन्तुष्ट होना स्वाभाविक था। फिर २०वीं शताब्दी में जर्मनी की बड़ी प्रबल इच्छा थी कि उसके प्रयत्न से एशिया माइनर के आरपार बगदाद तक रेल पथ बन जाय; परन्तु इस रेल पथ के कारण ग्रेट-ब्रिटेन में बहुतों को यह भय लगा हुआ था कि कहीं तुर्की और जर्मनी में राजनीतिक सन्धि न हो जाय और जर्मनी तुर्की सेना को जर्मन सैनिक शिक्षा देकर एशिया माइनर और मेसोपोटामिया को अपने अधिकार में न कर ले। फिर अँगरेजों का इस प्रकार सशंकित होना बिलकुल अनुचित भी न था; क्योंकि ऐसी परिस्थिति में पूरब में उसका साम्राज्य और विशेष रूप से भारतवर्ष संकट में पड़ सकता था। इसलिए ब्रिटेन के अधिकारियों की राय थी कि जर्मन युरोप में सर्वशक्तिमान होने की चेष्टा में था और इसमें सफल होते ही वह अवश्य ब्रिटेन के सामुद्रिक प्रभुत्व मिटाने की भरसक कोशिश करेगा। इन सब आशंकाओं के साथ-साथ जर्मन कैसर तथा जर्मन अध्यापकों के उत्तेजक भाषणों ने ब्रिटेन को और भी भयभीत कर दिया और बहुतों को तो ऐसा भास होने लगा कि जर्मनी अपनी तलवार म्यान से निकाल कर रूस और फ्रान्स को धमकाना और अँगरेजों की शक्ति को ध्वंस करना चाहता है।

युरोपीय राज्यों से सन्धियाँ—इस तनातनी का परिणाम यह हुआ कि दक्खिनी आफ्रिका का युद्ध समाप्त होते ही ब्रिटेन ने युरोप की राजनीति से अलग रहने की अपनी नीति त्याग दी और अब उसने अन्य देशों से सन्धियाँ करना आरम्भ किया। रानी विक्टोरिया की मृत्यु के बाद एडवर्ड सप्तम अभी गद्दी पर बैठा ही था कि उसके व्यक्तित्व ने फ्रान्स को आकर्षित किया और दोनों देशों में राजनीति के खेल के लिए वातावरण उपस्थित हो गया। १९०४ ई० में फ्रान्स से एक सन्धि हुई जिसमें इन दोनों देशों के बीच सारे विरोध शान्त हो गये और फ्रान्स ने मिस्र में ग्रेटब्रिटेन के विशेषाधिकारों, दायत्वों और राष्ट्रीय हितों को स्वीकृत कर लिया। साथ ही ग्रेट-ब्रिटेन ने मरक्को में फ्रान्स के विशेषाधिकार को। उसी वर्ष १९०४ ई० में रूस और जापान में युद्ध हुआ। फ्रान्स की सहानुभूति रूस के साथ और ब्रिटेन की जापान के साथ थी।

१६०७ ई० में ब्रिटेन ने जापान के साथ एक सन्धि की जिसका उद्देश्य सुदूर पूर्व में शान्ति-स्थापना था। जब रूस जापान का युद्ध समाप्त हो गया तो रूस और ग्रेट-ब्रिटेन की सरकार में सन्धि की बातचीत होने लगी। १६०७ ई० में एक ऐसी व्यवस्था स्थापित हुई जिसके फलस्वरूप शीघ्र ही ग्रेट-ब्रिटेन, रूस और फ्रान्स की त्रिराष्ट्र मैत्री हो गयी। इस मैत्री में तीनों राष्ट्रों की नीति में सहयोगिता थी, सैनिक सहायता में नहीं इसलिये; ग्रेट ब्रिटेन, किसी मित्रराष्ट्र को सैनिक सहायता देने के लिए बाध्य न था।

आस्ट्रिया-हंगरी—इसी बीच में आसट्रिया हंगरी, जर्मनी और रूस के लिए बाल्कन प्रदेश की समस्या बड़ी जटिल हो रही थी। आस्ट्रिया हंगरी के बड़े साम्राज्य का निर्माण हैप्सबुर्ग घराने के विवाह-सम्बन्धों द्वारा हुआ था और इसमें युरोप की विभिन्न जातियाँ सम्मिलित थीं, जिनमें आस्ट्रिया में रहने वाले जर्मन, हंगरी के मेगियार और स्लाव मुख्य थे। इन स्लावों में बोहेमिया के चैक और गैलीशिया के पोल उत्तर में तथा दक्खिन के स्लोवेक, सर्ब और क्रोआट शामिल थे। इस प्रकार आस्ट्रिया हंगरी में द्वन्द्व साम्राज्य था। उसके विविध देश या तो हंगरी राज्य में शामिल थे अथवा आस्ट्रिया के साम्राज्य में। फिर हंगरी के राज्य पर मग्यारों का अधिकार था और ये अन्य जातियों को अपने में मिला लेने के पक्ष में थे। परन्तु आस्ट्रिया हंगरी में द्वन्द्व साम्राज्य था। उसके प्रति उपेक्षा का व्यवहार किया जाता था। वस्तुतः आस्ट्रिया और हंगरी के दक्खिनी भागों में रहने वाले स्लाव अपनी इस हेय परिस्थिति से असन्तुष्ट थे। इन दक्खिनी स्लावों की समस्या तीन प्रकार से सुलझ सकती थी। एक नीति थी स्लावों की जातीय चेष्टाओं को दबा कर जर्मन और मग्यारों को उत्कर्षशील बनाये रखना। पहले महायुद्ध तक ऐसा ही किया गया। दूसरी नीति थी दक्खिनी स्लावों को हैप्सबुर्ग शासन की अधीनता में आंशिक स्वराज्य दे देना। राज्य का उत्तराधिकारी आर्कड्यूक फ्रांज फर्डिनंड इस नीति का समर्थक था। और तीसरी नीति यह थी कि दक्खिनी स्लाव आस्ट्रिया हंगरी से एकान्त विच्छेद कर सर्बिया के सजातीयों से मिल जाते। सर्बों की यही सर्वजातीय नीति थी और यूगोस्लाविया को नया प्रदेश बना कर, महायुद्ध के बाद, मित्रराष्ट्रों ने इसी नीति का समर्थन किया था। सर्बिया की राजधानी बेलग्रेड इस समस्या को हल करने के आन्दोलन का केन्द्र थी और यहीं से इस सम्बन्ध में सारा प्रचार होता रहता था। इस आन्दोलन के युवकों पर ही विद्रोह फैलाने तथा आस्ट्रिया हंगरी के अफसरों की हत्या कराने का उत्तरदायित्व था। जब तक यह आन्दोलन रहता तब तक आस्ट्रिया हंगरी और सर्बिया के सम्बन्ध में विषमता रहना अनिवार्य था। अस्तु आस्ट्रिया हंगरी से राजनीतिज्ञों ने स्वभावतः एक ऐसे 'सर्बिया' के विकास का विरोध किया जिसकी महत्वाकांक्षाएँ द्वन्द्व-साम्राज्य के लिए बाधक थीं। इसलिए यही आन्दोलन के विरोध का कारण हुआ।

दुर्घटनाओं का युग (१६०६-१४ ई०)—किन्तु, यदि आस्ट्रिया हंगरी सर्बिया का शत्रु था तो रूस उसका संरक्षक था। रूस स्वयम् स्लाव शक्ति होने के नाते

बाल्कन प्रदेशों के स्लावों का समर्थक बनता था और रूसी राजनीतिज्ञ उस दिन का सुख स्वप्न देख रहे थे जब आस्ट्रिया हंगरी का साम्राज्य भंग होकर सर्व देशभक्तों की आशाएँ परिपूर्ण हों। इधर जर्मनी की तुर्कों के साथ घनिष्ठता बढ़ती जा रही थी। वह कुस्तुन्तुनियाँ पर राजनीतिक अधिकार कर लेने की चेष्टा में था। यह रूस के लिए बहुत ही विपत्तिजनक होता, क्योंकि रूस का सदा से यही ध्येय रहा है कि उसका अधिकार कान्स्टेन्टिनोपेल पर हो उसके लड़ाई के जहाजों के लिए डार्डनेल्स में होकर काले सागर में आने-जाने का स्वतन्त्र मार्ग निकल आये। इस प्रकार बीसवीं शती के आरम्भ की युरोप की स्थिति पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि इस लड़ाई की आग भड़कने के लिए बहुत कुछ मामला मौजूद था। जर्मनी और फ्रान्स में तो राइन प्रदेश पर अधिकार का प्रश्न लेकर परम्परा से शत्रुता चली आ रही थी। इसके अलावा जर्मनी को यह भी स्वीकार न था कि मरक्को पर फ्रान्स का साम्राज्य स्थापित हो। इस समय जर्मन व्यवसाय खूब उन्नति पर था और अँगरेजी व्यापार के साथ सारी दुनिया के बाज़ारों में उसकी होड़ा होड़ी चल रही थी। साथ ही जर्मनी के राजनीतिज्ञ भी अब विश्वव्यापी साम्राज्य स्थापित करने के सपने देखने लगे थे। इसलिए जर्मनी और ग्रेटब्रिटेन में सामुद्रिक प्रतिस्पर्द्धा बढ़ रही थी। फिर बर्लिन से बगदाद तक रेल पथ बनाने की योजना ने ब्रिटेन को और आशंकित कर दिया था। उधर बाल्कन प्रदेशों तथा रूस और सर्विया में एक ओर तथा आस्ट्रिया के और जर्मनी के स्वार्थों में दूसरी ओर से विरोध था। ऐसी परिस्थिति में १० वर्षों के भीतर ४ दुर्घटनाएँ हुईं। दो बार तो मरक्को के प्रश्न पर युद्ध होते-होते बचा। सन् १६०१-२ में मरक्कों के पुराने विचार के लोगों ने सुलतान के विरुद्ध इसलिए विप्लव कर दिया कि उसने मोटरकार पर चढ़ना और युरोपीय ढंग से रहना शुरू कर दिया था। इस पर फ्रांस ने यह प्रस्ताव किया कि उसे इस देश पर धीरे-धीरे अधिकार जमाने दिया जाय। यह बात इंग्लैंड और स्पेन ने तो स्वीकार कर ली, परन्तु जर्मनी ने यह कह कर झगड़ा करना शुरू किया कि इस मामले में उसकी अनुमति नहीं ली गयी थी। आख़िर ऐल्जियर्स में युरोपीय राष्ट्रों की एक कान्फ्रेन्स बैठी, जिसमें यह निश्चित किया कि स्पेन और फ्रान्स मिलकर समुद्रतट के नगरों की रक्षा के लिए सशस्त्र पुलिस का प्रबन्ध करें और यही दोनों देश वहाँ की चुंगी की देखभाल रक्खें। १६०७ में मुरक्को ने युरोपीयों के विरुद्ध विप्लव खड़ा कर दिया। तब सुलतान को हटाकर उसके भाई को राज्य-सिंहासन पर बैठाया गया; परन्तु १६०६ ई० में स्पेन ने लड़ाई छेड़ दी। आख़िर जर्मनी और फ्रान्स में समझौता हो गया, जिसके अनुसार दोनों देशों ने मुरक्को की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली; परन्तु १६०८ ई० में फ्रान्स ने फिर हस्तक्षेप करना शुरू किया। इस पर जर्मन गनबोट अगादिर में आ पहुँची और फ्रान्स और ब्रिटेन के साथ जर्मनी की लड़ाई ठन जायगी ऐसा भास होने लगा। अन्त में फ्रान्सीसी काङ्गो में कुछ विशेषाधिकारों के बदले जर्मनी यह मान लेने पर तैयार हो गया कि मुरक्को फ्रान्स का रक्षित राज्य रहे।

१८१५ में सर्वियनों ने तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध विप्लव कर १५ वर्ष के भीतर तुर्की को इस बात पर मजबूर कर दिया कि वह सर्विया को स्वतन्त्र राज्य मान ले। १८४१ ई० में सर्वियनों के राष्ट्रीय-विकास में देश की बहुत उन्नति हुई और देश खुश-हाल होने लगा। १८६७ ई० में अन्तिम तुर्की सेना सर्विया की भूमि से चली गयी। १८७५ ई० में सर्विया ने तुर्की के विरुद्ध बोस्निया और हर्जिगोविना के विप्लवकारियों को सहायता दी जिसके फल स्वरूप उसे तुर्की सेना से बुरी तरह पराजित होना पड़ा और रूस की सहायता से सन्धि करके अपनी जान छुड़ानी पड़ी। १८७८ ई० की बर्लिन की सन्धि से सर्विया को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। आस्ट्रिया ने जब सर्विया की निर्यात पर नियन्त्रण करना चाहा तो इन दोनों में तनातनी हो गयी। १६०८ ई० में आस्ट्रिया-हंगरी ने बोस्निया और हर्जिगोविना को, जिनका शासन प्रबन्ध १८७८ ई० की बर्लिन की सन्धि में आस्ट्रिया-हंगरी को दे दिया गया था, अपने राज्य में मिला लिया। इन प्रदेशों में अधिकांश सर्व लोग रहते थे। बोस्निया के बहुत से निवासी सर्व-जाति के जो सब दक्खिनी 'स्लाव' जातियों को एक स्वतन्त्र राज्य में सगठित हुआ देखना चाहते थे इसलिये आस्ट्रिया हंगरी के प्रति रूस और सर्विया का रोष बहुत बढ़ गया। १६१२ ई० में बाल्कन लीग भी इसी कारण बनी और रूस की सहायता पाकर सर्विया और बलगारिया तथा मान्टिनीग्रो में मैत्री सन्धि स्थापित हुई। १६१२-१३ ई० में बाल्कन में युद्ध छिड़ गया और सर्विया, बलगारिया यूनान और मोन्टीनीग्रो तुर्की के विरुद्ध एक हो गये। इस समय तुर्की युद्ध के लिये पूरी तरह तैयार नहीं था क्योंकि पिछले विप्लव के बाद से तुर्की को अपनी सेना के सगटन करने का अवसर ही न मिल पाया था। किन्तु तुर्की को कुस्तुन्तुनिया तक हटा देने के बाद इन राष्ट्रों में राज्य-विभाजन पर इसलिए झगड़ा खड़ा हो गया कि इनमें से हर एक अपने लिए उचित से अधिक भाग लेना चाहता था। बलगारिया की राज्य-लोलुपता ने शेष सब बाल्कन राष्ट्रों को उसके विरुद्ध कर दिया और १६१३ ई० में इन राज्यों में आपस में युद्ध छिड़ गया। यद्यपि बलगारिया और तुर्की लंडन की सन्धि की शर्तें मानने को तैयार थे; परन्तु यूनान और सर्विया उनसे सहमत न थे। इन दोनों राज्यों की सेनाएँ तो मैसेडोनिया पर अधिकार करने की चेष्टा में लगी हुई थीं। बलगार मैसिडोनिया में हार कर सोफिया पर पीछे ढकेले जाने पर अब थ्रेस में से अपनी सेनाएँ हटा लेने को मजबूर हो गये थे। मौका देख कर अनवर बेग की तुर्की सेना ने बलगारियों को बुरी तरह हरा कर एड्रिया-नोपेल पर फिर अधिकार कर लिया और वहाँ से सारी बलगार प्रजा को निकाल बाहर किया। तुर्की की यह विजय वास्तव में अँगरेजों की नीति पर जर्मनी की विजय समझी जानी चाहिये; क्योंकि इस समय जर्मनी ही तुर्की सेनाओं के सधाने के काम में लगा हुआ था और सारी सेना की बागडोर जर्मन मिशन के हाथ में थी। आखिर बुखारेस्ट की सन्धि में रूमानिया को भी उत्तर पूर्वी प्रदेश को छोड़ देना पड़ा। इन लड़ाइयों के फलस्वरूप अल्बानिया स्वतन्त्र राज्य हो गया, यूनान सर्विया और मान्टिनीग्रो के राज्य

दूने हो गये, बलगारिया ने तुर्कों के कुछ प्रदेश पर अधिकार पा लिया और रूमानिया ने बलगारिया का प्रदेश दबा लिया। इन्हीं सब कारणों से थ्रेस और एड्रियानोपेल छोड़ कर उसे तुर्कों से सन्धि करनी पड़ी। १९१४ ई० में बाल्कन प्रदेशों में अशान्ति बनी हुई थी, क्योंकि रूस और जर्मनी में खुले खुले, अँगरेज़ों और जर्मनी में परोक्ष से कुस्तुन्तुनिया के अधिकार पर प्रतिस्पर्द्धाएँ चल रही थीं। बाल्कन प्रायद्वीप में रूस और आस्ट्रिया-हंगरी की नीति परस्पर विरोधी थी। सर्बिया या आस्ट्रिया हंगरी के आक्रमण को रोकने के लिये रूस एक ओर रूमानिया, यूनान और सर्बिया का संघ बनाने की योजना कर रहा था, तो दूसरी ओर सर्बिया को पृथक करने के लिए तथा उसकी समस्त 'सर्व जातीय' उन्नति की महत्वाकाँक्षाओं को रोकने के लिये आस्ट्रिया हंगरी, रूमानिया, यूनान और बलगारिया का संघ बनाने की चेष्टा में लगा था। इधर सर्बिया की सरकार तो रूस की सहायता के भरोसे ज़बरदस्ती यूगोस्लाव राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रही थी और उधर बोस्निया और अन्य स्लाव प्रदेशों में आस्ट्रिया हंगरी के विरुद्ध गुप्त संस्थाएँ काम कर रही थीं। ऐसी विषम परिस्थिति में जून १९१४ ई० में आस्ट्रिया हंगरी के सिंहासन के उत्तराधिकारी ने बोस्निया की राजधानी सेराजिवो में सैनिक व्यूह रचना का निरीक्षण करने का विचार किया। रविवार २८ जून को आर्कड्यूक सेराजिवो में पधारे और जुलूस में जाते समय उनकी हत्या कर दी गयी।

सर्बिया और षड्यन्त्र सर्बिया की सरकार को शायद इस षड्यन्त्र का कुछ ज्ञान न हो परन्तु निस्सन्देह उसके कुछ सैनिकों और अन्य अफ़सरों ने इसमें सहायता दी थी। किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं कि सर्बिया का मन्त्रिमंडल इस प्रकार की हत्या करना चाहता था या (भले ही उसकी आकांक्षाएँ कुछ भी रही हों) उसने षड्यन्त्रकारियों को प्रोत्साहित किया था। सर्बिया तो उस समय शान्ति चाहता था परन्तु इस समय बेलग्रेड में 'ब्लैक हैंड' नाम की एक गुप्त क्रान्तिकारी संस्था थी जिसमें सर्बिया की सेना के कई नायक और कई छोटे मुल्की अफ़सर भी शामिल थे। इस संस्था का उद्देश्य था किसी भी प्रकार दक्खिनी स्लाव जातियों में ऐक्य स्थापित कराना। इसकी मुहर पर बिना खुला झंडा बना था, जिसमें दो आड़ी और एक दूसरी पर रखी हुई हड्डियों पर एक खोपड़ी रखी थी और एक खंजर, बम्ब का गोला और विष की बोतल का चित्र बना था। इस संस्था के कई सदस्यों की सहायता से, जिनमें सर्बियन सेना की गुप्त शाखा का एक अफसर भी शामिल था, बोस्निया के रहनेवाले तीन नवयुवकों को बम्ब और पिस्तौल देकर सर्बिया की सरकार के सीमान्त के अफ़सरों की निगाह बचाकर आर्कड्यूक की हत्या करने के लिए सेराजिवो के रास्ते में गुप्त रूप से खड़ा कर दिया गया था। जब आर्कड्यूक फर्डिनेंड की सवारी सेराजिवो के राजपथ पर होकर जा रही थी तो एक युवक ने उस पर एक बम्ब फेंका जो ड्यूक की मोटर से टकरा कर पिछली मोटर के सामने फटा और उससे एक अफ़सर और कई तमाशा देखने वाले घायल हो गये। ड्यूक की सवारी टाउनहाल में पहुँची और वहाँ नगर के मेयर ने उसका

स्वागत किया। लौटने पर ड्यूक की मोटर का ड्राइवर ग़लत रास्ते पर जाने लगा और जब उसे यह बात बतलायी गयी तो उसने ठीक रास्ते की ओर मुड़ने के लिये ब्रेक दबायी। इतने ही में दूसरे युवक प्रिन्सेप को जो अवसर मिला तो उसने पिस्तौल से दो फ़ायर किये और ड्यूक और उसकी पत्नी को वहीं ठंडा कर दिया।
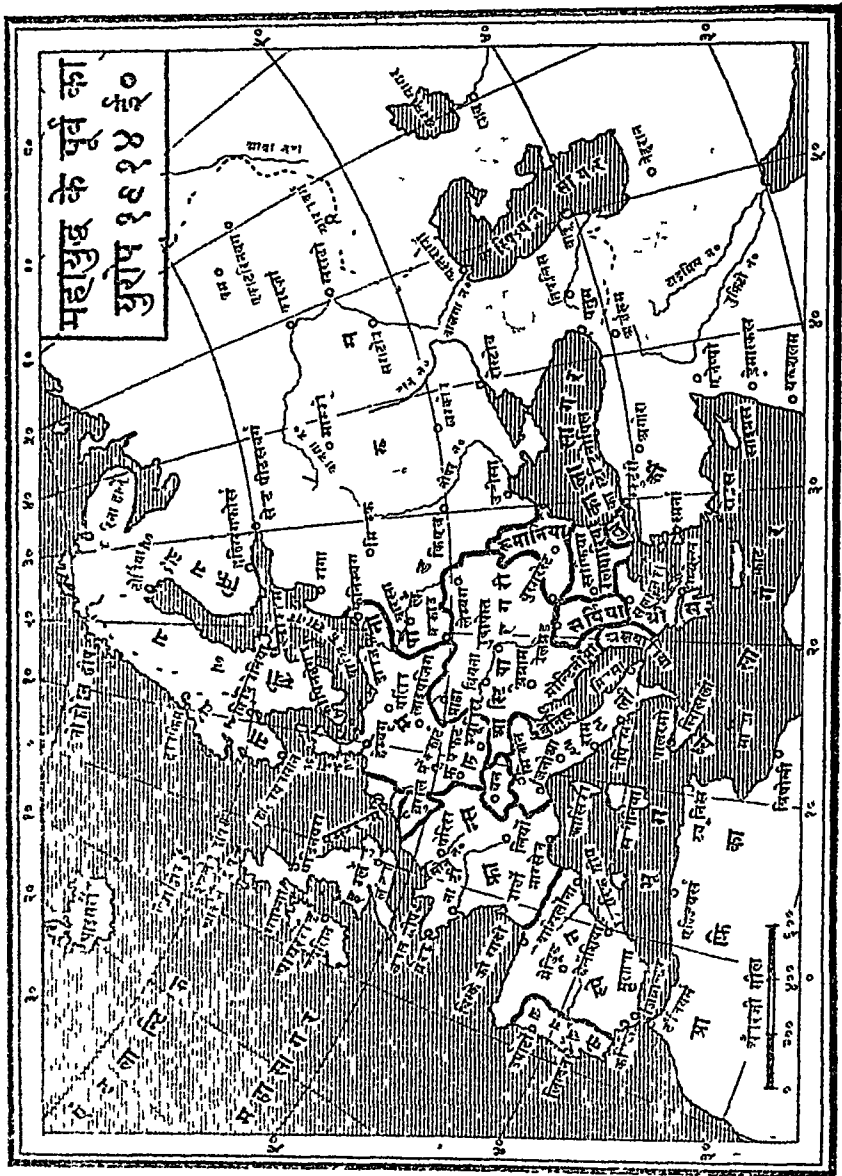
**युरोपीय शक्तियों के विरोधी दल**—हम देख चुके हैं कि सन् १९१४ में युरोपीय शक्तियों ने आपस में मैत्री सन्धियाँ करके यह राजनीतिक स्थिति उपस्थित कर

दी थी कि प्रायः सारा युरोप तीन विभिन्न विरोधी दलों में बँटा हुआ था। इनमें सब से पहला विरोधी दल था जर्मन-फ्रान्सीसी जिसकी शत्रुता तो बहुत प्राचीन समय से चली आती थी, परन्तु इधर सन् १८७१ के बाद संयुक्त जर्मन साम्राज्य के विकसित होने तथा फ्रैंकफोर्ट की सन्धि की शर्तों के अनुसार आल्सेस लोरेन के छिन जाने से और भी बढ़ गयी थी। इस अमैत्री की कटुता बिस्मार्क की युद्ध-निरोधी धमकियों तथा मुरक्को को फ्रान्स का रक्षित राज्य बन जाने से रोकने के प्रयत्नों के कारण बहुत भयानक होती जा रही थी। इस सम्बन्ध में जर्मनी का कहना था कि जिस प्रकार फ्रान्स ने इंग्लैंड और इटली के साथ आफ्रिका के साम्राज्य विस्तार के सम्बन्ध में समझौता किया उसी प्रकार उसे जर्मनी से भी कर लेना चाहिए था। इसके फल स्वरूप सन् १९११ में जर्मनी को मुआविजा तो मिल गया, परन्तु दोनों जातियों में मनमोटाव बना रहा और दोनों देशों की शस्त्रास्त्र से सुसज्जित रहने की स्पर्द्धा में कोई अन्तर न पड़ा।

दूसरा विरोधी दल था आस्ट्रिया-रूसी जिनमें झगड़ा तो बहुत पहले से चला आ रहा था, परन्तु १९०८ ई० से यह बहुत तीव्र हो चला था। रूस ने बाल्कन की स्लाव जातियों को तुर्कों के विरुद्ध उभाड़ कर उन्हें अपना राष्ट्रीय राज्य स्थापित करने का सुअवसर दिलाया था और अब वह सर्विया को यह आशा दिलाये हुए था कि उसे शीघ्र ही आस्ट्रिया-हंगरी राज्य का दक्खिनी स्लाव प्रदेश प्राप्त हो जायगा। इधर रूस अगले युरोपीय युद्ध में कान्स्टेन्टिनोपेल और दरे दानियाल पर जबरदस्ती अधिकार कर लेने की घात में था। उधर आस्ट्रिया हंगरी ने सर्विया की वृद्धि से और विशेष रूप से दक्खिनी स्लावों में ऐक्य स्थापित करने वाले आन्दोलन से भयभीत होकर सन् १९०८ में बोस्निया और हर्जिगोविना को अपने राज्य में मिला लिया था। आस्ट्रिया ने बोस्निया में दक्खिनी स्लाव आन्दोलन का बड़ी कठोरता से दमन किया और अपनी स्लाव प्रजा की न्यायोचित कठिनाइयों पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। इस पर बाल्कन में जो कांड उपस्थित हुआ उसके अन्त में सर्विया ने यह विश्वास दिलाया कि वह उत्तर में आस्ट्रिया-हंगरी के राज्य में आन्दोलन को न बढ़ने देगा। इधर आर्मीनिया और मिस्र पर अधिकार के विषय में अँगरेज़ों और तुर्कों का झगड़ा बढा और इससे लाभ उठा कर जर्मनी ने तुर्क साम्राज्य का हिमायती बन आर्थिक प्रवेशाधिकार की नींव जमानी शुरू कर दी और बर्लिन से बग़दाद तक रेल-पथ बनाने की योजना तैयार की। इस प्रकार बाल्कन प्रायद्वीप में एक ओर रूस सर्विया को जिस उद्देश्य से उकसा रहा था उसे आस्ट्रिया या तो नष्ट कर देता या स्वयम् अपना विनाश कर लेता; दूसरी ओर जर्मनी तुर्कों को सशक्त बना कर उत्तरी सागर से ईरान की खाड़ी तक एक ऐसी परिस्थित उत्पन्न किये दे रहा था जो रूस की कान्स्टेन्टिनोपेल और डार्डनेल्स सम्बन्धी आकांक्षाओं से तथा दूर-पूरब में अँगरेजों और रूसियों दोनों शक्तियों के हितों के विरुद्ध पड़ती थी और भारतवर्ष को तो इससे सीधा ख़तरा पहुँचता था। इस परिस्थिति की पृष्ठ-भूमि पर सन् १८७९ की आस्ट्री जर्मन मैत्री सन्धि, १८८२ ई० की आस्ट्रीय-जर्मन-इतालवी त्रिपक्ष

सन्धि और सन् १८९३ की फ्रान्सीसी रूसी सन्धियाँ अवलम्बित हुईं। वास्तव में यह सब सन्धियाँ स्वरक्षापरक थीं।

तीसरा विरोधी दल था एँग्लो-जर्मन जिसका विरोध बहुत थोड़े ही समय से प्रारम्भ हुआ था। सन् १८९४ तक इंग्लैंड ने बराबर जर्मनी का साथ दिया था और इस बीच में कई बार इन दोनों देशों में सन्धि स्थापन की चरचा चल चुकी थी। इसके बाद सन् १८९५ से १९०५ ई० तक जर्मनी ने सुदूर पूर्व के मामलों में रूस का साथ देकर और बाल्कन में रूस और आस्ट्रिया का विरोध घटाकर अपनी स्थिति ऐसी बना ली कि वह इंग्लैंड पर रौब जमाने लगा और सन् १८९८-१९०२ ई० में तो उसने चेम्बरलेन द्वारा प्रस्तावित सन्धि की कार्रवाई पर अपना अविश्वास और अविवेक प्रकट कर इस भावना का पूरा समर्थन कर दिया। उधर दूसरे बोअर युद्ध के समय इंग्लैंड विरोधी युरोपीय दल बनते-बनते रह गया। ऐसी परिस्थिति में फ्रान्स और रूस को अपना विरोधी रखना युक्तियुक्त न समझ कर ब्रिटेन ने अपनी नीति में परिवर्तन करना आवश्यक समझा। जब ब्रिटेन की जर्मनी से न पटी तो उसने जापान, फ्रान्स और रूस से मैत्री का प्रस्ताव किया। इसी समय इंग्लैंड और जर्मनी में फिर सन्धि की वार्ता शुरू हुई परन्तु अब ब्रिटेन बहुत कुछ विरोधी दल में सम्मिलित हो चुका था और इससे भी अधिक जर्मनी और इंग्लैंड के बीच अब नौसैन्य विस्तार के कारण स्पर्द्धा चल चुकी थी। इसलिये इस प्रयत्न में कोई सफलता नहीं हुई। फिर १९०५ ई० में टाञ्जियर के झगड़े पर तो प्रतीत होने लगा था कि जर्मनी और इंग्लैंड में युद्ध अनिवार्य सा है। इसी समय अँगरेजों को जर्मन नौ सेना की वृद्धि से बड़ी आशङ्का होने लगी क्योंकि १९०६ ई० में जैसे ही ब्रिटेन ने अपना सबसे पहला ड्रेडनाट बनाया कि जर्मनी ने भी इसका अनुकरण किया और अपना ड्रेडनाट बना डाला। इससे इंग्लैंड को और भी अधिक खटका हुआ और जब उसकी ओर से नाविक-शक्ति-विस्तार के नियन्त्रण पर समझौते का प्रस्ताव उपस्थित किया गया तो जर्मनी की ओर से उसकी उपेक्षा होने के कारण १९०९ से इस स्पर्द्धा ने बड़ा जोर पकड़ना शुरू किया। इसके बाद भी इसी प्रकार के कई प्रयत्न हुए परन्तु हर बार दोनों देशों के लड़ाई के जहाजों की संख्या को निर्धारित करने की बाधा आ उपस्थित होती और कोई समझौता न हो पाता। उधर जर्मनी की तरफ से ब्रिटेन के साथ राजनीतिक सन्धि के प्रस्ताव पर ब्रिटेन की ओर से इसलिए इनकार होता कि उससे उसकी अन्य युरोपीय राष्ट्रों के साथ की हुई सन्धियाँ शिथिल पड़ जातीं। इधर मुरक्को के प्रश्न पर १९०४ ई० में फ्रान्स और इंग्लैंड में जो समझौता हुआ। उससे इस अँगरेज फ्रान्सीसी तथा फ्रान्सीसी जर्मन विरोध में एक और गुत्थी लग गयी और इंग्लैंड और फ्रान्स की मैत्री दिन प्रतिदिन दृढ़ होती गयी। इस के बाद सन् १९०६ में फ्रान्स और इंग्लैंड में सैनिक सहयोग स्थापित हुआ और फिर १९१२ ई० में दोनों देशों की जल सेनाओं की सहकारिता स्थापित हो गयी। साथ ही संसार भर में इन दोनों देशों के राजनीतिक सहयोग ने इस मेल-मिलाप को अब घनिष्ट मैत्री में

बदल दिया—यहाँ तक कि फ़्रान्स की योजना में उसके उत्तरी सीमान्त और भूमध्य सागरी तट प्रदेश की रक्षा का भार इंग्लैंड को भी सँभालना पड़ा। उधर अँगरेज़ जर्मन और आस्ट्रीय रूसी विरोध के पक्ष में १९०७ ई० में अँगरेज़ रूसी मैत्री सन्धि हुई जिसमें मैसोपोटामिया और ईरान में जर्मनी के विरुद्ध इन दोनों देशों ने एक दूसरे की सहायता करना स्वीकार किया यद्यपि निकट पूरब के देशों (तुर्की और मिस्र) के विषय में कोई समझौता न हो सका।

इटली पिछले १२ बरस से इस त्रिगुट मैत्री संघ का सदस्य तो बना रहा परन्तु उसका व्यवहार सदा अनिश्चित रहा। आँतॉत शक्तियों के साथ त्रिपोली के प्राप्त करने के सम्बन्ध में इटली की राजनीतिक उहापूह और आस्ट्रिया के विरुद्ध इतालवी रियासतों को मिलाकर अपने राष्ट्रीय विकास की चिन्ताशील सतर्कता ने जर्मनी आस्ट्रिया को इटली की ओर से निश्चित न रहने दिया। यही बात रूमानिया के सम्बन्ध में भी सत्य थी—यद्यपि पिछले ३० बरसों से वह भी इस मैत्री-संघ में सम्मिलित चला आ रहा था। इसका मुख्य कारण था हैप्सबुर्ग साम्राज्य में उसके सबसे बड़े प्रदेश का मौजूद होना और रूमानिया का इस पर दाँत रहना। परन्तु जर्मनी की पिछले २० बरसों की मित्रता और रूस की कुभावनाओं के कारण तुर्की की प्रवृत्ति किस ओर थी इनमें किसी को शक नहीं था। इस प्रकार फ्रान्स, रूस और सर्बिया के साथ इंग्लैंड और उसके मित्र जापान का मुक़ाबला था। जर्मनी आस्ट्रिया और तुर्की के साथ। यद्यपि इटली और रूमानिया भी इन तीनों शक्तियों के साथ सन्धि की शर्तों के अनुसार थे, परन्तु इन दोनों की स्थिति सन्दिग्ध ही थी। इन दोनों दलों में ऐसे राज्य शामिल थे जिनकी राजनीति पर उनकी जनता का नियन्त्रण तो था बहुत कम परन्तु उनके स्थल और जलसेना विभाग के विधाताओं का बड़ा ज़ोर था। यह नहीं था कि इन विरोधी दलों के राजनीतिक दाँव पेचों के कारण कोई भी साधारण घटना सारे युरोप को युद्धाग्नि में ढकेल देगी, इसका आभास न हुआ हो और फिर मुराक्को और बाल्कन प्रदेशों की दुर्घटनाओं के समय तो इसका पूरा पूरा अनुभव हो गया था। इसलिए दोनों ही तरफ़ से इस दलबन्दी को तोड़ने की चेष्टाएँ हुईं, परन्तु शत्रु देशों के प्रति गहरा अविश्वास और मित्र देशों द्वारा साथ छोड़ देने के भय ने इन्हें सफल मनोरथ न होने दिया। सर एडवर्ड ग्रे ने कई बार युरोपीय संघ बनाने की योजना करके इन विरोधी दलों की बढ़ती हुई द्वन्द्व भावनाओं को रोकने की चेष्टा की। परन्तु उसे भी कोई सफलता न मिली। इसका कारण यह था कि यद्यपि मुराक्को और बग़दाद के रेल-पथ वाले मामले एक प्रकार से तय हो गये फिर भी इंग्लैंड और जर्मनी की नौसेना विस्तार सम्बन्धी स्पर्द्धा चलती रही। क्योंकि अब परिस्थिति ऐसी हो गयी थी कि न तो इंग्लैंड ही यह दुस्साहस करने को तैयार था कि अपने मित्रदल (आँतॉत) को छोड़ दे और न ही जर्मनी को जो चारों ओर से सशक्त शत्रु दलों से घिरा था यह साहस होता था कि वह अपने नौ-सेना-विस्तार को रोक दे।

फिर आस्ट्रिया रूसी विरोध बराबर दृढ़ होता जा रहा था क्योंकि जहाँ एक ओर पोइँकारे के फ्रान्स के प्रोत्साहन से रूस बाल्कन प्रायद्वीप में हस्तक्षेप करने को तुला बैठा था वहाँ दूसरी ओर हैप्सबुर्ग सरकार यह समझे हुई थी कि उसके सामने जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित है और इसलिए उसके लिए युद्ध करना अनिवार्य सा है। आस्ट्रिया को जर्मनी के सहारे पर पूरा भरोसा था क्योंकि उसके लिए सिवाय इसके कि वह उसकी सहायता करे या अपने मित्र-संघ का अहित करे और कोई रास्ता ही न रह गया था। अस्तु इस महायुद्ध के कारणों के पीछे आस्ट्रीय-रूसी विरोध ही सबसे प्रमुख कारण था।

आस्ट्रिया-हंगरी का अल्टीमेटम—आर्कड्यूक की हत्या होते ही आस्ट्रिया ने तुरन्त सर्विया पर इसका दोषारोपण करने की चेष्टा की और उसके वैदेशिक मन्त्री ने 'वृहत् सर्विया आन्दोलन' को इस हत्याकांड का उत्तरदायी ठहराया और उसको रोकने का प्रस्ताव किया। उसने तो यहाँ तक कह डाला कि दक्खिनी स्लावों की भूमि को आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य से पृथक करने के 'सर्व' आन्दोलन को दबाने का यही उपयुक्त समय है; क्योंकि सर्विया के इस आन्दोलन से द्वन्द्व साम्राज्य के नष्ट होने की आशंका है। सर्विया के राजनीतिक आन्दोलन को दाबने के विषय में जर्मनी से भी सम्मति ली गयी, परन्तु जर्मनी के शासक आस्ट्रिया हंगरी की शक्ति को बनाये रखना अपने लिए आवश्यक समझते थे इसलिए जर्मनी ने सहायता का वचन देकर आस्ट्रिया-हंगरी को उचित कार्रवाई करने की अनुमति दी। जर्मनी को आस्ट्रिया की युद्धाकांक्षाओं का पूरा गुमान था और वह समझता था कि सर्विया अल्टीमेटम की शर्तों को कभी न मानेगा। परन्तु इस निर्णय से जर्मनी के शासकों ने दो भयंकर भूलें की। वे समझते थे कि रूस का हस्तक्षेप निश्चित होते हुए भी सम्भाव्य न था, क्योंकि रूस युद्ध के लिए तैयार नहीं था। दूसरे उनको निश्चय था कि ग्रेट ब्रिटेन इस झगड़े में निष्पक्ष रहेगा। आस्ट्रिया को अभी तक यह आशा थी कि सर्विया को दोषी ठहराया जायगा दूसरे उसे हंगरी के प्रधान मन्त्री की अनुमति भी प्राप्त करनी थी। इसके मिलते ही और जर्मनी से सहायता का वचन पाकर आस्ट्रिया-हंगरी ने २३ जुलाई को सर्विया को अल्टीमेटम दे दिया। क्योंकि उसका विचार था कि पेशतर इसके कि अाँताँत शक्तियाँ कोई हस्तक्षेप कर सकें उसे अपनी इस चाल को चल देना चाहिए।

इस अल्टीमेटम के उत्तर की अवधि केवल ४८ घंटे थी और आस्ट्रिया हंगरी ने यह अवधि बढ़ाना अस्वीकृत कर दिया। यद्यपि सर्विया की गवर्नमेन्ट ने कई शर्तें मान ली और काफी झुक गयी, फिर भी आस्ट्रिया-हंगरी का राजदूत बेलग्रेड से चल दिया और आस्ट्रिया-हंगरी में युद्ध की तैयारी हो गयी। इस पर रूस का विचार हुआ कि इस बेजोड़ युद्ध मे सर्विया के समाप्त हो जाने का अर्थ होगा बाल्कन में आस्ट्रिया-हंगरी का बोलबाला होना और रूस की महाशक्ति का ह्रास; इसलिए उसने सर्विया को सहायता देने का निश्चय किया। जर्मनी आस्ट्रिया-हंगरी के पक्ष में था और फ्रान्स

त्रिराष्ट्र सन्धि की शर्तों के अनुसार रूस की सहायता करने को बाध्य था। इस प्रकार जर्मनी द्वारा रक्षित आस्ट्रिया-हंगरी एक ओर रूस फ्रान्स की सहायता-प्राप्त सर्बिया दूसरी ओर से रणक्षेत्र में उतर आये। इस परिस्थिति में भी ये सब शक्तियाँ ग्रेटब्रिटेन का रुख देख रही थीं और जर्मनी और आस्ट्रिया-हंगरी का कहना था कि यदि ग्रेट ब्रिटेन यह घोषणा कर देगा कि रूस और फ्रान्स के साथ वह भी बँधा हुआ है तो जर्मनी, आस्ट्रिया हंगरी के राजा को समझौता कर लेने पर मजबूर करेगा और यदि ग्रेट ब्रिटेन अपनी उदासीनता घोषित कर देगा तो रूस भी हस्तक्षेप न करेगा और आस्ट्रिया-हंगरी और सर्बिया के बीच ही रहेगा तथा सर्बिया को दंड देकर आस्ट्रिया हंगरी उससे भूमि का तावान तक न लेगा। रूस के वैदेशिक मन्त्री का भी यही कहना था कि यदि ग्रेट ब्रिटेन रूस और फ्रान्स का साथ देगा तो देशव्यापी युद्ध न छिड़ सकेगा; परन्तु अगर इस अवसर पर ग्रेट ब्रिटेन की तरफ से कोताही की गयी तो युद्ध अवश्यम्भावी है और युरोप भर में रक्तपात हो जायगा। किन्तु इंग्लैंड के वैदेशिक मन्त्री लार्ड ग्रे ने इन दोनों में से कोई रास्ता न पकड़ा, क्योंकि युरोपीय युद्ध में हस्तक्षेप के विषय में मन्त्रिमंडल में मतभेद था और ग्रे को आशंका थी कि सम्भव है पार्लियामेन्ट और ब्रिटेन की जनता भी इसी मत की रहती। फिर ग्रेटब्रिटेन बाल्कन प्रदेशों में आस्ट्रिया का नेतृत्व बनाये रहने के पक्ष में था और यह न समझता था कि ऐसा करने से जर्मनी युरोप भर का अगुआ बन जायगा।

**समझौते की असफल चेष्टाएँ**—फिर भी ग्रे ने समझौते का बहुत प्रयत्न किया। उसने जर्मनी, फ्रान्स, इटली और ग्रेट ब्रिटेन आदि उन राष्ट्रों की कान्फ्रेन्स का प्रस्ताव किया जिनका युद्ध से सीधा सम्बन्ध न था। ग्रे तो यहाँ तक तैयार था कि आस्ट्रिया बेलग्रेट पर अधिकार कर ले और तब सारा मामला राष्ट्रों के सामने पंच-फैसले के लिए पेश हो। अगर आस्ट्रिया को यह भी स्वीकृत न हो तो रूस और आस्ट्रिया में सीधी बातचीत करा दी जाय। परन्तु कभी जर्मनी तो कभी आस्ट्रिया ने किसी न किसी बात को अस्वीकृत कर ग्रे की सारी चेष्टाओं को विफल करा दिया। इसके साथ ही एक नयी उलझन और भी खड़ी हो गयी। जर्मनी ने जब यह देखा कि इस लड़ाई में सम्भवतः ग्रेट ब्रिटेन निष्पक्ष न रह सकेगा और उसे यह भी मालूम हो गया कि सर्बिया ने अधिकांश शर्तें अल्टीमेटम की मान ली हैं तो उसने आस्ट्रिया पर दबाव डालने की चेष्टा की और उधर रूस की सैनिक तैयारियाँ रोकने के लिए उसे चेतावनी दी, परन्तु आस्ट्रिया ने कोई उत्तर न दिया क्योंकि रूस की भाँति उस का भी दृढ़ निश्चय हो गया था कि अब युद्ध न रुक सकेगा। इधर आस्ट्रिया की सर्बिया के विरुद्ध युद्ध घोषणा का यह फल हुआ कि रूस ने सारे देश में सैनिक तैयारियों की आज्ञा निकाल दी। इस पर जर्मनी ने भी सैनिक तैयारियों की आज्ञा निकाली और रूस को २४ घंटे के भीतर सैनिक तैयारियाँ बन्द करने की धमकी दी। फ्रान्स ने जर्मनी

को कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया परन्तु चुपके से अपनी सैनिक तैयारी की आज्ञा निकाल दी। उधर रूस ने भी अपनी तैयारियाँ रोकने से इनकार कर दिया। इस प्रकार अब युद्ध का केन्द्र सर्बिया न रह गया और रूस के सैनिक तैयारियाँ न रोकने के कारण जर्मनी को जो आस्ट्रिया हंगरी के मैत्री दल में था रूस के विरुद्ध १ली अगस्त को युद्ध-घोषणा करनी पड़ी। जर्मनी की सारी युद्धनीति इस बात पर निर्भर थी कि वह अपनी सैनिक तैयारी इतनी फुर्ती से कर ले कि रूस के तैयार होते-होते वह फ्रान्स को हरा दे। यही कारण था कि जर्मन जनरल स्टाफ़ ने फ्रान्सीसी सीमान्तों पर से सेना हटाने की अनुमति न दी और आख़िर दो दिन बाद जर्मनी को फ्रान्स के विरुद्ध भी युद्ध-घोषणा करनी पड़ी और अपनी युद्धनीति के अनुसार फ्रान्स पर आक्रमण करने के लिए उसे बेलजियम में हो कर अपनी सेना के लिए रास्ता माँगना पड़ा। यह सत्य है कि १८३६ में ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स, आस्ट्रिया, प्रशिया और रूस ने इस बात का आश्वासन दिलाया था कि इनमें से हर एक शक्ति बेलजियम की निष्पक्षता का ध्यान रक्खेगी और उसे सुरक्षित रखना अपना कर्त्तव्य मानेगी। यह भी निश्चय है कि इसके बाद १८७१ ई० में ग्लेडस्टन मन्त्रिमडल ने पहले प्रशिया से और फिर फ्रान्स से यह सन्धि की थी कि दोनों देश बेलजियम को निष्पक्ष रखेंगे और अगर इनमें से कोई भी शक्ति इसके विरुद्ध आचरण करे तो ग्रेट ब्रिटेन दूसरी शक्ति की सहायता से बेलजियम की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझेगा। इसलिए जब जर्मनी ने बेलजियम को अल्टिमेटम देकर उस पर आक्रमण किया तो ब्रिटेन को भी युद्ध में सम्मिलित होना अनिवार्य हो गया। आख़िर २ अगस्त को ब्रिटेन ने जर्मनी को अल्टीमेटम दे दिया।

युद्ध का उत्तरदायित्व—हम देख चुके हैं कि जिन कारणों से महायुद्ध के पहले बहुत बरसों से युरोप का राजनीतिक वातावरण विक्षुब्ध और संकटाकीर्ण रहा। सब देशों में राष्ट्रीयता की भावनाएँ प्रखर होती जा रही थीं, आपत्तियाँ बढ़ती जा रही थीं और दुर्घटनाएँ मानों मँडराती थीं। और उन सब के ऊपर युरोपीय राज्यों की युरोप में और युरोप के बाहर दिग्विजय की महत्त्वाकांक्षाएँ दिन प्रति दिन बढ़ती चली जा रही थीं। युद्ध छेड़ देने का उत्तरदायित्व किसी राष्ट्र पर थोप देना सहज काम नहीं है फिर भी परिस्थितियों और घटनाक्रम के कुचक्रों का इंगित कुछ जिन प्रश्नों के उत्तर में निहित है वे इस प्रकार हैं:—क्या युरोपीय देशों के राजनीतिज्ञ हड़बड़ा कर युद्ध के गर्त में गिर पड़े अथवा इस समय राष्ट्रीय लोकमत का अवरोध शासकों की शक्ति से बाहर हो गया था? क्या आस्ट्रिया और सर्बिया का झगड़ा ऐसा जटिल था कि सारे युरोप को उसके सुलझाने के लिए युद्धाग्नि में झोंक देना युक्तियुक्त हुआ? क्या जर्मनी और आस्ट्रिया के शासकों ने इस गुत्थी को सुलझाने की एक यही रीति न्याययुक्त समझी कि उनकी इच्छा के अनुसार इसका निपटारा युद्ध द्वारा ही किया जा सकता था अथवा अन्य राष्ट्रों के न मानने पर भी उनको जबरदस्ती तलवार के ज़ोर से मनवाने के सिवाय और कोई चारा ही न रह गया था? क्या सर्बिया की सरकार पर महायुद्ध

की दावानल भड़का देने का उत्तरदायित्व नहीं है और अगर है तो वह कितना और किस सीमा तक है? क्या रूस का सैनिक तैयारी कर देना न्याय-संगत था और क्या इससे युद्ध भी अनिवार्य नहीं हो गया? क्या इंग्लैंड की राजनीति की अनिश्चित चाल से उसे युद्ध के रोकने की चेष्टा में असफलता नहीं हुई? क्या फ्रान्स की द्विविधा नीति के कारण रूस को युद्ध की अनिवार्यता का दृढ़ निश्चय हो जाना सम्भाव्य नहीं था? क्या उस समय लीग ऑव नेशन्स जैसी सार्वदेशिक पचायती संस्था के लिए—यदि ऐसी कोई संस्था उस समय बनी हुई होती?—यह सम्भव होता कि वह युद्ध को रोक देती अथवा विरोधी दलों को समझा-बुझा कर शान्ति के रास्ते पर लाने का प्रयत्न करती।

ऐसी परिस्थिति में चाहे युद्ध का उत्तरदायित्व किन्हीं व्यक्तियों पर अथवा चाहे किन्हीं राष्ट्रों पर, रखा जाय और चाहे यह कहा जाय कि परिस्थितियों के कुचक्र में पड़ कर ही यह काड उपस्थित हुआ, यह बात निर्विवाद है कि इस ससार-व्यापी महायुद्ध में असख्य धन-जन का विनाश हुआ और लाखों-करोड़ों मनुष्यों को इस महा प्रलय के दावानल में पड़ कर नरक यातनाएँ भोगनी पड़ीं। सैकड़ों बस्तियाँ उजड़ कर श्मसान हो गयीं और हज़ारों मील हरे-भरे खेत वीरान हो गये। युरोप और सारे सभ्य ससार के लिए महायुद्ध महान दुर्भाग्य का द्योतक हुआ।

---

# अध्याय ३०

## युरोपीय महायुद्ध

### (१९१४-१८ ई०)

सन् १९१४ का महायुद्ध—इस महायुद्ध का सा भीषण युद्ध संसार के इतिहास में अब तक कभी नहीं हुआ था। पिछली शताब्दियों के बड़े-बड़े युद्धों में विरोधी देशों की सेनाओं में युद्ध होता था; परन्तु अबकी बार तो इस महायुद्ध में राष्ट्र के राष्ट्र एक दूसरे के विरुद्ध लड़े। हजारों की जगह लाखों करोड़ों की संख्या में सेनाएँ एक दूसरी से लड़ने के लिए जमा हुईं। फिर इस महायुद्ध के समय विज्ञान के चमत्कार से नये नये प्रबल विध्वंसक शस्त्र बन गये थे। और सबसे बड़ी अद्भुत बात यह थी कि युद्ध का क्षेत्र स्थल और जल ही न रह गया बल्कि आकाश में भी लड़ाई होने लगी। नये-नये ढंग के लोहे के वृहदाकार जगी जहाज़ पनडुब्बियाँ समुद्रस्थ सुरंगें और विस्फोटक तारपीडो आदि नये निराले शस्त्रों ने तो अब समुद्र की लड़ाई की कायापलट कर दी थी। उधर हवा में उड़ने वाले गुब्बारे हवाई जहाज और एरोप्लेन आकाश में उड़ कर वैरी की सेनाओं में स्थिति देखने और उनकी व्यूह-रचना का पता लगाने में ही काम न आते, बल्कि विरोधी सेनाओं पर गोलाबारी करने में

अपनी ओर के तोपखाने की सहायता करते और बैरी के पहाड़ी किले और रेलगाड़ियों के स्टेशन, गोला-बारूद के गोदाम और उसकी आगे बढ़ती हुई सेनाओं पर बम फेंक कर उन्हें विध्वंस करने में बड़ी उपयोगी सिद्ध होते थे। उधर पैदल सेनाओं के पास बन्दूक की जगह मशीनगनों और हाथ से फेंकने वाले बम के गोलों ने बड़ी उथल-पुथल कर दी थी। फिर इन सबके ऊपर आग बरसाने वाले तथा अँधेरा और कुहरा फैला देने वाले बम के गोले और सब जगह रेंगकर पहुँचने वाली तोपगाड़ियों (टैंकों) ने तो स्थल की लड़ाई का सारा नकशा ही बदल दिया था। यह सब शस्त्र जैसे ही विकट संहारकारी थे वैसे ही प्रबल भी थे। युद्ध के इन उपकरणों ने विज्ञान की सहायता से जो महाप्रलय का दृश्य उपस्थित किया वह इसके पूर्व किसी दूसरे युद्ध में नजर नहीं आया था। फिर भी इस महायुद्ध में लाखों करोड़ों की संख्या में सेनाएँ ही नहीं कट मरीं बल्कि उनके अगणित शस्त्रास्त्रों की धूम, गरज और विस्फोटन ने ऐसा कोलाहल उत्पन्न कर दिया जैसा संसार में कभी उपस्थित न हुआ था। फिर हवाई जहाजों से घनी बस्तियों पर बम गिराकर धन-जन और भवनों का जो विध्वन्स हुआ उसका अनुमान तक लगाना बड़ा कठिन है। इस प्रलयकारी युद्ध में लाखों की संख्या में मनुष्य मारे गये, करोड़ों की संख्या में शस्त्रास्त्र काम आये, हजारों मील तक बसे हुए प्रदेश उजड़ गये, सैकड़ों संसार-प्रसिद्ध कौतूहलोत्पादक स्थापत्य के अपूर्व नमूने के भवन खँडहर हो गये और सारे युरोप के देशों की राज्य और समाज व्यवस्था डाँवाडोल हो गयी।

महायुद्ध का श्रीगणेश—आख़िर ४ अगस्त को अँगरेज़ों के अल्टीमेटम की अवधि समाप्त हो गयी। जर्मनी ने न तो इसका कोई उत्तर ही दिया और न बेल-जियम से अपनी सेनाएँ ही हटायीं। यों महायुद्ध का श्री गणेश हुआ। समुद्र पर मित्रराष्ट्र बहुत प्रबल थे, इसलिए उनकी रसद-सामान आने जाने के रास्ते खुले रहे और जर्मनी और उसके पक्ष वाले राष्ट्रों के लिए समुद्रों पर से किसी भी वस्तु का आना जाना रोक दिया गया। परन्तु बाल्टिक और काले सागर में जर्मन और उसके पक्ष के राष्ट्रों की नौ सेना का प्राधान्य था, इसलिए रूस अपने मित्रराष्ट्रों की पहुँच से पृथक हो गया। उसकी हार का यही कारण भी हुआ। इस प्रकार समुद्र पर मित्र-राष्ट्रों ने जर्मनी और उसके साथियों के विरुद्ध पूरी पूरी रोक लगा दी फिर भी उन्हें उत्तरी सागर में काफी नौ-सेना इसलिए रखनी पड़ी कि जर्मन बेड़ा बाहर निकाल कर अचानक हमला न कर सके। जर्मनी की यह नीति रही कि अँगरेज़ी फ्रान्सीसी बेड़ों के बिखरे हुए जहाज़ों पर अवसर पाते ही पनडुब्बियों द्वारा छापे मार-मार कर उनकी शक्ति को इतना कम करदे कि जिससे अन्त में डट कर लड़ने का मौका हाथ आ जाय। परन्तु जंगी जहाजों के असाधारण व्यय और उन पर सुरंगों और पनडुब्बियों की तारपीडों की विध्वंसक मार के भय ने दोनों पक्षों को इस बात पर मजबूर कर दिया कि अँगरेज़ी बेड़ा स्कैपाफ्लो में और जर्मन बेड़ा कील नहर में पड़े रहें और लड़ाई छोटे-छोटे जहाजों में चलती रहे।

जर्मनी और फ्रान्सीसी समर-नीति—जर्मनी के सामने इस समय दो समस्याएँ थीं। पहली तो यह थी कि उसे दो मोर्चों पर लड़ना था और दूसरी थी उसकी सैन्य-संख्या की कमी की आशंका जो युद्ध की प्रगति के साथ बराबर बढ़ती जाती। फिर जर्मनी को यह विश्वास था कि रूस को अपनी सैनिक तैयारी करने में यद्यपि काफ़ी समय लगेगा, फिर भी देश की विशालता और आनेजाने के मार्गों की नितान्त कमी होने के कारण रूस पर शीघ्र ही विजय पा लेना सम्भव नहीं था। इसलिए पूरब के मोर्चे पर रूसियों को रोके रख कर या धीरे-धीरे पीछे हट कर उसके आक्रमण को विफल करते रहना ही उसकी नीति बनी; परन्तु पच्छिम के मोर्चे पर शीघ्र से शीघ्र विजय प्राप्त करने की नीति का उसे अवलम्बन करना पड़ा। फिर दक्खिनी-पच्छिमी जर्मनी से आक्रमण करने में द्रुति गति न प्राप्त कर सकने की कठिनाई, उस प्रदेश की भूगोलिक स्थिति और रेल-पथों की कमी के कारण तेज़ी से आगे बढ़ने की दुरूहता और सब से ऊपर वर्दूं से बेल्फ़ोर्ट तक फ्रान्सीसी किलेबन्दी के कारण देर लगने की आशंका ने जर्मनी को इस बात पर मजबूर किया कि वह आर्डिनीज़ के उत्तर होकर फ्रान्स पर आक्रमण करे—यद्यपि ऐसा करने में उसे बेलजियम की निष्पक्षता भंग करने के लिए मजबूर होना पड़ता। इसलिए जर्मनों ने मेज़ को केन्द्र बनाकर बड़ी तेजी से बेलजियम में होकर फ्रान्स में घुस पड़ने का आयोजन किया। परन्तु इस सीधी चाल में उन्होंने दो संशोधन किये एक तो उन्होंने डच प्रदेश को अछूता छोड़ दिया और उसके और आर्डिनीज के बीच के तंग भाग में होकर ही अपनी सेनाएँ आगे बढ़ायीं—यद्यपि ऐसा करने में उन्हें काफ़ी देर हो गयी। और दूसरे उन्होंने आल्सेस-लोरेन के थोड़े समय के लिए भी अरक्षित छोड़ना गवारा न किया और इसलिए उस प्रदेश की रक्षा के लिए मेज़ और स्ट्रास्बर्ग के बीच के प्रदेश की रक्षा के लिए उन्होंने ८० लाख सेना नियत कर दी।

उधर फ्रान्सीसियों की नीति थी वर्दूं-टुओल किला बन्दियों के उत्तर और दक्खिन से लोरेन पर दुहरा आक्रमण करने की। यद्यपि इस चाल के चलने में जो जोख़िम थी उसका फ्रान्सीसी कमांडर जॉफ़े को पूरा आभास था कि फिर भी उसने बेलजियम के सीमान्त की रक्षा पर अधिक ध्यान देकर और एक घुड़सवार और कई रिज़र्व डिवीजन और थोड़ी सी ब्रिटिश सेना पर वहाँ की रक्षा का भार सौंप कर अपनी सेना की पूरी शक्ति मिज़ीइरे की दक्खिन तरफ़ जमा कर दी। ऐसा करते समय जॉफ़े को यह विश्वास था कि अगर जर्मनों ने बेलजियम में होकर आक्रमण किया तो लीज और नामूर के किले इतने ज़बरदस्त अवश्य हैं कि यह जर्मन आक्रमण को उतने समय तक रोके रहने में समर्थ होंगे जब तक उत्तर की ओर बढ़ने के पूर्व वह लोरेन में जर्मनी सेनाओं पर आक्रमण कर उन्हें हरा देने में सफल हो। फ्रान्सीसी जनरल की इन दोनों चालों में कि फ्रान्स की ओर से पहला आक्रमण हो और फिर वह आल्सेस-लोरेन की तरफ़ से हो, बहुत कुछ तथ्य था; परन्तु इस की सबसे बड़ी कमजोरी यह थी

कि अगर जर्मनी ने बेलजियम में होकर पहले ही से आक्रमण कर दिया तो यह चाल उतनी सफल न हो सकेगी।

### § १. सन् १९१४ में युद्ध की प्रगति

पच्छिमी मोर्चे पर जर्मनी का आक्रमण—जर्मनी ने अपनी सैनिक तैयारी
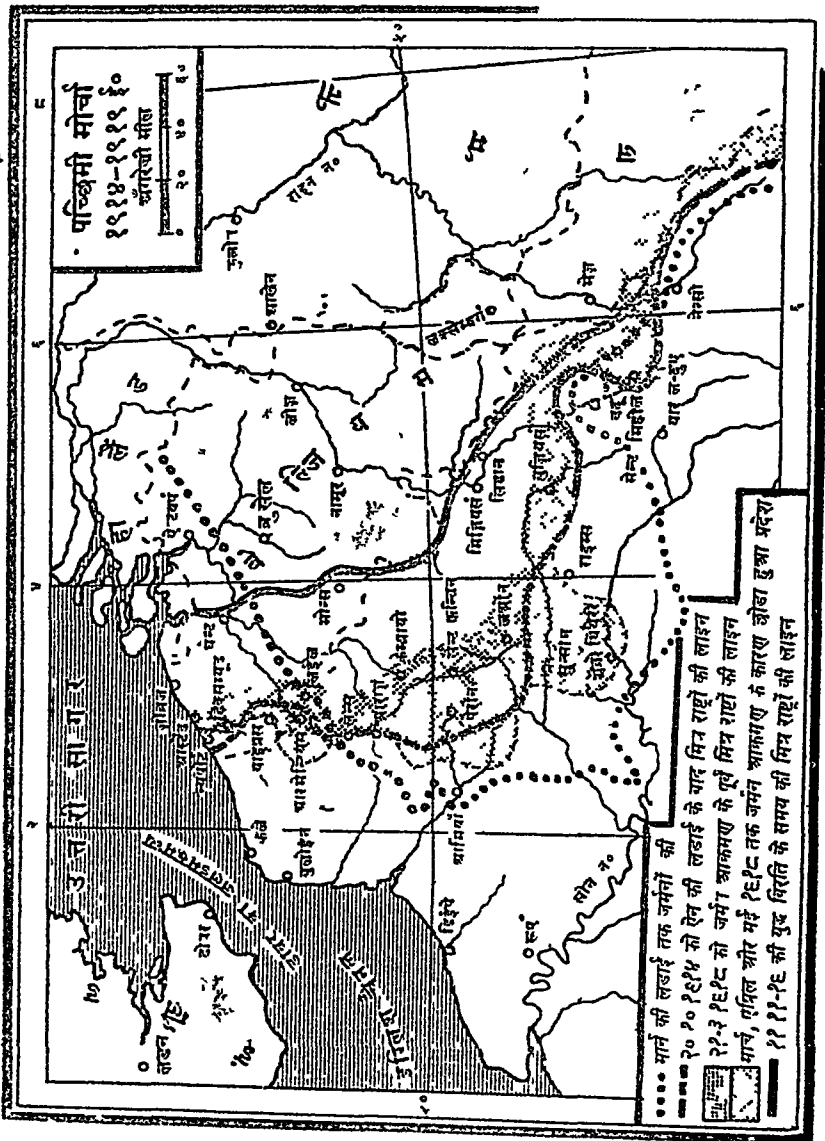
बहुत जल्दी कर ली और उसने १२ लाख फ्रान्सीसी सेना के मुकाबले में पच्छिमी मोर्चे पर १५ लाख जर्मन सेना ला खड़ी की। फिर ऐसी तेज़ी से लीज और नामूर के किले [सर कर, के, बेलजियम], सेना को, ऐन्टवर्प पर ढकेल दिया और ब्रूशेल पर क़ब्ज़ा कर]

लिया कि फ्रान्सीसियों का आक्रमण लोरेन पर हो ही न सका और जर्मनी की केन्द्रीय सेना ने आर्डिनीज को पार कर डिनाँ और न्युचेतो पर क़ब्ज़ा कर लिया।

अब जॉफ़े को जर्मनी की चाल का पता लगा और उसने नामूर और आर्डिनीज की रक्षा के लिए फ्रान्सीसी सेनाएँ भेज दीं, परन्तु मेज पर से आक्रमण करने की अपनी चाल को उसने स्थगित नहीं किया। आख़िर २२ अगस्त को शार्लिरोय पर तीन दिन की लड़ाई में फ्रान्सीसी सेना को बड़ी करारी हार देकर २४ अगस्त को जर्मन सेना के दाहने पार्श्व ने फ्रान्सीसी बेलजियम सीमान्त को पार कर लिया। इधर फ्रान्सीसी सेना की स्थिति नामूर के छिन जाने और जर्मन सेना के केन्द्र की ओर दिनाँ पर से उसके पीछे की ओर बढ कर रास्ता काट देने की चेष्टा करने से बड़ी नाज़ुक हो गयी, इसलिए उसे पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा। उधर अँगरेजी सेना ने भी जब यह देखा कि नामूर का किला सर हो गया और फ्रान्सीसी सेना को पीछे हटाना पड़ा है तो वह भी पार्श्व संग्राम करती हुई पीछे हट गयी। ले सेतों पर अँगरेज़ी सेना ने बड़ी वीरता से जर्मन आक्रमणों का मुकाबला किया। मोन्स से पीछे हटने में ब्रिटिश-फ्रान्सीसी सेनाओं की बड़ी क्षति हुई परन्तु इस चाल से वे नष्ट होते-होते बच गयीं। इसी समय मेज पर फ्रान्सीसी सेना ने जो आक्रमण किया उसमें उसकी हार हो गयी और उसे वर्दूं को घिरा हुआ छोड़ कर म्यूज़ नदी की ओर पीछे हटने को मजबूर होना पड़ा। इस प्रकार मित्र-राष्ट्रों की सारी सेना को सारे मोर्चे पर पीछे हट कर अपनी रक्षा करनी पड़ी और जर्मन सेना आगे बढ़ती हुई ३ सितम्बर को मार्न नदी के उस पार पहुँच गयी। उस समय बाएँ पार्श्व की फ्रान्सीसी सेना बुरी तरह से छिन्न भिन्न हो गयी और फ्रान्स की गवर्नमेन्ट पेरिस छोड़ कर बोर्डो भाग गयी।

जर्मन कमांडर अपनी पूर्व निश्चित चाल पर ही चलते रहना चाहते थे, इसलिए यद्यपि उन्हें पीछे हटती हुई मित्रराष्ट्रों की सेनाओं के बीच में कई विवरों में घुस पड़ने और इन सेनाओं को अलग-अलग कर उन्हें काफ़ी हानि पहुँचाने का सुअवसर प्राप्त था परन्तु उन्होंने इसका कोई लाभ न उठाया और पच्छिमी बेलजियम और समुद्र के किनारे के बन्दरगाहों पर अधिकार न करके बड़ी मूर्खता का परिचय दिया। मित्रराष्ट्रों ने उधर अपनी सेनाओं को पीछे हटाना जारी रखा क्योंकि उन्हें अब भी यह आशा लगी हुई थी कि अगर वे वर्दूं की मोड़ पर अधिकार बनाये रखकर मार्न नदी तक पीछे हट जायँगे तो पेरिस की रक्षा करने वाली और उसके उत्तर में नयी फ्रान्सीसी सेना को अपने बाएँ पार्श्व को घिर जाने की आशंका से बचा कर जर्मन सेना के दाहने पार्श्व को घेर लेने का अवकाश मिल सकेगा। इस समय जर्मन सेना मार्न नदी के इस पार पहुँच चुकी थी। उसके कमांडर ने बिना आगा-पीछा सोचे उसे दक्खिन-पूरब की ओर चला कर फ्रान्सीसी सेना को अपने पृष्ठभाग पर आक्रमण करने का अवसर दे दिया। फ्रान्सीसी सेना का आक्रमण होते ही जर्मन प्रथम सेना को अपना केन्द्र और दाहना पार्श्व निबल कर पीछे हटना पड़ा और इस प्रकार इस प्रथम और

द्वितीय जर्मन सेना के बीच के विवर में ब्रिटिश और फ्रान्सीसी सेना के घुस पड़ने से जर्मनों की स्थिति बड़ी नाजुक देख कर उन्हें मार्न नदी के उस पार पीछे हटने को बाध्य होना पड़ा। ११ दिसम्बर को फ्रान्सीसी सेना ने विजयी होकर मार्न नदी को पार कर लिया और जर्मन सेना को आखिर एन नदी के उत्तरी किनारे तक हटना पड़ा। उधर मार्न नदी की लड़ाई के समय ही फ्रान्सीसी सेना को वर्दू पर जर्मनी के उत्तर-पश्चिम और दक्खिन-पूरब की ओर से होने वाले दो कठिन आक्रमण सहने पड़े और यद्यपि उन्होंने जर्मनों को रोके रखने की बड़ी कोशिश की फिर भी २४ अगस्त को जर्मन सेना फ्रान्सीसी कतारों को तोड़ती-फोड़ती सेन्ट मिहिल पर जा पहुँची। जर्मनों को म्युजे नदी के उस पार कोई विजय प्राप्त नहीं हो सकी फिर भी वे इस मोड़ पर १९१८ ई० तक अधिकार किये रहे और इस प्रकार वर्दू को तीन तरफ से घेरे रहे।

समुद्र की ओर बढ़ने की चेष्टाएँ—मार्न नदी पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद मित्रराष्ट्रों की सेना जर्मनों को एन नदी के उस पार से पीछे हटाने में समर्थ न हो सकी। ऐन नदी के किनारे-किनारे यद्यपि घमासान की लड़ाइयाँ हुईं, जर्मनों ने कई बार जवाबी हमले भी किये और आल्सेस-लारेन से कुमक लाकर पिकार्डी और आर्टोई पर दोनों सेनाओं ने एक दूसरी के पार्श्वों को घेरने की कोशिशें भी कीं परन्तु किसी को भी कोई विशेष सफलता नहीं हुई। इन कार्रवाइयों का एक परिणाम यह जरूर हुआ कि लड़ाई का केन्द्र स्थल एन नदी से हट कर सोम नदी पर जा पहुँचा, जहाँ २९ सितम्बर को एल्बर्ट की लड़ाई में फ्रान्सीसियों की हार हुई और २री से ९वीं अक्टूबर तक आरास पर जर्मन अधिकार हो गया। यह घेराघेरी की दौड़ अब समुद्र के किनारे के बन्दरों पर अधिकार कर लेने की चेष्टा में बदल गयी और दोनों ओर से इन्हें प्राप्त कर लेने की कोशिशें होने लगीं। इस बीच में जर्मन सेना का बहुत बड़ा भाग ऐन्टवर्प के चारों ओर घेरा डाले बेकार सा पड़ा था, इसलिए अब जर्मन सैनिकों ने उधर ध्यान फेरा और यद्यपि फ्रान्सीसियों और अँगरेजों ने भी घिरी हुई बेलजियम सेना की सहायता करनी चाही परन्तु उन्हें कोई सफलता नहीं हुई और ऐन्टवर्प जीब्रज और ऑस्टेंड बन्दर जर्मन के हाथ आ गये। आखिर बेलजियम की गवर्नमेन्ट भाग निकली और बेलजियम सेना ने ईसर नदी पर पहुँच कर फिर मुकाबले की तैयारी की। अब बेलजियम सेना डिक्सम्यूड के दक्खिन तक हट चुकी थी और फ्रान्सीसी सेना ला बुसी के उत्तर में। इन दोनों के बीच में ऐन और ऐन्टवर्प से भागी हुई ब्रिटिश, बेलजियम और फ्रान्सीसी सेनाएँ खड़ी थीं। जर्मन सेनाओं ने फ्रान्सीसी सेना पर, आरास पर, बेलजियम सेना पर ईसर के किनारे पर अँगरेजी सेनाओं पर याइप्रस पर आक्रमण किये। बेलजियम सेना को पीछे ढकेलते हुए जर्मन ने ईसर पार कर ली परन्तु इसी समय बाँध तोड़ देने से उनकी लाइन टूटते टूटते बच गयी। जर्मनों ने डिक्सम्यूड तो ले लिया परन्तु नद के इस पार उनके कदम न जम सके। याइप्रस की पहली लड़ाई का श्रीगणेश हुआ फ्रान्सीसी-ब्रिटिश सेनाओं के आक्रमण से और कई बार याइप्रस के

पूरब और दक्खिन-पूरब से जर्मनों के बढ़ आने पर भी। आखिर बड़ी कठिन लड़ाई के बाद भी यह स्थान जर्मन के हाथ न आ सका। उधर आरास पर फ्रान्सीसी सेनाओं ने जर्मन आक्रमणों की ताब न लाकर पीछे हट जाने का विचार किया; परन्तु आखिर उनके क़दम टिक गये और आरास पर भी जर्मनों का अधिकार न हो सका—यद्यपि उनके आस-पास की पहाड़ियों पर जर्मन सेना का कब्ज़ा हो जाने से उस पर बराबर गोलाबारी होती रही। इस लड़ाई में किसी पक्ष की जीत न हो सकी और दोनों ओर सेनाएँ थक कर तथा जाड़ा आ जाने के कारण खाइयाँ खोद कर डट गयीं। इस प्रकार सन् १६१४ की लड़ाइयों के अन्त में जर्मनी का प्रायः सारे बेलजियम पर अधिकार हो गया और फ्रान्स का भी बहुत सा उत्कृष्ट भाग उनके कब्जे में रहा।

समुद्री मोर्चे पर—जैसा कि हम बतला चुके हैं ब्रिटिश नौ-सेना ने जर्मनी का अवरोध करने में बड़ी तत्परता दिखायी, परन्तु समुद्री लड़ाई में दोनों ओर के बेड़ों ने कोई भाग नहीं लिया। २८ अगस्त को हैलीगोलैंड के बाहर उत्तरी सागर में जो समुद्री झड़प हुई उसमें जर्मनी के तीन क्रूज़र डूब गये। नवम्बर में अँगरेजी जंगी बेड़े ने निष्पक्ष देशों में होकर जर्मनी में माल पहुँचने से रोकने के लिए उत्तरी सागर में सुरगें बिछाकर जहाज़ों के लिए रास्ता निर्धारित करने की चेष्टा की, परन्तु इस रोकथाम में उसे कोई विशेष सफलता न प्राप्त हो सकी। इस अवरोध की चेष्टा में अँगरेज़ों के चार क्रूज़र और एक ड्रेडनाट पनडुब्बियों की तारपीडो के शिकार हुए। भूमध्य सागर में दो जर्मन क्रूज़र गेबन और ब्रेस्लों छिपकर निकल भागे और कान्स्टि-न्टिनोपेल जा पहुँचे। आस्ट्रिया के जंगी और व्यापारी बेड़े शुरू से ही एड्रियाटिक सागर में बन्द हो गये और फ्रान्सीसी बेड़े के एक दस्ते ने उन्हें वहाँ घेरे रखा। लड़ाई छिड़ जाने पर जर्मन बेड़े के सुदूर पूरबी स्काड्रन के ५ क्रूज़रों ने रास हार्न के रास्ते से निकल जाने की चेष्टा की। कोरोनेल के पास उनकी चार अँगरेजी क्रूज़रों से मुठभेड़ हो गयी जिनमें से दो को उन्होंने वहीं ठंडा कर दिया। ८ दिसम्बर को फॉन स्पी की इस जीत का बदला फॉकलैंड की द्वीप की लड़ाई में चुकाया गया। इसी बीच में जर्मन व्यापारी क्रूज़र एमडेन, कार्ल्सरूहे और कूनिग्स्बर्ग ने लगभग ७० व्यापारी जहाज डुबा कर नष्ट कर डाले। आखिर नवम्बर में इनका भी सफ़ाया कर दिया गया।

सन् १६१४ के बड़े दिन पर इंग्लैंड के ऊपर ज़ेप्लीन का पहला हवाई हमला हुआ। यद्यपि इसका प्रकट प्रभाव यह हुआ कि अँगरेज़ों को लड़ाई के लिए बड़ी उत्ते-जना मिली फिर भी जर्मनी को अप्रत्यक्ष रूप से बहुत से अँगरेज़ी उड़ाकों को इंग्लैंड की रक्षा में वहीं बाँधे रखने में सफलता मिली। इंग्लैंड में प्रचलित अपनी इच्छा से सेना में भर्ती होने की व्यवस्था को भी इस युद्ध में खूब जाँच हुई। सारा ब्रिटिश साम्राज्य एक स्वर से इंग्लैंड की सहायता के लिए तैयार हो गया। ख़ास इंग्लैंड में बेलजियम की निष्पक्षता के विनाश से एकता की लहर दौड़ गयी और फिर गवर्नमेन्ट

के प्रचार, जर्मन अत्याचारों की अधिकांश मन-गढ़ी कहानियाँ और हवाई तट प्रदेश पर आक्रमणों की आशंका ने एकता प्राप्त कराने में बहुत सहायता दी।
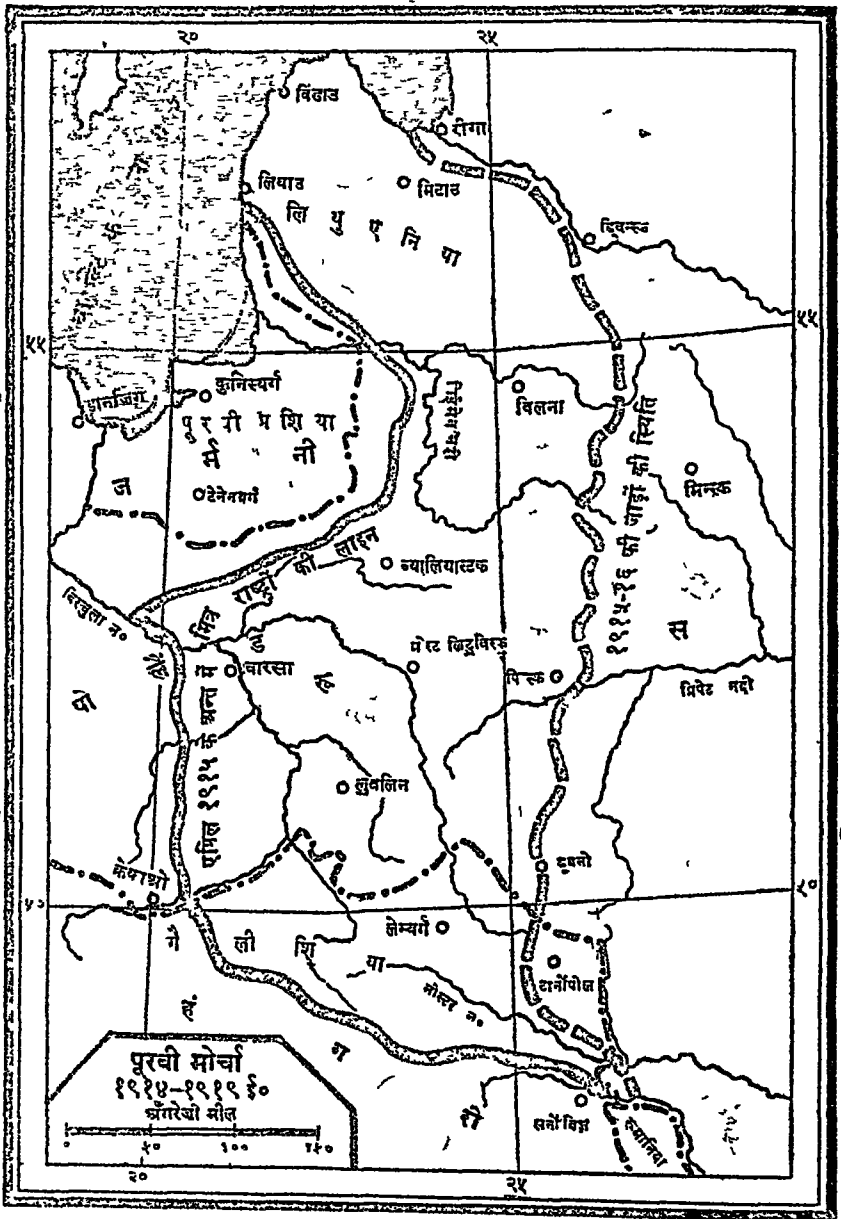
पूरबी मोर्चे पर—रूसियों ने तो वास्तव में गैलीशिया पर आक्रमण करना निर्धारित कर लिया था, परन्तु फ्रान्स पर जर्मन आक्रमण का ज़ोर कम करने के लिए रूसी सेनाएँ पूरबी प्रशिया में घुस पड़ीं। रूसियों की नीति यह थी कि मुख्य जर्मन

सेना के मुकाबले में मसूरियन झीलों के उत्तर में उनकी एक सेना पच्छिम की ओर से बढ़े तो पच्छिम में दूसरी सेना उसे पार्श्व में लेकर घेर ले। पहले तो जर्मन सेना पीछे हटी परन्तु हिंडेनबर्ग ने इस दूसरी रूसी सेना का केन्द्र तोड़ कर उसके दोनों पार्श्वों को ऐसा खदेड़ा कि टेनेनबर्ग की लड़ाई में ३१ अगस्त को रूसियों की बड़ी करारी हार हुई और उनकी आधी से भी अधिक सेना क़ैद हो गयी। इस समय पहली रूसी सेना के कमांडर को हिंडेनबर्ग के पृष्ठ भाग पर आक्रमण करना चाहिए था, परन्तु वह चूक गया और आख़िर मसूरियन झील की लड़ाई में उसे भी हार कर नीमेन पर १५ सितम्बर को पीछे हट जाना पड़ा। इस प्रकार रूसी सेनाओं को हार कर जर्मन प्रदेश छोड़ना पड़ा।

इस बीच में आस्ट्रिया की आधी सेना सर्बिया पर बेकार आक्रमण करने में लगी रही। बाकी सेना ने क्रेकाओं से उत्तर पूरब की ओर बढ़ कर पोलैंड पर आक्रमण किया और २ सितम्बर तक लुबलिन में जा पहुँची। रूसियों की रण नीति में पोलैंड के प्रदेश का बचाव बड़ा कमजोर जँचता था इसलिए उनका विचार था कि अगर वह गैलीशिया में घुसने में सफल हो सकें तो इधर पोलैंड में उनके पीछे हट जाने से कोई विशेष हानि न होगी। रूसी सेनाओं ने ३री सितम्बर को लैम्बर्ग ले लिया और सान नदी पार कर २४ सितम्बर को प्रेमजिल जा घेरा। इसके बाद रूसी सेनाओं ने कारपेथियन दर्रों पर भी कब्जा कर लिया और उनकी घुड़सवार सेना ने हंगरी पर आक्रमण कर दिया। अब रूसी सेना का मध्य भाग गेलीशिया की राजधानी क्रेकाओ पर जा पहुँचा और बाकी सेना साइलीशिया में जा घुसी। मजबूर होकर क्रेकाओ के बचाने के लिए आस्ट्रियन सेना को पोलैंड के जीते हुए प्रदेश छोड़ कर इधर लौटना पड़ा। उधर आस्ट्रियनों की यह दुर्गति देखकर हिंडेनबर्ग ने तुरन्त वारसा पर छापा मार कर उनकी सहायता करनी चाही। रूसियों की इधर यह चाल थी कि जर्मन सेना के वारसा पर बढते ही विस्चुला नदी के दूसरे तट से गैलीशिया वाली सेना से उनका दाहना पार्श्व घेर लिया। जर्मन सेनाएँ १४ अक्टूबर को विस्चुला पार कर गयीं, परन्तु यहाँ रूसी सेना द्वारा घिर जाने की आशंका से उन्हें पीछे हटना पड़ा। आस्ट्रीय सेना की भी यहाँ करारी हार हुई आख़िर जर्मन और आस्ट्रियन सेनाओं को पीछे हटना पड़ा और रूसियों ने फिर प्रेमजिल जा घेरा और हंगरी में भी घुस गये। इस समय क्रेकाओ पर रूसियों का बड़ा जमाव हो गया और मजबूर होकर जर्मन सेना को याइप्रस के मैदान से हटकर पूरब की ओर सारी शक्ति लगा देनी पड़ी। हिंडेनबर्ग नयी जर्मन सेना की सहायता से फिर वारसा की ओर बढ़ा और ६ दिसम्बर को लोज की लड़ाई में रूसियों को हराकर वारसा के पच्छिम ३० मील तक खदेड़ ले गया। इसके बाद दिसम्बर में वारसा की दूसरी लड़ाई हुई परन्तु जर्मन सेना बहुत आगे न बढ़ सकी और उसे खाइयाँ खोदकर रुक जाने पर मजबूर होना पड़ा।

उधर पूरब में तुर्की ने २६ अक्टूबर को काले सागर में रूसी बन्दरों पर गोला-

बारी की। इस पर काले सागर की रूसी सेना अर्जेरूम की ओर बढ़ी, परन्तु उसकी हार हो गयी। मैसोपोटामिया में अँगरेजी सेना टाइग्रिस नदी के पार के विपरीत बढ़कर कूर्ना तक जा पहुँची। अँगरेजों ने दरें दानियाल पर गोलाबारी की और मिस्र को अपना रक्षित राज्य घोषित कर दिया। तुर्कों ने स्वेज नहर पर आक्रमण किया परन्तु उसकी कुछ पेश न गयी।

अन्य मोर्चों पर—आफ्रिका में अँगरेजी सेनाओं ने टोगोलैंड और कैमरून तट पर अधिकार कर जर्मन दक्खिनी पच्छिमी आफ्रिका के सारे बन्दर छीन लिये। उधर जापान ने सिंग्टाउ पर आक्रमण कर नवम्बर में उस पर अधिकार कर लिया और मारशल द्वीप समूह को भी दबा लिया। प्रशान्त महासागर में अन्य जर्मन द्वीपों पर आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड का कब्जा हो गया।

## §२. सन् १९१५ में युद्ध की प्रगति

पूरबी मोर्चे पर—सन् १९१५ के शुरू होते ही ऐसा आभास होने लगा कि जर्मनों ने यह निश्चय कर लिया था कि वे पच्छिमी मोर्चे पर कम से कम सेना रखे रहें और पूरबी मोर्चे पर रूस को हराकर युद्ध का अन्तिम निर्णय करदें। इस का कारण यह था कि एक तो रूस को किसी तरफ से सहायता नहीं पहुँच सकती थी दूसरे वहाँ बड़ी दुर्व्यवस्था थी और गोला बारूद की बड़ी कमी हो गयी थी। रूसी सेनाओं ने गैलीशिया में आक्रमण किया था और हंग्री में घुस पडी थीं जिससे आस्ट्रिया की तो मानों बधिया ही बैठी जा रही थी। उधर पच्छिमी मोर्चे पर मित्रराष्ट्रों ने यह निश्चय नहीं कर पाया था कि वह इस मोर्चे पर जीवन लडा दे या जर्मनी के साथियों के विरुद्ध इधर-उधर युद्ध कर उसे परेशान करें। इधर खुद इंग्लैंड में भी गोला बारूद की कमी ही नहीं बल्कि उसके बनने में भी अड़चनें पड़ रही थीं। ऐसी परिस्थिति मे हिंडेनवर्ग ने रूसी सेनाओं को पूरबी प्रशिया से ( मसूरियन झीलों की लड़ाई फरवरी १९१५ ) मार भगाया, गैलीशिया, रूसी पोलैंड, और लिथुएनिया रूसियों से खाली करा लिये और वारसा छीन लिया। इन लड़ाइयों में हज़ारों रूसी सिपाही काम आये और उनकी हजारों की संख्या मे बन्दूकें और टनों गोला बारुद छिन गये। इस जर्मन जीत का परिणाम यह हुआ कि आस्ट्रिया-हंगरी का विध्वंस होते-होते बच गया; वारसा में जर्मनों ने और लुबलिन में आस्ट्रियनों ने अपने-अपने राज्य स्थापित कर लिये; परन्तु इसी बीच में आस्ट्रियन सेनाओं की अध्यक्षता बहुत अंशों में जर्मन अफसरों के अधिकार में पहुँच गयी। इन लड़ाइयों में हिंडेनबर्ग की सेनाओं ने बड़ी वीरता दिखाई और इस विजय का बहुत अधिक श्रेय इसी जनरल की योग्यता और कौशल को दिया जाना चाहिये।

पच्छिमी मोर्चे पर—जाड़ा ख़तम होते ही, १० मार्च को अँगरेजों ने न्यु-एशेपेल पर आक्रमण किया जिसमें तीन दिन की लड़ाई में दोनों ओर का बड़ा नुकसान

हुआ और कोई लाभ प्राप्त न हो सका। इसी प्रकार सेन्ट मिहील की कुनिया पर अधिकार करने और शेम्पेन के आक्रमण को जारी रखने के विचार से २७ मार्च को फ्रान्सीसी सेना ने भी आक्रमण शुरू कर दिया; परन्तु ४ दिन की कठिन लड़ाई के बाद भी उन्हें कोई लाभ न हुआ और जो एक छोटी-छोटी विजयें प्राप्त हुईं उनके लिए बड़ी सेना कटानी पड़ी। २२ एप्रिल को जर्मनों का याइप्रिस की दूसरी लड़ाई वाला आक्रमण शुरू हुआ जिसमें प्रायः ४ सप्ताह की लड़ाइयों के बाद अँगरेजी सेना को और पीछे हटना पड़ा और उसकी काफी दुर्गति भी हुई। मई और जून में फ्रान्सीसी सेना ने फिर आक्रमण किये, परन्तु उन्हें दोनों बार असफलता रही। सितम्बर-अक्टूबर में फिर उन्होंने आक्रमण किये, परन्तु इस बार भी काफी हानि उठायी और लाभ बहुत थोड़ा हुआ। कुमक ठीक समय पर न पहुंचने से दोनों सेनाओं को जीते हुए स्थान छोड़ कर फिर पीछे आना पड़ा आख़िर में पूरबी मोर्चे से जर्मन सेना की कुमक आ गयी और फ्रान्सीसी और ब्रिटिश सेनाओं को फिर जहाँ का तहाँ पड़े रहने को मजबूर होना पड़ा। दिसम्बर में फ्रेञ्च की जगह हेग को अँगरेज़ी सेना का और जोफ़े को फ्रान्सीसी सेना का कमांडर इन-चीफ बनाया गया।

इटली का युद्ध में सम्मिलित होना—युद्ध शुरू होते ही इटली ने अपनी निष्पक्षता घोषित कर दी थी। उसका कहना था कि यद्यपि वह त्रिराष्ट्र-मैत्री सन्धि में सम्मिलित हुआ था परन्तु वह सन्धि तो रक्षा परक थी। दूसरे सन्धि की शर्तों के अनुसार बाल्कन में कोई कार्रवाई करने के पूर्व आस्ट्रिया को उसकी सहमति लेना आवश्यक थी। फिर उसने स्पष्ट कह दिया था कि उसकी आर्थिक और भूगोलिक परि-स्थिति ऐसी है कि वह इंग्लैंड के विरुद्ध युद्ध करने को तैयार न था। इटली की सरकार ने ऑतॉत शक्तियों से साथ एप्रिल १९१५ में सन्धि कर, २३ मई को आस्ट्रिया के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा कर दी और ट्रेन्टिनो और ट्रीईस्ट पर अधिकार करने के लिए अपनी सेनाएँ बढ़ा दीं; परन्तु इटली को यह दोनों प्रदेश प्राप्त न हो सके।

दरे दानियाल की मुहिम—२३ जनवरी को ब्रिटिश युद्ध परिषद् ने यह निश्चय किया कि अँगरेजी जंगी बेडा दरे-दानियाल में घुस पड़े; क्योंकि ऐसा करने से एक तरफ तो तुर्की का खात्मा हो जाता और उसकी ओर से मिस्र पर किये जाने वाला हमला रुक जाता और दूसरी तरफ रूस को सहारा मिल जाने की सम्भावना थी; साथ ही बलगा-रिया को जर्मनी की तरफ से लड़ाई में शरीक होने की हिम्मत न पड़ती। गैलीपोली प्रायद्वीप ईजियन समुद्र और दानियाल की खाड़ी के बीच लगभग ५० मील लम्बा और ३—४ से लेकर १२ मील तक चौड़ा पहाड़ी प्रदेश है जो जीभ की भाँति निकला हुआ है। इसका पूरबी भाग चपटा है एडमिरल फिशर ने मजबूर हो कर यह स्वीकार किया और १९ फ़रवरी को अँगरेजी बेड़े की तोपों ने गोलाबारी शुरु कर दी। एक ही सप्ताह में बाहरी किलेबन्दी तोड दी गयी और डमरूमध्य की ग्रीवा में आधी दूर तक सुरंगें भी साफ कर दी गयीं; परन्तु इसी बीच में चार अँगरेजी जहाज सुरंगों से टकरा

कर डूब गये, इसलिए बिना तट प्रदेश पर आक्रमण कर अधिकार जमाये केवल जंगी बेड़े से दानियाल पार करने की चेष्टा १८ मार्च को छोड़ दी गयी। इसके बाद बेड़े के एडमिरल ने उस समय तक बेड़े को आगे बढ़ाने से इनकार कर दिया जब तक किनारे पर पड़ी हुई स्थल सेना उसकी सहायता न करे। इसी बीच में तुर्की सेना की कुमक आ गयी और २५ एप्रिल को वीचेज की लड़ाई में अँगरेजी सेना ने रास हैल्लीस पर आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड की सेना उतार दी; परन्तु २० हजार जानें खो कर भी कोई सेना आगे न बढ़ सकी। इस पर इंग्लैंड में बड़ा हाहाकार मच गया। फिशर को त्याग पत्र देना पड़ा और इस गड़बड़ में कोई कुमक भी न भेजी जा सकी। जून जुलाई में ४ बार आक्रमण हुए, परन्तु गोलाबारूद की कमी के कारण
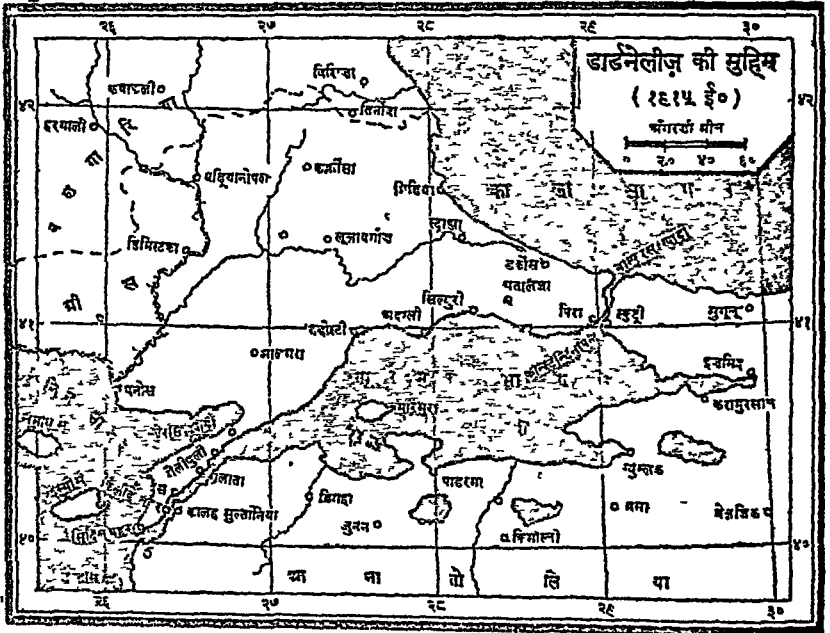
यह भी सफल न हो सके। इसी बीच में अँगरेजी डुबकनी किश्तियों ने काले सागर में घुसकर तुर्की बेड़े और तुर्की व्यापारी जहाजों को काफी हानि पहुँचायी। ६ अगस्त को अनजाक ( आस्ट्रेली-न्यूजीलैंडी ) सेनाओं ने गुनुक बेर पहाड़ियों और सुवला खाड़ी में उतर कर पहाड़ी किलों पर छापा मार कर उन्हें सर करने की कोशिश की, परन्तु तुर्की सेना और उनकी किलों की तोपों की मार के सामने इनका साहस और वीरता कुछ काम न आ सकी और हजारों योद्धाओं की जानें गँवा कर यह आक्रमण भी असफल रहा। इधर अक्टूबर के महीने में सैलोनिका पर सेना उतारने के कारण गैलीपोली में लड़ने वाली सेनाओं को कुमक भेजना असम्भव हो गया, इसलिए २० दिसम्बर को यहाँ की सेनाओं को पीछे हटा लिया गया और इस प्रकार युद्ध की यह सब से

... हो गयी। इस हार से अँगरेजी प्रतिष्ठा को बड़ा गहरा धक्का इसका एक अप्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि एक ओर तो रूसियों को कुछ ...। और दूसरी ओर तुर्की सेनाएँ इधर घिरी रहने के कारण कोई नया ...क्रमण नहीं कर सकीं।

बाल्कन मोर्चे पर—उधर इधर बलगारिया को भी लड़ाई में सम्मिलित होने के लिए दोनों ओर से नये नये प्रदेश दिलाने के वायदे चल रहे थे। इस कार्यवाई में जर्मनी को सफलता मिली और ६ सितम्बर को बलगारिया ने केन्द्रीय शक्तियों की ओर होकर सर्बिया पर धावा बोल दिया। उधर यूनान ने बलगारिया की सैनिक तैयारियों की ख़बर पाते ही, सर्बिया के साथ मैत्री-सन्धि की शर्तें निबाहने का निश्चय किया और मित्र-राष्ट्रों से सैलोनिका पर सेनाएँ उतार कर अपनी सहायता करने की प्रार्थना की। इस पर यूनान के प्रधान मन्त्री वेनेजेलो को पद-त्याग करना पड़ा और यूनान के राजा ने सैलोनिका पर अँगरेज़ी सेनाएँ उतारे जाने का विरोध किया और इसे यूनान की निष्पक्षता का संहारक बतलाया। परन्तु इसी समय आस्ट्रीय-जर्मन सेनाएँ डेन्यूब नदी पार कर चुकी थीं और बलगारी सेनाएँ भी सर्बिया में दाखिल हो गयी थीं। बलगारी सेनाओं ने निश सैलोनिका रेल का रास्ता काट कर अँगरेज़ी-फ्रान्सीसी और सर्ब सेनाओं को मिलने से रोक दिया और सर्बियों को मोनास्टर पर हरा कर अल्बानिया के सीमान्त के उस पार भगा दिया। इस प्रकार सारे सर्बिया पर बैरी का अधिकार हो गया और अँगरेज़ी सेना के अधिकार में सैलोनिका का बन्दरगाह और उसके आस-पास का थोड़ा सा प्रदेश रह गया। इस समय अँगरेज़ी और फ्रान्सीसी सेनाओं पर तीन तरफ़ से मार पड़ रही थी और कठिनाई से सैलोनिका तक पीछे हट सकी थीं। यूनानियों और बलगारियों में लड़ाई न ठन जाय इसलिए जर्मन सेनाएँ सीमान्त पर ही रुक गयीं और उन्होंने मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं को सैलोनिका पर पड़ा रहने दिया। रूस तक सहायता पहुँचाने का अब कोई रास्ता न रह गया और केन्द्रीय शक्तियों के हाथ में कान्स्टेन्टिनोपेल के कई रास्ते आ गये।

अन्य मोर्चों पर—पच्छिमी काकेशस में अब तुर्की सेनाओं का बढ़ना रुक गया। ईरान की सेना ने इसी समय विप्लव कर दिया, इसलिए रूसी सेनाओं को तबरेज़ हमादान होकर तेहरान तक बढ़ना पड़ा। इधर एप्रिल में मेसोपोटामिया में अँगरेज़ी सेनाओं ने बसरा और कूर्ना पर तुर्की आक्रमणों को रोका और सितम्बर में बड़े कौशल से कुत्तल अमरा पर क़ब्ज़ा कर लिया। अब टाउन्सैंड ने बग़दाद की ओर रुख किया परन्तु उसे बीच से ही लौटना पड़ा और कुत्तल में पहुँच कर वह बुरी तरह घिर गया। इसी वर्ष जूलाई में जर्मन दक्खिनी पच्छिमी आफ्रिका फ़तह हो गया, परन्तु कैमरून और पूरबी जर्मन आफ्रिका की सेनाओं ने लड़ाई जारी रखी।

समुद्री मोर्चों पर—२४ जनवरी को डोगर बैंक की लड़ाई में एक जर्मन क्रूज़र डूबा और दो घायल हुए। जर्मन बेड़ा बराबर अपने अड्डे में ही पड़ा रहा।

जर्मनी की तरफ से ब्रिटिश अवरोध के उत्तर में अब डुबकनी किश्तियों के हमले शुरू हुए जो वर्ष के भीतर लगभग ४०० व्यापारी जहाजों को डुबाने में सफल हुए। इसके जवाब में अँगरेजी बेड़े ने बड़े-बड़े अवरोध की योजना बनायीं और निष्पक्ष देशों के जहाजों द्वारा भोजन-सामग्री तक को 'वर्जित' ठहराया; परन्तु इसी बीच में अमेरिका के लुमेटिनया जहाज के डूबने ( मई, १९१५ ई० ) से जर्मनों को आश्वासन देना पड़ा कि वे बिना चेतावनी दिये मुसाफिरी जहाज न डुबायेंगे। ब्रिटिश अवरोध के प्रभाव से जर्मनी को फरवरी से ही भोजन की मात्रा परिमित करनी पड़ी।

## §३—१९१६ ई० मे युद्ध की प्रगति

पच्छिमी मोर्चे पर ( वर्दूं और सॉम की लड़ाइयाँ )—सन् १९१५ के अन्त में मित्र-राष्ट्रों ने यह निश्चय किया कि अँगरेजी सेना के तैयार होते ही सारे मोर्चे पर आक्रमण की तैयारी की जाय, परन्तु जर्मनी में यह सोचकर कि पूरबी मोर्चे पर अब आगे बढना युक्तियुक्त न होगा और दूसरे रूसियों की ओर से कोई आक्रमण न हो सकेगा, वर्दूं की किलेबन्दी तोडने का निश्चय किया। २१ फरवरी को म्यूज नदी के पूरब में यह आक्रमण शुरू हुआ और ६ दिन में जर्मन सेना ने डुनामोन्ट का नामी किला जो वर्दूं की दुर्गमाला की कुंजी समझा जाता था सर कर लिया। इसके बाद यहाँ कई महीने तक खूब लडाई होती रही और जून खतम होते-होते जर्मन वर्दूं से केवल ३ मील की ही दूरी पर रह गये। परन्तु जूलाई शुरू होते ही अँगरेजी और फ्रान्सीसी सेनाओं ने सॉम नदी के दोनों तरफ से आक्रमण कर दिया और अगले ५ महीने तक यहाँ ऐसी प्रबल लडाई हुई कि अब तक कहीं न हुई थी। दोनों ओर से सेनाओं के दस्ते से दस्ते आक्रमण करते, तोपें अग्नि उगलतीं और गोलों की बौछारें करतीं। इस प्रकार खूब मारकाट चलती रही, यहाँ तक कि इस सारे प्रदेश की भूमि छलनी हो गयी, घने जंगलों में पेड़ों की ठूँट खड़े रह गये और गाँव और बस्तियों का तो कहीं निशान तक न रह गया। इस लड़ाई का प्रभाव दोनों ओर की सेनाओं पर गहरा पड़ा। जर्मन सेनाओं को अगस्त के महीने में वर्दूं का घेरा उठा देना पड़ा और सॉम के मोर्चों पर तो उनको लेने के देने पड़ गये। सितम्बर के आरम्भ से ही अँगरेज और फ्रान्सीसी प्रबल होने लगे और १५ सितम्बर को अँगरेजी सेना ने पहली बार टैंकों से आक्रमण कर जर्मन सेना को कई स्थानों पर पीछे ढकेल दिया। यहाँ तक कि सितम्बर के महीने के अन्त तक अँगरेजी सेनाएँ जर्मनों की मोर्चाबन्दी तोड़ कर घुस गयीं। आखिर १५ नवम्बर को ऑकरे की लड़ाई में बोमोन्ट हैमेल पर अँगरेजों का कब्जा हो गया। परन्तु यह जीत बड़ी मँहगी पड़ी और जर्मनों की अपेक्षा ब्रिटिश सेना का बहुत अधिक नुकसान हुआ। वर्दूं की लड़ाई फ्रान्सीसी सेना की वीरगाथा का बड़ा उज्ज्वल अध्याय बनी। सात दिन और सात रात तक यहाँ के किले की सेना निरन्तर लड़ती रही और पिछले दो दिन तो बिना एक घूँद जल पिये ही बिता दिये

गये। इस किलेबन्दी की चप्पे-चप्पे भूमि को फ्रान्सीसी सेना ने अपने रक्त से सींचा और प्रत्येक इंच के लिए सैकड़ों वीरों ने अपनी जानें हँसते-हँसते दे दीं।

इंग्लैंड में सॉम की लड़ाई की सारी झोंक वहाँ के मन्त्रि-मंडल पर आ पड़ी। इधर इंग्लैंड सेना में अनिवार्य भर्ती के कानून से लोगों में नाराजगी की लहर दौड़ रही थी, उधर गैलीपोली और मैसोपोटामिया की पराजयों के सम्बन्ध में गवर्नमेन्ट के जाँच कराने में आनाकानी ने लोगों को और भी असन्तुष्ट कर दिया था। फिर जर्मनी और उसके साथी देशों का अवरोध भी ठीक-ठीक नहीं हो रहा था और जटलैंड की समुद्री लड़ाई में भी अँगरेज़ों की एक प्रकार से हेटी हो रही थी। अस्तु इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि इंग्लैंड में लायड जार्ज को नया मन्त्रि मंडल बनाना पड़ा और फ्रान्स में जोफ़े की जगह मार्शल फ़ोश फ़िर कमांडर बना दिया गया।

समुद्री मोर्चों पर ( जटलैंड की लड़ाई )—इधर ३१ मई को जटलैंड के पास जर्मन बेड़े के साथ अँगरेज़ी बेड़े की मुठभेड़ हो गयी। शाम को ६ बजे के बाद लड़ाई शुरू हुई और शुरू में दो अँगरेज़ी क्रूज़रों को डुबा कर जर्मन बेड़ा थोड़ी देर के लिए धुएँ के बादलों में पीछे हट गया। परन्तु कुछ देर में जर्मन बेडा फिर लड़ने को आ गया और कुछ देर तक लड़कर और अँगरेज़ी बेड़े का काफी नुकसान करके अँधेरे में अपने अड्डे पर भाग कर जा पहुँचा। इस लड़ाई में जर्मन बेड़ा बचकर ही नहीं निकल गया बल्कि अँगरेजों के सैन्य और नाविक बल दोनों ही को अपने से दुना नुकसान कर गया। उधर जर्मन डुबकनियों ने भी लगभग १ हजार अँगरेज़ी व्यापारी जहाजों को समुद्र की तह में पहुँचा दिया; परन्तु सब से भारी हानि यह हुई कि अँगरेज़ी सैन्य-सचिव लार्ड किचनर अपने जंगी जहाज हैम्पशायर के साथ जर्मन डुबकनियों द्वारा बिछायी हुई सुरंगों से टकराकर डूब गया ( १६ जूलाई, १६१६ )।

पूरबी मोर्चा पर—वर्दू पर जर्मनों के आक्रमणों की प्रचंडता कम करने के विचार से विलना के उत्तर-पूरब में ७ मार्च को रूसियों ने धावा बोला और डेढ़ महीने तक बराबर लड़ाई जारी रखकर उन्होंने कई स्थानों पर कब्ज़ा कर लिया। परन्तु इनकी यह जीत बहुत मँहगी पड़ी क्योंकि जर्मनों ने २८ एप्रिल को एक ही दिन के धावे में सारा खोया हुआ प्रदेश फिर जीत लिया। इनके बाद जून में इटली पर आस्ट्रीयनों के धावे का दबाव कम करने के लिए रूसी सेना ने ब्रूसिलोव की कमान में बड़ा प्रबल आक्रमण किया; परन्तु जर्मन-आस्ट्रियन सेनाओं ने नयी कुमक प्राप्त हो जाने पर रूसियों को मार भगाया-यद्यपि रूसी सेनाओं के बुकोविना में घुस जाने से आस्ट्रियनों को इतालियों के विरुद्ध ट्रेन्टिनो पर से अपनी सेनाएँ हटानी पड़ गयीं। इस प्रकार यह धावा ३ महीने तक चलता रहा, परन्तु सिवाय इसके कि ब्रिटिश और इतालवी सेनाओं को अपने-अपने मोर्चों पर जर्मन सेना के हट जाने से कुछ सुविधा हुई हो; इसका और कोई व्यापक परिणाम न निकला। इसी समय रूसी सेनाओं को

बुकोविनी में घुसते देख कर रूमानिया २७ अगस्त को मित्रराष्ट्रों का साथी हो गया और उसने तुरन्त ट्रान्सेलवेनिया पर धावा बोल दिया। परन्तु इसी बीच में रूसी सेनाएँ लेम्बुर्ग पर और इतालवी गोरीजिया पर आक्रमण कर रही थीं, इसलिए जर्मन-आस्ट्री सेनाओं को इधर पहुँचने में कुछ देर लगी और रूमानी सेनाएँ बराबर आगे बढती गयीं। आखिर सितम्बर-अक्टूबर में जर्मन सेनाओं ने फिर हिंडेनबर्ग की कमान में इधर को रुख किया और १६ नवम्बर को टारगूजियू पर रूमानियों को बड़ी करारी हार दी। अब न केवल सारा दक्खिनी ट्रान्सेलवेनिया जर्मनों के हाथ में था बल्कि उन्होंने वालाशिया छीन कर रूमानिया राज्य का दो-तिहाई प्रदेश दबा लिया और ६ सितम्बर को उनकी राजधानी बुखारेस्ट को भी जीत लिया। रूमानियों की इस करारी हार ने केन्द्रीय शक्तियों को बड़ा प्रबल बना दिया।
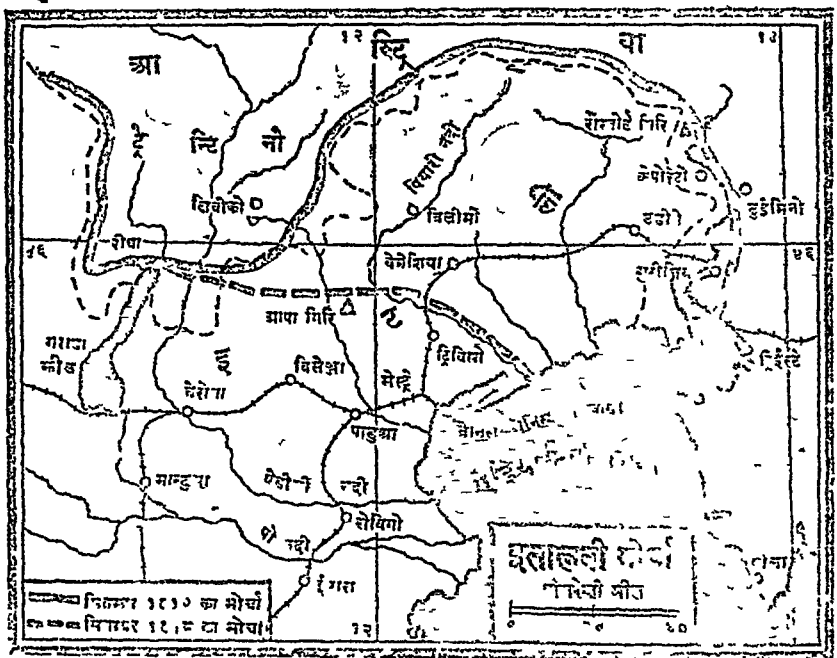
इतालवी और बाल्कन मोर्चों पर—अगस्त के महीने में इतालवी सेनाओं ने ट्रिईस्ट पर धावा बोलने के इरादे से इसोनजो नदी के उस पार आक्रमण कर दिया और चार महीने तक बराबर लड़ाई करते रहने पर भी कार्सो की पहाड़ियों से आगे न बढ़ सके। आस्ट्रियन सेनाओं के इस प्रकार इतालियों के साथ भिड़ जाने के कारण गैलीशिया में उनको बड़ा नुकसान उठाना पड़ा। पच्छिमी और पूरबी मोर्चों पर घनघोर लड़ाइयों में फँसे रहने के कारण जर्मनी या आस्ट्रिया में से कोई भी शक्ति बाल्कन में किसी प्रकार की छेड़छाड़ करने को तैयार नहीं थी और जैसा हम देख चुके हैं बलगारी सेनाएँ भी यूनान के सीमान्त पर ही रुक गयी थीं। इधर मित्रराष्ट्रों की यह

स्थिति थी कि न तो वे सर्बिया को ही बचा सके और न ही यूनान की सहायता करने का बहाना कर सके। फिर भी अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए ब्रिटिश सेनाएँ सेलोनिका पर पड़ी रहीं। परन्तु जब मार्च में अँगरेज़ी और फ्रान्सीसी सेनाओं ने बलगारियों के मुकाबले में आगे बढ़ने की तैयारी की तो रुपेल दुर्रे पर यूनानियों की हार हो जाने के कारण उन्हें पूरबी मेसिडोनिया तक अपना मोर्चा बढ़ाना पड़ा। इस पर यूनानी बहुत असन्तुष्ट हुए और उनके मन्त्री वेनेज़ेलो को जो मित्रराष्ट्रों के पक्ष में था क्रीट भाग जाना पड़ा। आखिर मित्रराष्ट्रों के साधारण दबाव में आकर यूनानी गवर्नमेन्ट को अपना बेड़ा और युद्ध का सामान भी दे देना पड़ा। इस पर भी मित्रराष्ट्रों ने यूनान पर अवरोध जारी रखा और वर्ष के अन्त तक प्रायः सारे देश पर अधिकार कर लिया।

निकट पूरबी देशों में—मैसोपोटामिया में अँगरेज़ी सेना ने कई धावे बोले परन्तु वे कुत्तल तक पहुँच कर टाउन्शैंड की सेना का कोई कुमक न पहुँचा सके। आखिर ५ महीने तक घिरे रहने के बाद टाउन्शैंड को २९ एप्रिल को हार मान कर कुत्त पर आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस बीच में रूसी सेनाओं ने काकेशस प्रदेश में कई स्थानों पर अधिकार जमा लिया। उधर मिस्र में जिहाद और स्वेज नहर पर तुर्की आक्रमण रोकने के लिए अँगरेज़ों को रोमानी तक रेलपथ और पानी के नल लगाने की व्यवस्था करनी पड़ी। तुर्की सेनाएँ हार गयीं और दिसम्बर के अन्त तक मिस्र से तुर्कों को निकाल बाहर कर दिया गया। इसी बीच में जमाल पाशा ने सीरिया में अरबों के एक विप्लव को दबा दिया; परन्तु मक्का के शरीफ़ हुसेन के सामने उसकी कुछ पेश न गयी। हुसेन अँगरेज़ों से मिला हुआ था। जब मई में और भी कई अरब क़बीले उसके साथ मिल गये तो उसने मक्का, जिद्दा आदि पर अपना अधिकार कर लिया और सिनाई में तुर्की सेना के आने-जाने के मार्ग का अवरोध कर दिया। दिसम्बर में अँगरेज़ों ने उसे हिजाज़ का बादशाह स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार सन् १९१६ में यद्यपि पच्छिमी और पूरबी मोर्चों पर मित्रराष्ट्रों ने बड़े प्रबल धावे बोले, परन्तु वे जर्मनों को न हरा सके। इसी वर्ष इँग्लैंड में राजाज्ञा से सेना में अनिवार्य भर्ती होने का कानून पास हो गया और आस्क्विथ का सर्वदल-मन्त्रिमंडल भी टूट गया। लायड जार्ज प्रधान मन्त्री बना और उसके युद्ध कैबिनेट में दक्खिनी आफ्रिका का जनरल स्मट्स भी शामिल हुआ। अब इंग्लैंड के सभी प्रमुख व्यवसाय, जहाजरानी, खानों, रेलों आदि पर सरकार का नियन्त्रण हो गया और युद्ध की आवश्यकताओं के सामने हर अँगरेज़ को अपनी स्वतन्त्रता का अपहरण इसलिए सहन करना पड़ा कि उसका देश युद्ध में विजय प्राप्त करे। प्रजा की भोजन-सामग्री ही नियन्त्रित नहीं कर दी गयी बल्कि उसकी मात्रा भी नियत हो गयी। प्रेस पर भी प्रतिबन्ध लग गया और लोगों को केवल सन्देह पर ही, बिना किसी प्रकार की जाँच-पड़ताल और सुनवाई-गवाही के जेलखाने में बन्द कर देना 'डिफेन्स ऑव दि रैल्म ऐक्ट' पास करके वैधानिक बना दिया गया।

## §४—सन् १९१७ में युद्ध की प्रगति

पच्छिमी मोर्चे पर—पिछले तीन बरसों की लड़ाइयों ने मित्रराष्ट्रों को अब बहुत कुछ सचेत कर दिया था। इस वर्ष पच्छिम मोर्चे पर उनकी चाल यह थी कि सॉम पर अँगरेजी और फ्रान्सीसी सेनाओं का सम्मिलित और शैम्पेन पर फ्रान्सीसी सेना के बड़े प्रबल धावे बोले जाँय। वर्दू का सफल रक्षक निवेल फ्रान्सीसी सेना की कमान पर था; परन्तु वह शैम्पेन के धावे पर अधिक जोर देता था। उधर फ्रान्सीसी मन्त्रिमण्डल और पुराने सैनिकों को निवेल के ऊपर पूर्ण विश्वास भी नहीं था। ऐसी परिस्थिति में उसे अपना आक्रमण बड़ी कठिनाइयों में शुरू करना पड़ा। परन्तु इस बीच में जर्मनी के आक्रमण करने से पहले ही उन पर धावा बोल देने के विचार से फरवरी के आरम्भ में अँगरेज़ी सेना ने ऑक्रे के दोनों ओर हमला शुरू कर दिया। इस पर जर्मन सेना ने धीरे-धीरे पीछे हटते जाने की युक्ति निकाली और अपनी सेनाओं को प्रसिद्ध हिंडेनबर्ग-मोर्चाबन्दी तक हटा ले गये। इसी चाल में जर्मनों को एक बड़ा लाभ यह था कि अपनी इस मोर्चाबन्दी की रक्षा के लिए उनका अपेक्षत: बहुत थोड़ी सेना से काम चल जाता और उधर आक्रमणकारी सेना को गोलाबारी से छलनी किये हुए प्रदेश पर शीघ्रता से बढ़ने और आक्रमण करने के लिए उपयुक्त व्यूह-रचना करने की गति विधि और सुविधा असम्भव होती। जर्मनों की इस चाल ने निवेल की सारी योजना पर पानी फेर दिया। आख़िर १५ एप्रिल को फ्रान्सीसी सेना को रिएम्स के उत्तर-पूर्व से नये आक्रमण करने पर मजबूर होना पड़ा। १० दिन तक खूब धड़ाके की गोलाबारी करने के बाद फ्रान्सीसियों का धावा शुरू हुआ जिसमें उनकी करारी हार हुई और बड़ा भारी नुकसान भी उधर अँगरेजों ने यह सोचकर ९ एप्रिल को आरास पर धावा बोला कि अगर उनकी जीत हुई तो जर्मन मोर्चाबन्दी तोड़ देंगे और अगर हार भी हुई तो कम से कम निवेल की सेना का-हाथ ज़रूर बटा सकेंगे। १० एप्रिल को कनाडी सेना ने विमी पहाड़ी का मोर्चा छीन लिया और १३ तारीख़ को लेन्स पर जर्मनों को पीछे हटना पड़ा। फिर भी उनकी मोर्चेबन्दी न टूट सकी। उधर निवेल की सेनाओं की असफलता के कारण आरास की लड़ाई को ३ महीने तक जारी रखना और अँगरेज कमांडर हेग फ्लांडर्स में एक नया आक्रमण करना पड़ा जिसमें अँगरेज़ी सेना के २५ हजार सिपाही काम आये। ७ जून के हमले में याइप्रस के दक्खिनी मेसिनी-विशेट पहाड़ी पर अधिकार हो गया, परन्तु यह याइप्रस की तीसरी लड़ाई मूसलाधार वर्षा में भी जारी रही और अगस्त से नवम्बर तक दोनों सेनाओं के कुछ हाथ न लगा। वर्षा के कारण सारा मैदान दलदल बना हुआ था, इसलिए टैंक भी किसी काम के न रहे थे। उधर जर्मनों के सीमेन्ट के बने 'पिल-बक्सों' में से गोलियों की बौछार पड़ती थी। आख़िर बहुत काफ़ी सेना कटा कर अँगरेज़ों ने पेशेंडेल पहाड़ी पर कब्जा कर लिया। इस कटामारी से अगर कोई लाभ हुआ तो केवल इतना कि जर्मन सेना खाली न बैठ

पायी क्योंकि दूसरी ओर रूस, इटली और फ्रान्स का भी नाकों दम आ गया था। इसी समय अँगरेज कमांडर बिङ्ग ने बिना गोलागारी किये कुहरे के अँधेरे में टैंकों द्वारा कैम्ब्राइ के दक्खिन-पच्छिम में सिगफ्रीड मोर्चाबन्दी तोड़ डाली; परन्तु शीघ्र ही जर्मन सेनाएँ जवाबी हमला करके अँगरेजी सेना को फिर पीछे ढकेल देने में समर्थ हुईं।

पूरबी मोर्चे पर—इस मोर्चे पर इस वर्ष की प्रमुख घटना है रूस का क्रान्ति के कारण युद्ध से अलग हो जाना और उसकी शक्ति का अवसान। पिछले तीन बरसों के युद्ध में रूस की बड़ी भयंकर धन-जन की हानि हुई और बन्दूकों, तोपों, गोला-बारूद और हवाई जहाजों की कमी के कारण उनकी हार पर हार होती गयी। परिस्थिति इतनी भीषण हो गयी कि प्रजा के लिए खाने तक की सामग्री न रह गयी। यह निर्विवाद सत्य है कि रूसी सेनाएँ बड़ी वीरता से लड़ीं और उनके धावों की प्रचंडता ने ही मार्न और वर्दूं की लड़ाइयों में मित्रराष्ट्रों के कदम उखड़ने से बचाये; परन्तु हथियार और गोलाबारूद न होने के कारण उनकी टिड्डी दल सेनाएँ जर्मन तोपखाने की आहुति बनने के सिवाय और कोई महत्वपूर्ण काम न कर सकीं। रूस की शासन-व्यवस्था में तो बरसों से घुन लगा हुआ था और प्रजा में दिन प्रति दिन असन्तोष बढ़ता जा रहा था। आखिर मार्च के महीने में पेट्रोग्राड में भोजन न मिलने के कारण दंगा फिसाद हो गया और शासकों की दुर्व्यवस्था के कारण इसने भीषण विप्लव का रूप धारण कर लिया। इस पर १५ मार्च को रूस के जार को राज्य से विरति ले लेने को मजबूर होना पड़ा। और हाल में हटायी हुई डूमा के सुधार वादी लीडरों और सेन्ट पीटर्सबर्ग के कामगरों की सोवियेट के प्रतिनिधियों की एक कामचलाऊ शासक मंडली बन गयी। परन्तु थोड़े ही समय बाद यह शासन उग्रदल के हाथ में आ गया और कैरेन्स्की प्रधान बन गया।

जर्मन राजनीतिज्ञों ने परिस्थिति को ठीक आँका और लड़ाई बढ़ाकर रूसी प्रजा की देशभक्ति को भड़काना उचित न समझा। इसलिए अब उन्होंने जर्मन सेनाओं को रूसी मोर्चे पर से धीरे-धीरे हटाना शुरू कर दिया। परन्तु कैरेन्स्की ने ब्रूसिलॉव की सहायता से गैलीशिया में ब्रिजानी और स्टेन्स्लो से धावे बोल दिये। शुरू में तो इन आक्रमणों को कुछ सफलता मिली, परन्तु जर्मन कुमक आ जाने से इनकी रोकथाम हो गयी आखिर जुलाई में जर्मनों ने ऐसे प्रबल जवाबी हमले किये कि रूसी सेना को पीछे ही नहीं हटना पड़ा बल्कि उनकी सारी मोर्चाबन्दी टूट गयी और गैलीशिया और बुकोविना के प्रदेश जर्मनों के हाथ आ गये। परन्तु अब रूसी सेना में बड़ी खलबली मची और उनका औसान भग हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनों ने अपने बाल्टिक समुद्र वाले बेड़े को रीगा की खाड़ी में भेज दिया। इधर जर्मन सेनाओं ने ३ सितम्बर को रीगा पर अधिकार कर अक्टूबर के महीने में घुसकर सब द्वीपों पर कब्जा कर लिया। इसके बाद पेट्रोग्राड पर दखल कर लेने के इरादे से उनकी सेनाएँ ऐस्थोनेया में उतर गयीं। इस समय कैरेन्स्की को चारों तरफ़ से निराश होना पड़ा क्योंकि अब उसे मित्रराष्ट्रों ने रसद और गोला बारूद देना बन्द कर दिया था। आखिर

७ नवम्बर को ट्राट्स्की और लैनिन के बोल्शेविक दल ने उसे पदच्युत कर दिया और ४ सितम्बर को जर्मनी से युद्ध स्थगित ठहराव कर ब्रेस्ट-लिटुविस्क की कान्फ्रेन्स बैठ गयी जिसकी सन्धि-शर्तों के अनुसार रूस का सारा पच्छिमी प्रदेश—पोलैंड और बाल्टिक प्रान्तों सहित—जर्मनी के अधिकार में हो गया।

इतालवी मोर्चे पर—मई के महीने में इतालियों ने ट्रिईस्टे की ओर दो धावे बोले, परन्तु इनमें उनकी सेना का बड़ा भारी नुकसान हुआ और सफलता कुछ भी न मिली। जून से अगस्त सितम्बर तक इसोनजों पर बड़ी विकट लड़ाई होती रही, परन्तु यहाँ भी उन्हें कोई सफलता न मिली। गोले बारूद और रसद की कमी, जनरलों की अकर्मण्यता और निकम्मेपन के साथ-साथ फ्रान्स और रूस की पराजयों ने इटालियों की सेनाओं के भी दिल दहला दिये थे। फिर इन चारों धावों में ३ लाख ५० हज़ार इतालवी सेना का संहार हुआ जिससे उनके रहे-सहे औसान भी जाते रहे। आख़िर लुडैंडोर्फ ने जर्मन आस्ट्रीय सेनाओं पर धावा बोलने की आज्ञा दी और २४ अक्टूबर को केपीरेटो पर इतालवी सेना की ऐसी करारी हार हुई कि उनकी पाँच लाख सेना मारी गयी या कैद हो गयी और हजारों बन्दूकें, तोपें, गोला बारूद और रसद का सामान जर्मनों के हाथ आया। इतालवी सेनाओं ने बड़ी कठिनाई से भाग कर पियावे नदी के इस पार दम लिया। आखिर नवम्बर में अँगरेज़ी और फ्रान्सीसी सेनाओं की कुमक आ पहुँची और उन्होंने जर्मन सेनाओं को आगे बढ़ने से रोक दिया। सर्विया और रूमानिया की भांति जर्मन सेनाओं ने इतालियों की भी खूब मरम्मत की, परन्तु वे हारते हारते भी उन दोनों की सी दुर्गति से बच गयीं।

बाल्कन मोर्चे पर—सैलोनिका से अँगरेज कमांडर सेरेल के एप्रिल और मई के नये आक्रमण फिर असफल रहे। आपसी झगड़ों और मित्रराष्ट्रों पर अविश्वास के कारण सर्वियों में भी अब कोई दम न रह गया। इधर यूनान के अवरोध और उसके राज्य पर मित्रराष्ट्रों का अधिकार बने रहने के कारण १२ जून को राजा कॉन्स्टेन्टाइन ने राज्य से विरति ले ली और वेनिजेलो ने एथेन्स पहुँच कर शासन अधिकार सँभाला। १२ दिसम्बर को रूमानिया ने भी केन्द्रीय शक्तियों से युद्ध स्थगित ठहराव कर लिया।

अन्य मोर्चों पर—मार्च और एप्रिल के महीनों में अँगरेजी सेनाओं ने फिलिस्तीन में घुस कर गाजा पर दो असफल आक्रमण किये। आख़िर अक्टूबर के महीने में जनरल एलेनबी की कमान में अँगरेज़ों ने तुर्कों को गाज़ा से मार भगाया और जाफ़ा से आगे उन्हें खदेड़ कर यरूशलम पर धावा बोला। ११ दिसम्बर को अँगरेज़ी सेना ने यरूशलम पर कब्ज़ा कर लिया। उधर मैसोपोटामिया में भी अँगरेजी सेना को विजय प्राप्त हुई। दो महीने तक लड़ाई करने के बाद २४ फरवरी को कुत्त पर फिर दख़ल हो गया और १० मार्च को अँगरेजी सेनाओं ने बग़दाद लेकर तुर्कों को वहाँ से भी मार भगाया। दिसम्बर का अन्त होते होते तुर्की सेना बग़दाद से लगभग १००

मील पीछे हट गयी थी और इराक़ और निचले मैसोपोटामिया प्रदेश पर अँगरेजों का अधिकार हो गया था।

समुद्र पर डुबकनी किश्तियों का विध्वंसकारी कार्य और उसकी असफलता—सन् १९१७ में भी जैसा हम देख चुके हैं मित्र राष्ट्रों को कोई बड़ी विजय प्राप्त नहीं हुई। सन् १९१६ के अन्त में जर्मनों ने ब्रिटिश बेड़े के अवरोध से तंग आकर उसका जवाब डुबकनी किश्तियों के असाधारण आक्रमण द्वारा देने का इरादा किया। आस्ट्रीय सेनाओं में भगदड़ मच जाने के कारण जर्मनी ने यह निश्चय किया कि अब युद्ध का निर्णय शीघ्र ही होना परमावश्यक है। परन्तु स्थल सेनाओं की ओर से कोई विशेष आशा नहीं की जा सकती थी और नौ सेना पर भी पूरा पूरा भरोसा नहीं था। इसलिए अब बिना किसी का लिहाज किये जर्मन डुबकनी किश्तियों को उत्तरी सागर और एटलान्टिक महासागर में बिना किसी चेतावनी के जहाज डुबाने के लिए आज्ञा दे दी गयी। जर्मनी समझती थी कि ऐसा करने से अमेरिका के लड़ाई में कूद पड़ने की आशंका थी, परन्तु उसे यह भी मालूम था कि लड़ाई की घोषणा कर देने के कम से कम ६ महीने के बाद ही अमेरिका इधर कुछ कर सकेगा। आख़िर एप्रिल में डुबकनी किश्तियों ने अपना विध्वंसक कार्य शुरू किया और पहले महीने में ही १० लाख से भी अधिक टन-भार के जहाजों को समुद्र की तह में पहुँचा दिया। जर्मन डुबकनियों की इस असाधारण सफलता से मित्र-राष्ट्रों में बड़ी खलबली मच गयी और जर्मन नौ-विभाग ने तो यहाँ तक आशा दिलायी कि इस विध्वंस के कारण ६ महीने के भीतर ही अँगरेज त्राहि-त्राहि पुकारने लगेंगे। परन्तु मित्र-राष्ट्रों ने भी इस नये ख़तरे से बचने की नयी नयी तरकीबें खोज निकाली और मई में एप्रिल से कम तथा जून में मई से भी कम जहाज इन डुबकनियों के शिकार हो पाये। उन्होंने गुप्त जहाज़ और पनडुब्बियाँ बना कर डुबकनी किश्तियों का विनाश करना आरम्भ किया। डुबकने बमों ( डेप्थ चार्जेज ) को जिनमें बड़े जबरदस्त विस्फोटक भरे होते थे समुद्र के भीतर गिरा दिया जाता। यह बम समुद्र के भीतर बहुत गहराई तक जाकर पानी के दबाव के कारण फट जाते और ७५ गज तक की दूरी पर डुबकनी किश्ती को पानी के भीतर ही तोड़-फोड़ डालते। दूसरे विपक्षियों के उन बन्दरगाहों पर विध्वंसक जहाजों से आक्रमण किया जाता ताकि वहाँ छिपी हुई डुबकनियों को डुबा दिया जाय। फिर नये प्रकार की समुद्रस्थ सुरंगें बिछाकर तथा उनके बाँध बनाकर भी डुबकनियों को रोका जाता। इसी प्रकार साधारण व्यापारी जहाज़ों और मछली का शिकार करने वाली किश्तियों में बड़ी गुप्त रीति से तोपें छिपा दी जातीं और जब डुबकनी किश्तियाँ उन्हें घेरतीं तो आत्मसमर्पण के बहाने यह उन्हें पास बुला कर उन पर तोपें दाग़ कर उन्हें तोड़ फोड़ देतीं। फिर व्यापारी जहाजों को जंगी जहाज़ों की रक्षा में ले जाने की भी योजना बनी। यह रक्षा करने वाले जहाज प्रायः विध्वंसक ( डेस्ट्रायर ) होते; क्योंकि ये स्टील के ऐसे तीव्रगामी और हलके बने होते थे कि अन्य जहाज़ों की अपेक्षा इनका बहुत कम

अंश पानी के भीतर रहता था। इसलिए यह विध्वंसक बिना खुद टूटे डुबकनी किश्तियों को तारपीडो या डुबकनी सुरगें मार कर या उन पर चढ़ जाकर उन्हें विनष्ट कर डालते। लंदन में ऐडमिरेलिटी भवन के एक कमरे में इस 'कनवॉय व्यवस्था' का प्रधान कार्यालय था जिसमें पूरी दीवार पर एक चार्ट बना था। इस चार्ट पर छोटी छोटी किश्तिया बनाकर हर 'कनवाय' की ठीक ठीक स्थिति चित्रित रहती और छोटे छोटे वृत्त बना कर डुबकनियों की स्थिति (सूचना के अनुसार) प्रदर्शित कर दी जाती। फिर लंडन से बेतार खबर भेजकर समुद्र पर जाते हुए रक्षित जहाजों को डुबकनियों की स्थिति बता दी जाती थी और इस प्रकार संसार भर के समुद्रों में फैले हुए प्रायः १० हजार व्यापारी जहाजों को निरन्तर डुबकनियों की स्थिति की सूचना पहुँचाती रहती थी। इसी प्रकार समुद्र तट पर पहरा देने वाली मोटर-किश्तियों में 'हाइड्रोफोन' लगा दिये गये थे जिनके द्वारा ३० मील की दूरी से डुबकनी के आने की सूचना मिल जाती और तब ये डुबकनी सुरंगें फेंक कर उन्हें तोड डालतीं। उधर अमेरिकनों ने नारवे और शैटलैंड द्वीपों के बीच डुबकनी किश्तियों के विनाश के लिए प्रायः २५० मील लम्बा और २० मील चौड़ा सुरगों का जाल बिछा रखा था। इन सब कार्रवाइयों का परिणाम यह हुआ कि वर्ष समाप्त होते होते डुबकनियों को नष्ट करने और उनके आक्रमण से जहाजों के बचाने में बड़ी सफलता प्राप्त हुई और जर्मन नौ-सेना के कर्त्ता-धर्त्ताओं पर यह स्पष्ट हो गया कि डुबकनी किश्तियों के बूते पर वे युद्ध में विजयी न हो सकेंगे।

**सन् १९१६-१७ ई० में सन्धि की चेष्टाएँ**—सन् १६१५ ई० में ब्रूसिलोव के धावे के बाद ही आस्ट्रिया की ओर से रूसियों के साथ सन्धि की चेष्टाएँ शुरू हो गयी थीं और कुछ हद तक सफल भी हुईं, परन्तु जर्मनी के साथ दृढ़ मैत्री के लिहाज ने आस्ट्रिया को अलग से सन्धि कर लेने से रोके रखा। उधर जब जर्मन डुबकनी किश्तियों के व्यापारी जहाज डुबाने पर अमेरिका से झगड़ा बढ़ा और शिकवे शिकायतें चलने लगीं तब जर्मनों ने अमेरिका को ऐसी सन्धि पर राजी करना चाहा जिसमें कोई शक्ति दूसरे के जीते हुए प्रदेश न ले और अमेरिका से प्रेसिडेन्ट विलसन द्वारा प्रतिपादित 'राष्ट्र-संघ' के पंचायती निर्णय पर भविष्य के झगड़ों का निपटारा छोड़ दिया जाय। उधर इंग्लैंड विजित देशों पर अधिकार बनाये रखने के पक्ष में था और इधर जर्मनी इस सन्धि-चर्चा को इसलिए जारी रखना चाहता था कि उसे शीघ्र ही विजय की आशा थी। विलसन को कई कारणों से इस चर्चा को आगे बढ़ाने में देर लगी; उधर आस्ट्रिया की दुर्गति देखकर जर्मनी ने अंतांत शक्तियों से सीधी बात करनी चाही, परन्तु उसे टका सा जवाब मिला। फिर जर्मनी ने देखा कि उसे युरोप में विजय प्राप्त होने में कठिनाई हो रही है तो उसने जैसा हम अभी पढ़ चुके हैं बिना रियायत के डुबकनियों द्वारा जहाज डुबाने शुरू कर दिये। इस प्रकार इस वर्ष की सब से महत्त्वपूर्ण घटना थी डुबकनी किश्तियों का आक्रमण जो कहीं अगर सफल हो जाता तो अँगरेज़ों को भूख के मारे आत्मसमर्पण कर देना पड़ता।

संयुक्त राज्य अमेरिका का युद्ध-प्रवेश—आख़िर जर्मन डुबकनी किश्तियों के नृशंस विध्वंस से तंग आकर एप्रिल के महीने में संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी और अपनी सारी नौ-सेना मित्र राष्ट्रों की सहायता के लिए सौंप दी। परन्तु इस समय युद्ध की प्रगति पर अमेरिका के सम्मिलित हो जाने से कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। हाँ, वर्ष का अन्त होते-होते अमेरिका में रसद सामान जहाजों और तोपों आदि के इस वर्ष डुबाये हुए २ हज़ार ५०० जहाज़ों और लड़ाई में छीने हुए बहुत से साज़-सामान और गोला-बारूद की कमी को बहुत कुछ अंशों में पूरा कर दिया।

## § ४—१९१८ ई० के युद्ध की प्रगति

समुद्री मोर्चे पर—पिछले ४ बरस की लड़ाइयों में ब्रिटिश बेड़े पर युद्ध की प्रचंडता का भार कुछ कम पड़ा हो सो बात नहीं है। ब्रिटिश नौ-सेना पर जर्मन बेड़े की ताक में रहने के अतिरिक्त इंग्लैंड के तट प्रदेश की सारी रक्षा का भार था। फिर सारे युद्ध-क्षेत्रों पर सेना गोला-बारूद, रसद सामान आदि का सुरक्षित पहुँचाना भी उसी के जिम्मे था (५ वर्ष की लड़ाई में अँगरेजी बेड़े ने अकेले फ्रान्स तक ही २ करोड़ सेना को लाने ले-आने में एक भी जान का नुक़सान न होने दिया था)। साथ ही मित्रराष्ट्रों और इंग्लैण्ड के वाणिज्य-व्यापार की रक्षा करना और युद्ध के समय उसमें उन्नति करते रहने का काम भी अँगरेज़ी बेड़े की सुव्यवस्था पर ही निर्भर था। ब्रिटेन को अपने खाने पीने की दो-तिहाई सामग्री, सूती कारखानों में काम की सारी रुई और ऊनी कल-कारखानों के चलाने के लिए तीन चौथाई ऊन बाहर के देशों से लानी पड़ती है। फिर इंग्लैंड में युद्ध के आरम्भ में केवल ५६ सप्ताहों के लिए ही भोजन-सामग्री मौजूद थी। इसीलिए अगर अँगरेजी बेड़ा विपक्षी जंगी जहाज़ों को जर्मन बन्दरगाहों से निकल भागने से न रोक पाता या ये सात समुद्रों में जहाँ कहीं थे उनका निकलना बन्द कर देता अथवा जर्मन डुबकनियों का विध्वंसक कार्य बेरोक-टोक जारी रहता, तो शीघ्र ही ब्रिटेन को बिना लड़े हार माननी पड़ती। साथ ही ब्रिटिश नौ सेना ने बैरियों के व्यापारी जहाजों को हरा कर उनकी आयात निर्यात का ऐसा गला घोट दिया कि आख़िर उनका पतन होने में सफलता हुई। ब्रिटिश नौ सैन्य विभाग की तत्परता और कौशल से ही डोवर की खाड़ी में समुद्रस्थ सुरंगों का बाँध बाँध दिया गया और जर्मन डुबकनी किश्तियों के आक्रमणों को रोकने तथा उन पर काबू पाने के ऐसे उपाय किये गये कि अब व्यापारी जहाजों का डूबना ही कम नहीं हो गया (१९१८ ई० में प्रायः एक हज़ार जहाज डूबे) बल्कि ७४ डुबकनियों को भी समुद्र की तह में बैठा दिया गया। फ़रवरी के महीने में सारे ब्रिटेन में भोजन की मात्रा परिमित करने की अनिवार्य व्यवस्था शुरू हुई और चूँकि इस समय सारा बेड़ा अमेरिका से सेनाएँ लाने के कार्य में व्यस्त था, इसलिए मार्च में भोजन-सामग्री प्राप्त होने में बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गयी।

इस वर्ष जर्मन ने डोवर की समुद्रस्थ सुरंगों की बाँध पर, आस्ट्रियनों ने ओट्रान्टो की ओर इतालवी जहाजों ने पोला और डुराजो बन्दरों पर छापे मारे; परन्तु इन सब से महत्वपूर्ण और साहसपूर्ण हमला हुआ अँगरेजी जहाज़ों का २२ एप्रिल को जर्मन डुबकनियों के अड्डे जीब्रज पर—यद्यपि इसका कोई आशाजनक परिणाम न निकला।

पूरबी मोर्चे पर—ब्रेस्ट लिटुविस्क की सन्धि कान्फ्रेन्स में वोल्शेविकों ने जो सिद्धान्त पेश किये उन पर मित्रराष्ट्र राजी न हुए और १० फरवरी को यह कान्फ्रेन्स भंग हो गयी। इस पर जर्मन ने तुरन्त सारे मोर्चे पर आक्रमण शुरू कर दिये, जिससे ट्रॉस्की के होश ठिकाने आगये और आखिर ३ मार्च को सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये। इस प्रकार रूमानिया और यूक्रेन से जर्मन को बहुत सा रसद सामान मिल गया और इस मोर्चे पर लड़ाई बन्द होगयी।

पच्छिमी मोर्चे पर ( जर्मनो के धावे )—इस प्रकार पूरब की ओर से निश्चिन्त होकर लुडैंडोर्फ ने पच्छिमी मोर्चे पर धावा बोल कर, अमेरिका की सेना आने के पूर्व अँगरेजी और फ्रान्सीसी सेनाओं को अलग-अलग कर देने की युक्ति सोची। २१ मार्च को आरास से लेकर ल फेरे तक जर्मन सेनाएँ बराबर आगे बढती गयीं—यहाँ तक कि पिछले दो बरसों में सॉम नदी के उस पार अँगरेजी सेनाओं ने जो कुछ भी प्रदेश जीता था वह सब हाथ से निकल गया और यह आशंका होने लगी कि आमियाँ का रेल-जंक्शन भी जो मित्रराष्ट्रों की सेनाओं के लिए रसद-सामान के आने-जाने का चौमुहाना बना हुआ था, हाथ से निकल जायगा। ऐसी टेढ़ी परिस्थिति में हेग ने अँगरेजी सेनाओं को हटाकर १ लाख सैनिक कैद करा के और १२०० तोपें छिनवाकर भी अँगरेजी और फ्रान्सीसी सेनाओं की मोर्चाबन्दी ही टूटने से नहीं बचा ली बल्कि आमियाँ की भी जर्मनों के हाथ पड़ते-पड़ते रक्षा कर ली। इसके बाद ही ६ एप्रिल को आर्मेन्टियरे और लाबसी के बीच के मोर्चे पर ( याइप्रस ) जर्मनों का दूसरा धावा हुआ जिसमें मेसिनी और पेशैंडेल पहाड़ियों के इर्द गिर्द का सारा प्रदेश छिन गया। इन दोनों धावों में ४ लाख अँगरेजी सेना मारी गयी या घायल हुई और गोला बारूद और तोप बन्दूक आदि की बडी भारी हानि हुई। याइप्रस का नगर यद्यपि अँगरेजों के हाथ में रहा; परन्तु उसके आस-पास के सारे प्रदेश पर जर्मनों का कब्जा हो गया।

इसके बाद के मई, जून और जुलाई के तीन धावों की झोंक फ्रान्सीसी सेनाओं को झेलनी पडी। २७ मई को तीसरा धावा सुइयों और रिएम्स के बीच हुआ और पाँच दिन की लडाई में जर्मन सेनाएँ पेरिस से केवल ४० मील दूर मार्न तक जा पहुँची। परन्तु अब याइप्रस के मोर्चे पर लड़ने के बजाय जून में जर्मनों को कोम्पीने पर चौथा धावा बोलना पड़ा। परन्तु इस बार भी जर्मन सेनाएँ मोन्टिडीर से नावों के बीच ( कोम्पीने से ६ मील पर ही ) रुकी रह गयीं। आखिर लुडैंडोर्फ ने १५ जुलाई को रिएम्स के दोनों तरफ़ से अपना पाँचवा धावा बोला। इस धावे में रिएम्स के पूरब से उसने सीधा आक्रमण किया, परन्तु फ्रान्सीसी सेनाएँ अपने मोर्चों पर डटी

रहीं और जर्मन सेना को पीछे हटना पड़ा। फिर मार्न नदी को पार कर इपरने की ओर जर्मन सेनाएँ आगे बढ़ीं। यहाँ फ्रान्सीसी सेनाओं की पहली मोर्चेबन्दी पर केवल कलदार बन्दूकों ( मशीनगनों ) का ही पहरा था, इसलिए जर्मन सेना इसे तोड़ कर आगे बढ गयी; परन्तु जब वह दूसरी मोर्चेबन्दी के सामने पहुँची फ्रान्सीसी तोपख़ाने की मार ने उसे छलनी कर डाला। इन पाँचों धावों में यद्यपि जर्मन समर-नीति की बड़ी असाधारण विजय हुई, परन्तु वास्तव में उनकी असफलता ही रही क्योंकि आमियाँ, पेरिस और रिएम्स जर्मनों के कब्जे में न आ सके और मित्रराष्ट्रों की आत्मा भी अजेय रही।

पच्छिमी मोर्चे पर ( मित्रराष्ट्रों के धावे )—आख़िर १८ जुलाई को मित्रराष्ट्रों की सेनाओं के धावे शुरू हुए। इस समय ४ बरस के निरन्तर युद्ध के कारण जर्मनों की सामरिक शक्ति प्रायः क्षीण हो चुकी थी। मित्रराष्ट्रों के जंगी बेड़ों द्वारा जर्मनी का ऐसा कठोर अवरोध हुआ कि जर्मन जनता और सेना दोनों ही की शारीरिक और मानसिक प्रतिरोध शक्तियों पर उसका बड़ा विकट प्रभाव पड़ा और उनके सारे औसान ढीले हो गये। उधर एप्रिल समाप्त होते होते अमेरिका से हर-महीने लगभग ३ लाख नयी सेना पहुँचने लगी जिसके कारण मित्रराष्ट्रों की सैन्य शक्ति अब बराबर प्रबल होती जा रही थी। फिर चार बरस की लड़ाइयों में हार पर हार खाकर मित्रराष्ट्रों को अब यह समझ आ गयी थी कि सारी सेना के संचालन और युद्ध की नीति का समस्त भार एक ही जनरल के सुपुर्द होना चाहिए और इसीलिए उन्होंने मार्शल फोश को कमांडर-इन-चीफ़ बना कर नेपोलियन के अनुभवसिद्ध सिद्धान्त का अनुकरण किया था। साथ ही अब इतने कठिन अनुभव के बाद उन्होंने जर्मन जनरलों के युद्ध सम्बन्धी दाँव पेच भी खूब समझ लिये थे और उनके काट के सफल उपाय भी काम में लाने लगे थे। फिर अब तो मित्रराष्ट्रों के हास सेना, गोला बारूद और रसद सामान की भी उतनी कमी नहीं रह गयी थी। इसलिए अब मार्शल फोश के आक्रमण की यह नयी नीति हुई कि पहले दिन किसी एक मोर्चे पर धावा बोला जाता और जब जर्मन उस पर डट कर लड़ने के लिए रिजर्व सेनाएँ तक ले आते तो दूसरे दिन तीसरी जगह धावा शुरू हो जाता। इस प्रकार सारे मोर्चे पर धीरे-धीरे घमासान की लड़ाई शुरू कर दी जाती जिससे जर्मनों को अपनी फौजें इधर-उधर फैलाने बटोरने और उन का व्यूह बनाने में बड़ी कठिनाई पड़ जाती।

१८ जुलाई को इपरने ( मार्न नदी की कुनिया ) पर फ्रान्सीसी सेनाओं का पहला जवाबी हमला शुरू हुआ। इस हमले के परिणाम पर ही फ़ोश की आशाओं और उसकी रणनीति-कौशल का दार-मदार था। इसलिए यह हमला सारी मोर्चाबन्दी पर न करके सुइसों पर ही बड़े जोर से किया गया; क्योंकि इसी स्थान पर इस मोर्चे की सारी जर्मन सेना का नाका था। १६ जुलाई को फ्रान्सीसी सेनाओं ने सुइसों पर कब्जा कर लिया और मार्न नदी के उस पार से उत्तर की ओर बढ़ना शुरू किया। इस पर जर्मन सेना के केन्द्र को बराबर पीछे हटने को मजबूर होना पड़ा। फ्रान्सीसी सेना अब

उसे बराबर पीछे ढकेलती गयी, यहाँ तक कि ४ अगस्त को उन्हें वेस्ले पर पहुँच कर दम लेने का अवकाश मिला। इस प्रकार मार्ने नदी जो सन् १९१४ में जर्मनों के लिए घातक सिद्ध हुई थी इस बार भी उनके लिए ४ बरस बाद फिर विनाशक प्रमाणित हुई। अब आमियां और उस ओर के रास्तों को जर्मन गोलाबारी और आक्रमण से बचाने के निमित्त ८ अगस्त को सोम से मेन्टिडीर के दक्खिन-पच्छिम की ओर आक्रमण का श्रीगणेश हुआ एक आकस्मिक धावे से जिस के २४ घंटे के भीतर ही लुडेंडोर्फ को तुरन्त युद्ध समाप्त करने की आज्ञा माँगनी पड़ी। इस आक्रमण के आरम्भ होने के ३ दिन के भीतर ही अँगरेजी सेनाएँ रोएँ और दक्खिन में फ्रान्सीसी सेनाएँ लैसिग्नी पर बढ कर पोटी सुइसे को घेरे में ले रही थीं। अब सॉम को घेरे में लेने के लिए आरास ऐल्बर्ट रेल पर कब्जा करने के विचार से हेग ने धावा किया और २५ अगस्त को आरास-बपोम की सड़क पर अधिकार कर लिया। जर्मन सेनाएँ बड़ी वीरता से पार्श्व संग्राम करती हुई पीछे हटने लगीं और जब बपौम और पिरोने के छिन जाने से सोम भी ख़तरे में पड़ गया तो लुडेंडोर्फ ने हिंडेनबर्ग मोर्चेबन्दी पर हट जाने की व्यवस्था की। इस मोर्चेबन्दी के प्रमुख नाके थे डोनाए, केम्ब्राए, सेन्ट कन्टेन और ल'फेरे और जर्मनों ने यहाँ पर रुक कर जाड़ा काट देने का विचार कर लिया था। परन्तु २७ सितम्बर को अँगरेजी सेनाओं ने हिंडेनबर्ग मोर्चे पर भी आक्रमण करने शुरू कर दिये और ३ री अक्टूबर को केम्ब्राए पर इसे छिन्न भिन्न कर डाला इसी समय फ्रान्सीसी सेनाओं ने सेन्ट कन्टेन पर कब्जा कर लिया। इसी बीच में ( १२-१४ सितम्बर को ) अमेरिकी सेनाओं ने सेन्ट मिहिल को घेर कर छीन लिया और फिर फ्रान्सीसी सेनाओं के सहयोग से म्युज नदी के पार आरगोन पर आक्रमण किया। परन्तु इस स्थान पर जर्मन सेनाओं ने खूब डट कर मुकाबला किया और मित्रराष्ट्रों को बहुत काफी सेना कटा कर आखिर १० अक्टूबर को यहाँ विजय प्राप्त हुई। जर्मन सेनाओं की थकान का सबसे पहला प्रमाण मिला याइप्रस के मोर्चों पर। यहाँ तो ३ ही दिन के धावे में अँगरेजी सेना ने सारा मैदान साफ कर डाला। पहला धावा १४ अक्टूबर को शुरू हुआ १९ अक्टूबर को जीब्रुज ब्रूजे और लील को जर्मनों ने खाली कर दिया। उधर और आगे दक्खिन में जर्मन सेनाएँ आख़िर दम तक लड़ती रहीं। ८ अक्टूबर को केम्ब्राए पर आखिरी लड़ाई में हार कर जर्मन सेनाएँ शेल्ट और सेले की ओर हट गयीं, परन्तु १७ से २५ अक्टूबर के बीच अँगरेजी सेनाओं ने दो धावों में यह मोर्चेबन्दी भी तोड़ डाली और उधर फ्रान्सीसी सेनाओं ने भी ल' ओल से उत्तर-पूरब में जर्मनों का नाकों दम कर दिया। इस प्रकार ८ अगस्त से मित्रराष्ट्रों के भाग्यचक्र ने ऐसा असाधारण पलटा खाया कि ११८ दिन के इस आक्रमण ने जर्मन को इतना निराश और क्षीण-हीन कर दिया कि आख़िर उन्हें युद्ध स्थगित कराने के लिए प्रार्थना करनी पड़ी।

इतालवी मोर्चे पर—पच्छिमी मोर्चे पर मित्रराष्ट्रों की सरगर्मी के कारण न

तो जर्मनी ही आस्ट्रिया की कोई सहायता कर सका और न मित्रराष्ट्र इटली की। आस्ट्रिया की सेनाएँ जो अब रूसी मोर्चे से लौटीं बिल्कुल बेदम हो गयी थीं और उनके अफ़सर बहुत निकम्मे थे। १५ जून को आस्ट्रिया की सेनाओं ने प्यावे नदी के उस पार धावा करके इतालवी सेनाओं को पीछे हटा दिया; परन्तु २० जून को इस नदी में बाढ़ आ जाने के कारण उनका बड़ा नुकसान हुआ। फिर भी इतालवी सेनापति दियाज़ को उन पर आक्रमण करने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। आख़िर ब्रिटिश और फ्रान्सीसी सेनाएँ उसकी मदद के लिए पहुँच गयीं और अक्टूबर में इतालियों का आक्रमण शुरू हुआ। २१ अक्टूबर को उसने प्यावे पर से आस्ट्रीय सेना को मार भगाया और विटोरिया पर उन्हें बड़ी करारी हार दी। अब आस्ट्रीय हंगरी सेनाएँ अलग-अलग होकर भागीं और आस्ट्रिया हंगरी में विप्लव फैल जाने के कारण उन्होंने इटली के जीते हुए प्रदेश छोड़ दिये और युद्ध-स्थगित करने की प्रार्थना की।

बाल्कन मोर्चे पर—इसी बीच में मित्रराष्ट्रों ने सितम्बर में एक और भारी विजय प्राप्त कर ली। सेलोनिका के मोर्चे पर जो युद्ध हुआ उसमें सर्ब और फ्रान्सीसी सेनाओं ने बलगारियों को चेरना और वादर के बीच १५ सितम्बर को परास्त कर दिया। एक ही सप्ताह की लड़ाई में बलगारी सेना के छक्के छूट गये और आख़िर सेनाओं के ग़दर और प्रजा के विप्लवों से तंग आकर १० दिन के भीतर बलगारिया ने युद्ध स्थगित करने की प्रार्थना की और सर्बिया को छोड़ देने तथा अपने देश में होकर मित्रराष्ट्रों की सेनाओं को गुज़रने देने की शर्तों तक को मान लिया। जर्मन-आस्ट्रीय सेनाओं ने निश और बेलग्रेड पर लड़ने की विफल चेष्टा की। आख़िर ३ नवम्बर को आस्ट्रिया और १३ नवम्बर को हंगरी का युद्ध-स्थगित करने का प्रस्ताव मान लिया गया। फलस्वरूप हंगरी क्रोआशिया और ट्रान्सेलवेनिया से हाथ धोने पड़े।

अन्य मोर्चों पर—इसी समय एलेनबी ने फ़िलिस्तीन में फिर आक्रमण शुरू किया और हिन्दुस्तानी सेनाओं ने इस लड़ाई में बड़ा प्रमुख भाग लिया। जाफ़ा के उत्तर में तुर्की मोर्चेबन्दी तोड़ दी गयी और अँगरेज़ी सवार सेना ने ४० मील चल कर दो तुर्की सेनाओं को रास्ते में घेर लिया। उधर अँगरेज़ी हवाई जहाज़ों ने इस भागती हुई सेना पर बम बरसा कर उनकी खूब मरम्मत की। इसी बीच में लारेन्स की अरब सेना ने जार्डन नदी के उस ओर भागती हुई तुर्की सेना को घेर कर हरा दिया और १ ली अक्टूबर को एलेनबी की सेना दमिश्क पर जा पहुँची। २६ अक्टूबर को एलेप्पो पर बग़दाद रेल-पथ तोड़ कर यह विजयी सेनाएँ उस समय रुकीं जब उन्हें ३० अक्टूबर को तुर्कों से युद्ध स्थगित हो जाने का शुभ सम्वाद मिला। इसी बीच में मैसोपोटामिया की सेना ने २३ अक्टूबर को मोसल पर आक्रमण शुरू किया। जनरल मार्शल ने बड़े कौशल से तुर्की सेना को घेर कर ३ नवंबर को मोसल पर अधिकार कर लिया।

जर्मनी की पराजय—इसी में प्रेसिडेन्ट विलसन ने जर्मनी की सन्धि प्रार्थना

के उत्तर में लिखा कि जर्मनी के आत्मसमर्पण करने और निःशस्त्र होने पर ही सन्धि हो सकेगी। २६ अक्टूबर को लुडेंडोर्फ ने त्याग-पत्र दे दिया और हिंडेनबर्ग को म्युजे की ओर जर्मन को पीछे हटाना पड़ा। उधर अँगरेजी सेनाओं ने मौवेज और फ्रान्सीसी और अमेरिकी सेनाओं ने मिजीर्स के रेल जंकशनों को घेर लेने के लिए आगे बढ़ना शुरू किया। इस प्रकार इस अन्तिम सप्ताह में जर्मन सेनाओं को सिर पर पैर रख कर भागने के सिवाय और कोई रास्ता न रह गया और उनकी स्थिति बड़ी नाज़ुक हो गयी। उधर तुर्की के युद्ध-स्थगित कर देने और आस्ट्रिया की करारी पराजयों के समाचारों ने २८ अक्टूबर को कील बन्दर में पड़ी हुई नौ-सेना के विप्लव को और भी भड़का दिया—यहाँ तक कि ६ नवम्बर को म्यूनिख़ और बर्लिन में सोशलिस्ट गवर्नमेन्ट बन गयीं। १० नवम्बर को जर्मन कैसर हालैंड को भाग गया और उसके भागते ही जर्मनी के अन्य शासक राजघरानों का पतन हो गया। आखिर जर्मनों की प्रार्थना पर इन शर्तों पर युद्ध-स्थगित कर दिया गया कि जर्मन सेनाएँ सब विजित देशों पर से हट जायँ, मित्रराष्ट्रों का राइन नदी के बाँये किनारे पर कब्जा हो जाय, जर्मन नौ सेना तोपखाना, मशीनगन और हवाई जहाज़ मित्रराष्ट्रों के हवाले कर दिये जायँ और रूस के साथ की एक ब्रेस्ट लिटुविस्क की सन्धि ख़ारिज कर दी जाय। इन कठोर शर्तों के साथ की गई अपमानजनक शर्त यह भी थी कि शान्ति स्थापित होने तक मित्रराष्ट्रों का अवरोध न हटाया जा सकेगा। जर्मनी ने इस आशा पर कि विलसन के १४ मन्तव्यों के अनुसार शान्ति स्थापित हो जायगी इस युद्ध स्थगित करने के प्रस्ताव पर १० नवम्बर को हस्ताक्षर कर दिये और ११ तारीख को ठीक ११ बजे से इस पर अमल शुरू हो गया। इस समय जर्मन सेनाओं को बड़ी अव्यवस्था में भागते देख कर, नौ-सेना के ग़दर से परेशान होकर, अपने सब मित्रों के साथ छोड़ देने पर, अपना दक्खिन सीमान्त निस्सहाय पाकर और अपने देश को विप्लव और अराजकता के प्रबल भँवर-जाल में फँसा देखकर जर्मनी के सामने इन सब शर्तों को मान लेने के सिवाय और कोई रास्ता ही न रह गया था।

आख़िर यह प्रलयकारी युद्ध समाप्त हुआ। युद्ध के स्थापित होने के समय बेलजियन सेनाएँ घेन्ट में, अँगरेजी मोन्स पर (जहाँ से वे १६१४ ई० के युद्ध में सम्मिलित हुई थीं) फ्रान्सीसी मिज़ीहरे पर और अमरीकी सिडान पर पहुँच चुकी थीं। जर्मन के सारे उपनिवेश और उसके अधिकृत विदेशी प्रदेशों पर मित्रराष्ट्रों का अधिकार हो गया था। चीन में जर्मन का व्यापारी बन्दर क्याउ चाउ अब जापानियों के अधिकार में था और प्रशान्त महासागर में जर्मन अधिकृत द्वीपों पर आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड का आधिपत्य हो गया था। आफ्रिका में अँगरेजों और फ्रान्सीसियों ने कैमरून और दक्खिनी आफ्रीकी सेनाओं ने जर्मन दक्खिनी-पच्छिमी आफ्रिका छीन लिया तथा जर्मन-पूरबी आफ्रिका पर भी मित्रराष्ट्रों का अधिकार हो गया था। इन तीनों महीनों की लड़ाइयों में अकेली ब्रिटिश साम्राज्यी सेनाओं ने पच्छिमी मोर्चे

पर ही १ लाख ६५ हज़ार .क़ैदी १ हजार ८५० तोपें, और २० हजार कलदार बन्दूकें पकड़ीं। सब सेनाओं ने ३ लाख ८५ हजार जर्मन .क़ैद किये और ६ हज़ार ६०० तोपें छीनीं। १४ जुलाई को इस आक्रमण के शुरू होने के समय जर्मनों के पास ८० डिवीजन रिज़र्व में थे; परन्तु युद्ध समाप्त होते-होते इनमें से केवल १५ डिवीजन बाकी रह गये थे। मित्रराष्ट्रों की सेना इस समय १०० डिवीजन की थी। युरोपीय राष्ट्रों को इस युद्ध में ५० अरब पौंड स्वाहा कर देने पड़े, ५ करोड़ सिपाही भर्ती करने पड़े; जिनमें से ३ करोड़ हताहत हुए। इनमें ६० लाख से ऊपर मारे गये। फ्रान्स में २१ हजार कारखाने, ६ लाख तीस हजार मकान और १६५९ बस्तियाँ ऐसे उजड़ गये कि उनका नाम-निशान तक बाकी न रह गया। उत्तरी समुद्र से लेकर वर्दूं तक सारा देश वीरान हो गया। सन् १९१४ ई० में युद्ध से पहले फ्रान्स पर प्रजा का ऋण २५० अरब फ्रांक था। युद्ध के बाद १९२१ ई० में इसकी संख्या ३०२० अरब हो गयी थी। इसी प्रकार सन् १९१४ में ग्रेट ब्रिटेन का प्रजाऋण ७१ करोड़ पौंड के लगभग था और १९१९ ई० में यह १० गुने से भी अधिक ७ अरब ६० करोड़ पौंड हो गया था। इस पर भी युद्ध में सबसे भीषण बलिदान हुआ युरोपीय देशों के युवकों का जिसके कारण लाखों करोड़ों कुटुम्बों का कोई धनी-धोरी न रह गया।

## सन् १९१४–१८ ई० के युरोपीय महायुद्ध का संक्षिप्त विवरण

| पश्चिमी मोर्चे पर | पूरबी मोर्चे पर | समुद्र व विदेशों में |
|---|---|---|
| १९१४—लीज का पतन, | टैनेनबर्ग की लड़ाई, | आकलैंड की लड़ाई |
| मार्न की लड़ाई, | तुर्की का पदार्पण, | |
| समुद्र की ओर बढ़ना | गैलीशिया पर आक्रमण | |
| १९१५—इटली मित्रराष्ट्रों के साथ | रूस पर आक्रमण, | डौगरबैंक की लड़ाई, |
| | गैलीपुरी की मुहिम, | लुसैटेनिया डूबा, |
| | बलगारिया युद्ध में, | |
| | सर्बिया का पतन, | |
| १९१६—वर्दूं पर आक्रमण | दक्खिन में आक्रमण | |
| सॉम पर आक्रमण, | रूमानिया में आक्रमण | कुत्त का पतन, |
| इसोंज़ो पर आक्रमण | | जटलैंड की लड़ाई, |
| १९१७—सॉम पर आक्रमण | रूस की राज्य-क्रान्ति, | डुबकनियों का आक्रमण |
| संयुक्त राज्य अमेरिका का युद्ध, | बोल्शेविस्ट आधिपत्य, | बग़दाद पर अधिकार, |
| फ़्लांडर्स पर धावा, | | पराजयों का महीना, |
| केपोरेटा पर पराजय, | | यरूशलम पर अधिकार, |
| केम्ब्राए की लड़ाई, | | जर्मन पूरबी अफ्रिका पर अधिकार |

| | | |
|---|---|---|
| १९१८—अमियाँ, चैनेल-चन्दर | ब्रेस्त-लिटुवेस्क की सन्धि, | फिलीस्तीन पर |
| रिएम्स पेरिस पर आक्रमण | बारदार की लड़ाई, | एलेनबी का आक्रमण |
| फोश कमांडर इन-चीफ | बलगारिया की पराजय, | |
| मित्रराष्ट्रों का आक्रमण, | तुर्की युद्ध-स्थगित, | |
| इटालवी आक्रमण | | |
| युद्ध स्थगित, | | |

---

# अध्याय ३१

## वरसाई की सन्धि और राष्ट्र संघ

### ( १९१८—३८ ई० )

सन् १९१९ की पेरिस की सन्धि-कान्फ्रेन्स—युद्ध समाप्त हो गया, किन्तु अब युरोप के राष्ट्रों के सामने थीं सन्धि और शान्ति की समस्याएँ जो युद्ध की दाँव-पेच की चालों और अन्यान्य समस्याओं से किसी भी प्रकार कम महत्व नहीं रखती थीं। फिर यद्यपि सन् १९१८ में युद्ध स्थगित हो गया परन्तु अगले २० वर्ष में १९३८ ई० तक भी युरोप और युरोप की उलझनों के कारण सारे संसार में स्थायी शान्ति स्थापित होने के लक्षण दिखायी नहीं दिये। इन २० बरसों में युरोपीय राष्ट्रों की निरन्तर उपस्थित रहने वाली समस्याओं के सुलझाने के लिए न मालूम कितनी बार और कितनी प्रकार की सभाएँ की गयी, परन्तु ये उलझनें रावण के सिरों की भाँति बार-बार बढती ही गयीं। ऐसी महत्वपूर्ण कान्फ्रेन्सों में सब से पहली कान्फ्रेन्स जो युद्ध समाप्त होने के बाद प्रायः ६ महीने तक होती रही पेरिस की कान्फ्रेन्स थी, जिसमें मित्र-राष्ट्र और उनके सहकारी शामिल हुए। शुरू शुरू में तो सभाओं में सभी छोटे बड़े राष्ट्रों के ११० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए; परन्तु सन्धि की शर्तों और अन्य परमावश्यक बातों के निश्चय करने का प्रमुख कार्य किया ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली, जापान और संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के प्रतिनिधियों ने। इन पाँचों प्रबल शक्तियों के दो-दो प्रतिनिधियों के दस 'सभासदों की एक काउन्सिल' बनायी गयी परन्तु यह भी बहुत बड़ी थी और बड़ी कठिनाई से काम चला पाती थी। आखिर फ्रान्स के प्रधान मन्त्री क्लीमानशो, ब्रिटेन के लायडजार्ज, इटली के ऑरलैंडो और अमेरिका के प्रेसिडेन्ट विलसन इन 'चार बड़ों' के हाथों में सारी कान्फ्रेन्स का निर्णय-कार्य सौंप दिया गया। कुछ समय बाद मतभेद के कारण इटली के प्रधान मन्त्री ने विरति ले ली और तब बाकी के 'तीन बड़ों' पर ही सारी समस्याओं का दायित्व आ पड़ा। इस प्रकार इस कान्फ्रेन्स की अधिकांश कार्रवाई के लिए 'यह चार' या 'यह तीन बड़े' ही उत्तरदायी समझे जाने चाहिए; क्योंकि इन्हीं ने सन्धि की उन सब शर्तों का मसविदा तैयार करने का उत्तरदायित्वपूर्ण काम अपने सिर पर उठाया जिनके साथ विलसन द्वारा प्रतिपादित

राष्ट्र-संघ सम्बन्धी १४ मन्तव्यों को जोड़ कर वरसाई की सन्धि-योजना तैयार हुई। विलसन के यह १४ मन्तव्य जनवरी सन् १९१८ में सन्धि के लिए उपयुक्त पृष्ठ-भूमि मान लिये गये थे और युद्ध-स्थगित होने के पूर्व दोनों पक्षों को भी यह मान्य थे। इसके बाद भी कान्फ्रेन्स का काम चलता रहा और सेन्टजर्मेन, ट्रायानोन और लुइसाने की सन्धि-योजनाओं द्वारा आस्ट्रिया हंगरी और तुर्की साम्राज्यों की समस्याओं का सुलझाव या बन्दर बाँट किया गया।

वरसाई की सन्धि—२८ जून १९१९ ई० को वरसाई की सन्धि पर जर्मन प्रतिनिधियों के हस्ताक्षर हो गये और १० जनवरी १९२० ई० से इसकी शर्तों के अनुसार काम होना शुरू हो गया। इस सन्धि-पत्र की १५ शर्तें इस प्रकार थीं:—(१) राष्ट्र-संघ का इकरारनामा इस सन्धि का प्रमुख अंश माना जाय, (२३) आल्सेस लारेन फ्रान्स को लौटा दिया जाय, बेलजियम से जीते हुए प्रदेश उसे मिल जायँ, राइन प्रदेश में और उसके ५० मील पूरब तक तथा हेलिगोलैंड में कोई सेना न रखी जाय, सार का शासन-प्रबन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कमीशन के हाथ रहे, पोज़ेन और पच्छिमी प्रशिया का कुछ प्रदेश पोलैंड को मिले, ऊपरी साइलीशिया और पूरबी प्रशिया की सीमाएँ निर्धारित करने तथा श्लेज़विग के राज्याधिकार के लिए प्रजा-मत लिया जाय। (४) जर्मनी अपने सब उपनिवेशों और चीन, स्याम तथा लाइबेरिया में विशेषाधिकारों को त्याग दे, (५) जर्मनी की स्थल और नौ-सेनाओं, और हथियार बनाने और रखने पर नियन्त्रण रहे और उसे अनिवार्य रूप से सेना भर्ती न करने दी जाय, (६) युद्ध में पकड़े हुए कैदी लौटा दिये जाँय तथा युद्ध में मरे हुए सैनिकों की कब्रों की रक्षा की जाय, (७) जर्मन कैसर और अन्य अफ़सरों के अभियोग की जाँच पड़ताल के लिए उन्हें मित्रराष्ट्रों के सुपुर्द कर दिया जाय, (८) मित्रराष्ट्रों तथा उनके अन्य साथियों को युद्ध का तावान दिया जाय, (९-१०) युद्ध-तावान की वसूली सम्बन्धी साम्पत्तिक और आर्थिक व्यवस्था की जाय; (११) मित्रराष्ट्रों के हवाई जहाजों को जर्मनी के ऊपर होकर उड़ने की स्वतन्त्रता रहे, (१२) जर्मनी की नदियों और कील नहर में जर्मनी से सन्धि में सम्मिलित सभी राष्ट्रों के व्यापारी जहाजों को आने-जाने की स्वतन्त्रता रहे, (१३) युरोपीय देशों के कामगरों की व्यवस्था के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय 'मजदूर संघ' स्थापित हो, (१४) राइन प्रदेश में १५ बरस तक मित्र-राष्ट्रों की सेनाएँ रहें। जर्मनी द्वारा सन्धि की शर्तों पर ठीक-ठीक अमल होने पर ५ बरस बाद कोलोन प्रदेश, १० बरस बाद कोब्लेञ्ज प्रदेश और १५ बरस बाद मेञ्ज प्रदेश से सेनाएँ हटा ली जाँय, और (१५) अन्य विषयों सम्बन्धी सुदृढ़ व्यवस्थाएँ की जाँय।

युरोप में शान्ति स्थापना के प्रयत्न—इस महायुद्ध और वरसाई की सन्धि के परिणाम स्वरूप जर्मनी की काफ़ी काट-छाँट हो गयी; आस्ट्रिया हंगरी साम्राज्य का नाम-निशान मिट गया और रूसी साम्राज्यशाही का अन्त होकर वहाँ बोल्शेविक राज्य

स्थापित हो गया। इस प्रकार युरोप के नकशे की मानों आकृति ही बदल गयी। जर्मनी को आल्सेस-लोरेन और श्लेसविग फ्रान्स को देना पड़ा तथा पोलैंड का जर्मन अधिकृत प्रदेश भी उसके हाथ से निकल गया। फिर उस के ऊपर युद्ध का ऐसा कड़ा तावान लाद दिया गया तथा उसकी सामरिक शक्ति को ऐसा तोड़ फोड़ दिया गया कि कम से कम एक पीढ़ी तक तो वह बिलकुल पंगु और लुंज बना रहे! जुलाई सन् १६२० की स्पा वाली मित्रराष्ट्रों की एक कान्फ्रेन्स ने यह तय किया कि जर्मनी से जो युद्ध सम्बन्धी क्षतिपूर्ति करायी जाय उसमें ५२ प्रतिशत फ्रान्स को, २२ प्रतिशत ब्रिटिश साम्राज्य को, १० प्रतिशत इटली को, ८ प्रतिशत बेलजियम को १.५ प्रतिशत जापान और पोर्चुगल को तथा ६.५ प्रतिशत अन्य राष्ट्रों को मिले। १६२१ ई० के हानिपूरक कमीशन ने १३२० अरब सोने के मार्क उस हानि और विनाश की पूर्ति का दंड ठहराया जो इस युद्ध के कारण युरोपीय राष्ट्रों को उठानी पड़ी थी और यह निश्चित किया कि जर्मनी से प्रतिवर्ष २ अरब मार्क नकद और उसकी निर्यात का २६ प्रतिशत माल मित्रराष्ट्रों को मिलता रहे। सन् १६२४ में डावेस योजना के अनुसार यह तय हुआ कि जर्मनी से २ अरब ५० करोड़ मार्क प्रति वर्ष नक़द वसूल किये जाँय। १६२६ ई० में यंग-योजना बनी, परन्तु यह सब योजनाएँ निरर्थक हो गयीं क्योंकि जब तक जर्मनी में खुश हाली न हो ऐसे किसी तावान के प्रति वर्ष वसूल करते रहने में सफलता नहीं मिल सकती थी। आखिर १६३२ ई० की लुइसाने कान्फ्रेन्स में यह तय पाया कि अब जर्मनी से हानिपूर्ति के दंड का धन वसूल न किया जाय। इन सब योजनाओं का एक प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि जर्मन राष्ट्र में, जो अपने को युद्ध छेड़ने के लिए दोषी मानने को तैयार नहीं था, कटुता बढती गयी और उसके हृदय में इस अपमान का बदला चुकाने की आग भड़कती रही।

इसी प्रकार सैकड़ों बरस में निर्मित आस्ट्री-हंगरीय साम्राज्य भी टूट गया और आस्ट्रिया और हंगरी दो जुदे-जुदे प्रजातन्त्र बन गये। हंगरी में तो इस समय से ऐसी अराजकता फैली कि कई वर्ष तक सारा देश आक्लान्त रहा। उधर रूमानियनों ने आक्रमण कर बुदापेस्ट पर अधिकार कर लिया और प्रजा के ऊपर बड़े अमानुषिक अत्याचार किये। आख़िर मित्रराष्ट्रों को बीच में पड़ कर उनकी सेनाओं को हटवाना पड़ा। उधर राजा कार्ल अपना राज्य स्थापित करने की चेष्टाओं में लगा रहा और इधर जो शासन-व्यवस्था स्थापित हुई वह फाशिज़्म की ही बराबर समर्थक रही है। जून १६२० ई० में हंगरी और मित्रराष्ट्रों के बीच ट्रियानोन की सन्धि के अनुसार हंगरी ने चैकोस्लोवाकिया को सारा स्लोवाक और रुथेनियन प्रदेश, रूमानिया को ट्रान्से-लवेनिया और सारा रूमानी और जर्मन भाषा-भाषी प्रदेश तथा सर्ब, क्रोआट और स्लोवेन राज्यों को दक्खिन के सब स्लाव प्रदेश दे देने पड़े। साथ ही सेनाओं की संख्या और नयी सेनाओं के भर्ती करने पर भी बड़े प्रतिबन्ध लगा दिये गये। रूमानियों को रूस से बेसारेबिया और हंगरी से टान्सेलवेनिया मिल जाने के कारण उसका क्षेत्रफल

प्रायः दुगुना हो गया इसी प्रकार इटली को आस्ट्रिया-हंगरी से ट्रीस्टिनो, इस्त्रिया और ट्रिईस्टे प्रदेश मिले। सर्बिया और मोन्टिनीग्रो की रियासतें तथा क्रोआशिया और बोस्निया के स्लाव प्रदेशों को मिलाकर यूगोस्लाविया नाम का एक नया राज्य बना
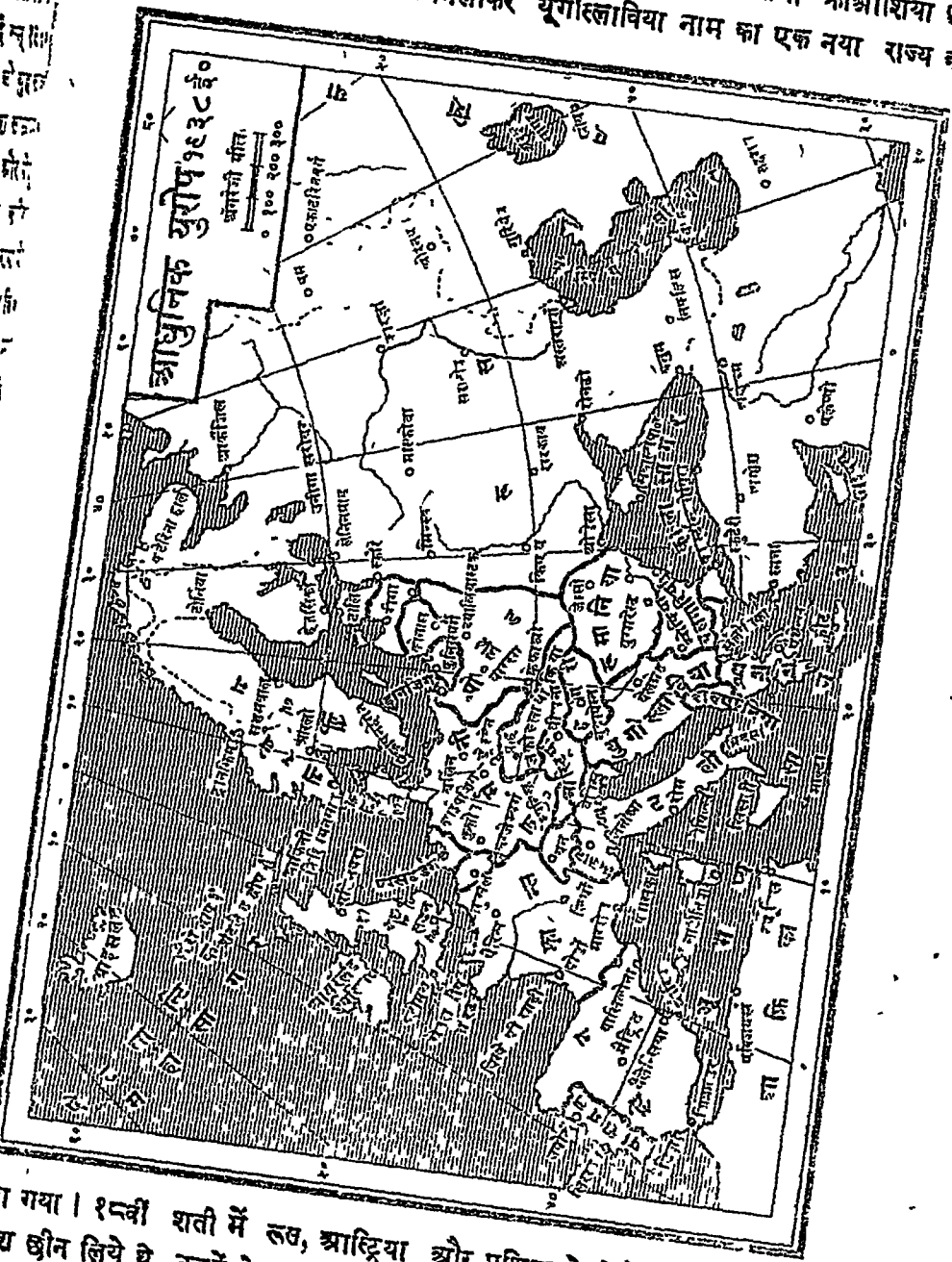
या गया। १८वीं शती में रूस, आस्ट्रिया और प्रशिया ने पोलैंड के, राज्य के जो देश छीन लिये थे उनमें से बहुत सा अंश उनसे फिर लेकर पोलैंड का नया स्वतन्त्र य बना दिया गया। इसकी राजधानी हुई वारसा और डानजिग को अन्तर्राष्ट्रीय

नगर बनाकर पोलैंड का बन्दरगाह कर दिया गया। आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य की काट-छाँट से चैकोस्लोवाकिया का नया प्रजातन्त्र बना। फिर रूस के साम्राज्य में से उत्तर में बाल्टिक में फिनलैंड, ऐस्थोनिया, लटाविया और लिथुएनिया नाम के चार प्रजातन्त्र राज्य बना कर उसके भी कई कोने झाड़ दिये गये। युरोप के नकशे की इस कायापलट से जहाँ आस्ट्रिया-हंगरी और रूस जैसे दो बड़े बड़े साम्राज्यों का पतन हुआ वहाँ जर्मनी के उत्तर पुरब में फिनलैंड, ऐस्थोनिया, लटविया, लिथुएनिया और पोलैंड से और पुरब दक्खिन में चैकोस्लोवाकिया से घेर कर उसे ऐसा जकड़ देने की चेष्टा की गयी कि वह बहुत समय के लिये सिर न उठा सके। इस प्रकार वरसाई की सन्धि द्वारा मित्रराष्ट्रों के इस नये प्रयत्न में उस महा प्रलयकारी महायुद्ध का अंकुर जमा जो सन् १६३६ ई० में शुरू होकर सारे संसार को त्रस्त कर दिया।

राष्ट्र-संघ की योजना और उसके उद्देश्य—१० जनवरी १६२० ई० को वरसाई के सन्धि पत्र पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होने के बाद तत्सम्बन्धी देशों की सरकारों द्वारा उनकी स्वीकृति हो जाने पर राष्ट्र-संघ का निर्माण हुआ। इस संघ में उस प्रबल अभिलाषा को मूर्त्तमान बनाने का प्रयास था जो इस युद्ध के जमाने में देशों के प्रमुख विचारकों के हृदय में मौजें मार रही थीं। इसलिए १६१६ ई० के आरम्भ में ही शान्ति-सभा का काम शुरू हुआ तो 'युद्ध-विरोधी राष्ट्र-संघ' स्थापित करने की प्रबल धारणा जागृत हो उठी और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रेसिडेन्ट विलसन ने इस चेष्टा को सफल बनाने का प्रबल प्रयास किया। आख़िर उन्हीं के प्रयत्न से ब्रिटिश साम्राज्य, फ्रान्स, इटली, यूनान, बेलजियम और चीन के प्रतिनिध-कमीशन ने जिसमें कोई विपक्षी और निष्पक्ष देशों का प्रतिनिधि शामिल नहीं था एक योजना बनायी जिसको आखिर शान्ति सभा में स्वीकार कर वरसाई की सन्धि की शर्तों के साथ शामिल कर दिया गया। इस इकरारनामे की प्रस्तावना में संघ का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया गया है.—

राष्ट्र-संघ के इस इकरारनामे पर हस्ताक्षर करने वाले प्रमुख राष्ट्र इस बात से सहमत हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बढाने, सब राष्ट्रों के बीच शान्ति स्थापित कराने तथा उनकी रक्षा करने के निमित्त

वे अपना यह कर्त्तव्य समझते हैं कि आपसी झगड़ों के निपटारे के लिए युद्ध के मार्ग पर अग्रसर न होंगे,

वे निश्चय करते हैं कि आपस में न्याय और प्रतिष्ठापूर्ण, स्पष्ट सम्बन्ध रखेंगे,

वे निर्धारित करते हैं कि उनकी राज्य सत्ताओं के व्यवहार अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अनुसार होंगे, तथा

वे यह घोषित करते हैं कि हर राष्ट्र दूसरे के साथ व्यवहार में न्यायपरता और सन्धियों द्वारा स्थापित कर्त्तव्यों का अक्षरशः पालन करेगा।

इस इकरारनामे पर ३१ मित्रराष्ट्रों ने हस्ताक्षर किये और १३ निष्पक्ष राष्ट्र

और इस ओर से आ गये; परन्तु इनमें से तीन राष्ट्र संयुक्त राज्य अमेरिका, युकेडोर और हेजाज़ इसे अन्त में स्वीकृत न करने के कारण संघ के सदस्य नहीं हुए। चीन ने वरसाई सन्धि पर तो हस्ताक्षर नहीं किये, परन्तु सॉं जर्मी की सन्धि पर हस्ताक्षर करने से वह संघ का सदस्य माना गया। इस प्रकार जब संघ की एसेम्बली की पहली बैठक नवम्बर सन् १९२० ई० में जिनीवा में हुई उस समय ४२ राष्ट्र इसके सदस्य थे। १९२४ ई० में पाँचवीं बैठक तक वह संख्या ५५ हो गयी थी। इस समय भी संयुक्त राज्य अमेरिका, जर्मनी, रूस, मैक्सिको, तुर्की और मिस्र संघ के सदस्य नहीं हो पाये थे। आस्ट्रिया, हंगरी और बलगारिया बाद में सदस्य बने और जर्मनी १९२६ ई० में। इधर ब्रिटिश साम्राज्य के वैधानिक विकास में भी राष्ट्र-संघ की स्थापना से एक महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्खिनी आफ्रिका और न्यूजीलैंड के स्वशासित उपनिवेशों के साथ भारतवर्ष भी संघ का स्वतन्त्र सदस्य बना।

**राष्ट्र-संघ का संगठन और उसकी सलाहकार समितियाँ**—इस प्रकार राष्ट्र-संघ के संगठन में उसके अन्तर्गत समान अधिकार की दो संस्थाएँ हुईं। एसेम्बली में हर सदस्य-राष्ट्र के तीन प्रतिनिध शामिल होते जो निर्धारित समय पर (हर वर्ष सितम्बर में) संघ की बैठक में ३ बरस तक हर वर्ष सम्मिलित हो सकते। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली, जर्मन और जापान इन पाँचों बड़े राष्ट्रों के तीन-तीन और ६ अन्य राष्ट्रों के सभासद्—जिनमें से ३ का प्रति वर्ष ३ साल के लिए चुनाव होता है—कौन्सिल में बैठते। इस कौन्सिल की बैठक साल में तीन बार होती और इस प्रकार यद्यपि हर राष्ट्र को तीन प्रतिनिधि और कई सहकारी प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होता, परन्तु हर राष्ट्र को वोट एक ही प्राप्त रहता और किसी आवश्यक मन्तव्य पर एसेम्बली और कौन्सिल दोनों की सर्व सम्मति से ही कोई निश्चय किया जाता। राष्ट्र-संघ के नित्य के कार्य संचालन के लिए जिनीवा में संघ का स्थायी दफ़्तर बना और संघ का सारा काम अँगरेजी और फ्रान्सीसी भाषाओं में होना निश्चय हुआ। सन् १९३८ में राष्ट्र-संघ के लगभग ७० सदस्य थे। प्रमुख राष्ट्रों में संयुक्त राज्य अमेरिका और रूस ही दो ऐसे राष्ट्र थे जो इसके सदस्य नहीं रहे। जापान, इटली और जर्मन ने आगे चल कर इसकी सदस्यता से त्यागपत्र दिया था। संघ के सदस्यों के शुल्क से इसका काम चलाया जाता। संघ का वार्षिक ख़र्च लगभग १० लाख पौंड होता जिसमें से ब्रिटिश साम्राज्य लगभग दसवाँ अंश देता।

यद्यपि राष्ट्र संघ का सारा कार्य उसकी कौन्सिल द्वारा चलता है फिर भी उसके विभिन्न और विशेष कार्यों के सम्पादन के लिए विशेषज्ञों की कई सलाहकार समितियाँ बनीं, जिनमें शस्त्रास्त्र कमिटी, मैण्डेटस कमीशन, साम्पत्तिक और आर्थिक कमिटियाँ, यातायात कमिटी, स्वास्थ्य, अफीम और स्त्रियों और बालकों की रक्षा सम्बन्धी सलाहकार समितियाँ तथा बौद्धिक सहयोग समितियाँ विशेष उल्लेखनीय हुईं। राष्ट्र-संघ की कौन्सिल और एसेम्बली की बैठकों में संसार के सभी प्रमुख

राष्ट्रों के राजनीतिज्ञों को एक दूसरे से मिलने और अपने-अपने देशों की विशेष स्थितियों का परिचय देने का अवसर प्राप्त होता। इस सम्बन्ध में राष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर दफ़्तर और अन्तर्राष्ट्र न्यायालय के कार्य भी उल्लेखनीय हुए।

व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में लीग की मैण्डेट कमिटी का वर्णन बड़ा आवश्यक हो जाता है। इस महायुद्ध के बाद प्रमुख राष्ट्रों ने युरोप के बाहर कई विजित देशों को अपने अधिकार में, सीधा न लेकर राष्ट्र-संघ की अनुमति से 'उनके देशवासियों के हितों को सर्वोपरि रखने का उद्देश्य स्वीकार कर और 'सभ्यता के नाम पर उन्हें पवित्र धरोहर' मान कर अनुशासन 'मैण्डेट' स्थापित किया। संघ का 'मैण्डेट कमीशन' इन सब देशों के सुशासन के लिए उत्तरदायी बना। सार प्रदेश और डानज़िग की व्यवस्था भी इसी के अन्तर्गत रही। फिर अल्पसंख्यकों की समस्या और उनकी रक्षा तथा उन्नति आदि का दायित्व भी संघ के ही ऊपर—यद्यपि इस विषय में संघ मध्यस्थ होने का ही अधिकार रखता है। महायुद्ध के बाद जो सन्धियाँ हुईं उनके अनुसार युरोप में प्रायः ३ करोड़ अल्पसंख्यकों पर विदेशी हुकूमत लादी गयी। इनके साथ ज्यादती होने पर इनकी ओर से भी प्रायः बेजा, अनुपयुक्त और हठपूर्ण दुराग्रह के कारण युद्ध तक की नौबत पहुँचती रही। परन्तु संघ ने इस विषय में बड़ी पक्षपातरहित नीति बरत कर कुछ ऐसे मन्तव्य प्रकाशित कर दिये जिनसे इस समस्या का बहुत कुछ सुलझाव हो सका। फिर भी सन्धियों की शर्तों से बँधे होने के कारण संघ के ऊपर इन अल्प संख्यक की व्यवस्था का सीधा उत्तर-दायित्व नहीं पड़ता।

**राष्ट्र-संघ की कठिनाइयाँ**—राष्ट्र संघ का मुख्य उद्देश्य है अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और निःशंकता स्थापित करना। इस कर्त्तव्य-पालन में दो बड़ी कठिन समस्याएँ हैं जो संघ के सामने आयीं। उनमें से एक तो यह कि राष्ट्रों के आपस के झगड़ों को युद्ध के बिना निपटाने के लिए संघ के पास कौन सी प्रभावपूर्ण शक्ति या उपाय हो जिसके व्यवहार में लाने से झगड़ा करने वाले राष्ट्र युद्ध का मार्ग ग्रहण न कर सकें और दूसरे राष्ट्रसंघ ऐसी कौन सी योजना तैयार करे जिसके अनुसार राष्ट्रों के शस्त्रास्त्र निर्माण की प्रतिस्पर्द्धा को, जो वास्तव में युद्ध का मुख्य कारण है, कम कर सके या रोक सके। परन्तु शस्त्रास्त्रों में कमी होना उसी समय सम्भव होता जब सब राष्ट्रों को संघ पर भरोसा हो और सब राष्ट्र युद्ध की चेष्टा के पूर्व राष्ट्रसंघ के सामने अपने अपने झगड़ों को पेश कर दें तथा राष्ट्रसंघ के निर्णय को मानने के लिए तैयार हों। इसीलिए जब तक राष्ट्रों के बीच एक दूसरे का अविश्वास और अश्रद्धा, एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या और बैर-भाव तथा एक दूसरे के प्रदेशों के लिए छीना झपटी की आकांक्षा बनी रहेगी उस समय तक युद्ध के उपकरणों पर नियन्त्रण होना कठिन ही नहीं असम्भव सा रहेगा। और जब शस्त्रास्त्रों के निर्माण पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न रहेगा तो युद्ध अवश्यम्भावी होंगे और इसके परिणाम स्वरूप शान्ति और निःशंकता स्थापित होना सम्भव न हो सकेगा। अस्तु इस कठिन समस्या के सुलझाने के विचार

से एक शस्त्रास्त्र नियन्त्रण कमीशन की रचना की गयी जिसमें अनेक देशों के राज-नीतिज्ञ, व्यापारी धन-कुबेर, मजदूर वर्ग के प्रतिनिधि और इन सब विषयों के विशेषज्ञ भी बुलाये गये, और उनके सुपुर्द इस समस्या को सुलझाने का काम रखा गया। इस कमीशन ने राष्ट्रों की स्थल सेनाओं की संख्या नियत करने के विचार से एक योजना बना दी। नौ-सेनाओं के सम्बन्ध में ऐसी योजना इसलिए नहीं बनायी गयी कि उसी समय वाशिंग्टन कान्फ्रेंस के सामने यह समस्या पेश हो रही थी। इसके मन्तव्य से 'पारस्परिक सहायता की सन्धि' का एक मसविदा तैयार हुआ इसके अनुसार इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले किसी राष्ट्र पर अगर कोई दूसरा राष्ट्र आक्रमण करे तो अन्य राष्ट्रों पर उसकी सहायता का दायित्व होगा। परन्तु वह सिद्धान्त सब राष्ट्रों को स्वीकृति नहीं देगा और इसकी जगह 'जिनीवा प्रोटोकॉल' बनाया गया जिसके अनु-सार हर झगड़े का 'अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय' या संघ की कौन्सिल या अन्य पंचों द्वारा शान्तिपूर्ण उपायों से ही निपटारा करना तय हुआ। फिर अगर ऐसे किसी निर्णय से कोई राष्ट्र सहमत न हो अथवा कोई राष्ट्र अपना मुकद्दमा ही संघ के सामने पेश न करे तो उसके विरुद्ध जो कार्रवाई की जाय या उसके विपक्षी राष्ट्र की जो सहायता की जाय, उनका निश्चय कर दिया गया। साथ ही इस व्यवस्था की पूर्त्ति के लिए संघ ही शस्त्रास्त्रों के नियन्त्रण और उनमें कमी करने के विचार से एक कान्फ्रेन्स बुलाये यह भी तय हुआ। इस प्रकार जिनीवा प्रोटोकाल की तीन विशेषताएँ थीं अनिवार्य पंच फैसले की शर्त और पंच फैसले के लिए तैयार न होने वाले तथा उसे न मानने वाले राष्ट्र को अतिक्रमी घोषित करना तथा राष्ट्रसंघ के सभी राष्ट्रों द्वारा ऐसे अति-क्रमणी राष्ट्र के विरुद्ध सैनिक और आर्थिक आनुज्ञाएँ लगाने की व्यवस्था। जापानी प्रतिनिध के सुझाने पर इसमें एक संशोधन यह भी कर दिया गया कि अगर किन्हीं दो राष्ट्रों के झगड़े का कारण उनके बीच की आन्तरिक शासन की समस्याएँ हों तो भी राष्ट्र-संघ के सामने पंच-फैसले के लिए लाना आवश्यक होगा। इस संशोधन से ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के प्रतिनिधियों में बड़ी खलबली मची, क्योंकि इसके अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य की पूर्वी देशों की प्रजाओं के राजनीतिक और अन्य अधिकारों के सम्बन्ध के सभी झगड़ों को राष्ट्र-संघ के समीप लाना आवश्यक हो जाता और यह बात अँगरेज़ साम्राज्यशाही की प्रतिष्ठा के प्रतिकूल पड़ती। इसलिए अँगरेज़ प्रतिनिधियों ने अपने उपनिवेशों से सलाह मशविरा करने के बहाने इस प्रोटोकल पर हस्ताक्षर न किये और इस प्रकार इस प्रयत्न का गला घोंट दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने तो इन योजनाओं में सहयोग न देकर संघ की इन सब चेष्टाओं को विफल कर दिया।

फिर जर्मनी को युद्ध का तावान देने और अन्य देशों की युद्ध ऋण सम्बन्धी समस्याओं को लेकर संघ की बैठकों में खूब वाद विवाद चलता रहा। मित्रराष्ट्रों ने १९२१ ई० में ११६ अरब पौंड युद्ध तावान तलब किया; परन्तु 'क्षतिपूरक कमीशन' ने केवल ६६ अरब ही दिलाना तय किया। युद्ध-तावान और मित्रराष्ट्रों की सेनाओं का

कुल खर्च मिला कर जर्मनी को १६३१ ई० में १० अरब पौंड के लगभग देना पड़ा था। इस धन में से अधिकांश तो जर्मनी ने संयुक्त राज्य अमेरिका का और ग्रेट ब्रिटेन से कर्ज लेकर अदा किया और कुछ अंश अपने यहाँ माल देकर चुकाया। इसी प्रकार ग्रेटब्रिटेन ने संयुक्त राज्य अमेरिका से ६६०० करोड़ पौंड उधार लिये जिसे ६० वर्ष के भीतर अदा करने के वायदे पर प्रति वर्ष ३३० से लेकर ३३८ लाख पौंड देना स्वीकार किया गया। इसी प्रकार अन्य देशों ने ग्रेटब्रिटेन से १४०० करोड़ पौंड उधार लिये जिसमें उसे प्रति वर्ष १८० लाख पौंड वसूल होने निश्चित हुए। इस प्रकार ग्रेटब्रिटेन को मित्रराष्ट्रों से प्रति वर्ष उस ऋण का आधा ही वसूल होता जो उसे संयुक्त राज्य अमेरिका को स्वयम् देना पड़ता था। इसीलिए जून १६३१ में आर्थिक संकट के कारण ब्रिटेन को भी एक वर्ष के लिए युद्ध-ऋण की किस्तें देना बन्द कर देना पड़ा था।

संसार के अन्य देशों में भी अभी पूरी तरह से शान्ति और व्यवस्था नहीं हो पायी थी। रूस में बोल्शेविस्ट राज्य-व्यवस्था स्थापित हो जाने से अब उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि पच्छिमी युरोप के देशों के आर्थिक और सामाजिक विधान को अस्त-व्यस्त कर दिया जाय और कम्यूनिस्ट विचार-प्रणाली का प्रचार किया जाय। इसी प्रकार जापान ने अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की कठिनाइयों से तंग आकर सन् १६३२ ई० में मंचूरिया पर अधिकार कर लेने का निश्चय किया। अब तक मंचूरिया से जापान को अपने कल कारखाने चलाने के लिए सारा कच्चा माल मिलता रहा, परन्तु अब उसमें अड़चनें पड़ने के कारण उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह इस देश पर अपना साम्राज्य स्थापित कर ले। ऐसा करने के लिये जापान ने यह बहाना ढूँढा कि अगर वह मंचूरिया पर अपना अधिकार न करता तो रूस उस पर दख़ल कर लेने पर तुला बैठा था। फिर विश्वव्यापी साम्पत्तिक और आर्थिक कठिनाइयों के कारण सन् १६२६ ई० में और भी कठिन समस्याएँ उपस्थित हो गयी थीं और इन सब के साथ गोरी और सवर्ण जातियों के सम्पर्क में आने के कारण जो अभूतपूर्व दिक्कतें और नयी-नयी समस्याएँ उपस्थित हुईं उनका हल करना भी संघ के लिए आवश्यक हो गया।

**राष्ट्रसंघ सफलता की ओर**—पहले पाँच बरसों के भीतर संघ कान्फ्रेंस के सामने कई झगड़े पेश हुए जिनको उसने स्थायी रूप से शान्त कर दिया और युद्ध होने की सम्भावना को रोक दिया। इनमें से पोलैंड और लिथुएनिया तथा इटली और यूनान देशों के विरोध ऐसे थे जिनके निपटारे में संघ की कोई पेश न गयी। इन सब विरोधों के शान्त करने के लिए ही हेग में स्थायी रूप से अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित हुआ जिसने बड़ा उपयोगी काम किया। परन्तु राष्ट्रसंघ का सबसे महत्वपूर्ण काम, जिससे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी और जिसके कारण छोटे-छोटे राज्यों की संघ के प्रति श्रद्धा जमी, यह हुआ कि उसने आस्ट्रिया और हंगरी के दीवालिये राज्यों को अपने सदस्यों की मातबरी पर ऋण दिला कर उनकी साम्पत्तिक व्यवस्था को ठीक कर दिया। इसी प्रकार

संघ ने यूनान की सहायता कर उसकी शरणागत जनता को जो पच्छिमी एनैतोलिया और पूरबी थ्रेस से भाग कर आयी थी, भूखों मरने से बचा लिया।

**सन् १९२५ की लोकार्नो कान्फ्रेन्स और १९२८ ई० का कैलागपैक्ट—** राष्ट्रसंघ सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की दो अन्य योजनाओं की ओर संकेत कर देना आवश्यक है। सन् १९२५ ई० में लोकार्नो की कान्फ्रेन्स हुई जिसमें ब्रिटेन का आस्टिन चेम्बरलेन, फ्रान्स का ब्रियाँ, जर्मनी का स्ट्रास्मान प्रधान कार्यकर्त्ता रहे। जर्मनी, फ्रान्स बेलजियम; इटली और ग्रेटब्रिटेन इन पाँचों शक्तियों ने जर्मनी और बेलजियम तथा जर्मनी और फ्रान्स के बीच की सीमा के अतिक्रमण न करने का व्रत लिया और राइन नदी के सीमान्त की पुरानी पहेली सुलझती दिखायी दी। फिर लोकार्नो की सन्धि न तो किसी राष्ट्र के विरुद्ध कोई भय प्रदर्शन के लिये थी और न किसी के हितों के विरुद्ध और किसी प्रकार की कार्रवाई के लिए। इसके अनुसार फ्रान्स और बेलजियम का जर्मनी के प्रति वही कर्त्तव्य होता जो जर्मनी का फ्रान्स और बेलजियम के प्रति। इसी प्रकार ग्रेटब्रिटेन और इटली जिन्होंने इस सीमान्त-रक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली फ्रान्स, बेलजियम और जर्मनी के प्रति उसी हद तक उत्तरदायी थे जितने कि ये देश इन दोनों शक्तियों के प्रति। फिर भी कई युरोपीय राजनीतिज्ञों की राय थी कि लोकार्नो 'सन्धि' अँगरेजी कूटनीति के कौशल का चमत्कार समझी जानी चाहिए और युरोपीय राज्यों को जिन निर्बल और अव्यवस्थित पूरबी देशों पर साम्राज्य या विशेषाधिकार प्राप्त हैं उनको सशक्त और सुव्यवस्थित किये बिना युरोप में कभी स्थायी शान्ति स्थापित न हो सकेगी।

सन् १९२८ ई० में पेरिस की सन्धि हुई। यह कैलाग पैक्ट कहलाती है। बाद में संसार के जिन बहुत से राष्ट्रों ने इसके मन्तव्य को स्वीकार कर लिया उनमें रूस भी शामिल था युद्ध निरोध की पिछली सब चेष्टाओं से यह पैक्ट तीन प्रमुख बातों में अधिक महत्वपूर्ण था और यही सबसे पहली ऐसी सन्धि थी जिसमें युद्ध का परित्याग और हिंसा की निन्दा की गयी थी। अब तक इस सम्बन्ध में जितनी चेष्टाएँ की गयीं उनमें यह मान लिया जाता था कि अगर पंच-मत कोई निर्णय नहीं कर पाता तो दो विरोधी देशों या राष्ट्रों के बीच अपने झगड़े का निपटारा करने का युद्ध के सिवाय और कोई न्याय-संगत अथवा वैधानिक चारा नहीं रह जाता। परन्तु इस पैक्ट में इस अनुज्ञा को हटा दिया गया था। मान लीजिये कि किसी देश ने संयुक्त राज्य अमेरिका को युद्ध-ऋण देने से इनकार कर दिया और जब यह मामला राष्ट्र संघ के सामने पेश हुआ और उसका निर्णय संयुक्त राज्य अमेरिका के विपक्ष में हुआ तो क्या संयुक्त राज्य को यह अधिकार नहीं रहेगा कि वह अपना ऋण वसूल करने के लिए उस देश के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई करे। 'कैलाग पैक्ट के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर कर अपने इस अधिकार को तिलाञ्जलि दे दी और इसलिए अगर राष्ट्र संघ का पंच फैसला उसके विरुद्ध हो तो उसे युद्ध

छेड़ देने का कोई अधिकार नहीं रह जाता। और अगर संयुक्त राज्य अमेरिका अपने इस अधिकार का उपयोग कर उस राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दे तो इस पवित्र व्रत को भंग करने के कारण उसकी गणना बहिष्कृत राष्ट्रों में की जाती। दूसरी विभिन्नता यह थी कि इस पैक्ट में राष्ट्र संघ के इकरारनामे या लोकारनो कान्फ्रेन्स के ठहरावों की भाँति कोई अनुज्ञा नहीं रखी गयी थी। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर कोई राष्ट्र जिसने इस सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर किये हों इसके सिद्धान्तों को मानने से इनकार कर दे तो उसके विरुद्ध किसी प्रकार की सैनिक कार्रवाई नहीं की जा सकती। राष्ट्र संघ के इकरार नामे की १० वीं और १६वीं धाराओं के अनुसार ऐसे राष्ट्र के विरुद्ध जो इकरारनामे की शर्त्त का उल्लंघन करे अन्य राष्ट्र-सदस्यों को युद्ध तक करने का अधिकार है परन्तु इस पैक्ट में ऐसा कोई नियम नहीं रखा गया। इसका कारण भी स्पष्ट है। इस नियम द्वारा युद्ध परित्याग सिद्धान्त के मान लेने पर फिर ऐसा कोई नियम कैसे बनाया जा सकता था जो इस सन्धि को भंग करने वाले किसी राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध करना न्याय-संगत ठहराता। वास्तव में युद्ध को रोकने के लिए युद्ध का मार्ग ग्रहण करना युक्तियुक्त नहीं हो सकता। तीसरे, इस पैक्ट द्वारा सब सम्मिलित राष्ट्रों ने यह मान लिया कि वे अपने हर प्रकार के झगड़े राष्ट्र संघ के पंच-फैसले के लिए पेश करेंगे और किसी भी अवस्था में—यहाँ तक कि अपने राष्ट्रीय सम्मान की क्षति होने पर भी—शान्ति के मार्ग को छोड़ कर और कोई मार्ग ग्रहण न करेंगे।

इस प्रकार इस पैक्ट द्वारा कुछ विशेष परिस्थितियों में विशेष शर्तों का ध्यान रखते हुए संसार के सभी प्रमुख राष्ट्रों ने युद्ध मार्ग को अपनी राष्ट्रीयनीति के विरुद्ध घोषित किया और यह मान लिया कि हर हालत में वह आपसी झगड़ों को शान्तिपूर्ण व्यवस्था द्वारा ही निर्णीत करायेंगे संसार के इतिहास में शान्तिपूर्ण व्यवस्था की मंज़िल का यह पहला मील-पत्थर समझा जाना चाहिए।

---

# अध्याय ३२

## बीसवीं शती का ग्रेट ब्रिटेन

### § १—व्यवसाय और व्यापार

१९वीं शती में ससार भर के व्यापार क्षेत्रों में ग्रेट ब्रिटेन की प्रमुखता का श्रेय बहुत अंशों में विज्ञान की उन्नति और उसके अपने पराक्रम को मिलना चाहिए। इस शती के अन्त में ग्रेट ब्रिटेन की व्यापारिक समृद्धि चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। कहा जाता है कि १८९९ ई० की साल में ब्रिटेन का व्यापार खूब वृद्धि पर था, मजदूर-पेशा और अन्य व्यवसाइयों के लिए खूब काम था, व्यापारी माल से बाजार पटे हुए थे और निर्यात के लिए बाहर के देशों से खूब भारी माँग हो रही थी। फिर व्यापार-व्यवसाय में खूब लाभ भी था और इस लाभ में मज़दूरों को भी खूब फ़ायदा हुआ

था। ग्रेट ब्रिटेन का व्यापार अपने उपनिवेशों और अधिकृत देशों से ही नहीं बल्कि संसार के अन्य देशों से भी खूब बढ़ा-चढ़ा था और उसकी इस खुशहाली का पता चलता था देश की बढ़ती हुई सुख-समृद्धि और उसके देशवासियों के जीवन के उन्नत ढंग के रहन-सहन से। यह समृद्धि १७१४ ई० तक बराबर बढ़ती ही चली आ रही थी और ग्रेट-ब्रिटेन के खज़ाने के वज़ीर के बजट के उस समय के विवरण से पता चलता है कि उस वर्ष देश के व्यापार का आयतन चरम उन्नति पर था और बेकारी नाम मात्र की नज़र आती थी।

अदृश्य निर्यात—परन्तु २० वीं शती के पहले ही चतुर्थांश में ग्रेट ब्रिटेन की स्थिति कुछ विचित्र सी होती चली जा रही थी। ८८,२२६ वर्ग मील क्षेत्र के इस छोटे से द्वीप में सन् १९३१ की गणना के अनुसार ४ करोड़ ६० लाख मनुष्यों की आबादी थी जिसमें से प्रायः ८० प्रतिशत या ३ करोड़ ७५ लाख शहरों या कस्बों के रहने वाले थे। या यों कहा जाय कि ब्रिटेन की जन-संख्या अधिकांश उद्योग-धन्धों में लगी हुई थी और उत्पादन में बहुत कम। इसका परिणाम यह हुआ कि अब ब्रिटेन को ६० प्रतिशत से भी अधिक खाद्य पदार्थ सुदूर देशों से मँगा कर अपने इन समुन्नत देशवासियों के, सुख और आराम की व्यवस्था करनी पड़ती थी। इस तमाम कच्चे माल के बदले में ब्रिटेन को अपने कल कारखानों का बना हुआ माल और मशीनों आदि की निर्यात करनी पड़ती और बाकी का भुगतान करना पड़ता उस 'अदृश्य निर्यात' द्वारा। जिसमें शामिल है ब्रिटेन की जहाज कम्पनियों की बारबरदारी से विशाल आय, सारे संसार में फैले हुए उसके विराट साहूकारे और बीमा कम्पिनियों के मुनाफे तथा उसके देश-वासियों की अपार पूँजी पर प्राप्त उस सूद और लाभ की वह धन राशि जो उसे अन्य देशों से प्राप्त होती रहती। डाकखाने और तार घरों से मुनाफा, विदेशी व्यापारी और देशान्तर अधिवासियों के खर्च तथा देशान्तरवासी अँगरेज़ों द्वारा बचत की रकमें और अन्य ऐसी ही आय भी इसी 'अदृश्य निर्यात' में शामिल हैं। युरोपीय महायुद्ध के पहले ब्रिटेन के आयात के ऊपर उसकी हर प्रकार की दृश्य और अदृश्य निर्यात का मूल्य प्रति वर्ष २२ करोड़ पौंड से भी अधिक रहता था और यह सारा धन प्रायः विभिन्न उत्पादक योजनाओं के विकास में ही सूद पर उठा दिया जाता। इस प्रकार ब्रिटेन के विश्वव्यापी व्यापार से अधिक उसके विश्व-व्यापी साहूकारे की आय होती थी जिसके कारण यह छोटा सा देश संसार के समस्त देशों से अधिक सम्पत्तिवान और समृद्धि होता चला जा रहा था। महायुद्ध के समाप्त होने के बाद में ही ब्रिटेन की इस निर्यात में कमी होने लगी और १९३० ई० में तो यह यहाँ तक घट गयी कि सन् १९३१ के मुकाबले में अब यह केवल दो तिहाई ही रह गयी। इधर इस सम्बन्ध में लोगों का यह भी विचार हो चला था कि ब्रिटेन की आयात का प्रमुख अंश खाद्य पदार्थ की और ऐश-आराम की वस्तुओं में रह जाने के कारण देश में गरीबों का आक्रमण होना अनिवार्य हो चला था।

**निर्यात में क्षीणता और ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति**—इस घटती के कारण भी बहुत से थे। सबसे पहली बात तो यह थी कि २० वीं शती के आरम्भ से ही संसार के अनेक देशों में राष्ट्रीयता के विकास के साथ अपने-अपने व्यापार की उन्नति की चेष्टा की लहर दौड़ गयी और इसलिए बहुत सा ऐसा माल जो वह अपने यहाँ विदेशों से मँगाते थे अब वे अपने देश में बनाने लगे। फिर विदेशियों की स्पर्द्धा से अपने बाजारों की रक्षा करने के लिए उन्होंने बाहर से आने वाले माल पर खूब ऊँची चुंगी लगा दी। फिर ऐसा आराम सम्बन्धी व्यवसायों में नए-नए वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा अन्य देशों ने बड़ी चमत्कारपूर्ण उन्नति कर ली और उनके उत्पादन की अनेकों नयी नयी विधियाँ खोज निकालीं। ग्रेटब्रिटेन में ऐसी नयी उन्नतियों का प्रायः अभाव सा हो गया और १९ वीं शती की भाँति अब वह इधर अग्रगामी नहीं रह गया। तीसरे महायुद्ध के जमाने में ब्रिटेन से बहुत सा माल न मिल सकने के कारण जो देश उसके मुखापेक्षी थे वे अब अपने यहाँ वह सब माल तैयार करने लगे और इसलिए जब युद्ध समाप्त हो गया तो ब्रिटेन की सहायता की उन्हें आवश्यकता न रह जाने के कारण वहाँ का उतना व्यापार सदा के लिए नष्ट हो गया। ब्रिटेन का व्यापार अन्य देशों के साथ ६० प्रतिशत के ऊपर और अपने साम्राज्य के साथ ३० प्रतिशत के लगभग होता था। महायुद्ध के बाद इस विदेशी व्यापार के आयतन में बहुत कमी हो गयी और उधर यद्यपि ब्रिटेन ने अपने उपनिवेशों से आयात बढ़ा ली और उस पर आयात-कर भी नहीं लिया; परन्तु उपनिवेशों ने ब्रिटेन के निर्यात को लेना स्वीकार नहीं किया और अपने-अपने देशों के व्यवसाय को जीवित रखने के लिए बाहर से आने वाले माल पर चुंगी कम करने को तैयार नहीं हुए। उदाहरण के लिए पूर्वी देशों में रुई के कपड़े के बनाने के अपने कल-कारखाने खुल जाने से इंग्लैंड के सूती कपड़े के व्यवसाय को बड़ा धक्का पहुँचा। ब्रिटेन का कोयले का व्यवसाय इसलिए मारा गया कि अब भाप के एञ्जिनों की जगह जल-प्रपातों द्वारा बनायी हुई बिजली या पेट्रोल से बड़े-बड़े कारखानों की मशीनों और एञ्जिन चलने लगे इसके साथ ही चीन में महायुद्ध के बाद से ही अँगरेजों के विरुद्ध असन्तोष बढ़ता गया क्योंकि युद्ध के बाद जैसी उसे आशा थी उसकी स्थिति में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। उधर शांघाई के दंगे में जो क्रूरता बरती गयी उसने चीनियों को और भी क्रुद्ध कर दिया और चीन में इस बात का बड़ा प्रबल आन्दोलन चल पड़ा कि उस देश पर अन्याय और धींगाधींगी से युरोपीयों तथा अमरीकियों ने जो आर्थिक और राजनीतिक विशेषाधिकार प्राप्त कर लिये थे तथा चीन के जो प्रदेश दबा लिये थे उन सब को वापिस लिया जाय। इस आन्दोलन का बड़ा प्रबल शस्त्र था युरोपीय और विशेष रूप से ब्रिटिश माल का बहिष्कार। भारतवर्ष में भी इसी प्रकार महायुद्ध के बाद जब उसके राजनीतिक दलों ने देखा कि ब्रिटेन उसे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता देने को तैयार नहीं है तो वहाँ भी सहयोग आन्दोलन चल पड़ा जिसमें गान्धीजी ने भारतीयों को सबसे पहले शान्ति

के साथ ब्रिटिश राज्य-सत्ता के प्रमुख अंग व्यवस्थासभाओं, न्यायालयों, विद्यालयों तथा व्यापार को अपना सहयोग देना बन्द करने का उपदेश दिया। चीन और भारतवर्ष के इन बहिष्कार-आन्दोलनों का ब्रिटेन के व्यापार पर बड़ा विनाशक प्रभाव पड़ा और इन से जो जागृति उत्पन्न हुई उसने इस व्यापार को बड़ा धक्का पहुँचाया। फिर महायुद्ध से पहले बहुत से देश इंग्लैंड से क़र्ज़ लेते थे और संसार के साहूकारों के बाज़ार का केन्द्र लंडन था। युद्ध के व्यय के लिए इधर ब्रिटेन को अपने को बहुत से विदेशी दस्तावेज बेच देने पड़े, उधर उस का बहुत बड़ा धन ऋण के रूप में डूब गया फिर ब्रिटेन को स्वयम् बहुत सा धन कर्ज लेना पड़ा जिस पर उसे न केवल ब्याज ही देना पड़ता बल्कि कुछ समय बाद मूलधन भी। फिर इन सब के साथ-साथ सन् १९२९ ई० मे सारे संसार में वस्तुओं का मूल्य इतना गिर गया कि इंग्लैंड के रहे-सहे व्यापार को एक और आघात पहुँचा। इन सब कारणों के साथ कुछ लोगों का यह भी विचार है कि इस समय ब्रिटेन की निर्यात में कमी होते जाने का एक जबरदस्त कारण यह भी था कि अब यहाँ के व्यवसाय निकम्मे होते जा रहे थे और उत्पादन-व्यय बहुत बढ़ता चला जा रहा था। इन सब प्रगतियों का परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेन इस स्थिति पर पहुँच गया कि अब उसके निर्यात का मूल्य आयात के ऊपर रहने की जगह बराबर भी न रहा और घटते-घटते यहाँ तक नौबत आ पहुँची कि अब उस को सन् १९३१ ई० में अपनी आयात का मूल्य चुकाने के लिए अपने मूलधन से १० करोड़ पौंड देने पड़ गये। १९३० ई० तक तो उसके 'अदृश्य निर्यात' से किसी प्रकार व्यापार का लेना-देना बराबर चलता गया; परतु अब उसके सामने यह कठिनाई उपस्थित हो गयी कि अगर उसके आयात-निर्यात का शीघ्र ही समतुलन न हुआ तो उसे भविष्य में अपने मूल धन को खाने की नौबत आ जायगी।

बेकारी की समस्या और राष्ट्रीय सम्पत्ति का उचित बँटवारा—दूसरे घटती हुई निर्यात के साथ-साथ वैज्ञानिक उन्नति के युग में मशीनों का उपयोग दिन प्रति दिन बढ़ते रहने के कारण हर व्यवसाय में काम करने वाले मजदूरपेशा लोगों में बेकारी बढती गयी। सन् १९२० के अन्त तक इन बेकार मजदूरों की संख्या १० लाख नहीं हो पायी थी, परन्तु अगले १० बरसों में यह २० लाख से भी ऊपर जा पहुँची। इस प्रकार प्रकट है कि इस समय मज़दूरों के सामने आकस्मिक दुर्घटना, बीमारी और बुढ़ापे से भी भीषण समस्या बेकारी की हो गयी। साम्यवादियों का मत है कि पूँजीवादी व्यवस्था और बेकारी का चोली दामन का साथ है और ये एक दूसरे के परिणाम और कारण समझे जाने चाहिए। उनके सिद्धान्तों के अनुसार समाज व्यवस्था की काया पलट होने और उसमें साम्यवादी सिद्धान्तों के प्रचलन होने से मानव समाज में शान्ति और समृद्धि विरोधी इस कठिन समस्या का अन्त हो सकता है। परन्तु आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में विप्लव हुए बिना यह परिस्थिति उत्पन्न होना सम्भव नहीं। इसलिए संसार के अनेक दानवीरों, राजनीतिज्ञों और अर्थशास्त्रियों ने बेकारी दूर करने

की अनेक असफल चेष्टाएँ कीं। इंग्लैंड को १० लाख आदमियों के बेकार रहने से ५ वर्ष में लगभग १० करोड़ पौंड की हानि हुई, ऐसा अनुमान किया गया और इसके अतिरिक्त बेकारी से मज़दूर वर्ग में जो अशान्ति, दुख और अत्याचार फैला उसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इस प्रकार १९२० ई० से बेकारी दूर करने तथा बेकार वर्ग के कष्टों को कम करने की ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की निरन्तर चेष्टाएँ प्रायः असफल ही रहीं और बेकारी की समस्या इन बरसों में इंग्लैंड के लिए एक महा कष्टप्रद और बड़ी पेचीदा उलझनें उत्पन्न करने वाली राष्ट्रीय समस्या बन गयी।

फिर युद्ध के समाप्त होने पर समाज की विभिन्न शक्तियों में आभ्यन्तरिक झगड़े खड़े हो गये जिनका परिणाम महासागर से बहुत कम भयंकर नहीं हुआ। श्रमजीवियों और पूँजीपतियों के विद्वेष के कारण इंग्लैंड में इस ज़माने में जितनी हड़तालें हुईं और जितना तीव्र आन्दोलन पूँजपतियो के विरुद्ध हुआ उतना देश के इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। अब श्रमजीवी केवल अपनी मज़दूरी ही बढ़ा-कर शान्त होते दिखायी नहीं देते, बल्कि वे तो उस बड़े मुनाफे में हिस्सा चाहते थे जो इन पूँजीपतियों ने युद्ध के ज़माने में कमाया था। उधर श्रमजीवियों का यह भी कहना था कि पूँजीपतियों को उत्पत्ति के क्षेत्रों से हटाकर उन पर राष्ट्र का अधिकार होना आवश्यक है। उदाहरण के लिए खानों में काम करने वाले मज़दूरों ने यह आन्दोलन किया कि देश की सब खानों पर सरकार का कब्ज़ा हो और व्यक्ति विशेष इसके मालिक न रहे, जिससे इनके मुनाफे की आय सारे राष्ट्र में बँट जाय सम्पत्ति की असमानता को दूर करने के लिए राष्ट्रीय सम्पत्ति के बटवारे की रीति में परिवर्त्तन करना भी इस बेकारी की समस्या को दूर करने का एक आवश्यक उपाय बतलाया गया।

## २. २०वीं शती की सर्वजनिक सेवा-व्यवस्थाएँ

राज्य-सत्ता की बढ़ती हुई जिम्मेदारी—बेकारी की समस्या का उल्लेख करने के साथ ही यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस शती की एक और नयी व्यवस्था का, जिसे अब सार्वजनिक या सामाजिक सेवा व्यवस्था कहना चाहिए पर्यवेक्षण करें। यह व्यवस्था प्राचीन समय में भी कुछ न कुछ थी। १३ वीं शती में ही इंग्लैंड के पैरिशों की व्यवस्था हो गयी थी और देश भर के पैरिशों का नियन्त्रण और शासन पादरियों को सौंप दिया गया था। जैसा हम पढ़ चुके हैं इंग्लैंड में 'पुअरलॉ' गरीबी का विधान तो रानी एलिज़बेथ के राज्य-काल से ही जारी हो गया था। फिर राज्य की ओर से सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था भी सन् १८७१ से शुरू हो चुकी थी। इसी प्रकार 'म्युनिसिपल कारपोरेशन ऐक्ट' 'सार्वजनिक स्वास्थ्य विधान' 'फैक्टरी ऐक्ट' इत्यादि कितने ही सार्वजनिक उपयोगिता के विधान १८वीं और १९वीं शतियों में स्वीकृत होकर राज नियम बन चुके थे, तथा इनके व्यवहार में आने से जनता में भी वह जागृति; सुरुचि और दायित्व की भावना विकसित होती चली आयी थी जिसकी उत्तरोत्तर वृद्धि

ने २०वीं शती के पार्लियामेन्ट को इस बात पर मजबूर कर दिया कि वह इस सार्वजनि
समाज-सेवा की व्यवस्था को इतना उन्नत, विपद और देशव्यापी कर दे कि राज्य-सत्त
प्रत्येक नागरिक के जीवन भर की सुख समृद्धि के लिये उत्तरदायी ही न रहे बल्कि
उसकी दिन प्रतिदिन उन्नति को अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझे। इस भावना के
फलस्वरूप अँगरेज नागरिक के लिये उसके राज्य ने उसे जीवन भर सुख और समृद्धि
प्राप्त करने के साधन उपस्थित कर रखे हैं। जन्म लेते ही अँगरेज बालक के लिए
'मातृत्व और बाल हितकारिणी' संस्था की सेवाएँ उपस्थित हो जाती हैं। ५६ वर्ष का
होते ही 'इन्फेन्ट' ( बाल-मदिर ) 'जूनियर' ( प्रारम्भिक ) और 'सीनियर', ( प्रौढ )
स्कूलों में उसे निःशुल्क शिक्षा मिलती है। साल में दो बार उसकी डाक्टरी परीक्षा होती
है, किताबें और दूध मुफ्त मिलता है। फिर अगर उसमें योग्यता हुई तो सेकंडरी स्कूल
में उसे 'वजीफा' मिल जाता है और इस प्रकार की छात्रवृत्तियाँ उसे स्कूल से लेकर
यूनीवर्सिटी शिक्षा प्राप्त करने तक बराबर मिलती जा सकती हैं। स्कूल से शिक्षा प्राप्त
कर लेने के बाद अगर वह किसी कारखाने में काम करने लगता है तो १९वीं शती के
कारखाने या फैक्टरी ऐक्ट और शिपिंग ऐक्टों के नियमों द्वारा न केवल सरकार का
उसके काम करने की शर्तों और अन्य स्थितियों पर ही नियन्त्रण और अधिकार हो जाता
है बल्कि इनके द्वारा यह भी निर्धारित रहता है कि उसे कितने घंटे काम करना पड़ेगा,
काम के घंटों के बीच कितनी देर आराम करने को मिलेगा, कारखाने की बनावट उसके
स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तो न होगी, तथा उसके मनोरंजन, व्यायाम और खेल कूद
के लिए भी हर प्रकार की सुविधा उपस्थित होगी। साथ ही अगर किसी ऐसी दुर्घट
से, जो अकस्मात् हो जाय और उसकी लापरवाही के कारण न हुई हो, उसके चोट ल
जाने या अंगहीन हो जाने पर 'ऐम्प्लायर्स लाइबिलिटी' मालिकों की जिम्मेदारी ऐक्ट के
धाराओं के अनुसार उसकी उचित सेवा सुश्रूषा की जायगी तथा उसकी क्षतिपूर्ति की
व्यवस्था होगी। फिर कई प्रकार के 'बीमा विधानों' से बीमारी और बेकारी से उसकी
रक्षा होगी। इन मजदूरों और अन्य नागरिकों के रहने के आराम और सुविधा का भी
सरकार ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर दिया है और गृह-निर्माण 'हाउसिंग' ऐक्टों द्वारा
ऐसी व्यवस्था कर दी है कि लोगों को स्वस्थ, स्वच्छ और सुन्दर घर बड़े सस्ते किराये
पर उपलब्ध हो सकें तथा उनमें उनके आराम और आसायश की हर एक सुविधा जैसे
पानी, बिजली, खाना बनाने के लिये गैस और स्नान करने को कमरे आदि मौजूद हों।
फिर अगर कोई मजदूर किसी ऐसे व्यवसाय में काम करता हो जहाँ बीमा होना अनिवार्य
तो ६५ वर्ष की आयु होने पर तथा अन्य साधारण व्यवसायों में बिना बीमा कराये
० बरस का हो जाने पर वह बुढ़ापे की पेन्शन का हक़दार हो जाता है। अगर बीमा
स व्यवसाय में काम करते हुए उसकी मृत्यु हो जाय तो उसकी विधवा तथा उसके
ल-बच्चों को यह पेन्शन मिलती रहती है। इस प्रकार २० वीं शती की इस बहुमुखी
ति में, जहाँ राज्य की प्रतिष्ठा, गौरव, नेकनामी और उसकी समृद्धि का दायित्व उसके

प्रत्येक नागरिक पर है वहाँ राज्य की ओर से भी प्रत्येक नागरिक के सुख, उसकी प्रतिष्ठा और सम्मान के लिये पूरा-पूरा प्रबन्ध करने की व्यवस्था की गयी है। परन्तु, इन सब व्यवस्थाओं के लिए राज्य को प्रचुर धन भी तो ख़र्च करना पड़ता है और यह धन प्राप्त होता है उन सब टैक्सों और महसूलों द्वारा जो प्रत्येक अँगरेज अपने देश के कोष में जमा करता है। उदाहरण के लिये हम बेकारी के बीमा विधान के इतिहास पर ही विचार करेंगे। सन् १६११ में ग्रेट ब्रिटेन ने इस बेकारी बीमा विधान को पास करके सामाजिक सुधार-क्षेत्र' में बड़ा अभूतपूर्व और साहसपूर्ण काम किया। इस ऐक्ट द्वारा प्रत्येक मजदूर पेशा स्त्री या पुरुष को बीमारी, आकस्मिक दुर्घटना और बेकारी के रक्षा करने के निमित्त एक कोष बनाया गया जिसके लिये प्रत्येक व्यवसायी और मज़दूर को अपनी आय से बराबर धन देना पड़ता और राज्य की ओर से भी इसमें एक अंश जमा किया जाता। सन् १६११ में २५ लाख मजदूरों ने इस योजना से लाभ उठाया। सन् १६१६ और १६२० ई० में इस की बिलकुल कायापलट कर दी गयी और अब १२० लाख मजदूरों को इसका लाभ पहुँचने लगा। बेकारों की संख्या में महायुद्ध के बाद असाधारण वृद्धि हो जाने से इस सम्बन्ध में कई विधान स्वीकृत होते रहे हैं और १६३० ई० में इस कोष में से इतना धन व्यय हुआ था कि इस पर ३६० लाख पौंड का ऋण बढ़ गया। १६३१ ई० से तो परिस्थिति इतनी भयावह हो गयी थी कि इस कोष पर हर हफ्ते १० लाख पौंड कर्जा बढ़ता जा रहा था।

बेकारी-बीमा कोष की व्यवस्था का दायित्व मज़दूर सचिव के ऊपर है और इस समय की अनिवार्य बीमा-योजनाओं में कृषि, गृहकार्य करने वाले और घरेलू नौकर और बीमारों की सेवा करने वाली धात्रियों को छोड़ कर हर मजदूर के लिए बीमा कराना वैधानिक आवश्यकता है।

## §३—ब्रिटेन का राष्ट्रीय व्यय

राष्ट्रीय व्यय की असाधरण वृद्धि—१८ वीं और १६ वीं शतियों में ब्रिटेन के साम्राज्य, उसका वाणिज्य-व्यापार और व्यवसाय आदि की असाधारण वृद्धि के साथ-साथ ग्रेट ब्रिटेन का राष्ट्रीय व्यय भी बराबर बढ़ता गया। १६८८ ई० के विप्लव के बाद ग्रेट-ब्रिटेन पर ६६४ हजार पौंड प्रजा ऋण था जो नेपोलियन के जमाने की लड़ाइयों के बाद बढ़ कर ८६० लाख पौंड हो गया। सन् १६१४ के महायुद्ध के पूर्व यह ७१ करोड़ पौंड था और महायुद्ध के बाद ८०० करोड़ पौंड बढ गया। प्रजा-ऋण की असाधारण वृद्धि का कारण था ग्रेट-ब्रिटेन का अभूतपूर्व राष्ट्रीय व्यय। महायुद्ध में अमेरिका से लिये गये ऋण पर सूद, सार्वजनिक सेवा-व्यवस्था पर बढ़ता हुआ प्रतिवर्ष का ख़र्च, महायुद्ध के बाद पौंड का मूल्य गिर जाने के कारण आय की कमी, बेकारी-कोष पर बढ़ता हुआ ऋण और उसपर राज्य के प्रत्येक विभाग के बढते हुए ख़र्च ने २० वीं शती के इस पहले चतुर्थांश में ग्रेट ब्रिटेन के राष्ट्रीय व्यय की

मात्रा इतनी अधिक बढ़ा दी कि उसका व्यापारिक लाभ और उसकी आय अब बहुत अधिक घट गये यहाँ तक कि इस वर्ष ब्रिटेन के आय-व्यय का समतुलन न हो सका और बेकारी बीमा-कोष के बढ़ते हुए व्यय ने उसे और दीवालियेपने की हद तक पहुँचा दिया। उधर जर्मनी में भी आर्थिक दुष्काल पड़ा हुआ था और उस ओर से भी ब्रिटिश बैंकों को कुछ धन मिलने की आशा न रह गयी थी। इस परिस्थिति में विदेशियों का जो धन ब्रिटेन में धरोहर के रूप में जमा था वह भी अब खिंच कर जाने लगा और इंग्लैंड के सरकारी बैंक को संयुक्तराज्य अमेरिका और फ्रान्स से ऋण लेकर अपने ऊपर दी हुई हुंडियों के भुगतान करने की नौबत आगयी। वास्तव में इस समय सारा संसार एक महान आपत्ति के गर्त्त में होकर गुजर रहा था। चारों तरफ़ आर्थिक 'डेडलाक' के चिन्ह विद्यमान थे। संसार भर के व्यवसायी देशों के गोदाम कच्चे माल से पटे हुए थे, खलिहान और कारख़ाने सूने पड़े थे और लाखों मनुष्यों की रोटियों के लाले पड़े हुए थे। ससार भर में कृषि की खूब पैदावार हुई थी। अकूत कच्चे माल के रहते हुए भी कारख़ाने बन्द होते जा रहे थे। इस परिस्थिति में एक बात जो स्पष्ट थी और वह यह कि पाश्चात्य देशों में प्रचलित सामाजिक व्यवस्था का ह्रास होता जा रहा था। संकटावस्था के बहुमुखी होने पर भी इसका प्रमुख कारण यह था कि पाश्चात्य देशों की साम्पत्तिक और आर्थिक शक्ति जिस पर सारे समाज की समृद्धि का दारमदार होता है सारे राष्ट्र की भलाई में न लगायी जाकर कुछ विशेष भाग्यशाली व्यक्तियों के अर्थ-साधन के काम आ रही थी। साफ़ साफ़ शब्दों में कहा जायगा कि अगर मनुष्य अपनी ही उत्पादन की हुई वस्तुओं को अपने उपभोग के लिए ख़रीदने में असमर्थ हो तो यह स्पष्ट है कि ऐसे आर्थिक संगठन में कहीं कोई पोल अवश्य है—अर्थात् विक्रय-सामर्थ्य का वितरण होने की जगह उसे संकुचित किया जा रहा था। पिछले १० बरसों में जब कि अँगरेज मजदूरों की आय ७० करोड़ पौंड प्रतिवर्ष के हिसाब से घटती रही और अन्य पेशेवालों की बराबर बढ़ती गयी परन्तु राष्ट्र की आय का योग फिर भी ४३० करोड़ पौंड से न बढ़ सका इस आर्थिक संकट को दूर करने के लिए टोरी दल की माँग यह थी कि बाहर के आने वाले माल पर चुंगी लगा दी जाय और लिबरल चाहता था कि सारी व्यवस्था का पुनर्संगठन किया जाय और सार्वजनिक सेवाओं पर व्यय कम कर दिया जाय। इस प्रकार १९३१ ई० के इस आर्थिक संकट के कारण देश में राजनीतिक संकट भी उपस्थित हो गया।

**सन् १९३२ की ओटोवा कान्फरेन्स और व्यापार-नीति में परिवर्तन**—इस महान आर्थिक संकट का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि ग्रेट ब्रिटेन जो अब तक मुक्तद्वार व्यापार का पक्षपाती ही नहीं बल्कि उसका सबसे प्रमुख समर्थक रहा अब रक्षित व्यापार नीति का अनुगामी होने लगा। यह देखकर कि ब्रिटेन का व्यापार अपने

साम्राज्य के साथ अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही कम होता था। इस समय के राजनीतिज्ञों ने यह तय किया कि ब्रिटिश साम्राज्य जो माल विदेशों से लेता है उसे कम कर दे और अपने साम्राज्य के ही भीतर आदान-प्रदान करे। इस योजना को व्यावहारिक रूप देने के लिए कनाडा की राजधानी ओटोवा में ब्रिटिश साम्राज्य की एक आर्थिक सभा हुई जिसमें ब्रिटेन, सब उपनिवेश, भारतवर्ष और लंका आदि देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए और कान्फ्रेन्स का मुख्य मन्तव्य हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्येक देश ब्रिटेन और उसके उपनिवेशों में ब्रिटेन के व्यापार को प्रोत्साहन देना। इस सभा में प्रत्येक उपनिवेश और भारतवर्ष के साथ एक समझौता किया जाना तय हुआ जिसके अनुसार साम्राज्य के प्रत्येक देश को यह अधिकार मिला कि वह कड़ा आयात कर लगाकर अन्य देशों का माल अपने यहाँ आने से रोक दे ताकि ब्रिटेन या उपनिवेशों का माल उन देशों के बाजार में विदेशी माल का स्थान ले सके। इस समझौते का एक परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक देश ने अपना माल देने और ब्रिटेन का माल लेने की एक मात्रा निश्चित कर ली और ब्रिटेन ने विदेशी माल पर ऊँचा आयात कर लगा कर अपने व्यवसाय का संरक्षण करने का असफल प्रयत्न किया। इस समझौते की एक शर्त यह थी कि अगर यह व्यवस्था किसी देश के व्यापार को हानिकारक प्रमाणित हो तो उसे अधिकार होगा कि वह उसे रद्द कर दे।

## १४—महायुद्ध के बाद ब्रिटेन की राज्यसत्ता

**युरोपीय राज्य-सत्ताएँ और ब्रिटेन**—१९वीं शती के अन्तिम चतुर्थांश में तो युरोप के प्रायः सभी राज्यों का यही रुख था और अन्य देशों में भी यही प्रवृत्ति जड़ पकड़ती जा रही थी कि वे अँगरेजी पार्लियामेन्टरी विधान का ही अपने-अपने देशों में अनुकरण करें। इस पार्लियामेन्टरी व्यवस्था की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके सदस्य जनसाधारण के लोकमत का प्रतिनिधित्व करते हुए जो मन्त्रिमडल चुनते हैं वह एक प्रकार से प्रजामत का ही प्रतीक बनकर प्रजा की ओर से, प्रजा के हित के लिए, प्रजा का शासक होता है। इस प्रकार प्रजा-सत्तात्मक राज्य-व्यवस्था ही उस समय सब से अधिक प्रतिनिधित्व और उत्तरदायित्वपूर्ण समझी जाती रही। इसी लिए युरोप के प्रायः सभी राज्य प्रजासत्तात्मक होते चले जा रहे थे और एशिया, आफ्रिका और दक्खिनी अमेरिका में प्रायः इसी प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ ज़ोर पकड़ती जा रही थीं। यह बताने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि महायुद्ध के पूर्व युरोप में रूस की जारशाही के साथ-साथ आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य सर्बिया, बलगारिया, रूमानिया, यूनान, तुर्की, इटली, जर्मनी, बेलजियम, डेनमार्क, हालैंड, नारवे, स्वीडेन और स्पेन आदि सभी देशों के राजघराने कुछ न कुछ अंश में वैधानिक राज्य हो गये थे और इन सभी देशों में किसी न किसी रूप में अँगरेजी पार्लियामेन्ट की तरह की प्रजामत से चुनी हुई संस्थाएँ मौजूद थीं। इनमें फ्रान्स, पोर्तुगल और स्विटजरलैंड

प्रजातन्त्र राज्य थे। परन्तु महायुद्ध के बाद ऐसा प्रतीत होने लगा कि राज्यसत्ता के विकास की लहर अब प्रजातन्त्र की ओर न बह कर एकाधिपति शासन (डिक्टेटरशिप) की ओर मुड़ गयी है। रूस, पोलैंड और इटली में इस समय जो राज्यसत्ताएँ बनीं उन्हें एक प्रकार का एकाधिपति शासन ही कहना चाहिए क्योंकि इन देशों में जिस एक व्यक्ति के हाथ में सैनिक शक्ति के बल-बूते पर शासनाधिकार आ गया उसने एक प्रकार की तानाशाही स्थापित कर दी और देश के प्रजामत को बहुत कुछ अवरुद्ध कर डाला। जर्मनी महायुद्ध के बाद पार्लियामेन्ट्री शासन चलाने का प्रयत्न तो हुआ परन्तु सफल न हो सका और जर्मनी में एक नयी राजनीतिक-आर्थिक शासन व्यवस्था का विकास हुआ जिसे अब 'नेशनलिस्ट सोशलिज्म' सार्वजनिक साम्यवाद कहा जा रहा है। परन्तु इंग्लैंड ही एक ऐसा देश रहा है जिसमें महायुद्ध के बाद भी वैधानिक राज्य बना रहा और जहाँ की प्रजातन्त्रात्मक पार्लियामेन्ट्री व्यवस्था अब अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। क्योंकि जैसा हम पढ़ चुके हैं सन् १६११ में सुधार बिल पास करने के लिए लार्ड सभा के अधिकार बहुत कम करके लोकमत के प्रतिनिधि कामन्स सभा को ही राज्यसत्ता का शिरमौर बना दिया गया और सन् १६१८ में वयस्क स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार देकर पंचायती प्रथा की लोकप्रियता और उपादेयता देशव्यापी कर दी गयी।

**ब्रिटेन के मन्त्रि-मण्डल में नयी प्रगति और श्रमजीवी दल का उदय—** हम पढ़ चुके हैं कि सन् १६०८ में आस्क्विथ लिबरल मन्त्रिमडल बना जिसके जमाने में महायुद्ध शुरू हुआ। परन्तु १६१६ ई० में युद्ध को देश भर के एक मत से चलाने का ध्येय सामने रखकर लॉयड जार्ज का 'सर्वदल मन्त्रिमंडल' स्थापित हुआ। महायुद्ध समाप्त हो जाने के अगले ३ बरस बाद तक इसका शासन चला परन्तु इसके पतन के बाद ब्रिटेन की राज्य-व्यवस्था में 'कनजरवेटिव' और 'लिबरल' दलों के साथ अब एक नये 'मजदूर दल' का उदय हुआ। जेम्स केर हार्डी सन् १८६२ में इस दल का अकेला प्रतिनिधि बनकर पार्लियामेन्ट में गया और बोअर युद्ध (जिसे वह पूँजीपतियों का युद्ध कहता था) से लेकर हर अवसर पर बेकारों की समस्या का पक्ष लेकर साम्यवादी सिद्धान्तों के प्रचार में लड़ता रहा। पार्लियामेन्ट के बाहर व्याख्यानों और लेखों द्वारा उसने साम्यवाद के लिए निरन्तर आन्दोलन किया और 'इंडिपेंडेन्ट लेबर पार्टी, स्वतन्त्र श्रमजीवी दल की नींव डाली। वास्तव में यह केर हार्डी की ही लगन और निष्ठापूर्ण सेवाओं का परिणाम हुआ कि जिस 'मजदूर दल' के सन् १६०० में केवल दो ही प्रतिनिधि पार्लियामेन्ट में थे, सन् १६८१ में उसके ३६१ उम्मेदवारों में से ५७ चुन लिये गये और श्रमजीवी दल इस चुनाव के बाद सरकारी विपक्षी दल बन गया। सन् १६२२ में इन सदस्यों की संख्या १४२ हो गयी और अगले ७ वर्ष बाद २८७ जिसमें उनको अँगरेज वोटरों से ८० लाख वोट प्राप्त हुए। सन् १६१४ में 'सार्वभौमिक साम्यवाद' द्वारा महायुद्ध न रोक सकने के कारण केर हार्डी को बड़ा

दुःख हुआ और उसके स्वास्थ्य ने जो कार्याधिक्य के कारण बिलकुल जर्जरित हो गया था जवाब दे दिया। सन् १६१५ ई० में केर हार्डी की मृत्यु हो गयी परन्तु उसकी तपस्या से जो 'स्वतन्त्र मजदूर दल' स्थापित हुआ था उसने ६ वर्ष के भीतर ही (१६२४ ई० में) इँग्लैंड मे सबसे पहला 'मज़दूर मन्त्रिमंडल' संगठित कर दिया। श्रमजीवी दल के मन्त्रिमंडल बनने के बाद से ही इंग्लैंड में साम्यवाद किसी दल विशेष का आन्दोलन न रह कर धीरे धीरे सार्वदेशिक रूप धारण करता जा रहा है। इसी समय से साम्यवाद इंग्लैंड के इतिहास का एक केन्द्रीय अंग बन गया है और श्रमजीवी दल की विजय या पराजय भी राष्ट्रीय जीवन का ही अंग बन गयी है।

सर्वदल, मज़दूर और राष्ट्रीय मन्त्रिमंडल—लॉयड जार्ज मन्त्रिमंडल ने महायुद्ध के बाद वरसाई की सन्धि के अतिरिक्त सन् १६१६ ई० का गवर्नमेन्ट ऑव इंडिया ऐक्ट पास किया जिसमें भारतवर्ष में पहले पहल केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया और प्रान्तीय शासन के कई विभागों पर निर्वाचित सदस्यों के प्रतिनिधियों को मन्त्री बनाया गया। १६२० ई० में आयरि होमरूल ऐक्ट पास हुआ और सन् १६२१-२२ ई० में 'आयरि फ्री स्टेट' की स्थापना हुई। इसी साल वाशिंग्टन कान्फ्रेन्स हुई और १६२२ ई० में इराक के साथ नयी सन्धि और मिस्र की स्वाधीनता स्वीकृत हुई। लॉयड जार्ज मन्त्रिमंडल के बाद बोनरलॉ और बाल्डविन दो कनजर्वेटिव मन्त्रिमंडल बने। बोनर लॉ मन्त्रिमंडल तो कुछ महीनों तक ही चल सका क्योंकि लॉ को बीमारी के कारण शीघ्र ही त्याग पत्र देना पड़ा। मई सन् १६२३ ई० में बाल्डविन प्रधान मन्त्री बना। दिसम्बर में उसने रक्षित व्यापार व्यवस्था स्थापित करने के लिए नया निर्वाचन कराया; परन्तु इसमें उसकी हार हो गयी और सन् १६२४ ई० में रेम्से मैकडनाल्ड का 'मजदूर मन्त्रिमंडल' बन गया। इस समय भी यूनियनिस्ट दल बहुत प्रबल हो रहा था। मैकडनाल्ड मन्त्रिमंडल ने आयात पर लगाये हुए 'मैक्किन कर' हटा दिये और श्रमजीवियों के लिए गृह-निर्माण, बेकारी-बीमा, बुढ़ापे में पेन्शन और कृषि व्यवसाय में काम करने वाले श्रमजीवियों की मजदूरी की दर आदि साम्यवादी विधानों में बहुत कुछ उन्नति की। इसी मन्त्रिमंडल के जमाने में इंग्लैंड की सरकार ने रूस की सोवियत सरकार को स्वीकार किया। इन तीन बरसों के तीन मन्त्रिमंडलों के बाद बाल्डविन के नेतृत्व में फिर कनजर्वेटिव मन्त्रिमंडल स्थापित हुआ जिसने ५ बरस तक शासन किया। इस जमाने में यह मन्त्रिमंडल 'ट्रेडयूनियन' व्यवसाय-संघ और बेकारी की विविध समस्याओं के हल करने में लगा रहा। इसी के जमाने में स्त्रियों को भी वोट का अधिकार मिला और सन् १६२५ ई० की लोकार्नो सन्धि बनी। १६२७ ई० में इंग्लैंड में देशव्यापी हड़ताल हुई और सन् १६२६ ई० में कैलाग पैक्ट स्वीकृत हुआ। इसके बाद सन् १६२६ ई० में दो बरस के लिए फिर 'मजदूर मन्त्रिमंडल' आ गया। इस समय मजदूर दल' के सदस्यों की संख्या कनजर्वेटिवों से थोड़ी ही अधिक थी इसलिए उन्होंने लिबरलों

को अपने साथ मिलाकर शासन-कार्य चलाया। इसी 'मज़दूर दल' के मैकडनाल्ड मन्त्रिमंडल के ज़माने में सन् १९३१ का आर्थिक संकट उपस्थित हुआ और चूँकि मजदूर मन्त्रिमंडल का साम्पत्तिक समतुलन और व्यावसायिक लाभ की नीति के सम्बन्ध में अपने कनजर्वेटिव सहयोगियों से मतभेद हो गया इसलिए मैकडनाल्ड ने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद राजाज्ञा मान कर मैकडनाल्ड ने अबकी बार राष्ट्रीय मन्त्रि-मंडल (नेशनल गवर्नमेन्ट) स्थापित किया जिसमें लिबरल दल के सर जान साइमन और रनसीमान, कनज़र्वेटिव दल के बाल्डविन और नेविल चेम्बरलेन तथा श्रमजीवी दल के लार्ड स्नोडन और टामस मन्त्री बने। इस बार के बड़े चुनाव में इस मन्त्रि-मंडल को कामन्स सभा में ५०० से अधिक सदस्यों का बहुमत प्राप्त हुआ। इस मन्त्रि-मंडल के सामने बड़ी कठिन समस्याएँ उपस्थित हुईं जिनमें आर्थिक और साम्पत्तिक कठिनाइयाँ सबसे प्रमुख थीं। सबसे बड़ी समस्या १९३१ ई० में आर्थिक संकट के बाद थी राष्ट्रीय आय और व्यय में पारस्परिक समतुलन स्थापित करने की। इस समतुलन और व्यवसायिक लाभ को पुनः प्राप्ति के लिए इस मन्त्रिमंडल को राष्ट्रीय व्यय में बहुत कुछ काट-छाँट करने और सापेक्ष कर लगाने की नीति का अनुसरण करना पड़ा।

कनज़र्वेटिव मन्त्रिमंडल—चेम्बरलेन मन्त्रिमंडल के सामने सब से बड़ी समस्या रही युरोप की जातियों को युद्ध छेड़ने से अलग रखने की, परन्तु वह इसमें सफल न हो सका। जापान ने मंचूरिया पर अधिकार कर लेने के बाद चीन में इसी नीति का अनुसरण किया और इटली ने एबीसीनिया पर हमला करके तो राष्ट्रसंघ के सामने ही नहीं बल्कि ब्रिटिश गवर्नमेन्ट के लिए भी बड़ी कठिन समस्या उपस्थित कर दी। इस समय ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की नीति थी शान्ति बनाये रहना और जहाँ तक सम्भव हो सके युरोपीय राज्यों को युद्ध से दूर रखना। अपनी इस नीति को बरतने में ब्रिटेन को कई बार बड़े राजनीतिक संकट में होकर गुज़रना पड़ा। निशस्त्रीकरण की अथवा शस्त्रास्त्र नियन्त्रण के विषय में कई बार कान्फ्रेन्स करने पर भी कोई सफलता नहीं मिली। उधर एबीसीनिया के युद्ध के कारण इटली के विरुद्ध आर्थिक अनुज्ञाएँ लगाने की नीति भी कुछ अधिक सफल न हो सकी क्योंकि अब इटली ने राष्ट्रसंघ से त्याग-पत्र दे दिया और इस प्रकार खुल्लमखुल्ला उसकी नीति का विरोध कर उसकी लड़खड़ाती हुई स्थिति को और भी दयनीय बना दिया।

## ५—ग्रेट ब्रिटेन की सामाजिक उन्नति

ब्रिटेन की सामाजिक उन्नति—१९वीं शती के अन्त में मोटरकार, हवाई जहाज़, सिनेमा, ऐक्सरे और ब्राडकास्टिंग आदि वैज्ञानिक चमत्कार उस रूप में उपस्थित नहीं हो पाये थे जिस में हम आजकल उनसे परिचित हैं, फिर भी इस शती के बीच से ही जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए और उनके कारण जनता के जीवन के प्रत्येक विभाग में जो अभूतपूर्व और कौतूहलोत्पादक उन्नति हुई उसका श्रीगणेश उसी समय से शुरू हो

गया था तथा सारे सभ्य संसार के सामाजिक, आर्थिक और राष्ट्रीय जीवन पर इसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता आ रहा था। अब लोगों का जीवन अधिक सुखमय, समृद्ध, सुसंस्कृत और सुरुचिपूर्ण होता चला जा रहा था। पहनने और खाने की वस्तुओं से लेकर, रहन सहन, मकान, गली कूचे और शहर की इमारतों तथा इन्हें बनाने के ढंग में भी बड़ा परिवर्तन हो रहा था। उत्पादन और व्यवसाय की उन्नत रीतियों और शिक्षा प्राप्त करने के नये नये परमोन्नत और सुलभ साधनों के उपस्थित होते जाने से लोगों के जीवन में एक बड़ा अपूर्व परिवर्तन आता जा रहा था। जन-साधारण की जीवनावधि को भी बढाने का प्रयत्न हो रहा था और रोगों से बचने के भी नये-नये इलाज खोज निकाले जा रहे थे।

विज्ञान के नये चमत्कार—रोगों पर विजय—१८८५ ई० में लुई पास्टर ने कई रोगों के सम्बन्ध में अपनी आश्चजनर्यक खोजों से संशार को चकित ही नहीं किया बल्कि उसे उन रोगों से मुक्त होने का भी रास्ता दिखाया। परन्तु अभी तक लोगों का विश्वास इन चीजों में नहीं हो पाया था और वैज्ञानिक अनुसन्धानों को बड़ी शंका की दृष्टि से देखा जाता था। यही कारण था कि बोअर युद्ध के लड़ाई में घायल होकर उतने लोग हताहत नहीं हुए जितने मोती-झरे के रोग से। फिर रोगोपचार और औषधि-विस्तार ने अगले महायुद्ध तक कितनी उन्नति कर ली थी, इसका अनुमान होता है उन संख्याओं से जिनके अनुसार महीनों खाइयों में रहने पर भी पिछले महायुद्ध में जहाँ ५० सैनिकों का नाश हुआ वहाँ इस भयानक बीमारी से केवल १ ही जान गयी। इसके बाद सर रोनल्ड रास ने मलेरिया ज्वर का इलाज ही नहीं ढूँढ़ निकाला बल्कि यह भी प्रमाणित कर दिया कि मच्छरों द्वारा इस ज्वर के कीटाणु एक मनुष्य के शरीर से दूसरे मे किस प्रकार प्रवेश कर मलेरिया फैला देते हैं। इन मच्छरों के विनाश से गरम देशों के अनेक ऐसे स्थल जो मलेरिया के कारण गोरी जातियों के लिए बड़े भयानक बने हुए थे अब बड़े स्वस्थ हो गये हैं और उनमें मलेरिया का नाम निशान तक नहीं रह गया है। विसूचिका, चेचक और प्लेग के रोगों को टीका लगा कर और मधुमेह को इन्सुलिन की पिचकारी देकर आराम करने से लाखों करोड़ों पीड़ितों को मृत्यु के जबड़ों मे से बचा लिया गया है। इसी प्रकार पीत ज्वर के वाहनों का विनाश कर पनामा प्रदेश को मनुष्यों के बसने योग्य ही नहीं बना दिया गया बल्कि इसी नाम की ५० मील लम्बी नहर द्वारा उत्तरी और दक्खिनी अमेरिका के बीच की मध्य अमेरिका नाम की ग्रीवा को भेद कर प्रशान्त और एटलान्टिक महासागरों का संगम करा दिया है उधर वायुरोधित शीशे की नली में होकर विद्युत प्रवाह से जो अद्भुत रश्मियाँ विकीर्ण होती हैं उन्हें खोज निकालने और यह मालूम कर लेने से कि यह रश्मियाँ बक्से के भीतर बन्द फोटोग्राफी की प्लेट पर भी अंकित हो जाती हैं, संसार को एक महान चमत्कार का ज्ञान ही नहीं प्रदान किया बल्कि इसके छायाचित्रों द्वारा अब डाक्टरों को शरीर के भीतर की किसी भी हड्डी का चित्र देखकर ज्ञान प्राप्त कर लेने से उसके

उपचार में बड़ी असाधारण सुविधा उत्पन्न हो गयी है। संक्षेप में इन सब आविष्कारों और उन्नतियों के कारण ब्रिटेन की जनता की जीवनावधि में बड़ी अभूतपूर्व उन्नति हुई। सन् १८७१ में इंगलैंड और वेल्स के पुरुषों की जीवन की अवधि ४० बरस थी। १६०१ में यह ४५ बरस हो गयी और १६२१ में ५५ बरस से भी अधिक, बढ़ गयी।

परन्तु वैज्ञानिक आविष्कारों के इस युग में मनुष्य जीवन सम्बन्धी समस्याओं पर ही विचार और अनुसन्धान नहीं हुए, बल्कि बनस्पतियों और पशु-पक्षियों के रोगों की भी अनेक औषधियाँ खोज निकाली गयी हैं। उदाहरण के लिए रेशम के कीड़ों की बीमारी से लेकर मीठी मटर, कपास गेहूँ और चावल के पौधों के कीड़ों और घोड़ों, कुत्तों गाय भैंसों आदि के संक्रामक रोगों के भी इलाज ढूँढ निकाले गये। गेहूँ की पई लगने से रक्षा करना, चुकन्दर में शकर की मात्रा बढ़ा देना, फलों और फूलों तथा तरकारियों के आयतन में वृद्धि कर देना—यहाँ तक कि नये नये फल और फूलों की रचना आदि सब उन्नतियाँ इसी युग में हुई हैं।

विज्ञान के नये चमत्कार—यातायात के नये साधन मोटरकार और हवाई जहाज—यातायात के साधनों में भी इसी प्रकार इस युग में बड़ी अभूतपूर्व उन्नति हुई। अब भाप के स्थान पर पेट्रोल से चलने वाले अन्तरदाह ऐञ्जिनों की ईजाद से मोटरकार का आविष्कार ही नहीं हुआ बल्कि उसकी उन्नति और हर प्रकार से देश के विभिन्न भागों में आने-जाने में इतनी सुविधा प्राप्त हो गयी कि मोटरकार और मोटर लारी अब हर एक देश की यातायात में बड़ा प्रमुख साधन बन गयी हैं। १६ वीं शती में व्यवसाय और रेलों के केन्द्र होने के कारण शहरों की असाधारण उन्नति हुई और देहातों का इन केन्द्रों से दूर रह जाने के कारण ह्रास होने लगा था। परन्तु मोटरकार की आमद ने संसार के सभी देशों के स्थल भागों को विस्तार देकर उन्हें यात्रा और व्यापार की फिर प्रमुख धमनियाँ बना दिया है और देहातों को इन केन्द्रों से पृथक हो जाने से बचा लिया। मोटर लारियों के चल जाने से घोड़ा-गाड़ियों और रेल गाड़ियों तक के बारबरदारी के मुनाफे में कमी आ गयी। फिर इस अन्तरदाह ऐञ्जिन द्वारा कृषि के औज़ारों और युद्ध के शस्त्रास्त्रों में जो कल्पनातीत परिवर्तन हुआ है उसका वर्णन करने के लिए तो एक पूरे ग्रन्थ की आवश्यकता होगी। इस वृद्धि का अनुमान बहुत स्पष्टतः हो जाता है जब हम विचार करते हैं कि सन् १६०५ ई० में संयुक्त राज्य अमेरिका में केवल ५ ही मोटरकार थीं और १६२८ ई० में इनकी संख्या २½ करोड़ से भी अधिक हो गयी। इसी प्रकार सन् १८६६ ई० में जो हवाई जहाज़ बना उसका ऐञ्जिन भाप से चलता था और केवल १ घोड़े की शक्ति रखता था। १० बरस बाद राईट ब्रादर्स ने जो अपना हवाई जहाज बनाया उसमें पेट्रोल से चलने वाला ऐञ्जिन लगा था और वह २५ मील तक उड़ सका। सन् १६०८ ई० में फारमैन का जहाज़ लंडन से मैनचेस्टर तक उड़ा था। इसके बाद २५ जुलाई सन् १६०६ ई० को लुई ब्लेरियो के हवाई जहाज़ ने सबसे पहले इंग्लिश चैनल को उड़ कर पार किया। पहले

महायुद्ध में तो हवाई जहाज़ युद्ध के लिए भी काम आने लगा था और जहाँ ग्रेट ब्रिटेन के पास १९१४ ई० में केवल २७२ हवाई जहाज थे युद्ध के बाद इनकी संख्या २२ हजार हो गयी १९१९ ई० में एटलान्टिक महासागर को उड़ कर पार करने की चेष्टाएँ होने लगीं और अल्काक और ब्राउन ने सबसे पहले एक ही उड़ान में इस महासागर को पार किया। इसी वर्ष रास स्मिथ इंग्लैंड से उड़ कर २८ दिन में आस्ट्रेलिया पहुँचा और १९२८ ई० में प्रशान्त महासागर को भी उड़ कर पार कर लिया गया। इस प्रकार मोटरकार और हवाई जहाज ने जहाँ यातायात में अभूतपूर्व सुविधाएँ उपस्थित की हैं वहाँ संसार के विस्तार को भी बड़ा संकुचित कर दिया है।

**विज्ञान के नये चमत्कार—बेतार के तार-समाचार, टेलीफोन, सिनेमा और ब्राडकास्टिंग**—सन् १८९६ ई० में एक और चमत्कारपूर्ण आविष्कार हुआ और मारकोनी ने बिना तार के तार-समाचार भेजने का पेटेन्ट प्राप्त कर लिया। फिर इस ओर तो ऐसी अभूतपूर्व उन्नति हुई कि शीघ्र ही सन् १९०१ ई० में कार्नवाल और न्यूफाउंडलैंड के बीच बेतार की खबरें आने-जाने लगीं। २० बरस बाद १९२१ ई० में इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया के बीच बिना तार के टेलीफोन से बातचीत होने लगी। साथ ही एडीसन ने ग्रामोफोन का आविष्कार किया जिसके द्वारा किसी भी मनुष्य की बोली जब चाहे जहाँ सुन लेने की सुविधा हो गयी। इसके बाद ही पहले चलचित्रों का और फिर सवाक् सिनेमा का आविष्कार हुआ जिसमें चलते-फिरते मनुष्य का ही नहीं बल्कि बोलते हुओं का अभिनय दिखाया जाने लगा। रेडियो और ब्राडकास्टिंग के आने में अब देर न लगी और आज के दिन विज्ञान के ये सब कौतूहलोत्पादक आविष्कार हमारे जीवन के मनोरंजन और आनन्द का एक आवश्यक अंग बन गये हैं।

**आविष्कारों का प्रभाव जीवन पर**—इन सब आविष्कारों का प्रभाव ब्रिटेन के लोगों के जीवन पर पड़े बिना कैसे रह सकता था। अब तो वहाँ गाँव-गाँव में बिजली की रोशनी है, पानी के नल हैं और खाना पकाने तथा घर गरम रखने के लिए गैस के चूल्हे हैं। ग्रामोफोन और रेडियो ने शिक्षा के साथ मनोरंजन का भी अच्छा साधन उपस्थित कर दिया है। मोटर बस, ट्रामगाड़ियाँ ट्यूब रेलवे बराबर चलती रहती हैं। गाँवों की सफाई का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध है, सड़कें पक्की बन गयी हैं और रोगियों के उपचार और सेवा सुश्रूषा के लिए ऐसे सरकारी अस्पतालों की कमी नहीं हैं जहाँ बिना ख़र्च किये मुफ्त इलाज हो जाता है। दैनिक पत्रों के प्रकाशन से प्रत्येक नागरिक को अपने देश और संसार के भी नये और मुख्य मुख्य समाचार निरन्तर पढ़ने को मिलते रहते हैं। फिर सिनेमाघर में उसका मनोरंजन ही नहीं होता बल्कि उसे बड़ी उत्तम शिक्षा भी मिलती है। देश-देशान्तरों के मनुष्यों के जीवन-चित्र देख कर, उनकी रहन-सहन और आचार-विचारों का बड़ा गहरा प्रभाव उसके जीवन पर पड़ता है। इस प्रकार इस नये युग में विज्ञान के चमत्कार ने मनुष्यों के जीवन में, उनके रहन-सहन में और उनके आचार-विचार में बड़ी अभूतपूर्व क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

# अध्याय ३३

## ब्रिटिश कॉमनवैल्थ ऑव नेशन्स

### ( १६१८-३८ ई० )

ब्रिटिश-साम्राज्य एक अपूर्व राजनीतिक समष्टि—पिछली शती की भाँति इस महायुद्ध के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार अब बहुत अधिक बढ़ गया। अब इसे ब्रिटिश कामनवैल्थ ऑव नेशन्स भी कहा जाने लगा; क्योंकि ब्रिटेन का साम्राज्य प्रत्येक महाद्वीप और महासागर में फैले होने के साथ साथ इसमें काले, गोरे, पीले, भूरे सभी वर्णों के और ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम, जैन, यहूदी और पारसी इत्यादि सभी धर्मों के लोग शामिल हैं। इसका विस्तार अब ११·२५ से १३५ लाख वर्गमील और इसकी जन संख्या ३८ करोड़ की जगह ४५ करोड़ हो गयी। इस प्रकार अब सारे संसार के क्षेत्रफल का पाँचवाँ भाग और उसकी जन संख्या का एक चौथाई ब्रिटिश साम्राज्य में है। इस जन-संख्या की दो तिहाई अकेले भारतवर्ष में बसती है। संसार के इतिहास में कोई भी ऐसी विस्तृत और विभिन्न जातीय राजनीतिक समष्टि अब तक देखने में नहीं आयी।

शासन-व्यवस्था के विचार से इस साम्राज्य में मोटे हिसाब से आठ प्रकार के राज्य शामिल हैं। इनमें पहला दक्खिनी आयरलैंड या 'आयरि फ्री स्टेट' है जो ऐंग्लो-आयरि सन्धि के अनुसार ब्रिटिश कामनवैल्थ ऑव नेशन्स में शामिल तो जरूर है परन्तु जिसके विधान में कहीं भी इस सम्बन्ध का पता नहीं लगता। यहाँ तक कि इस राज्य में राजा छठे जार्ज के गद्दी पर बैठने की कोई घोषणा नहीं की गयी। आयरि फ्री स्टेट की गणना वास्तव में उपनिवेशों में नहीं की जानी चाहिए बल्कि इसे तो एक प्रकार का प्रजातन्त्र कहना चाहिए जिस का ब्रिटिश कामनवैल्थ के अन्य देशों से सहयोग तो है परन्तु जिसका उनकी भाँति ब्रिटेन से वैसा कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरे दरजे में कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और न्यूफाउलैंड और दक्खिनी आफ्रिका के स्वशासित उपनिवेश हैं। तीसरे दरजे में भारतवर्ष का नम्बर है जिसकी स्थिति सन् १६३५ के ऐक्ट के अनुसार न तो अभी उपनिवेशों के दरजे में है और न वह स्वशासित ही है। चौथे दरजे के देशों में कुछ अंशों में स्वशासित उपनिवेशों में दक्खिनी रोडीशिया और माल्टा को रखना चाहिए। पाँचवे दरजे में बरमा, लंका, साइप्रस, जमैका, हॉङ्ग-कॉङ्ग, नाइजीरिया, त्रिनिदाद, बरमुडा, बहामा, बारबडोस, जिब्राल्टर, अशान्टी और बसूटोलैंड शामिल हैं जिनको थोड़े बहुत अंशों में स्वशासन के अधिकार प्राप्त हैं। उत्तरी बोर्नियो और सरावक की गणना छठे दरजे के देशों में की

जानी चाहिए क्योंकि भारतवर्ष के देशी राज्यों की भाँति ब्रिटेन के वे रक्षित राज्य हैं। फिलिस्तीन और इराक के शासनादेश प्राप्त राज्य ( मैण्डेट ) राष्ट्र-संघ की ओर से ब्रिटेन को मिले हुए हैं और सातवें प्रकार में आते हैं। ( इराक १९३२ ई० से स्व-

तन्त्र हो गया है )। आठवें प्रकार के राज्यों में सुडान और न्यु हैब्रिडीज हैं जिन पर ब्रिटेन, मिस्र और फ्रान्स के सहयोग में शासन किये हुए हैं। इन देशों में जहाँ उप-

निवेशों को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र शासनाधिकार प्राप्त हैं वहाँ भारतवर्ष, बरमा लंका आदि ऐसे राज्य भी हैं जिनमें से किसी में आंशिक उत्तरदायी शासन है तो किसी में पूर्ण रूप से निर्वाचित व्यवस्था सभाएँ हैं अथवा किसी में अर्द्ध निर्वाचित। फिर कुछ देशों में न तो किसी प्रकार की कार्यकारिणी सभाएँ हैं और न व्यवस्थापिका सभाएँ इसी प्रकार से जहाँ कुछ राज्यों का शासन ब्रिटेन को राष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय मन्तव्य के आदेश से प्राप्त है तो कुछ ऐसे भी हैं जिन पर अभी ब्रिटेन की देखरेख में पट्टा प्राप्त कम्पिनियों का राज्य चला आता है।
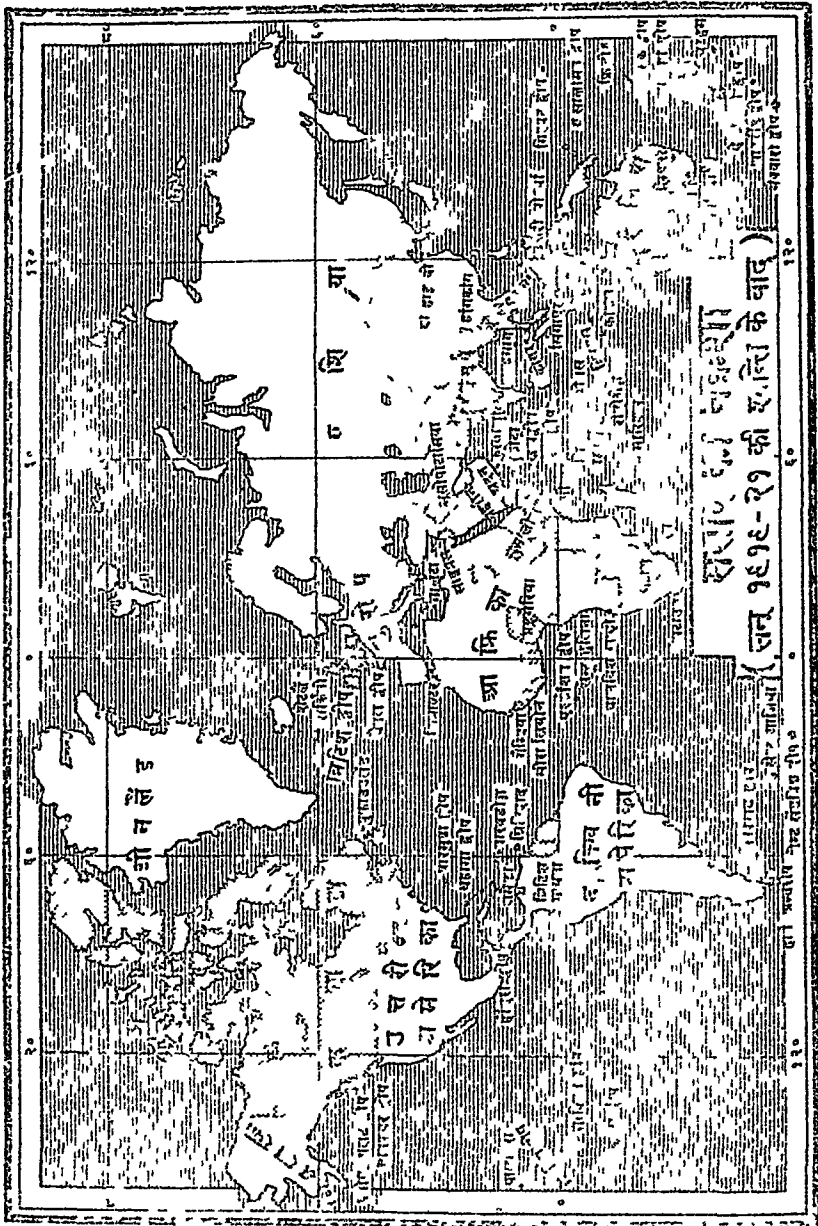
इम्पीरियल कान्फ्रेन्स और ब्रिटिश उपनिवेश—उपनिवेशों का वर्णन हम विस्तारपूर्वक कर चुके हैं। यहाँ पर केवल इतना ही उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा कि महायुद्ध के समय ब्रिटिश साम्राज्य की एकसूत्रता की दृढ़ता का ऐसा अपूर्व उदाहरण मिला जिसे संसार के इतिहास की एक बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना कहा जा सकता है। महायुद्ध के समय सब उपनिवेशों, आयरलैंड और भारतवर्ष ने ग्रेट ब्रिटेन की धन, जन और लड़ाई के साज सामान इत्यादि से अपूर्व सहायता कर अपनी राजभक्ति का अद्भुत परिचय दिया। युद्ध के समय जो युद्ध केबिनेट बना उसमें इन सब उपनिवेशों और भारतवर्ष के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। फिर वरसाई की सन्धि पर हस्ताक्षर करने राष्ट्र-संघ के स्वतन्त्र सदस्य बनने तथा लोकार्नो सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर देने की राजनीति की परिभाषा में यह अर्थ निकला कि इन देशों को अपनी विदेशी नीति निर्धारित करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है तथा किसी राष्ट्र से सन्धि करने या न करने का भी उन्हें अधिकार है। इसके बाद सन् १९२६ की इम्पीरियल कान्फ्रेन्स के एक मन्तव्य द्वारा जो ऐतिहासिक घोषणा की गयी उसे १९३१ ई० में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने 'स्टेट्यूट ऑव वेस्टमिन्स्टर' का रूप देकर उपनिवेशों के लिए मैग्नाकार्टा का महत्व प्रदान कर दिया और उपनिवेशों के प्रति अपनी उदार राजनीति का परिचय दिया।

यद्यपि इग्लैंड में रानी विक्टोरिया के राज्यकाल में ही राजनीतिक दलों के कई राजनीतिज्ञों को अपने बढ़ते हुए साम्राज्य को देखकर उसकी रक्षा, दृढ़ता और एकसूत्रता की चिन्ता होने लगी थी और इंग्लैंड में जॉन सीली और रुडियर्ड किप्लिंग जैसे साम्राज्य-रोमान्स के गायक भी उत्पन्न हो गये थे, और रानी विक्टोरिया की दोनों जुबलियों के समय साम्राज्य के विभिन्न देशों के प्रतिनिधियों के समक्ष साम्राज्य की समस्याओं की कुछ चरचा भी चली थी, फिर भी इम्पीरियल कान्फ्रेन्स का सबसे पहला इजलास सन् १९११ में हुआ। यद्यपि इस कान्फ्रेन्स को किसी प्रकार का वैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं है फिर भी इसकी बैठकों में ब्रिटिश साम्राज्य सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं पर विचार होकर सब के सलाह मशवरे से निर्णय किया जाता है और यद्यपि इस निर्णय के अनुसार काम करने का किसी देश पर बन्धन नहीं होता फिर भी इसकी महत्ता बराबर बढ़ती ही गई है और इसके मन्तव्यों को साम्राज्य सम्बन्धी, शासन में एक विशेष महत्व प्राप्त हुआ है। ऐसा ही एक महत्वपूर्ण निर्णय यह हुआ जिसमें

१९२६ ई० में इस कान्फ्रेंन्स ने ब्रिटेन और उसके उपनिवेशों का सम्बन्ध तथा उनकी राजनीतिक स्थिति को इन महत्त्वपूर्ण शब्दों में स्पष्ट कर दिया :—

'ग्रेट ब्रिटेन और उसके सब उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वयम्-सत्ता प्राप्त, बराबरी की स्थिति के राष्ट्र हैं तो अपने देश के आन्तरिक या वाह्यिक किसी भी मामले में एक दूसरे के अधीन नहीं हैं; यद्यपि ये सब ब्रिटिश राज्यसत्ता की एकसूत्रता में निष्ठा रखते और ब्रिटिश कामनवेल्थ ऑव नेशन्स के सदस्यों की हैसियत से एक दूसरे के साथ स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित हैं।'

स्टेट्यूट आव वेस्टमिन्स्टर—सन् १९३१ में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने औपनिवेशिक स्वराज्य की इस परिभाषा को सरकारी रूप से स्वीकृत ही नहीं कर लिया बल्कि इसके अतिरिक्त उपनिवेशों को और भी कई अधिकार दे दिये। इस 'स्टेट्यूट' के तीन मुख्य मन्तव्य ये हैं:—

( १ ) ब्रिटेन की राजगद्दी के उत्तराधिकार की परम्परा में यदि किसी प्रकार का परिवर्तन किया जायगा तो वह ब्रिटिश पार्लियामेन्ट और प्रत्येक उपनिवेश के पार्लियामेन्ट की स्वीकृति से ही किया जा सकेगा।

( २ ) उपनिवेशों के पार्लियामेन्टों द्वारा जो विधान स्वीकृत होंगे उन्हें ब्रिटेन के विधानों का विरोधी होने के नाम पर अस्वीकृत न किया जा सकेगा।

( ३ ) ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा स्वीकृत कोई भी विधान किसी भी उपनिवेश में प्रचलित न किया जा सकेगा जब तक कि उस उपनिवेश की पार्लियामेन्ट भी उसे स्पष्ट रूप से न मान ले।

इसके अतिरिक्त इन उपनिवेशों में ब्रिटेन के बनाए हुए ऐसे किसी भी विधान या नियम का संशोधन करना या उसे रद्द कर देना उस उपनिवेश के पार्लियामेन्ट के अधिकार में होगा। इसका अर्थ यह होता है कि इस मन्तव्य के अनुसार ( कनाडा और आस्ट्रेलिया को छोड़ कर ) किसी भी उपनिवेश को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने राज्य विधान को जो उसे ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की अनुमति से प्राप्त हुआ है संशोधित या रद्द कर दे। 'स्टेट्यूट ऑव वेस्टमिन्स्टर' के इसी मन्तव्य के अनुसार दक्खिनी आयरलैण्ड ने अपना विधान बदल कर एक प्रकार से अपने देश को ब्रिटिश उपनिवेशों की गणना से बाहर कर लिया है। फिर किसी उपनिवेश के गवर्नर-जनरल की नियुक्ति में अब राजा को अपने मन्त्रिमंडल की नहीं बल्कि उस उपनिवेश के मन्त्रियों की राय माननी आवश्यक हो गयी है। इस स्टेट्यूट द्वारा प्रत्येक उपनिवेश को यह अधिकार भी प्राप्त है कि वह चाहे तो लंडन की प्रिवी काउन्सिल को अपनी अपीलें भेजना बन्द कर दे। इस प्रकार इस 'स्टेट्यूट' के अनुसार उपनिवेशों के ऊपर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट का अब केवल वही अधिकार रह गया है जिसे वे अपनी परम्परा, अनुमति और उदारता से स्वीकार करें। ब्रिटिश साम्राज्य और ग्रेट ब्रिटेन में इस जमाने में इन

सब प्रगतियों के कारण क्या-क्या प्रमुख परिवर्तन हुए इनका उल्लेख आयरलैण्ड, मिस्र और भारतवर्ष की आधुनिक राजनीतिक परिस्थितियों से विदित हो जायगा।

महायुद्ध के बाद आयरलैंड की स्थिति—हम पढ़ चुके हैं कि एस्क्विथ लिबरल मन्त्रिमण्डल ने सन् १६११ के पार्लियामेन्ट ऐक्ट द्वारा लार्ड सभा के अधिकार कम करने के बाद १६१४ ई० में जब तीसरा 'होमरूल बिल' पास करा लिया तो सर ऐडवर्ड कार्सन के नेतृत्व में अल्स्टर ने यह धमकी दी की अगर डबलिन के पार्लियामेन्ट को अल्स्टर की प्रजा के ऊपर राज्याधिकार दिया जायगा तो वह शस्त्र धारण कर अपनी रक्षा करने को बाध्य होंगे। इसके साथ ही अल्स्टर में एक बड़ी प्रबल संस्था खड़ी की गयी और बहुत से स्वयम् सेवक तैयार होने लगे जिससे यह प्रतीत होने लगा कि आयरलैण्ड में होमरूल स्थापित होने के साथ ही खून खराबी शुरू हो जायगी। परन्तु इसी समय युरोपीय महायुद्ध छिड़ जाने के कारण दोनों दलों ने इस लड़ाई का छेड़ना उपयुक्त न समझा और अपनी सारी शक्ति से ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता करने में लग गये। इधर इस बीच में यह स्पष्ट हो गया कि यद्यपि आयरलैण्ड में ऊपर से शान्ति दिखायी पड़ती थी परन्तु भीतर ही भीतर वह जर्मनी से मिल कर विप्लव करने और आयरलैंड में प्रजातन्त्र स्थापित करने के स्वप्न देख रहा था। हजारों आयरी युवक होमरूल पार्टी का साथ न देकर 'शिनफेन' दल में सम्मिलित हो गये और आखिर सन् १६१६ में ईस्टर सोमवार के दिन विप्लवकारियों ने 'आयरी प्रजातन्त्र' का झंडा खड़ा कर दिया। यद्यपि इस विप्लव को दबा देने में अधिक समय न लगा और इसके नेताओं को फाँसी पर लटका दिया गया फिर भी आयरि असन्तोष शान्त न हो सका। आख़िर सन् १६१८ में युद्ध स्थगित होने के बाद जब इंग्लैंड में पार्लियामेन्ट के लिए ७३ शिनफेन सदस्य निर्वाचित कर उन्हें यह आदेश दिया कि वे लोग लंडन की बजाय डबलिन में आयरि पार्लियामेन्ट के इजलास में उपस्थित हों।

नया होमरूल बिल और दक्खिन आयरलैंड का विरोध—इन कार्रवाइयों से यह तो प्रत्यक्ष ही था कि न तो अल्स्टर ही और न दक्खिनी आयरलैंड इस होमरूल बिल के पक्ष में था। इसलिए सन् १६२० में लायड जार्ज ने एक नया 'होमरूल बिल' पेश किया जिसमें अल्स्टर और दक्खिनी आयरलैंड के अलग-अलग पार्लियामेन्ट बनाने की व्यवस्था की गयी थी। इसके अतिरिक्त इन दोनों पार्लियामेन्टों द्वारा निर्वाचित ४० सदस्यों की एक संघ 'फिडरल' कौन्सिल बनती जिसके सामने वही मामले पेश होते जिनको यह दोनों पार्लियामेन्ट भेजना चाहते। परन्तु इस बिल में देश की रक्षा और विदेशों से उसके सम्बन्ध के विषय से आयरलैंड का कोई अधिकार नहीं दिया गया था। इस बिल के पास होने पर अल्स्टर में तो इसके अनुसार पार्लियामेन्ट बन गयी परन्तु दक्खिनी आयरलैंड की प्रजा ने असहयोग का पक्ष ग्रहण किया। उसकी ओर से न तो पार्लियामेन्ट के सदस्य बनने के लिए कोई खड़ा होता, न कोई मुकदमा ही न्यायालय में जाता और न कोई आयरी ब्रिटिश कानून को

ही मानने को तैयार होता। बल्कि आयरलैंड की प्रजा दो आयरि प्रजातन्त्र को ही जिसका डि वैलरा प्रेसीडेन्ट चुना गया था अपना शासक मानती, उसी के नियुक्त किये हुए न्यायालयों में अपनी दाद-फ़िर्याद ले जाती और उसी के अफसरों की आज्ञा पालन करती। इस पर ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने दमन नीति की शरण ली और अपना शासनाधिकार चलाने के लिए आयरलैंड में सेनाएँ भेज कर प्रजातन्त्र के कर्मचारियों की धर पकड़ आरम्भ की। परिणाम यह हुआ कि सारे द्वीप में हलचल मच गयी और राष्ट्रीय विचारों के लोगों पर आतंक शुरू हो गया। शिनफेनों को ढूँढ-ढूँढ कर जेलों में ठूँसा जाता. उनका माल-असबाब ज़ब्त किया जाता और उनके बाल बच्चों तक को घर से निकाल बाहर किया जाता यहाँ तक कि कभी-कभी तो हत्याकांड की भी नौबत आ जाती। शिनफेनों और अँगरेजी सेनाओं की मुठभेड़ में प्रजावर्ग का भी बड़ा नुकसान होता और लूट-मार, गृहदाह और हत्या साधारण सी घटनाएँ हो गयीं।

**आयरलैंड का नया राज्य-विधान और डी वैलरा**—ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने अब समझ लिया कि अब आयरलैंड को दबाना असम्भव नहीं तो कठिन काम अवश्य है। उधर आयरि दल ने भी यह अनुभव किया कि ब्रिटेन को निकाल देना सहज नहीं है। अस्तु अँगरेज़ी मन्त्रिमंडल और डेल इरॉ या आयरि प्रजातन्त्र के कुछ सदस्यों ने मिलकर एक सन्धिपत्र तैयार किया जिसे ब्रिटेन और आयरि के पार्लियामेन्टों की स्वीकृति प्राप्त होने पर ६ दिसम्बर सन् १९२१ को उस पर हस्ताक्षर हो गये और आयरलैंड को 'आयरि फ्री स्टेट' का नाम देकर औपनिवेशिक स्वराज्य मिल गया। साथ ही उत्तरी आयरलैंड ( अल्स्टर ) को यह अधिकार दिया गया कि वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा से इस व्यवस्था से अलग हो सकेगा। डबलिन में ग्रिफिथ्स में डेल इरॉ के प्रधान की हैसियत से नयी गवर्नमेन्ट स्थापित की; परन्तु डी वैलरा ने साथ नहीं दिया और अब इन दलों में मारकाट शुरू हो गयी। इसी बीच में ग्रिफ़िथ्स का अकस्मात देहान्त हो गया और गवर्नमेन्ट सेनाओं के कमांडर माइकेल कालिन्स की हत्या कर दी गयी। कॉसग्रेव की नयी आयरि गवर्नमेन्ट ने कड़ाई से काम लेकर मारकाट को बन्द करने की व्यवस्था की और डी वैलरा दल को छुरे-छिपे अपना अस्तित्व क़ायम रखना पड़ा। १९२३ ई० में आयरलैंड राष्ट्र-संघ का सदस्य भी चुन लिया गया। आख़िर डेल के नये निर्वाचन से सन् १९२५ तक अल्स्टर और आयरि फ्री स्टेट के बीच का सीमान्त ही झगड़े का जड़ रह गया। इस बीच में कई वैधानिक संशोधन किये गये और १९२७ ई० में डी वैलरा का नया दल 'फाइना फेन' भी डेल पार्लियामेन्ट में सम्मिलित हुआ और १९३२ ई० के निर्वाचन में डी वैलरा डेल का प्रधान हो गया। अब उसे आयरलैंड को ग्रेट ब्रिटेन से स्वतन्त्र करने के अपने प्रण को पूरा करने का अवसर प्राप्त हुआ। डी वैलरा गवर्नमेन्ट ने सबसे पहले ब्रिटेन को प्रतिवर्ष दी जाने वाली उस किस्त का रुपया देना बन्द किया जो ब्रिटेन ने अँगरेज़ ज़मींदारों को देकर उनसे आयरलैंड की भूमि को मुक्त कराया था। इसके बाद और

भी कई छोटी-मोटी बातों पर झगड़ा चला जिसके कारण ब्रिटेन ने आयरलैंड की आयात पर चुंगी लगा दी और आयरि सरकार ने इसके जवाब मे अपने निर्यात पर 'बाउन्टी' या पारितोषिक देना शुरू कर दिया। फिर सन् १९४३ में आयरि डेल ने एक विधान स्वीकृत किया जिस के अनुसार डेल के सदस्यों को इंग्लैंड की राजभक्ति की शपथ लेना आवश्यक न रहा। इस बीच में इंग्लैंड और आयरि की व्यापारी तनातनी बराबर जारी रही। आखिर सन् १९३५ में समझौता हुआ और १९३६ ई० में दोनों देशों के बीच एक व्यापारी संधि हो गयी। उधर सन् १९३३ के नये निर्वाचन में डी वैलरा दल सर्वेसर्वा हो गया और इस प्रकार अपने आप को सबल पाकर डी वैलरा ने अब पहले तो फ्री स्टेट के गवर्नर जनरल की नियुक्ति में अपनी गवर्नमेन्ट का प्राधान्य मनवाया फिर आयरि डेल द्वारा स्वीकृत किसी विधान पर गवर्नर जनरल के अस्वीकृत कर देने का अधिकार हरण किया गया और इसके बाद एक विधान पास कराया जिसके अनुसार किसी आयरि नागरिक को लंडन की प्रिवी काउन्सिल में अपील ले जाने का अधिकार न रहा। अब आयरलैंड ने अपना शासन विधान बनाये और विदेशों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने का स्वतन्त्र अधिकार भी प्राप्त कर लिया। 'स्टेट्यूट ऑव वेस्टमिन्स्टर' के मन्तव्यों के अनुसार आयरलैंड की यह सब कार्रवाइयाँ वैध निर्णीत हुईं। २९ दिसम्बर १९३७ ई० को ग्रेट ब्रिटेन ने आयरलैंड की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली। मई सन् १९३८ में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार कोवेल, बेर हेविन और लफस्वेली नाम के तटवर्ती रक्षा-केन्द्र आयरलैंड को दे गये गये और उन पर से ऑंगरेजों ने अपनी सेनाएँ हटा लीं। आयरि सरकार ने पेन्शन और ऑंगरेज जमीन्दारों की क़िस्त का हिसाब चुकता कर दिया और ब्रिटेन को प्रति वर्ष १ करोड़ पौंड देना स्वीकार किया। तब ब्रिटेन ने भी आयरलैंड के माल पर से चुंगी हटा ली। 'स्टेट्यूट' की शरण लेकर डी वैलरा ने 'आयरि फ्री स्टेट' को ब्रिटिश उपनिवेशों की गणना से अलग कर लिया। इस दूसरे महायुद्ध के ज़माने में आयरि फ्री स्टेट को निरपेक्ष घोषित कर तथा ऑंगरेजी नाविक बेड़े को अपने बन्दरगाहों में न घुसने और इन बन्दरगाहों को नाविक केन्द्र न बनने देकर अब इस भावना को और भी समर्थक कर दिया गया है।

मिस्र की स्वतन्त्रता—हम पढ़ चुके हैं कि सन् १९१५ ई० में जब तुर्की ने मित्रराष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में पदार्पण किया तो ऑंगरेज़ों ने मिस्र में अपना रक्षित राज्य घोषित कर दिया और खदीवा को गद्दी से उतार कर सुलतान फुआद को शासक बनाया तथा मिस्र में स्वराज्य स्थापित करने और ब्रिटेन की छत्रछाया में मिस्र की सरकार को स्वतन्त्र बनाये रखने की इच्छा घोषित की। ब्रिटिश हाई कमिश्नर ने मिस्र की शासन व्यवस्था के लिए एक एसेम्बली और व्यवस्था काउन्सिल स्थापित की और उनमें निर्वाचित तथा मनोनीत सभासदों को जगह दी। परन्तु मिश्र के राष्ट्रीय इससे सन्तुष्ट हुए और उन्होंने अपने देश को ऑंगरेजों का रक्षित राज्य मान लेना स्वीकार न

किया। इसका परिणाम यह हुआ कि मिस्र के शासन में बराबर असन्तोष बना रहा और मिस्रियों की ओर से प्रायः अँगरेजों की प्रत्येक सद्भावना और सद्प्रयत्न को सन्देह की दृष्टि से देखा गया। युद्ध समाप्त होने पर जब पेरिस की सन्धि कान्फ्रेन्स बैठी तो मिस्र का राष्ट्रीय नेता साद जगलूल पाशा एक डेप्यूटेशन लेकर मिस्र का पक्ष उपस्थित करने के लिए वहाँ पहुँचा; परन्तु इस डेप्यूटेशन की कोई सुनवाई नहीं हुई और वरसाई की सन्धि में मिस्र को ब्रिटेन का रक्षित राज्य स्वीकार कर लिया गया। इस पर सारे देश में असन्तोष की लहर दौड़ गयी और जहाँ तहाँ अँगरेजों के विरुद्ध प्रदर्शन होने लगे। जगलूल और उग्रदल के कई प्रमुख नेताओं को देश से निकाल दिया गया परन्तु शान्ति स्थापित न हो सकी और असन्तोष बढता ही गया। आखिर देश में विप्लव की तैयारियाँ देख ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने लार्ड मिलनर की अध्यक्षता में एक जाँच कमीशन भेजा, परन्तु इसे भी कोई सफलता प्राप्त न हो सकी। अब की बार जगलूल सन् १९२० ई० में लार्ड मिलनर से परामर्श करने लंडन पहुँचा; परन्तु उसे कोई ख़ास सफलता नहीं हुई और ब्रिटिश गवर्नमेन्ट रुख में कोई सन्तोषजनक परिवर्तन न देख उसे लौट आना पड़ा। अब मिस्र में और भी प्रबल आन्दोलन शुरू हुआ जिसके कारण जगलूल को फिर देश से निकाल देना पड़ा। आखिर कोई चारा न देख ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने १९२२ ई० में यह घोषित कर दिया कि मिस्र पर उसका कोई आधिपत्य न रहेगा। इनके बाद जो सन्धि हुई उसमें स्वेज नहर पर ब्रिटेन का अधिकार स्वीकार किया गया और उसकी रक्षा के लिए अँगरेजी सेना रखना निश्चित हुआ। इसी प्रकार के और भी कई अधिकारों को छोड़कर मिस्र को स्वतन्त्र राज्य घोषित कर दिया गया। इस सन्धि के स्थापित करने के लिए मैकडनाल्ड मन्त्रि मंडल को १९२४ ई० में जगलूल को ही इंग्लैंड में बुलाना पड़ा और इस बार नये विधान के स्थापित होने पर जो देशव्यापी निर्वाचन हुआ उसमें जगलूल का वफ्द दल ही विजयी हुआ। जनवरी सन् १९२४ में जगलूल मिस्र का प्रधान मन्त्री बना; परन्तु मिस्र के सरदार सर ली स्टैक के मारे जाने पर उसे नवम्बर में पद त्याग देना पड़ा। १९२५ ई० में फिर अराजकता फैली और १९२६ ई० के निर्वाचन में फिर जगलूल और उस की पार्टी का बोल बाला रहा; परन्तु अँगरेजों ने उसे प्रधान मन्त्री न रहने दिया फिर भी ब्रिटेन के इस हस्तक्षेप के सिवाय मिस्र के शासन में मिस्रियों का ही अधिकार रहा।

१९३५ ई० में ग्रेट ब्रिटेन के वैदेशिक मन्त्री ने अपने एक व्याख्यान में कहा कि सन् १९२२ ई० का शासन विधान मिस्र के लिए उपयुक्त नहीं है। तुरन्त ही सारे देश में विद्रोह की आग भड़क उठी जिस में वहाँ के विद्यार्थियों ने प्रमुख भाग लिया। अँगरेज़ी राजदूत ने समझौते की बात उठाई तो परामर्श आरम्भ हुआ। बहुत सी अड़चनों के बाद १९३६ ई० में २० वर्ष के लिये समझौता हो गया जिसके अनुसार मिस्र देश से अँगरेज़ी सेना हटा ली गयी। अँगरेजों का स्वेज़ प्रदेश की रक्षा का विशेषाधिकार स्वीकार किया गया और उन्हें स्वेज नहर पर इस्माइलिया के निकट ११

हजार तक सेना रखने का अधिकार मिल गया। अब मिस्र भी राष्ट्र संघ का सदस्य हो गया तथा वहाँ की सरकार ने अपने देश में विदेशियों की सम्पत्ति और प्राणरक्षा का उत्तरदायित्व ले लिया। यह भी तय हुआ कि युद्ध के अवसर पर ग्रेट ब्रिटेन और मिस्र एक दूसरे का साथ देंगे। इसके अतिरिक्त अँगरेजी सरकार ने यह भी प्रयत्न करने का वचन दिया कि अन्य युरोपीय राष्ट्र इस बात से सहमत कराये जाँय कि मिस्र देश का कानून विदेशियों पर लागू हो और मिश्रित न्याय परिषदों को वहाँ की सरकार के अधीन किया जाय। ८ मई, १६३७ ई० को मान्ट्रे का समझौता हुआ जिसमें यह निश्चित हुआ कि अन्य राष्ट्र अपने विशेषाधिकार त्याग देंगे, मिश्रित न्याय परिषद १२ बरस तक और रहेगी और इस बीच में देशी कानून देशी और विदेशी दोनों प्रजाओं पर लागू होगा तथा आर्थिक विधानों में मिस्र देश की सरकार देशी और विदेशी में कोई भेदभाव न करेगी।

फिलिस्तीन और यहूदियों की समस्या—जर्मनी की बहिष्कार नीति से तंग आकर बहुत से यहूदी युरोप छोड़ कर फिलिस्तीन में आ कर बसने लगे। फिलिस्तीन के अरबों को इससे बड़ी शंका हुई और एप्रिल १६३६ ई० में उन्होंने विद्रोह कर दिया। अँगरेजी सरकार ने इस अराजकता के कारणों की जाँच करने के लिए पील कमीशन नियुक्त किया। जून १६३७ ई० में कमीशन ने अपनी विज्ञप्ति प्रकाशित की जिसमें फ़िलिस्तीन को यहूदी और अरब प्रदेशों में विभक्त करने का प्रस्ताव रखा गया। अँगरेज़ी सरकार इससे सहमत हुई। पहले तो विद्रोह शान्त हो गया, परन्तु पील कमीशन के लौटने के बाद फिर प्रज्ज्वलित हो उठा। इस कमीशन की रिपोर्ट ने अग्नि पर घी का काम किया और अरब असन्तोष बहुत उग्र रूप धारण करने लगा। जनवरी १६३८ ई० में अँगरेजी सरकार ने सर जान वुड के नेतृत्व में एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया और उसे प्रस्तुत अरबी और यहूदी प्रदेशों की सरहद निर्दिष्ट करने का काम सौंपा गया। इससे दंगा और बढ़ा, और वुडहेड कमीशन को सशस्त्र सैनिकों की संरक्षता में फिलिस्तीन का दौरा करना पड़ा। यहूदियों ने भी बदले में अरबों पर आक्रमण किये और भीषण हत्याकांड हुए। अरबों ने बैथेलहम पर अधिकार कर म्यूनिस्पैलिटी, पुलिस, डाकघर और न्यायालय की इमारतों को नष्ट कर दिया। तीन महीने तक रेल का आना-जाना बन्द रहा। अक्टूबर १६३८ ई० में जब राजधानी जेरुसलम पर भी अरब अधिकार हो जाने का भय हुआ तो अँगरेजी सेना बढ़ा दी गयी। नवम्बर सन् १६३८ में वुडहेड कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। अँगरेजी सरकार ने लंडन में फिलिस्तीन के अरब और यहूदियों तथा उनके पड़ोस के अरब राज्यों के प्रतिनिधियों की एक सभा आमन्त्रित की। बहुत दिनों तक वाद-विवाद होने के बाद मई १६३८ ई० को यह प्रकाशित किया गया कि अँगरेज़ी सरकार न फ़िलिस्तीन में अरब राज्य स्थापित करना चाहती है और न यहूदी राज्य; बल्कि वह तो फिलिस्तीन को दस बरस के अन्दर

स्वतन्त्रता देना चाहती है इन बीच के दस वरसों में फिलिस्तीन की हुकूमत अँगरेजी सलाहकारों की देख-रेख में सरकारी विभागों द्वारा होगी तथा सब विभाग हाई कमिशनर के अधीन रहेंगे। यदि दस वर्ष के बाद अँगरेजी सरकार फिलिस्तीन को स्वतंत्रता देना उचित न समझे तो वह फिलिस्तीन की जनता, राष्ट्रसंघ की काउन्सिल और पड़ोसी अरब राज्यों की राय लेने के बाद ऐसा कर सकेगी। पाँच वर्ष के बाद फिलिस्तीन में अरब जनता की अनुमति के बिना यहूदियों को आकर बसने की आज्ञा न रहेगी।

डोमीनियन ऑव कनाडा और न्यूजीलैंड—१९३१ ई० में स्टेट्यूट ऑव वेस्टमिन्स्टर के अनुसार अब कनाडा औपनिवेशिक विभाग की परिधि से मुक्त हो गया और वैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। सन् १९३३ के प्रतिनिधित्व विधान 'रिप्रिजेन्टेशन ऐक्ट' से कनाडा के पार्लिमेन्ट के सदस्यों की संख्या २४५ निर्धारित कर दी गयी और १९३४ ई० में कनाडा की सेन्ट्रल बैंक की स्थापना हुई। इससे कनाडा को अपनी अर्थनीति में भी स्वतन्त्रता मिल गयी। सन् १९२७ में वाशिंगटन में कनाडा का पहला मन्त्री नियुक्त हुआ और सन् १९३७-३८ में कनाडा ने संयुक्त राज्य अमेरिका से व्यापारी सन्धि कर उपनिवेशों के इतिहास में सबसे पहले उपनिवेशों की वैदेशिक नीति की स्वतन्त्रता का परिचय दिया। अब कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका की घनिष्ठता बढने लगी और इस दूसरे महायुद्ध के जमाने में तो यह अविच्छिन्न मैत्री का रूप धारण कर गयी। महायुद्ध आरम्भ होने पर कनाडा ने ग्रेट ब्रिटेन की हर प्रकार से सहायता करने की घोषणा की और वहाँ से सेना, गोला बारूद, हवाई जहाज, टैंक और युद्ध के अनेक शस्त्रास्त्र बनकर इंग्लैंड में आने लगे।

सन् १९३३ में 'रायल कमीशन' की रिपोर्ट के अनुसार एक विधान द्वारा न्यूजीलैंड के गवर्नर को ब्रिटिश राज्य के नाम पर व्यवस्था और अनुशासन के स्वतन्त्र अधिकार दे दिये गये। साथ ही गवर्नर को सलाह देने के लिए ६ सदस्यों का एक कमीशन नियुक्त किया गया और इसे उपनिवेश मन्त्री के प्रति उत्तरदायी ठहराया गया।

दक्खिनी आफ्रिका यूनियन कीनिया और अदन—१९३६ ई० में देसियों का प्रतिनिधित्व विधान बना जिसके अनुसार देशी प्रतिनिधि समिति की स्थापना हुई और सिनेट में उनके प्रतिनिधियों के बैठने के अधिकार मिले। इसके अतिरिक्त उन्हें दक्खिनी आफ्रिका संघ राज्य के चारों प्रान्तों की ओर से सिनेट के लिए एक-एक प्रतिनिधि निर्वाचित करने का भी अधिकार मिला। साथ ही जिन लोगों के नाम केप कालोनी की देसियों की निर्वाचक-सूची में दर्ज थे उन्हें एसेम्बली के लिए उस संख्या के अतिरिक्त जिसे वे सन् १९०९ के दक्खिनी आफ्रिका विधान के अनुसार भेजते थे तीन सदस्य और निर्वाचित करने का विशेष अधिकार मिला। १९३६ ई० के नेटिव ट्रस्ट एँड ऐक्ट के अनुसार देसियों को जमीन पर अधिकार दिलाने के लिए ११ करोड़ रुपये की मंजूरी हुई। मार्च १९३४ ई० में कीनिया में एक नवीन शासन-विधान की स्थापना हुई। गवर्नर की सहायता तथा परामर्श के लिए १२ सदस्यों की कार्यकारिणी

समिति नियुक्ति की गयी। एक व्यवस्थापिका सभा की भी सृष्टि हुई जिसमें ११ निर्वाचित युरोपीय, ५ निर्वाचित हिन्दुस्तानी, ३ अरब, ११ सरकारी पदाधिकारी और अधिक से अधिक ६ देशी मनोनीत सदस्य रक्खे गये।

अदन पहले हिन्दुस्तान की सरकार के अधीन था सन् १६३५ में यह दो भागों में विभक्त कर दिया गया और अदन संरक्षित राज्य तथा अदन उपनिवेश दोनों को अब उपनिवेश मन्त्री के अधीन कर दिया गया।

भारतवर्ष का प्रश्न—इसी बीच में भारतवर्ष में भी जो असन्तोष फैला हुआ था उसे दूर करने के लिए और देश के शासन में भारतवासियों को अधिकाधिक दायित्व प्रदान करने के विचार से अगस्त १६१७ ई० में भारत मन्त्री मान्टेग्यू ने एक महत्त्वपूर्ण मन्तव्य प्रकाशित किया जिसमें ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की ओर से यह घोषणा की गयी कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए ब्रिटिश गवर्नमेन्ट की यह निश्चित नीति है कि भारतीय की शासन-व्यवस्था के प्रत्येक विभाग में उत्तरोत्तर भाग लेने की व्यवस्था की जाय और इस देश में स्वशासन सम्बन्धी संस्थाएँ स्थापित की जायँ।" इस घोषणा को किस प्रकार और किन-किन स्थितियों में व्यवहारिक रूप दिया जा सकेगा इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये मान्टेग्यू ने भारतवर्ष का दौरा किया और तब सन् १६१६ का गवर्नमेन्ट ऑव इंडिया ऐक्ट बना जिसके अनुसार एक काउन्सिल ऑव स्टेट और व्यवस्था सभा बनी जिसको विधान बनाने और कुछ अंशों में बजट मंजूर करने के अधिकार दिये गये। प्रान्तीय शासन में 'दुअमली' चली जिसके अनुसार प्रान्तीय व्यवस्था सभा के निर्वाचित सदस्यों को कुछ विषयों पर अधिकार देकर बाकी को गवर्नर और उसकी कार्य-कारिणी के अधिकार में रक्षित रखा गया। परन्तु इसी समय राउलट कमेटी की रिपोर्ट निकली जिसके मन्तव्यों के अनुसार युद्ध के समय के भारत रक्षा विधान द्वारा प्राप्त किये हुए विशेषाधिकार स्थायी हो जाते। गान्धीजी ने इन मन्तव्यों के अनुसार स्वीकृत दोनों विधानों की शान्तपूर्ण उल्लंघन करने की घोषणा कर दी और सारे देश में उनके प्रतिवाद करने की योजना बनायी। इस पर कई जगह दंगे हो गये और अमृतसर में जनरल डायर ने जलियांवाला बाग में निहत्थे लोगों पर गोली चला दी। इसके बाद पंजाब में मार्शलला घोषित किया गया। इस पर देश भर में बड़ी हलचल मच गयी और असहयोग-ख़िलाफ़त का आन्दोलन चल गया। हजारों सत्याग्रही गिरफ़्तार हुए जिन्होंने अपनी कोई सफ़ाई नहीं दी। गान्धी जी को क़ैद कर दिया गया। आख़िर गवर्नमेन्ट की ओर से दाहने हाथ से दमन और बाएँ हाथ से शमन की नीति बरतने का प्रयास हुआ और ड्यूक ऑव कनाट ने आकर व्यवस्था सभाओं को स्थापित करते हुए भारतीयों से इस बात की अपील की कि वे पिछली बातों को भूल जायँ। परन्तु कॉंग्रेस ने इन व्यवस्था सभाओं में जाना मंजूर नहीं किया और अपना आन्दोलन जारी रखा। इस प्रकार सन् १६२० से लेकर १६२१ तक

देश में राजनीतिक आर्थिक प्रश्नों को लेकर बराबर आन्दोलन चलता रहा। उधर सन् १९२३ में स्वराज्य-दल बना जिसने व्यवस्था सभाओं में जाकर सरकारी शासन-सुधारों की पोल खोलनी शुरू की। आख़िर सरकार ने कुछ और शासन अधिकार देने के विचार से साइमन कमीशन की नियुक्ति की; परन्तु सन् १९२८ में इसके आने पर इसका बड़े ज़ोरों से बहिष्कार हुआ। आख़िर १९२९ ई० की कॉंग्रेस ने यह घोषित कर दिया कि उसका ल़क्ष्य भारतवर्ष को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र बनाना है। अब गान्धीजी ने नमक कर तोड़ने के लिए दांडी की पैदल यात्रा की और देश भर में कानून भंग करना तय हुआ। जगह-जगह लोग पकड़े गये, उन पर लाठियों की मार पड़ी और कई जगह गोलियाँ भी चलीं। गान्धीजी के गिरफ्तार होने पर कर-बन्दी का निश्चय किया गया, विदेशी कपड़े और विदेशी माल के बहिष्कार की घोषणा हुई और आन्दोलन ने बड़ा भीषण रूप धारण कर लिया। उधर गवर्नमेन्ट की ओर से आर्डिनेन्स जारी कर दमन चक्र का ज़ोर बढा। इसी बीच सरकार ने लण्डन में पहली गोलमेज़ कान्फ्रेन्स की और उसके प्रतिनिधियों के सामने प्रधान मन्त्री मेकडनाल्ड ने भारतवर्ष में संघ शासन विधान की एक टूटी फूटी रूपरेखा प्रदर्शित की जिस में सैनिक, आर्थिक और वैदेशिक मामलों को गवर्नर जनरल के हाथ में रखना और प्रान्तों को आन्तरिक शासन में पूरी स्वतन्त्रता देना निश्चित किया। इसके बाद सत्याग्रही छोड़ दिये गये और गान्धी-अर्विन समझौता हुआ जिसमें कॉंग्रेस ने संघ के ध्येय को भारत के हित के लिए प्रतिबन्धों सहित मान कर गोलमेज़ सभा में जाना मंजूर किया। परन्तु इस बीच में देश की स्थिति बराबर बिगड़ती गयी। उधर गोलमेज़ कान्फ्रेन्स में सिवाय आपसी फूट-प्रदर्शन के भारतीय नेता कुछ न कर सके और लण्डन से अपना सा मुँह लेकर लौट आये। अब मैकडनाल्ड का 'साम्प्रदायिक निर्णय' प्रकाशित हुआ। तीसरी गोलमेज़ कान्फ्रेन्स के बाद सन् १९३५ का गवर्नमेन्ट ऑव इंडिया ऐक्ट स्वीकृत हुआ जिसके अनुसार भारत के प्रान्तों को स्वतन्त्र शासनाधिकार दे कर फिर इन स्वशासित प्रान्तों और भारतीय राज्यों का संघ भारतीय सरकार बने ऐसी योजना की गयी। सन् १९३७ में इस नये विधान के अन्तर्गत प्रान्तों की व्यवस्था सभाओं के चुनाव में ११ में से ८ प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत हुआ और वहाँ गवर्नरों के विशेषाधिकार न बरते जाने का वचन मिलने पर कांग्रेस की ओर से मन्त्रिमंडल स्थापित हो गये। बरमा का प्रान्त सन् १९३७ से भारतवर्ष से अलग कर दिया गया और देशी रियासतों में भी जागृति शुरू हुई। सन् १९३५ वाले गवर्नमेन्ट ऑव इंडिया ऐक्ट का दूसरा अंश जिसमें संघ शासन स्थापित करने की व्यवस्था थी चालू न हो सका। कांग्रेस मन्त्रिमंडलों ने बड़ी लगन से काम शुरू किया। इस बीच में हिन्दू मुसलिम दंगों की समस्या जटिल रही। महायुद्ध शुरू होने पर भारतवर्ष की ओर से भी युद्ध घोषणा कर देने पर कांग्रेस मन्त्रिमंडलों ने इस्तीफ़े दे दिये, सन् ३५ का विधान स्थगित हुआ और ८ प्रान्तों का शासन गवर्नरों और उनके सलाहकारों द्वारा होने लगा।

# अध्याय ३४

## वीसवीं शती का ग्रेट ब्रिटेन ( २ )

### § १—ब्रिटेन की राजनीति तथा दल-संगठन

### ( १९३३-३९ ई० )

२०वीं शती के ग्रेट-ब्रिटेन की आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक स्थितियें तथा उन्नतियों का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। इस समय ग्रेट-ब्रिटेन संसार के सब से प्रमुख राष्ट्रों में से था जिसका साम्राज्य विश्वव्यापी हो रहा था, व्यापार और संस्कृति चरम उन्नति पर थीं और सामाजिक विकास भी बहुत असाधारण हुआ था। ग्रेट-ब्रिटेन का इस युग का इतिहास इसलिए सहज ही तीन भागों में बँट जाता है। उसकी गृह नीति, और अन्तर्राष्ट्रीय नीति और तत्सम्बन्धी घटनाएँ इन तीनों विभागों को प्रदर्शित करती हैं।

इस युग में मज़दूर दल की शक्ति का ह्रास हो गया और कंजर्वेटिव दल की प्रधानता रही। रैम्ज़े मैक्डनाल्ड, स्टैनली बाल्ड्विन नेविल गैम्बरलेन एक दूसरे के बाद प्रधान मन्त्री हुए। ये तीनों शान्ति-प्रेमी थे और सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक, हर प्रकार से ग्रेट बिटेन को समुन्नत करना चाहते थे। साम्राज्य-व्यापार में प्रोत्साहन, मजदूरों की बस्तियों की सफ़ाई, उनके लिए घर बनवाने के आयोजन, बेकार वृद्ध, विधवा और अनाथों के खर्चे के लिए साप्ताहिक वज़ीफ़े और पेन्शन की व्यवस्था, तथा शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधार इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। इनका विचार था कि इस युग में युरोपीय महायुद्ध ग्रेट ब्रिटेन की उन्नति के लिए घातक सिद्ध होगा इसलिए इन्होंने शान्ति बनाये रखने के लिए समझौते द्वारा युरोपीय महायुद्ध के रोकने का भरसक प्रयत्न किया। यही नहीं जब युरोप के अन्य राष्ट्र अपनी अधिकांश आय शस्त्रीकरण पर व्यय कर रहे थे, इन्होंने सेना संगठन की ओर बहुत कम ध्यान दिया और ब्रिटेन को अपेक्षतः निर्बल कर दिया। इस युग में इस प्रकार की गृह और वैदेशिक नीति का असामयिक, निकम्मी और असफल सिद्ध होना स्वाभाविक ही था।

मैक्डनाल्ड, बाल्डविन और चेम्बरलेन—इन तीनों प्रधान मन्त्रियों में बहुत सी बातें समानता की और विभिन्न की थीं। तीनों का जन्म एक वर्ष के अन्तर के क्रम से डिज़रैली-ग्लैडस्टन युग में हुआ था। मैकडनाल्ड १८६६ ई० में, बाल्डविन

१८६७ ई० में और चैम्बरलेन १८६६ ई० में पैदा हुए। प्रधान मन्त्री होने के समय तीनों वयोवृद्ध, लोकप्रिय तथा अनुभवी हो गये थे। तीनों हाउस ऑव कामन्स में विरोधी पक्ष के नेता रह चुके थे और वाद-विवाद में सिद्धस्थ, विचार और सिद्धान्तों में दृढ़ तथा निडर और स्वतन्त्र राष्ट्र-प्रेमी थे। तीनों की गृह नीति और वैदेशिक नीति लगभग एक सी थी। रैम्ज़े मैकडनाल्ड लूसीमाउथ नामक गाँव के एक ग़रीब मज़दूर के घर में पैदा हुआ, उसकी शिक्षा साधारण ढंग की हुई और उसने स्वावलम्बन द्वारा उच्च पद प्राप्त किया था। इसके विपरीत बाल्ड्विन और चैम्बरलेन ने धनाढ्य और सम्पन्न घरों में जन्म लिया, ग्रेट ब्रिटेन के सर्वोत्तम कालेजों और विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की और अपने पिताओं की पार्लियामेन्टी ख्याति के उत्तराधिकारी हुए इसलिए तीनों की रुचि और कार्य्य-क्षेत्रों का विभिन्न होना स्वाभाविक था। रैम्ज़े मैकडनाल्ड को मज़दूर और बेकारों की कठिनाइयों और आवश्यकताओं का व्यक्तिगत अनुभव था। उनका सुधार करने के लिए उसने पालियामेन्ट में मज़दूर दल की स्थापना की और बड़ी योग्यता के साथ दो बार मजदूर मन्त्रिमंडल के शासन की बागडोर हाथ में ली। स्टैनली बाल्डविन को आर्थिक प्रश्नों को जानने और समझने के बहुत से अवसर मिले थे। उसने २० बरस तक 'बाल्ड्विन लिमिटेड' कम्पनी का प्रबन्ध किया था। १९१७ ई० में वह ख़जाने का सहकारी मन्त्री, सन् १९२१ में बोर्ड ऑव ट्रेड का सभापति, सन् १९२२ में ख़जाने का मन्त्री और प्रधान मन्त्री तथा १९२३ ई० में दूसरी बार प्रधान मन्त्री रह चुका था। नेविल चैम्बरलेन को स्थानीय स्वराज्य और स्वास्थ्य सम्बन्धी विषयों का विशेष ज्ञान था। बर्मिंगहम सिटी काउन्सिल का सदस्य और लार्ड मेयर रह चुका था। १९१६ ई० में नैशनल सर्विस के डाइरेक्टर और १९२३ ई० में लायड् जार्ज और बाल्ड्विन् के मन्त्रिमंडलों में वह स्वास्थ्य मन्त्री रहा। रैम्ज़े मैकडनाल्ड दृढ़ साम्राज्यवादी था। इतने उच्च पद पर होते हुए भी उसने एक साधारण व्यक्ति के समान रहना श्रेयस्कर समझा। इसके विपरीत उसके दोनों समकालीनों को नये 'वादों' से एक प्रकार की चिढ़ सी थी।

**व्यापार नीति में परिवर्तन**—हम पढ़ चुके हैं कि सन् १९३१ ई० में मज़दूर मन्त्रीमंडल के सम्मुख विकट आर्थिक समस्या उपस्थित हुई। युरोपीय महायुद्ध के बाद अमेरिका और फ्रान्स में संसार का अधिकांश सोना पहुँच गया और लगभग आधे संसार में सोने की कमी हो गयी। ग्रेट ब्रिटेन में भी इस परिस्थिति के कारण लेन देन और व्यापार अव्यवस्थित हो गया। बेकारों की संख्या बढ़ कर लगभग ३ करोड़ हो गयी और सरकारी बजट में आमदनी कम और व्यय अधिक हो गया। मज़दूर मन्त्रियों का बहुमत बेकारों को खर्च देना बन्द कर बचत करने के पक्ष में न था, इसलिए उन्होंने पद त्याग कर दिया। रैम्ज़े मैकडनाल्ड के नये मन्त्रिमंडल ने बाल्डविन की मन्त्रणा से चुंगी की दर निश्चित कर दी और ग्रेटब्रिटेन के आयात पर चुंगी-कर पड़ने लगा। इससे सरकार की आमदनी बढ़ी और बजट का हिसाब ठीक हो गया। साथ

ही संसार की आर्थिक परिस्थिति सँभल जाने और पाउंड के साथ सोने का हिसाब ठीक हो जाने से निर्यात व्यापार को भी प्रोत्साहन मिला, परन्तु इससे मुक्त द्वार व्यापार की नीति का अन्त हो गया। १९३२ ई० की ओटोवा कान्फ्रेन्स ने इन्हीं सिद्धान्तों का समर्थन किया और यह निश्चित किया कि साम्राज्य के माल को प्रोत्साहन देने के विचार से कनाडा में ग्रेटब्रिटेन से आने वाले माल पर रियायती चुंगी-दर लगायी जाय। इसके बाद सन् १९३३-३६ ई० के बीच कई विधान और बने जिनके अनुसार ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा और आस्ट्रेलिया ने पारस्परिक चुंगी दर निर्णीत की और आस्ट्रेलिया में भी ग्रेटब्रिटेन से आये हुए माल पर रियायती चुंगी पड़ने लगी।

बेकारी बीमा और पेन्शन विधान—सन् १९२९ में लायड जार्ज ने बेकारों के पक्ष में आन्दोलन आरम्भ किया और बेकारी दूर करने के विषय में अपने रचनात्मक विचार प्रकट किये। कुछ समय तक तो आर्थिक कठिनाइयों के कारण अधिकारी वर्ग इस ओर ध्यान न दे सका परन्तु १९३५ ई० में एक नया बेकारी बीमा विधान बनाया गया जिसके अनुसार सरकार ने बीमा किये हुए श्रमजीवियों को साप्ताहिक ख़र्च देना आरम्भ किया। १९३६ ई० में बेकार कृषि-मजदूरों के लिए भी ऐसा ही बीमा विधान बनाया गया। इसके साथ-साथ इनकी सहायता के नियम भी बनाये गये और काम करने योग्य श्रमजीवियों को उचित सलाह और सहायता देने के लिए एक बोर्ड भी स्थापित किया गया।

अनाथ, वृद्ध और विधवा बेकारों को पेन्शन देने का विधान भी बनाया गया जिसके अनुसार बीमा कराये हुए श्रमजीवियों की विधवाओं और बाल-बच्चों को साप्ताहिक ख़र्च दिया जाने लगा। अनाथों को ७½ शिलिंग प्रति सप्ताह पेन्शन मिलने लगी। यह ख़र्च १४ वर्ष की अवस्था तक दिया जाता था। इसके अतिरिक्त बीमा किये हुए श्रमजीवियों तथा उनकी स्त्रियों को ६५ वर्ष की अवस्था से १० शिलिंग प्रति सप्ताह पेन्शन मिलने लगती और बिना बीमा किये हुए व्यक्तियों को सत्तर वर्ष की अवस्था से।

स्वास्थ्य और शिक्षा सुधार विधान—सन् १९३० के 'ग्रीनवुड ऐक्ट' द्वारा यह निश्चित हुआ कि सरकार स्थानीय अधिकारियों को मज़दूरों के लिए घर बनवाने के उपलक्ष में ४० बरस तक २ पाउंड ५ शिलिंग प्रति वर्ष मनुष्य के हिसाब से देगी। १९३३ ई० में नया विधान बनाया गया जिसके अनुसार गृह-निर्माण संस्थाएँ स्थापित की गयीं। इस वर्ष लगभग ११७६ संस्थाओं ने सरकार के सामने ५ वर्ष तक ४४ हज़ार मकान प्रति वर्ष बनवाने की योजना रक्खी। इसी वर्ष एक 'मिल्क मार्केटिंग बोर्ड' की भी स्थापना हुई और बोर्ड द्वारा निर्धारित दर से अधिक मूल्य पर दूध बेचना दंडनीय ठहराया गया। सन् १९३६ में नया शिक्षा विधान 'एजूकेशन ऐक्ट' बनाया गया जिसके अनुसार स्थानीय बोर्डों को सीनियर स्कूलों के बनवाने की कुल लगत का ७५ प्रतिशत तक देने का अधिकार दे दिया गया। स्कूल छोड़ने की अवस्था १५ वर्ष कर

दी गयी, परन्तु यदि कोई विद्यार्थी उपयुक्त काम पा जाने का प्रमाणपत्र दे तो उसे कुछ शर्तों पर १४-१५ बरस की अवस्था में भी छुट्टी मिल सकती थी। इसी वर्ष शारीरिक व्यायाम और मनोरंजन विधान भी बनाया गया जिसके अनुसार इंग्लैंड और वेल्स के लिए 'राष्ट्रीय परामर्श समितियाँ' स्थापित हुई।

बाल्डविन का तीसरा मन्त्रिमंडल—२० जनवरी सन् १९३६ ई० को सम्राट् जार्ज पंचम का स्वर्गवास हो गया। इनके बाद इनके ज्येष्ठ पुत्र युवराज एडवर्ड सम्राट् एडवर्ड अष्टम के नाम से गद्दी पर बैठे अक्टूबर १९१६ ई० में रैम्ज़े मैक्डनाल्ड ने अस्वस्थ होने के कारण इस्तीफा दे दिया और उसके स्थान में स्टैन्ली बाल्डविन प्रधान मन्त्री हुआ। नवीन मन्त्रिमंडल में रैम्ज़े मैकडनाल्ड ने लार्ड प्रेसिडेन्ट ऑव दि काउन्सिल का पद स्वीकार किया, तथा सर जान साइमन गृह-सचिव, एन्टनी ईडेन वैदेशिक मन्त्री और लार्ड ज़ेटलैंड भारत मन्त्री नियुक्त किये गये।

एडवर्ड अष्टम् का सिंहासन-त्याग तथा जार्ज षष्टम् का राज्याभिषेक ( १९३६ ई० )—१० दिसम्बर १९३६ ई० को सम्राट् एडवर्ड अष्टम् ने कुछ व्यक्तिगत कारणों से सिंहासन त्याग किया तथा ड्यूक ऑव विंडसर की उपाधि स्वीकार की। सिंहासन त्याग नियम् के अधिकार एडवर्ड की सन्तान को ग्रेट ब्रिटेन के सिंहासन पर बैठने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। इनके स्थान में इनके छोटे भाई जार्ज षष्टम् के नाम से नये सम्राट् हुए, और १९ मई १९३७ ई० को बड़े समारोह के साथ इनका राज्याभिषेक हुआ।

चैम्बरलेन का पहला मन्त्रिमंडल ( १९३७-४० ई० )—स्टैन्ली बाल्डविन स्वस्थ होने के कारण शासन की बागडोर बहुत दिनों तक न संभाल सका और लगभग आठ महीने बाद मई १९३७ ई० में उसने इस्तीफा दे दिया। उसके साथ ही रैम्जे मैकडनाल्ड ने भी लार्ड प्रेसिडेन्ट पद का त्याग दिया। नेविल चेम्बरलेन नया प्रधान मन्त्री हुआ। साइमन को ख़जाने का भार सौंपा गया और ईडेन के पद त्याग करने पर लार्ड हेलिफ़ैक्स वैदेशिक मन्त्री बनाया गया। पद-त्याग करने के बाद स्टैन्ली बाल्ड्विन् लार्ड बना दिया गया, परन्तु वह अधिक समय तक जीवित न रहा। रैम्ज़े मैकडनाल्ड ने 'अर्ल' की उपाधि अस्वीकार की और स्वास्थ्य-सुधार के लिए अमेरिका को प्रस्थान किया; परन्तु मार्ग में ही 'पैसिफिको' नामक जहाज़ पर उसकी मृत्यु हो गयी।

पेन्शन ऐक्ट और शिक्षा-सुधार—सन् १९३७ ई० के पेन्शन ऐक्ट के अनुसार ४० वर्ष की अवस्था तक के उन व्यक्तियों को पेन्शन के लिए बीमा कराने का अधिकार दे दिया गया जिनकी समस्त आमदनी ४०० पाउंड वार्षिक से अधिक न हो। स्त्रियों के सम्बन्ध में यह अधिकार २५० पाउंड वार्षिक आय के लिए था जिसमें से पैतृक या स्वयम् न कमायी हुई सम्पत्ति की आमदनी २०० पाउंड वार्षिक से अधिक

न होनी चाहिए थी। इसी वर्ष ( १६३७ ई० ) में एक नया शिक्षा विधान 'एजूकेशन ऐक्ट' बनाया गया जिसके अनुसार बहरे बच्चों को स्कूल-प्रवेश की अवस्था ७ वर्ष से घटाकर पाँच वर्ष कर दी गयी और चित्रपट द्वारा शिक्षा-प्रसार का प्रबन्ध किया गया।

ऐंग्लो-कनाडियन-ट्रेड् ऐग्रिमेन्ट—सन् १६३७ ई० में ओटोवा इम्पीरियल कान्फ्रेन्स के समझौते के स्थान में 'ऐंग्लो कनाडियन ट्रेड ऐग्रिमेन्ट' अँगरेज़ कनाडी व्यापारी समझौता हुआ जिसके अनुसार कनाडा में अँगरेज़ी निर्यात् पर रियायती चुंगी लगायी गयी और बहुत सी चीज़ों पर इसकी दर पहले से कम कर दी गयी। साथ ही कनाडा की बनी हुई कुछ वस्तुओं और खाद्य पदार्थों पर से या तो चुंगी हटा ली गयी या रियायती चुंगी लगायी गयी। इससे दोनों देशों में अधिक सुविधापूर्वक व्यापार होने लगा।

सेना का नया संगठन—३० जनवरी १६३३ ई० को चान्सलर हो जाने के बाद हिटलर ने जर्मनी में बड़े वेग से शस्त्रीकरण आरम्भ किया। इटली का एकाधिपति मुसोलिनी पहले से ही सेना संगठन में संलग्न था। अभी तक ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया था। स्ट्रेसा सम्मेलन के बाद विन्स्टन चर्चिल और कई अन्य अँगरेज़ राजनीतिज्ञों ने अँगरेज़ी सरकार की सैनिक नीति की कड़ी आलोचना की। इन बातों का यथेष्ट प्रभाव हुआ। १६३५ ई० में अँगरेज़ी सेना के यन्त्रीकरण का आयोजन किया गया। यह निश्चित हुआ कि इन यन्त्रीकृत फ़ौजों में टैंक-तोपखाना और पैदल सेनाएँ रहें। १६३६ ई० में रक्षा-विभाग के मन्त्री पद की सृष्टि हुई और उसे भी मन्त्रि-मंडल का सदस्य बनाया गया। 'इम्पीरियल डिफ़ेन्स कॉलिज' 'सप्लाई आफ़िसर्स सब कमिटी' इत्यादि उसके अधीन कर दिये गये। १६३६-३७ ई० में सेना संगठन तथा यन्त्रीकरण में और भी उन्नति हुई। हवाई सेना की समर्थक नौकरियाँ और 'रायल इञ्जिनियर्स बटेलियन' का यन्त्रीकरण पूरा किया गया और सातवीं टैंक सेना की सृष्टि हुई। १६३८ ई० में 'शाही तोपख़ाने के रेजिमेन्ट' का पुनः संगठन किया गया, मुल्की सेना में भी परिवर्तन किये गये और यह निश्चित हुआ कि उसमें दो घुड़ सवारों की फ़ौजें, १२ पैदलों के डिवीज़न और ५ हवाई हमले से रक्षक डिवीज़न रक्खे जाँय। हवाई सेना 'रायल एयर फ़ोर्स' के लिए एक इन्सपेक्टर जनरल नियुक्त किया गया। 'मैट्रोपालिटन एयर फ़ोर्स' दो विभागों में विभक्त किया गया। एक विभाग को हवा में लड़ने का काम सौंपा गया और दूसरे विभाग पर ग्रेट ब्रिटेन की स्थल-रक्षा का दायित्व।

युरोप में युद्ध की सम्भावना की आशंका अब बहुत बढ़ गयी थी सार्वजनिक शान्ति स्थापना के लिए हवाई आक्रमण रक्षा विधान 'एयर रेड् प्रिकाशन्स ऐक्ट और सर्व-साधारण सुव्यवस्था विधान 'पब्लिक आर्डर ऐक्ट' बनाये गये। इनके अनुसार

कोई अनधिकारी व्यक्ति सरकारी सेनाओं की वर्दी नहीं पहन सकता और न इन संस्थाओं के लोगों को अपने यहाँ शरण दे सकता है।

१६३८ ई० से युरोप का राजनीतिक गगनमंडल युद्ध के बादलों से आच्छादित रहा। २६ एप्रिल १६३६ को चैम्बरलेन ने युरोप में शान्ति स्थापित करने के प्रयत्नों में हताश होकर तथा युद्ध की सम्भावना निकट देखकर ग्रेट ब्रिटेन की सेना में अनिवार्य भर्ती विधान लगाना निश्चित किया। इसके अनुसार २०-२१ वर्ष का प्रत्येक युवक सेना में भर्ती होने के लिए बाध्य हो गया, परन्तु यह उसकी इच्छा पर छोड़ दिया गया कि ६ महीने की शिक्षा के बाद 'टैरिटोरियल रिज़र्व' में प्रवेश करे चाहे 'स्पेशल रिज़र्व' में।

**दूसरा विश्व-व्यापी युद्ध**—इसी बीच जर्मनी ने ३ सितम्बर, १६४० ई०, को पोलैंड पर युद्ध की घोषणा कर दी। ग्रेट ब्रिटेन ने जर्मनी को फ़ौज हटा लेने का अल्टीमेटम् दिया और उसकी अवधि के समाप्त होने पर कोई उत्तर न पाकर जर्मनी पर ३ सितम्बर की रात को ११½ बजे युद्ध की घोषणा कर दी।

## § २ ग्रेट ब्रिटेन की वैदेशिक नीति

**युरोप में फासिज्म**—सन् १६३२ ई० से युरोप में फ़ासिस्ट शक्तियों का बोल बाला रहा है। फ़ासिज्म का मूल-तन्त्र है एक दल का शासन और इसका मुख्य उद्देश्य है राष्ट्र के शासन तथा अन्य विभागों को अपने अधिकार में लाकर उसकी सामूहिक शक्ति का उपयोग। फासिज्म में पार्लियामेन्टी प्रजातन्त्रवाद के सिद्धान्तों के विपरीत, शासन विभाग को व्यवस्था विभाग पर प्रधानता दी जाती है। सन् १६३३ ई० में फ़ासिस्ट मत के प्रतिपादक अथवा अनुयायी दो प्रधान व्यक्ति थे। इटली का प्रधान मन्त्री बेनिटो मुसोलिनी जो १६२८ ई० में ट्रिपोली, सिरेनिका और लिबिया को पराजित कर इटली का सर्वेसर्वा हो गया और दूसरा जर्मनी का अडोल्फ़ हिटलर जिसने १६२५ ई० में नाज़ी दल का संगठन किया और ३० जनवरी १६३३ को जर्मनी का चान्सलर निर्वाचित होकर "फ़ूहरर" अर्थात् राष्ट्रीय नेता की उपाधि ग्रहण की।

**बाल्डविन और चैम्बरलेन की वैदेशिक नीति**—इस युग में ग्रेट-ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों की वैदेशिक नीति अत्यन्त असामयिक तथा असफल सिद्ध हुई। प्रधान मन्त्री बाल्डविन ( १६२०-३७ ई० ) ग्रेट ब्रिटेन को अन्तर-राष्ट्रीय झंझटों में फँसाना नहीं चाहता था। उसे भय था कि इससे देश की शान्ति भंग हो जायगी और वहाँ का कारोबार समुन्नत न हो सकेगा। उसके उत्तराधिकारी चैम्बरलेन ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। अँगरेजों के जान-माल और हितों की रक्षा करना, देश में शान्ति रखना, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शान्तिपूर्वक सुलझाना, विदेशों से मित्रभाव बढ़ाना इत्यादि उनकी नीति के मुख्य अंग थे। उन्होंने भरसक प्रयत्न किया कि युरोप में विश्व-व्यापी युद्ध न हो। अपने इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए चैम्बरलेन ने निश्चय

किया कि किसी राष्ट्र की आन्तरिक समस्याओं अथवा गृह-युद्ध में कोई अन्य राष्ट्र हस्तक्षेप न करे और यदि कोई शक्तिशाली राष्ट्र शक्तिहीन राष्ट्र के राज्य का कुछ भाग लेकर सन्तुष्ट हो जाय और युद्धकी ओर अग्रसर न हो तो उसे यह प्रदेश दिला दिया जाय। इस प्रशमन नीति का परिणाम बड़ा हानिकारक हुआ क्योंकि हिटलर और मुसोलिनी शस्त्रीकरण और सैन्य-संगठन द्वारा युरोप में अपना आतंक स्थापित करने पर तुले हुए थे और वरसाई की सन्धि की शर्तों को तोड़ना, छोटे-छोटे राज्यों को समाप्त कर अपने राज्यों को विस्तृत करना, फ़ासिज्म का प्रचार करना, युरोप में अँगरेज़ी प्रभुत्व को क्षीण कर देना और रूमसागर को इटली की झील बना देना, वे अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। ऐसी परिस्थिति में सब से अधिक भय फ्रान्स को था इसलिए वह इंगलैंड और रूस की सहायता का आकांक्षी बना और उसने जर्मनी के शत्रु रूस के साथ एक सहायक सन्धि कर ली। ग्रेट ब्रिटेन जर्मनी को असन्तुष्ट करना नहीं चाहता था। इसके अतिरिक्त उसको न तो रूस के बोल्शेविज़्म सिद्धान्तों के साथ सहानुभूति थी न वह चाहता था कि इन विचारों का युरोप में प्रचार हो। उधर १६३५ ई० में सार-प्रदेश पर जर्मन अधिकार होने के बाद फ्रान्स ने ग्रेट ब्रिटेन से मित्रता करनी चाही, परन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने उसकी ओर ध्यान न देकर जर्मनी से सामुद्रिक-सन्धि कर ली। १६३६ ई० में फिर राइन पर जर्मन अधिकार हो जाने के बाद भी ऐसा ही हुआ, परन्तु बाद में जर्मन आकांक्षाओं से सजग होकर दोनों राष्ट्रों ने पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता समझी और एप्रिल १६३८ ई० में फ्रान्स और ग्रेट ब्रिटेन ने सहायक सन्धि पर हस्ताक्षर किये तथा स्पेन और चैकोस्लोवाकिया में मिल कर कार्य्य करने का निश्चय किया। इसके दो महीने बाद पारस्परिक मित्रता बढ़ाने के लिए ग्रेट ब्रिटेन के सम्राट और सम्राज्ञी पेरिस पधारे।

इस समय इटली और जर्मनी की घनिष्ठता बढ़ने लगी। २५ सितम्बर १६३७ ई० को मुसोलिनी ने जर्मनी की यात्रा की जहाँ उसकी बड़ी आवभगत हुई। नवम्बर १६३७ ई० में उसने कामिन्टर्न विरोधी सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस प्रकार ग्रेट ब्रिटेन तथा अन्य प्रजातन्त्र राज्यों के विरोध के लिए इटली, जर्मनी और जापान का नया गुट्ट बन गया। उधर तुर्की के सर्वेसर्वा मुस्तफ़ा कमाल पाशा की मृत्यु हो गयी। इसके कुछ समय बाद जर्मनी ने ज़ेकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता का अन्त कर दिया। जर्मनी और इटली की भावी महत्वाकांक्षाओं के विरुद्ध अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स ने तुर्की के साथ अक्टूबर १६३८ ई० में सन्धि कर ली जिसके अनुसार राष्ट्रों ने विदेशी आक्रमण के अवसर पर एक दूसरे की सहायता करने का वचन दिया। यह भी तय हुआ कि यदि ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स को यूनान और रूमानिया की सहायता करने के कारण युद्ध करना पड़े तो तुर्की उनके साथ सहयोग करेगा।

**ग्रेट ब्रिटेन और इटली**—इधर इटली की दृष्टि ऐबिसीनिया के राज्य पर लगी

हुई थी। जनवरी १९३५ ई० में ऐबिसीनिया ने जब इस बात की सूचना राष्ट्र संघ को दी तो ग्रेट ब्रिटेन ने समझौता करवा देना उचित समझा। जून १९३५ को वैदेशिक मन्त्री एन्टनी ईडेन मुसोलिनी से परामर्श करने के लिए रोम गया और उसने इटली को ऐबिसीनिया के राज्य का एक भाग देना स्वीकार कर लिया और ऐबिसीनिया को ब्रिटिश सुमालीलैंड का कुछ भाग देकर उसकी क्षति पूर्त करनी चाही। परन्तु मुसोलिनी ने इससे सन्तुष्ट न होकर, ऐबिसीनिया पर १९३६ ई० में आक्रमण कर दिया। राष्ट्र-संघ ने प्रतिबन्ध लगाने की नीति का प्रयोग किया और ५० देशों ने इटली को धन, शस्त्रास्त्र, बना हुआ माल, लोहा, और कोयला देना बन्द कर दिया, परन्तु पेट्रोल पर रोक न लगी और इटली की पेट्रोल की माँग पूरी होती रही। मई १९३८ ई० में यह युद्ध समाप्त हुआ और ऐबिसीनिया इटली साम्राज्य का एक भाग हो गया।

इस विजय का परिणाम यह हुआ कि मुसोलिनी और हिटलर को वरसाई की सन्धि की शर्तों और राष्ट्र-संघ के नियमों की अवहेलना करने के लिए अधिकाधिक प्रोत्साहन मिला। दूसरे प्रतिबन्धों की नीति ने ग्रेट ब्रिटेन और इटली के बीच वैमनस्य का बीज बो दिया। सम्राट जार्ज षष्ठम के राज्याभिषेक के उत्सव में ऐबिसीनिया के राजा भी आमन्त्रित किये गये इसमें यह मनोमालिन्य और बढ़ा। अब इटली के रेडियो से अरब देशों में अँगरेज विरोधी विचारों का प्रचार होने लगा। इससे शंकित होकर बाल्डविन मन्त्रिमंडल ने इटली से भलमनसी का समझौता किया। इसके अनुसार दोनों देशों में पारस्परिक विरोध न करने और रूमसागर में एक दूसरे के अधिकारों की रक्षा करने की शर्तें पक्की हुईं। यह भी तय हुआ कि इटली अरब देशों में अँगरेज-विरोधी विचारों का प्रचार और स्पेन में कोई विशेष अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा न करेगा। स्पेन से अपनी सब सेना वापिस बुला लेगा और स्पेन के गृह-युद्ध का निपटारा हो जाने के बाद ग्रेट ब्रिटेन ऐबिसीनिया पर इटली का अधिकार स्वीकार कर लेगा। परन्तु इस समझौते का कोई विशेष प्रभाव न हुआ और ग्रेट ब्रिटेन और इटली का मनोमालिन्य ज्यों का त्यों बना रहा। उधर स्पेन का गृह युद्ध भयंकर रूप धारण कर रहा था। १५ अक्टूबर १९३८ ई० को इटली ने नाम के लिए अपने १० हजार सैनिक वापिस बुला लिये, परन्तु विद्रोहियों को पहले की तरह सहायता मिलती ही जा रही थी। आखिर १९३९ के आरम्भ में चैम्बरलेन और लार्ड हेलिफ़ैक्स रोम गये जहाँ के सम्राट विक्टर इमैनुएल, मुसोलिनी और पोप से मिले। परन्तु इससे भी कोई लाभ न हुआ बल्कि उलटा ग्रेट ब्रिटेन में चैम्बरलेन की वैदेशिक नीति में असन्तोष फैलने लगा।

ग्रेट ब्रिटेन ने अभी ऐबिसीनिया पर इटली का अधिकार स्वीकार नहीं किया था। इस मसले को तय करने के लिए मुसोलिनी ने ग्रेट ब्रिटेन से समझौते की बात उठायी। एकाधिपति-राष्ट्रों को हर प्रकार सन्तुष्ट करने वाला चैम्बरलेन इस समझौते के लिए तैयार हो गया, परन्तु ईडेन् ने इसका विरोध किया उसने कहा, 'इटली की

सेनाएँ स्पेन भेजी गयीं, रूम सागर में दुर्घटनाएँ हुईं और इटली की सेना के पराक्रम और विजय के गीत गाये गये। फिर भी हमने कोई आपत्ति नहीं की; परन्तु समझौते तो धमकी द्वारा नहीं होते, उनके लिये शान्ति और एक दूसरे पर विश्वास का वातावरण होना चाहिए। परन्तु उनकी बात न मानी गयी। इस मतभेद के कारण उसने २० फ़रवरी, १९३८ ई० को पद त्याग कर दिया।

स्पेन का गृह-युद्ध—ऐबिसीनिया विजय होने के एक महीने बाद स्पेन में गृह-युद्ध का आरम्भ हो गया। हिटलर और मुसोलिनी को अपना प्रभुत्व बढ़ाने का यह अनमोल अवसर मिला और वे विद्रोहियों को गुप्त सहायता देने लगे। ग्रेट ब्रिटेन को भय हुआ कि कहीं यह गृह-युद्ध विश्व-व्यापी युद्ध का रूप न धारण कर ले, इसलिए मार्च १९३७ ई० में एक अन्तर्राष्ट्रीय 'अहस्तक्षेप समिति' की बैठक लंडन में हुई जिसमें यह निश्चित हुआ कि अन्तर्राष्ट्रीय सेना का पहरा लगाकर स्पेन में स्थल और जल मार्ग में विदेशी वालन्टियरों का जाना बन्द कर दिया जाय। परन्तु जून १९३७ में स्पेन सरकार के एक उड़ाके ने किसी कारण से जर्मनी के एक पहरा देने वाले जंगी जहाज़ पर बम गिरा दिया और एक जर्मन क्रूज़र पर तारपीडो चलायी। इस पर जर्मन और इटली ने इस योजना से हाथ खींच लिया और वह निष्फल हुई। अब बड़ी कठिन परिस्थिति उपस्थित हो गयी। रूम सागर में कई अज्ञात पनडुब्बियों ने कई अँगरेज़ी और फ्रान्सीसी जहाजों को डुबो दिया। इस पर ग्रेट ब्रिटेन ने नियान कान्फ्रेन्स में रूस, फ्रान्स, जर्मन और इटली के प्रतिनिधियों को आमन्त्रित किया; परन्तु रूस के साथ तनातनी होने के कारण इटली ने इस कान्फ्रेन्स में भाग न लिया। फिर भी नियान के समझौते के अनुसार रूम सागर के विभिन्न भागों की देख-रेख का काम भिन्न भिन्न राष्ट्रों के जहाज़ी बेड़ों को सौंप दिया गया। इसका यथेष्ट प्रभाव हुआ और पनडुब्बियों के आक्रमण बन्द हो गये। आख़िर लगभग ३ बरस बाद युद्ध समाप्त हुआ और जनरल फ्रैंको स्पेन का एकाधिपति बना। ग्रेट ब्रिटेन ने भी स्पेन की नयी सरकार को स्वीकार कर लिया।

ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी—उधर जर्मनी के चान्सलर ऑडोल्फ़ हिटलर शासन के सामने चार समस्याएँ उपस्थिति थीं—निःशस्त्र किये हुए राइन प्रदेश पर पुनः अधिकार करना, आस्ट्रिया को जर्मनी से मिल जाने की स्वतन्त्रता होना, डैन्जिग और उसके अभ्यन्तर प्रदेश का प्रश्न और जर्मनी के छिने हुए उपनिवेशों की वापिसी—इसलिए वह वरसाई सन्धि की अन्यायपूर्ण शर्तों को तोड़ने पर तुला हुआ था। उसने साढ़े पाँच लाख सैनिकों की सेना संगठित करने के लिए जर्मनी में अनिवार्य भर्ती का नियम लगाया। मुसोलिनी ने भी उसी प्रकार सन् १९११ ई० तक के रिज़र्व सैनिकों को पुनः शस्त्र ग्रहण करने के लिए आमन्त्रित किया। इससे ग्रेट ब्रिटेन का तत्कालीन मन्त्रिमंडल चिन्तित हो उठा। वैदेशिक मन्त्री सर जान साइमन हिटलर से मन्त्रणा करने के लिए बर्लिन गया। हिटलर किसी देश पर अकारण आक्रमण और

आस्ट्रिया में हस्तक्षेप न करने के समझौते पर हस्ताक्षर करने को तैयार हो गया। परन्तु इसके बदले में उसने अपनी हवाई सेना ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स के बराबर करने तथा अन्य युरोपीय राष्ट्रों के बराबर ही अपने देश की सैनिक शक्ति घटाने और राष्ट्र संघ के सदस्य बनाये जाने की माँग पेश की। इसके बाद फ्रान्स, ग्रेट ब्रिटेन और इटली के प्रतिनिधि स्ट्रेसा में उपस्थित हुए और यह निश्चय हुआ कि राष्ट्र संघ और वरसाई की अवहेलना करने वाले को राष्ट्र का दोषी ठहराया जाय। जर्मनों ने इस फैसले का विरोध किया और सैन्य-संगठन जारी रखा।

सार प्रदेश पर जर्मन कब्जा—जनवरी सन् १९३५ में हिटलर ने सार प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया और वहाँ के लोकमत की अनुमति लेने के बाद उसे जर्मन राज्य में मिला लिया। फ्रान्स ने विवश होकर अँगरेज़ों से सहायता माँगी, परन्तु अँगरेजों ने उस पर ध्यान न देकर जर्मनी के साथ जून सन् १९३५ में एक जहाजी सन्धि कर ली जिसमें जर्मनी का जहाजी बेड़ा बनाने का अधिकार इस शर्त पर स्वीकार किया गया कि उसकी शक्ति अँगरेज़ी जहाजी बेड़े की तिहाई रहे। इस पर पार्लियामेन्ट में चर्चिल ने ब्रिटिश सरकार की इस नीति की तीव्र आलोचना करते हुए बताया कि जर्मनी के पास अँगरेज़ों से तिगुने हवाई जहाज़ हैं और जर्मनी के शस्त्रास्त्र अधिक उन्नत और वैज्ञानिक हैं। इस पर प्रधान मन्त्री ने अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा शस्त्रीकरण को नियन्त्रित कराने का आश्वासन दिया। दिसम्बर सन् १९३५ ई० में लण्डन में जहाज़ी कान्फ्रेन्स आरम्भ हुई। इस सभा ने जहाजों का वजन और उनकी बन्दूकों की शक्ति नियत कर दी। यह भी तय हुआ कि हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र वर्ष के आरम्भ में एक दूसरे को इस बात की सूचना दे देंगे कि वे उस वर्ष कितने नये जंगी जहाज बनायेंगे तथा उनकी लम्बाई चौड़ाई, चाल इत्यादि क्या होगी, और सूचना देने के बाद इनमें कोई परिवर्तन न करेंगे।

राइन-प्रदेश और आस्ट्रिया पर अधिकार—हिटलर तो पहले से ही राइन-प्रदेश पर अधिकार प्राप्त करने को तैयार था। जब युरोप भर के राष्ट्रों का ध्यान ऐबिसीनिया की ओर आकृष्ट था, हिटरल ने जर्मन सेनाएँ राइन में उतार दीं और उस पर अधिकार कर लिया। इटली की ऐबिसीनिया-विजय, प्रतिबन्ध नीति की असफलता, 'सार' और 'राइन' में जर्मनी की सफलता, और शान्ति-प्रिय अँगरेज़ी वैदेशिक नीति ने हिटलर को और प्रोत्साहित किया। जनवरी १९३७ ई० में उसने कील नहर को और तंग कर दिया और इसके कुछ दिनों बाद जर्मनी के रेल-पथ और बैंकों पर से अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार हटा दिया। साथ ही उसने यह भी अस्वीकार किया कि सन् १९१४-१८ ई० के महायुद्ध का उत्तरदायित्व जर्मनी पर है। उसी दिन हिटलर ने यह भी कहा कि हम अपने घने बसे हुए देश से अपने उपनिवेशों की माँग सदा और निरन्तर उठाते रहेंगे। अब ग्रेट ब्रिटेन और जर्मनी के बीच मनोमालिन्य बढ़ने लगा। जर्मनी में अँगरेज़ी राजदूत हैंडरसन ने पारस्परिक मित्रता की अपील की। जर्मन वैदे-

शिक मन्त्री वैरन फ़ान न्यूरथ लण्डन जाने के लिए तैयार हुआ परन्तु इसके पूर्व ही एक दुर्घटना हो गयी। ६, अगस्त १६३७ ई० को कुछ कारणों से ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने जर्मन सम्वाददाताओं को अपने देश से चले जाने की आज्ञा निकाली। जर्मन सरकार ने भी इसके उत्तर में टाइम्स के सम्वाददाता को जर्मनी से निकाल दिया और राष्ट्र संघ की कार्रवाई में भाग लेने से इनकार कर दिया। इस प्रकार दोनों देशों में फिर तनातनी शुरू हो गयी। नवम्बर सन् ११३७ में लार्ड हेलिफेक्स आरवेट प्रदर्शित में सम्मिलित होने के लिए बर्लिन गया। वहाँ उसने हिटलर तथा अन्य जर्मन नेताओं से मिल कर पारस्परिक मतभेद को सुलझाने का भरसक प्रयत्न किया। एप्रिल सन् १६३८ ई० में नाजी क्रान्ति के पूर्व से ही आस्ट्रिया जर्मनी से मिल जाने को तैयार था। आस्ट्रिया की सरकार लोकप्रिय न थी और इटली के सहारे पर रुकी हुई थी। जर्मनी के सामने इटली की कमज़ोरी ने आस्ट्रिया का भाग्य निर्णय कर दिया और १० एप्रिल को आस्ट्रिया जर्मन राईख़ में सम्मिलित हो गया।

चैकोस्लोवाकिया की समस्या—सन् १६१८ ई० की वारसाई की सन्धि में बोहेमिया, मोरेविया, स्लोवाकिया, साइलीशिया और रूथेनिया को मिला कर चैकोस्लोवाकिया नामक राज्य का निर्माण किया गया था। १ करोड़ ४० लाख की जन-संख्या में चैकों के अतिरिक्त स्लोवाक, जर्मन, मग्यार, रूथेनियन, पोल और यहूदी भी थे। जर्मन प्रजा के दो तिहाई लोग सूडेटिन दल के सदस्य थे जिसके नेता हेनलिन् के साथ जर्मनी की सहानुभूति थी। इस दल ने स्वराज्य के लिए आग्रह किया। इसी बीच १७ जून, सन् १६३८ को एक जर्मन नागरिक के साथ चैकोस्लोवाकिया की एक जेल में दुर्व्यवहार किया गया और इसके दो महीने बाद १७ अक्टूबर को सूडेटिन दल के कुछ डिप्टी पकड़ लिये गये। इससे जर्मनी में विरोध की आग भड़की और सूडेटिन दल के आन्दोलन ने और ज़ोर पकड़ा। इसके साथ-साथ स्लोवाकिया में भी स्वराज्य का आन्दोलन आरम्भ हुआ।

रूस और फ्रान्स ने चैकोस्लोवाकिया की सरकार को सहायता देने का आश्वासन दिया। इसके विरुद्ध पोलैंड और जर्मनी चैकोस्लोवाकिया के अल्पसंख्यकों को प्रोत्साहित करते रहे। चैक सरकार ने शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। ५ मार्च सन् १६३८ ई० को प्रेसिडेन्ट बेनिज़ ने अल्पसंख्यकों को विशेषाधिकार देने का वचन दिया; परन्तु संघ राज्य स्थापित करने की उनकी सलाह को अस्वीकार किया। २८ मार्च को उसने इन विशेषाधिकारों को विधान में शामिल कर दिया। इससे सन्तुष्ट न होकर हेनलिन् ने आठ माँगें प्रतिपादित कीं जिनमें जर्मन और चैकों के अधिकारों की समानता, जर्मन बहुमत के प्रदेशों में स्वराज्य तथा उनमें केवल जर्मन राजकर्मचारियों की नियुक्ति, जर्मन राष्ट्रीयता मानने और जर्मन विचार रखने की स्वतन्त्रता आदि प्रमुख थे। चैक-सरकार ने इस मन्तव्य को अस्वीकार किया।

इसके बाद आन्दोलन अराजकता का रूप धारण करने लगा। १८ मई सन्

१६३८ को हेनलिन् हिटलर से मिला और जर्मन सेना चैक-राज्य की जर्मन सीमा पर लगा दी गयी। २०-२१ मई को चैक-सरकार ने भी अपनी कुछ सेना चैक सीमा पर लगा दी। ग्रेट ब्रिटेन ने जर्मनी और चैकोस्लोवाकिया में किसी प्रकार शान्तिपूर्ण समझौता करा दिया, परन्तु जर्मनी के समाचार-पत्रों ने इस अँगरेजी हस्तक्षेप की कड़ी आलोचना की और बताया कि जर्मनी का उद्देश्य चैकोस्लोवाकिया पर आक्रमण करने का न था। इस समझौते से भी ये मामले न सुलझ सके। ४ जून १६३८ को स्लोवाकिया ने फिर अपनी स्वतन्त्रता की माँग उठायी। इसके दूसरे ही दिन चैक सरकार ने इस आशय की विज्ञप्ति प्रकाशित की कि चैकोस्लोवाकिया में अल्पमतों को उनकी जनसंख्या के अनुसार सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व मिलेगा, उनकी राष्ट्रीयता की रक्षा की जायगी और उनके बहुमत प्रदेशों में उन्हीं की राष्ट्रीयता के राजकर्मचारी नियुक्त होंगे तथा 'कैंटन' शासन के समान शासनपद्धति की स्थापना होगी। परन्तु हेनलिन अब भी असन्तुष्ट रहा। १४ जुलाई १६३६ ई० को उसने अब १४ मार्गें पेश की। इनका उद्देश्य था चैकोस्लोवाकिया की प्रजातन्त्र-शासन-पद्धति को संघ शासन पद्धति में बदल देना। परन्तु चैक सरकार ने इन माँगों को अस्वीकार कर दिया। इसके बाद हेनलिन से परामर्श करने के बाद १२ सितम्बर १६३८ को हिटलर ने अपने भाषण में सूडेटिनों की माँगों को दोहराया और उन्हें हर प्रकार की मदद देने का आश्वासन दिया। इसके उत्तर में चैक सरकार ने अपने देश में *'मार्शल ला'* लगा दिया और सूडेटिनों के विरुद्ध कड़े नियम बनाये। इस पर हेनलिन ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि अब जर्मन चैक राज्य में नहीं रह सकते।

म्यूनिख समझौता—चेम्बरलेन ने परिस्थिति को सँभालने का भरसक प्रयत्न किया। उसने पहले तो लार्ड रन्सीमैन को इस विषय की जाँच करने के लिए चैकोस्लोवाकिया भेजा, परन्तु बाद में हिटलर के भाषण से सशंक होकर वह १५ सितम्बर १६३८ ई० को परामर्श करने के लिए स्वयम् बर्शटेजगेडेन गया। यहाँ हिटलर ने उसके सामने चैकोस्लोवाकिया के जर्मन-बहुसंख्यक प्रदेशों को जर्मनी में मिला लेने का प्रस्ताव रक्खा। चेम्बरलेन हिटलर से लड़ना और युरोप में महायुद्ध करना नहीं चाहता था। ब्रिटेन की सहायता के बिना फ्रान्स भी जर्मनी से टक्कर लेने को तैयार नहीं था, यद्यपि वह चैक सरकार को जर्मनी के विरुद्ध सहायता देने का बचन दे चुका था इसलिए १६ सितम्बर, १६३८ ई० को ब्रिटेन और फ्रान्स की सरकारों ने चैक सरकार से आग्रह किया कि वह अपने राज्य के जर्मन बहुसंख्यक प्रदेशों को जर्मनी को अर्पित कर दे। इसके बदले में उन्होंने उसके बचे हुए राज्य की रक्षा करने का वचन दिया। बरबस चैक सरकार को यह स्वीकार करना पड़ा। परन्तु हिटलर ने इस से भी अधिक भाग पर अधिकार माँगा और पहली अक्टूबर इस माँग की पूर्त्ति की अन्तिम तिथि निर्धारित की। चैक सरकार ने इसे अस्वीकार किया और सेना संचालन शुरू कर दिया। २२ सितम्बर को चेम्बरलेन हिटलर को समझाने के लिए फिर जर्मनी गया

परन्तु असफल रहा। तब उसने मुसोलिनी से बातचीत की जिसके फल-स्वरूप हिटलर ने फ्रान्स, ग्रेट ब्रिटेन और इटली के प्रधान मन्त्रियों को म्यूनिख में बातचीत करने के लिए निमन्त्रण दिया। ३० सितम्बर को इनकी सभा हुई। इन लोगों ने यह निश्चित किया कि पहली अक्टूबर की अवधि सीमा बढ़ा दी जाय, जर्मनी और चैकोस्लोवाकिया की सीमा को निर्धारित करने का काम एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् को सौंपा जाय जिसकी बैठक बर्लिन में हो। चैक सरकार ने स्लोवाकिया और लिथुएनिया को स्वतन्त्रता देना तथा पोलैंड को टेशेन देना स्वीकार किया साथ ही हिटलर और चेम्बरलेन ने इस घोषणा पर हस्ताक्षर किये कि दोनों देशों के भावी मतभेद शान्तिमय समझौता द्वारा सुलझाये जायेंगे।

परन्तु म्यूनिख के इस समझौते ने चैक समस्याओं को और उलझा दिये। अब चैक राज्य के मामलों में जर्मनी पहले से भी अधिक हस्तक्षेप करने लगा। जर्मन सरकार चाहती थी कि नैशनल सोशलिस्ट जर्मनी और चैकोस्लोवाकिया के सांस्कृतिक और राजनीतिक सिद्धान्तों में सामञ्जस्य रहे। दूसरे जर्मनी स्लोवाकिया में पूर्ण स्वतन्त्रता के आन्दोलन को भी प्रोत्साहित कर रहा था लिथुएनिया में देश प्रेम की भावना फैला रहा था। साथ ही चैकोस्लोवाकिया के बचे खुचे जर्मन अल्पसंख्यकों ने नये विशेषाधिकार प्राप्त करने की मांग उठायी। चैक सरकार ने स्लोवाकिया और लिथुएनिया में आन्दोलनों का दमन करना चाहा, परन्तु जर्मनी की खुल्लमखुल्ला सहायता के सामने वह कुछ न कर सकी। मोरेविया के जर्मनों पर चैक अत्याचार और जर्मनी पर चैक आक्रमण की सम्भावना की खबरें आग की तरह फैलीं। चैक प्रेसीडेन्ट डाक्टर हाश बर्लिन आमन्त्रित किया गया जहाँ उसे १४ मार्च, १९३९ ई० को इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने पड़े कि बोहीमिया और मोरेविया में जर्मनी का संरक्षक राज्य स्थापित हो। दूसरे दिन हिटलर ने प्राहा में प्रवेश किया और इस प्रकार चैकोस्लोवाकिया की स्वतन्त्रता का अन्त हुआ।

राष्ट्र-संघ का ह्रास (१९३३-३९ ई०)—इस ज़माने में राष्ट्र-संघ का ह्रास हुआ। युरोपीय राष्ट्रों का राष्ट्र-संघ से मतलब का नाता था। अपने मतलब को सिद्ध होते न देख कर उन्होंने राष्ट्र-संघ से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। संघ की असफलता के चार मुख्य कारण हैं। १९१९ ई० में राष्ट्र-संघ का विधान वरसाई की सन्धि का एक अंग बना दिया जाने से इसको विजयी राष्ट्रों के पक्ष को दीर्घजीवी करने का साधन समझा जाता। फिर जर्मनी को यह कहने का बहाना मिल गया कि अपने साम्राज्यों को सुरक्षित रखने के लिए विजयी राष्ट्रों ने राष्ट्र संघ की सृष्टि की थी। दूसरे राष्ट्र-संघ का इस समय का रूप इस बात का द्योतक था कि अँगरेज़ फ्रान्सीसी गुट छोटे राष्ट्रों की रक्षा करने और सब राष्ट्रों की शक्ति को बराबर रखने के बहाने युरोप में अपना बोलबाला रखना चाहता था। तीसरे राष्ट्र-संघ का विधान् प्रजातन्त्र अथवा पार्लियामेन्टी सिद्धान्तों के आधार पर बना था जो फासिस्ट शक्तियों को

खटकता था। चौथे राष्ट्रसंघ के पास कोई सैनिक शक्ति नहीं थी इसलिए उसके अनु- शासन की अवज्ञा करना बहुत सहल था। मार्च १९३३ ई० में जापान ने राष्ट्र-संघ की पूरबी एशिया की नीति के विरोध में उसकी सदस्यता से इस्तीफा दिया इसी बीच जर्मनी ने भी सात वर्ष की सदस्यता के बाद राष्ट्र संघ से विदा ले ली—यद्यपि उसके पक्ष में वरसाई की सन्धि का संशोधन करने का प्रयत्न हो रहा था। १९३४ ई० में जापान और जर्मनी की मित्रता से शंकित होकर रूस राष्ट्र संघ का सदस्य बन गया परन्तु फिनलैंड पर आक्रमण करने पर सन् १९३८ में उसे संघ से निकाल दिया गया फिर १९३७ ई० में इटली ने प्रतिबन्ध से नाराज होकर राष्ट्र-संघ को त्याग दिया और सन् १९३९ ई० में इंग्लैंड को अपने आक्रमण का एक मात्र ध्येय बनाकर जर्मनी ने अपनी इस शिकायत का प्रमाण दिया। इस प्रकार सन् १९३९ ई० में दूसरे महायुद्ध के समय संसार के प्रमुख राष्ट्रों में ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स ही राष्ट्र-संघ के सदस्य रह गये।